HOMŒOP.
SANDESH

1962

U.
RDWAR

078060

/Diamond Book Binding Ho
Moh Karachh D.H.[illegible] Road Jammu

4
1952

~~RT-0302~~

Acc. No
078060

STOCK VERIFICATION
Central
Library
2024-25 G.K.D.U. Hd.

4/5182

❀ समः समं शमयती ❀

HOMŒOPATHIC SANDESH

EDITOR-IN-CHIEF, Dr. YUDHVIR SINGH

मूल्य ५) प्रधान सम्पादक : एक प्रति ॥)
डा० युद्धवीर सिंह

गुरुकुल-पत्रिका,
गुरुकुल कांगड़ी

] जून [illegible] [अंक १

चिकित्सा की सफलता
के लिये दवा विशुद्ध होनी चाहिये
विशुद्ध और विश्वसनीय
होमियोपैथिक बायो कैमिक व इलैक्ट्रो होमियोपैथिक
दवायें हमेशा
"डा० युद्धवीर सिंह होमियोपैथिक चैरिटेबल ट्रस्ट"
चांदनी चौक दिल्ली
के बिक्री विभाग से खरीदिये
इस विभाग का लाभ ६ होमियोपैथिक फ्री डिस्पैंसरीज़
में मुफ्त दवा देने में खर्च होता है।
टेलीफोन नं० ५८०२ सूची पत्र आज ही मंगाइये।

या
यों
मेरे
लाभ
त्सा-
ही
का
इस
लिए
लक्षण-
सोरा-

समूल नाश कर सकते है।"

078060

सिंह होमियोपैथिक चैरिटेबल ट्रस्ट के तीन स्वर्गीय ट्रस्टी

ला० देश बन्धु जी गुप्ता
मेम्बर पार्लीमेन्ट
निधन—२१-११-५१

ला० चन्द्र किरण जी जौहरी
कटरा नील
निधन—२४-११-५१

ला० राधे मोहन ज
ऊंची गली
निधन—१७-१०

4/5182

❀ समः समें शमयती ❀

होमियोपैथिक सन्देश

प्रधान सम्पादक—डा० युद्धवीर सिंह

वर्ष ४] दिल्ली, जून १९५२ [संख्या १०

पुराने रोगों की चिकित्सा

"इन असंख्य चिर व्याधियों के कारण का पता लगाने में, इस महान सत्यका निश्चय करने में तथा प्रमाणों को एकत्र करने में मैंने पूरे बारह वर्ष परिश्रम किया। मेरे पूर्व जो निरीक्षक हुए अथवा जो मेरे समकालीन हैं उन्हें इस तथ्य का ज्ञान नहीं हो सका इस सहस्र शिर वाले रोग-राक्षस को तथा तज्जन्य विभिन्न रूप और आकृति वाले रोगों को नष्ट करने के लिये सहस्रशक्ति सम्पन्न औषधियों का भी पता मैंने साथ ही साथ लगाया। 'चिररोग' (Chronic diseases) नामक ग्रन्थ में मैंने अपने अनुभवों का वर्णन किया है।

इस ज्ञान के प्राप्त होने से पहले मैं भी चिर रोगों को भिन्न-भिन्न रोग मान कर उनकी चिकित्सा करने का उपदेश देता था। उस समय तक जिन जिन औषधियों की परीक्षा मैंने स्वस्थ व्यक्तियों पर की थी और उनके परिणामों का पता लगा लिया था, उन्हीं औषधियों के द्वारा चिररोगों की चिकित्सा करने का आदेश अपने शिष्यों को दिया करता था। अतएव लक्षण समूह के आधार पर रोगों का वर्गीकरण करके मेरे शिष्य चिररोगों की चिकित्सा किया करते थे। रोग पीड़ित जनता को उसी प्रकार लाभ भी होता था। उसे 'जनता' को यह जानकर हर्ष होता था कि इस नवीन चिकित्सा-प्रणाली की औषधियों से उसका कष्ट कम हो सकता है। अब तो उसके हर्ष का पार ही नहीं रह गया। कारण कि सोराजन्य कि चिररोगों की अत्यन्त उपयुक्त औषधियों का पता लग गया है, उनको बनाने और प्रयोग करने की विधी प्रस्तुत हो गई है। इस प्रकार चिर वाञ्छित उद्देश्य की पूर्ति हो गई है। अब चिर रोगों कीं चिकित्सा के लिए औषधभंडार से ऐसी औषध चुनी जा सकती है जिसका लक्षण-समूह रोगी के लक्षण-समूह के अत्यन्त सदृश हो। सोरा जन्य चिररोगों को नष्ट करने के लिए सोरा-विष-नाशक औषध अत्यन्त उपयुक्त होती है। अतएव चिकित्सक उनका प्रयोग करके रोग पीड़ित जनता की अब उत्तम सहायता कर सकते हैं और प्रत्येक चिररोग का समूल नाश कर सकते हैं।"

078060

होमियोपैथ बनने के ५० कारण

डा० जे० काम्पटन बर्नेट

[४६]

मैंने अपने पिछले ३-४ कारणों में कुछ विस्तार से लिखा है खास तौर से इसलिये कि तुम इस विज्ञान से अनभिज्ञ होते हुए भी उस प्रकाश को देख सको जिस प्रकाश से प्रकाशित हो कर ही मैं यह सब कुछ समझ सका हूं और कर सका हूँ। मैंने हाल ही में जो एक पत्रिका का लम्बा उद्धरण तुम्हें दिया था उसके लिए मैं क्षमा चाहता हूं मगर वह उस विषय पर ठीक लागू था। अब मैं ऐसा उद्धरण नहीं दूंगा।

अब मैं ऐसे रोगियों का वर्णन देने के पक्ष में अधिक हूं जिनमें शारीरिक विकृति उत्पन्न हुई हो जो देखी जा सके, काटी जा सके और तराजू में रख कर तोली जा सके। ऐसे विकार यदि ठीक हो जावें तो वे अधिक प्रमाणिक लगते हैं बनिस्बत केवल लाक्षणिक रोगों के जैसे स्नायु शूल, मस्तिष्क पीड़ा, उदर शूल आदि। आम तौर से कहा जाता है कि एक ठोस ट्यूमर सदा रहता है दवाओं से अच्छा नहीं होता। मैं अपने ४६वें कारण में जितना संक्षेप में हो सकता है एक ऐसे ही रोग का वर्णन दे रहा हूँ जो बहुत ही कम होता है अर्थात

एक पुरुष की दांई छाती में अर्बुद ट्यूमर

मैंने अपने जीवन भर में ऐसे कुल तीन रोगी देखे हैं। स्त्रियों में तो छाती के अर्बुद प्रायः होते हैं। लेकिन पुरुषों में भी ये होते हैं खास तौर से बड़ी उम्र में। ऐसा ही एक केस यह है जिसका वर्णन मैं नीचे दे रहा हूँ :

सन् १८८१ की २३ अप्रैल की ये रोगी मेरे पास आया। यह एक लम्बा, छरेरे बदन

(शेष पिछले पृष्ठ का)

उपर्युक्त उद्गार गुरुवर हैनीमैन ने आर्गेनन में पुराने रोगों की चिकित्सा के सम्बन्ध में प्रगट किये हैं। सफल चिकित्सक बनने की इच्छा रखने वालों के लिए यह जरूरी है कि वे उन रोगों की दवा चुनते समय यदि रोगी सोरा प्रकृति का है तो सोरा विष नाशक दवा चुनें। कई दफा सोरा, सिफलिस, और साइकोसिस इन तीनों विषों का ध्यान न रख कर चिकित्सा करने से ठीक २ निर्दिष्ट औषधि भी काम नहीं करती और हम असफल होकर होमियोपैथी को दोषी ठहराने लगते हैं जब कि दोष हमारा होता है न कि होमियोपैथी का !!!

048060

का विकृत धातु वाला लन्दन का व्यवसायिक थां। इसकी उम्र कोई ७० वर्ष की थी। इसने बताया कि पिछली फरवरी से वह कुछ परेशान सा रहने लगा था जिसके बाद उस के बांयें स्तन में कुछ सुरसुराहट सी होने लगी जो शीघ्र ही दायें स्तन में चली गई और वहां अब तक रहती सी है। परीक्षा पर मैंने देखा कि यह कोई कबूतर के अण्डे जितनी सख्त गांठ है। रोगी ने इसे कोई एक मास पूर्व अनुभव किया था। इसमें दर्द नहीं था लेकिन वह भारी २ लगती और कुछ बेचैनी सी रहती थी। रोगी उस करवट नहीं सो सकता था और इस ही लिये उसका ध्यान उस ओर आकर्षित हुआ।

मैंने सोरीनम ३० दिया।

मई ७—अभी तक वह जगह भारी २ लगती है। रोगी का खयाल है कि गांठ कुछ नरम पड़ी है और मैं भी ऐसा ही समझता हूँ। गांठ कुछ छोटी भी हुई है। दवा की पुड़िया लेने के बाद रोगी को कुछ पित्त का प्रकोप दौरों के रूप में हुआ है। वही दवा।

मई २१—गांठ काफी छोटी है, सुरसुराहट काफी कम है। रोगी दाहिनी तरफ लेट सकता है। वही दवा।

मई २८—सुरसुराहट अब केवल स्तन के विटकने में ही मालूम होती है। स्तन को दबा कर सो सकता है। कब्ज है और ज़बान पर गाढ़ा मैल जमा है।

हाइड्रेस्टिस ३x दिया गया।

जून १४ सुरसुराहट कम तो हो गई है मगर है। वही दवा।

जुलाई २—सुरसुराहट कम। गांठ भी छोटी पड़ती जाती है। विटकने के बराबर ही छाती के बीचों बीच कुछ उभर आया है जिस पर खुश्क छिलके से हैं। वह कोई एक पैसे के बराबर है, लाल जमीन पर पीला २ ज़ख्म सा है। क़ब्ज अभी चल रहा है।

हाइड्रेस्टिस ६ दिया गया।

जुलाई २३—उसकी चांद पर खुश्क छिलके से आने लगे हैं। छाती के बीचों बीच पीला छिलका सा है और हाथ पर भी हो गये हैं। बिटकना अब बिलकुल ठीक है।

थूजा ३० दिया गया।

अगस्त १३—ट्यूमर गायब हो गया सिर्फ छोटी सी गांठ रह गई है। छाती के बीच में वह छिलकेदार ज़ख्म सा है।

सोरीनम-३० १५ वें दिन।

सितम्बर १६— अब वह छोटी सी गांठ भी जाती रही। छाती पर लाल छिलकेदार खुश्क उभार सा है।

चैलीडोनीयम ३ x दिया

अक्तूबर १३—ट्यूमर नहीं है। छाती के बीच में गोल चिकुत्ता सा है। क़ब्ज कम है। नेट्रमसल्फ ६ चूर्ण दिया।

अक्तूबर २७—ठीक है। चेहरे की रंगत स्वस्थ है जब कि शुरू में बिल्कुल रोग ग्रस्तथी।

इस बात को अब ६ वर्ष हो गये हैं। ट्यूमर फिर नहीं उभरा और रोगी ठीक है। साल में दो तीन दफा रोगी मेरे पास आता है कि मैं उसकी देखभाल कर लूं। इलाज शुरू करने के पहले मुझे रोगी के मित्रों ने कहा था कि "आपको विश्वास है कि इस अवस्था में आपरेशन न कराने का ख़तरा मोल लिया जाये क्यों कि डाक्टर—की राय में सिवाय काटपीट के और कोई चान्स (Chance) नहीं है।"

ट्यूमर ठीक हो जाने के बाद उन मित्रों ने क्या कहा? क्या वे कृतज्ञ हुए? शायद, मगर उन लोगों ने इतनी होशियारी

कौन्स्टेनटाइन हैरिंग

श्री शंकर राव, बी० ए०, सी० आई० ई०

[गताङ्क से आगे]

ऐलनटाउन के उत्तरीय अमेरीकन एकाडेमी आफ़ दी होमियोपैथिक हीलीङ्ग आर्ट से हैरिङ्ग का जो सम्बन्ध था उसकी बाबत हम पहिले ही बता चुके हैं। फिलाडेलफ़िया में रहते हुए वे अनेक संस्थाओं से किसी न किसी रूप में सम्बन्धित थे।

फिलाडेलफिया की एकाडेमी आफ़् नेचूरल साइन्सेज़ के वे एक कर्मठ सदस्य थे और उन्होंने उसको अपना वह बड़ा एवं अमूल्य जीवजन्तुओं का संग्रह भी भेंट किया जिसमें दक्षिणी अमेरीका का वह असली लैकेसिस टाइग्नोसिफेलस (एक सर्प विशेष) भी शामिल था जिसके ज़हर से उन्होंने अपना विख्यात लैकेसिस का पहिला परीक्षण (प्रूविङ्ग) किया था। वे अमेरीकन इन्स्टीच्यूट आफ् होमियोपैथीके संस्थापकों में से एक संस्थापक और पहिले प्रधान थे। यह अमेरिका में पहिली मेडीकल एसोसिएशन थी जो कि हैनीमैन के जन्मदिन पर १० अप्रैल १८४४ को न्यूयार्क में स्थापित की गई थी। वे अमेरिकन प्रूवर्ज यूनियन के संस्थापकों में से भी एक थे जो कि १० अगस्त १८५३ को स्थापित हुई थी और जिसने होमियोपैथिक भेषज विज्ञान की वृद्धि में भी बहुत सहायता दी। वे पैनेसिलवेनिया की फैकल्टी आफ़ दी होमियोपैथिक मेडीकल कालेज के संस्थापकों और सदस्यों में से एक थे जिस ने कि १८४८ में कार्य आरम्भ किया। १८६४ में इस फैकल्टी वालों ने यह अनुभव किया कि वे अधिक देर तक उस का बोझा बर्दाश्त नहीं कर सकते अतः उसके ट्रस्टीयों द्वारा उस का संचालन हैरिङ्ग को सौंप दिया गया। हैरिङ्ग ने अपने कुछ मित्रों के साथ एक नई फैकल्टी बनाई और इस संस्था का नाम हैनीमैन मेडीकल कालेज आफ़ फिलाडेलफिया रखा। इसके व्याख्यानों

(शेष पिछले पेज का)

बर्ती कि उस बात का जिक्र ही न आने दिया कि मैं जान पाता कि अब उनके क्या विचार हैं। अगरे इस विकार के बारे मे तुम मेरी सम्मति जानना चाहो तो मेरे खयाल् में, ये एक कैन्सर (Scirrhus) था और सख्त तो वह बहुत था ही।

एक बात मैंने प्रायः नोट की है कि जब ट्यूमर दवाओं से अच्छे होने लगते हैं तो छिलकेदार चकत्ते या उद्भेद शरीर पर प्रायः निकल आते हैं।

अब केवल ४ कारण देने और शेष रह गये हैं। क्या अब भी तुम पेड़ से नीचे उतरने को तय्यार हो या नहीं ?

का पहिला सिलसिला १८६४-६५ के शरत् में आरम्भ हुआ । आरम्भ में डा० हैरिङ्ग, डा० लिपी, डा० गर्नजे और डा० राऊ मुख्य २ अध्यापकों में से थ, पीछे से केरोल, डा० डनहम और डा० टिमोथी एफ० एलन भी उन में शामिल हो गये । इन सब का एक बड़ा अच्छा समुदाय था हैरिङ्ग ने होम्योपैथिक इन्स्टीट्यूट्स और भेषज विज्ञान की कुर्सी को सुशोभित किया । अपनी मृत्यु के समय वे इसके ससम्मान अवकाश प्राप्त प्रोफेसर थे ।

हैरिङ्ग के लेखन सम्बन्धी प्रयत्न बहुत से और भिन्न २ प्रकार के थे । पहिले वर्षों में वे साधारण गद्य और पद्य लिखते थे । जैसे परियों की कहानियां, व्यंगात्मक लेख, धार्मिक काव्यमय नाटक, और छोटे २ उपन्यास और ये सभी व्यंगात्मक होते थे । उनकी पिछली कृतियां अधिकतर चिकित्सा सम्बन्धी थीं । उनकी चिकित्सा सम्बन्धी पुस्तकों की सूची अन्त में प्रथम परिशिष्ट में दी गई है । वह उनकी वैज्ञानिक खोज का विस्तृत इतिहास है जिससे हैरिङ्ग बहुत प्रेम करते थे और जिस पर इन्होंने ५० से अधिक वर्ष लगाये ।

उनकी बड़ी पुस्तकों में से "घरेलू डाक्टर" (The Domestic Physician) बहुत लोकप्रिय था और है । इस के लिखने से हैरिङ्ग का यही मतलब नहीं था कि वह केवल उन लोगों के लिये हो जो डाक्टर का इलाज नहीं करा सकते हों या जिन्हें उनकी सुविधायें न हों किन्तु उनका यह अभिप्राय था कि जनसाधारण में से वह घरेलू औषधियां, गुप्त और पेटेन्ट दवाईयां निकल जावें जिनको खाने की आदत से बहुत सारे औषध-रोग उत्पन्न हो जाते हैं । इस पुस्तक की कितनी हीं आवृतियां निकल चुकी हैं और कई अन्य भाषाओं में भी उस का अनुवाद हो चुका है ।

गाईडिङ्ग सिम्पटमूस (The Guiding Symptoms) नामी पुस्तक एक सदा नाम कायम रखने वाली रचना है जिसके १० भाग हैं, लगभग ६००० पृष्ठ हैं और उनमें तीन लाख लक्षण दिये गये हैं । इस पुस्तक पर उन्होंने ४० वर्ष लगाये । जैसे पहिले कहा जा चुका है अपनी मृत्यु के समय हैरिङ्ग इस ही पुस्तक के चौथे भाग पर लगे हुए थे परन्तु न छपे हुए अन्य भागों की हस्तलिखित प्रतियां तो सब तैयार थीं । उनके अध्ययन के कमरे की दीवारें फर्श से लेकर छत तक इन और अन्य प्रकार की हस्तलिखित पुस्तकों से भरी पड़ी थीं ये सब हैरिङ्ग के अपने ही हाथ की लिखी थी और सिलसिलेवार लगी हुई थीं । पिछले सात भागों को छपवाने का काम उनके साहित्यिक उत्तराधिकारी डा० राऊ, डा० नेर और डा० मोहर ने किया जिन्होंने १८९१ तक उसे समाप्त कर दिया ।

हैरिङ्ग में प्रत्येक औषधि के विशिष्ट गुणों को मालूम कर लेने की विलक्षण शक्ति थी । वे औषधियों की विभिन्नता की बारीकीयों को खूब जान लेते थे जो आम तौर से दूसरे परीक्षकों द्वारा नहीं जाने जाते थे । और यही शक्ति है कि जिसने आम तौर पर उनकी पुस्तकों को और विशेषकर "गाईडिङ्ग सिम्पटमूस"

को होमिओपैथिक जगत के लिए एक अमर और अमूल्य वस्तु बना दिया है।

भिन्न २ औषधियों पर उनके अनेकों निबन्ध व विशेष लेख आने वाली सन्तान के लिए एक अद्भुत देन हैं। इनके अतिरिक्त नौर्थ अमेरिकन होम्योपैथिक जर्नल (१८५१), दी होम्योपैथिक न्यूज़ (१८५४), दी अमेरीकन जर्नल आफ़ होम्योपैथिक मैटीरिया मेडीका (१८६७-७१) और उनके अपने कालिज के जर्नल के सम्बन्धित उनके सम्पादकीय लेख भी हैं। सब कुछ दृष्टि में रखते हुए यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि हैरिङ्ग का होम्योपैथिक मैटीरिया मेडिका के लिए कार्य अनुपम है, केवल हैनीमैन से दूसरे दर्जे पर है। इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये कि केरोल डनहम और अपने साथ और काम करने वाले विश्वसनीय साथीयों को मैटीरिया मेडिका की वृद्धि करने के लिये प्रोत्साहित करने में भी हैरिङ्ग का विशेष हाथ था।

औषधियों के परीक्षण क्षेत्र (Proving) में हैरिङ्ग का साहस पूर्णरूप में विकसित होता है। डाक्टर नैश एवं अन्य डाक्टरों ने कहा है कि यदि हैरिङ्ग ने चिकित्सा शास्त्र के सम्बन्ध में और कुछ न किया होता और केवल अकेली औषध लैकेसिस का ही परीक्षण किया होता तो संसार इस के लिए ही उन का सर्वदा के लिए आभारी रहता, केवल यह अकेली बात ही हैरिङ्ग को अमर कर देती। उनके प्रशंसको में से एक का सुन्दर बयान हम नीचे देते हैं, यह उनकी मृत्यु के तुरन्त पश्चात् होने वाली एक शोक सभा में दिया था:—

"मित्रवर्ग! दूसरों की सहायता करने के शुभ उद्देश्य से अपने जीवन को शान्ति पूर्वक खतरे में डाल देने के लिये एक बहुत उच्चकोटि का शारीरिक और मानसिक साहस चाहिये। उस मनुष्य के वीरतापूर्ण कार्य को देखो जो उस कमरे में जहां से नौकर चाकर तक भाग गये हैं अकेला एक बक्स को खोलता है, जिस में कि अपनी जाति का सबसे बड़ा और भयंकर विषैला सर्प है। इस भयंकर जन्तु की विष थैलियों से घातक ज़हर को निकालने का इस व्यक्ति ने खूब सोच समझ कर निश्चय किया है और देखिये अब वह उसे निकालने वाला है! उस मनुष्य की दिलेरी देखिये जो यद्यपि सर्प चौकन्ना है फिर भी उस को उसके सिर के नीचे से मजबूती से पकड़ लेता है! जब कि वह सर्प अपनी कुंडली खोल कर सिर को उठाये हुए, आंखों को चमकाता हुआ जबान निकाल कर अपने नङ्गे जहरीले दांतों से उस निर्भय आत्मा को काटना ही चाहता है कि वह अपने जीवन को खतरे में डालकर उसके जहर से व्याधियों से पीडित मानव जाति के लिये एक रामबाण औषधि खोज रहा है। और देखिये वह अपनी नौकीली लकड़ी उस सांप के खुले जबाड़ों में फंसा देता है जिस का काटना निश्चय मृत्यु है और जब वह गुस्से में होता है तो उसके मुख से घातक लार निकलती है। वह उस सर्प को तब तक बराबर छेड़ता रहता है जब तक कि उस में तनिक सा भी जहर नहीं रहता फिर वह उस भयानक सर्प को अलकोहल भरे शीशे के जार में ठूंस देता है परन्तु वह अपनी फौलादी गिरिफ़्त को तब तक ढीला नहीं करता जब तब कि वह सर्प मर नहीं जाता। वह विष जो कि एक

घड़ी के शीशे में लिया गया था एक खरल में डाल दिया जाता है और तब तक शूगर आफ् मिल्क के साथ रगड़ा जाता है जब तक कि उस का जामुनी रंग जैसा सूजा हुआ चेहरा और चक्कर खाता हुआ दिमाग उस रोचक कार्य को रोक नहीं देता। इस प्रकार घोटे हुए ज़हर को वह निश्चित समय पर खाता रहता है ताकि अपने ऊपर उस जहर का असर देखे। उसको ज्वर में झूमते हुए देखो उसकी बकवास भरी मूर्छित अवस्था पर ध्यान धरो जब कि वह एक विषय से दूसरे विषय पर दौड़ जाता है, उस का सांस घुट जाना और सांस लेने के लिये बेहद प्रयत्न करना भी देखो, वह अपने गले के कपड़ों को खींचता है और उनको छाती तक फाड़ डालता है, उसकी मानसिक अवस्था उसको कितनी चिन्तित और भयंकर होगी और फिर अपने आप से पूछो कि उस ने यह सब किस के लिये और किस मतलब के लिये किया और फिर उत्तर दो—क्या वह शूरवीर नहीं है ?"

ऐसे ही एक दूसरे अवसर पर उसके एक अन्य डाक्टर मित्र ने कहा है कि हैरिंग की मुसीबत वह छाप थी जो उस पर लैकेसिस के कारण लग गई थी और जिससे उसे पूर्णरूपेण कभी भी छुटकारा नहीं मिला। यही मुसीबत उसकी ऊंची शान थी। जो कुछ भी हो लैकेसिस के परीक्षण ने क्रोटेलस, नाजा एवं अन्य सर्पों के और अन्य प्रकार के कीड़ों के विषों के लिए होमियोपैथिक मैटरिया मैडिका का द्वार खोल दिया। हैरिङ्ग ने जिन औषधियों का प्रूविङ्ग किया उनकी पूरी सूची तो प्राप्त नहीं हो सकी है परन्तु कुछ अपूर्ण सूचि जो कि ब्रेडफोर्ड की पाइनियर्ज आफ होम्योपैथी से ली गई है अन्त में दी गई है। यह भी बहुत लम्बी है जिसमें ७१ औषधियें हैं जिनमें लैकेसिस के अतिरिक्त क्रोटेलस, हाइड्रोफोबिनम, सोरिनम आदि बड़े भयानक ज़हर हैं। हैरिंग अपनी स्वस्थ अवस्था में किसी भी औषधिका प्रूविङ्ग अपने ऊपर करने को तैयार रहता था और होमियोपैथी तथा अपने पीड़ित भाइयों के प्रेम की खातिर हर परिणाम को झेलने के लिए तत्पर रहता था। एडीसन से क्षमा चाहते हुए यह कहा जा सकता है—

असीम साहस और उसके साथ मिली हुई दया हैरिंग के मन में एक दूसरे को ललचाती हुई बारी बारी से उसके महान और नेक होने की घोषणा करती हैं और उसको एक पूर्ण मनुष्य औ वीर बना देती हैं।

अब उनके व्यवसाय (प्रेक्टिस) के सम्बन्ध में भी कुछ सुनिये। उसमें कुछ ऐसी विशेषतायें हैं जिनका कोई भी डाक्टर किसी देश और किसी भी समय में अनुकरण कर के लाभ उठा सकता है।

प्रथम तो जैसा कि डाक्टर हैनिमैन चाहते थे वे एक चिकित्सक थे—चिकित्सक शब्द के उच्चतम अर्थों में; अर्थात् मनुष्य मात्र का उपकार करने वाले। स्वभावतया ही उनको पैसे की हाय नहीं रहती थी वे बिना बुलाये किसी मरीज़ को देखने नहीं गये। यदि वे किसी मरीज को देखने गये या कोई मरीज़ उनके पास आया तो समय का ध्यान उनको कभी नहीं हुआ। जब वे किसी मरीज़ की परीक्षा करते थे तो पूर्णरूप से और बड़ी मेहनत से करते थे

जैसे कि उनको और किसी मरीज़ को देखता ही न हो उस समय जीवन में कोई अन्य काम ही न हो।

दूसरे जब उनको शक हो जाता था तो ठीक दवा के चुनने में उन्होंने पुस्तकों का अध्ययन करने में कभी हिचकिचाहट नहीं अनुभव की। उन्होंने अपने जीवन का बहुत सा भाग होम्योपैथिक मैटीरिया मेडिका (भेषज विधान) के अध्ययन करने उसकी वृद्धि करने और उसको समझाने में व्यतीत किया किन्तु फिर भी बड़े नम्र-भाव से वे वह अनुभव करते थे कि हर एक डाक्टर अपने दिमाग में यह सब नहीं रख सकता था, कि हर एक रोगी के लिए अध्ययन करना आवश्यक था और कि हरएक मरीज़ का लाभ इसी में है कि उसके चिकित्सक का दिमाग दवा तजवीज़ करते समय साफ व सही हो। उनमें सुस्ती या वेपर्वाही का तो नाम भी न था।

तीसरे—वे हर एक मरीज़ का ठीक-ठीक ब्यौरा रखते थे। इसमें आरम्भ में तो कठिनता ज़रूर होती थी परन्तु वह सब प्रकार से उपयोगी होता था—प्रथम तो चिकित्सक के लिए क्यों कि मरीज़ की दुबारा परीक्षा के समय अथवा उस ही प्रकार का कोई और रोगी आ जाने पर डाक्टर का काफी समय बच जाता था, दूसरे मरीज़ के लिये क्योंकि उसको विश्वास हो जाता था कि उस का चिकित्सक उसके रोग का पूरा २ ब्यौरा जानता है और हर बार आने पर उसको दोहराने की आवश्यक्ता नहीं पड़ती और तीसरे आगे आने वालों के लिये ऐसी अमूल्य पुस्तकों का अपूर्व लाभ हुआ जिन में कि हैरिंग का इस प्रकार प्राप्त किया हुआ अपना विशाल अनुभव भरा पड़ा है।

चौथे—उनके विशाल ज्ञान भण्डार एवं उनके रोगी को खूब अच्छी तरह देखने के ढंग के अतिरिक्त उनमें एक गम्भीर बड़प्पन की आभा थी जो कि उन ऐलोपैथिक डाक्टरों के सामने भी वैसी ही रहती थी जो कि उनका ठट्ठा उड़ाते थे जब कि उनको मशवरे के लिये बुलाया जाता था और उनकी यही गम्भीरता मरीज़ों के लिये बड़ी तसल्ली देने वाली होती थी। यह शांति उनमें इस दृढ़ विश्वास से उत्पन्न होती थी कि होम्योपैथी एक सत्य सिद्धान्त है, ईश्वर ने उनका सर्वदा पथप्रदर्न किया है और ईश्वर महान् है।

पांचवें—उन्होंने कभी कृतज्ञता की आशा नहीं की ऐसे रोगियों से भी नहीं की जो भयंकर एवं असाध्य थे और जिन का अच्छा होना एक चमत्कार ही था। चूंकि वह किसी से कृतज्ञता की आशा नहीं रखते थे इसी लिए उनको निराश होने का भी कोई मौका ही नहीं हुआ। एक बार उन्होंने कहा था कि कृतज्ञता शब्द का महान कवि शेक्सपीयर ने अपनी सारी पुस्तकों में केवल चारबार प्रयोग किया है परन्तु कृतघ्नता का प्रयोग २२ बार हुआ है। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि इतना गुणी और महान चिकित्सक हजारों को रोग और मृत्यु के मुख से निकालने में समर्थ हुआ।

(शेष अगले अंक में)

"डा० युद्धवीर सिंह होमियोपैथिक चैरिटेबिल ट्रस्ट"

की

२३ वीं वार्षिक रिपोर्ट

जनवरी १९५१ से दिसम्बर १९५१ तक

स्थापना

रोगी सेवा की उच्च भावना से प्रेरित होकर हमारे नगर के मान्य एवं प्रमुख नागरिक श्री डा० युद्धवीर सिंह जी ने आज से लगभग २३ वर्ष पूर्व इस लोकोपयोगी संस्था की स्थापना की थी। इस शुभ कार्य में डा० साहब को सर्वप्रथम प्रोत्साहन सहयोग एवं सहायता देने वालों में श्री मीर मुहम्मद हुसेन, श्री सुरेन्द्र नाथ जौहर और महाशय कृष्ण चन्द्र जी के नाम उल्लेखनीय हैं।

इस संस्था का प्रारम्भ १ दिसम्बर १९२८ को चांदनी चौक में एक छोटे से धर्मार्थ औषधालय के रूप में हुआ था।

अपनी लोक प्रियता और दिल्ली निवासियों की उदारता के कारण शीघ्र ही इसकी शाखायें नगर के प्रत्येक भाग में स्थापित हो गईं।

इस प्रकार संस्था की उत्तरोत्तर वृद्धि, उपयोगिता और भावी विकास को ध्यान में रखते हुए इसे वर्तमान ट्रस्ट का स्थायी और नियमित रूप देकर सन् १९४२ ई० में रजिस्टर्ड करवा दिया गया। इस समय इस ट्रस्ट के अन्तर्गत जो औषधालय और अन्य विभाग चालू हैं उनका पिछले वर्ष का संक्षिप्त विवरण आगे दिया जाता है।

ट्रस्ट के वर्तमान शफाखाने

१—सेन्ट्रल डिस्पैंसरी, कूचा ब्रजनाथ, स्थापित १९२८।

२—ग्राम बरवाला, स्थापित १९३४। ग्रांड ट्रंक रोड से बादली के पास से जाने वाली सड़क पर देहली से कोई १२ मील पर यह दवाखाना बरवाला गांव में अपने ही मकान "मन्सा देवी भवन" में स्थापित है।

३—राय बहादुर लाल राम रूप डिस्पैंसरी, सब्जी मण्डी, स्थापित १९३५।

४—करौलबाग डिस्पैंसरी, स्थापित १९३८।

५—क्वीन्स रोड डिस्पैंसरी नहर सादत खां डफरिन ब्रिज के सामने, स्थापित १९४०

६—जनाना डिस्पैंसरी, क्वीन्स रोड स्थापित १९४१।

इन ६ दवाखानों में पिछले ४ वर्षों में रोगियों की संख्या इस प्रकार रही:-

	१९४८	१९४९	१९५०	१९५१
कुल रोगी	३२२६४१	३२७२५९	३२७७५६	३०२६६२
नये रोगी	८८५९४	८०९०८	८९२८२	७६४८९
रोजाना औसत	८१८	८९५	८९८	८२८

इन आंकड़ों को देखने से पता लगेगा कि हमारे दवाखानों से लगभग ९०० सौ रोगी रोज लाभ उठाते हैं।

आपकी जानकारी के लिये मरीजों की दैनिक संख्या का ब्योरा अगले सफे पर दिया गया है। इसी प्रकार २३ साल की प्रगति इस रिपोर्ट के आखिरी पृष्ठ पर दी गई है।

हमारी आय व्यय

ला० जगदीश प्रसाद जी आडिटर द्वारा जांच किया हुआ हिसाब यहां दर्ज किया जाता है। चन्दा व दान इकट्ठा करने में कई महानुभाव बड़ी मदद करते हैं और अपना अमूल्य समय भी देते हैं। पर कई कारणों वश इस वर्ष दान बहुत कम प्राप्त हुआ है। उधर दवाखानों की उन्नति व जनता की और अधिक सेवा करने के लिये ज्यादा रुपये की जरूरत है। हमें पूर्ण आशा है कि दानी सज्जनों की सहायता से हमारी सब जरूरतें पूरी हो जायेंगी। हम ला० जगदीश प्रसाद जी आडिटर का हार्दिक धन्यवाद करते हैं। आप हर साल इन दवाखानों व बिक्री विभाग का हिसाब काफी समय खर्च कर के और बिला फीस लिये जांचते हैं और अपनी रिपोर्ट के साथ २ उपयोगी व जरूरी सुझाव भी देते हैं। हमें आशा है कि लाला जी इसी प्रकार इस संस्था पर कृपा बनाये रखेंगे।

हिसाब पर दृष्टि डालने से आप देखेंगे कि इस वर्ष के कुल ३,०२,६६२ रोगियों पर हमने सिर्फ २३,४२९।।)॥ खर्च किया जो लगभग १४.८ पाई प्रति रोगी रोजाना बैठता है। हमें इस बात का गर्व है कि दिल्ली शहर में इतने कम खर्च में रोगी सेवा करने का सौभाग्य सिर्फ इस ही संस्था को प्राप्त है और वह आप सब लोगों के सहयोग का फल है।

इस रिपोर्ट के अन्त में उन सब सज्जनों के नाम दिये गये हैं जिन से मासिक व वार्षिक सहायता प्राप्त हुई। हम इन सब महानुभावों को धन्यवाद देते हैं क्योंकि परोपकार का यह महान् कार्य उन्हीं की मदद से चल रहा है। इन दानी सज्जनों में से सब से प्रमुख ट्रस्ट के सभापति श्री जगन्नाथ जी रईस, सब्जीमण्डी वाले हैं। रा० बा० रामरूप डिस्पेंसरी का सारा खर्च इन्हीं के दान से चलता है। इस दवाखाने पर इस साल कुल ४८५३॥।)॥। रु० खर्च हुआ। दिल्ली म्युनिसिपल कमेटी पूर्ववत हमें ७०००) वार्षिक सहायता दे रही है। बरवाला दवाखाने के लिये डिस्ट्रिक्ट बोर्ड से भी ५०० रु० वार्षिक सहायता मिल रही है जो हमारा काफी हाथ बटाती है। इस लिये हम कमेटी और डिट्रिक्टबोर्ड के अभारी हैं।

छओं शफाखानों के रोगियों की दैनिक औसत १६५१

महीना	कूचा ब्रजनाथ	बरकाला	सब्जी मंडी	करोलबाग	क्वीन्स रोड़	जनाना डि०	योग
जनवरी	१६७	५२	१५७	८५	४६	१५६	६६६
फरवरी	२०७	५५	१७३	१०१	५२	१६४	७८२
मार्च	१६५	५०	१७६	१०५	६७	१८६	७८५
अप्रैल	२१०	७२	२१३	११६	६५	१८८	८६४
मई	२३१	७६	२०४	११४	५८	२०६	८६२
जून	२४८	८३	१८६	१०७	५७	१८४	८६५
जुलाई	२४६	७७	२१२	८८	५५	१७०	८४८
अगस्त	२४१	८८	२३१	६६	६०	२०१	६२०
सितम्बर	२७०	१२१	२३८	६१	५६	२३४	१०१३
अक्टूबर	२३४	१०४	१८४	७६	६४	१८०	८३५
नवम्बर	२०१	८६	१६१	७४	५६	१८३	७६७
दिसम्बर	१८२	७८	१३५	६३	५१	१८१	६६०
औसत	२१६	७६	१६०	६३	५८	१८६	८२८

हिसाब बाबत सन् १९५१

आय	कूचा ब्रजनाथ चांदनी चौक	राय बहादुर रामरूप सब्जी मन्डी	करौल बाग	बरवाला ग्राम	क्वींज रोड और जनानाडिस्पैंसरी	योग
बिक्री दवाएं	३१९।।।≡)	—	—	—	—	३१९।।।≡)
शीशीयें	३३९।।≡)	३१०=)	११९।।।=)	४।)	३१९।-)	१०९०।)
म्युनिसिपल ग्रान्ट	७३९३।।।)	—	—	५००)	—	७८९३।।।)
मासिक चन्दा	२२९६)	—	६८०।-)	—	१७४७)	४७२३।-)
दान	१९१८)	४४४०)	—	४८)	—	६४०६)
दान पात्र	२१९।।=)	१४०=)	१३१।।।)	११)।	५२४।≡)।।।	१०२४)
सेल्स डिपार्टमेन्ट से	३६११।)	—	—	—	—	३६११।)
चैरिटी शो से	१८०२)	—	—	—	—	१८०२)
फुटकर	१४)	—	१४८८।=)।।	५८६)	५०९।।)	२५९७।।=)।।
—	१४,६५५।।)	४८९०।)	२४२०।-)।।	११४९।)।	३१००।)।।।	२६२१५।।=)।।
सहायता सदर से	-	—	६२९।।।-)।।	१२०५।-)।	२०८८।।।≡)।।	४२२१=)।
जोड़	१४६५५।।)	४८९०।)	३३४७≡)	२३५४।।-)।।	५१८९।)।	३०४३६।।।)।।।

व्यय	कूचा ब्रजनाथ चाँदनी चौक	रा०वा०ला० रामरूप डिस्पेन्सरी	करौल बाग	बरवाला ग्राम	क्वींस रोड और जनाना डिस्पेन्सरी	योग
दवाओं का स्टाक	७९१।।)	६०२)।।	२८७।=)।।	१३५।=)	[illegible]	२२७३।।।)
शीशियों का स्टाक	७।≡)	१३।)	१४।।)	—	२८।।–)।।	६३।।।)।।
दवायें खरीदीं	११९९।।।=)।	८७७।≡)	३९०।≡)	५३१।।=)	१४६०।।)।	४४५९।।।=)।।
शीशियें खरीदीं	१२८।)	८५।।)।।	३९=)	—	७४।।=)	३३७।।)।।
	२१२७–)।	१५८८।)	७३१।≡)।।	६६७)	२०२१=)।।।	७१३४।।।≡)।।
३१-१२-५१ कास्टाककर्मकिया	७५१।।।–)	५७७)	२८२–)	७०।।।=)	५००।।।=)।।।	२१८२।।=)
	१३७५।)।	१०११।)	४४९।=)।।	५९६=)	१५२०। ।।।	४९५२।–)।।
वेतन	४२५५=)	३१२३।।≡)	२५१०।–)	१६१५=)	३२२८)	१४७३२।)
प्रोविडेन्ट फंड कंट्रिबुशन	१५६।।।≡)	१२५।)	१२४।–)	६३।।।)	१५९।।।)	६३०)
स्टेशनरी, छपाई व डाक	५४।≡)।।।	५१।।–)	४४–)।।	१८)	६९।–।	२३७।≡)।।
किराया	९१४।।=)	३६०)	१८०)	—	—	१४५४।।=)
बिजली और पानी	१६४।।।–)	१०१।।।)।।	१५।=)	—	८५।।।=)	३६४।।।=)।।
फुटकर	११७)	७९।।–)।	२३।।=)	४६।।।≡)।।	१२९)।	३९६।≡)
टेलीफोन	४८९।)	—	—	—	—	४९९।)
डैपरिशिएशन फरनिचर पर	६।।।=)	—	—	—	—	६।।।=)
,, औजारों पर	६।।।)	।।)	—	१४।।=)	—	२१।।।=)
उचन्ति	१३२)	—	—	—	—	१३२)
बट्टेखाता	१।।)	—	—	—	—	१।।)
	७६८४।।=)	४८५३।।।–)।।।	३३४७≡)	२३५४।।–)।।	५१८९)।	२३४२९।।)।।
सहायता ब्राँचों को	४२२१=)।		—	—	—	४२२१=)।
लाभ	२७४९।।≡)।।।	३६।=)।	—	—	—	२७८६=)
जोड़	१४६५५।।)	४८९०।)	३३४७≡)	२३५४।।–)।।	५१८९।)।	३०४३६।।।)।।।

प्रबन्ध

यह दवाखाना वैसे तो श्री डा० युद्धवीर सिंह ज़ी के अनथक परिश्रम व निष्काम सेवा भाव की देन है पर सन् १९४२ में इस संस्था को एक नियमित ट्रस्ट का रूप देकर "डा० युद्धवीर सिंह होमियोपैथिक चैरिटेबल ट्रस्ट" के नाम से रजिस्टर्ड करवा लिया था। तमाम दवाखानों का इन्तजाम ट्रस्ट द्वारा नियत मैनेजिंग कमेटी करती है। ट्रस्ट के तथा सन् १९५१ की मैनेजिंग कमेटी के सदस्यों के नाम आगे दिये गये हैं। ट्रस्ट और मैनेजिंग कमेटी की समय समय पर मीटिंग होती रही हैं जिनमें प्रबन्ध सम्बन्धी निश्चय किये जाते हैं। सभी सभासद काफी दिलचस्पी लेते हैं व सहयोग देते रहे हैं।

मैनेजिंग कमेटी के सभासद

म० कृष्ण चन्द्र, प्रधान
ला० देशराज चौधरी, उपप्रधान
श्री ब्रज नारायण सेठ, मन्त्री
ला० चरत सिंह, उपमन्त्री
राय साहब ला० गुरप्रसाद कपूर
श्री जय चन्द खन्ना
बा० शम्भू सरूप
ला० सत्य नारायण जी गुड़ वाले
राय साहब श्रीराम बार० एट० ला०
श्री सत्यपाल
बावा विचित्र सिंह
श्री सुरेन्द्र नाथ जौहर
शेख अब्दुल करीम
वैद्य नारायण दत्त
डा० युद्धवीर सिंह
श्री सीताराम
ला० जगन्नाथ, प्रधान ट्रस्ट
ला० ओंकार नाथ, मन्त्री ट्रस्ट
मु० इब्राहीम
कैप्टिन कँवरसिंह

ट्रस्ट की सम्पति व फन्ड

इस समय ट्रस्ट की सम्पति व फण्ड इस प्रकार है—

१. बरवाला दवाखाने की इमारत जो ला० उमराव सिंह जी की बहन श्रीमती मनसा देवी ने १९३६ में गाँव वालों की दी हुई जमीन पर बनवा दी थी।

२. बिक्री विभाग, जिसमें इस समय २४८८१≡)॥ रुपया लगा हुआ है।

३. ट्रस्ट का एक फण्ड २१-१-४९ में स्थापित किया गया था इस समय इसमें कुल ४५०) सैंट्रल बैंक में जमा हैं।

ट्रस्ट का वार्षिक अधिवेशन

हर साल की तरह इस वर्ष भी ट्रस्ट का सालाना जलसा ३० जून १९५१ को लाला जगननाथ जी प्रधान ट्रस्ट के सभापतित्व में दरबार हाल चांदनी चौक में बड़े समारोह से मनाया गया। लगभग १२७ सज्जन उपस्थित थे। ट्रस्ट के मन्त्री श्री ओंकारनाथ जी नेसन् ५० की रिपोर्ट पढ़ कर सुनाई। जिस के बाद लाला श्रीराम बैरिस्टर, ला० सतनारायण गुड़वाले'

डा० लखनपाल, चौधरी होशियारसिंह, कैपटिन कंवरसिंह, श्री सुरेन्द्रनाथ जी जौहर आदि २ सज्जनों ने ट्रस्ट के सालभर के कार्य पर सन्तोष प्रकट करते हुए अपने अपने खयाल जाहिर किये। ट्रस्ट के नियम के अनुसार ला० रामचंन्द साड़ीवाले, श्रीमती राजरानी जी, श्री चरतसिंह जी, बावा विचित्रसिंह जी, और श्रीईश्वरदयाल जी ट्रस्ट के अतिरिक्त सदस्य चुने गये।

अन्त में लाला जगननाथ जी प्रधान ट्रस्ट ने सब सज्जनों का धन्यवाद किया। ट्रस्ट की कार्यवाही समाप्त होने से पूर्व ला० सुरन्द्रनाथ जी जौहर की ओर से आमन्त्रित सज्जनों का जलपान आदि से सत्कार किया गया।

बिक्री विभाग

कुछ महानुभावों का यह बहुत समय से अनुरोध रहा था कि दवाखाने के साथ साथ बिक्री विभाग भी खोला जाय। इस ओर ला० लक्ष्मीचन्द जी ने. खास दिलचस्पी ली और इन्हीं की प्रेरणा से १ अप्रेल १९३३ से सैंट्रल डिस्पेंन्सरी के साथ साथ यह विभाग खोल दिया गया। आरम्भ में ला० लक्ष्मीचन्द जी के अलावा ला० चन्दकिरन जी, ला० हरध्यानसिंह जी चान्दी वाले, ला० आत्माराम जी व श्री. सुरेन्द्रनाथ जी जौहर ने इस विभाग को बिना सूद के रुपया कर्ज दिया था। ज्यों ज्यों विभाग तरक्की करता गया और लोक प्रिय होता गया इसकी बिक्री बढ़ती गई और सारा कर्जा भी उतार दिया गया।

पिछली पांच साल की बिक्री की तालिका सूचनार्थ नीचे दी जाती है। १९४९ में हमने इटली से कुछ सीधा माल मंगवाया था। इस साल अमेरिका से भी सीधा माल मंगवाया गया है।

१९४७	१४,५८५॥।)॥
१९४८	२१,५५६॥)
१९४९	१२,७१६।≡)
१९५०	१५,६६५=)
१९५१	१८,९३९=)

यह विभाग अपने मुनाफे का एक नियत भाग प्रतिवर्ष डिस्पेन्सरीज़ को देता है और शेष लाभ पूंजी में जमा हो जाता है। इस विभाग पर इस समय २६६८१।)॥ लगा हुआ है। जिस में २४८५१≡)।।। अपनी निजि पूंजि है। इस विभाग का प्रबन्ध ट्रस्ट द्वारा नियत की हुई एक कमेटी करती है जिस के इस वर्ष निम्नलिखित सदस्य रहे।

श्री शम्भूस्वरूप जी प्रधान
श्री सीताराम जी मंत्री
डा० यद्ववीरसिंह जी
ला० चरतसिंह जी
श्री कृष्णचन्द जी
श्री विशन प्रसाद जी महेश्वरी
श्री ईश्वरदास जी
श्री देवकीनन्दन जी
श्री ब्रजनारायण सेठ
ला० ओंकारनाथ जी

कमेटी की समय समय पर मीटिंग होती हैं जिस में प्रबन्ध सम्बन्धी निश्चय किये जाते हैं। सभी सदस्य विभाग के कार्य में काफी दिलचस्पी लेते रहे हैं। ला० सीताराम जी व ला० चरतसिंह जी अपना काफी अमूल्य समय देकर इस विभाग पर खास ध्यान देते हैं। ट्रस्ट इन दोनों सज्जनों का आभारी है।

बिक्री विभाग को जिन सज्जनों, डाक्टरों व होमियोपैथी के प्रेमियों ने अपनाया है हम उनके कृतज्ञ हैं। यहां यह कहना अनुचित न होगा कि इस विभाग में शुद्ध, सस्ती व विश्वसनीय होमियोपैथिक व बायोकैमिक दवाएं बहुत ही उचित मूल्य पर मिलती हैं। इसी कारण यह विभाग लोकप्रिय होता जा रहा है। पिछले दो सालों से जनता की सहूलियत के लिये ट्रस्ट ने हर एक दवाखाने में दवा बेचने का प्रबन्ध कर दिया है। परन्तु सैंट्रल डिस्पेन्सरी के अलावा शेष जगहों पर केवल मरीजों ही को दवायें दी जाती हैं जिस से उन्हें दवा खरीदने के लिये दूर न जाना पड़े व दवा भी अच्छी व उचित मूल्य पर मिल जाया करे।

जो सज्जन इस विभाग को अपना रहे हैं उन्हें जहां विश्वसनीय दवाएं मिलती हैं वहां उन हजारों गरीब रोगियों का आशीर्वाद भी प्राप्त होता है जो इस विभाग की बिक्री के मुनाफे में से दवा पाकर लाभ उठाते हैं।

शोक सूचना

हमें यह लिखते हुए अत्यन्त दुःख होता है कि इस वर्ष हमारे ट्रस्ट के सदस्यों व सहायकों में से कई माननीय एवं प्रतिष्ठित सज्जनों की मृत्यु हो गई जिससे ट्रस्ट को बहुत हानि पहुंची।

दिल्ली के माननीय नेता लाला देश बन्धु जी गुप्ता इस ट्रस्ट के सदस्य थे और आरम्भ काल से ही इस संस्था की आर्थिक एवं अन्य प्रकार की सहायता में उनका बडा भारी हाथ था। उनके इस वियोग से इस संस्था को बड़ी हानि पहुंची है।

लाला चेन्द किरण जी—का सम्बन्ध इस संस्था से इसके जन्मकाल से ही था। आप तन मन धन से इसकी हमेशा सहायता करते थे। ट्रस्ट के मेम्बर होने के अतिरिक्त आप बिक्री विभाग के जन्मदाताओं में से थे और कई वर्ष तक उसके प्रधान रह कर आपने इस की उन्नति करने में प्रमुख भाग लिया था। आपके वियोग से हम सभी अत्यन्त दुखी हैं।

लाला राधे मोहन जी टण्डन—ट्रस्ट के सदस्य भी थे और हमारे उन सहायकों में थे जो न केवल आर्थिक सहायता ही देते थे बल्कि वार्षिक चन्दा तथा मासिक सहायता दिलाने में सब से आगे रहते थे। आपका दिल्ली के व्यापारियों में बड़ा प्रभाव था और आपकी सहायता से ट्रस्ट को बहुत लाभ पहुँचता था। आपकी दुःखदाई मृत्यु से सभी सदस्य अत्यन्त दुखी हैं। आप बहुत ही हँसमुख प्रकृति के थे और जिस सभा में भी बैठते थे उसमें प्रसन्नता की लहर दौड़ा देते थे।

लाला राम स्वरुप—दिल्ली के मुख्य कपड़े के व्यापारी थे। आप भी इस ट्रस्ट के सभासद थे और आर्थिक सहायता देने तथा दिलवाने में आपका प्रमुख हाथ रहता था। आपकी ही प्रेरणा के कारण आपकी बहिन श्रीमति मनसा देवी ने बरवाला में हमारे हस्पताल की इमारत १९३६ में बनवा दी थी। आपकी मृत्यु से ट्रस्ट के एक प्रभावशाली सहायक का अभाव हो गया।

लाला काशी राम जी—मालिक फर्म दया राम राम बिलास, कूचा नटवान दिल्ली आरम्भ से ही इस संस्था के सहायक थे। आपके व्यक्तित्व के प्रभाव से ही हमें बड़ी सहायता मिलती थी। आपकी मृत्यु से हमें बड़ी हानि हुई है।

हमारी ईश्वर से प्रार्थना है कि इन महानुभावों की आत्माओं को शान्ति और इनके सम्बन्धियों को धैर्य प्रदान करें। इन महानुभावों के अभाव से ट्रस्ट के वर्तमान सभासद और सहायकों की जिम्मेदारी और भी अधिक बढ़ जाती है। हम आशा करते हैं कि अधिक समय देकर और अधिक मेहनत करके हमारे वर्तमान सदस्य इन महानुभावों की कमी को पूरा करेंगे।

अन्तिम निवेदन

ट्रस्ट की यह अभिलाषा है कि दिल्ली में एक होमियोपैथिक अस्पताल जारी कर दिया जाये। इसके लिये कई साल से कोशिश जारी है और सरकार से जमीन की प्रार्थना भी की जा चुकी है। जमीन के सम्बन्ध में सब कार्यवाई हो गई है और तिमारपुर में बालक राम अस्पताल के पास ९ एकड़ जमीन मिलना लगभग तय हो गया हैं। अब इस अस्पताल की इमारत बनाने और चलाने की बड़ी भारी जिम्मेदारी हमारे ऊपर आ गई है। इमारत का खर्च लगभग ४ लाख कूता गया है और अस्पताल के चालू खर्च का मोटा अन्दाजा कम से कम २००० रु० मासिक है। आशा एवं विश्वास है कि दिल्ली के धनीमानी सज्जनों की कृपा व सहायता से यह शुभ कार्य भी पूरा होगा।

बरवाला डिस्पेंसरी की इमारत बहुत पुरानी व जर्जर हो गई है। उसका हर वक्त गिरने का खतरा रहता है। वह अब मरम्मत के काबिल नहीं रही हैं। ट्रस्ट उसे नये सिरे से ही बनवाना होगा इसके लिये लगभग १०००० रु० चाहिये। आशा है कि यह रुपया शीघ्र दानी सज्जनों की कृपा से एकत्र हो जायगा।

जहां हम दानी सज्जनों के कृतज्ञ हैं वहां उन साथियों के भी आभारी हैं जो अपना अमूल्य समय देकर चन्दा व दान इकट्ठा करने में हमारी भरसक मदद करते हैं। आज कल की हालत में चन्दा प्राप्त करना बड़ा कठिन हो गया है पर फिर भी इकट्ठा करने वालों की कोशिशों व देने वालों के प्रेम की वजह से हमें किसी जरूरी खर्च को काट देने की नौबत न आई और रोगी सेवा उसी प्रकार होती रही लेकिन हमें इस ओर कोई ठोस कदम जरूर उठाना पड़ेगा क्योंकि खर्चे दिन प्रतिदिन बढ़ते जा रहे हैं। हाल ही में कर्मचारियों की सुविधा के लिये प्रोविडेंट फंड भी जारी कर दिया है जिसमें वेतन का सवा छः प्रतिशत ट्रस्ट भी देगा। हमें पूर्ण आशा है कि आप महानुभावों व दानी सज्जनों का सहयोग हमेशा से भी ज्यादा मिलता रहेगा।

जगननाथ
प्रधान ट्रस्ट

ओंकारनाथ
मन्त्री ट्रस्ट

कूचा ब्रजनाथ डिस्पैन्सरी को वार्षिक दान देनेवालों की सूची

मैसर्स देहली क्लोथ मिल्स लि०	२५०)
,, गनेश फलोर मिल्स लि०	२५०)
,, जे० एन० सिंह एंड कम्पनी	२५०)
,, युनिवरसल रेडियो कम्पनी	१०१)
श्रीमती सीताराम खन्ना	१००)
सेठ रामलाल खेमका	५१)
मैसर्स गनपत राय किशन गोपाल	५१)
श्री मोहनलाल न्यू फरैंड एंड कम्पनी	५१)
मैसर्स एलायंस इलेकट्रिक एंड रेडियोकं०	५१)
,, निहालसिंह नौरंग राय	५१)
,, भगवान दास तीरथ राम	५१)
,, मनीलाल रामचरन	५०)
,, जानकीदास बनारसी दास	५०)
श्री रामचन्द साढ़ी वाले	३१)
मैसर्स हरनारायन गोपीनाथ	३०)
,, जे० सी० खन्ना	२५)
मैसर्स पानियर कैमिकल कम्पनी	२५)
,, द्वारका प्रसाद किशन प्रसाद	२५)
श्री बनसीधर कपूर	२५)
मैसर्स एस० एम० रफी एंड कम्पनी	२५)
,, पी० सी० एम० इंडिया कम्पनी	२५)
श्री सम्भू सरूप	२५)
मैसर्स धूमसेन शामलाल	२५)
श्री नियादरमल गुप्ता	२४)
ला० रामप्रसाद सर्राफा	२१)
मैसर्स प्रयाग आईस फैक्ट्री	२१)

श्री देशराज स्टैंडर्ड टाईप फौंड्री	१५)
मैसर्स भारत मोटर ट्रांसपोर्ट कम्पनी	२५)
,, कन्हैयालाल रतनलाल	१२)
,, रामचन्द कूड़ेमल	१२)
,, जादोराय माधोराय	१२)
,, मुकुन्दलाल हीरालाल	१२)
मैसर्स बिहारीलाल प्यारेलाल	१२,
,, इन्द्रमोहन वैरी	१२)
मैसर्स हरनारायन गोकलचन्द	११)
,, विश्वेस्वरनाथ शामसुन्दर	११)
,, अशर्फीलाल किदारनाथ	११)
,, ए० वर्रा एंड कम्पनी	११)
श्रीमती कलावतीदेवी	११)
श्री ईश्वरदास	११)
,, त्रिलोकीनाथ	१०)
,, देवकीनन्दन जैन	१०)
श्रीमती निक्कोदेवी	६)
श्री राम जी लाल	६)
मैसर्स ललित एंड कम्पनी	५)
,, ईन्टर नेशनल कैमिकल कम्पनी	५)
,, गनेशदास ऐण्ड सन्स	५)
पं० किशनचन्द	५)
श्री धनराज जैन	५)
मैसर्स देवीराम दुर्गाप्रसाद	५)
श्रीमती सावित्री देवी	२)
श्री राजनारायन	२)
	१६१८)

कूचा ब्रज नाथ डिस्पैन्सरी को मासिक चन्दा देनेवालों की सूची

११)	
मैसर्स राजहंस प्रेस सदर बाजार	१३२)
१७)	
राय साहब ला० लक्ष्मीनारायण ट्रस्ट	१२०)
मैसर्स प्रयाग आईस फेक्टरी	११०)
५)	
श्री सुलतान अहमद जापान वाले	५)
मैसर्स जयंद प्रेस	६०)
,, छोटेलाल मोहनलाल	६०)
श्री रामनाथ मेहता	६०)
चौ० भगवानदास दुर्गाप्रसाद	६०)
३)	
मैसर्स गुप्ता एंड कम्पनी	३६)
श्री धनीचन्द वाहिल	३६)
मैसर्स बुधसेन विशम्भरनाथ	२४)
२)	
श्रीमती राय साहब चौ० उमरावसिंह	२०)
मैसर्स बी. एम. मेहरा एन्ड कम्पनी	२४)
,, दैनिक तेज	२४)
श्री ब्रह्मानन्द वैरी	२४)
,, पारसदास जैन	२४)
,, धूमीमल	२४)
,, नेमीचन्द जैन	२४)
,, कुन्दनलाल	२४)
,, शानुराम	२०)
,, प्यारेलाल जैन	२२)
मैसर्स रूपबसन्त ब्रादर्स	२४)
श्री नानकचन्द	२०)
मैसर्स विलायतीराम जैश्रीराम	२४)
श्री विशम्भरनाथ कपूर	२४)
मैसर्स अजुध्याप्रसाद विशम्भरनाथ	२४)
धर्मपत्नी ला० हरध्यानसिंह	२०)
श्री जगन्नाथ बलूजा	२४)
मैसर्स बेनामी कम्पनी	२
श्री रूपनरायन मेहरा	२४)
,, महेशप्रसाद	२०)
,, बृजनारायन सेठ	२६)
डा० मदनलाल पासी	२४)
श्री एन. चकूवर्ती	२६)
,; आर. के. दास जैन	२०)
मैसर्स शंकरदास, देवकीनन्दन	२६)
श्री चरतसिंह	२६)
,, रामनाथ रेशम वाले	२२)
"तिरखाराम दुधवाले	२४)
मैसर्स बालाप्रसाद, बालकिशनदास	२४)
श्री लक्ष्मीनारायन	४०)
,, हनुमानप्रसाद	२४)
श्रीमती घनी चन्द बहल	२४)
श्री श्यामसुन्दरलाल	२)
मैसर्स मिट्ठनलाल गौरीशंकर	२४)
,, नन्दलाल हरनारायन	२४)
१)	
श्री रामसरूप खन्ना	१४)
,, रामचन्द्र	१४)
मैसर्स रामसरनदास श्री किशनदास	११)
,, दीनदयाल मुरारीलाल	१४)
श्री आत्मप्रकाश साबुन वाले	२)
मैसर्स रंगीलाल ताराचन्द	२०)
,, जे. बी. मंगाराम	११)
श्री राधेमोहन टंडन	१३)

ला० शम्भू सरूप	१२)
,, रामनाथ गर्ग	१२)
,, जगननाथ कपूर	१२
,, बद्रीदास	१३)
मैसर्स गोकलचन्द एन्ड कम्पनी	१०)
,, बिशनसरूप जगननाथ	१२)
सेठ तुलसीराम	६)
ला० मोहनलाल	१४)
मैसर्स अजुध्या प्रसाद चन्द्राकरन	१२)
,, लछमीनारायन घड़ी वाले	१२)
श्री बालमुकन्द आहुजा	११)
मैसर्स गिरवरलाल, बैजनाथ	१०)
श्री अमरनाथ रेशम वाले	११)
मैसर्स नन्दुमल पुरशोत्तम दास	१४)
श्री राधाकिशन खन्ना	१४)
पं० मदनमोहन	१३)
श्री मदनगोपाल टण्डन	१३)
,, प्रीतमचन्द	१२)
,, रामकुमार वकील	१२)
मैसर्स मुखामल गोकलचन्द	१४)
,, भगवानदास दौलतराम	१२)
,, रामसरूप अमर सरूप	१५)
श्री हरनामदास वकील	१२)
,, बालाप्रसाद	१३)
रा० सा० श्रीराम बार-एट-लौ	११)
श्री बुलाकीदास	१२)
मैसर्स सांवलदास छोटेलाल	१८)
श्री बृजमोहनलाल	१२)
वैद्य केशो प्रसाद अत्रे	१३)
श्री शेखरचन्द जैन	६)
मास्टर शिवचरनदास	१३)
श्री लछमीनारायन	१२)
मास्टर शामजस राय	७)
श्री स्वामी सरन सेठ	१२)
,, आर. एन. कुकरेजा	१२)
,, कुन्दनलाल सिंगल	४)
मैसर्स राधेमोहन, बृजमोहन	१८)
बा० श्रीदत्त गुप्ता	१३)
श्री चिरन्जीलाल	१)
,, जगदीशचन्द्र	३)
,, अमोलक राम	२)
,, डोरीलाल	२)
,, मंगलदास	१२)
मैसर्स सांवलदास दीनानाथ	१६)
चौ० हिम्मतसिंह	१२)
मैसर्स काशीराम देवकीनन्दन	६)
चौ० रामदास ओंप्रकाश	१२)
श्री शानूराम	८)
मैसर्स, उजागरमल खानचन्द	११)
श्री कर्मचन्द	१२)
,, काश्मीरीलाल	१२)
॥)	
श्री गुरुदत्ता राम	६)
,, गोपीनाथ अमन	८)
चौ० उमराव सिंह	४॥)
मैसर्स हरदेव सहाय मुरलीधर	६
श्री प्रभु शंकर	५॥)
,, बाबू लाल वर्मा	५)
,, मोहन लाल मेहरोत्रा	६)
मैसर्स सूरज प्रसाद घमण्डी लाल	६)
,, शिब्बन लाल केदार नाथ	६)
श्री जगत प्रकाश	६)
पं० अमर नाथ गौड़	३)
डा० रामजी दास भटनागर	६॥)

श्री मुकुन्द बिहारी लाल	३)
,, लक्ष्मी चन्द	६॥)
,, बैज नाथ	३)
	।)
,, सत्य चरन	३)
,, रतन लाल खन्ना	३॥)
,, मिट्ठन लाल	३)
,, सुलतान चन्द	४)
श्री भगवान दास	३)
मैसर्स भगवान दास बनवारी लाल	४।)
श्री घनश्याम दास	३)
,, ओम् प्रकाश	३)
,, गोपाल नारायण	२)
,, ओम् प्रकाश गुप्ता	१।)
,, बांके लाल	॥।)
जोड़	२२९६)

बरवाला डिस्पेन्सरी को दान देने वालों की सूची

चौ० मनसा राम	२०)
पं० मौजी राम	१)
चौ० रामचन्द्र	१५)
पं० दलपत सिंह	१)
चौ० नेकी सिंह रिसाल सिंह	१)
,, राम कला S/O सोहन	१)
,, शिब्बन S/O गोपाल सिंह	१)
,, गोरधन सिंह	२)
,, दलीप सिंह	१)
श्री प्रहलाद लुहार	१)
चौ० खान चन्द	१)
पं० बदलू राम	१)
चौ० तिरथी सिंह	१)
पण्डितरूपचन्द	१)
बरवाला ग्राम वासियों की तरफ से मछलियों के	१६०)
अनाज की बिक्री से	४२६)
	५८६)

ग्राम बरवाला डिस्पेंसरी को वार्षिक अनाज देने वालों की सूचीः—

हर नाम के आगे दी हुई मात्रा सेरों को प्रकट करती हैः—

चौ० छितर सिंह मेम्बर पंचायत ४०, चौ० गोरधन सिंह रघुवीर सिंह नम्बरदार ४०, चौ० हरीसिंह ४०, चा० फतह सिंह ३०, पं० कुतर सिंह ४०, चौ० भीकू राम ५०, ओं प्रकाश ४०, चौ० नेकी सिंह ४०, रिसाल सिंह २०, चौ० बहराम सिंह भीम सिंह २०, चौ० नौनद सिंह जीत सिंह २०, चौ० दीवान सिंह ५, चौ० सोभा राम २०, पं० दीप चन्द रूपचन्द २०, चौ० मान सिंह २०, चौ० राम नाथ २०, चौ० धर्मासिंह २५, चौ० सुदन सिंह २०, चौ० चेत राम ३०, चौ७ भीम सिंह २०, चौ० भगवाना १५, चौ० हुक्म सिंह पाल सिंह १०, चौ० दलीप सिंह १५, पं० भीम सिंह २०, श्रीमति चौ० देश राम १०, श्रीमति चौ० गोधू सिंह ५, चौ० केवल सिंह १५, चौ० पृथिवी सिंह १०, चौ० नवल सिंह २०, चौ० मेहर सिंह २०, चौ० भूपन सिंह १०, चौ० श्रीचन्द ४०, चौ० भरत सिंह ४०, चौ० भीम सिंह ३०, चौ० जीवन सिंह ४०, चौ० राम सरूप ४०, चौ० तारा चन्द ५, पं० गोरधन सिंह १५, चौ० भगवान सिंह ४०, पण्डित घीसू राम २०; चौ० दीपन सिंह १५, चौ० भगवाना सिंह २०, चौ० नारायण सिंह १०, पण्डित सुरजन सिंह २०, पण्डित कन्हैया लाल १०, चौ० चन्दन सिंह ४०।

करोल बाग डिस्पैन्सरी को मासिक चन्दा देने वालों की सूची

५)	
श्री सत्य देव प्रकाश	५०)
२)	
,, आई० डी० माथुर	४
मैसर्स नानक चन्द पूरन चन्द	२०)
सरदार अवतार सिंह	१०)
श्री श्याम सुन्दर गुप्ता	१६)
,, मति रानी देवी	२२)
,, मति सरस्वती देवी	१६॥)
,, प्यारे लाल सेठी	१०)
,, दीवान कुन्दन लाल वकील	१२)
,, पी० डी० चावला	२४)
,, सी० एल० कुमार	२२)
१)	
,, रूप लाल	१२)
सरदार लकसर सिंह	१२)
श्री कंवल सिंह जैन	११)
,, कुन्दन लाल वकील	१२)
मैसर्स गूजर मल किशन चन्द	१३)
श्री पी० आर० वरुण	१२)
सरदार दलजीत सिंह	१२)
श्री गोपाल दास महाजन	६)
,, सुख देव सहाय	१२)
,, राम दास	१२)
पण्डित रामजी दास प्रिंसिपल	१२)
श्री शम्भू नाथ	१२
,, त्रिलोक चन्द गुप्ता	११)
,, अमर नाथ	११)
सरदार मन मोहन सिंह	८)
श्री डी० वी० खोसला	१२)
श्री प्यारे लाल	११)
,, सीता राम	११)
,, रमेश कुमार	१२)
श्री ब्रज नारायण	१२)
सरदार दलजीत सिंह	१२)
,, दीनान चन्द	१२)
श्री नरेन्द्र नाथ वीरमानी	५)
,, महाराज किशन	४)
,, जगदीश राय	४)
,, शान्ति सरूप	१)
,, राम रखकी सोनी	१)
॥)	
,, बल राम	६)
,, प्यारे लाल	५)
,, महेर चन्द	६)
,, हरिश्चन्द दुग्गल	६)
पण्डित भारत सिंह	५॥)
मैसर्स पंजाब स्टेशनरी	६)
श्री मनसा राम	६)
,, हंसराज कपूर	६)
,, भजन लाल खन्ना	६)
,, देवी दयाल	२)
पण्डित रामेश्वर प्रसाद शास्त्री	६)
सरदार करतार सिंह	७)
श्री किशोरी लाल	५॥)
,, शत्रुघन शर्मा	२)
,, अमर नाथ आनन्द	६)
,, धर्म चन्द	६॥)
श्री कन्हैया लाल शिव दयाल	६)
,, मंगल सेन	४)
सरदार हरदत्त सिंह	५॥)
श्री वासु देव	१)
,, मैला राम	६)
,, साधु राम	६)

श्रीमती देवकी देवी	६)
श्री खीन चन्द	४॥)
,, एम० एन० झांगी	२)
,, गौरी शंकर	६)
,, कर्म चन्द	५॥)
,, गंगा किशन	१)
,, चम्मन लाल गजानन्द	४)
,, जे० एन० बैन्सल	॥)
,, दीना नाथ मलहोत्रा	६)
,, राम लाल	॥)
।)	
सरदार मंगल सिंह	३।)
श्री उमराव सिंह	३
,, सरन दास	३)
,, भन्द लाल शर्मा	२)
,, ठाकुर दास,	२)
,, धर्म दास सूरी	३)

पण्डित मूल राज	३।)
सरदार इन्द्र सिंह	२)
श्री सत्य पाल	३)
,, राम रतन भनोट	३)
,, जगन्नाथ	।)
श्री विजय आनन्द	३)
सरदार दयाल सिंह	१।)
श्री पम्मी	५।)
श्री मती रानी	१।)
श्री दयाल सिंह	३।)
,, प्यारे लाल अतरसेन	३)
,, डोगर सिंह	३)
,, दीन दयाल ठेकेदार	३)
सरदार हर भजन सिंह ठेकेदार	३)
	६८०।)

क्वींस रोड़ और जनाना डिस्पैन्सरी को मासिक चन्दा देने वालों की सूची

३०)	
ला० सावित्री प्रसाद	३६०)
५)	
ला० हरी लाल	६०)
श्रीमती आई० डी० सेठी	६०)
मैसर्स गुप्ता ओपटिकल स्टोर	६०)
,, हर चरन दास	६०)
,, मेघ राज ब्रादर्स	६०)
,, सरदारा मल नानक चन्द	४०)
३)	
मिसेज रघुवीर सिंह	३६)
२)	
मैसर्स श्रीराम दया राम	२४)
श्री श्रीगोपाल चावल वाले	२४)
,, दौलत राम नरूला	२४)

,, सेवा राम	२४)
श्रीमती चांद रानी (माता जी)	२४)
,, सूरज मल	२४)
,, राम प्यारी	२४)
मैसर्स कमल स्टोर	२४)
,, रतन लाल जय भगवान	२४)
श्रीमती काली चरन	२४)
श्री चुन्ना मल	२४)
मैसर्स सन्त राम किशन दयाल	२४)
श्रीमती इन्द्र	२४)
मैसर्स लछमी नारायण जवाहर लाल	२४)
श्री जयभगवान	१८)
श्रीमती सुशीला देवी	२०)
,, हर भजन कुमारी	४)

श्री अवतार सिंह	६)
श्रीमती बहादुर सिंह	४)
,, प्यारे लाल केशव	४)
	१॥)
पण्डित प्रेम शंकर	१८)
श्री विशन सरूप	१२)
	१)
,, मिट्टन लाल	१२)
पण्डित शिव प्रसाद	१२
श्रीमती शिब्बो मल	१२)
श्री बद्री प्रसाद	१२)
श्रीमती एस सी० बख्शी	२)
,, जे० कपूर	१२)
,, बाबू राम	१२)
श्री राम अ सरे	१२)
श्रीमती जे० जौसफ	१२)
,, जी सरीन	१२)
श्री बाबू किशन	१२)
श्री बनारसी दास	१२)
श्रीमती सत्याआनन्द सरूप	१२)
,, सूरज प्रकाश गुप्ता	१२)
पं० द्वारका प्रसाद	१२)
मैसर्स विश्वकर्मा वैंडिग वर्कस	१२)
श्रीमती ज्ञानचन्द	१२)
श्री नरेन्द्रकुमार	१२)
,, किशनदास गुप्ता	१२)
श्रीमती एस० बनारसीदास	१२)
श्री हरिकृष्ण चौधरी	१२)
पं० रामचन्द्र	१२)
श्रीमती रघुवीरसिंह सरीन	१२)
,, पारवती देवी	१२)
मैसर्स बाबूराम एंड सन्ज	१२)
श्री गिरधारीलाल	१२)
श्रीमती चन्द्रावती	१२
श्रीमती शीलादेवी	१२)
,, बसन्ती देवी	१२)
श्री प्रकाशनाथ शर्मा	१२)
,, कल्लूमल	१२)
श्रीमती लचमीदेवी	१२)
,, विद्यावती	१२)
श्री सुशीलकुमार	१२)
श्रीमती लाल देवी	१२)
,, रामप्यारी	१२)
श्री जुगलकिशोर टण्डन	१२)
श्रीमती आर० दयाल	१२)
बेबी फतहचन्द	१२)
श्री लाहौरीमल बजाज	१२)
,, रामगोपाल दूधवाले	१२)
श्रीमती जयवन्ती	१२)
,, धन्नोदेवी	१)
श्री ब्रजबिहारीलाल	१२)
श्रीमती अब्दुल सत्तार	१)
श्री चन्डीप्रसाद	६)
,, सुखदेव	६)
श्रीमती सत्यप्रकाश	५)
,, कृष्णादेवी	५)
,, देवकीरानी	४)
,, एच० पी० मुकर्जी	३)
,, अंगूरीबाला	३)
श्री राजेन्द्रकुमार	१२)
मैसर्स श्री राम बाबू राम	२)
श्रीमती केशोराय कौशिक	२)
बेबी अश्वनी कुमार	२)
॥)	
श्री शिबचरन शर्मा	६)
श्रीमती प्रीतमचन्द	६)
मैसर्स दयाराम रामचन्द्र	६)
	१७४७)

२३ वर्ष की प्रगति

वर्ष	कुल रोगियों की संख्या	दैनिक औसत	वार्षिक व्यय
१९२८-२९	१६,०९४	४४	१७८८=)
१९३०	३०,३७६	७	२६०४)॥
१९३१	३५,५२७	९	२०८९॥)॥
१९३२	३६,३७८	१०	१९०२॥≡)॥
१९३३	४९८०७	१३६	२३२८।।।)॥
१९३४	८०,७४९	३०५	३३६७।≡)॥
१९३५	१५१५०९	४२६	५४०६≡)।।।
१९३६	१५४०९३	४५०	६५५९।।।≡)।।।
१९३७	१७७९८७	४८६	६१६२।=)
१९३८	२२७७४८	६००	६०५६–)।
१९३९	२७६०५२	७५५	८५८१=॥
१९४०	२९९९३८	८५४	१०५५३।।।≡)॥
१९४१	३२२०१८	८८०	१०९६२≡)॥
१९२२	३०१५८९	८२६	१३४१३।।=)
१९४३	३९३५५६	८१३	१५४९८।≡)॥
१९४४	२५८०५७	७३१	१५४२२।≡)
१९४५	२५९०८९	७३७	२४३५९।)॥
१९४६	२७६८८३	७३३	१४९३४।।=)।
१९४७	२५७३२२	७०९	१८५६६)।
१९४८	३२२४४१	८७८	२५१२८।=)
१९४९	३२६५८५	८९५	२५२९९।।=)॥
१९५०	३२७७६५	८९८	२५३३७।।=)॥
१९५१	३०२६६२	८२८	२३४२९।।)॥
	४७८७०२५		४५९८०१=)॥

डा० युद्धवीर सिंह होमियोपैथिक चैरिटेबिल ट्रस्ट के सभासद

ला० जगन्नाथ जी रईस प्रधान, मि० आर० सी० टण्डन इन्जीनियर, ला० औंकारनाथ मन्त्री, डा० युद्धवीरसिंह चीफ मेडिकल आफीसर, रा० सा० ला० श्री राम बार० एट० ला०, रा० सा० ला० गुरुप्रसाद कपूर, श्रीयुत जयचन्द्र खन्ना, बी० काम० ला० सावित्री प्रसाद, एम. ए. पी. सी. एस., सेट रामलाल खेमका, रा० सा सेठ-गिरधारी लाल, ला० राजनारायण खन्ना, सेठ नौरंग राय, ला० हंसराज गुप्ता, ला० देशराज चौधरी, बा० नन्द किशोर खन्ना, ला० जुगल किशोर खन्ना वकील, ला० सुरेन्द्र नाथ जौहर, म० कृष्णचन्द, ला० लक्ष्मीचन्द ठेकेदार, म० सत्यपाल खां व० शेख हबीबुल रहमान, ला० ब्रजनारायण सेठ, बाबा विचित्तर सिंह, ला० चरतसिंह जी एम० ए०, श्रीमती राजरानी, ला० रामचन्द्र मार्जी वाले, बा० ईश्वर दयाल ।

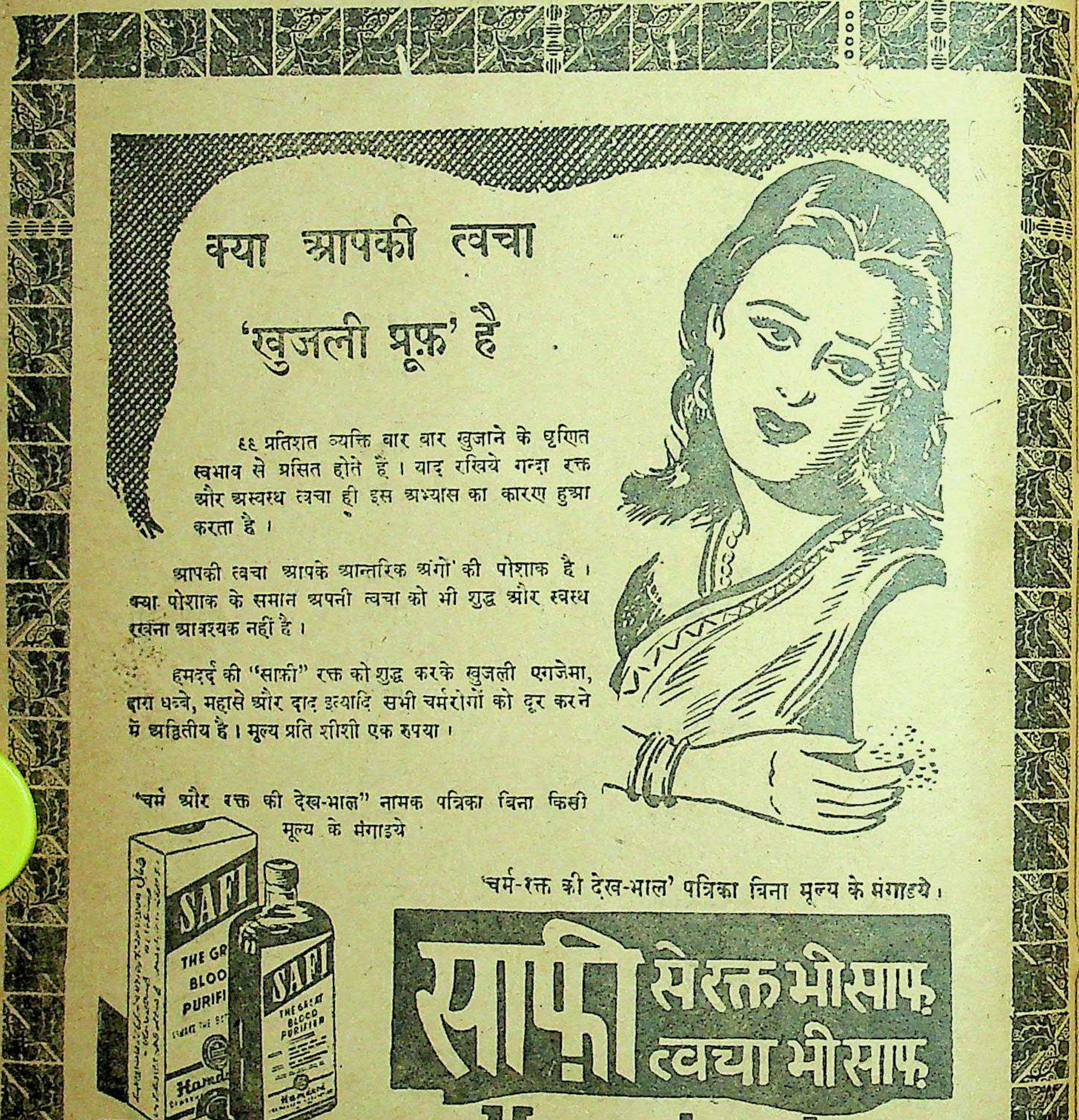

क्या आपकी त्वचा 'खुजली प्रूफ़' है

९९ प्रतिशत व्यक्ति बार बार खुजाने के घृणित स्वभाव से ग्रसित होते हैं। याद रखिये गन्दा रक्त और अस्वस्थ त्वचा ही इस अभ्यास का कारण हुआ करता है।

आपकी त्वचा आपके आन्तरिक अंगों की पोशाक है। क्या पोशाक के समान अपनी त्वचा को भी शुद्ध और स्वस्थ रखना आवश्यक नहीं है।

हमदर्द की "साफ़ी" रक्त को शुद्ध करके खुजली एगजेमा, दाग धब्बे, महासे और दाद इत्यादि सभी चर्मरोगों को दूर करने में अद्वितीय है। मूल्य प्रति शीशी एक रुपया।

"चर्म और रक्त की देख-भाल" नामक पत्रिका बिना किसी मूल्य के मंगाइये

'चर्म-रक्त की देख-भाल' पत्रिका बिना मूल्य के मंगाइये।

साफ़ी से रक्त भी साफ़ त्वचा भी साफ़

हर जगा मिलती है

Hamdard

THE CREATORS OF FAMOUS HAMDARD OINTMENT

हमदर्द दवाखाना लेबोरेटोरीज़ देहली

TOPS ALL *Drinks!*

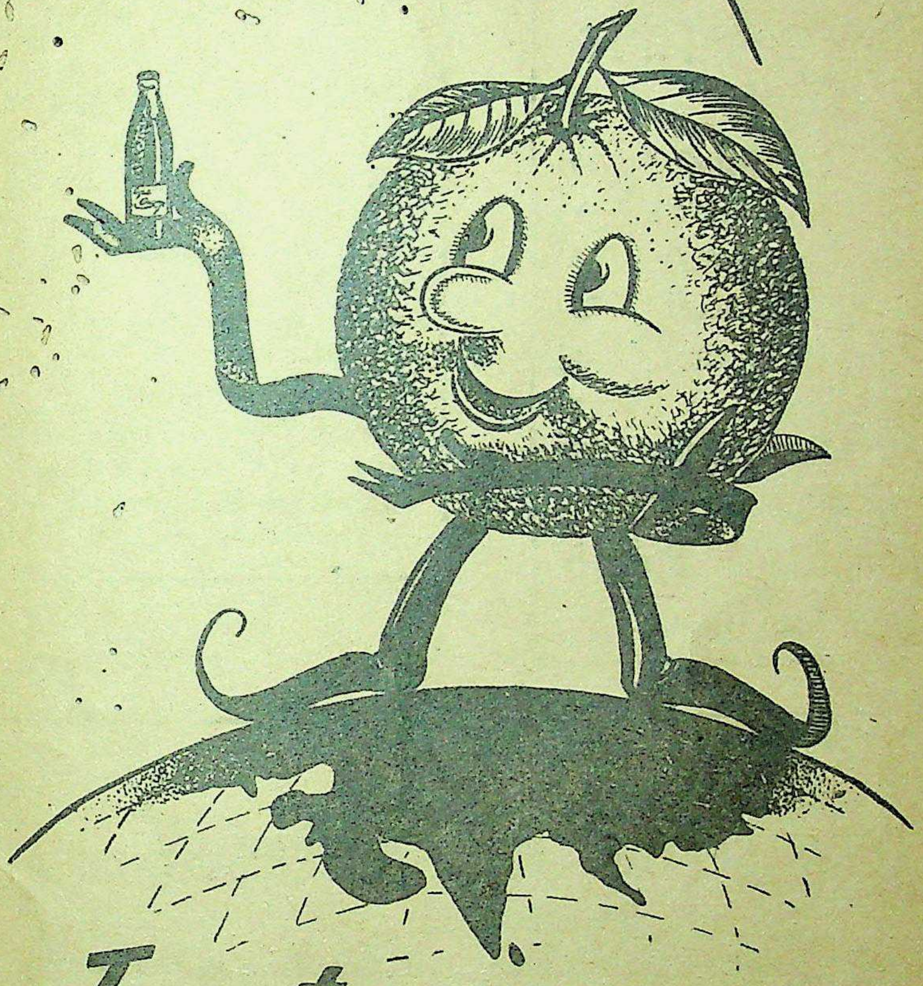

Tepto Orange

ICE COLD FRUIT JUICE

(SWEETENED PURELY WITH SUGAR)

TEPTLITZ AEREATED WATER FACTORY

DELHI. PHONE 5796

काउन्ट मैटी की

असल

इलैक्ट्रो होमियोपैथिक

दवायें

गोलीयां	छोटी शीशी	१।।)
गोलियां	बड़ी शीशी	३)
बिजलियां	फी शीशी	३।।)
मरहम	फी शीशी	३।।)
अक्वा परला पील	फी शीशी	३।।)
हिन्दी की गाइड		।।)

इटली से आया हुआ ताजा स्टाक

थोक खरीदारों को कमीशन

होमियोपैथिक फ्री डिस्पैंसरी

चाँदनी चौक, दिल्ली—६

COUNT MATTEI'S

ORIGINAL

ELECTRO HOMŒOPATHIC

MEDICINES

Globules	Small Tube	1-8-0
Globules	Large	3-0-0
Electricities	Per phial	3-8-0
Ointments	Per pot	3-8-0
Aq. per la pele	Per phial	3-8-0
Guide (Hindi)		0-8-0

Fresh and big Stock

Directly Imported from Italy

Discount to Wholesale Buyers.

HOMOEOPATHIC FREE DISPENSARY

Chandni Chowk, DELHI 6.

Telephone **5803.**

Sales Department

HOMOEOPATHIC FREE DISPENSARY

Stockists of

Homoeopathic, Electro-Homoeopathic, S. B. Specific and Biochemic Medicines, Sundries, Books & Boericke and Tafel's original Packings etc.

This Sales Deptt. has been for last 22 years supplying Genuine and Reliable medicines to Homoeopaths all over India. It is run by "Dr. Yudh Vir Singh Homoeopathic Charitable Trust" and its entire profits are devoted towards the maintenance of **SIX FREE DISPENSARIES** in different parts of Delhi Province.

In buying from here you will not only be sure of the reasonable rates, genuineness and reliability of goods but also have the credit of extending your help to an institution that has been serving the cause of Homoeopathy for last 22 years.

Price list on application to :

Hony. Secretary Sales Deptt.

Homoeopathic Free Dispensary, Chandni Chowk, DELHI.

शीशे व प्लाईवुड

के

हिन्दुस्तान में सब से बड़े व्यापारी

बाबा ग्लास कम्पनी

फतहपुरी, दिल्ली

शाखाएं :—लाहौर—अमृतसर—बम्बई—कानपुर—करांची—कलकत्ता

मदरास—कालीकट—टाटानगर—आदि आदि ।

हरनारायण गोपीनाथ के

जग प्रसिद्ध शेर मार्का

* सब प्रकार के स्वादिष्ट अचार
* सब प्रकार के मुरब्बे
* सूखे मुरब्बे (क्रस्ट्रलाइज्ड फ्रूट)
* अनेक प्रकार की चटनी
* फलों के शर्बत
* शर्बत नौ बहार
* रामबाण चूर्ण
* सुगन्धित फूलों के केश तेल
* मोहनी आंवला केश तेल
* शुद्ध सुगन्धित गुलाब जल

प्रत्येक वस्तु, विशेषज्ञों की देख-रेख में कुशल निर्माताओं द्वारा निर्मित

प्रसन्नता और सन्तुष्टि निश्चित है ।

हरनारायण गोपीनाथ (स्थापित १८६०)

खारी बावली, दिल्ली व कनाट प्लेस, नई दिल्ली ।

होमियोपैथिक सन्देश जून १९५२ रजिस्टर्ड नं० डी १२३

विशुद्ध ! लाभदायक !
सस्ता ! और विटामिन—युक्त

RATH
VANASPATI

रथ छाप याद रखिये । हमेशा यही ख़रीदिए । यह विशुद्ध शक्तिप्रद वनस्पति डी० सी० एम० के और माल की भांति सदैव उत्तम होता है ।

५ और १० पौंड के टिनों में

रथ
वनस्पती

भोजनालय !
बड़े पैमाने पर इस्तेमाल करने के लिए हम डी० सी० एम० के पनघट व पालकी वनस्पति की जोरदार सिफ़ारिश करते हैं । बड़े टीनों में मिलता है ।

दी डी० सी० एम० वनस्पति मेन्यूफेक्चरिंग वर्क्स, देहली ।

प्रोप्राइटर—दी देहली क्लाथ एन्ड जनरल मिल्स कं० लिमिटेड, देहली

हमेशा मोदी की
५०१ मार्का
बनियान व जुराब
प्रयोग में लावें

दी मोदी होज़री वर्क्स
मोदी नगर, (यू० पी०)

दिल्ली एजेन्ट, मोदी इन्डस्ट्रीज़ ३० फैजबाजार दिल्ली ।

हकीम जकी अहमद खां के प्रबन्ध से जैय्यद प्रेस दिल्ली में मुद्रित तथा होमियोपैथिक सन्देश कार्यालय, कूचा ब्रजनाथ, चांदनी चौक दिल्ली से प्रकाशित ।

गुरुकुल-पत्रिका, गुरुकुल कांगड़ी.

46

समः समे शमयति

होमियोपैथिक सन्देश

प्रधान सम्पादक—डा० युद्धवीर सिंह

वर्ष १] दिल्ली, जुलाई १९४९ [संख्या ११

❀ ❀ ❀ गुरुवाणी ❀ ❀ ❀

"...इस प्रकार हमारे चिकित्सकों ने एक स्थूल रोग तत्व की कल्पना कर ली और उसको बाहर निकालने के लिये या तो कै कराने वाली, पसीना लाने वाली, दस्त लाने वाली आदि दवायें प्रयोग कीं या फस्त खोलकर, जोकें लगाकर खून बहाया।

पर ये सब व्यर्थ के स्वप्न थे। बेबुनियाद अटकलें और कल्पित अनुमान थे जो चिकित्सा की आसानी के लिये चतुराईपूर्वक घड़ लिये गये थे क्योंकि यह मान लिया गया गया था कि रोगों को दूर करने का सर्व सरल उपाय स्थूल रोग तत्व को दूर करना ही हो सकता है।

लेकिन रोगों की असल प्रकृति और उनकी चिकित्सा न तो ऐसी कल्पित धारणाओं और न चिकित्सकों की सहूलीयतों के अनुसार अपने आपको अदल बदल करेगी। ऐसी मूर्खतापूर्ण और निराधार कल्पनाओं को प्रसन्न करने के लिये बीमारियें अपना सच्चा स्वरूप नहीं बदल लेगी।

बीमारी तो वास्तव में आत्मा सदृश्य भावमय जीवन तत्व की चेतनाओं व क्रियाओं में भावनारूप सूक्ष्मातिसूक्ष्म शक्तिमय अव्यवस्था है या यूं कहिये कि बास्वस्था में सूक्ष्म अव्यवस्था है अर्थात् प्रकृति में विकृति का नाम रोग है!

—हैनीमैन

दमे का होमियोपैथिक इलाज

—डा० जानरेक्का

दमे की होमियोपैथिक चिकित्सा में अमरीका में शायद डा० कैन्ट और उनके बाद डा० राबर्ट्स को सबसे अधिक तजुर्बा था और सबसे अधिक ही सफलता भी मिली। इन दोनों का मत है कि दमा एक साइकोटिक (Sycotic) रोग है अर्थात् यह रोग उस दोष से उत्पन्न हुआ है जिसे होमियोपैथी में साइकोसिस या प्रमेह के विष से उत्पन्न दोष कहते हैं। कैन्ट के "लैसर राइटिंग्स" के पृष्ठ १६८—१६९ पर लिखा है:—"......जब से मुझे यह मालूम हुआ है कि दमा साइकोटिक अर्थात् प्रमेह-विष-दोष से उत्पन्न बिमारी है और जब से मैंने इस आधार पर प्रमेह-विष-दोष नाशक (Antisycotic) दवाओं से दमे के रोगियों की चिकित्सा करना शुरू की है मैं अनेक रोगियों को अच्छा करने तथा आराम पहुँचाने में समर्थ हुआ हूं। इस प्रकार साइलीसिया दमा दूर करने की एक उत्कृष्ट औषधि सिद्ध हुई है और यह दवा कितनी जल्दी रोग को निकाल फेंकती है यह देख कर आप स्वयं आश्चर्य करेंगे।

उस ही पुस्तक में १६९ पृष्ठ पर फिर लिखा है:--"यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से दमे के रोगी के प्रकट प्रमुख लक्षण इपिकाक स्पञ्जिया अथवा आर्सेनिक से सर्वथा मिल जाते हैं फिर भी ये दवायें रोग को दूर नहीं करती हैं। ये केवल कुछ कष्टों का उपशम करती हैं, अस्थायी राहत पहुंचाती हैं, कुछ लक्षणों को दबा देती हैं पर दमा ठीक नहीं होता। रोगी निरोग नहीं होता। आर्सेनिक तो सैंकड़ा पीछे ६० रोगियों में निर्दिष्ट होता है और ब्राइयोनिया, इपिकाक, स्पञ्जिया या कार्बोवेज भी बहुत से रोगियों की उस समय लक्षणानुसार ठीक ठीक निर्दिष्ट दवा होती है और ये आश्चर्यजनक रूप से कष्ट को दूर करती और रोगी को आराम पहुंचाती हैं परन्तु जड़से रोग को ये कदापि नहीं खो पातीं। ......यदि दमा पैतृक है और बढ़ोतरी की उमर में होता है तो लक्षण उपस्थित होने पर नेट्रमसल्फ रोग को जड़ से आराम करने में अत्यन्त उपयोगी साबित हुई है। और इसके लक्षण अधिकांश रोगियों में मिलेंगे। ......यदि किसी बच्चे को दमा हुआ है तो आप सबसे पहले नेट्रमसल्फ ही दीजिये।......"

साइकोसिस के लक्षणों पर रिकार्डर के, ४१ के जुलाई अंक में डा. जे. एच. एलन ने "पुराने बीजाणु दोष" शीर्षक से सुन्दर लेख लिखा है।

अच्छा अब ज़रा देखिये डा. राबर्ट्स

की इस विषय में क्या सम्मति है। दिसंबर १९२१ के 'रिकार्डर' में पृष्ठ ८८२ पर वे लिखते हैं:—

"प्रमेह-विष-दोष-युक्त रोगियों में हीं प्राय: दमे के लक्षण प्रकट होते हैं।" उनका कहना है कि यदि हम दमे की चिकित्सा में सफल होना चाहते हैं तो हमें रोगी की परीक्षा करने और लक्षण संग्रह करने में बहुत ही सावाधान होना चाहिये। खास तौर से पूर्व, वर्त्तमान इतिहास व ह्रास वृद्धि और हरेक वह चीज जो कि स्वयं रोगी से संबंध रखती है हमें ध्यानपूर्वक नोट करनी चाहिये और फिर इन संग्रहित लक्षणों का विश्लेषण करके रोगों के व्यापक लक्षण मालूम कर लेने जरूरी हैं क्योंकि इन्हीं के आधार पर हर एक रोगी की व्यक्तिगत विशेषतायें निर्धारित की जा सकती हैं जिन पर कि आप दवा का चुनाव करते हैं।

दमे की चिकित्सा करते समय और मुख्य २ बातें जो ध्यान में रखनी चाहियें इस प्रकार हैं—

क—केवल एक ही अकेली दवा देना

ख—चुनी हुई दवा को दुबारा देने में जल्दी न करना।

ग—दवा तब तक न बदलना चाहिये जब तक यह अच्छी तरह निश्चय न हो जाये कि बदलना जरूरी है।

ऐसा प्राय: होता है कि दवा देने के बाद जरा सा आराम पहुंचता है लेकिन थोड़े ही दिन बाद फिर रोगी को तेज दौरा हो जाता है। ऐसे समय रुकिये इन्तजार कीजिये, यदि आपको अपनी दवा के चुनाव के सम्बन्ध में निश्चय है कि यह चुनाव ठीक था तो कृपा कर रुकिये, दवा दुबारा न दीजिये। कभी २ दौरा एक हफ्ते तक चले और उसके बाद कम पड़े मगर आप इस अर्से में प्लेसीबो के अतिरिक्त कुछ न दें। बहुत करके रोगी ठीक हो जावेगा, दौरा समाप्त होगा और ६ से ८ सप्ताह तक ठीक रह कर शायद एक दौरा फिर हो। इस दफा भी आप रुकिये और इन्तजार कीजिये। अगर जल्दबाजी करके ऐसे अवसर पर आप दवा देकर गड़बड़ नहीं कर देंगे तो इस दफा दौरा खतम होने के बाद शायद कई महीनों के लिये रोगी रोगमुक्त हो जावेगा। डा० जार ने इस प्रकार अपने कई रोगी ठीक कर दिये।

नीचे मैं ९ रोगियों का विवरण दे रहा हूं, इन सब में ऊपर लिखी विधि से चिकित्सा नहीं की गई क्योंकि अपनी प्रेक्टिस के शुरु के दिनों में मुझे न तो इतना अनुभव ही था और न ज्ञान फिर भी इन से यह नतीजा अवश्य निकलता है कि दमा एक प्रमेह विष दोषजनक रोग है। इन रोगियों के वर्णन से यह भी प्रसिद्ध होता है कि दमे में नक्स, आर्सेनिक इपिकाक आदि दवाइयां इतनी उपयोगी सिद्ध नहीं हुईं, जितनी कि सफलता प्रमेह विष दोष नाशक साइलीसिया, थूजा, नेट्रमसल्फ, लैकेसिस और लाइकोपोडियम से प्राप्त हुई है। कालीकार्ब और ट्यु बर कुलिनम को यद्यपि मैंने अपने रोगियों पर तो नहीं बरता मगर निर्दिष्ट होने पर इनसे भी अच्छे फल प्राप्त होने की साक्षी उपस्थित है।

: १ :

३—१०—३२—श्रीमती वी. स: ३८ वर्ष, अति अनुभवशील, शीघ्र घबरा जाने वाली। भावनाओं व मानसिक कारणों से दमा, ठंडी हवा से सायंकाल व रात्रि को वृद्धि। नक्स २००। एक तेज दौरे के बाद काफी शान्ति हो गई

४—११—३२—एक मास बाद फिर एक तेज़ दौरा। नक्स १००० से काफी लाभ हुआ।

२३—६—३३—८ मास बाद कुछ मानसिक कष्ट पहुंचने पर दौरा फिर हुआ। नक्स ५०,००० दिया गया। इसके बाद दमे का कोई दौरा नहीं हुआ, लेकिन रोगी का स्वास्थ्य बहुत अच्छा नहीं रहा कुछ न कुछ गड़बड़ चलती रही जिसके लिये समय समय पर फास्फोरस, लैकेसिस आदि दवायें दी गईं।

: २ :

१८–८–३३ श्रीमती म. फ. ४० वर्ष। दमे का दौरा प्रातः ३ बजे। समुद्र पर अच्छी रहती है। पीछे पता लगा कि ऊन के प्रति वह बहुत अनुभवशील (Allergic) है। वह न्यूयार्क के ऊनी मुहल्लों में रहती थी और समुद्र के किनारे इस लिये ठीक रहती थी कि वहां ऊन नहीं होता था। अनाज, चावल आदि जिनमें स्टार्च ज्यादा होता है ऐसा भोजन करने से पेट फूल जाता है। खाने के बाद पेट का भारी हो जाना। दायां पांव ठण्डा दूसरा ठीक। कहती थी कि जब भी उसका दायां पांव ठण्डा होता है वह समझ जाती है कि दौरा होने वाला है। लाइको २००।

९–९–३३ गत सप्ताह दौरा पड़ा। दायां पांव ठण्डा नहीं है। गर्मी से आमतौर पर रोग बढ़ता है। खट्टी चीजें खाने की प्रबल इच्छा। हर वक्त भूख-सी लगी रहती है। सलफर १०००।

१६–९–३३ गत सप्ताह रोज रात को २ बजे से ३ बजे के बीच में दौरा पड़ता रहा। दौरे की आशंका से सोते हुए डरती थी। सो जाने के बाद तेज़ दौरा हो जाता था। और भी लक्षण थे पर लैकेसिस २०० दिया गया। इसकी एक खुराक देने के बाद १½ साल तक मुझे रोगी का कोई हाल नहीं मिला। जब फर्वरी ३५ में मेरे पास रोगिणी फिर आई तो उसने बताया कि लैकेसिस के बाद उसे ३ दिन सख्त दौरा रहा लेकिन उसके बाद दमा नहीं हुआ।

फर्वरी १९३५—कुछ पेट तथा अंतड़ियों की शिकायतें थीं और लक्षण सर्वथा लाइकोपोडियम से मिलते थे। २०० शक्ति की कुछ खुराकें और १००० की एक खुराक से उसे तुरन्त पूर्ण लाभ हुआ। लाइको लैकेसिस की पूरक अर्थात् कम्पलीमैन्टरी दवा है। ७ वर्ष तक फिर यह रोगिणी मुझे नहीं मिली और जब मिली तो बताया कि दमा तो उसे फिर हुआ ही नहीं।

: ३ :

मार्च १९४१—श्रीमती फ. प. ४५ वर्ष। दमे के दौरे। वर्षा तथा हिमपात में वृद्धि। <रात्रि। रोग वायुनालीभुजप्रदाह (Bronchitis) से आरंभ हुआ जो

उसे ३ वर्ष रहा। बरसाती मौसम में उसे काफी देर तक छाती में साँय-साँय होती थी। गर्म पानी में ३० नम्बर का नेट्रमसल्फ एक बड़ा चम्मच हर २ घंटे में दिया। तुरन्त आराम पहुंचा। उसके बाद से मेरा अनुभव हुआ है कि ३०xविचूर्ण की एक खुराक ही जबान के नीचे डाल देना ही पर्याप्त है उससे तुरन्त लाभ होता है।

जून १९४१—३ मास बाद रात को दमा उठा। वही नेट्रमसल्फ ३०। तुरन्त लाभ हुआ। और आज तक कोई दौरा नहीं हुआ।

: ४ :

अगस्त १९४२—बच्चा जौन ६ वर्ष। जब एक मास का था तब से १० मास की उम्र तक चेहरे व सिर पर तर एक्जीमा हुआ था। फिर वह सारे शरीर पर फैल गया था और कई प्रकार के मरहम लगाने से अच्छा हो गया था। १९३८ के जाड़ों में ३ दौरे दमे के हुए। एलोपैथिक इलाज रहा। १९३९ में दिन को दोपहर को दौरे हुए। ४२ में फिर हुए। दौरे में टहलता था और गोदी में टहलाया जाना चाहता था। ६ महीने की उम्र में डिप्थेरिया के लिए टीके लगे थे। १८ मास में काली खांसी का और ५ वर्ष की उम्र में चेचक का टीका लगा था।

जाड़े में दौरे दुपहर के समय और गोदी में घुमाये जाने की इच्छा। पर मैंने अगस्त' ४२ में आर्सेनिक २०० की एक खुराक दी।

सितम्बर ४२—मौसम बदल से नज़ला हुआ और गरम से सर्द मौसम होने के कारण नज़ला छाती पर आ गिरा। रात्रि को १½ बजे (संखिये का टाइम नोट कीजिये) श्वास कष्ट और शांय-शांय। आर्सेनिक १००० एक मात्रा। इसके बाद रोगी को बहुत लाभ हुआ।

अक्तूबर १९४२—सर्द मौसम के कारण नाक बन्द हो गई पर दमा नहीं हुआ।

नवम्बर १९४२—कोई दौरा नहीं पड़ा। गला व गर्दन पर सोते समय पसीना। प्रातःकाल आलकस—सैकलेक

मार्च १९४३—हल्का सा दौरा, आर्सेनिक १००० की दो खुराकों से तुरन्त दब गया।

अप्रैल १९४३—प्रकृति बहुत ठीक हो गई। बाहर हवा में नाक बहती है। एक रात जरा दौरा सा मालूम हुआ। रोज प्रातः खांसी – सैकलेक

मई १९४३—दमा कुछ वापिस आ रहा है। खांसी सिर्फ सुबह होती है। डा० वर्नेट ने लिखा है कि प्रातः कालीन खांसी चेचक टीके के कुपरिणाम स्वरूप होती है। और थूजा उसकी उपयुक्त दवा है। थूजा आर्सेनिक की पूरक है। २१ मई को थूजा २०० की एक खुराक दे डाली।

मई २८–१९४३—चेहरे, भुजाओं और छाती पर पित्ती के से धप्पड़ उछल आये। ज्वर नहीं था। रात को नाक रुक जाती थी <बरसाती मौसम।

अक्तूबर १९४३—प्रातः कालीन खांसी और नाक का रुकना जाता रहा। चार मास से दम के कोई चिन्ह नहीं दिखाई पड़े। पर हाल ही में कुछ दौरे हुए, अगस्त ४२ से अब तक ५½ पौंड वज़न बढ़ा।

फर्वरी, माघ १९४४—पीठ, पेट तथा अन्य अंगों पर एक्ज़मा।

मई ४४—एक साल से दमा ग़ायब है।

१९४७—दमा ग़ायब, नजले के लिये थूज़ा, साइलिसीया, नेट्रम सल्फ दिया गया।

: ५ :

सितम्बर १९४३—मिस सी, १२ वर्ष, कुछ समय से दमा, बिल्लियों के साथ या गांव में मुर्ग़ी के बच्चों के साथ खेलने से हो जाता है। पांव भींगने से जुकाम तुरन्त हो जाता है। बार-बार तालुमूल ग्रन्थियां सूज जाती हैं। पांव में पसीना आता है और पांव की खाल पर छिलके से उतरते रहते हैं।।

साइलिसीया १००० की एक खुराक ने अच्छा कर दिया और आज तक ठीक है।

: ६ :

३ मई १९४४—मिसेज़ म. ज. ४६ वर्ष रजोनिवृत्तिकाल का आरम्भ है। अपने एक उद्दण्डपुत्र के कारण बहुत ही निराश। जल्दी करने या परेशानी के बाद श्वास कष्ट। कच्चे फल खाने से जी मिचलाना। दो वर्ष पूर्व जुकाम बिगड़ जाने से तीसरे पहर दमे के दौरे होने लगे थे। इपीकाक २०० ने दो मास ठीक रखा।

३ जुलाई १९४४—दो केले खाने के बाद दौरा। बरसाती मौसम में श्वास कष्ट। स्टार्च आदि से वृद्धि। नेट्मसल्फ १०००—३ मास तक दौरा नहीं हुआ।

२१ अक्तूबर १९४४—लड़के के कारण बीमार हो जाती है। अच्छा होने में वही एक बड़ी बाधा है। दो दिन से दमा, बुखार, कभी गर्मी कभी सर्दी। आर्सेनिक २०० कोई लाभ नहीं। अगले ही दिन थूजा २०० तुरन्त लाभ। फिर रोगी नहीं आया आगे का हाल पता नहीं।

: ७ :

सितम्बर १९४४—मास्टर फ. इ. १३ वर्ष जीवन के प्रथम चार वर्षों में चेहरे तथा अन्य स्थानों पर एक्जीमा मलहम आदि से दबाया गया। जब चार वर्ष का था न्युमोनिया हुआ और उसके बाद दमे के दौरे होने लगे। दमे के बाद सिर में सर्दी जुकाम हो जाताहै। सिर या पांव भीग जाने से जुकाम हो जाता है। पांव में पसीना आता है पर पांव ठण्डे नहीं हैं दौरे में गर्मी लगती है और ओढ़ना फेंक देता है।

जब ७ वर्ष का था तो कान बहता था। वजन हमेशा कम रहा। २ वर्ष का था तब चेचक का टीका लगा। टायफायड का टीका भी तभी लगा और ५ वर्ष में डिप्थेरिया का। घी आदि व प्याज़ से नफरत। चीनी पसन्द है। कुछ दिन हुए उंगलियों पर मड्ढे थे।

आयोडीन लगाने से गायब हो गए। रसटाक्स का पौदा (Poison Ivy) का असर पर बड़ी जल्दी होता था। रीढ की हड्डी की मालिश आदि से वह अनुभव शीलता जाती रही।

केस की रिपर्टरी की गई १६ लक्षण लिए। केल्केरिया में १६ लक्षणों में से १३ लक्षण थे और कुल नम्बर २६ इस प्रकार आये :—

कैल्के का.	१३—२६
सल्फर.	१२—२६
साइलीसिया	९—१७
आर्स	९—१४
थूजा	७—१०
डल्का	५—१२
नेट. स.	४—७

कैल्क:—सबसे अव्वल और नेट. स. सब से अन्त में आया। परन्तु कैल्केरिया का शरीर निश्चय नहीं था इसलिए इसे छोड़ दिया। आज तो मैं अन्तिम होनेपर भी उसे नेट्रमसल्फ ही देता और दर असल आगे चल कर पूर्ण लाभ के लिये ये उसे दिया भी गया। पर उस समय तो उसे साइलीसिया १००० की एक खुराक दी गई और लगभग १ वर्ष तक इस ही पर उसे रखा। उसके दमे और आम हालत में बड़ी उन्नति हुई। लड़के ने सालभर में २६ पौंड वज़न बढ़ाया और ३ इंच लम्बा हो गया। उसे लगभग हर २ मास में एक खुराक साइलीसिया की दी जाती थी। और १००० से ऊंच-ऊंच जाते १०००००० तक ले गए। जून ४५ के बाद साइलीसिया ने उसे लाभ करना बन्द कर दिया।

१ अगस्त ४५—सल्फर १००० कोई लाभ नहीं।

१२ अगस्त ४५—दमा का तेज़ दौरा। माँ ने कहा कि रात को उसे खिड़कीयें बन्द करनी पड़ती हैं क्योंकि उस से रोग में वृद्धि होती है। हाल ही में उसने मछली खाई थी। और उसकी मां कहती थी कि पहले जब दौरा हुआ था तब भी उसने मछली खाई थी। यह पानी या जलीय प्रकृति का अच्छा उदाहरण है इस प्रकृति के मनुष्य पानी में रहने वाली या पानी के पास पैदा होने वाली कोई वस्तु नहीं खा सकते। जहां उन्होंने ऐसी कोई चीज खाई और उन्हें कोई-न-कोई कष्ट हुआ। मैंने उसे नेट्रमसल्फ २०० की एक खुराक दी, लाभ कुछ नहीं हुआ और उसके बाद कई महीने वह रोगी आया ही नहीं।

नवम्बर १९४५-नेट्रमसल्फ १००० की एक खुराक। ९ मास तक कोई कष्ट नहीं हुआ और नौ मास बाद एक बहुत हल्का दौरा हुआ।

अगस्त १९४६-नेट्रमसल्फ १०००० की एक मात्रा और आज तक कोई दौरा नहीं हुआ।

: ८ :

१२ अगस्त १९४६—श्रीमती म. ज. ७० वर्ष १८ मास से दमा। नज़ला कई वर्ष से। साल भर में ४० पौंड वज़न घट गया। दमे के साथ खांसी बहुत होती है। ज़ुकाम जल्दी ही लग जाता है। मिठाई व घी के तर खानों से रोग बढ़ता है। १८ मास

से प्रातः ३-४ बजे तक नींद नहीं आती। रोने को जी चाहता है। बरसाती मौसम में उसका कष्ट ३-४ बजे तड़के ही बढ़ जाता है। उसे कुछ राहत पहुंचाने को मैंने इपिकाक १००० की एक मात्रा इसलिये दी क्योंकि उसे कष्ट बहुत था खांसी तथा छाती में आवाज अधिक थी। रोगी के लक्षणों का अध्ययन करने तथा दवा चुनने का समय ही न था। वास्तव में मुझे तो इंजेक्शन लगाने के लिये बुलाया था क्योंकि एक धूनो जिससे पहले कुछ लाभ होता था देने से कुछ न बन सका था। मुझे उनकी इच्छा पूर्ण करनी पड़ी और १००० में १ हिस्सा एडरीनेलीन का मैंने एक इंजेकशन लगा डाला। मैं नही समझता इतनी हल्की एडरीनेलीन ने कोई आराम पहुंचाया। मेरी राय में जो उसे चैन पड़ी वह इपीकाक का ही फल था। मैंने उन्हें समझाया कि इंजेकशन से रोग न जायगा, मैं दवा दूंगा उससे वह ठीक हो जायगी। एक सप्ताह बाद मुझे फिर बुलाया गया लक्षण संग्रह किये और रिपर्टरी करने पर कोई ७-८ दवायें निकलीं।

आर्स; कार्बो, इपीकाक, पल्स और सल्फ में उस के लगभग सभी लक्षण मिल रहे थे लेकिन उनको मैंने अपने इस अनुभव के आधार पर कि उनसे केवल अस्थायी आराम पहुंचता है छोड़ दिया। नेट्रमसल्फ थूजा और साइलीसिया पर नजर दौड़ाई। नेट्रमसल्फ में कुछ मुख्य लक्षण नही थे। मसलन—चर्म रोग का दबाया जाना, देर से नींद आना, जुकाम जल्दी २ होना, थूजा में लेटने पर श्वास कष्ट, जुकाम लगना व दमे के साथ खांसी न थी। साइलीसिया में लगभग सब लक्षण थे इसलिये २८—८—४६ को साइलीसिया २०० दिया गया।

२ अक्टूबर १९४६—५ सप्ताह बाद पहले से काफी अच्छी थी। नींद अभी नहीं आती थी। सैकलेक।

३१ अकटूबर १९४६—साइलीसीया २०० देने के ६ सप्ताह बाद दमे के पहले टांग पर जो उद्भेद था और दब गया था उभर आया। टांग पर वरम हो गया पानी सा रिसने लगा, खाज अन्यथा ठीक थी और सोने भी लगी थी। होमियोपैथिक सिद्धान्त है कि जो दवा किसी रोग को अन्दर से बाहर ला सकती है वह उसे अच्छा भी कर सकती है इसलिये केवल सूगर आफ मिल्क (सेकलैक) दिया गया।

२९ नवम्बर १९४६— सायलीसीया की पहली मात्रा के लगभग २ मास बाद अब टांग प्रायः ठीक थी।

२७ दिसम्बर १९४६—बांई टाँग का नीचे का आधा हिस्सा लाल और सूज़ा हुआ। खुला जखम था और टखने के पास से पतला २ स्राव निकलता था। सायलीसीया २०० की एक मात्रा और दी गई। अर्थात् पहली खुराक के ४ मास बाद।

२४ जनवरी १९४७— रात को जरासा दमा उठा। टांग अच्छी है। सलफर २०० बीच में दे डाली। क्योंकि डा० क्लार्क ने लिखा है कि साइलीसीया देर लगावे तो सलफर दे डालो।

गुरुकुल-पत्रिका गुरुकुल कांगड़ी

२१ फरवरी १९४७—टाँग की सूजन जाती रही। टखने पर ऊपरी जंखम रह गया है। जिस पर खुन्ट है। दमा ठीक है कल रात एक हल्का दौरा हुआ था जिसका रोगी की सम्मति में कारण बरफ का तूफान था। साइलीसीया १.००० की एक खुराक दे दी।

१८ मार्च ४७—बांई टांग सूजी हुई, हल्की गुलाबी, कुछ स्राव और पीले खराँट। दमा नहीं है। टांग से पांव की की तरफ सूजन का आना अच्छा लक्षण—रोग का ऊपर से नीचे आना।

२ मई ४७—दमा बिलकुल नहीं पाँव अच्छा है। ठीक चल रहा है। साइलीसीयां चूंकि दबे हुए रोग को उभार लाई है इसलिये इसे बदलना सर्वथा भूल होती।

: ९ :

२ दिसम्बर ४६—बालक ३ बर्ष जुलाई ४६ से अब तक ६ मास में दमे के तीन दौरे हो चुके हैं। दौरा इस तरह शुरू होता है:—

पहले दिन प्रातः ही २०-२५ छींके आती हैं और नाक से पतला साफ पानी बहने लगता है। दूसरे दिन जुकाम जोर पकड़ जाता है। तीसरे दिन श्वास कष्ट।

दौरे के पहले बच्चा कुछ अनमना, उदास और अनुभव शील हो जाता है। दौरे में बच्चा पीला पड़ जाता है ज्वर होता है। छाती में बलगम हो जाता है। अब उसे खांसी है, श्वास कष्ट खूब है और छाती में काफी बलगम बोल रहा है। नेट्रम सल्फ १००० की एक खुराक। प्रायः हरेक बच्चा जिसे दमा है उसे नेट्रम सल्फ सब से पहले देनी चाहिए। यदि किसी और दवा के स्पष्ट लक्षण न हों।

३० दिसम्बर ४६—बच्चा बहुत ठीक दिखता है। श्वास ठीक है और दौड़ भाग कर रहा है। दिसम्बर के मध्य में एक हल्का दौरा हुआ।

२० फरवरी ४७—पहली मात्रा के बाद ३ मास में २ पौंड वजन बढ़ा। दौरे नहीं हुए। १२ फरवरी को मां को शंका हुई थी कि दौरा होगा क्योंकि छींकें आने लगी थीं। मगर दौरा नहीं हुआ छींकें आकर ही रह गई। छाती ठीक है। नेट्रम सल्फ १००० की प्लस मात्रा अर्थात् हिलाकर कई हिस्से में।

३० अप्रेल ४७—हल्का दौरा १ मार्च को नेट्रम सल्फ १०,००० एक मात्रा।

८ मई ४७—६ मई को हल्का दौरा लेकिन मिजाज में कोई परिवर्तन नहीं। बच्चा प्रसन्न है।

१९ जून ४७—दौरा नहीं हुआ बच्चा प्रसन्न है।

सारांश

यह बात इन नौ केसों में देखने योग्य है कि आर्स, इपीकाक, नक्स ने रोग नहीं खोया क्योंकि ये प्रमेह विनाशक नहीं हैं। नेट्रम सल्फ, साइलीसिया, और थूजा ने रोग को जड़ से आराम किया और दबे हुए रोग को उभार भी लाई।

—अमेरिकन जरनल से

ज़र्द चम्बेली का हार !

—श्री डाक्टर कर्म चन्द्र हितैषी 'ऐरी वियू' सोलन

GELSIMIUM

'जैलसीमीयम' का अंग्रेजी नाम Yellow Jasmine' है और देसी नाम 'ज़र्द चम्बेली' यह एक किस्म की बेल होती है जिसको ज़र्द रंग के फूल लगते हैं और शौकीन लोग अकसर उनके हार बनाकर गले में पहनते हैं। स्त्रियां उनसे बालों को सँवारती है। 'जलसीमीयम' नामी होमियोपैथिक दवा इस लता की जड़ों से बनाई जाती है। जितना इस बेल का फूल सुन्दर होता है उतनी ही यह गुणकारक हैं। ग्रीषम यानी गर्म मौसम में इस के फूल खूब बहार देते हैं। इस लिये यह दवा उन रोगों में जो के इस मौसम में होते हैं बड़ी कारगर सिद्ध होती हैं। Aconite Nap जहां सख्त सरदी या सर्द वायु से तूफान की की तरह आने वाले रोगों में यानी तेज़ ज्वर खांसी, जुकाम वगैरा में अकसीर का काम देती है वैसे ही Gelsimium गरमियों में आहिस्ता २ लगने वाले इसी किसम के रोगों में 'तीर बेहदफ' का हुक्म रखती है। मेरी चालीस वर्ष की 'प्रैकटिस में इस दवा के हार ने जो जादू दिखलायें हैं वह मैं कदापि भूल नहीं सकता। खासकर ऐसे वहमी और पुराने ख़याल के मरीजों में जो अंग्रेजी दवाखाना धर्म के विरुद्ध समझते थे। लीजिये सुनिये !

(१) सन् १९१४ जिक्र है गर्मियों के दिन थे। सायंकाल के समय मेरे एक बंगाली मित्र मुझे मोटर लेकर बुलाने आये। यह मित्र लाहौर के एक प्रसिद्ध वैद्यों और डाक्टरों के बंगाली खानदान से सम्बंध रखते थे। उन्हें देखकर मुझे आश्चर्य हुआ कि उन्हें मेरी क्या जरूरत पड़ गई। पूछने पर पता लगा कि उनके बंगाली गुरुमहाराज को कई दिनों से ज्वर आता है। दवाई वह बिलकुल खाते नहीं। दवाई पर मौत को तरजीह देते हैं क्योंकि वह अभी तीर्थ-यात्रा करके आए हैं। आयु भी उनकी लगभग ९० वर्ष की थी। मैं जब उनकी हवेली पर पहुंचा तो क्या देखता हूं कि बूढ़े बाबा आंखें मून्दे चित्तलेटे हैं। सारा शरीर कमज़ोर और दर्द करता है। जिल्द पीली और नमदार, प्यास की कमी, बोल भारी, टैम्प्रेचर हाई। ज्वर सायंकाल को बहुत तेज हो जाता था। ज्वर दिन रात रहता था। Symptoms Gelsimium की सच्ची तस्वीर थी। मैंने फौरन जर्द चमेली की एक माला मंगवाई और गुरु जी के गले में डाल दी, दो चार दिन में वह बिलकुल फले चंगे हो गये। जिस से बंगालियों की होमियोपैथी में श्रद्धा बढ़ गई। यदि अनुचित न हो तो यह भी बतला देना

चाहता हूँ कि इस परिवार के एक युवक का जो डाक्टरी पास था और M.B.B.S. था Homoeopathy पढ़ने का इस कदर शौक हुआ कि वह मेरे कालिज में दाखिल हो गये और अब वह एक प्रसिद्ध Homoeopath है।

(२) मुझे दूसरा केस याद है कि जिस में जर्द चमेली ने जादू दिखाया। एक अधेड़ उम्र के वकील थे। उनकी पहली स्त्री मर गई थी। दूसरी शादी कर ली थी जिस से उनके पिता सख्त नाराज थे। वह शिव के पुजारी थे और क्रोध की मूर्त्ति इन वकील महाशय पर नाराज थी, कुछ माली मुश्किलात भी थीं। इनको अक्सर भय या फिक्र से दिल की धड़कन हो जाती थी बावजूद हट्टा कट्टा होने के वह एक दम बैठ जाते और घर वालों को कहते कि मुझे फौरन उठाकर गाड़ी में बिठलाओ, और डाक्टर हितैषी के हस्पताल में चलो। जब वह मेरे पास आते मैं Gelsimium की ३ नन्हीं २ गोलियाँ उनकी जबान पर रखता, वह चन्द मिनटों में उठकर बैठ जाते और उनके दिल की धड़कन दूर हो जाती इन दौरों को रोकने के लिये आखिर मैंने उनको सलाह दी कि वह सोते समय ज़र्द चमेली का हार गले में पहन लिया करें। इस माला के पहनने से वह करीबन एक माह में बिलकुल अच्छे होगये और उन्होंने फिर कभी दिल की धड़कन की शिकायत नहीं की।

(३) एक स्त्री जो Hysterical मिजाज की थी और हरदम चुपचाप बैठी रहती थी। उसमें Cimicifuga और Gelsimium दोनों दवाओं की मिली जुली इलामतें पाई जाती थीं। वह भी दवा खाने पर मरने को तरजीह देती थी, इस बारे में सख्त ज़िद्दी औरत थी। जो Cimicifuga की वही दिमागी इलामत है मैंने Cimicifuga के चन्द बिन्दु उसके रूमाल पर छिड़क दिये और ज़र्द चमेली की माला पहनने की सलाह दी। जिससे वह बिलकुल अच्छी होगई।

(४) सं० १९१६ का जिक्र है कि श्री राजा साहिब पुन्छ स्टेट (काश्मीर) मेरी कोठी पर लाहौर में पधारे और मुझे एक मरीज़ को देखने के लिये कहा। मैं राजा साहब के साथ मोटर में सवार होगया। जब 'पुन्छ हाउस' में पहुंचे तो मैं क्या देखता हूं कि श्री राजा साहिब के वजीर ड्योढ़ी में बेहोश पड़े हैं। आंखें बन्द हैं। निचला जबड़ा लटक रहा है। चेहरे की हवाइयां उड़ी हुई हैं। ऐसा मालूम होता कि गोया उसका दिल अब बन्द हुआ। दरयाफ्त पर मालूम हुआ कि ज्योंही उनको जम्मू दरबार से चिट्ठी आई है कि उसकी सारी जायदाद ज़ब्त होगई है उसको पढ़कर वह एकदम बेहोश होगये। दवाओं का डिब्बा मैं साथ नहीं लाया था। फौरन माली को आज्ञा दी कि बाग में से ज़र्द चमेली के कुछ फूल ले आओ। जो रोगी के सरहाने रख दिये। और श्री राजा साहिब की सेवा में निवेदन किया कि वह मुझे दो घण्टे के बाद पता दें कि मरीज़ का क्या हाल है। चुनांचे इस अरसे में मरीज बिलकुल भला-चंगा होगया। यह मुझे बताने की आवश्यकता नहीं कि Bad News अर्थात् बुरी खबरों के सुनने से जो बुरा असर मन और शरीर पर होता है Gelsimium उसकी एक प्रसिद्ध औषधि है।

Clinical Cases

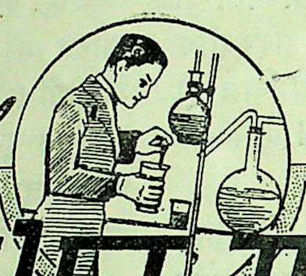

अनुभूत प्रयोग

स्कर्वी (Scurvy) में फासफोरस।

भूपेन्द्र सीमेन्ट वर्कस, सूरजपुर (पटियाला स्टेट) के लेबर वेलफेयर आफिसर श्री मुरारीलाल टण्डन की पुत्री स्वतन्त्र कुमारी आयु लगभग दस वर्ष इसी मई मास में उक्त रोग से पीड़ित हुई—पहिले ज्वर हुआ—चेहरे पर कुछ छोटे-छोटे लाल-लाल दाने मालूम होते रहे परन्तु दूसरे दिन वह दाने अदृश्य होगये। एक्लोपैथिक औषधि का प्रयोग ज्वर उतारने के लिये किया गया। ज्वर में कोई कम नहीं हुई बल्कि मसूड़े सारे लाल और सूजे हुए मालूम होने लगे और मुंह से काफी खून जाने लगा। रोग विशेष बढ़ता हुआ मालूम पड़ने लगा—सबकी चिन्ता बढ़ने लगी—करीब तीन सप्ताह तक एलोपैथिक औषधि का प्रयोग करने के बाद जब कोई लाभ न हुआ तो श्रीटण्डन जी तथा श्रीमती टण्डनजी ने मुझसे कहा मैंने पहले इस को एकोनाइट ६×दो दो घन्टे बाद दिया इससे रोगिणी की बेचैनी दूर हुई और ज्वर में भी कमी हुई परन्तु टेम्परेचर लेने पर ९९ और १०० डिग्री के मध्य में मालूम होता था परन्तु मसूढ़ों से खून का आना बिलकुल वैसे ही था—दो रोज़ एकोनाइट देने के पश्चात् मैंने फासफोरस ३० शक्ति का दो दो बूंद एक ड्राम पानी में मिला कर चार-चार घन्टे बाद दिया दूसरे दिन मुंह से रुधिर का आना बिलकुल बन्द होगया तथा ज्वर भी नारमल होगया परन्तु शाम को फिर ज्वर ९९ डिग्री होगया इसी तरह इस औषधि के देने के बाद रोगी की हालत बहुत अच्छी होगई परन्तु शाम को ज्वर ९९ हो ही जाता था खाने के लिये दूध तथा सागूदाना और कुछ फल दिया जाने लगा। कमजोरी तो थी ही थोड़ा-थोड़ा चलने फिरने लगी एक दिन मुझसे कहने लगी कि दो तीन दिन में परीक्षाफल Examination Result स्कूल में सुनाया जायेगा मेरी बड़ी इच्छा है अगर आप आज्ञा दें तो मैं जाकर सुन आऊँ। मैंने कहा, अभी तो तुम को थोड़ा सा ज्वर शाम को हो जाता है और कमज़ोरी भी है, कैसे जाओगी, अच्छा यदि जाना अवश्य ही है तो परमात्मा से प्रार्थना

करो यदि उसकी कृपा होगी तो अवश्य जा सकेगी उससे दूसरे दिन मैंने एक मात्रा फासफारेस की २०० शक्ति का दिया उसके बाद उसका ज्वर बिलकुल चला गया और वह बहुत अच्छी हो गई तथा परीक्षाफल सुनने के लिये। अपने स्कूल में भी गई।

—डाक्टर बालमुकुन्द उपाध्याय

एस्कूलस तथा खूनी बवासीर

श्रीमान् ख, उम्र ५० साल, २३ मार्च सन् १६४७ को आये और कहा कि उन्हें खूनी बवासीर की शिकायत है।

मुख्य लक्षण:—पुराना कब्ज, कमर में अत्यधिक दर्द, चलने की अनिच्छा। कांच तथा मस्से पाखाना जाते समय जोर लगाने से बाहर निकल आते हैं। हमेशा गुदा में कुछ भरा-भरा सा मालूम होता था। सबसे अधिक परेशान करने वाला लक्षण यह था कि गुदा-स्थान में जलन चुभन वाला दर्द तथा पाखाना करने के दो व तीन-तीन घन्टे बाद तक गुदा स्थान में सुइओं के चुभने-का सा अनुभव होना, जिसके साथ कुछ आंव भी निकल जाती थी। अफारे की शिकायत। जिगर बढ़ा हुआ तथा दबाने से दर्द। जीभ पर मैल जमा हुआ। कोलनसोनिया ३० की १२ पुड़िया एक सप्ताह के लिये दी गई

३ अप्रैल सन् १६४७:—लक्षणों में कोई कमी नहीं, रोग में बढ़ोतरी नहीं! कौलनसोनिया ३० सुबह और शाम एक सप्ताह तक।

१ अप्रैल सन् १६४७: —कोई सुधार नहीं। एस्कूलिस हिप १000— १ खुराक।

१७ अप्रैल सन् १४८७:—बहुत अधिक लाभ हुआ। सैकलैक २ सप्ताह तक कुछ दिन के बाद ठकि होगया।

नोट:—इस केस में यह प्रकट ही है कि अधिक रक्त स्रावको छोड़ कर और सब लक्षण कालिनसोनिया के थे और साथ ही एस्कूलिस बेंगनी रंग के मस्से भी न थे इसलिये कालिनसोनिया ठीक ही दिया गया मगर जब उसने काम न किया तो केवल डा० कापर्थवैट के मतानुसार एस्कूलस दिया गया। इसने आशातीत लाभ किया और फिर सिद्ध कर दीया कि हम डा० कापर्थवेट जैसे महारथियों पर पूरा भरोसा कर सकते हैं।

डा० आगशे, बम्बई

सर दर्द में स्पाइजेलिया

एक सज्जन को जिनकी आयु ०० वर्ष की थी, गत चार वर्षों से वर्षा-ऋतु में सर दर्द का रोग था। यह दर्द प्रातः छः बजे से दस बजे तक अधिक होता रहता था, फिर सायंकाल छः बजे के पश्चत् इसका बढ़ना शुरू हो जाता था और रात को सोते समय तक रहता था यह दर्द उनके बांई ओर माथे में होता था। और आंख तक दर्द रहता था। बेचारे काफी तंग थे। कई जगह इलाज करवाया लेकिन कोई

लाभ न हुआ। मैंने उनको स्पाइजेलीया ३० की दो खुराक सुबह व शाम को खाने के लिये दी। दो पुड़िया खाते ही दर्द दो आने भर रह गया—एक सप्ताह तक खाने के बाद फिर सर दर्द नहीं हुआ—

स्वप्नदोष में स्टाफिसगेरीया

एक विद्यार्थी मोटा ताजा जिसको स्त्री सहवास की बहुत आदत होगई इसकी पाचन शक्ति जाती रही। इसके चेहरे पर हवाइयां उड़ना—दिमागी काम से नफरत भविष्य की चिन्ता, बहुत आलस्य और निर्बलता—कभी कभी स्वप्नदोष—कब्जियत वह किसी पुस्तक को पता तो दो ही मिनट में भूल जाता—जरा से दिमागी काम से सरदर्द—भारीपन और चक्कर आ जाते थे स्टाफिसगेरिया ३० की दो मात्रा रोज देने से एक मास के भीतर २ रोग 'भला चंगा हो गया।

गिरीसीओला दस्तों में

(१) रोगी जिसकी आयु ५६ साल, जून के महीने में दस्त आने लगे। दस्त पीले-पानी से झागदार थे और पिचकारी की तरह बहुत जोर से निकलते थे। पेट में काटने वाले दर्द और हवा की गड़गड़ाहट थी। कभी २ मितली और और कै भी थी कालोसिन्थ (Colocynth) इपीकाक (Ipecauc) ने कोई लाभ न किया। जब रोगी को खास तौर पर देखा तो मालूम हुआ कि पेट के अन्दर सरदी मालूम पड़ती है। गिरीसीओला (Gratiola) नं० ३ में दिया गया तुरन्त फायदा हो गया और दस्त बन्द होगये।

(२) एक बच्चे को दर्द शुरू हुआ दो-तीन दस्त एक दूसरे के बाद हो गये और फिर एक दो घंटे में होते रहे। दस्त हरे-पीले, पानी की तरह पतले—झागदार थे बहुत ज़ोर से निकलते थे—कै, दस्तों के पहले दर्द मगर कुछ समय के लिये दस्तों के बाद दर्द में आराम हो जाता था। Cham (कैमोमिला) Colocynth (कालोसिन्थ) Verat .A. (वैरेट्रम) आदि दिये किन्तु लाभ न हुआ। देखनेसे पता लगा कि गुदा के चारों ओर लाली थी और खारिश भी थी गिरीसीओला (Gratiola) नं. ३ में दिया गया बच्चा बहुत जल्द ठीक हो गया।

रोडोडेंडरन

एक दस वर्ष की लड़की जिसको कई वर्ष से बाय के दर्द थे। इसके कुल में पुरानी गठिया की हिस्टरी थी। गर्मी के मौसम में वह अच्छी रहती थी लेकिन जाड़े के मौसम में उसको रोग हो जाया करता था। दर्द कभी कहींकभी कहीं होते रहते थे कभी छाती में कभी मास पेशियों में कभी टांग में। जब मौसम खराब होता तो उसे दर्द रहते। सर में दर्द इस जोर का होता था कि उसे स्कूल भी छोड़ना पड़ा। जब तक सूर्य रहता उसे आराम रहता जब आंधी या वर्षा आने को होती तो तकलीफ बहुत बढ़ जाती थी। आंधी और वर्षा के समय सर दर्द बहुत तेज हो जाता था और जब आंधी वर्षा बन्द हो जाती तो सर दर्द शुरू होती तो दर्द बढ़ जाता था रोडोडेंडरन की कई खुराक दी गईं लड़की हमेशा के लिए ठीक होगई।

डा० नवल किशोर वर्मा

गुरुकुल-पत्रिका,
गुरुकुल काँगड़ी.

होमियोपैथिक जगत्

शोक-प्रस्ताव

बनारस ज़िला होमियोपैथिक चिकित्सक संघ की बैठक ५ जुलाई को डाक्टर हरेन्द्रनाथ मुकर्जी के सभापतित्व में हुई। अखिल भारतवर्षीय होमियोपैथिक चिकित्सक संघ के प्रधान मन्त्री डाक्टर आर० एस० सहगल के असामयिक निधन पर शोक-प्रस्ताव पास किया गया।

बिहार एसोसियेशन

बिहार प्रान्तीय होमियोपैथिक एसोसियेशन के ४९-५० के लिये निम्न अधिकारी चुने गये हैं:—

प्रधान—डा० रामाप्रसाद जी, छपरा। उपप्रधान—डा० यदुवीर सिन्हा, लहरियासराय तथा डा० बी० बी० मजूमदार, भागलपुर। मन्त्री—डा० जी० के० कोहली पटना। सं० मन्त्री—डा० एस० एन० लाल मुज़फ्फरपुर। उपमन्त्री डा० अर० एन० दत्ता गया तथा डा० एस० एन० बर्त्तियार समस्तीपुर।

होमियोपैथिक कालेज

बनारस में सन् १९४७ से हैनीमैन होमियोपैथिक कालेज व अस्पताल बड़े पैमाने पर खोला गया है। विद्यार्थियों के रहने को साथ ही बोर्डिङ्ग हाउस भी हैं। आल इन्डिया होमियोपैथिक मैडीकल असोसियेशन के प्रधान डाक्टर मुकर्जी इसके प्रधान और डा० सिंह इसके प्रिंसिपल हैं। पूरे चार वर्ष की पढ़ाई है जिसमें सब आधुनिक विषय पढ़ाये जाते हैं। इसका प्रासपैक्टस बी० ३।४१७ शिवाला, बनारस के पते पर प्रिंसिपल को लिखने से प्राप्त हो सकता है।

होमियोपैथिक डायरेक्टरी

डा० एस० के० जुत्शी, ब्लाक H., कनाट सर्कस, नई दिल्ली से सूचित करते हैं कि वे एक आल इन्डिया डायरेक्टरी होमियोपैथिक डाक्टरों की प्रकाशत कर रहे हैं। होमियोपैथिक डाक्टरों के नाम व पते छापने के लिये उन्हें भेजने चाहिये। विज्ञापन तथा मोटे टाइप आदि में नाम छपवाने के नियम ऊपर के पते से मुफ्त प्राप्त किये जा सकते हैं।

मेडिकल एसोसियेशन

डा० आर० एस० सहगल की मृत्यु हो जाने से अखिल भारतीय होमियोपैथिक चिकित्सक संघ के प्रधानमंत्री का जो स्थान रिक्त हो गया था उस स्थान पर डा० रूपनारायण जी प्रधानमन्त्री नियुक्त हो गये हैं।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न सं० २८

एक लकवे का रोगी, उम्र ३१ वर्ष, रंग पीला, लगभग ३ बर्ष से सीधे हाथ की उंगलियां सुन्न पड़ गईं, फिर वह सुन्नपना हाथ तक आगया। दर्द नहीं है। सुन्नपना धीरे-धीरे ऊपर को बढ़ रहा है। अब कोई ६ मास से बायें हाथ की ३ उंगलियां सुन्न पड़ना शुरू होगई हैं। साधारण स्वास्थ्य भी अच्छा नहीं है। कहता है कि पंजों में से जानसी निकल गई है। यह सुन्नपना कुछ-कुछ पैरों में घुटनों के नीचे भी शुरू हो चला है। यह बताया जाता है कि रोग बरसात में भीगने व सर्दी से शुरू हुआ था। उचित दवा बताने की कृपा करें।

डा० प्रेमचन्द्र अग्रवाल

उत्तर:--

इस रोगी का पेशाब जंचवाना चाहिये। साथ ही सूजाक, सिफलिस के बारे में पता करना चाहिये। यह बात भी पता करनी चाहिये कि चेचक के टीके कितनी बार लगे हैं। तब तक-आप इन दवाओं में से लक्षणानुसार दवा चुनने का प्रयत्न करें---हाइलीसिया, प्लम्बम, कास्टिकम व सलफर। सुन्नपने की दवायें और भी बहुत हैं परन्तु ये मुख्य चार-हमने लिखदी हैं। पूरे लक्षण संग्रह कर के दवा चुनने से मुमकिन है कोई और निकल आये। ऐसे पुराने रोगों में पूरे-पूरे लक्षणों के गहरे अध्ययन के बाद ही आप सही दवा तक पहुंच सकते हैं।

प्रश्न सं० २९

क्या गुर्दे या मसाने में जो पथरी पड़ जाती है वह दवाओं से गल सकती है यदि हां तो कौनसी दवा गलाती है।

—रामचन्द्र शुक्ल

उत्तर:—

गलना कहिये या टूटना। दवाओं से पथरी टुकड़े-टुकड़े होकर निकल जाती है। ऐसे कई केस रिपोर्ट हो चुके हैं। काफी दिन तक दवा देने से ऐसा होता है। पेशाब की परीक्षा से प्रायः यह पता चल जाता है कि पथरी किसकी है अर्थात् फारस्फेट—युरेट—आक्जुलेट। फिर वैसी दवायें देनी चाहियें।

कोई एक या दो दवा नहीं बताई जा सकती। लक्षणानुसार दवा चुननी होगी। लिथिमकार्ब, सार्सपेरीला, बर्बेरिस, लाइको, आक्जेलिकएसिड, आर्निका, आदि अनेक दवायें पथरी को तोड़ कर निकालने में सफलतापूर्वक आजमाई जा चुकी हैं।

—

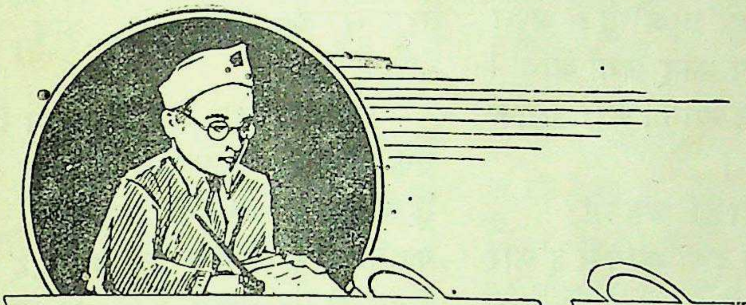

सम्पादकीय विचार

स्वप्न चिकित्सा

हाल ही में "देहली टाइम्स" अंग्रेजी साप्ताहिक पत्र में एक समाचार छपा था कि श्री डा० राजेन्द्र प्रसाद जी को स्वप्न आया कि वे अब बीमार नहीं होंगे उनका दमा अच्छा हो जावेगा। शायद कोई युक्ति भी उस में बताई गई थी। और यह भी कि उन्हें अभी देश के उत्थान में बड़ा भारी काम करना है। गांधीजी का स्थान लेना है इत्यादि २। कहा जाता है कि उस स्वप्न के बाद उन युक्तियों के अनुसार श्री राजेन्द्र बाबू को तब से दमे का दौरा नहीं हुआ और उन का स्वास्थ्य अच्छा है।

इस समाचार को पढ़ने के बाद हमें ध्यान आया कई ऐसी और घटनाओं का। प्रश्न उठता है क्या स्वप्न द्वारा भी चिकित्सा हो सकती है। क्या स्वप्न इतने सच्चे होते हैं कि रोग दूर करने के साधन बनें। दिल्ली के हमारे एक मित्र की माता जी कुछ वर्ष हुए सख्त बीमार हुईं और हालत अत्यन्त खराब हो गई। बीमारी लम्बी हो गई। वे जीवन से निराश हो गईं। वर्षा ऋतु आगई और वर्षा के कारण हालत और भी खराब हो गई। ऐसी निराशा के समय उन्हें मकान की छत में एक सांप नज़र आया कुछ लोगों ने उसे मारना चाहा मगर रोगिणी ने मना किया, सर्प देवता गायब होगये और रोगिणी कुछ भय के कारण बेहोश हो गई। घर वालों ने थोड़ी देर होश में लाने की कोशिश की मगर फिर उन्हें पड़े रहने दिया गया और उन्हें कुछ नींद सी आगई। जब उठीं तो कहने लगीं कि वे देवता (सांप) कहां हैं उन्हें मारा तो नहीं? घर वालों ने कहा कि नहीं वे कहीं अन्तर्ध्यान हो गये हैं, तो उन्हों ने कहा कि मुझे स्वप्न आया और उस सर्प देवता से मेरी बातें हुईं—

देवता—कहो, बहुत बीमार हो? सब इलाज कर लिये। अच्छा होना चाहती हो तो मेरा इलाज करो।

रोगिणी - हां, करूंगी।

देवता—और सब इलाज बंद करने होंगे और घबराना नहीं होगा।

रो०—बहुत अच्छा। बताइये क्या दवा खाऊं।

देवता—बस मेरा इलाज यही है कि आज से कोई दवा मत खाओ और दिवाली पर तुम तगड़ी हो जाओगी। अपने घर में अपने आप झाड़ू लगा लोगी। मगर दवा कोई न खाना, मेरा इलाज आज से शुरू है।

रो०—बहुत अच्छा, ऐसा ही करूंगी

रोगिणी ने सचमुच दवा खाने से इंकार कर दिया। दिवाली के कोई २ मास थे लगभग तो, हालत दिन ब दिन खराब होती गई मगर रोगिणी दृढ़व्रत रहीं और आश्चर्य कि दिवाली के १५ दिन पूर्व उनकी तबियत ठीक होनी शुरु हुई और दिवाली तक वह पूरी स्वस्थ हो गई।

एक और घटना मेरी प्रैक्टिस के आरम्भ काल की है—मैंने तब जयपुर में काम शुरु ही किया था। वहां के एक बड़े अफसर की पुत्री लगभग २०—२२ वर्ष की थी। उन्हें कोई २ वर्ष से उल्टी होती थी। कुछ भी खायें या कोई पीने की चीज लें ५—१० मिन्ट या अधिक से अधिक २०—२५ मिनट में वैसे की वैसे क़ै हो जाती थी। सब प्रकार के इलाज तो हुए ही थे। जब मुझे होमियोपैथिक चिकित्सा के लिए बुलाया गया तो ५ मिनट बाद ही कै हो जाती थी। रोगिणी के शरीर में केवल हड्डियाँ ही रह गई थीं। चलना फिरना तो असंभव था। ज्वर आदि कुछ न था। मैंने भी पूरा जोर लगाया पर कुछ न हुआ। मुझे याद है कि विसमथ ३० की ३ मात्रा रोज देने से दो दिन तक १२—१२ घंटे बाद उल्टी हुई। बहुत आशा बंधी मगर तीसरे रोज़ से फिर वही सिलसिला शुरु हो गया। और फिर किसी प्रकार बंद नहीं हुई। कई वर्ष बाद मैं जब रोगिणी के परिवार के लोगों से मिला तो मालूम हुआ कि वह अजीब तरह से ठीक हुई और अब बिल्कुल ठीक है।

उसे एक दिन रात को स्वप्न में उसकी एक बहन जो थोड़े दिन हुए मर चुकी थी दिखलाई दी और बोली कि यदि तू मेरा कहना माने तो ठीक हो सकती है। तू कल सुबह ही २) अपने ऊपर से वारकर घर के ताक में रख देना और मंगलवार के रोज़ उनके लड्डू मंगवाकर हनुमान जी के चढ़ा देना और बन्दरों को खिला देना। सुबह उठते ही रोगिणी ने अपना स्वप्न अपनी माता को सुनाया। उन्होंने आदर पूर्वक तुरन्त २) वारकर ताक में रख दिये। उस रोज़ से कै बन्द होगई और रोगिणी भली चंगी होगई।

इन उपर्युक्त घटनाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि स्वप्न रोग-निवारण में सच्चे साबित हुए हैं और कभी-कभी तो पुराने-पुराने रोगों का समूल नष्ट करने में समर्थ हो गये हैं. यह प्रश्न किया जा सकता है कि उपर्युक्त स्वप्नों में रोगी इस लिये अच्छे होगये कि उनपर स्वप्नों का गहरा मानसिक असर पड़ा। कुछ भी हो स्वप्नों का आना भी तो एक खास बात है। इन रोगियों को स्वप्न आये ही क्यों? कुछ भी हो स्वप्नों के मूल्य को चिकित्सा रूप से हम कम नहीं कर सकते। यह स्वप्न रोग नाश के लिये एक ईश्वरीय अस्त्र साबित हुए हैं। इस सम्बन्ध में और खोज की आवश्यकता है और रोगियों के स्वप्नों की तरफ अधिक ध्यान

देने की ज़रूरत है।

होमियोपैथिक डाक्टर तो स्वप्नों के आधार पर दवा भी चुन सकते हैं। हमें कई दफा स्वप्नों के आधार पर दवा चुनने से सफलता हुई है। वैद्यक शास्त्र के अनुसार भी वात, पित्त, कफ, प्रकृति के लोगों को भिन्न-भिन्न प्रकार के स्वप्न आते हैं और स्वप्नों के आधार पर प्रकृति व दोष का निश्चय किया जा सकता है। इस लिये रोगियोंके स्वप्नों पर पूरा ध्यान दिया जाना चाहिये। स्वप्नों को एक व्यर्थ का विकार कह कर टालना ठीक नहीं।

सारांश यह निकला कि—

स्वप्न रोग-निराकरण में सफल हो सकते हैं और स्वप्नों में निर्दिष्ट क्रियाएँ करने, युक्ति अथवा दवा प्रयोग करने से रोग अच्छे हो सकते हैं इस लिये उन्हें अमल में लाना चाहिये।

स्वप्न मानसिक लक्षणों के मुख्य अंग हैं उन के आधार पर होमियोपैथिक दवा चुनना आसान हो जाता है इस लिए रोगियों के स्वप्नों को ध्यानपूर्वक सुनना चाहिये।

स्वप्न प्रकृति को प्रकट करते हैं और प्रकृतिका निश्चय औषधि निर्वाचन में बड़ा सहायक होता है।

आशा है पाठक स्वप्नों के सम्बंध में अपने अनुभव "संदेश" में प्रकाशनार्थ भेजेंगे।

क्लोरो मायोसीन

यह दवा हाल ही में पार्कडविस कं० ने तय्यार की है। और येल के डा० पालबर्कहोल्डर ने इस का आविष्कार किया है। पैन्सीलीन भी जिन रोगों में असफल हो गई ऐसे न्युमोनिया के रोगों में इस दवा ने तत्काल लाभ किया बताया जाता है। इस दवा के सम्बंध में आविष्कारक का दावा है कि यह टाइफस जैसे भयंकर रोग की अचूक दवा है और टायफायड तथा अमेरिका में होने वाले पहाड़ी बुख़ार को मियाद को बीच में ही ख़तम करके रोगी को चंगा करने में समर्थ होगी। इस वर्त्तमान युग में एलोपैथी में सल्फा दवायें, पैन्सीलीन, और स्ट्रेप्टो माइसीन के बाद क्लोरो मायोसीन के आविष्कार की बड़ी धूम है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उपयुक्त दवायें बहुत उपयोगी सिद्ध हुई हैं और बहुत भयंकर रोगों में इन्होंने खासी सफलता प्राप्त की है। क्लोरो मायोसीन के बारे में भी ऐसी ही आशा की जाती है। हाल ही में लन्दन के प्रसिद्ध पत्र "लैन्सेट" में एक ब्राङ्कोन्युमोनिया के रोगी का विवरण छपा है जिसे पहले सल्फाडायाजीन दी गई फिर पैन्सीलीन। मगर दोनों दवायें सफल न हो सकीं, फिर यही अमरीकन दवा क्लोरो मायोसीन २७ मई को दी गई। २८ ता० की शाम तक बुखार कम हो चला और २९ को न तो रोगी को खांसी रही न ज्वर और उसे भूख लग आई तथा वह प्रसन्न चित्त नजर आने लगा। इतनी जल्दी रोगी पर असर आश्चर्यजनक है। कहा जाता है अब तक जितनी जीवाणु नाशक औषधि आविष्कृत हुई हैं उन सब में क्लोरो मायोसीन सब से अधिक तेज और शक्तिशाली है। एक विशेष बात यह है कि यह दवा इंजेक्शन से देने की आवश्यकता नहीं है। यह साधा-

रण तौर पर खिलाई जा सकती है और खिलाने पर भी सफलता-पूर्वक काम करती है। अभी दवा बहुत मंहगी है और सब जगह मिलती भी नहीं है। भारत में बड़े नगरों में कहीं २ काम में लाई जा रही है।

वनास्पति घी और स्वास्थ्य

गौ-सेवा-संघ ने इस नकली घी के विरुद्ध आन्दोलन आरम्भ किया है ! हम इस आन्दोलन का स्वागत करते हैं और आशा एवं विश्वास करते हैं कि भारत सरकार इस नकली, स्वास्थ्य के लिये हानिकारक तथा व्यापारियों को विशेषतया तथा जनता को साधारणतया बेईमानी व धोखाधड़ी सिखाने वाले पदार्थ का बनाना ही बन्द करके पशु धन को तथा जनता के स्वास्थ्य की रक्षा करेगी।

यह अधिक अच्छा है कि ऐसे नकली पदार्थों को बन्द करके जनता की शक्ति को नष्ट होने से बचाया जाये और स्वास्थ्य की हिफ़ाज़त की जाय न कि इनको तो जारी रहने दिया जाय और उधर करोड़ों रुपया अस्पताल खोलने में लगाये जावें। अंग्रेजी में एक कहावत है कि Prevention is better then cure अर्थात् रोग को उत्पन्न होने देने और उसका इलाज करने से यह अच्छा है कि रोग की पहले ही से रोक-थाम करदी जाय। निस्सन्देह भारत के स्वास्थ्य हीनता में नकली घी का बड़ा भारी हिस्सा है क्योंकि वाइटेमीन 'ए' जो घी में बहुतायत से होती है और जो मनुष्य में रोगों से लड़ने की शक्ति उत्पन्न करती है वह नकली घी में होती ही नहीं। नकली घी खाने से शुद्ध तेल खाना अच्छा है।

नीचे हम अमर भारत से इस घी के संबंध में निम्नलिखित लेख उद्धृत करते हैं जिसमें इसके सम्बन्ध में बहुत सी बातें पाठकों को मालूम होंगी।

सेहत की खराबी:—

नकली घी जिन तेलों से बनता है, उनसे अधिक गुण नहीं रहता। इसमें शरीर को पौष्टिक करने वाले तत्व विटामिन या खद्योज और प्रोटीन भी नहीं होते। सर्वप्रथम सन् १९२७ में कैप्टीन थामस आई० एम० एल० कैमिकल इनेलाईजर पंजाब सरकार ने अनुभव करके बतलाया कि नकली घी के खाने से कोई लाभ नहीं, हानि ही होती है। पंजाब-सरकार ने अपने पत्र नं० ३३१८६ ता० १५-१२-२७ द्वारा भारत सरकार को इसे बन्द करने के लिए लिखा।

इज्जत नगर (बरेली) की सरकारी प्रयोग शाला में १-१०-४५ से ३१-३-४६ तक छः महीने मनुष्य जैसे पाचन शक्ति आदि रखने वाले चूहों पर शुद्ध घी तथा नकली का प्रयोग करने पर परिणाम निकला कि वनास्पति घी खाने वालों में अधरंग, पेशाब की खराबी, या नपुन्सकता आदि बीमारी हो गई, छः माह के बाद ४० से सा फीसदी तक मृत्यु भी हुई।

चूहों पर यह नतीजा तीन पीढ़ियों में मालूम हुआ, चूहों की यह तीन पीढ़ी छः महीने में ही हो गई पर मनुष्य की कम से कम साठ साल में होती है। अतः नकली घी का परिणाम मनुष्य शरीरों पर जल्दी मालूम नहीं होगा। कारखाने वालों का यह कहना है कि उन्होंने पौष्टिकता की कमी

दूर करने के लिए विटामिन मिला दिए। विटामिन का अलग मिलाना सेहत की दृष्टि से हानिकारक है।

अर्थ-शास्त्र का करन्सी नियम है कि जब बाजार में जाली सिक्के आ जाते हैं, तो असली को बाजार से निकाल देते हैं। नकली घी शुद्ध घी को बाहर निकाल रहा है। नकली घी की उत्पत्ति दिन २ बढ़ रही है तथा शुद्ध घी कम हो रहा है जैसे कि नीचे सरकारी अंकों से प्रकट होता है:—

	१९३७	१९४७
शुद्ध घी	२२० लाख मन	११२ लाख मन
वनस्पति घी	९॥ लाख मन	१३॥ लाखमन

आठ वर्षों में ही शुद्ध घी की पैदावार आधी रह गई, नकली घी की पाँच गुना बढ़ी।

यदि शुद्ध घी की कमी तथा नकली की बढ़त की यही गति रही, तो अगले दस साल में शुद्ध घी का मिलना असम्भव हो जायगा। शुद्ध घी से किसान को अनुमानतः दो अरब रुपये वार्षिक मिलते रहे हैं, वह नहीं मिलेंगे। सन् १९३७ में जब नकली की उत्पत्ति २५ हजार टन थी, किसान को तीन करोड़ रुपये वार्षिक नुकसान था। इसका उत्पादन तथा मिलावट बढ़ने के कारण इन दिनों भी २५ करोड़ सालाना से कम नुकसान नहीं। किसान को शुद्ध घी निकालने से तैयार हुई छाछ खाने से ही पौष्टिकता प्राप्त होती है तथा बैसाख जेठ की तपती हुई धूप और पोह माह की कड़कड़ाती सर्दी में काम करते हैं। हमारे देश में ९०७५ लाख मन छाछ तैयार होता है। शुद्ध घी की पैदावार कम होने से छाछ भी न मिलेगी।

शुद्ध तेल के खाने वाले को ५०) रु० मन में शुद्ध तेल मिलता है उसे ९० या ९५) रु० मन का नकली घी खरीदना पड़ेगा। नकली घी के प्रचार से किसान और उनके पशु तो बर्बाद होंगे ही, शुद्ध तेल खाने वाले लोगों को भी हानि उठानी पड़ेगी।

सरकारी पक्षपात

बीस साल से नकली घी की मिलावट दूर करने के लिये सरकार के सम्मुख रंग का सवाल है। संसार के विशेषज्ञों ने पैंसलीन जैसी दवाई तथा ऐटम बम्ब जैसे हथियार तैयार कर दिये, पर यहां के विशेषज्ञ कारखाने वालों की मिली भगत के कारण कोई पक्का रंग न डाल सके। मिठाइयों तथा पीने के सोडाआदि में तरह-तरह के रंग पड़ते तथा लोग खाते पीते हैं। पर नकली घी में वैसे रंग जहरीले बन जाते हैं। यह बहकाया जाता है। यदि सरकार को नकली घी की बाबत ठीक निश्चय नहीं तो जब तक पूरा निश्चय न हो, नये-नये कारखाने बनाने की आज्ञा नहीं देनी चाहिये। जनता को बहकाने के लिए प्रयोग जारी रखना और साथ-साथ कारखाने भी लगवाना सरकारी विशेषज्ञों और अधिकारियों के पक्षपात और कुटिल नीति का बड़ा सबूत है।

क्या करें—

आज देश में जनता का राज्य है, राज्य को वही करना पड़ेगा जो जनता चाहती है। अतः देश भर के लोगों तथा लोगों का

हित चाहने तथा सेवा व उन्नति का कार्य करने वाली सब संस्थाओं को चाहिये कि अधिक से अधिक संख्या में **नकली घी, तेल है, तेल की तरह ही बने तथा बिके, घी की तरह न जमाया जाय''** के प्रस्ताव पास करके पण्डित जवाहरलाल नेहरू प्रधान मंत्री, श्री जयरामदास दौलतराम खाद्य मंत्री, कांग्रेस के प्रधान श्री पट्टाभि सीतारमैया, अपने इलाके के पार्लीमैंट मेम्बर को नई दिल्ली के पते पर और अपने प्रांत के प्रधान मंत्री को भेजें। सभी राजनैतिक, धार्मिक, समाजिक संस्थाओं को इस कार्य में सहायता करनी चाहिये।

विशेषांक—

अगले अंक के साथ संदेश का पहला वर्ष समाप्त हो जावेगा। हमने निश्चय किया है कि दूसरे वर्ष का यह पहला अंक अर्थात् सितम्बर का अंक विशेषांक होगा। यह विशेषांक सचित्र होगा। चित्रों के अतिरिक्त इसमें भारतीय और विदेशी विद्वानों के उपयोगी व सारगर्भित लेख होंगे। इस विशेषांक का मूल्य २) होगा मगर स्थायी ग्राहकों को तो मुफ्त ही मिलेगा। हमारा अपने पाठकों से अनुरोध है कि यदि अब तक सन्देश के ग्राहक नहीं बने हैं तो बन जावें तथा अपने मित्रों को भी इसका ग्राहक बनाने का प्रयत्न करें।

दूसरा आवश्यक निवेदन पाठकों से यह है कि वे कृपा कर सन्देश के बारे में अपनी सम्मति भेजे। इसको अधिक से अधिक उपयोगी बनाने के लिये उनकी सम्मिति में जो तजवीजें हों वे भेजकर कृतार्थ करें ताकि हम इस पत्र को होमियोपैथी के प्रेमियों के लिये अधिक से अधिक उपयोगी बना सकें। तमाम आलोचनाओं पर पूरा-पूरा ध्यान दिया जावेगा।

* * *

होमियोपैथी की प्रैक्टिस

सन्देश के गतांक में अमीरीका के 'होमियोपैथिक रिकार्डर' से उधृत कर के हमने एक लेख—Homoeopcthy के Nationalized medicine दिया था। उस लेख में अमरीका के लिये विद्वान् लेखक ने होमियोपैथिक डाक्टरों से अनुरोध किया था कि वे अपने ऐसे रोगियों में से हजारों हस्ताक्षरप्राप्त करें कि जिनका होमियोपैथिक चिकित्सा में पूरा विश्वास है और जो सदा होमियोपैथिक चिकित्सा कराना पसन्द करते हैं। हमने उस पर टिप्पणी करते हुए लिखा था कि हमें यहां भी ऐसा करना चाहिये। भारत सरकार के सामने "होमियोपैथिक जांच कमेटी" की रिपोर्ट आ गई है और जैसा बहुत से होमियोपैथिक डाक्टरों का खयाल था वह रिपोर्ट हमारे लिये कुछ बहुत अच्छी नहीं है और उसमें शायद होमियोपैथी की प्रेक्टिस पर अनावश्यक पाबन्दियां लगाने की सिफारिश की गई है क्योंकि उस कमेटी में बहुमत एलोपैथिक डाक्टरों का था। ऐसी दशा में हम समझते हैं यदि हम लाखों दस्तखत भारत सरकार के पास भेज सकें तो उसका प्रभाव पड़ेगा।

इसलिये हम पाठकों से अनुरोध करते है कि वे निम्नलिखित मजमून पर अधिक से अधिक हस्ताक्षर कराकर हमारे पास

भेज दें। यह काम शीघ्र होना चाहिये, इसका प्रभाव भी अच्छा होगा—मजमून इस प्रकार होगा—

“मैं प्रायः अपने घर में होमियोपैथिक चिकित्सा कराता हूँ और मुझे होमियोपैथी चिकित्सा के प्रभाव तथा उपयोगिता पर पूरा विश्वास है। मेरी सम्मति में होमियोपैथी की प्रेक्टिस पर कोई ऐसी बाधा या रोक न लगनी चाहिए जिससे जनता इसके लाभों से वंचित हो जाय या यह इतनी दुर्लभ या महंगी हो जाय कि गरीब जनता इससे लाभ न उठा सके।”

एक फुलस्केप कागज़ पर यह लिख कर आप जितने भी हस्ताक्षर मिल सकें करवा कर हमें भेजने की कृपा करें ताकि हम उनको शीघ्र भारत सरकार को भेज सकें। हस्ताक्षर अधिक से अधिक और शीघ्र से शीघ्र करवा कर भेजिये।

नाम व पूरा पता ……………………

……………………………

हस्ताक्षर ……………………

……………………………

आयुर्वेदवाणी

आयुर्वेद जगतमें क्रांति मचाने वाली समयानुकूल
वैज्ञानिक ढंग की एकमात्र मासिक पत्रिका

इस पत्रिका द्वारा आयुर्वेद जगत् के महामान्य धुरन्धर विद्वानों के उज्ज्वल तथा नवीन अन्वेषण पूर्ण उच्च कोटि का स्थायी साहित्य आयुर्वेद प्रेमियों के ज्ञानवर्धन हेतु प्रतिमास प्रकाशित किया जाता है और वर्ष में एक वृहद् विशेषांक भी भेंट किया जाता है।

इसके स्थायी स्तम्भों के लेख, रोग विवेचन, औषधि गुण, धर्म विवेचन, कृत्रिम औषधि परिक्षण, सूचीवेध विज्ञान, शल्य चिकित्सा, बाल रोग व्यवस्था, नारी स्वास्थ्य, फल और स्वास्थ्य, विज्ञान, अनुभूत योग, प्रश्नोत्तर आदि-आदि चिकित्सा क्षेत्र में नवजीवन का संचार करने वाले हैं।

हमें पूर्ण आशा ही नहीं दृढ़विश्वास है कि इस अमूल्य साहित्य के लिये आज ५) वार्षिक मूल्य विशेषांक सहित मनीआर्डर द्वारा भेज कर लाभ उठावेंगे।

भारद्वाज आयुर्वेदिक फार्मेसी, पो० विजयगढ़ (अलीगढ़).

THE HOMOEOPATHIC SANDESH

Vol. 1 No 11] DELHI [July 1949

NOTES & NEWS

SURGICAL MIRACLE

We can be rightly proud of our age being age of Scientific discoveries and inventions. Researches are made in every branch if science, thus arming us with new appliances to combat death and disease. So is with surgery, it is daily advancing and making the impossible possible. The following news item from the Hindustan Times needs no comment whatsoever:

It is now possible to place inside the beating human heart an instrument which examines the pumping mechanism in cases of weakness. This new miracle of modern surgery is expected to be among the medical advances to be described to British doctors at the annual meeting of the British Medical Association this week.

The apparatus is at the end of a tiny rubber tube. This is inserted into a vein in the arm and pushed along till it enters the heart. There it records the pressures in different chambers, enabling the surgeon to know which part is not working properly through a valvular disease or other causes.

When the surgeon knows exactly what is wrong, it is possible he can remedy the trouble through a delicate operation on the beating heart. By filling the head of the tube with a substance through which X-rays cannot pass it is possible to take a series of X-ray photographs to supplement the doctor's information.

The conference is also expected to hear of a new drug which relieves gastric ulcers by reducing the stomach's acidity.

PLACE OF HOMOEOPATHY IN MEDICINE

INQUIRY REPORT

The Homoeopathy Inquiry Committee appointed by the Government of India in September has completed its report and submitted it to the Government of India, it is learnt.

The Committee, have recommended early legislation for the control of the practice of and training in homoeopathy; registration of practitioners of the homoeopathic system and control over homoeopathic pharmacies, phar-pharmaceutical laboratories and manufacturing concerns. They have further recommended that homoeopathic training institutions should conform to the standards recommended by the Indian Medical Council for medical colleges.

LIVER ABSCESS

(Dr. S G. Krishnan Chandausi)

The case generally begins with the inflammation of the liver. As in congestion, so in inflammation there is a great quantity of blood in the organ. But it is not there simply because it is prevented from flowing quickly but is there because there is an active determination of blood to the inflamed parts. As a result of the inflammatory material which exudes from the blood vessels, matter may be formed in the liver, and the result is an abscess.

No special symptoms indicate the formation of an abscess, though chills and fits of shivering are strongly suggestive of it. Where the abscess forms in front, a swelling may be evident through the abdominal walls. An abscess is a serious complication and may burst into the cavity of the belly or into the lungs and be spat up or it may burst in other directions.

Case No. 360.

L. Badri Prasad, age 58 years was diagnosed a liver abscess and was sent for X-ray by an old school surgeon. Naturally the X-ray results were of no help to him and then he suggested an operation. The members of the family taking in view the mature age of the patient hesitated and came to me for consultation. The symptoms were—

Great loquacity with suspicious uneasiness. Liver region very painful, worse slightest touch or pressure. Can not wait for food when hungry, better after eating. The touch of the clothes around the waist were annoying. Stool very scanty and offensive. Insomnia with sudden starts and palpitation. Was worse by hot drinks but better by hot applications.

On the three leading characteristics of mind, abdomen, senitiveness and the modalities. I gave him a dose of Lachesis 1000 (B. T.) with placebo to be taken every alternate day for 15 days.

The patient came to me the eighth day and wanted a second dose without giving any symptoms. On inquiring, I was surprised to know that the abscess had disappeared and he had absolutely no trouble whatsoever.

He simply was demanding the second dose to take it as a preventive against future formations.

Such is the action of this snake poison.

A COUPLE OF CASES

By

Dr. Tekchand Badhwar.

Case No. 1. My Pedigreed Sahiwal Cow suddenly suffered from pain at the milching time when it was found that her udder and teat were inflamed, swollen, and tender to touch. She was sent to the Veterinary Hospital where a pint or so of some medicine was forced down her throat and a blackish plaster was smeared on the diseased parts.

The same thing was repeated next morning with the warning that as this was assuming more or less an alarming condition so if it did not subside by tomorrow the animal might 'lose' the teat and thus be crippled for ever. I started studying the case and found that it was Mastitis. The parts were inflammatory red and sensitive to touch but she felt relieved by hot fomentations for which medicines like Aconite, Belladona, Bryonia, Mercury, etc were indicated. I decided to try homœopathy on her because at worst she had to be a cripple if at all.

You will be surprised to know that only four doses of Bell 6 ten drops in a gallon of water per dose nearly cured her except, of course, the hard lump in the udder. She could now be milched. For this I gave her Phytolacca 3X which did improve her in a couple of days but could not cure her when I emperically resorted to Sulph. 30 and hot fomentations of salted water. The poor animal was not only saved from being a cripple but was also permanently cured.

Case No. 2. The patient is a child of 10 years. He had a very high temperature despite the Cibazol tablets and Penicellin injections given him in 3 4 days. The case remained undiagnosed for even the blood test report showed that there was nothing abnormal, so homœopathy was tried.

The symptoms now were-temperature 104 to 107 daily inspite of the constant application of ice-cap. It was worse at about 7 to 8 P. M He had slight flu and chronic indurated tonsilitis but no cough. There was a small wound on the head duly plastered with antiphlogestine. The patient was drowzy but not dull; slight thirst for cold water; tongue coated white; moaning in sleep

I decided to try Baptesia 30 four doses after removing the plaster. I again called on the child that night when he was sound asleep and had no fever since the evening, but I was told that flu remained just the same I repeated the same medicine and asked for the report by the next evening.

Now sneezing and fluent coryza with no taste of food and drink, thirst, and morning aggravation set-in which Nat. M. 30 magically finished. Post-influenzal cough was reported after a few days, with no special symptoms, for which I prescribed a dose of Bacil-Av-200 The patient was cured. What name will my friends of the other camp give to this disease now?

Blood-Preserver of our Health.

The Blood is the most essential tissue within our system and we should always take care of it by all means to preserve it in its normal condition. If our blood is normal every thing is normal and we can never suffer from any abnormal conditions

The blood is alkaline and must be kept as such always. If it becomes acid, it brings on the disease-called Acidosis which results in almost all the kinds of diseases The Acidity and Alkalinity of the Blood depends on the food we take. The foods are divided into Acid and Alkaline foods The rule is that we should take 80 per cent of the Alkaline and only 20 per cent of the Acid foods.

But if one has got actual Acidosis he should take 100 per cent Alkaline food for about a fortnight and then add Acid food gradually to his diet.

Below the Acid and Alkaline foods are given.

Acid forming foods and drinks:

All meats, fish, poultry, white bread, poories, luchis, and any other preparations of maida. All nuts, such as Akhrote, Badam, Mongphali, Peas, Beans, Plums and prunes. Dalls of all kinds without husk, white of eggs, chocolates, sugar especially so called refined white variety.

Alcohol Tea and Coffee are very Acid forming drinks

Alkali forming foods and drinks:

All fruits, sweet or sour except plums and prunes. All vegetables except peas and beans, melons, water melons Milk Butter, egg yolks, Atta of whole wheat Bajara and Jwar. Cucumbers Pumpkins. Husks of the grains and dalls containing mineral salts and vitamins, and when taken with husk they become alkaline foods. Soya beans of japan are the best akaline foods.

From this list one can easily select his 80 per cent Alkali forming foods and drinks. You should draw the bulk of your food from raw and conservatively cooked vegetables. Then come the fruits and the last are starches and building foods

Dr. A. C. Jain, Sikar.

PROFESSIONAL DIRECTORY

होमियोपैथिक चिकित्सकों के पते

दिल्ली

Dr. YUDHVIR SINGH
Chief Medical Officer
Homoeopathic Free Dispensaries

Free Consultation :

At Homoeo Free Dispensary
Kuncha Brijnath 7 to 8 A.M.
(Week days)

Private Practice :

Chandni Chowk 8 to 11 A. M.
(Opp. Post Office)
Connought Circus 6-30 to 8 30 P.M.
(Near Hindustan Times) (Week days)
11 to 12 A. M.
(Sundays)
Telephone 5803

डा० ईश्वर प्रसाद भार्गव
१५७६, मोहल्ला दस्सान

दुर्गा होमियो डिस्पेन्सरी
(गरीबों के लिये मुफ्त)
४ ब, दरयागंज
चिकित्सक डा० डी० एस० माथुर

डा० आनन्दप्रकाश श्रीवास्तव
शाद काटेज
शहादरा—दिल्ली

सोलन (शिमला)

डा० मनोहरलाल सूरी
होमियोपैथ,
माल रोड

डा० के० सी० हितैषी
होमियोपैथ,
'ऐरी' व्यू

फुटकर

डा० कुंवरस्वरूप श्रीवास्तव
कैलाश मन्दिर,
प्रेम नगर झाँसी

डा० बालमुकुन्द उपाध्याय,
होमियोपैथ,
सूरजपुर B. C. W.
पटियाला स्टेट।

विज्ञापन के लिए खाली है।

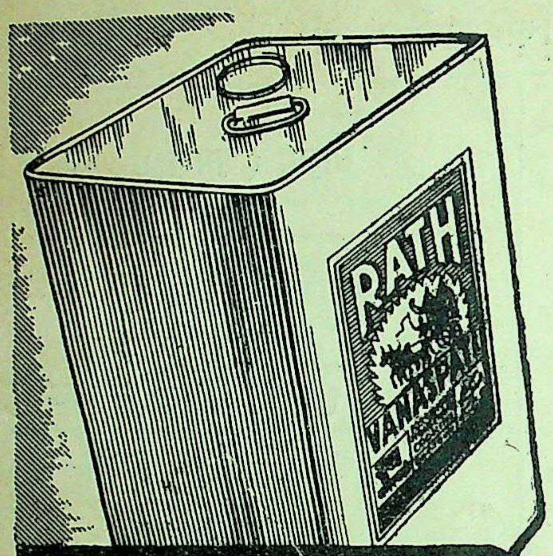

भोजनालय !
बड़े पैमाने पर इस्तेमाल के लिये हम डी.सी. एम. के पनघट व पालकी वनस्पतिकी जोरदार सिफारिश करते हैं। बड़े टीनों में मिलता है।

विशुद्ध ! लाभदाय !
सस्ता !

'रथ' छाप याद रखिये। हमेशा यही खरीदिये। यह विशुद्ध शक्तिप्रद वनस्पति डी. सी. एम. के और माल की भांति सदैव उत्तम होता है।

५ और १० पौंड के टिनों में

रथ
वनस्पती

दी डी. सी. एम. वनस्पति मेन्-
फेक्चरिंग वर्क्स, देहली.

प्रोप्राइटर्स : दी देहली क्लाथ एंड जनरल मिल्स कं० लिमिटेड, देहली.

Fresh Arrivals

We have received a big consignment of B. & T's Biochemic Medicines in 1 oz., 4 oz., 16 oz. and 24 oz. Packings.

Golden opportunity for replacing your stocks.

Dr. Prem's laboratory has also shifted to its newly built permises and is working in full swing.

Orders are solicited.

DR. WADHWA & Co.,
HOMOEO CHEMIST.,
359 Lajpat Rai Market Chandni Chowk,
DELHI.

गुरुकुल कांगड़ी

होमियोपैथिक संदेश

HOMŒOPATHIC SANDESH

EDITOR-IN-CHIEF, Dr. YUDHVIR SINGH

क मूल्य ५) प्रधान सम्पादक : एक प्रति ॥)
डा० युद्धवीर सिंह

४] अगस्त १९५२ [अंक १

हमेशा मोदी की

५०१ मार्का

बनियान व जुराब

प्रयोग में लावें

दी मोदी होज़री वर्क्स

मोदी नगर, (यू० पी०)

दिल्ली एजेन्ट, मोदी इन्डस्ट्रीज़ ३० फ़ैजबाजार दिल्ली।

७६५२४

शीशे व प्लाईवुड
के
हिन्दुस्तान में सब से बड़े व्यापारी
बाबा ग्लास कम्पनी
फतहपुरी, दिल्ली
शाखाएं :—लाहौर—अमृतसर—बम्बई—कानपुर—करांची—कलकत्ता
मदरास—कालीकट—टाटानगर—आदि आदि ।

हरनारायण गोपीनाथ के
जग प्रसिद्ध शेर मार्का
* सब प्रकार के स्वादिष्ट अचार
* सब प्रकार के मुरब्बे
* सूखे मुरब्बे (कस्ट्रैलाइज्ड फ्रूट)
* अनेक प्रकार की चटनी
* फलों के शर्बत
* शर्बत नौ बहार
* रामबाण चूर्ण
* सुगन्धित फूलों के केश तेल
* मोहनी आंवला केश तेल
* शुद्ध सुगन्धित गुलाब जल
प्रत्येक वस्तु, विशेषज्ञों की देख-रेख में कुशल निर्माताओं द्वारा निर्मित
प्रसन्नता और सन्तुष्टि निश्चित है ।
हरनारायण गोपीनाथ (स्थापित १८६०
खारी बावली, दिल्ली व कनाट प्लेस, नई दिल्ली ।

❀ समः समे शमयती ❀

होमियोपैथिक सन्देश

प्रधान सम्पादक—डा० युद्धवीर सिंह

वर्ष ४] दिल्ली, अगस्त १९५२ [संख्या १२

पहला नुसखा

एक प्रसिद्ध होमियोपैथ का कहना है कि होमियोपैथी में सफलता आपके 'पहले नुसखे' पर ही निर्भर है। मुमकिन है कि आप फिर भी कोई दवा बदलें। लेकिन बहुत करके आप जो दवा सब से पहले देते हैं उस पर ही रोगी की तकदीर का फैसला हो जाता है।

इसका अर्थ यह है कि शुरू में ही जब रोगी आप के पास आता है तो आप उसके लक्षणों का सावधानी पूर्वक संग्रह करके, फिर उनका ध्यान पूर्वक अध्ययन कर लक्षणों को दवाओं के लक्षण से मिलान करें और सब से अधिक मिलती जुलती दवा तजवीज करें। यदि अपनी असावधानी या जल्दबाजी से आपने पहली दवा बिना गौर किये गलत सलत देदी तो फिर सही दवा पर पहुंचना मुश्किल हो जाता है।

यूं समझिये कि यदि आप एक सवाल निकालने बैठते हैं और उसमें आपका पहला कदम ही गलत हो जाता है या उस कदम में कोई एक छोटी सी भी गलती रह जाती है तो आपके सवाल का जवाब आगे के सब कदम ठीक होने पर भी बिलकुल गलत आवेगा। ठीक इस तरह यदि आपका 'पहला नुस्खा' गलत हो जाता है तो आप का रोगी अच्छा नहीं होगा फिर आप कितनी भी महनत करें। तो इसका क्या उपाय है? उपाय यह है कि आप "पहला नुसखा" बड़ी सावधानी से लक्षण संग्रह करके और अध्ययन के बाद तजवीज करें और यदि आगे चल कर आपको ये मालूम हो गया है कि आपका पहला नुसखा गलत था तो उल्टे न चलें बल्कि फिर शुरू से चलें और उस केस को फिर शुरू से लें--फिर लक्षण संग्रह करें; फिर लक्षणों का मिलान दवा के लक्षणों से करें और तब सावधानी से दुबारा ठीक दवा तजवीज करें।

हिसाब करते समय जिस तरह बच्चे गलत जवाब आने पर नीचे से चलते हैं और कहीं एक गलती मिल जाने पर समझ बैठते हैं कि हमने गलती पकड़ ली मगर जब फिर जवाब गलत आता है तो घबरा जाते हैं तो मास्टर उनको सिखाते हैं कि जवाब गलत आने पर सवाल को शुरू से दुबारा करो इस ही तरह गुरुजन होमियोपैथों को शिक्षा देते हैं कि :

शुरू से सावधानी बरतो और यदि
किसी प्रकार रोगी अच्छा नहीं होता तो

फिर शुरू से केस को दुबारा लो। पहला नुसखा ही आपका ठीक होना चाहिये तो आगे के नुसखे तीर की तरह ठीक बैठते जायेंगे। यह है पहले नुसखे की महिमा।

होमियोपैथ बनने के ५० कारण

डा० जे० काम्पटन बर्नेट

[४९]

जैसे जीवन में किसी किसी से आपको स्वाभाविक लगाव हो जाता है या घर के आदमियों में किसी को आप अधिक पसंद करने लगते हो इस ही प्रकार दवाइयों में मुझे कुछ दवाओं से अधिक लगाव है, उन में एक है "स्वर्ण"।

एलीपैथिक डाक्टर कहते हैं कि चूंकि सोना किसी तरल में घुलता नहीं है इसलिये यह दवा ही नहीं है। मुझे यही भेषज विधान के बड़े २ आचार्यों ने सिखाया मगर यह सर्वथा गलत है।

क्या कहें, मेडिकल स्कूलों में कैसी २ मूर्खतापूर्ण, दकियानूसी बातें सिखाई जाती हैं।

चूंकि स्वर्ण केवल शारीरिक क्रियाओं में गड़बड़ ही पैदा नहीं करता प्रत्युत अंग प्रत्यंगों एवं तन्तुओं में परिवर्तन उत्पन्न कर देता है इस ही लिये यह अंग प्रत्यंग के रोगों में अद्भुत रूप से काम करता है। बैलाडोना और आरम की सूजनों में बड़ा फर्क है पहली केवल शारीरिक प्रतिक्रिया में विकार का परिणाम है और दूसरी शरीर के अंग प्रत्यंगों में अथवा तन्तुओं में विकृति के फलस्वरूप उत्पन्न होती है।

नीचे मैं एक दिलचस्प केस का वर्णन देता हूं :—

वातज्वर में वातज हृदन्तरवेष्ट झिल्ली प्रदाह

Rheumatic Endocarditis

मैं एक दिन फर्वरी के महीने में कोई ५५-६० वर्ष की एक वृद्धा को देखने शहर में गया। उसे ३ हफ्ते से वातज्वर था और हालत खराब थी। इस वृद्धा के पति जो मुझे लेने आये थे स्वयं ३० वर्ष से होमियोपैथी शौकिया करते थे और उनको होमियोपैथिक दवाओं का ज्ञान बहुत अच्छा था, उन्होंने शुरू में स्वयं ही दवा दी और रोग की भयंकरता को देखते हुए रोगिणी को लाभ भी काफी हुआ लेकिन अचानक हालत खतरनाक हो जाने से वे मुझे बुला ले गये। मैं ने निम्न दशा देखी :

रोगिणी को पीठ के पीछे सहारा देकर बिस्तर पर लिटाया हुआ था और उसका सांस जोर २ से चल रहा था, होंठ नीले से थे, जबान खुश्क थी और उस पर लेप चढ़ा था, मुख मंडल बहुत चिन्तित सा था, आंखों के नीचे पपोटे भारी थे, खांसी थी और खांसते समय सारी छाती में तर घरघराहट थी जिस में बीच में बुलबुले से फूटते सुनाई देते थे, नाड़ी तेज, दबने वाली एवं सविराम थी, दिल की धड़कन ऐसी थी जैसे घिसट रहा हो, अन्तरवेष्टीय कपाटों की तेज अस्वाभाविक मर मर ध्वनि थी, पांव में थोड़ी शोथ, भूख बिलकुल बंद, कोई

एक अंगूर चूस लिया या चाय का एकाध घूंट भर लिया, पसीने प्रचुर मात्रा में आते थे, हाथ पांव सूजे व दर्द करते थे जोड़ ऐसे कैड़े पड़ गये थे जैसे जुड़ गये हों, दर्द के मारे हाथ पांव नहीं हिला पाती थी और जोड़ सूजे व फूले हुए थे, हाथों का मांस कुछ फूला हुआ था, हाथों की हड्डियें सूजी थीं, बिलकुल हिल न सकती थी।

मैंने शुद्ध स्वर्ण (Aurum Foliatum) के वर्कों का २x विचूर्ण दिन में कई बार दिया और कोई चीज नहीं दी।

मैं ने सुवर्ण क्यों दिया? इस लिये कि इसके हृदय के लक्षण ऐसे ही होते हैं जैसे इस रोगिणी में थे फिर इस में पसीना बहुत होता है। भूख बंद रहती है, बहुत कमजोरी होती है और चिंता अधिक होती है। इसके अतिरिक्त हड्डियों में भी तो विकार था जो सुवर्ण का लक्षण विशेष है।

१८ फर्वरी—जरा थोड़ा सा चैन—वही दवा।

१९ फर्वरी—हर तरह कमी—वही दवा।

२० फर्वरी—दिल की हर्कत में बहुत फर्क है। सांस ठीक है। रोगिणी खतरे से बाहर है—वही दवा।

२२ फर्वरी—प्रगति जारी है—वही दवा।

२४ फर्वरी—काफी आराम है। सुवर्ण तो जारी रखा मगर इसके साथ २ पर्याय क्रम से नेट्रमसल्फ ६ विचूर्ण देना शुरू किया। क्यों? इस लिये कि नेट्रमसल्फ के तो लक्षण थे और सुवर्ण को मैं छोड़ना नहीं चाहता था।

२ मार्च—आज अंगीठी के पास बैठी है। भूख खुल गई है।

६ मार्च—दिल, जोड़, हड्डियें और हाथ सब से रोग दूर हो गया है, अंगीठी के पास आराम से बैठी है। जबान तर है और जरा सा लेप है। पांव पर शाम के वक्त जरा सी सूजन हो जाती है।

इस वर्णन से स्पष्ट है कि सुवर्ण का दिल के ततन्तुओं पर बहुत बड़ा प्रभाव है इसलिये इसको अपने ४९ वें कारण के रूप में प्रस्तुत करता हूँ।

जब मैं ने रोगिणी को पहली बार देखा था तो मैं ने कह दिया था कि भविष्य खराब है और उस ईश्वर की कृपा न होती, जिस पर मेरा अटल विश्वास है, तो मेरी भविष्यवाणी ही ठीक होती। इस केस में न तो कोई और दवा या उपचार किया गया न विश्वास ने काम किया क्योंकि मैं तो पहली बार इस घर में गया था। रोगिणी पूर्णतया ठीक हो गई।

[५०]

लो, मित्रवर मैं अपने ५० वें और अन्तिम कारण पर आ पहुंचा हूँ।

मैंने अपने ४७ वें कारण में सुवर्ण से अच्छे होने वाले एक हृत्शूल (Angina Pectoris) के केस का वर्णन किया था और थोड़े दिन पहले ही तुम्हें लिखा था कि चूंकि होमियोपैथी का प्रयोग क्षेत्र बहुत बड़ा है यह दूर तक और कठिन से कठिन रोगों में मार करती है तथा इसकी क्रिया का क्षेत्र विस्तृत है इन कारणों से हमें होमियोपैथी को एक सही, असली और रोगों को नष्ट करने वाली चिकित्सा पद्धति

के रूप में ग्रहण करना चाहिये।

अपने अन्तिम कारण के रूप में मैं अपनी पुस्तक "चर्म रोग" (Diseases of the skin from organismic standpoint) में से निम्नलिखित उद्धरण पेश करता हूँ, हां इतना पहले ही कह देना चाहता हूँ कि इस केस में जो दवा दी गई थी वह गन्धक ३० थी:—

चर्मरोग के दब जाने से हृत्शूल

कोई दस वर्ष पूर्व एक इतवार के दिन एक सज्जन अपनी पत्नी को मेरे मतब में लाये। उसे गिरजा जाते हुए रास्ते में ही हृत्शूल का दौरा हो गया था। यह युवती लगभग ३० वर्ष की थी मगर ये मनहूस दौरे उसे कई साल से थे और प्रायः रास्ता चलते २ गली में ही पड़ जाते थे। दौरा शुरू होने पर वह वहां से हिल जुल भी नहीं सकती थी और इस ही लिये वह कभी अकेली बाहर नहीं जाती थी। उसे अन्देशा रहता कि कहीं रास्ते में दौरा न पड़ जावे और वह वहाँ मरी की मरी न रह जावे।

हृदय की परीक्षा करने पर न तो दिल में कोई अंगीय विकृति मिली और न कोई क्रिया में खराबी नजर न आई। मैं खुद हैरान था कि इस युवावस्था में इस को यह नामुराद दर्द क्यों पीछे पड़ गया। अच्छे चिकित्सकों की दवा वह करती रही थी मगर लाभ न हुआ और समझ में नहीं आता था कि रोग क्यों नहीं जाता था ? मैंने उस समय तो उसे कुछ दवा दे दी और फिर जरा उसकी अच्छी तरह छान बीन करने के लिये मैं उसके घर देखने गया। मैंने उससे कहा कि तुम अपनी सारी कहानी बचपन से सुनाओ। उसने बताया कि किशोर अवस्था में जब वह पहुँची और बाहर आने जाने लगी तो उसे अपनी कोन्हींयों पर जो बीवाई सी फटी रहती थी वह बहुत भद्दी लगने लगी। ये बिवाइयां वैसे उसे बचपन से ही थी। डा० बिलसन को दिखाया गया उन्होंने एक मलहम दिया जिससे उसकी कोन्हींयां शीघ्र ही ठीक हो गईं। वह बेफिक्री से सभा समाज में आने जाने लगी और जल्दी ही अपना साथी प्राप्त करने में सफल हुई। उसका विवाह हो गया। उसने कहा—"मैं डा० बिलसन की बड़ी ऋणी हूँ क्योंकि अगर मेरी कोन्हीयां ठीक न होतीं तो आर्धी बांह की जाकट पहन कर तो मैं बाहर निकल ही नहीं पाती।"

लेकिन इसके थोड़े दिनों बाद ही उसे अजीर्ण रहने लगा, पेट में वायु बढ़ने लगी, श्वास फूलने लगा, कलेजा धड़कने लगा, और अन्त में ऊपर वर्णन किये हुए दर्द दिल के दौरे होने लगे।

वह बोली—"इन दौरों ने तो मेरी जिन्दगी ही बर्बाद कर दी। मेरे एक मृत शिशु भी हुआ था।" जैसा मैं पहले कह चुका हूँ कि हृदयांग में कोई विकार न था। ऊपर के इतिहास से मैंने देखा कि उसकी कोन्हींयों का अच्छा होना यद्यपि मेरे लिये एक विशेष महत्व रखता था मगर वह उसको कोई खास महत्व नहीं देती थी।

मैंने उसे बताया कि उसका कोन्हीयों का चर्मरोग अच्छा नहीं हुआ है केवल बिलसन की मलहम से दब कर हृत्शूल में बदल गया है।

लेकिन मेरी इस बात का यकीन किसी को न हुआ। मैंने उसकी एन्टीसोरिक चिकित्सा आरम्भ की और एक मास के भीतर २ उसकी

ब्रायोनीया एल्बा

डा० रामसहाय फीरोजाबाद

फाइब्रस-टीसू, फेफड़े, रसस्रावी-झिल्ली, यकृत और-मस्तिष्क इत्यादि के ऊपर इसकी प्रधान क्रिया होती है।

सिर में चक्कर आना-सिर चक्के की तरह घूमता मालूम होना, सवेरे और आसन से उठते ही ऐसा सिर घूमने लगना जैसे अभी चक्कर खाकर गिर पड़ेगा। प्रलाप में-दैनिक कार्य और रोजगार की बातें कहता है, वात-श्लेष्मा ज्वर में-इस तरह होट हिलाता है जैसे कुछ चबा रहा हो, ओठ सूखे और फटे। गरमी पड़ते ही पतले दस्त बढ़ जाना। सूतिका ज्वर, स्तनों की पीड़ा या स्तन प्रदाह। उठने बैठने पर जी मिचलाने लगना और शरीर सुन्न सा हो जाना, सिर में चक्कर आना, माथे के सामने वाले भाग में, पीछे गर्दन में, कन्धे में और पीठ में दर्द। बायें हाथ और बायें पैर का लगातार हिलाना। ज्वर में चुपचाप पड़ा रहना, ज्वर के साथ थोड़ा बहुत पसीना होना। फेफड़ों का प्रदाह, ब्राङ्काइटिस, ब्राङ्को-निमोनिया, वात-श्लेष्मा ज्वर इत्यादि रोग की पहिली अवस्था में इस का व्यवहार करना चाहिये।

डा० जे० सी० शर्मा ने इसके बारे में क्या ही सुन्दर दोहा कहा है।

[शेष पिछले पेज का]

कोन्हीयो पर वह जख्म फिर उत्पन्न हो गये और तब से उसका हृत्शूल जाता रहा और जीवित सन्तान भी उत्पन्न हो गई।

मैंने चिकित्सा शास्त्र का खूब अध्ययन किया है और इस पर जो संसार भर में साहित्य प्रकाशित हुआ है उससे अभिज्ञ होने का मैं दावा करता हूं मगर मैं बलपूर्वक कहता हूँ कि होमियोपैथी के अतिरिक्त और किसी जगह इस प्रकार की चिकित्सा का अस्तित्व नहीं है।

यदि भगवान् ने मुझे और जिन्दा रखा तो मैं कभी जनता के सम्मुख होमियोपैथी की अनेक विशेषताओं को रखूंगा और इस रोग नाशक पद्धति के बारे में बहुत कुछ और कहूँगा मगर यदि ईश्वर की ऐसी इच्छा न हो तो ये मेरे ५० कारण ही मेरी देन मेरे देश और संसार भर के मेरे साथियों के लिये मैं छोड़े जा रहा हूं। ये इसलिये कह रहा हूं कि मैं इन ५० कारणों को तुम्हारे व्यक्तित्व का परिचय दिये वगैर प्रकाशित करना चाहता हूँ। और जहां तक तुम्हारा सम्बन्ध है मुझे कोई आशा नहीं है क्योंकि मैं जानता हूँ कि यदि कोई मर कर भी जिन्दा हो जावे तो तुम एलोपैथिक लोग किसी में विश्वास न करोगे फिर मेरे ५० कारणों का क्या ?

तृषा–शुष्क–मल–कफ़–बदन,
संचालन दुखदाय।
वात प्रकृति सुइसौ दरद,
मासिक नाक बहाय ॥

तृषाः—रोगी को काफी समय के अन्तर से अधिक परिमाण में ठंडा जल पीने की प्रबल इच्छा होती है। अब एकोनाइट, ब्रायोनीया और आर्सेनिक प्यास का भेद देखिये। ब्रायोनीया की प्यास तो ऊपर लिख ही दी है। एकोनाइट की तेज प्यास बहुत ज्यादा परिमाण में पानी पीना परन्तु जल्दी जल्दी पानी पीना। आर्सेनिक की अदम्य प्यास जल्दी जल्दी पानी पीना परन्तु बहुत कम परिमाण में एक दो चम्मच से ही प्यास बुझ जाती है। परन्तु कुछ मिन्टो के बाद फिर पानी उसी सूक्ष्म परिमाण में पीता है।

शुष्क मलः—सूखा कड़ा कंकड़ जसा। अन्नवाही नली के सूखे पन की वजह से मल खूब बड़े लैंड के रूप में निकलता है, वह खूब सूखा और कड़ा रहता है। अब ओपीयम और एलूमीना में भेद देखिये। ओपयिम में मल काला और गोल-गोल गेंद की तरह होता है। एलूमीना पाखाना बिलकुल लगता ही नहीं, इस में बिना कांखे या जोर लगाये, यहां तक कि पतला मल भी जोर दिये बिना नहीं निकलता। ऊपर की तीनों दवाओं में पाखाने का बेग नहीं रहता।

मलः—गरमी के दिनों में या ग्रीष्म ऋतु के पहिले अगर खाने पीने की गड़बड़ से बीमारी हो तो यही दवा ज्यादा फ़ायदा करती है। इस में सवेरे के समय दस्त ज्यादा आते है, दस्त का रंग काला और सड़े पनीर की तरह बदबू आती है, हिलने डुलनें या चलने फिरने पर दस्त आते हैं और शरीर गरम हो जाने पर दस्त आना बढ़ जाता है। ठंडी पीने की चीजें फल और साग सब्जी खाने से पतले दस्त हों या किसी तरह का उद्भेद बैठ कर अतिसार हो जाय तो ब्रायोनीया फायदा करती है। सलफर में सबेरे ही दस्त आते हैं, रोगी क्षण भर भी पाखाने का बेग सम्भाल नहीं सकता, इस में पाखाना लगने से रोगी की नींद खुल जाती है। नेट्रम सल्फ और ब्रायोनीया में सोकर उठने के बाद घूमना आरंभ करने पर पाखाना लगता है।

शुष्क कफ़ः—इस दवा के लक्षण में सर्वत्र सूखापन रहता है, इसलिये खांसी भी सूखी रहती है, गले में कुटकुटाहट होकर खांसी आती है और स्वर कर्कश हो जाता है, बलगभग बिलकुल ही नहीं निकलता, यदि निकलता भी है तो बड़े कष्ट से और बहुत थोड़ा, उसका रंग पीला या उस पर खून के छींटे रहते हैं, रोगी खांसने के समय हाथ से छाती दबा रखता है, खांसी के साथ सिर में बेहद दर्द रहता है और गर्म कमरे में रहने या सोने से खांसी बढ़ जाती है। खांसी के साथ सिर दर्द नेट्रम म्यूर में भी हैं, परन्तु उस में हिलने डोलने से बढ़ने का लक्षण नहीं है।

शुष्क बदनः—मुख बिलकुल सूखा रहता है, जीभ गला खुश्की के मारे चटखते हैं तथा होंठों पर खुश्क पपड़ियां पड़ कर फटने लगती हैं।

संचालन दुखदायः—इस के सारे रोग ज़रा सा हिलने डुलने तथा चलने फ़िरने में बेहद बढ़ जाते हैं। पेट के अलावा सभी स्थानों में दर्द दबाने से घटता मालूम पड़ता है।

वात प्रकृतिः—ग्रन्थियों के, खास कर जहां बड़ी-बड़ी ग्रन्थियाँ हैं, उन स्थानों के दर्द और प्रदाह में तथा कमर के वात में यही दवा फ़ायदा करती है। इसका दर्द कभी कभी जगह बदला करता है, एक जगह से दूसरी जगह चला जाता है, पहिले जिस जगह पर बीमारी होती है उस जगह बिलकुल ही दर्द नहीं रहता या थोड़ा दर्द रहता है और नयी जगह पर तेज दर्द होने लगता है। रोग वाली जगह फूलती है, गरम और लाल हो जाती है, चमकती है, जरा भी हिलने डुलने से तकलीफ बढ़ जाती है। घुटनों में कड़ापन और दर्द होने लगता है, गांठे फूलती, गर्म और लाल हो जाती हैं, नोचने जैसा दर्द, जरा भी हिलने डुलने से दर्द बढ़ जाता है, पैर के तलवे फूलते और गरम हो जाते हैं। गरम सेक या पुल्टिस से दर्द बहुत कुछ घट जाता है।

रोग नया हो या पुराना, गठिया हो या मांस वाली जगह का वात, वात की बीमारी में जहां भी कहीं इस दवा की आवश्यकता होती है वहां अन्यान्य उपसर्गों के साथ बहुत ज्यादा पसीना होना इसके लक्षण में शामिल है।

सुई सौ दरदः—सुई चुभने की तरह फाड़ने कैसी तीव्र वेदना होती है अर्थात् दर्द की प्रकृति सुई गड़ने की तरह। माथे के दर्द के सिवाय अन्य सभी दर्द गर्म प्रयोग से घटते हैं। दाहिना अंग ही इस दवा का प्रिय स्थान है। यकृत की बीमारी में यकृत के स्थान पर सुई गड़ने जैसा दर्द, जलन, अकड़न का दर्द, सूजन, दबाने खांसने और सांस लेने पर भी दर्द का बढ़ना, पेट के ऊपरी भाग में दर्द, दाहने कन्धे में दर्द इत्यादि में इस दवा का प्रयोग करना चाहिये। परन्तु इसके सिवा इस रोग के ऊपर कहे प्रायः समस्त लक्षण चैलीडोनीयम में भी हैं, केवल मल में फर्क है चैलीडोनीयम में मल गन्धक की तरह पीला अथवा राख या मिट्टी के रंग की तरह होता है। इसमें पाखाना होने से पहिले पेट में दर्द नहीं रहता, Bryonia में-पतला दस्त होने पर भी वह चिकना होता है और पेट में मरोड़ का दर्द नहीं रहता। किसी दर्द में सुई गड़ने जैसा दर्द रहे तो ब्रायोनिया और कालीकार्ब लाभदायक है। रस-स्रावी-झिल्ली का प्रदाह होकर जो दर्द होता है उसकी विशेषता है-सुई गड़ने जैसा मालूम होना। प्लूरिसी, मस्तिष्क-झिल्ली प्रदाह, अन्नावरक प्रदाह, हृदवेष्ट प्रदाह इत्यादि बीमारियों में सुई गड़ने की दर्द रहने पर ब्रायोनिया ही उस की ठीक दवा है। Kali carb में सुई गड़ने की तरह दर्द है, किन्तु ब्रायोनिया की तरह हिलने जुलने पर बढ़ता नहीं और उसमें रोगी स्थिर बना रहे तो भी दर्द नहीं घटता। कालीकार्ब का दर्द शरीर के सभी स्थानों में यहां तक कि दांत तक में होता है, और दाहिनी ओर कलेजे के नीचे ही अधिक होता है। सीरस कैविटी के भीतर रस इकट्ठा होने की वजह से होने वाले

काली कार्बोनिकम्

डा० छैलबिहारीलाल बी० ए० दिल्ली

कार्बोनेट आफ पोटाश—क्षार के से स्वाद का एक दानेदार पदार्थ होता है। प्रकृति में यह हर प्रकार के और हर जाति के वृक्षों में पाया जाता है। आरम्भ में यह पौदों और सब्जियों के तन्तुओं की भस्म से प्राप्त हुआ था। यह सारे शरीर पर प्रभाव डालने वाली एक बड़ी विख्यात औषधि है और काले बाल और ढीले ढाले तन्तु वाले मनुष्यों के लिये प्रयोग में लाई जाती है। इसके रोगियों में मुटापे की तरफ बढ़ने की प्रवृत्ति अधिक देखी जाती है। वे मोटे और फूले शरीर के होते हैं परन्तु वे केल्केरियाकार्ब के रोगियों से इस बात में भिन्न होते हैं कि उन में रक्त क्षीणता अधिक और बार बार होती है उनकी त्वचा दूध की तरह सफेद होती है जिस में शोथ की प्रवृत्ति अधिक होती है यह रक्तक्षीणता का ही कारण होता है कि इसके रोगियों को बड़ी जल्दी सरदी और जाड़ा लग जाता है। वे घर में बन्द रहना पसन्द करते हैं क्योंकि थोड़ी सी भी हवा के झोंके से उन को कपकपी होने लगती है। रक्त क्षीणता होते हुए भी ऐसे रोगियों में कभी कभी रक्त झलकने लगता है और गुलाबी चेहरा

[पिछले पेज का शेष]

दर्द में एपिस भी से खूब फायदा होता है। किन्तु एपिस का दर्द डंक मारने जैसा होता है।

मासिक नाक बहाय–विकृत ऋतु स्त्राव से पीड़ित स्त्रियों को ऋतु स्राव होने के समय नकसीर के रूप में ऋतु स्राव होता है।

नोट (१) शरीर को हिलाने से, उठने बैठने से, गरमी से, गरम चीजें खाने से इसके अलावा सवेरे और खाने पीने के बाद भी उपसर्ग बढ़ जाते हैं।

(२) सोने, रोग वाली जगह दबाने, विश्राम करने, स्थिर होकर बैठे रहने और ठंडी चीजें खाने पीने से रोग की शान्ति होती है।

(३) जिन रोगों की नई बीमारी में ब्रायोनिया का प्रयोग होता है, उन रोगों की पुरानी अवस्था में–ऐल्यूमीना का प्रयोग किया जाता है।

(४) ऐल्यू, आर्स, ऐण्टि-टार्ट, बेल, डल्का, हायो, कैलि-कार्व, ऐसिड, म्यूर, नक्स, फास, पल्स, रस, सल्फ ये बाद में बहुत अच्छा काम करती हैं

(५) कैम्फर, कैमो, चैली, काफी, इग्ने, ऐसिडम्यूर, नक्स, पल्स, रस सेनेगा ये दवायें इसकी क्रिया नाशक हैं।

(६) ज्वर में इस दवा की ऊँची शक्ति ज्यादा फायदा करती है।

हो जाता है इस से वास्तव में रक्त की वृद्धि नहीं समझनी चाहिये किन्तु किसी विशेष स्थान पर थोड़े समय के लिये रक्त दौड़ जाता है । इस रक्त संचार की विचित्रता यह होती है कि वह प्रायः शरीर के एक ओर आंशिक होता है । एक गाल लाल और गरम और दूसरा पीला और ठण्डा । रोगी रक्त क्षीणता के कारण पीला होते हुए भी खांसी का दौरा उठने पर उसका चेहरा लाल हो जाता है । इस से स्वस्थ अवस्था नहीं समझनी चाहिये बल्कि केवल स्थानीय अवस्था समझनी चाहिये । ऐसे रोगियों के और विशिष्ट लक्षण उनकी दुर्बलता होती है । रोगी लगभग थका हुआ सा प्रतीत होता है और किसी प्रकार का काम न करने पर भी उसकी रुचि सर्वदा लेटे रहने की होती है । घूमना फिरना बातें करना और इसी प्रकार अन्य छोटे काम भी उसको नागवार प्रतीत होते हैं । यह दुर्बलता और थकान शनैः शनैः बढ़ती जाती है और आखिरकार पक्षाघात का रूप धारण कर लेते हैं । इस ही प्रकार काली कार्ब की दुर्बलता धीरे धीरे ना मालूम तौर पर यथार्थ पक्षाघात में बदल जाती है । रोगी लगातार जुम्हाई लेता रहता है और सारे दिन सोये रहने की इच्छा रहने की शिकायत करता है और गोधूलि के समय भी जबकि उसके चारों ओर सब खुशी, सुख और आनन्द अनुभव करते हैं । यह तन्द्रा की अवस्था बहुत अधिक मात्रा में बढ़ जाती है और विशेषकर भोजन करने के पश्चात् जब रोगी कठिनाई से जगा हुआ रह सकता है । यह कहा गया है कि वे भोजन करते हुए भी सो जाते हैं परन्तु यह स्वस्थ मनुष्यों की सी आराम देने वाली निद्रा नहीं है । सोते हुए वे चौंक उठते हैं । बदन को खसोटते हैं, दांतों को पीसते हैं, बोलते हैं और चिल्लाते हैं । इस निद्रा अवस्था में वे चोटों, भूत प्रेतों, रोगों और मृत मनुष्यों के स्वप्नों से भी परेशान होते हैं और ऐसे ही भिन्न प्रकार के कामवासना सम्बंधी विचारों से भी । इन रोगियों की एक और विलक्षणता उन के छुए जाने में भी पाई जाती है । वे यह सहन नहीं कर सकते कि कोई भी उनको छूले । वे अपने को छुआना ही पसंद नहीं करते । वे छू जाने से चौंक पड़ते हैं विशेषकर पैरों को ।

काली कार्ब का महान विशिष्ट लक्षण उसके दर्दों में पाया जाता है । इस के दर्द सुई चुभाने और छुरी घुपोने के से होते हैं जो कि आराम करने और पीडित भाग की तरफ लेटने से बढ़ते हैं । वे प्रातः ३ बजे बढ़ते हैं । काली-कार्ब के यह दर्द हर स्थान पर होते हैं इसकी तसदीक आपको बिना अधिक खोज व परिश्रम के हो जायेगी । मांसिक रुपेण वे धैर्यहीन उत्तेजित और चिड़चिड़े होते हैं । कोलाहल और मनुष्य की आवाज भी उनको सहन नहीं होती । कुछ तो स्पर्श असहिष्णू होने से और कुछ स्नायविक प्रकृति के होने के कारण वे जल्दी चौंक पड़ते हैं । वे बहुत शीघ्र डर भी जाते हैं । उन्हें दृष्टिभ्रम हो जाता है । कुछ का कुछ दिखने लगता है । वे समझ लेते हैं कि कमरे में मनुष्य हैं जबकि वहां कोई भी न हो । वे कल्पित शक्लों और विचारों से परेशान हो जाते हैं जिनका

यथार्थ में कोई अस्तित्व ही नहीं होता। काली-कार्ब का रोगी अपने चारों तरफ की वस्तुओं से भी उदासीन सा रहता है। इस प्रकार वह एसिडफास के रोगी की तरह है केवल भेद इतना होता है एसिडफास में स्नायविक कारणों से ऐसा होता है और काली-कार्ब में शारीरिक थकावट के कारण।

एक और विशिष्ट लक्षण जो अत्यन्त आवश्यक हाते हुए भी किसी ने नहीं छुआ है वह ऊपर के पलकों और आंख के ढेलों के बीच में फूली हुई सूजन होती है। वह एक प्रकार की फुलावट होती है जो कि उपर्युक्त स्थान में फूली थैली की सी प्रतीत होती है।

हम को काली-कार्ब का कमर का दर्द नहीं भूलना चाहिये। यह एक ऐसा लक्षण है जो सोने से तोलने योग्य है। इस कमर दर्द के साथ बहुत कमजोरी होती है और बहुत पसीना आता है। डा० फैरिंगटन इन लक्षणों को बड़ी प्रधानता देते हैं। रोगी बार बार यही कहता है कि उसकी कमर टूटी जाती है और चलने में इतनी अधिक टूटन हो जाती है कि रोगी आराम लेने के लिये सड़क पर ही लेट जाना चाहता है। दर्द में दबाव सा बहुत लगता है और मालिश से आराम प्रतीत होता है। वस्तिगह्वर में एक बोझ सा प्रतीत होता है। यह दर्द नैतम्बिका पेशियों से नितम्ब की तरफ फैलता है और फिर उससे होता हुआ घुटने और उससे नीचे तक चला जाता है। इस लक्षण पर डा० क्लार्क ने एक वृद्धा को विचित्र रूप से ठीक किया। उस की कमर में दर्द होता था और उसके साथ ही योनि से बहुत बदबूदार स्राव निकलता था जिसको कि विख्यात एलोपैथिक डाक्टरों ने कर्कट (कैन्सर) रोग निर्णय किया था। काली-कार्ब के प्रभाव से दर्द जाता रहा, योनि-स्राव भी बिलकुल बन्द हो गया और वह कितने ही वर्षों पश्चात किसी अन्य रोग से परलोक सिधारी। काली-कार्ब के इस कमर के दर्द के लक्षण के अनुसार इसका प्रयोग करने पर अपर्याप्त प्रसव के दर्द बढ़ गये, गर्भपात रुक गया, गर्भ धारण सुगम हो गया, योनि से बहुत रक्त-स्राव भी रुक गया और कमर का दर्द भी ठीक हो गया। इस कमर के दर्द का जिक्र करते हुए डा० फैरिंगटन ने एक स्नायविक प्रकृति की स्त्री का वर्णन किया है जिसको अजीर्ण रोग था और वह उन्होंने बिलकुल ठीक कर दिया, उस को कालीकार्ब इस लक्षण पर दिया था कि कमर का दर्द खाने के बाद बढ़ता था। इस लक्षण से उन्होंने काली-कार्ब के सम्बन्ध में सोचा और दिया। जिससे उसका कमर का दर्द ही ठीक नहीं हुआ किन्तु अजीर्ण भी जाता रहा।

इस दवा के अजीर्ण के लक्षणों पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। इसमें भोजन के लिए बड़ी अनिच्छा और घृणा सी होती है। खट्टी डकारें तीक्ष्ण अम्लयुक्त भोजन का ऊपर को आना, पेट के ऊपर कौड़ी में बड़ी असहिष्णुता, उदर गह्वर में एक विचित्र प्रकार के खालीपन का अनुभव होना और इनके अतिरिक्त पेट में वायु अधिक जमा हो जाना पेट का फूल जाना आदि ऐसे लक्षण

हैं जो हमको काली-कार्ब की ओर ले जाते हैं।

अन्त में हम श्वास यन्त्र पर काली-कार्ब की प्रतिक्रिया के सम्बन्ध में विचार करेंगे। यह वायुनली-भुज प्रदाह, फुसफुस प्रदाह और फुसफुस के क्षय में प्रयोग में आती है। इन सब प्रदाहों में इसका विशिष्ट लक्षण फेफड़ों की दीवारों में सुईयां चुभने का सा दर्द होता है। खाँसी सूखी और दौरे में उठती है। खांसी की एक विलक्षणता यह है कि लेसदार चाहे बलगम हो या पीप हो जो कुछ भी निकलता है वह निगल लिया जाता है। प्रायः बलगम सख्त और सफेद श्लेष्म सा होता है कि खांसते समय स्वयं ही हलक से बाहर आ पड़ता है या रोगी उसको बाहर थूक देने के अयोग्य होता हुआ निगल जाता है। सांस का रुक कर आना, पीपभरा बलगम, छाती में खदबदाने और घड़घड़ाने के से शब्द, प्रातः ३ बजे रोग वृद्धि और खांसते खांसते खाये पिये हुये पदार्थों का निकल जाना—यह सदा ध्यान रखने योग्य लक्षण हैं। खाँसी खाने और पीने के पश्चात अधिक हो जाती है और रोगी विशेषकर चलते समय अपनी छाती में दुर्बलता और अवसन्नता सी अनुभव होने की शिकायत करता है। डा० हैनीमैन ने क्षय रोग के क्षीण करने वाले असर के नाश करने के लिए इस दवा की बहुत सिफारिश की है। उनके विचारानुसार प्रत्येक रोगी को जिस के फेफड़ों में पीप पड़ गई हो इस एन्टीसोरिक (सोरा नाशक) दवा से प्रारम्भ करना चाहिये। यह फेफड़े के बाईं तरफ के अधो भाग की बजाय फेफड़े के दायें अधो भाग पर अधिक असर करती है। खांसी जरा सा भी परिश्रम करने या लेटने से बढ़ जाती है। काली-कार्ब हृदय की वसा (चर्बी) को कम करती हैं और हृदय के बायें ग्राहक कोष्ट के कपाटों की निष्क्रियता को ठीक करने में बड़ी प्रभावशाली है। इसकी नाड़ी रुक रुक कर चलने वाली, धीमी और दुर्बल होती है। रोगी प्रायः शिकायत करता है कि उसका हृदय धागे से लटका हुआ हैं। दूसरी बात आसानी से गले का रुक जाना है। भोजन सहज ही में श्वास नली में चला जाता है और पश्चात खांसी के दौरे आने आरम्भ हो जाते हैं। यह हृत्पिण्ड के दर्द में भी अधोलिखित लक्षणों में बड़ी लाभदायक है—सुई चुभने का सा दर्द जो जोर के सांस लेने और खांसने से बढ़ जाता हो। हृत्पिण्ड में जो अधिक परिश्रम करने के पश्चात बाहों का सो जाना, गला रुक जाना, सांस लेने में आपत्ति और हृदय का जोर-जोर से स्पन्दन।

काली कार्ब के दो केस

१—एच-आर-एक ११ वर्षीय लड़के को हृदय का स्नायुशूल हुआ और उसके साथ साथ बायें फुसफुस में प्रदाह हो गया। मैंने मरीज को बांई तरफ को आधी झुकी अवस्था में पाया और वह खांसी नहीं रोक सकता था। नाड़ी एक मिनिट में १४५ थी और श्वास-प्रश्वास ५० थी। पहिले दूसरी अवस्था के लिये उसको एकोनाइट दिया गया क्योंकि जरा सी भी हर्कत से उसकी छाती में जो सूई चुभोने का सा दर्द होता था वह बढ़ जाता था और सूखी

खांसी भी। २४ घंटे में कुछ फायदा न हुआ। फिर उतने ही समय तक आर्सिनिक दिया गया उससे भी कुछ लाभ नहीं हुआ फिर ४८ घन्टों में पहिले ब्रायोनिया दिया गया और फिर फासफोरस दिया गया। इतने समय के पश्चात् मैंने यह देखा कि मरीज को जब मैंने पहिले देखा था उसकी अपेक्षा कम आराम में था क्योंकि अब वह सिर को भी नहीं घुमा सकता था या शरीर से इधर उधर करवट भी नहीं बदल सकता था और चार दिन तक एक दफा में दस मिनिट से अधिक सो भी नहीं सकता था वह भी बहुत देर देर में। इस समय मैंने उसको काली-कार्ब २०० दिया। उसका प्रभाव तुरन्त हुआ। सूई चुभाने का सा दर्द भी ठीक हो गया, खांसी भी हलकी हो गई और पहिली खुराक लेने के पश्चात् वाली रात्री में मरीज अपने शरीर को ४५ डिग्री के कोण पर झुका कर आराम से लेट भी सका और कई घन्टों तक सोया। इसी क्षण से उसमें स्वास्थ्यसञ्चार आरंभ हो गया। इस मरीज को आरम्भ में जो भी औषधियां दी गईं उनसे कोई स्थाई प्रगति नहीं हुई जब तक कि काली-कार्ब न दी गई और जब वह देदी गई तो उसके देने के पश्चात् प्रगति स्थाई रूप से हुई।

—डा० प्रेस्टन

२—एक २१ वर्षीया कोमलांगिनी अन्ना कस्टरा को दमा हो गया और जोड़ों में बहुत सख्त दर्द। उसका अस्पताल में इलाज हुआ। वहां से विदा होने के पश्चात् एक वर्ष से अधिक वह पाकाशय सम्बन्धी तथा अन्य प्रकार की पीड़ाओं से पीड़ित रहती है। कुछ भी थोड़ा सा खालेने से भारीपन हो जाता है और पेट में तनाव हो जाता है। जरा सी कौफी या पतला सा शोरबा लेने से पेट फूल जाता है और डकारें मितली और उलटी होने लगती हैं। वह प्रायः सिर दर्द की भी शिकायत करती रहती है। पेट में गरमी बढ़ जाती है और आंतें फड़कने लगती हैं, सिर में चक्कर, लगातार सरदी का लगना, ठन्डे पैर, अन्दर सरदी का अनुभव और बार बार पेशाब करने की हाजत परंतु पेशाब धीरे धीरे धीरे आता है और जलन सी मालूम होती है। टट्टी सूखी और रुक रुक कर आती है। कलेजे में सख्ती और जरा भी छूने से दर्द, सांस में भारीपन और सांस में अधिक दबाव मालूम होने लगता है दर्द पसलियों से कमर की तरफ जाता है। पांव ठण्डे, पीला चेहरा और आंख के चारों तरफ शोथ, बेचैनी और स्वप्नों वाली नींद और सूखी त्वचा। जब तक वह काम करने के योग्य रही, पीड़ित रही और जब पीड़ा बढ़ गई तो २ दिसम्बर, १८६६ को मजबूर हो गई। काली-कार्ब२०० की ३ खूराकों ने उसे बिलकुल ठीक कर दिया।

COUNT MATTEI'S
ORIGINAL
ELECTRO HOMŒOPATHIC
MEDICINES

Globules	Small Tube	1-8-0
Globules	Large	3-0-0
Electricities	Per phial	3-8-0
Ointments	Per pot	3-8-0
Aq. per la pele	Per phial	3-8-0
Guide (Hindi)		0-8-0

Fresh and big Stock
Directly Imported from Italy
Discount to Wholesale Buyers.
HOMOEOPATHIC FREE DISPENSARY
Chandni Chowk, DELHI 6.

प्रकृत आरोग्य किसे कहते हैं ?

डा० ब्रह्मदत्त वर्मा, M. D. (होमियोपैथ) होशियारपुर

साधारण मनुष्यों का यही विश्वास है कि रोगी के रोग लक्षण अगर दूर हो जावें, अथवा रोगी न मरे या एक रोग लक्षण से दूसरे रोग लक्षण न आ पहुँचे तो पहले का रोग अवश्य ही आरोग्य हो गया है। ऐसी धारणा का कारण खास कर यही है, कि होमियोपैथी के सिवाय और किसी भी पैथी में "रोगी" आरोग्य का लेशमात्र भी उल्लेख नहीं है। "रोग" को ही आराम करना पड़ता है और यही सम्भव है—लोग यही जानते भी हैं।

चिकित्सक भी कहते हैं-"ज्वर तो हटा दिया, पर दमा हो गया" तो क्या किया जायेगा, इतने घबराने का कोई कारण नहीं है, यह एक अलग ही रोग है। अथवा "चेचक" तो आराम कर दी, पर रक्तमाशय हो गया है, यह एक अलग ही बीमारी है, चिकित्सा करने से ही आराम हो जावेगी" इत्यादि। अतएव साधारण मनुष्य यदि इसी तरह का विश्वास कर ले तो इस में आश्चर्य की ही कौन सी बात है? पर जरा ध्यान देने पर ही मालूम होता है, कि—कोई भी रोग स्वतन्त्र नहीं है। नाम-भर केवल स्वतन्त्र या पृथक है। इसी कारण हमारा रोगी ही चिकित्सा का विषय है रोगी जिस तरह ज्वर में बीमार था, ज्वर छूट जाने के बाद दमा की अवस्था में भी उसी भाव से बीमार है, अथवा चेचक की अवस्था में रोगी जैसा पीड़ित हो रहा था, चेचक आराम होने के बाद रक्तमाशय की अवस्था में भी उसी प्रकार पीड़ित हो रहा है। रोगी किसी भी अवस्था में स्वस्थ नहीं है। चिकित्सक भी यही जानते हैं और लोग भी यही जानते हैं, कि यदि किसी तरह रोग-लक्षण हट गये तो काम बन गया अथवा यदि रोगी न मरा तो चिकित्सा भी हुई, आरोग्य भी हुआ।

प्रकृत आरोग्य किसे कहते हैं ? प्रकृत आरोग्य का लक्षण क्या है ? पूर्व-सूचना क्या है ?—इत्यादि विषयों को अच्छी तरह जाने बिना पुरानी या नयी बीमारी की चिकित्सा करना एक भारी भंवर में घूमते रहने के समान है।

पहली बात—एक निर्जीव यन्त्र, जैसे पानी की कल, कपड़े की कल, या जहाज़ की कल खराब हो जाने पर उसकी मरम्मत कर देना और मनुष्य की बीमारी आराम कर देना क्या एक ही बात है ? जरा सोचने पर ही मालूम होता है, कि नहीं, एक बात नहीं, एक निर्जीव यन्त्र कितने ही छोटे २ अंशों की एक समष्टि भर है, पर मनुष्य का शरीर ऐसा नहीं है। जड़ जातीय किसी यन्त्र का कोई भाग

खराब होने वा बिगड़ जाने पर यदि उस की मरम्मत कर दी जाती है, तो सारा यन्त्र काम करने लगता है, पर जीव-देह में ऐसा नहीं होता, क्योंकि जीव देह कितने ही यन्त्रों की समष्टि ही नहीं बल्कि कुछ और भी है। क्या है ? उसमें मन है, उसमें चैतन्यता है । रोगी अंश में रोग लक्षण प्रकट होने के पहले मन में बीमारी पैदा हुआ करती है, क्योंकि मन ही इस शरीर यन्त्र को चलाने वाला है, यदि मन में गड़बड़ी न हो तो शरीर में गड़बड़ी पैदा ही नहीं हो सकती । सबसे पहले मन में ही विकार या मन ही बिगड़ा दिखाई देता है, इसके बाद ही किसी खास यन्त्र में यह विकार विकसित भी हो पड़ता है ।

मानव-देह, मानव मन की ही एक छाया है, स्वस्थ अवस्था में इस में किसी तरहकी विश्रृंखलता नहीं रहती । सबसे पहले यह गड़बड़ी जीवनी-शक्ति में पैदा होती है और मन पहले उसका आभास अनुभव करता है । उसका ही प्रतिबिम्ब शरीर-यन्त्र में दिखाई देता है और इसी समय सब कोई स्थूल चक्षु देख पाते हैं कि "रोग" हुआ है । यदि मन की गड़बड़ी न जाये, तो देह का रोग कैसे जायगा ? इसी तरह जब ठीक २ आरोग्य होगा, तो पहले मन ही आरोग्य होगा और फिर अंत में शरीर की बीमारी, जो हम सब को स्थूल चक्षु दिखाई देती है, वह हट जायगी । मानव शरीर को एक निर्जीव यंत्र समझ कर शरीर के अंश की मरम्मत का प्रबंध कर, मानव देह को स्वस्थ बना देने की आशा करना एक दुस्साहस है । मन के आरोग्य होने के बाद अर्थात् किसी कारण से उस की जो शृंखला नष्ट हो गयी है, उसके फिर से प्राप्त होने पर वह शृंखला देह-यंत्र में भेजी जाती है । अतएव देह भी आरोग्य हो जाती है। यदि सच्चे आरोग्य की आवश्यकता हो, तो पहले देखना होगा, कि मन की उन्नति हुई है या नहीं, यदि मन की उन्नति हुई प्रतीत पड़े, तो समझना होगा कि अरुणोदय हुआ है, सूर्योदय में देर नहीं है, और रोग शीघ्र ही आरोग्य होगा। और मन की उन्नति न हुई भास पड़े तो जानना होगा कि रोगी सच्ची आरोग्यता की ओर अभीं तक अग्रसर नहीं हुआ है। मैं इसको आपके समझने के लिये एक सामान्य उदाहरण से समझाता हूँ। रसटक्स (Rhustox) या आर्सेनिक (Arsenic) के किसी रोगी को दवा देने के १०-५ मिनट बाद ही सब से प्रथम रोगी की बेचैनी दूर होती है, इस के बाद शारीरिक या बाहरी लक्षण दूर होते हैं। यदि ऐसा ही हो, तो समझना होगा, कि औषध का चुनाव (Selection) ठीक हुआ है, और रोगी वास्तविक आरोग्य-पथ की ओर अग्रसर हुआ है, इसलिये यह सर्वथा याद रखना चाहिये कि हम लोग एक ऐसे जीव देह की चिकित्सा कर रहे हैं, जिसका मन होता है। उन्नति प्रथम मन में ही आरम्भ होनी चाहिये, इसके उपरांत यह मन से देह में आयेगी। यदि रोग-लक्षण के दूर होने के प्रथम ही या साथ ही साथ रोगी भी स्वच्छन्द अनुभव न करे तो प्रकृति आरोग्य नहीं हुआ, यह अच्छी तरह से जान रखना चाहिये।

चिकित्सक का क्या काम है ? चिकित्सक का काम है—रोगी को स्वस्थ और स्वच्छंद बना देना और उसके रोग लक्षण जाने पर यदि वह स्वयं अपने को स्वस्थ समझे तभी आरोग्यता उसको मिली अन्यथा नहीं।

अब तक जो वर्णन हुआ, उस से यह माना गया, कि औषध प्रयोग के बाद "मानसिक उन्नति" यदि सब के पहिले दिखाई दे तो समझना होगा कि प्रकृति आरोग्यता आरम्भ हुई है और यदि ऐसा न हो, तो दूसरा ओर चाहे जितना ही लाभ क्यों न मालूम हो, वास्तविक आरोग्य की आशा नहीं की जा सकती। ऐसा क्यूं ? क्योंकि रोगी को यदि स्वयं आराम न मालूम हो, तो औषध की आरोग्यकारिणी क्रिया अभी तक आरम्भ नहींहुई।

"अब हम इस परिणाम पर पहुंचे कि मानसिक उन्नति ही प्रकृति आरोग्य की प्रथम सूचना है" इस अमूल्य कसौटी को सर्वदा स्मरण रखना चाहिये पर यदि मानसिक उन्नति के साथ ही साथ रोगी के रोग-लक्षण सब में उन्नति होती दिखाई दे तो सोने में सुगन्ध ही समझना चाहिये—अतएव, मानसिक उन्नति की ही सब से प्रथम आवश्यकता है।

महात्मा हैनिमैन और उनके सभी शिष्यों ने मानसिक लक्षण ही को प्रधान माना है और बड़े २ होमियोपैथिक डाक्टरों ने मन ही को प्रधान माना है। डाक्टर केन्ट (Kent) ने भी अपनी फिलासफी पुस्तक में कहा है कि मनुष्य की चिन्तनशक्ति और प्रेम यह दोनों निकाल देने से मनुष्य में और कुछ भी नहीं रहता। अतएव प्रत्येक होमियोपैथ को चाहिये कि मन के लक्षण को ही प्रधान माने और लक्षणों को मिलाकर औषध का प्रयोग करे। औषध के प्रयोग करने के बाद चित की अवस्था में उन्नति हुई या नहीं इस पर विशेष लक्ष्य रखना चाहिये। मन के लक्षणों में उन्नति न होकर यदि सिर्फ शरीर के लक्षण दूर हो जांय तो खयाल करना चाहिये कि रोगी वास्तव में आरोग्य नहीं हुआ है। धन्य हो हैनिमैन—तेरी क़ीर्ती सर्वथा अमर रहे।"

काउन्ट मैटी की
असल
इलैक्ट्रो होमियोपैथिक
दवायें

गोलीयां	छोटी शीशी	१॥)
गोलियां	बड़ी शीशी	३)
बिजलियां	फी शीशी	३॥)
मरहम	फी शीशी	३॥)
अक्वा परला पील	फी शीशी	३॥)
हिन्दी की गाइड		॥)

इटली से आया हुआ ताजा स्टाक
थोक खरीदारों को कमीशन
होमियोपैथिक फ्री डिस्पैंसरी
चाँदनी चौक, दिल्ली—६

रोग और रोगी में बड़ा अन्तर है, यह बात कभी न भूलनी होगी ।

रोग दूर करने लिये रोगी की चिकित्सा करनी होगा ।

अनुभूत प्रयोग

फासफोरस और ट्यूबरकुलनिम

मिस्टर "बी" ६४ वर्ष । लम्बे, दुबले नीली आखें, रंग जरा सांवला, पोषण की कमी। प्रचारक थे मगर अब अवसर प्राप्त हैं। बरसों से खुश्क खुरखुरी खांसी की शिकायत करते हैं जो प्रातःकाल के समय, ज्यादह परिश्रम करने से एवं ठण्ड से बढ़ जाती है।

दो साल हुए जोर का नजला बुखार हो गया था तब से ज्यादह बीमार रहते हैं। बलगम हल्के रंग का होता है, कभी २ पीलापन लिये हो जाता है, चिपकने वाला होता है तथा कठिनाई से निकलता है।

प्रातःकाल बलगम निकलने में जो कष्ट होता है उससे घबरा जाता है। गला खुश्क सा है और कभी २ आवाज भी बैठी सी लगती है। खांसी रोगी को रात को इतना कष्ट नहीं देती लेकिन सुबह उठते ही बड़ी तकलीफ देती है। स्नायविक प्रकृति का है ज़ल्दी थक जाता है।

सर्दी जल्दी २ लग जाती है और तब खांसी भी बढ़ जाती है। पेशाब बार २ आता है और रात को भी कई बार उठना पड़ता है पेशाब करने में जरा सा लगता है।

खानदानी हिस्टरी बहुत खराब है। मां और भाई की मृत्यु क्षय रोग से हुई थी और बहन की न्युमोनिया से। २० वर्ष पहले इसे रात को पसीने बहुत आते थे। और खांसी भी कोई साल भर तक रही थी। परीक्षा से मालूम हुआ कि छाती तंग है और पिचकी हुई है। स्वास की गति मन्द और अधूरी है। छाती की परीक्षा से पता लगा कि दोनों ऊपर के सिरों पर थोड़ी जगह शब्द नहीं होता खास तौर पर बांई तरफ अधिक शून्य है। फेफड़े के निचले भाग में घरघराहट की मोटी २ आवाज सुनाई देती है और ऊपरी एक तिहाई हिस्सा अच्छी तरह नहीं फैलता। दर्द था न अब है। थोड़ा सा बुखार बढ़ जाता है।

फासफोरस दिया गया।

अगले हफ्ते तक कोई प्रगति नहीं हुई पर फिर भी वही दवा हर तीन घण्टे पर दी जाती रही। अगले हफ्ते में कुछ प्रगति मालूम हुई खांसी कम उठी लेकिन इसके बाद उसे सर्दी लग गई और हालत और खराब हो गई।

यह समझ कर कि रोगी में क्षय-प्रवणता है एक खुराक ट्यूबरकुलीनम १००००० की एक पुड़िया दी गई।

इसके बाद प्रगति शनैः २ जारीरही। एक महीने के अन्त में खांसी बिलकुल जाती रही और बलगम कम हो गया तथा आसानी से निकलने लगा। दो मास बाद परीक्षा से पता चला कि फेफड़े पहले से बहुत अच्छे हैं—शून्यता कम हो गई है और रोगी का स्वास्थ्य कई सालों से अच्छा है।

ट्यूबरकुलीनम की इस एक ही खुराक ने ऐसा अच्छा काम किया कि यह खयाल होता है कि यद्यपि फासफोरस के लक्षण थे पर शुरू में यही देना चाहिये था।

ट्यूबर कुलीनम की प्रतिक्रिया बिलकुल सलफर के सदृश्य है जो विषों को निकाल कर जीवनी शक्ति को जाग्रत कर देता है।

छाती में दर्द का न होना फासफोरस का ऐसे रोगियों में खास लक्षण है इस लिये इसको टूयूबरकुलीनम का भी खास लक्षण समझ लेना चाहिये अगर दर्द हो तो भी ट्बर कुलीनम दे देना चाहिये।

(होमियो बुलोटिन)

खुद ही दवा ढूंढ ली

एक दिन प्रातःकाल जब मैं उठा तो कोई सात बजे होंगे। रात मेरी कुछ बेचैनी से गुजरी थी, मैंने देखा कि मेरी गर्दन अकड़ी हुई है और सिर तकिये पर से उठाने में कष्ट हो रहा है।

कोई ५-७ रोज से व्यवसाय का फिक्र व परेशानी मुझे अधिक रहा था फिर हवा ठण्डा चल रही थी इस लिये मुझे फौरन एकोनाइट का खयाल आया। लेकिन जब मैं उठा तो मुझे पता लगा कि मेरी कमर में दर्द है और रीढ़ की हड्डी भी दुःख रही है। इस से मैंने सोचा कि दवा कोई दूसरी चुननी होगी और ज्यादा गौर करना होगा।

मैं कोई होमियोपैथिक डाक्टर नहीं हूं और जब मैं या मेरे कुटुम्ब में कोई बीमार हो जाता है तो हमें सौभाग्यवश एक होमियोपैथिक डाक्टर की सेवायें मिल जाती हैं और नई स्वास्थ योजना में हमारा नाम भी उसी के पास दर्ज है। इस मामले में मैं समझता हूं मेरा परिवार बहुत ही खुशकिस्मत है। लेकिन हम लोग हर छोटी मोटी चीज के लिए उनके पास दौड़े नहीं जाते, हमारे पास कुछ होमियोपैथिक दवायें हैं जिनका समयानुकूल प्रयोग कर लेते हैं। हमारे पास कुछ किताबें भी हैं जिन में सर्वोत्तम डा. क्लार्क की "डिक्शनरी आफ डौमेस्टिक मैडीसिन" है।

मैंने यह पुस्तक देखी और देखा कि एक्टीया रेसीमोज़ा के निम्न लक्षण थे: "गर्दन के पठ्ठों में बातज दर्द और कड़ापन, रीढ़ का दुखना" इन लक्षणों की पुष्टी करने के लिये मैंने बोरिक की मैटीरिया देखी और उस में रीढ़ की दुखन के अति-

सम्पादकीय विचार

५० कारण

इस अंक के साथ डा० बर्नेट की प्रसिद्ध पुस्तक "होमियोपैथ बनने के ५० कारण" का धारावाही अनुवाद, जो संदेश में कई मास से छप रहा था समाप्त होता है। पाठकों ने देखा होगा कि यह ५० कारण जो डा० बर्नेट ने दिये हैं वे वास्तव में ५० रोगियों का वर्णन है जिन्हें उन्होंने विशुद्ध होमियोपैथिक दवा से अच्छा किया। ये "५० कारण" कोई सामयिक चीज नहीं है बल्कि सदा सर्वदा मनन और अध्ययन करने योग्य। इन में से एक २ कारण को जब आप पढ़ेंगे तो देखेंगे कि उनमें एक २ विशेष बात छिपी हुई है। डा० बर्नेट इंगलैण्ड में होमियोपैथी को चार चाँद लगाने वाले महारथियों में से एक थे। हम आशा करते हैं कि पाठकों ने अपने पुराने संदेश सम्भाल कर रखे होंगे और एक दफा फिर इन "५० कारणों" को पढ़ जावेंगे। जब २ आप इन "५० कारणों" का अध्ययन करेंगे आप उन में से कुछ न कुछ और ग्रहण करेंगे। एक होमियोपैथ का जीवन है ही स्वाध्यायमय जीवन और ये "५० कारण" स्वाध्याय के लिये उपयुक्त सामग्री हैं।

४ वर्ष समाप्त

इस अंक के साथ सन्देश के चार वर्ष समाप्त हो रहे हैं। हमारा चार वर्ष का जीवन बड़ा संघर्षमय है। मगर सन्देश घाटे से चल रहा है। पाठकों ने ग्राहक बढ़ाने में पिछले दिनों सहायता की है मगर अभी कम से कम ३०० गाहक और बनने पर कुछ घाटा पूरा हो सकेगा। हम इस अवसर पर अपने गाहकों, लेखकों व विज्ञापन दाताओं को धन्यवाद देते हैं जिन

[पिछले पेज का शेष]

रिक्त-कमर दर्द आदि लक्षण भी मिल गये। कुछ और लक्षण भी मिले। मैंने सीमीसीफूयगा ३ दो दो घंटे बाद लेना शुरू किया। कोइ ३ खुराक के बाद शाम तक मैं बिलकुल ठीक हो गया।

इस प्रकार मैं रोगमुक्त हुआ। थोड़ी सी होमिहोपैथिक दवाये और कुछ किताबों की सहायता से हम प्रायः अपनी, अपने परिवार वाले व पड़ोसियों की काफी सेवा कर सकते हैं।

ए. बी. पर्स्टन

की कृपा से यह चार वर्ष पूरे हुए हैं और आशा करते हैं कि हमारे कृपालु महोदय अपनी कृपा बनाये रखेंगे. उधर हम संदेश को उनके लिए अधिक से अधिक उपयोगी बनाने का प्रयत्न करेंगे।

चैरीटी शो

दिल्ली की होमियोपैथिक फ्री डिस्पैन्सरीज की सहायतार्थ १-९-५२ को प्रातः ९ बजे जुबली टाकीज में "जोगन" नाम का चित्र दिखाया जा रहा है। यह रनजीत मूवीटोन का बड़ा अच्छा चित्र है। सबके देखने लायक है। इसकी तमाम आय रोगी सेवा में खर्च होगी। ५) व २) के टिकट हैं। उस रोज ईद की छुट्टी भी है। १०) में तीन टिकट परिवार के लिए मिलेंगे। हम आशा करते हैं कि दिल्ली निवासी अधिक से अधिक टिकट खरीद कर सहायता करेंगे।

उत्तरप्रदेश होमियोपैथिक बोर्ड

उत्तरप्रदेश सरकार ने १५ अगस्त १९५२ को उत्तरप्रदेश होमियोपैथिक मैडीसिन एक्ट ५१ की धारा ७ के अनुसार एक बोर्ड नियुक्त कर दिया है। यह नियुक्ती २ वर्ष के लिये हुई है:—

१—श्री मुहम्मद सुलतान आलम खां—
एम० एल० ए० चेयरमैन

सभासद्

२—डा० एस० एन० चड्ढा —इलाहाबाद
३—डा० जे० एम० चौधरी —मेरठ
४—डा० जे० पी० मुकर्जी —कानपुर
५—डा० जे० एन० हजरा —आगरा
६—डा० एस० सी० सरकार —आगरा
७—डा० आर० एस० रस्तोगी —देहरादून
८—डा० एच० के० बनर्जी —गोरखपुर
९—डा० ए० एन० पांडे —बनारस
१०—डा० जी० एन० ओहदेदार—लखनऊ
११—डा० बी० एस० टण्डन —लखनऊ
१२—डा० ए० घोष —लखनऊ
१३—डा० ए० पी० अरोरा —लखनऊ
१४—डा० के० पी० त्रिवेदी —लखनऊ
१५—डा० सत्यवती सिन्हा —रुड़की

हम उत्तरप्रदेश की सरकार को धन्यवाद देते हैं और उत्तरप्रदेश के तमाम होमियोपैथी के प्रेमियों को बधाई।

उत्तर प्रदेश में होमियोपैथिक डाक्टरों का रजिस्ट्रेशन

हमारे पास उत्तरप्रदेश से बहुत से पत्र आये हैं जिन में यह पूछा गया है कि होमियोपैथिक डाक्टरों का रजिस्ट्रेशन कैसे होगा? कब होगा? और उन्हें क्या करना चाहिये? इन पत्रों का अलग उत्तर देना कठिन है। जो सज्जन अलग उत्तर चाहें उन्हें जवाब के लिए टिकट भेजने चाहिये।

अन्यत्र पाठक पढ़ेंगे कि उ० प्र० सरकार ने होमियोपैथिक बोर्ड बना दिया है। अब यह बोर्ड नियमादि बना कर रजिस्ट्रेशन चालू करेगा। इस सम्बन्ध में विशेष विवरण हम सन्देश के अगले अंक में देंगे और समय २ पर जो नियमादि बनेंगे उनकी सूचना भी प्रकाशित करते रहेंगे।

डाक्टर रडौल्फ एफ० रैब

समस्त होमियोपैथिक जगत डाक्टर रेब की मृत्यु के समाचार सुन कर दुःखी होगा। डाक्टर रेब की आयु ८० वर्ष की थी और लगभग १० वर्ष से वे अवसर

ग्रहण किये हुये थे। उनकी मृत्यु का समाचार इस ही लिए देर से मिला। इस विद्वान् ने १८ मार्च १९५२ को अपनी जीवन लीला समाप्त की। डा० रेब ने सन् १८९७ में न्यूयार्क में प्रेक्टिस शुरू की थी। सन् ९६ में आपने न्यूयार्क होमियोपैथिक मैडिकल कालेज व फ्लावर हस्पताल से एम. डी. डिग्री हासिल की फिर आप एक साल के लियें बर्लिन गये और वहां होमियोपैथी की विशेष प्रशिक्षा प्राप्त की। आप शीघ्र ही न्यूयार्क में एक सफल होमियोपैथ प्रसिद्ध हो गये। सन् ३० तक आप अपने ही कालेज में मैटीरिया मैडीका के प्रोफेसर रहे और कुछ दिन उसके डीन भी रहे।

आप कलम के धनी थे और इस ही लिये सन १८ से २८ तक लगभग १२ वर्ष आपने अमरीका के प्रसिद्ध मासिक "होमियोपैथिक रिकार्डर" का बड़ी योग्यता से सफलतापूर्वक सम्पादन किया। आप होमियोपैथिक डाक्टरों की सभाओं में भाग लेने के अतिरिक्त न्यूयार्क की "होमियोपैथिक लेमैन्स लीग में भी बड़ी दिलचस्पी लेते थे और प्रायः उनके अधिवेशनों में सम्मिलित होते थे।

"होमियोपैथिक रिकार्डर" में आपके सम्पादकीय नोट बहुत ही मनोरंजक और ज्ञानवर्धक होते थे। आप संक्षिप्त में लिखते मगर उस में बहुत मतलब की बातें होती। एक बार आपने एक नोट दवाओं के परीक्षण पर लिखा और यह सिद्ध किया कि जानवरों पर दवाओं को आजमाने का जो एलोपैथिक तरीका है वह सरासर गलत है। उससे उन लक्षणों का तो संग्रह होता ही नहीं जो रोगी स्वयं कहता है या अनुभव करता है। मिसाल के तौर पर आपने बताया कि उनके पास रक्त चाप (ब्लड-प्रैशर) का एक केस था उसको रात को नींद न आती और जो आती उसमें सांपों के सुपने आते थे। लैक कैनिनम दस हजार की एक मात्रा से रोगी के सुपने भी जाते रहे और ब्लड प्रैशर भी ठीक हो गया। यदि कुत्तिया के दूध (लैक कैनीनम) का परीक्षण किसी जानवर पर हुआ होता तो सांपों के सुपने का लक्षण कैसे प्राप्त हो सकता था।

इस ही प्रकार आपके अनेक नोट होमियोपैथिक साहित्य की पूंजी हैं। संदेश में डा० रेब के कुछ नोटों का अनुवाद हम अगले अंकों में प्रकाशित करेंगे।

निसन्देह डा० रेब की मृत्यु से संसार का एक बड़ा होमियोपैथ चला गया। ईश्वर उनकी आत्मा को सद्गति प्रदान करें। उनके सम्बन्धियों को यह जानकर सान्त्वना होगी कि उनके दुःख में सारे संसार का होमियोपैथिक जगत सम्मिलित है। ईश्वर करे कि हम होमियोपैथों में डा० रेब (Dr. R. F. Rabe) का सा होमियोपैथी पर अटल विश्वास पैदा हो और उनकी सी प्रचार प्रवृत्ति व अध्ययन के प्रति अभिरुचि उत्पन्न हो।

कुछ लक्षण जो दवाओं से ठीक हो गये

—दिल के चारों तरफ कम्पन—सलफर (१००००)

—हाथों में उंगलियों के पोरवों से कोहनी तक सुन्न पना, रात को वृद्धि, साइलीसीया ४०००० ने ठीक कर दिया।

—दाहने जबाड़े में जलन—स्ट्रोन्शीयम कार्ब (२००)

THE HOMOEOPATHIC SANDESH

Editor-in-Chief — **Dr. Yudh Vir Singh.**

Vol. IV No. 12] **DELHI** **[August, 1952.**

NOTES & NEWS

New Wonder Drug Against T.B.

Izoniazid, the new anti-tuberculosis drug, claimed to be wonderful in its effect, is now being tried in Delhi and New Delhi under strict Government supervision. A pronouncement about its effects and the advisability of its general use will be made soon by the Government of India.

Iso-nicotinic-acid-hydrazide — that is the full name of the drug—was discovered about a year ago in America. Reports of its discovery resulted in a great rush for it. The demand for it in America now is said to exceed the rate of manufacture.

According to a World Health Organization source in New Delhi, this drug is still in an experimental stage and has received premature publicity. While the drug has definite healing properties, it is yet to be ascertained if it will have any adverse effects on the patients. It is the considered view of medical men in most countries that the drug has not been given a full trial yet and, therefore, its use on a mass scale is positively inadvisable.

Small quantities of the drug have been imported under Government licence into India while W.H.O. has also given a limited supply. The drug will be administered under strict expert Government and W. H. O. supervision. In New Delhi the drug is being experimented in the T.B. Hospital and the Silver Jubilee Hospital. The Goverument has, however, forbidden the issue of a licence to private firms or supply of the drug to private practitioners or clinics from Government stock.

The drug, whose trial is being controlled and supervised by a special committee of the Government, has also been supplied to other important cities, like Madras, Bombay and Calcutta where Government institutions connected with the eradication of tuberculosis will experiment with it. The reports from the various institutions will be discussed by the committee before it gives its final verdict on the drug.

(*Eveniny News.*)

International Homœopathic Congress.

The International Homœopathic Congress met in the last week of July. in Hague (Holland) under the presidentship of Dr. Pahud of Switzerland. The report by the National Vice-President of India, Dr. A.L. Verma was read in which he classifies Homœopathic physicians in India in three groups along w th a big group of 2 lacs laymen with domestic Homœopathic Boxes for their family use.

Group A—practising Homœopathy after education in Allopathic medical school or college—500.

Group B—After education in a regular Homœopathic medical college or school—18,550.

Group C—Practising Homœopathy without regular education in any medical school or Institution—75,000.

He has pointed out that this type of development is due to the fact that 99% qualified practitioners practice in towns and 90% population live in villages.

He has further pointed out that more qualified homœopaths are required to meet village needs. More people in the country like plain, simple and cheap doses of Homœopathic medicines.

He has also submitted a report on the progress of homœopathy in various states in the country. He says that 36 lacs people die of various types of fevers every year whereas five lacs die of tuberculosis. The reason is under-feeding which brings down power of resistance.

A list of Indian homœopathic drugs including Arjuna, Augusta, Blatta, Tulshi, Aswagandha, Haritika, Asoka and Serpentine was submitted with the news that the All India Homœopathic Research Association are proving them homœopathically.

About a dozen homœopathic journals are published and Hahnemann Day celebrated in about 300 places.

Four Years Complete.

With this issue the Homœopathic Sandesh complete its 4th year. The next issue—the first of the 5th year, will be as usual a special number of double the size containing valuable contributions. Still we could not make this journal self supporting, and we therefore appeal to our readers to kindly help us by inducing their friends to subscribe this journal. We take this opportunity to thank our readers specially those who have tried to help us by enrolling fresh subscribers during this year. We also thank our contributors as well as advertisers who have helped us a lot. We seek that the patronage be continued and hope that the standard of Sandesh will be maintained and will even be improved wherever necessary.

We request our readers to send special articles for the special number to be issued by the 20th of September.

National Medical College and Hospital.

This College is situated on Cantonment Road, No. 1, at Lcknow. This is perhaps the only regular College imparting training in Homœopathy in whole of U.P. Under its able Principa Dr. B. S. Tandon this College has made good progress. Its new session has just begun in July. All those who are desirous of learning Homœopathy should join this College.

For details please apply for a prospectus to the Principal.

Charity Show.

A Charity Show of Ranjit Movietone's famous picture "Jogan" is being held on 1st September 1952 at the Jubiee Talkies at 9 A. M. in aid of the Homœopathic Free Dispensaries Delhi. The picture has been donated free by Messrs. Good will Pictures Ltd. and the Jubilee Talkies Hall is used through the courtesy of General Talkies. We thank the above firms for their aid to Homœopathy and urge upon the Delhi public to buy the tickets for Rs 5/- and Rs. 2/- each. Family ticket for 3 is available for Rs. 10/-. About 800 patients receive free Homœopathic Medicines in these Free Dispensaries

Victoria College results.

The under-mentioned candidates are declared to have passed their respective examinations from the Victoria Homoeopathic Medical College—Dinapore Cantt.

D. H. S. C.

First Division

Dindayal Prasad Shrivastva.

H. M D.

First Division

Mahmudur Rahman, Nathuni Prasad Singh, Bishwanath Chowdhury. Mrs. Kishori Dayal Srivastva, Sheodayal Singh Varma, Mohan Prasad Singh, Mathura Prasad Sinha, Sheonath Pd. Singh, Gopal Dass, Batukeshwar Yadav, Kuldeep Narain Sinha, and Meghlal Mahto.

Second Division

Moinuddin Shah, Wali Ahmed Ansari, Jagdish Narain and Ram deep Singh.

H. M. B.

First Division

Bindesri Prasad Gupta, Kedar Nath Sharma, Baijnath Upadhay, Hanuman Prasad, Syed Zemir Husan, Kamta Pd. Singh, Baldhari Singh, and Jaigopal Prasad Singh.

Second Division

Jagannath Prasad, Kanti Lal Sharma, Ganesh Prasad Shah, Mohammad Qurratullah, Kedar Prasad Sinha Tara Nath Das, Kamla Prasad, Langraj Mishra, Bhagwat Saran Sinha, Rajaram Singh, Pratap Narain Sharma Pratap Narain Sharma and Chuttranjan Sirkar.

Third Division

Budheshwar Trivedy, Paras Nath Singh, Deo Dutt Pd. Sharma and Awadh Narain Lal.

B. H. I.

First Division

Moinuddin Shah, Nathini Prasad Singh, Bishwanath Chowdhury. Wali Ansari, Md. Ali Akbar Ansari, Mohan Prasad Singh, Mathura Pd. Singh Sheo Nath Pd Singh, Kamta Prasad Singh Basudeo Narain and Batukeshwar Yadav.

Second Division

Budheshwar Trivedy, Jagdish Dutt Pandey, Kanti Lal Sharma, Baijnath Upadhyay, Jai Gopal Pd. Sinha and Gopal Pandey.

H. L. M. S.

First Division

Rup Narain Prasad, Shyam Prasad Shrestha, Ramesh Chandra and Syed Shamsuzama.

U.P. Govt. appoint Homoeopathic Board.

The following notification is reproduced from the Govt. Gazette U.P.

August 15, 1952. No. 88-BH/V-1226-52.

In exercise of the powers conferred by Section 3 of Uttar Pradesh Homœo. Medicine Act, 1951 (U.P. Act no VIII of 1952), as subsequently ammended, the Governor is pleased to establish a Board to be called the Uttar Pradesh Homoeopathic Medicine Board for the purposes of carrying out the provision of the said Act, and to nominate under Section 7 of the said Act, the following persons for a period of two years with effect from the date of this notification as Chairman and Members of the said Board :—

Chairman :

(1) Sir Mohammad Sultan Alam Khan. M.L.A.

Members :

(2) Dr. S. N. Chadha ... Allahabad.
(3) Dr. J.M. Chowdhry ... Meerut.
(4) Dr. J. P, Mukerji ... Kanpur.
(5) Dr. J. N. Hajra ... Agra.
(6) Dr. S. C. Sircar ... Agra.
(7) Dr. R. S. Rastogi ... Dehra Dun.
(8) Dr. H. K. Banerji ... Gorakhpur.
(9) Dr. A. N. Pande ... Banaras.
(10) Dr. G. N. Ohdedar ... Lucknow.
(11) Dr. B. S. Tandon ... Lucknow
(12) Dr. A. Ghosh ... Lucknow.
(13) Dr. A. P. Arora ... Lucknow
(14) Dr. K. P. Trivedi ... Lucknow.
(15) Dr. Srimati Satya Vati Sinha Roorkee

Deficiency of Vitamins & Minerals.

Dr. R. S. Rastogi, B. A., M. D. H.

Health cannot be maintained without the intake of a suitable well-balanced diet capable of supplying the different and varying needs of the body and thus maintaining the Vital Force at the highest level of perfection. While the Proteins are indispensable for carrying on the regeneration, repair and replacement of tissues to meet the constant wear and tear going on in the human machine, and the Carbohydrates and fats are essential for providing energy not only for the work a man has to do but also for the invisible work going on automatically inside the human body, there are certain other ingredients of food, the *Vitamins, Minerals* and water which are essential for regulating the Vital physiological functions. If only the Vitamins are excluded from the diet, and all the remaining ingredients are provided in abundance in the form of Casseinogen, starch, sugar, salts, lard water, animals become ill, cease to grow and finally die unless a natural diet containing Vitamins in suitable quantities is resumed when they again start growing properly and gaining weight. The Vitamins are essential organic substances found in extremely small traces in practically all fresh foods, which act as indispensable catalysts for the occurrence of certain metabolic functions, keeping the growth processes and normal bodily activities in a healthy harmonious vital operation.

What diseases are caused by the deficiencies of the different vitamins and minerals will be noticed in the following sections. A knowledge of these is essential from the point of view of homœopaths, as, according to Hahnemann, all obstacles to recovery must be removed while we proceed to supply the homœopathically indicated remedy. Obviously, where sickness results from malnutrition due to deficiency of one or more of the essential ingredients in food *rather than* *from a lack of powers of assimilation,* Homœotherapy cannot take the place of a correction of the dietetic deficiencies. But where the deficiency symptoms are due to lack of powers of assimilation, Homœotherapy must be invoked as a corrective measure.

Medical Science nowadays utilizes Chemical Vitamin preparations in massive doses for the treatment of numerous illnesses. Homœopathy here adopts a different view. To assess the therapeutic value of the vitamins, we must make their "provings" and use them according to the law of similars. They are capable of *producing* symptoms and curing the same in potencies.

VITAMIN A.

Deficiency of this vitamin tends to give rise to atrophy, keratinization and desquamation of epithelial cells, giving rise to conditions favourable for the growth of micro-organisms which cause a low grade inflammation in the devitalised epithelial layer. Thus there is a lowered resistance to infection. All epithelial surfaces are liable to be affected, but particular mention may be made of the cornea, the skin and the urinary tract. Its deficiency inhibits the regeneration of visual purple in the retina and is the cause of defective vision in dim light (nyctalopia). Its requirement in normal health is about 4000 to 5000 international units for adults, whereas in the presence of infection or diseases caused by its deficiency as such as 600,000 international units may be called for. In infancy and childhood 1500 to 4500 I.U. and in pregnancy and lactation 6000 and 8000 I.U. respectively are required. Its absorption is greatly aided by the intake of sufficient fat. Carotene, the precursor and source of much vitamin A in the diet requires for its adequate absorption the presence of bile in the intestine. Liquid paraffin should be avoided by patients of Vitamin A deficiency as it dissolves and carries away carotene in the faeces.

SOURCES OF VITAMIN A.

Whole milk, curds, cheese, butter, pure *ghee*, red palm oil, egg yolk, liver, liver oil of certain fish e. g. cod, halibut, the shark and the sawfish are rich In Vitamin A content. The shark and the sawfish abound in Indian coastal waters and their liver oil is richer in Vitamin A than cod-liver oil though not as rich as halibut liver oil.

While *vegetable foods* do not contain Vitamin A as such, they contain *Carotene*, its precursor or "pro-vitamin A" as it is called. This fulfils the physiological functions of Vitamin A. Sources rich in carotene are: leafy vegetables such as spinach, lettuce, cabbage, amaranth leaves, coriander leaves, drumstick leaves, celery leaves, and ripe fruits such as mangoes, papaya, tomatoes, oranges etc.; also carrots. Roughly speaking, the greener and fresher the vegetables, the great is their carotene content. Milk and milk products from cows and buffaloes fed on green grass are richer in Vitamin A content than those from the animals fed at home on *bhusa* etc It is very difficult to be sure about the Vitamin A content of *ghee*, but it is known that buffaloes' *ghee* has less of this vitamin than cows' *ghee* whose Vitamin A content is between 28,400 and 71,000 international units per ounce. "Vegetable ghee" does not contain any Vitamin A. One teaspoonful of codliver oil is roughly equivalent to about 4000 international units of this vitamin.

Ordinary cooking does not destroy the carotene present in the vegetables. But prolonged heating of ghee in an open pan considerably destroys vitamin A.

VITAMIN B COMPLEX

This is a group containing at least nine separate factors each of which appears to play a distinctive role in metabolism.

Vitamin B deficiency causes Beri-beri, a disease in which there is neuritis and degeneration of the nerves leading to partial or complete paralysis of the limbs, accompanied often by dropsy and by weakness of the heart muscle leading to heart failure. Its deficiency also gives rise to habitual constipation. Its requirements are increased by presence of *diabetes*, by heavy work or strenuous exercises and also during pregnancy and lactation. Its deficiency should be guarded against when the patient is on special diets for *diabetes*, obesity, gastric or duodenal ulcer, sprue or coeliac disease. In India its deficiency is commonest in areas where highly milled (polished) *raw* rice is consumed as the main ingredient of diet. Rice which has been boiled and dried before the removal of the pericarp, called parboiled rice, contains enough of this vitamin to prevent beriberi.

The minimum daily adult requirement is about 1 mg. or 333 international units while infants and children require comparatively more, say 100 to 300 I. U. In pregnancy and lactation the requirement is increased two to four times

Yeast and the outer layers of cereals removed on milling such as wheat and rice bran, as also wheat germ, peas, beans, liver and kidney are rich in vitamin B Its richest sources among the ordinary foods are whole (unmilled) cereals, pulses, and nuts. Foods poor in this vitamin are meat, fish, eggs, vegetables, fruits and milk. It is destroyed by *prolonged heating*, but ordinary cooking leaves enough of it to meet the requirements of the body.

Serious wastage of this vitamin is caused by washing and cooking of rice, and milling and removing the outer covering of the cereals and pulses. Yeast tablets or marmite may be used when there is marked deficiency of vitamin B.

Now about the other factors of Vitamin B Complex group, These also are of great importance in human nutrition Their deficiency may give rise to Pellagra, dermatitis, pigmentation, dryness and scaliness of the skin, fissures at the angles of the mouth and soreness of the tongue. The best sources of this group are yeast, milk and milk products (especially buttermilk), lean meat, liver, eggs, whole cereals and pulses.

Addiction to alcohol gives rise to deficiency of the B group of vitamins.

VITAMIN C.

A deficiency of this vitamin gives rise to loss of appetite and weight, retarded healing of wounds and fractures, some forms of gingivitis, subperiosteal haemorrhages, intraoccular haemorrhages, and, in cases of marked deprivation, *scurvy*. Its deficiency should be guarded against in infants and children fed on dried milks.

This vitamin is found in fresh fruits and vegetables, especially in citrous fruits, black currants and tomatœs. *Uncooked* potato juice and *sprouted* vegetables, pulses and cereals are fairly rich in this vitamin. *Amla or nellikai* which grows abundantly in India and is very cheap, is probably the *richest natural source* of Vitamin C. The fresh juice contains nearly twenty times as much Vitamin C as the same amount of orange juice, and a single fruit is thus equivalent to one or two oranges. Cooking destroys this vitamin in some measure which is not considerable in ordinary cooking. But over-cooking of vegetables should certainly be avoided. *Amla* is little affected by cooking on account of its juice being strongly acid. The water in which the vegetables are cooked should be made use of and not wasted, as in the cooking process much of this vitamin passes into the liquid. Tinned fruits retain the vitamin C content.

The daily adult requirement is 75 mg. of the vitamin (ascorbic acid) which is provided roughly by about two and a half oranges or two amlas. In infancy and childhood 30 to 75 mg. is repuired; during the period of active growth and during pregnancy 100 mg. may be considered sufficient while for nursing mothers 150 mg. may be called for.

Alcholism gives rise to a marked deficiency of this vitamin.

NOTE, The method of sprouting cereals and pulses described in Sir Robert McCarrison's "FOOD" is as follows:—

"Dal, gram, wheat, unsplit peas or any other grain is first soaked in water for 24 hours and is then spread out on damp earth or on a damp blanket and covered over with a moist cloth or sack (gunny bag) which is kept moist by sprinkling water upon it from time to time. After two or three days the grains will have sprouted and be ready for use."

"The sprouted grains should be eaten raw or after cooking for not more than two minutes"

VITAMIN D.

This vitamin prevents rickets, osteoporosis and ostomalacia, regulates calcium and phosphorus absorption, deposition and retention, and thus ensures a healthy development of the body in general and the bones in particular. As there is a great demand for calcium in the body during pregnancy, calcium reserves of the body become depleted and ostomalacia may start during this period, the earliest sign being bonepains. If a diet rich in calcium and vitamin D is provided, it will not only save the mother from ostomalacia but also ensure a healthy development of the foetus. (See the section on Calcuim), Vitamin D ensures the formation of strong regular teeth in children.

The requirement in infancy, childhood, during the periods of pregnancy and lactation is about 800 international units daily. Premature infants may require about double the amount.

SOURCES. It is found in liver, liver oils, egg yolk, and in milk, butter and ghee obtained from animals which are fed on green pastures and are exposed to sun light. Fish liver oil is its richest natural source. It is also formed by the action of sun light or ultra-violet irradiation on the skin by the transformation of a substance (precursor) normally present there. But exposure to sun with this object should not be carried to excess and should be carefully regulated to avoid exhaustion and "sun-burn".

Note. Some infants and children seem to show an idiosyncrasy to concentrated vitamin D preparations. Dr. N. Morris reports a case in which even a drop of a concerntrate was enough to produce a violent attack of vomitting There is also a view that high dosage of this vitamin may produce *calcinosis* affecting especially the kidneys. There is, however. no risk of overdosage from natural sources.

MINERALS.

The chief minerals whose insufficiency should be guarded against are

CALCIUM, PHOSPHORUS, and IRON. In addition to these, there are other minerals needed by the body, but for all practical purposes it may be safely assumed that a generally well-balanced diet will provide enough of the latter.

CALCIUM. It is found abundantly in milk, skimmed milk, butter-milk, cheese and green leafy vegetables. Amaanath, fenugreek and drumstick leaves are rich in calcium. In the section on vitamin D, it was noticed that a deficiency of calcium in the diet may lead to rickets in children and to ostomalacia in expectant mothers. Accordingly, their diet should include plenty of milk and cheese. Normally smaller children should have at least a pint or 10 chataks of milk daily, while the older ones, and expectant and nursing mothers should be provided with at least two pints or its equivalent. In actual deficiency conditions, the amount may have to be doubled or its equivalent provided from cheese or other sources. Milk has the advantage of supplying vitamins A and D in addition, while its calcium is more easily assimilable.

The normal daily requirement is about 0·7 gm. for adults and 1 gm. for children.

PHOSPHORUS. If a diet contains sufficient *calcium*, its phosphorus content may be taken to be satisfactory. Cereals in the raw state are fairly rich in phosphorus, but cooking destroys it considerably. Sprouted cereals and pulses consumed uncooked may afford the double advantage of supplying vitamin C and phosphorus at the same time. Milk is rich in phosphorus as well as in calcium and vitamins A and D. Foods rich in phosphorus are milk, butter-milk, eggs, soya bean, pulses, nuts, wheat, oats, barley, cholam, ragi, water-cress, spinach, radish, cucumber, carrot, cauliflower, brussels-sprouts, meat and fish.

The daily adult requirement is at least 1 gm.

IRON. It is an essential constituent of the molecules of haemoglobin, the red pigment of blood, and plays an important part in blood formation. Its requirement is increased in pregnancy and in conditions involving destruction or loss of blood corpuscles as in anaemia, hook-worm infection and malaria. Foods containing iron are liver, red meat, eggs, pulses, whole cereal grains, spinach, leeks, lettuce, onions, radish, strawberries, artichoke, water-melons, asparagus, celery, cucumber, dandelion, turnip leaves and tomatoes.

Correction

The pages of English Section were repeated in the May Issue and the mistake continued in the subsequent issues. It has been corrected in this issue, readers will kindly correct the pages from 71 to 78 in the May issue 79 to 84 in the July issue and mark then from 86 to 93 and 93 to 99 respectively. The mistake is very much regreted.

—*Editor.*

COUNT MATTEI'S

ORIGINAL

ELECTRO HOMŒOPATHIC

MEDICINES

Globules	Small Tube	1-8-0
Globules	Large ,,	3-0-0
Electricities	Per phial	3-8-0
Ointments	Per pot	3-8-0
Aq. per la pele	Per phial	3-8-0
Guide (Hindi)		0-8-0

Fresh and big Stock

Directly Imported from Italy

Discount to Wholesale Buyers.

HOMOEOPATHIC FREE DISPENSARY

Chandni Chowk. DELHI 6

Sandesh

meat and

ment is at

ial consti-
emoglobin,
d plays
formation.
n pregna-
lving des-
rpuscles as
ection and
iron are
ses, whole
, lettuce,
artichoke,
elery, cu-
eaves and

tion were
and the
ubsequent
d in this
orrect the
May issue
and mark
93 to 99
is very

-Editor.

S

THIC

1-8-0
3-0-0
3-8-0
3-8-0
3-8-0
0-8-0

aly
yers.
RY

ESTD 1929 हिन्दुस्तान का सर्वश्रेष्ठ गवर्नमेन्ट रिकगनाइज्ड AIDED

दि सिन्हा होमियो मेडिकल कौलेज

[Recogd. Regist- & Aided by the Govt]

--पो० लहेरियासराय, बिहार—

आज उर्दू पढ़े लिखे भी शिक्षा और डिप्लोमा प्राप्त करने के लिये पढ़ कर परीक्षा दे सकते हैं। इन्जेकसन सहित फीस H. L. M. S.) १५H. M. B. S. २०) H. M. D. S. ३०)। पुस्तकें अ०-बायकोमिक १।।) मेटेरिया-मेडिका संक्षिप्त १।।) मेडिकल डिक्सनरी ।) अर्गेनन १।।) फर्माकोपिया १।।) रेड लाईनसी० १॥) पारिवारिक चिकित्सा संक्षिप्त १।।) बृहत अमेरिकन पारिवारिक चिकित्सा ६।।) बृहत मटेरिया मेडिका ६।।) होमि० इन्जेक्सन ३) परीक्षा विधान १।।) एनाटोमी फिजियोलोजी १।।) रिलेशनशिप ऑफ रेमीडिज १।।) होमियो पैथिक पद्मावली १।।) डा० एल० राय० मेटेरिया मेडिका सजिल्द ५) रु० इनडियनड्रागस १।।) जवाहर जीवनी २।।) रु० कुल किताबें ३० में एक साथ दी जाती हैं। पैकिंग पोस्टेज माफ—

अमेरिकन दवायें ३०-=)॥ ड्राम २००-≡) ड्राम फी औंस घरेलू बक्स पुस्तक सहित ३६ शीशा १०) सुगर और गोली २।) फी पाउण्ड।

नोट—बृहत सूची मुफ्त—सचित्र मेडिकल मैगजीन मासिक ।।) सालाना ५)

संरक्षक—रायसाहब डा० यदुवीर सिंह एम० डी० एस० (U. S. A.)

चिकित्सा की सफलता

के लिये दवा विशुद्ध होनी चाहिये

विशुद्ध और विश्वसनीय

होमियोपैथिक बायो कैमिक व इलैक्ट्रो होमियोपैथिक

दवायें हमेशा

"डा० युद्धवीर सिंह होमियोपैथिक चैरिटेबल ट्रस्ट"

चांदनी चौक दिल्ली

के बिक्री विभाग से खरीदिये

इस विभाग का लाभ ६ होमियापैथिक फ्री डिस्पैंसरोज़

में मुफ्त दवा देने में खर्च होता है।

टेलीफोन नं० ५८८२

सूची पत्र आज ही मंगाइये।

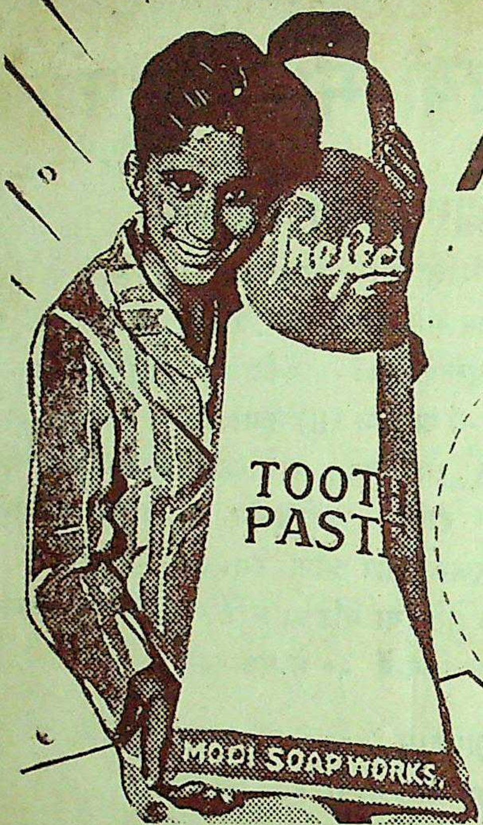
Perfect
TOOTH PASTE
MODI SOAP WORKS

नया प्रिफेक्ट टुथ पेस्ट

① बिना साबुन के
② नये अमेरिकन फारमूले पर
③ स्वास्थ्य-प्रद नियमों के

अन्तर्गत निर्मित

RATH
VANASPATI

विशुद्ध ! लाभदायक ! सस्ता ! और विटामिन—युक्त

'रथ' छाप याद रखिये । हमेशा यही खरीदिए । यह विशुद्ध शक्तिप्रद वनस्पति डी० सी० एम० के और माल की भांति सदैव उत्तम होता है।

५ और १० पौंड के टिनों में

रथ वनस्पती

भोजनालय !
बड़े पैमाने पर इस्तेमाल करने के लिए हम डी० सी० एम० के पनघट व पालकी वनस्पति की जोरदार सिफ़ारिश करते हैं। बड़े टीनों में मिलता है।

दी डी० सी० एम० वनस्पति मेन्यूफेक्चरिंग वर्क्स, देहली।

प्रोप्राइटर—दी देहली क्लाथ एण्ड जनरल मिल्स क० लिमिटेड, देहली

समालोचनार्थ

होमियोपैथिक संदेश

HOMŒOPATHIC SANDESH

EDITOR-IN-CHIEF, Dr. YUDHVIR SINGH

मूल्य ५)
प्रधान सम्पादक :
डा० युद्धवीर सिंह
एक प्रति ॥)
इस अंक का १।)

५]
(सितम्बर) अक्तूबर—१९५२
[अंक १

स्थापित : १९२०
तार : "भार्गव" अनूप शहर

आर० एस० भार्गव फार्मेसी

अनूप शहर (यू० पी०)

हर प्रकार के होमियोपैथिक मदर टिंकचरस, डायलूशनस, बायोकैमिक साल्टस, डिस्केटस, टेबलटस, गोलियां तथा दूसरी पेटेन्ट दवाइयां बनाने वाले तथा हिन्दी उर्दू व इंगलिश में अनेकों होमियोपैथिक तथा बायोकैमिक पुस्तकों के प्रकाशक।

हमारे यहां शूगर आफ मिल्क, चैस्टस (लकड़ी तथा चमड़ा) सरजीकल औज़ार तथा दूसरी डाक्टरी सम्बन्धी चीजें सदैव स्टॉक में अधिक मात्रा में तैयार रहती हैं।

सदैव मोदी की ५०१ मार्का

कोयल छाप

बनियानों का और जुराबों का ही उपयोग करें

भावों में कम, किन्तु सुन्दर और चलने में अधिक—

विशेष विवरण के लिये लिखिये—

दि मोदी होज़री वर्क्स, मोदीनगर (उत्तर प्रदेश)

FOR COMPLETE SHOPPING
Jankidas & Co
DEPARTMENT STORE
CONNAUGHT PLACE ...... NEW DELHI

समालोचनार्थ

FATHER MULLER'S

Homœopathic Poor Dispensary

KANKANADY, MANGALORE-2, SOUTH INDIA.

Manufacturers of

Father Muller's Specific Remedies
AND
Father Muller's Biochemic Tonic

DIRECT IMPORTERS FROM U.S.A. OF

Drugs and Specialities, Schuessler Tissue Remedies, Homœopathic Medicines (Potencies in liquid, pills and globules)

Sole Agents for Rev. Dr. H. J. Lorbeer's
Improved Cholera Cure AND Tiriyaq-Snake Bite Cure
Etc. Etc Etc.

FREE **Expert Medical Advice & Effective Prescriptions**

Ask for

Guide to Health in English, Hindi, Telugu or Kannada
" " Tissue Remedies in English or Hindi
" " Specifics in English or Hindi.

Price List on Application

Tele { grams "SPECIFIC" Mangalore.
Tele { phone 136.

Post Box No. 1 Railway Station: MANGALORE.

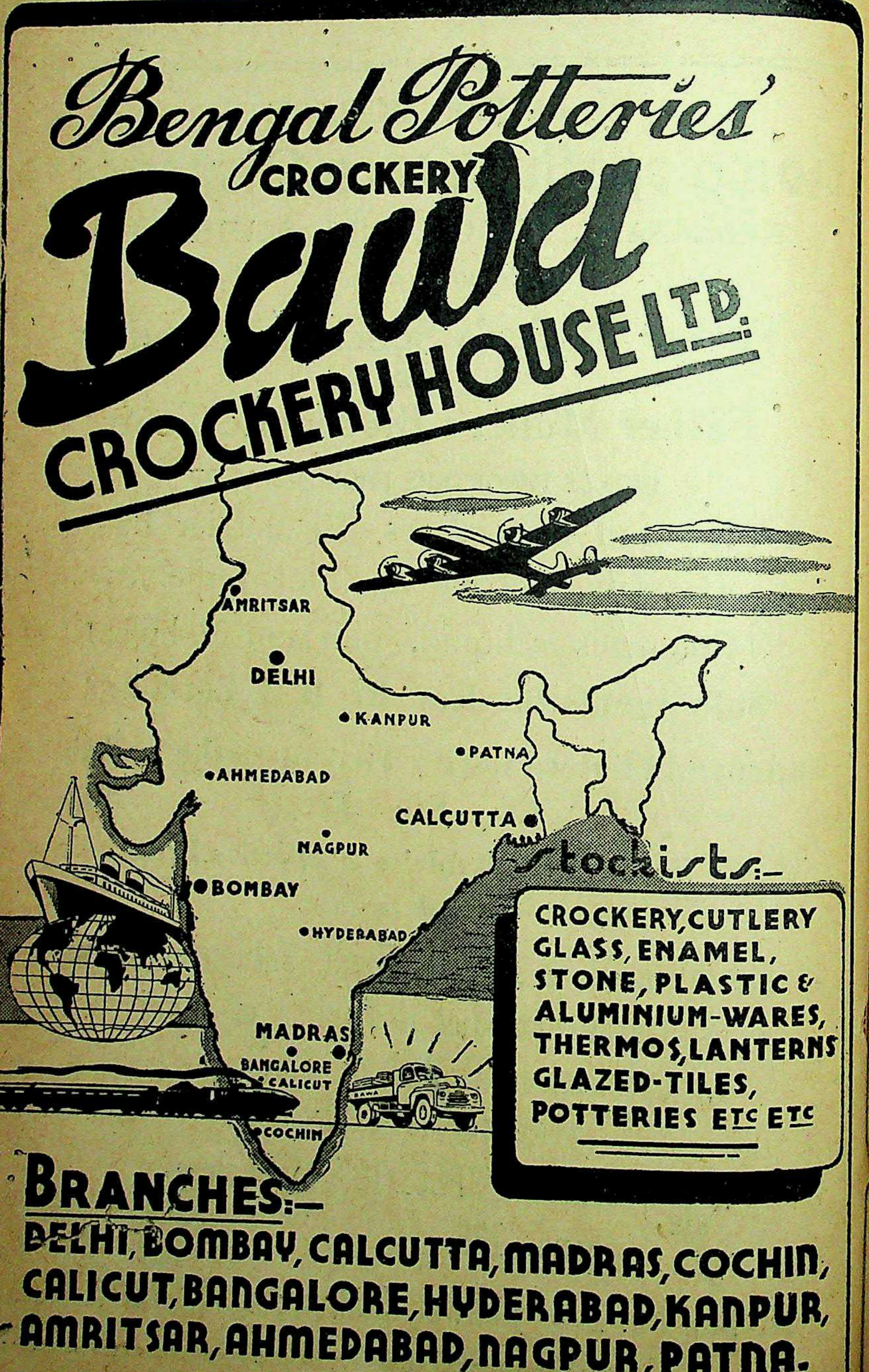

Bengal Potteries' CROCKERY

Bawa CROCKERY HOUSE LTD.

AMRITSAR
DELHI
KANPUR
PATNA
AHMEDABAD
CALCUTTA
NAGPUR
BOMBAY
HYDERABAD
MADRAS
BANGALORE
CALICUT
COCHIN
BAWA

Stockists:-

CROCKERY, CUTLERY
GLASS, ENAMEL,
STONE, PLASTIC &
ALUMINIUM-WARES,
THERMOS, LANTERNS
GLAZED-TILES,
POTTERIES ETC ETC

BRANCHES:-

DELHI, BOMBAY, CALCUTTA, MADRAS, COCHIN, CALICUT, BANGALORE, HYDERABAD, KANPUR, AMRITSAR, AHMEDABAD, NAGPUR, PATNA.

राष्ट्र पिता

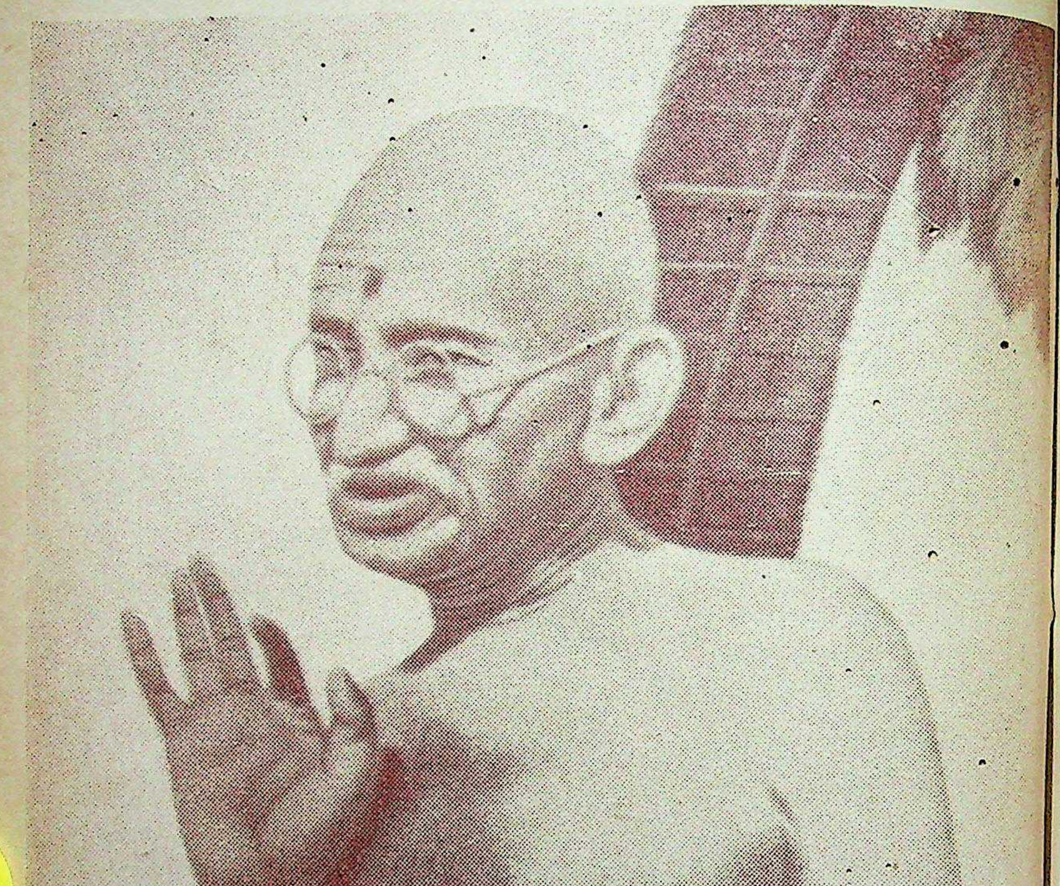

"...परोपकार करना, दूसरों की सेवा करना और ऐसा करने में अपने को रत्ती भर भी बड़ा न मानना यही सच्ची शिक्षा है। यह बात अपनी आयु के बढ़ने के साथ २ तुम अनुभव करोगे। बीमार आदमी की सेवा करने के बराबर दूसरा उत्तम मार्ग क्या हो सकता है? धर्म का बहुत सा भाग इस अंश में आ जाता है......।"

गांधी जी का पत्र मणिलाल के नाम ता० [illegible]

क्षमा सूचना

इस विशेषांक को हमने सितम्बर में ही प्रकाशित करने का बड़ा प्रयत्न किया मगर न हो सका। और काफी देर हो गई। अब जब कि अक्तूबर का अंक निकलना चाहिये तब यह निकल रहा है। २ साल से बराबर सन्देश देर से ही निकला है, हमें इससे शर्म आती है। प्रेस हमारे हाथ में नहीं है इसलिए इस दफा हमने यह निश्चय किया है कि यह अंक **सितम्बर का नहीं बल्कि अक्तूबर** का समझा जावे।

इस वर्ष का दूसरा अंक नवम्बर का होगा और वह नवम्बर में ही प्रकाशित हो जायेगा। ग्राहकों के हिसाब में सितम्बर का अंक न लगाकर अक्तूबर से ही वर्ष शुरू होगा इस प्रकार समझिये कि सितम्बर का अंक रद होकर यह अंक अक्तूबर का समझा जावेगा और आयन्दा हमारा वर्ष अक्तूर से ही शुरू होगा। पाठक कृपया नोट कर लें। हम आशा करते हैं कि आइन्दा सन्देश प्रति मास की १५ तारीख तक जरूर प्रकाशित हो जाया करेगा अब की देरी के लिये हम क्षमा याचना करते हैं।

मैनेजर

विषय सूची

१. सत्य वचन

२. जब सावधानी से चुनी हुई दवा काम न करे

३. जर्द चमेली का हार

४. औषध निर्वाचन

५. अताई कौन

६. स्वास्थ्यधाम की यात्रा

७. होमियोपैथी का परिचय

८. गम्बोजिया

९. गन्धक की आत्म कथा

१०. होमियोपैथी और आध्यात्मिक वाद

११. उत्तर प्रदेश होमियोपैथिक मेडिसन एक्ट

१२. होमियोपैथिक जगत्

१३. अनुभूत प्रयोग

१४. सम्पादकीय

1. Notes & News.
2. Clinical Cases.
3. Homœopathy's Dynamic Role in the Conquest of Disease.
4. Homœopathy and Surgery.
5. Dr. R. S. Rastogi-A life sketch.

* * *

❁ समः समे शमयती ❁

होमियोपैथिक संदेश

प्रधान सम्पादक—डा० युद्धवीर सिंह

वर्ष ५] दिल्ली, सितम्बर १९५२ [संख्या १

सत्य वचन

स्वास्थ मार्ग—

"स्वास्थ प्राप्ति के लिए एक अत्यन्त महत्वपूर्ण नियम वो है जिसे कनफ्यूसीयश (चीन के महापुरुष) ने सुनहरी उसूल (Glden Mean) कहा है। मैं चाहता हू कि आप इस सुनहरी उसूल का पालन अपने भोजन के उन पदार्थों के सम्बन्ध में करें जो खाने की आपको इजाज़त दी गई हो अर्थात् युक्ताहार करें। मैं चाहूँगा कि आप नित्य प्रति खुली हवा में घूमें, दौड़ें हरगिज़ नहीं, और सवारी तभी करें जब ज़रूरी हो। दस बजे ज़रूर सो जावें, सोते वक्त लेटकर पढ़ें नहीं, रात को ८ बजे बाद कोई दिमागी काम न करें, ८ बजे पहले ब्यालू करलें, अल्पाहार करें, गोश्त व अन्डे न खावें, अधिक परिश्रम करके थकें नहीं और एक बुद्धिमान की तरह अपने मन में से उन तमाम विचारों को दूर कर दें जिनसे चिन्ता उत्पन्न होती हो और जो अशुभ हों।" —गुरुवर हैनीमैन

पूर्ण आरोग्य लाभ—

रोग वास्तव में आत्मा (Soul) और मन (Mind) के पारस्परिक संघर्ष का परिणाम है और अध्यात्मिक व मांसिक प्रयत्नों के बिना सर्वथा दूर नहीं किया जा सकता। यदि ऐसे प्रयत्न बुद्धिपूर्वक कीए जावें तो वे उन बुनियादी तत्वों को दूर करके जो रोगों के वास्तविक कारण होते हैं, न केवल रोगों को दूर कर देंगे बल्कि उनको आगे न होने देंगे। कोई भी ऐसा प्रयत्न जो केवल शरीर को ठीक करने के लिये होगा वह रोग को जड़ से दूर न कर सकेगा, उससे केवल ऊपरी लीपा पोती हो जावेगी और चूंकि असल कारण मौजूद रहेगा वह अपनी उपस्थिति चाहे जब किसी और रूप में प्रकट कर देगा। दरअसल यह ऊपरी तथा कथित आरोग्यता बड़ी हानिकारक सिद्ध होती है क्योंकि एक तो यह रोगी से रोग के असल कारण को छुपा देती है और दूसरे ऊपरी स्वास्थ लाभ के कारण जो असल रोग का अंकुर होता है वह अन्तर्हित हो जाता है और समय पाकर रोग फिर उभर पड़ता है।

अब ऐसे रोगी की तुलना ज़रा उस रोगी से कीजिये जो या तो स्वयं जानता है या जिसे किसी बुद्धिमान् चिकित्सक ने बता दिया है कि रोग मांसिक व अध्यात्मिक संघर्ष का रिणाम है। अब ऐसा रोगी जब तक इस संघर्ष को मिटाने का प्रयत्न करता है तो और जब वह संघर्ष को समाप्त कर देता है तो रोग भी सर्वथा दूर होकर पूर्ण स्वास्थ लाभ होता है। इस ही का नाम सच्चा आरोग्य लाभ है जो व्याधि की जड़ पर कुठाराघात करके प्राप्त होता है। —एडवर्ड बाश

जब सावधानी से चुनी हुई दवा काम न करे !

डा० एडवर्डह्विटमौन्ट

जब किसी रोगी में स्पष्ट लक्षण हों और वह ठीक किसी दवा से मिल जायें और फिर भी उस दवा के देने पर जब लाभ न हो तो चिकित्सक बड़ी उलझन में पड़ जाता है। यदि ऐसा इस कारण से हुआ हो कि हमने अपने रोगी के तमाम लक्षणों को पूरी तरह नहीं संग्रह किया और कुछ ही लक्षणों पर दवा दे दी तब तो दुबारा लक्षण संग्रह करने पर कोई न कोई नया नुक़ता मिल जाता है और हमें नयी दवा का संकेत प्राप्त हो जाता है। बहुधा हमारी उलझन का कारण लक्षणों का एक दूसरे से मिल जुल जाना होता है और वह केवल विशिष्ट लक्षणों का ही नहीं व्यापक और मांसिक लक्षणों में भी हो जाता है। यह हमारी मैटेरीया मैडीका में प्राय देखा जाता ही है। जब कई दवाओं में एक रोगी के मुख्य २ लक्षण पाये जायें तो ठीक दवा चुनने की कला इस ही में निहित है कि उन विशेषताओं को मालूम किया जावे जो इन में से किसी एक दवा में ही पाई जाती हैं। यह विस्तृत पृथक्करण वास्तव में बड़ा कठिन अथवा असम्भव हो जाता है जब या तो रोगी के लक्षण ही थोड़े से हों या जो दवायें सामने आती हैं वे पूरी तरह परीक्षित न हों और उनके लक्षण थोड़े से ही प्राप्त हों। इस प्रकार दरअसल ठीक २ और युक्ति युक्त लक्षणों का पृथक्करण तो केवल बहुमुखी (Polychrest) दवाओं में हो सकता है या उन रोगियों में जिन में कुछ ह्रास वृद्धि के लक्षण जरूर हों। दुर्भाग्य से ऐसा होता है कि औसतन ४-५ में से एक रोगी ऐसा निकलता है जिसे यदि हम अच्छा करना चाहें तो बहुमुखी दवाओं को छोड़ कर उसे किसी अन्य गौण कम परीक्षित दवा की आवश्यकता होती है। ऐसे केसों में जो कमी रहती है उसे हमें अन्दाजे से पूरा करना पड़ता है। या भाग्य के भरोसे कोई दवा चुन ली जाती है। ऐसे केसों में उन लक्षणों से बहुत सहायता मिलती है जो परीक्षा करके प्राप्त किये जाते हैं क्योंकि इनमें रोगी द्वारा वर्णित लक्षण तो कम होते हैं। मगर इन परीक्षात्मक लक्षणों पर निर्भर करते वक्त हमें यह न भूलना चाहिये कि इनका स्थान गौण ही है मुख्य स्थान तो वर्णन किए लक्षणों का ही है।

जब हमारी पहली दवा असफल हो और दुबारा अध्ययन करने पर भी कोई और दवा न निकले तो हमारे पास दो विकल्प रह जाते हैं।

प्रथम—हम हार मान लें और अन्दाजे से अथवा प्रेरणा से कोई दवा दे डालें। इस तरह हमारा तीर ठीक निशाने पर बैठ

सकता है और हमें आशातीत सफलता हो सकती है मगर यह भी हो सकता है कि हम बुरी तरह असफल हों और रोगी बिगड़ जावे व उलझ जावे ।

दूसरा—रास्ता यह है कि यदि हमें यह निश्चय है कि हमने पहली दफा लक्षणानुसार बिल्कुल ठीक दवा दी थी और कोई लक्षण ऐसा नहीं है जिसे हमने छोड़ा हो या जिस पर पूरा गौर न किया हो तो हमें ऐसे केस को उन में दर्ज कर देना चाहिये जो निर्दिष्ट दवा के काबू में नहीं आये और उसके बाद हमारा काम यह हो जाता है कि हम ये ढूंढे कि दवा के काम करने में कोई रुकावटें तो नहीं हैं जैसे कुछ रहन-सहन की आदतें, कोई दवा खाते हों या खाई हो तो उसका असर शरीर में होमियोपैथिक दवा को क्रिया करने से रोकता है। कोई ऐसी शारीरिक विकृति हो गई हो या चोट फेट लग गई हो कि दवा को काम न करने देती हो, मांसिक अवस्था या सोरा आदि विषों का प्रभाव । रोगी सोरा आदि विषों के प्रभाव में हो तो आपको उनको नष्ट करने वाली दवा देनी होगी ।

कुछ भी हो मालूम यह होता है कि खास तौर से सोरा के सम्बन्ध में अभी हमारा ज्ञान अधूरा है । उसकी प्रकृति के सम्बन्ध में भी और उसकी नष्ट करने वाली दवाओं के सम्बन्ध में भी । नीचे लिखे कुछ केसों का वर्णन देखने से कुछ सोरा विष-नाशक दवाओं का ज्ञान होगा और साथ ही इस सम्बन्ध में हमारी अधूरी जानकारी का भी पता लगेगा ।

पहला केस—मिसेज ए० एस० २८ वर्ष । कई साल का भगन्दर । २-३ हफ्ते में एक दफा सूजन, दर्द वगैरह हो जाता है फिर वह फूट जाता है और खूब मवाद निकलता है । यह रीता भरी होता ही रहता है । सिर दर्द प्रायः होता रहता है, मुहासे व फोड़े अकसर निकलते हैं । गुप्तेन्द्रिय और भुजाओं पर छोटे २ दाने निकलते हैं जिन में खुजली भी होती है । दस्त अकसर लगते हैं और नाभि से बदबूदार स्राव निकलता है । रोगिणी का बदन भारी है । मोटी है, गर्मी से घबराती है, गरम कपड़े ओढने से तकलीफ बढ़ जाती है, पांवों को उघाड़ लेती है, जुकाम सर्दी जल्दी २ हो जाता है, चिड़चिड़ा स्वभाव है, मीठा व गोश्त पसन्द करती है, पसीना बहुत जाता है और शरीर में से विशेष दुर्गन्ध आती ह । सलफर देने से लाभ हुआ मगर कुछ महीनों के बाद उसने काम करना बन्द कर दिया । जो व्यापक लक्षण हैं वे सल्फर के अतिरिक्त किसी और दवा की ओर संकेत नहीं करते इसलिये यह सोच कर कि लक्षण तो सलफर के हैं मगर ठीक २ चुनी जाने पर भी वह काम नहीं कर रही है निश्चय किया कि किसी एन्टीसोरिक नोसोड की जरूरत है । सोरीनम दिया गया और कुछ दिनों उसने फायदा भी किया मगर आगे न चला । इसके बाद फिर सलफर दिया गया और इस बार इसने जो लाभ किया वह ज्यादा देर तक चला मगर एक लाख तक देने पर भी स्थायी प्रकृतिगत परिवर्तन नहीं हुआ । इस समय मुझे ध्यान आया कि मैंने प्रायः अनुभव किया

है कि ऐसे केसों में उत्तम नोसोड सोरीनम की बजाय ट्यूबरकुलीनम अधिक उपयोगी सिद्ध होता है।

मैंने बैसीलीनम् २०० देना शुरू किया और लाभ भी आशातीत हुआ लगभग साल भर से मैं यदाकदा २०० ही शक्ति प्रयोग कर रहा हूं। मेरा अनुभव है कि जब बार बार शक्ति बदलनी पड़ती है तो वह दवा सर्वथा समसम के सिद्धान्तानुकूल नहीं होती हां, लगभग सम होती है।

इस केस से चन्द मुख्य २ बातें सामने आती हैं: मुटापा ट्यूबरकुलीन का विरोधी नहीं है। बल्कि मोटा थुलथुल कैलकेरिया का सा रोगी ट्यूबरकुलीन के क्षेत्र में आता है। दूसरे ट्यूबरकुलीन सलफर कैलकेरीया और फासफोरस का पूरक है। सलफर का सबसे अधिक। सलफर से यह इतना मिलता जुलता है कि कोई केस जिस में सलफर के सम्पूर्ण लक्षण होने पर भी सलफर से लाभ न हो तो उसे ट्यूबरकुलीन अवश्य लाभ करेगा।

दूसरा केस—श्रीमती एम. आर-४२ वर्ष। उसको बार २ नाखूनों में दर्द—नखशूल—हो जाता था। तमाम नखों की जड़ें आक्रांत होती थी-सूजन, दुःखन और फिर मवाद भी पड़ जाता था। हाथों से अधिक काम करने से जैसे घरमें कपड़े धोना, बरतन मांजना आदि २ से रोग वृद्धि होती थी युक्ताहार करने पर भी क़ब्ज़ रहता और बरसों से एनीमा लगाने की आदत हो गई थी। पित्त के प्रकोप के दौरे पड़ते थे जिनमें जी मिचलाता, कै होती, पेट में शूल का सा दर्द और सिर में ज़ोर का दर्द होता। कई दफा गुदा में छोटे चुन्ने-कीड़े पाये गये। पंचममौखिकनाड़ी (Trifacial Neurelgia) के शूल के दौरे बार २ होते थे। उसने बताया कि बचपन से वह अकसर बीमार रहती, दुबली पतली थी, लसिका ग्रन्थियां प्रायः प्रदाहित हो जातीं, कई दफा प्लूरीसी हुई, कई बार मासाने का प्रदाह (Cystitis) हुआ, शरीर पर बहुत से फोड़े और कार्बन्कल हुए। वह छोटे क़द और छरैरे बदन की थी, जल्दी थक जाती थी। बहुत अनुभूतिशील और भावुक थी, बेसब्र और चिड़चिड़ी, जल्दी परेशान होने वाली थी, वह ठण्डे मौसम में अधिक कष्ट पाती और शरीर में जो उचित गर्मी होती है उस की कमी से कष्ट पाती मासिक कम होता और मासिक के पहले तबियत ख़राब रहती। पसीना खूब आता और पैर तर रहते। त्वचा खुश्क है और उसमें बिवाइयें फट जाती हैं। मीठा पसन्द है, फल व स्टार्च की भी इच्छा रहती है। स्नायूशूल दाहिनी तरफ अधिक होते हैं और रात को बढ़ते हैं। पहला नुसख़ा साइलीसीया का तजवीज किया गया मगर उसका कोई असर नहीं हुआ और न ट्यूबरकुलीनम का।

फासफोरस ने ५ महीने तक अच्छी प्रगति की मगर फिर रुक गई। अगले दो साल तक उसको सोरीनम, आर्सेनिक, सलफर, लाइको, नाइट्रिक एसिड, हाइड्रैस्टिस इत्यादि दिया जाता रहा मगर कोई लाभ न हुआ। तब केस पर दुबारा गौर किया गया और यह बात तै हुई कि फासफोरस ही सब से अधिक निर्दिष्ट है

मगर चूंकि उससे आगे प्रगति नहीं हुई कोई उपयुक्त नौसोड ढूंढना चाहिये। चूंकि नाखूनों में पीप पड़ जाया करती थी इसलिए नौसोडों में स्ट्रेप्टोकाक्स २०० (Streptococcus viridans cardiacus (Stearns) का ध्यान आया। पहली खुराक के बाद ही बिलकुल होमियोपैथिक रोग वृद्धि हुई फिर धीरे २ पेट के मुखमण्डल के और अन्त में नखों के लक्षण ठीक हो गए।

इस नौसोड को हमने और भी कुछ केसों में इस्तेमाल किया है। अपने अनुभव के आधार पर निम्नलिखित लक्षणों में यह अत्यन्त उपयोगी होता है :

रोगी गौर वर्ण होता है, दुबले पतले होते हैं अति अनुभूतिशील, जल्दी २ जुकाम लग जाना, नासिका तन्तुओं के प्रदाह की प्रवणता, त्वचा अस्वस्थ और उस पर खुश्क दाने। इसके रोगियों में जिन्हें लाभ हुआ दिल की खराबी जरूर होती है मगर कोई वातज या अंग प्रत्यंग में विकृति नहीं होती। यह दवा बहुत गहरा असर रखने वाली एन्टीसोरिक है और फासफोरस और सोरीनम के बीच में इसका स्थान है। जब सोरीनम या फासफोरस के लक्षण होने पर भी वे फायदा न करें तो इसे देना चाहिये।

तीसरा केस—श्रीमती-जे०सी० ५७ वर्ष उसका रोग है हृदय की द्रुतगति-नाड़ी १०० बीच २ में हृदय की गति इससे भी अधिक तेज होने के दौरे पड़ते हैं जब कि हाथ पांव कांपने लगते हैं। उसे सिर में खास तौर पर चांद में सख्त दर्द होता है—दर्द जैसे कोई दबा रहा हो या घुसा रहा हो। वह बड़ी भीरू, शंकित चित्त और परेशान रहती है। बेसब्र और भावुक है। हाथ और उंगलियों में राशा (कम्पन) है, गले में गोला सा अटकता है और पसीना अधिक आता है। पिछले दिनों में जब उसके शरीर परिवर्त्तन (Basic Metabolism) की प्रगति ली गई तो हमेशा १५ अधिक आई। उसे प्रायः कब्ज रहता है और मीठी व घी की चीजों से पेट में वायू पैदा हो जाती हैं। प्रत्यक्षतः इस केस में थायरायड ग्रन्थी की अति क्रिया है पिछले दिनों में इसका इलाज "ल्यूगोल सोल्यूशन से किया भी गया पर कोई लाभ नहीं हुआ। व्यापक लक्षण: शारीरिक गर्मी की कमी, गर्मी से आराम मगर बन्द कमरे में बुरा लगना, रात्रि को रोग वृद्धि, खाने के बाद तर मौसम में या तूफान की आमद होतो रोग बढ़ता है। दुबली पतली है, क्षयग्रस्त सी लगती है छाती तंग है। प्रत्यक्षतः ये सलफर के लक्षण थे, २ वर्ष तक दी गई कुछ रोक थाम तो हुई मगर विशेष लाभ न हुआ। ५० हजार वीं शक्ति में देने पर भी हर महीने दवा देनी पड़ती और फिर भी यद्यपि कम मात्रामें पर दिल की द्रुतगति और सिर दर्द वगैरह हो ही जाते। आर्सेनिक आयोडाइड, ट्यूबर कुलीनम, सोरीनम, थायरायडीनम दिये गये पर लाभ न हुआ। आयोडीयम के ह्रास व वृद्धि के लक्षण न थे। साइकोटिक को० (पेटर्सन) सब से अधिक लाभ कारी सिद्ध हुआ। अब चार महिने हो गये हैं मगर सब लक्षणों में धीरे २ आराम हो रहा है और दुबारा दवा देने की जरूरत नहीं पड़ी। इस से यह सिद्ध होता है कि इस दवा का

प्रभाव सलफर से अधिक गहरा व स्थायी है यद्यपि सलफर के काफी लक्षण थे।

साइकोटिक को०—एक ननलैक्टोज फर्मेन्टिङ्ग जीवाणू है जिसे हमारी दवाओं में श्री बाश व पेटर्सन ने प्रयोगों के बाद सम्मिलित किया है। इन दवाओं का पूरा विवरण १९५० जुलाई के ब्रिटिश होमियोपैथिक जर्नल में मिलता है। ए० नैल्सन एन्ड क० लन्डन से इसकी प्रतिलिपियें मिल सकती हैं। ये अंतड़ियों के जीवाणुओं के नोसोड बहुत बड़े एन्टीसोरिक हैं जिस तरह सोरीनम और ट्यूबर कुलीनम के बिना मैं रहना पसन्द न करूंगा उस ही तरह मैं इन को भी छोड़ नहीं सकता, ये बहुत उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

पैटर्सन साइकोटिक को० को क्षय के पूर्वावस्था की दवा मानता है और बैसीलीनम व थूजा की पूरक। इसके रोगियों की छातियें तंग होती हैं, मैला चेहरा, चिकत्तिया, बदमिजाज, स्नायविक प्रकृति, चिड़चिड़ी तबियत होती है और भय व चिन्ता अधिक करते हैं। इस प्रकृति के रोगियों में थायरायड ग्रन्थियों की अतिक्रिया होती है। इसके अतिरिक्त रक्त स्वल्पता, वातज प्रकृति व नजला जुकाम की प्रवणता भी इन में रहती है। जाहिरा तौर पर सोरा साइकोसिस दोनों का इसमें मेल पाया जाता है।

ऊपर वर्णन किये गये हरेक केस में ऐसा लक्षण समूह था जो किसी न किसी एन्टीसोरिक दवा को मांगता था मगर उसके दिये जाने पर स्थायी लाभ न हुआ। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि जब लक्षणानुसार एन्टीसोरिक दवा देने पर भी लाभ न हो तो एन्टीसोरिक नौसोड की तलाश करनी चाहिये। नौसोडों की संख्या जितने अब हैं सम्भवतया आगे चल कर उनसे अधिक हो जावेगी मगर उपयुक्त दशाओं में जिन नौसोडो की प्रायः अधिक आवश्यकता पड़ती है वे निम्न प्रकार हैं:

ट्यूबर कुलीनम बैसीलीनम, इन्फ्लुएंजीनम (तरुण रोगों में), फिर अंतड़ियों वाले उपयुक्त नोसोड और अन्तिम—सोरीनम स्ट्रेप्टोकाक्सीनम।

यह तो केवल मेरे अनुभव के आधार पर मैंने नाम गिना दिये हैं मगर प्रत्येक चिकित्सक को अपना २ तजुर्बा अलग २ होता है। रोगी व रोग के अनुसार ही हमें नौसोड चुनना चाहिये। प्रायः ऐसे केस आ जाते हैं जिन की उदाहरण ही ही नहीं मिलती।

विचार विनिमय

डा० बैलोकौसी—आप ट्यूबर कुलीनम बोवाइनम, देते हैं या मनुष्यों की ट्यूबर कुलीनम।

डा० ह्विटमौन्ट—मुझे यह भेद नहीं मालूम मेरे पास तो एक ट्यूबर कुलीन है और दूसरी ट्यूबरकुलीन बोवाइनम है।

डा० बैलोकौसी—वे दोनों एक नहीं हैं।

डा०—ह्विटमौन्ट—दूसरी क्या है?

डा० बैलोकौसी—हीथ

डा० ह्विटमौन्ट—और कोई?

डा० स्मिथ—कौच ट्यूबरकुलीन।

डा० ह्विमौन्ट—अब तो मैं बैसीलीनम ही प्रयोग करता हूँ।

डा० अन्डरहिल-ये आप कहां से मंगाते हैं?

डा० ह्विटमौन्ट—लन्डन में नैल्सन से।

डा० अडन्रहिल—ब्रिटिश होमियोपैथिक जर्नल में नौसोडों पर एक लेख दुबारा छपा है।

डा० ह्विटमौंट—मैं इस पत्र को बराबर पढ़ता हूँ मेरी राय में यह बहुत ही अच्छा पत्र है, हमारे रिकार्डर से भी अच्छा ही समझियें। यह एक सरकारी पत्र है और इस के पास काफी मसाला रहता है।

डा० सदरलैन्ड— यह जर्नल पढ़ने योग्य है और निसन्देह इसमें बढ़िया मसाला रहता है। किसी जर्नल की उतमता तो उसके लिखने वालों की उत्तमता पर ही निर्भर करती है। आप सब यह तो समझते ही हैं।

डा० एलीजैबेथ—क्या मैं दो बातें कह सकती हूँ? ट्यूबरकुलीन बोवाइन सभी ग्रन्थियों में विशेषतया गले की गांठों में बहुत ही अद्भुत असर करता है। साथ ही पेट की गांठों में भी इसके परिणाम आश्चर्यजनक होते हैं।

बैसीलीनम को क्षय के उन रोगियों में मैंने अधिक लाभदायक देखा है जिन में रोग रोगी से रोगी को लगता है। मैंने यह देखा है कि जब किसी रोगी में मां बाप से क्षय की प्रवणता आई हो तो ट्यूबर कुलीनम बोवाइन खूब काम करताहै। और उससे भी अधिक ट्यूबर कुलीनम क्षय की खांसी में उपयोगी होता है। क्यों आप मुझ से सहमत नहीं हैं?

डा० ह्विट मौन्ट—इसे, मैंने कई दफा परीक्षा की पर ट्यूबरकुलीन सफल न हुई।

डा० एलीजेबैथ—शायद आपकी परीक्षा में पूरी न उतरी हो। मैं तो जानती हूँ कि यह कहां लाभ करती है।

मैं साथ ही आपको इस वाक्य के लिए धन्यवाद देती हूँ—"कीटाणुमय पृष्ठ भूमि जो रोगमुक्ति में बाधक होती है"—इस बाधक पृष्ठ भूमि को हम प्रायः भूल जाते हैं आपके ये वाक्य हमें सचेत करते रहेंगे।

डा० स्मिथ—ट्यूबरकुलीनों पर फ्रैंच चिकित्सकों ने काफी काम किया है—शायद सब से पहले उन्होंने ही भिन्न २ प्रकार की ट्यूबरकुलीनों की परीक्षा की है और कई प्रकार की वहां मिलती भी है।

मैं नहीं कह सकता कि डाक्टर ह्विटमौन्ट को वे ट्यूबर कुलीन मिले या नहीं जिन्होंने मेरे हाथों अच्छा काम किया है। जब हड्डीयें व फाइब्रस टीशूज आक्रांत होते हैं जैसे पुराने वातज जोड़ों के दर्द व विकृति तो ये दवा खूब काम करती है क्योंकि इन रोगों में क्षय का अंश रहता ही है। मैं इन में कौच का ट्यूबर कुलीन देती हूँ। जब बोवाइन काम नहीं करता तो मैं तो सदा कौच देती हूँ। बोवाइन से भी मैंने लाभ उठाया है पर यह ठीक है कि वंशगत क्षय में बैसीलीनम अधिक उपयोगी है। मेरा ऐसा ही अनुभव है।

डा० एलीजेबेथ—ट्यूबरकुलीन एवीयेरी अर्थात पक्षीयों का ट्यूबरकुलीन इनफ्लुऐंजा मिश्रित न्युमोनीया में बड़ा लाभदायक

[शेष अगले पेज़ में]

ज़र्द चमेली का हार

डा० कर्म्म चन्द्र 'हितैषी' शिमला

जैलसीमीयम का हिन्दी नाम 'ज़र्द चमेली है। इसकी बेल आप ने देखी होगी बहुत ऊंची चढ़ती है और सुगन्ध भीनी २ होती है। इसके ज़र्द रंग के फूल बहुत सुन्दर होते हैं। शौकीन लोग अकसर इन पुष्पों का हार गूंथ कर गले में पहनते हैं। यह बेल ग्रीष्म ऋतु में खूब जोबन में होती है। आओ हम तुम्हें इस के फूलों के हार के चन्द मौजज़े बतायें।

पहला चमत्कार

सन् १६ का ज़िकर है कि मैं होम्योपैथिक मैडिकल कालेज लाहौर में सायंकालीन कक्षाओं को पढ़ा रहा था कि मेरे कालेज के 'पोर्च' में एक मोटरकार धम से आ खड़ी हुई। जो सर प्रतूल चन्द्र जज हाई कोर्ट की थी। एक बंगाली वकील उतर कर सीधे मेरे क्लास रूम में आये। और प्रार्थना की कि मैं उनके बंगाली गुरु को चल कर देखूं क्यों कि जब से वह धार्मिक स्थानों की यात्रा से वापिस आये हैं तब से बहुत बीमार हैं। परन्तु सब से बड़ी मुशकल यह है कि वह मर ज़ायेंगे पर कोई औषधि नहीं खायेंगे। खैर मैंने लेकचर खतम किया और उनके साथ हो लिया। वहां जाकर क्या देखता हूं कि वृद्ध साधू जिनकी आयु लगभग ६० वर्ष की होगी चुपचाप बिस्तर पर लेटे हुए हैं। हाथ और पैर ठंडे हैं। आंखें बन्द हैं। कमर और हाथ पांव में दर्द है। सख्त ज़ुकाम है। भीतर कम्पकपी सी लग रही

[पिछले पेज का शेष]

सिद्ध होता है। जब ऐसी महामारी होती हैं तो इसने खूब काम किया है।

डा० स्मिथ—मुझे एक केस की याद है कि उसमें क्षय की प्रवणता थी केवल क्षय की तरफ उसका रूझान था उसकी प्रकृति को पढ़ी ट्यूबर कुलीन १००० ने अद्भुत रूप से ठीक कर दिया।

डा० व्हिटमौन्ट—मैं एक मुख्य बात पर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ कि ट्यूबरकुलीन से अच्छा होने वाले दो तिहाई केसों में क्षय का कोई आधार न था, न हिस्टरी थी, न वंशगत, न लक्षणगत फिर भी उसने लाभ किया। तो हमें ट्यूबर कुलीन और ट्यूबर कुलोसिस दोनों को पृथक २ कर देना चाहिए। यह हो सकता है कि ट्यूबर कुलीन के किसी रोगी में क्षय की पृष्ट भूमि भी हो पर हमें तो इसे एक एन्टीसोरिक नौसोड समझना चाहिये और क्षय का विचार किये बगैर सलफर के बाद इसे उत्तम नौसोड समझना चाहिये।

है दरयाफत करने से मालूम हुआ कि बीमार की हालत ४-५ रोज़ से जियादा खराब है। पानी और दूध वगैरा से सख्त घृणा है टैम्प्रेचर १०२°२ थी। चूंकि मुझे पहले सूचित कर दिया गया था कि रोगी बूढ़ा और पुराने विचारों का साधू होने के कारण कोई औषधि नहीं खायेगा। बस मैंने ज़र्द चमेली का हार मंगवाकर उस के गले में डाल दिया। और हिदायत करदी कि मुझे दूसरे दिन शाम को रोगी की हालत से सूचित किया जावें। परिणाम यह हुआ कि रोगी दो तीन दिन बगैर किसी औषधि के बिलकुल तन्दुरुस्त हो गया जिसमे बंगालियों में होम्योपैथी की और गुड्डी चढ़ गई। और उनकी मेरे विचित्र इलाज से मुझ में और श्रद्धा बढ़ गयी।

दूसरा चमत्कार

एक दिन दोपहर के समय श्री राजा बल्देवसिंह पुंच्छ स्टेट, काश्मीर मोटर लेकर मेरी कोठी पर आये। मुझे फौरन साथ चलने की आज्ञा दी और साथ मैडीसिन चैस्ट भी लाने को कहा जब मैं पुंच्छ हाऊस में पहुँचा तो क्या देखता हूँ कि डैयोढी का खौदा बजीर बरामदे में बेहोश पड़ा है। दिल की धड़कन बेकायदा है। जो बड़ी धीमी और कमज़ोर है। ऐसा मालूम होता था कि दिल अब बन्द हुआ कि हुआ। रियासत का चीफ मैडीकैल आफीसर रोगी की नाड़ी हाथ में लिये इस इन्तजार में बैठा था कि रोगी अब मरा कि मरा। मैंने रोगी की इस दशा को देखकर दरयाफ्त किया कि इसका क्या कारण है। प्राइवेट सैक्रेटरी राजा साहब ने बतलाया कि अभी पोस्टमैन एक चिट्ठी लाया था जिसमें यह बुरी खबर थी कि जम्मू काश्मीर और पुंच्छ रियासत में राजगद्दी का झगड़ा होने की वजह से जम्मू सरकार ने रोगी की कोठियां जो जम्मू में थीं ज़ब्त करली हैं। मैंने आव देखा न ताव झट महल के बरामदे पर चढ़ी हुई ज़र्द चम्बेली के चन्द फूल तोड़ कर रोगी के नाक के पास रख दिये और खुद नब्ज़ पकड़ कर बैठ गया। थोड़ी देर में रोगी के दिल की हरकत जरा तेज़ हुई और उसने आंखें खोल दीं। अब उसको यह अनुभव होने लगा कि यदि वह उठकर चलेगा नहीं तो उसके दिल की हरकत बन्द हो जावेगी। चूंकि बुरी खबर और उसके बद परिणाम तथा दिल की हरकत के सम्बन्ध में यह अद्भुत अहस्सावस जैलसीमीयम के विशेष लक्षण हैं। इसलिये मैंने ज़र्द चम्बेली का हार गुँथवाकर रोगी के गले में डलवा दिया। जिससे वह एक दो रोज में भला चंगा हो गया और राज दरबार में हमारा मान और बढ़ गया।

तीसरा चमत्कार

अभी पिछले दिनों का ज़िक्र है कि शिमला म्युनिसिपल कमेटी का एक मुलाजिम मेरे पास इलाज कराने आया। उसने मुझे बतालाया कि उसे ऐसा मालूम होता है कि जैसे शराब पी हुई है "टांगें मेरी लड़खड़ाती हैं। तमाम जिस्म दर्द करता है आंखों के आगे अन्धेरा छा जाता है।

(शेष पृष्ठ १० पर)

औषध निर्वाचन

डाक्टर ब्रह्मदत्त वर्मा, होशियारपुर

डा० हैसिङ्गर लिखते हैं "*Homœopathy is a weapon much more difficult to accurately aim, but magnificent in its results when handed by a skilled markman. Every Homoeopathic student earnestly endeavours to "qualify" in this contest, for, he has a splendid and thoroughly proved weapon at his hand, his ammunition has been waighed and tested grain by grain, the distances have been carefully measured and the sights accurately adjusted; and in full view, right before him, stands our mortal enemies, disease, suffering and impending Death.*

पाठको ! देखा डा० हेसिङ्गर ने हैनीमैन के दिए शस्त्र को किस सुन्दरता से आपके सनमुख रक्खा है—ऐसा शस्त्र हमारे हाथों में देने के लिये किसी में न तो योग्यता ही थी और न बुद्धि ही थी, यह मुकुट डा० हैनीमैन के सिर पर ही शोभा देता था और देता रहेगा।

निर्दिष्ट औषध होमियोपैथिक मेटीरीया मैडिका में ढूंढने के लिये प्रत्येक होमियो चिकित्सक के भिन्न २ रास्ते या तरीके हैं, जो किसी को अच्छा भाता है उसी को वह प्रयोग में लाता है। इस काम को पूरा करने के लिये मेरे विचार में जब तक चिकित्सक के पास एक अच्छा और सुन्दर निघण्टू "औषधि गुण वर्णन की पुस्तक। मेटीरीया मैडिका और योग्य और सुन्दर रैपरटोरी, रूप व्याख्या या लक्षण विधान का ग्रन्थ ना हो तो काम चल ही नहीं सकता। इस के लिये डा० क्लार्क या डा० कैन्ट का निघण्टू और डा० नैर, कैन्ट या बौनिङ्गहासन की रेपरटोरी सब से अच्छी है।

अब चलिये—जब एक रोगी मगंलदेव

(शेष ६ वें पृष्ठ का)

तम्बाकू और सिग्रेट का धुवां बहुत बुरा लगता है। पसीना आने और पेशाब करने से सब तकलीफें कम हो जाती हैं। दिल शराब पीने को चाहता है। चूंकि यह सब लक्षण जैलसीमीयम के थे इसलिये मैंने उसे हिदायत की कि वह जर्द चम्बेली का हार पहने उसकी सब तकलीफें दूर हो जावेंगी। चुनाचे ऐसा ही हुआ। चार पांच रोज के बाद वह धन्यवाद करने आया और कहने लगा कि डाक्टरों ने टीके कर मेरा जिस्म छलनी कर दिया परन्तु "मर्ज बढ़ता ही गया ज्यों ज्यों दवा की।" मगर जर्द चम्बेली के हार ने जादू का असर किया।

नामक आप के पास आवे और जब आप उसके (Subjective Symptoms) "यानि वह लक्षण जो रोगी स्वयं अपनी बुद्धि से ही या इन्द्रियों द्वारा जान सकता है और आप ही आप बता सकता है" और (Objective Symptoms) "यानि वह लक्षण जो चिकित्सक या रोगी-सेवक रोगी को देख कर ही जान सकता है, चाहे रोगी को जान पड़ते हों या नहीं," लेकर लिपी-बद्ध करके तब आपको उसके विशेष लक्षणों को याने उसके विचित्र, विशिष्ट और खास लक्षण या लक्षणों को पृथक करके नोट कर लेना चाहिये, जब यह आप का चुनाव का काम हो जावेगा तो आप रेपरटोरी के रूबरिक (Rubric) को खोलें, वहां पर आप को औषधियों की एक लड़ी लिखी मिलेगी, अब इस लड़ी में से हमें एक ही औषधि निर्वाचन करनी होगी जो रोगी के उपयुक्त हो और हर प्रकार से उसके लिए हुए लक्षणों के साथ काट करती हो—जिस को देने से उसको आरोग्यता मिले—अब इस आगे के कार्य को भली प्रकार मस्तिष्क में डालने के लिये नीचे लिखे दो उदाहरणों से आप की समझ में आजावेगा: (१) फर्ज करो, ऊपर का रोगी आप के पास कटिबेदना (Lumbago) से आता है—आपने उस के विशेष २ लक्षण तो नोट कर ही लिये हैं, अब अपनी रेपरटोरी को खोलें—उसकी वेदना कमर में होती है, आप देखेंगे कि मेटीरीया मेडिका में ६०० औषधियों के बजाय २०० औषधियें रह गई है, अब आगे चल कर रोगी के लक्षण से यह मिलान करें कि उसके लक्षण प्रातः बिछौने पर अधिक होते हैं अब जब आप आगे बढ़ेंगे तो वहां पर आप को २०० औषधियों के बजाय २६ औषधियें मिलेंगी, अब आगे चलो, तीसरा विशेष लक्षण उसका यह जताता है कि मुझे प्रथम बिछौने पर बैठना पड़ता है यदि मैं पासा पल्टना चाहूँ। अब आप की रेपरटोरी यहां पर खत्म हो जाती है और आप को निर्देशित करती है कि इस रोगी के लिये नक्स वामिका ही औषधि होगी, अब आप अपनी निघण्टू में नक्स के लक्षण को रोगी के लक्षणों से मिलावें, वहां पर आपको ९९% रोगी के लक्षण इस औषधि से मेल खाते हुए मिलेंगे—और जब यह औषधि रोगी को दी जावेगी तो रोगी आरोग्यता की ओर अपना पग बढ़ावेगा।

अब दूसरा उदाहरण लो—एक रोगी देवदत्त आपके पास जैहरबाद (Vesicular erysipelas) ले कर आता है—अब आप अपनी रैपरटोरी (Skin) को खोलें और आप अपना ध्यान (Rubric Marked Erysipelas) पर लगावें फिर (Sub Rubric Marked Vesicular) पर अपनी दृष्टि ले जावें, वहां पर आपको ४०० औषधियों के बजाय ४५ ही औषधियें मिलेंगी, लेकिन आप के रोगी के लक्षणों में आप को एक लक्षण यह मिला है कि उसको पीला पाखाना होता है। इस लक्षण को लेकर आप की औषधियें ४५ की जगह १७ रह गइ, आगे चल कर एक लक्षण और मिला वह यह है कि उसका पाखाना पीला और पानी की तरह का है। यहां आपको १७ से कट कर १४ औषधियें रह गयीं। आगे चल कर एक लक्षण और

मिला कि उसका पाखाना बड़ी तेजी और जोर के साथ निकल जाता है, यहां आपको १४ के स्थान पर १० औषधियां रह गईं अन्त में एक लक्षण और मिला कि उसको पाखाना कुछ खाने और पीने के तुरन्त ही बाद उसको लोटा लेकर शौच के लिये भागना पड़ता है, यह विशेष लक्षण एक मोहर की तरह हमें दर्शाता है कि क्रोटन टिग औषध ही इस रोगी के लिये उपयुक्त होगी। अब क्रोटन टीग के लक्षणों का मेटीरीया मैडीका से मिलान करें और आप देखेंगे कि ६५% आपको यह औषध आरोग्यता पहुँचाने वाली मिलेगी।

पाठक वृन्द--देखा आपको इन दो साधारण उदाहरणों से रोगी के लिये केवल एक ही औषध चुन लेने के लिये किस तरह से कहां तक रोगी के लक्षणों और रेपरटोरी ने आपको पहुंचा दिया, यदि आप अपनी मैटीरीया और रैपर्टरी को लेकर खूब अभ्यास कर लेवें और नित्य प्रति करते रहें तो आपको बड़ी ही सुभीता मिलेगी और तुरन्त रोगी आप के हाथ से आरोग्य होगा और आप का यश गावेगा।

जब तक आप डाक्टर से नहीं मिल सकें,

अपने गृह चिकित्सा होमियोपैथिक बक्स

से विशुद्ध होमियोपैथिक दवाइयों का प्रयोग कीजिये

मिले जुले हुए हर प्रकार के दवाइयों के साथ अंग्रेजी या हिन्दी पुस्तक सहित सागवान के बक्सों का मूल्य इस प्रकार है :—

४८ शीशी—अमेरिकन दवाइयों सहित ३४॥) भारतीय दवाइयों सहित १२)
६० ,, ,, ,, ,, ४२।) ,, ,, ,, १४)
१०४ ,, ,, ,, ,, ६०॥) ,, ,, ,, २२॥)

मंगाने का एक मात्र पता :—

डालवर केमिकल कम्पनी
दानापुर कैन्ट

फोन—नं० १५
तार का पता—"डालवर"

अताई कौन ?

डा० आर० एस० रस्तोगी, देहरादून

हम आह भी भरते हैं तो हो जाते हैं बदनाम,
वह क़त्ल भी करते हैं तो चर्चा नहीं होता !

२२ अगस्त सन् १९५२ के 'हिन्दुस्तान टाइम्स' में उसके कार्यालय सम्वाददाता द्वारा दिया हुआ एक लेख निकला है जिसका शीर्षक है "Quackery thrives in the Capital" अर्थात राजधानी में अताईपन खूब चल रहा है। इन महाशय ने किसी एलोपैथिक डाक्टर के दवाखाने में प्राप्त हुई एक खबर के आधार पर होमियोपैथी पर आक्षेप किया है। जब कुछ इन्तजार के बाद सम्वाददाता जी की बारी आई तो डाक्टर साहब ने इनसे कहा —"क्या आप ने उस रोगी को देखा जो अभी आपसे पहले गया है ? इसके एक फोड़ा था जिसे एक होमियोपैथ ने कुछ पुड़ियें खिला कर बैठा देने का अश्वासन दिलाया था और जब यह सफल न हो सके तो उन्होंने उस को चीर दिया और फोड़ा सेप्टिक (Septic) हो गया।" सम्वाददाता जी को मनन करने के लिये बहुत सामग्री मिली। उन्होंने सोचा कि क्या होमियोपैथ शल्य चिकित्सा में भी टांग अड़ाते हैं जो केवल एलोपैथ को ही सिखाई जाती है ? उन्हें शायद ये मालूम नहीं है कि होमियोपैथिक मैडिकल कालिजों में भी शल्य चिकित्सा सिखाई जाती है और वह सब विषय पढ़ाये जाते हैं जो एलोपैथिक कालिजों में पढ़ाये जाते हैं। हो सकता है कि रोगी की ही किसी बेपरवाही से जख्म (Septic) हो गया हो या वास्तव में किसी अनाड़ी आदमी ने फोड़ा चीर कर बिगाड़ दिया हो। किसी भी समझदार आदमी को एक घटना के पीछे किसी श्रेणी पर ऐसा हमला नहीं करना चाहिये। यूं तो एलोपैथिक डाक्टर रात दिन कितने अताईपन के काम करते हैं, जैसे कि बिना खून की जांच कराये हुये रोगियों को पैनिस्लीन के धड़ाधड़ इन्जेक्शन देना, कुनेन देना इत्यादि। मिसाल के तरीके पर मैं सिर्फ दो रोगियों का जिक्र करूंगा। एक रोगिणी को बुखार आया। शुरू में दो दिन उसको मलेरिया समझ कर कुनीन पिलाई गई। बुखार नहीं उतरा और उसने गले में दर्द की शिकायत की। इस पर चार दिन तक पैनस्लीन के टीके लगाये गये। बुखार वही १००° व १०२° के बीच में चलता रहा। तब उन्होंने मुझे बुलाया। १०२ डिग्री के बुखार पर नाड़ी की गति १०० प्रति मिनिट थी। और सब हालात

देख कर मुझे टाइफायड का ख्याल हुआ पर वह डाक्टर साहब फिर भी सेप्टिक टांसिल्स (septic tonsils) के निदान पर अड़े रहे और बड़े दावे के साथ कहने लगे कि खून की जांच अर्थात (Total W. B. C. Count और Differential Count) करावा कर देख लीजिये। जांच करने से Differential Count करीब करीब हस्ब मामूल था पर Total W. B. C. Count केवल 5500 per c. mm. था जो सेप्टिक टांसिल्स के निदान के बिल्कुल प्रतिकूल था। उन डाक्टर साहब को मानना पड़ा कि इलाज टाइफायड का होना चाहिये था। एक और उदाहरण देना अनुचित न होगा। एक टाइफायड के मरीज का तापक्रम (Temperature) मर्ज़ की मुद्दत का खयाल करते हुए बजाय नीचे आने के ऊंचा ही चल रहा था और वह मेरे (होम्योपैथिक) इलाज में था। मरीज़ की हालत काफी चिन्ताजनक थी। तीमारदार अपने ऐलोपैथिक फ़ैमिली डाक्टर से भी सलाह करते रहते थे। उन डाक्टर साहब की राय थी कि एक फेफड़े में निमोनिया का असर होने से तापक्रम ऊंचा चल रहा है और अब होम्योपैथिक इलाज जारी रख कर मरीज़ की ज़िन्दगी से खिलवाड़ नहीं करनी चाहिये बल्कि पैनिस्लीन फौरन शुरू कर देना चाहिये। मुझ से भी पूछा गया। मैंने कहा कि फेफड़े में जो मामूली सा असर (congestion) है वह टाइफायड के कारण ही है। कम से कम वह डाक्टर साहब खून की जांच करा कर सिद्ध तो करें कि पैनस्लीन देने के लायक केस है। Total W. B. C. Count केवल 2300 per c. mm. निकला और उन्हीं डाक्टर साहब ने फ़र्माया कि इस दशा में पैनस्लीन तो नहीं दिया जा सकता पर Polydin और Chloromycetin देना बहुत जरूरी है। तीमारदारों ने होम्योपैथिक इलाज ही जारी रखने का फैसला किया और लड़का कुछ समय के बाद बिल्कुल ठीक हो गया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि रोगी की दशा बहुत खतरनाक थी—दो हफ्ते तक बिल्कुल बेहोश रहा, Meningitis भी पैदा हो गई थी, हाथ पैरों पर फ़ालिज भी पड़ गया था—मगर होम्योपैथी से सब बातें बिल्कुल ठीक हो गईं। यदि बिना खून की जांच के पैनस्सलीन शुरू कर दिया जाता तो बहुत ही भयंकर परिणाम होता।

ऐसे और इससे बदतर परन्तु 'वैज्ञानिक' अताईपन के काम रात दिन देखे जा रहे हैं और न जाने कितने निर्दोष रोगी इस अताईपन की कीमत अपने जान व माल से चुका चुके हैं पर नाम बदनाम है होम्योपैथी का जो कि प्राकृतिक अचूक नियमों और सिद्धान्तों पर आधारित है जिसमें अताईपन की गुंजाइश बहुत ही कम है, और जिसमें ज़हरीली से ज़हरीली औषधि मात्रा अति सूक्ष्म होने के कारण हानि-रहित होती है। ऐलोपैथिक इलाज में यदि रोग का निदान गलत हो गया तो सारा इलाज गलत हो जावेगा पर होम्योपैथी में यदि रोगी के लक्षण ठीक पकड़ लिये जावें तो इलाज ठीक रहेगा चाहे रोग कुछ भी हो। अब हम पाठकों पर

(शेष अगले पेज पर)

स्वास्थ्य धाम की यात्रा

—श्री धर्मचन्द सरावगी

श्री धर्मचन्द सरावगी राजस्थानी समाज के प्रमुख प्राकृतिक चिकित्सा प्रेमियों में हैं। उन्होंने हाल ही में प्रसिद्ध प्राकृतिक डा० राजू के दक्षिण भारत में भीमावरम स्थित आरोग्य आश्रम की यात्रा की थी। उसी का मनोरंजक वर्णन श्री सरावगी ने इस लेख में किया है।]

डाक्टर राजू से सर्व प्रथम मुलाकात जयपुर कांग्रेस में हुई। उसके बाद मैंने अपने बन्धु केदारप्रसाद सरावगी को वहां भेजा। उसकी पत्नी को कुछ गड़बड़ी थी। वह १५ दिन में ही ठीक हो गई। उन लोगों ने उस स्थान की बहुत अधिक तारीफ की, इसी पर वहां जाने की चाह और प्रबल हो गई। सेवापुरी के पिछले सर्वोदय सम्मेलन में डाक्टर राजू जब आए तो कलकत्ता में मेरे यहां ठहरने की कृपा की। उनके साथ कई दिनों तक लगातार रहने के बाद और उनके जीवन के क्रम को देखकर उनके आश्रम देखने की उत्कण्ठा और भी बढ़ गई। इसी बीच आदरणीय महावीर प्रसाद जी पोद्दार कलकत्ते आये। उनसे मालूम हुआ कि गांधी निधि की तरफ से कुष्ट रोग निवारणार्थ भीमावरराम प्राकृतिक केन्द्र को रुपया दिया जायेगा, इसलिए पोद्दार जी का वहां जाना आवश्यक है। डाक्टर कुलरन्जन मुखर्जी भी वहां जाना चाहते थे।

अन्धा क्या चाहे दो आंखों की कहा-

[पिछले पेज का शेष].

ही इस बात का फैसला छोड़ते हैं कि अताई कौन है और किसका अताईपन रोगियों के लिए अधिक हानिकारक हो सकता है।

'हिन्दुस्तान टाइम्स' के संवाददाता महाशय का पक्षपात तो केवल इसी बात से जाहिर है कि उन्होंने सरकार से सिफ़ारिश की है कि राजधानी के चिकित्सकों की जांच पड़ताल एक ऐसी कमेटी के द्वारा कराई जावे जिसमें प्रतिष्ठित ऐलोपैथिक व आयुर्वेदिक चिकित्सक हों और सब चिकित्स अपनी-अपनी शाखा में चिकित्सा करने के लिये प्रमाणपत्र लेने पर बाध्य हों। होम्योपैथ्स के लिये तो उनकी राय में इस कमेटी में या चिकित्सा क्षेत्र में कोई स्थान ही नहीं मालूम पड़ता—शायद इस कारण से कि वह तो अताई होते हैं।

वत के अनुसार जब दो दो बुजुर्ग जाने को तैयार थे तो मैंने भी अपना बिस्तर गोल कर लिया, परन्तु पोद्दार जी की शर्त्त थी कि यह यात्रा थर्ड क्लास में ठाठ के साथ की जाए।

यात्रा के लिये प्रस्थान

रिजर्व कराने की तकलीफ न कर हम लोगों ने गत २० जून को भीमावरम का टिकट कटा लिया। मद्रास मेल शाम को चार बज कर ३५ मिनट पर छूटती है। भीड़ अच्छी खासी थी। परन्तु तूफानमेल और पूरी ऐक्सप्रेस के थर्ड क्लास की सी नहीं थी पोद्दार जी ने पुराने अनुभवी होने के कारण ऊपर वाले पटरे पर जाकर आसन जमाया। मैं और डाक्टर मुखर्जी नीचे विराजमान रहे। आधे सोते आधे जागते सुबह विजय नगर में पहुँचे सारे दिन चीनाबादाम, अनाररस, केले, आम और फल खाते हुए सन्ध्या को ६ बजे नैदिबल स्टेशन पर पहुँचे। डाक्टर राजू को १२ आना पैसा खर्च कर पहले ही सूचना दी जा चुकी थी। इसलिए उन्होंने अपने एक कार्यकर्त्ता को वहां भेज दिया था। जिससे ११ बजे रात में पहुँचने के बदले ८ ही बजे भीमावरम पहुँच गए। मौसम बहुत सुहावना था। हम लोग २८ घण्टे की ठाठ की यात्रा कर ही चुके थे इसलिए डाक्टर राजू से साधारण बातचीत के बाद ही चान्दनी में बिस्तर बिछा कर तीनों ने लम्बी तान दी।

प्रातःकाल नित्यक्रम करने के बाद आश्रम के अपक्व फलों का जलपान किया इसमें चिचिन्डा पक्का, आम पक्का, केला नारियल दूध आदि भी थे। मेरे जीवन में कच्चा चिचिन्डा खाने का यह पहला ही मौका था। बिना उबाले और नमक रहित खाने में वह ठीक ककड़ी की तरह मालूम पड़ता था। इसके उपरान्त आश्रम का निरीक्षण करने को निकले।

आश्रम

आश्रम स्टेशन से सड़क द्वारा डे मील दूर है परन्तु पगडन्डी से ४ फरलां ही होता है। आश्रम के बगल से ही गोदा वरी नदी की एक नहर बहती है। यह आश्रम करीब ५१ एकड़ में है। इसके बीच में एक नहर बहती है। एक लम्बा चौड़ तालाब है। इसमें ८ कोठियां बनी हैं, औ ४, ५ बड़े व छोटे झोंपड़े बने हैं। साल भ में लगभग दो तीन हजार रोगी लाभ उ कर जाते हैं। रोज कहीं न कहीं से न रोगी आते ही रहते हैं। चिकित्सा कर का किसी प्रकार का शुल्क नहीं लि जाता। इसलिए रोगी जिस अवस् में आते हैं डाक्टर राजू उन्हें निसंकोच लेते हैं। यहां तक कि मरणासन्न रोगी क भी लेकर हरि नाम आदि सुना कर उ सान्त्वना देते हैं। यदि कुछ भी जीव शक्ति बाकी रही और यदि वह कुछ दि तक वहां ठहर गया तो उपवास करा उस रोगी को लाभ पहुँचाया जाता है। य किसी कारण रोगी नहीं बचा तो कम कम मरते समय कड़वी औषधियों से उसका निस्तार हो ही जाता है।

उपचार

रहने के लिए यहां जो झोंपड़ियां ब हैं, उनका मासिक भाड़ा दस रुपया ल है, उनसे अच्छी कोठियां जो सीमेंट

बनीं हैं उन का भाड़ा २० रुपया लगता है। इसके अलावा एक गृहस्थ के लायक २ कमरे और एक ब्रांडा और एक चौक का कमरा पक्का सीमेंट का बना हुआ है, उसका मासिक भाड़ा ३७ रुपये ८ आना है। यहां रोगियों को अधिकतर मानसिक उपचार, यौगिक व्यायाम और खान पान पर ही रोग को रोक दिया जाता है। परन्तु पेडू पर मिट्टी और एनिमा का प्रयोग रोज ही होता है। स्टीम बाथ और मालिश सप्ताह में एक आध बार अधिक से अधिक रोगी की अवस्था देखकर किया जाता है, रोगी को एक दो बार एनिमा मिट्टी की पट्टी और यौगिक व्यायाम डाक्टर राजू अथवा उनके सहयोगी करा कर दिखा देते हैं। इसके बाद स्वयं रोगी उनके बताये ढंग पर करने लग जाते हैं। जीवन सुधार में सब से पहले चाय, काफ़ी तम्बाकू, मांस, मदिरा और तली हुई चीजों का त्याग बहुत जरूरी है। इसके पश्चात् रोगी को साधारण भोजन कराया जाता है, रोगी को मामूली गड़बड़ी हो और वह इससे शीघ्र ही छुटकारा पाना चाहता हो तो उसे अपक्व आहार यानी कच्ची चीजों का भोजन देते हैं। इसमें अधिक नारियल, केला, चिचिण्डा, अंकुरित गेहूं, चना और मोठ दिया जाता है। यदि रोगी अपने कष्ट से ऊब गया है और रोगों से जल्दी पिण्ड छुड़ाना चाहता है तो उस को १०,१५,२०,२५,४०, दिनों तक केवल २ बार नारियल का पानी देकर रखा जाता है। हर बार ४ औंस से अधिक नारियल का पानी नहीं दिया जाता है। यदि रोगी इससे भी जल्दी जादू की तरह रोग दूर करना चाहता है तो उसे केवल आधा नींबू का रस पानी में मिला कर हर बार सारा दिन जितना पानी भी पीना चाहे उतना पानी पिलाया जाता है। इस तरह रोगी १०,१५,२०,२५,३५,४० दिन में ही अपने रोग से मुक्त हो जाता है जब तक आंखों नहीं देखा जाता तब तक इस बात पर विश्वास नहीं होता, रोगियों से पूछने पर तथा अच्छे २ पढ़े लिखे लोगों ने बताया कि पांच २ छः २ वर्षों तक अस्पतालों में सूइयां और दवाइयां खाने के बाद भी वे रोग मुक्त नहीं हुये और इस आश्रम में स्ट्रेचर पर आये परन्तु ३० दिनों के उपवास में रोग से मुक्त हो गये। यह सुनकर बहुत आश्चर्य हुआ। उन्होंने बताया कि हमारा वजन पहले से बहुत घट गया है। परन्तु शारीरिक कष्ट नहीं है। काम करने की शक्ति बढ़ गई है। शरीर हल्का भी मालूम पड़ता है। मैंने वहां सभी रोगियों से अलग २ बातें की जो रोगी अंग्रेजी जानते थे उनसे तो आसानी से बातचीत होती थी। लेकिन जो अंग्रेजी नहीं जानते थे उनकी भाषा का अंग्रेजी में अनुवाद कर लोग हम लोगों को समझाते थे। गांधी निधि द्वारा सहायता दिये जाने वाले रोगियों को भी देखा। उन लोगों के रहने का अलग प्रबन्ध था। उनमें कुछ लोग जो दो एक महीने से अपक्व आहार पर थे उनके शरीर का मोटा चमड़ा बदल रहा था और जो ४, ६ महीने से थे उनके कुष्ट के स्थान पर जो निर्जीवता थी उस पर सजीवता आ गई थी। और रंग भी काफी बदल चुका था। और सूजन भी कम हो

गई थी उनका कहना था कि ६,७ महीना और रह जाने पर बिल्कुल स्वस्थ हो जायेंगे। वहां एक बहन से मिले। वह पहले बहुत मोटी थी और प्रसव के समय बराबर कष्ट हुआ करता था, परन्तु यहां आने पर उसका ३२ पौंड वजन घट गया औरबिना किसी यन्त्र और औषधि के उस को एक बहुत सुन्दर बच्चा पैदा हुआ। उस बहन के साथ उसकी मां थी। यह इस प्रकार की चिकित्सा पर बहुत आश्चर्य प्रकट कर रही थी। रोगियों से पता लगा कि यहां का वातावरण ऐसा हो गया है कि लगभग सभी रोगी उपवास करते हैं और ठीक हो जाते हैं। जो रोगी उपवास के नाम से घबड़ाते हैं वे भी उन रोगियों को देख कर उपवास करने लगते हैं जिनको १५, २० दिन ही उपवास करने से आशातीत आराम होता है। डाक्टर राजू स्वयं ६ फीट के लम्बे युवक हैं चौड़ी छाती और छोटा पेट। किसी जमाने में वे एक सरकस खिलाड़ी थे। और करीब २२ वर्षों से अपक्व आहार कर रहे हैं, जिसके फलस्वरूप वे अभी तक बीमार नहीं पड़े। वे लोगों को सांत्वना देते हैं और अपनी सन्ध्या की एक घण्टे का प्रार्थना के बाद व्याख्यान में लोगों को समझाते हैं जिससे रोगी स्वयं रोग को मार भगाने के लिए उनके बताये हुये उपायों को करने लग जाते हैं।

गांव की यात्रा

दूसरे दिन डाक्टर राजू ने एक जीप की व्यवस्था की। हम लोगों ने आस पास के गांवों में घूमना प्रारम्भ किया। जीप का दौरा करीब ६०, ७० मील का था। १०, १२ गावों में जा कर लोगों से मिले। अन्त में एक जमीदार के यहां पहुँचे। उसने आज से सात वर्ष पहले की घटना को सुनाना प्रारम्भ किया। उसने बताया कि १०, १२ वर्षों से बिमार रहता था, ४, ६ वर्ष तक काफी दवाइयों के चक्कर में रहा व अन्त में पायोरिया हुआ और सारे दान्त हिलने लगे। इसके साथ हृदय रोग हुआ। जिसको लोगों ने मिटना असम्भव बतलाया। इस अवस्था में मेरे कई हजार रुपये खर्च हो गए। परन्तु रुपये का सवाल तो मेरे साथ था ही नहीं रोग को असाध्य बता कर मेरी हिम्मत तोड़ दी गई थी। मैंने डाक्टर राजू का पता लगाया और जिस कुर्सी पर बैठा हूँ उस दिन भी इसी कुर्सी पर बैठा था। डाक्टर राजू से रोग का सारा बयान कह सुनाया। सुन कर डाक्टर राजू ने कहा कि आप स्वस्थ हो जाएंगे लेकिन ऊसके साथ कुछ शर्तें हैं जिन्हें आपको पालन करना होगा। उन्होंने कहा कि सबसे पहले आपको चाय, काफी, मांस, तम्बाकू बीड़ी आदि को छोड़ना होगा। इसके अतिरिक्त आपको तली हुई चीजें भी नहीं खानी होंगी। मैंने इन सब चीजों के छोड़ देने का वचन दिया। इसके बाद इनके बताए हुए नियम, स्नान, व्यायाम और उपवास को ६ महीने तक पालन किया। ६ महिने के इलाज करने के बाद स्वस्थ हो गया। उस समय से अब तक ४ बार के बजाय २ बार अपक्व आहार करता हूँ। अभी तक उनके बताए हुये नियमों का पालन करता हूँ जिसके फल-

स्वरूप अभी तक मेरे स्वास्थ्य में किसी तरह की गड़बड़ी नहीं हुई है। और पूर्ण स्वस्थ हूँ। दांत टूटने के बजाय मजबूत हो गये हैं। डाक्टर राजू से जब मुलाकात होती है तो वे हम से कहते हैं कि भाई तुम अगर अपने कहे हुये बचन को वापस ले लोगे तो मैं भी अपने दिये हुये स्वास्थ्य को वापस ले लूंगा। इस पर सब लोग हंसने लगे।

रोगी डाक्टर बना

गांव में हम लोग अन्य रोगीयों से बात कर रहे थे तो उसी समय एक ६ वर्ष का पुराना कुष्ट रोगी आया जिसको आश्रम में आराम किया गया था। सामने आ कर अपने अपक्वाहार खाने की बातें कहने लगा। सारी कहानी सुनने के बाद हम लोगों ने उसकी कमीज खुलवाई। उसके शरीर पर किसी प्रकार का निशान नहीं था। अब वह अपना साधारण जीवन बिता रहा था। पूछने पर बताया कि सप्ताह में एक बार उपवास करता हूं और किसी प्रकार का परहेज नहीं करता।

गांव में घूमते समय पता लगा कि जो भी डा० राजू के पास ५, ६ महिने इलाज कराता है वही डाक्टर बन जाता है। प्रत्येक घर में एनीमा कैन, सीमेन्ट का टब मिलता है। जब गड़बड़ी होती है तो लोग एनीमा लेते हैं, पेट पर मिट्टी की पट्टी लगाते हैं और उपवास करते हैं। हैजा और चेचक जैसी बीमारियां जब गांव में होती हैं तो डाक्टर राजू के शिष्य एनीमा और पेड़ू स्नान कराना शुरू कर देते हैं जिससे रोग संक्रामक नहीं होता! वह वहीं दब जाता है।

आश्रम से लौटने पर एक ८ वर्ष के बच्चे को देखा जिसका सर बहुत भारी हो गया था। शरीर के अनुपात से बहुत बड़ा था किन्तु दो तीन महिने के इलाज से साधारण स्थिति में आ गया। एक भाई को घुटनों में ड्रौपसी की बीमारी हो गई थी और वह चल फिर नहीं सकता था परन्तु डेढ़ महीने के इलाज से वह अब मजे में चल फिर रहा है। इस प्रकार मैंने देखा कि डा० राजू बिना किसी दूसरी चिकित्सा के महात्मा गान्धी के बताये हुये साधारण ढंग पर रोगियों का इलाज अच्छी तरह से कर रहे हैं। इस यात्रा में हम तीनों लोगों को बड़ा आत्मसन्तोष हुआ। मैं उस घड़ी की राह देखता हूँ कि समस्त भारतवर्ष में अस्पतालों के बजाय जगह जगह इस प्रकार के आश्रम हों।

(लोकवाणी जयपुर)

छप गया ! छप गया !!

यदि आप अंग्रेजो को प्राप्त तथा अप्राप्त पुस्तकों के ज्ञान द्वारा द्रव्य तथा अपनी उन्नति चाहते हैं तो इन्हें एक बार जरूर पढ़ें :

(१) **'बायोकैमिक चिकित्सा शास्त्र'**
(२) **ज्वर चिकित्सा**
(३) **हैज़ा चिकित्सा**

डा० शिवनाथ सिंह
जयनगर, किंग रोड (दरभंगा) बिहार

होमियोपैथी का परिचय

डा० शिवनाथ सिंह जयनगर

यह चिकित्सा पद्धति वैदिक काल में भी प्रचलित थी। अथर्व वेद के मंत्रों के दवा प्रकरण में देखने से पता चलता है कि उस समय यह चिकित्सा पद्धति थी।

इशानां त्वा भेषजाना
मुज्जेष आरभामहे ।
चक्रे सहस्र वीर्य
सर्वस्मा आषधत्वा ॥

अर्थ:—हे औषधे! तुमको सब प्रकार के रोगों के लिए मैं सहस्र गुणा शक्ति वाला करता हूँ और सब रोग हारक औषधियों में से अधिक सामर्थ वाली वस्तु को रोग पीड़ाओं पर विजय और वश करने के लिए बनाता हूं। अथर्व वेद सू० १७ मं० १

सत्यजितं शपथयावनी
सहमानां पुनः सराम् ।
सर्वाः समह्वयोषधी
रितोनः पारयादितिः ॥

अर्थः—मैं अपने बल से रोग पर वश करने वाली, "शपथ यावनी" अंशनां पथैः प्रक्षेपैः गति विशेषैर्वाः

यावति मिश्रयति हिनस्ती रोगान सांशा शपथ यावनी)

अर्थ:—अंशोंके सूक्ष्म सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम इस प्रकार की पथ सूक्ष्म गति या प्रक्षेप द्वारा शरीर में प्रवेश कर मिलने और रोग अधिकाधिक नाश करने वाला बनाता हूं। अथर्व वेद सू० १७ मं० २।

सूक्ष्म याने ३, ६, १२, ३०
सूक्ष्मतर—२००, ५००, हजार और
सूक्ष्मतम—दस हजार, लाख, दस लाख।

आयुर्वेद सभी चिकित्सा पद्धतियों का आदि श्रोत है इस आयुर्वेद शास्त्र के अन्दर ही 'सोम चिकित्सा" ऐसा पाया जाता है। जिसका सिद्धान्त 'विषस्य विषमौषधम' 'समः समं शमयति' 'Similia Similibus Curenture" 'Like Cures like' ही है। प्रकृति का नियम उत्थान और पतन है। इसी भांति उस समय यह चिकित्सा 'सोम चिकित्सा' नाम से चलती थी। आयुर्वेद विशेषज्ञ ऋषि इसे चलाते थे। वे पूर्ण चिकित्सक होते थे। आयुर्वेद अष्टांग कहलाता है। इसी के कई उपांग जो आज चिकित्सा पद्धति के रूप में प्रवर्ति हो गये हैं जैसे प्राकृतिक चिकित्सा, सू रश्मि चिकित्सा आदि। बुद्ध काल अहिन्सा परमो धर्मः मानकर सरज आयुर्वेद से हटा दिया गया। किन्तु कु छोटे लोग सरजरी का काम करने लगे

आज भी जर्राह के रूप में पाये जाते हैं। शल्य चिकित्सा कितना आगे बढ़ा था कि बाल को चीर डालने के लिये अस्त्र था। सुषुम्ना नाड़ी में भी सूची वेध होता था।

मुगलों का जमाना आया आयुर्वेद का अनुवाद उर्दू में करके उसका नाम हकीमी (यूनानी) रखा। बाद में अंग्रेजों का जमाना आया वे अपने देश के जलवायु के लायक इस चिकित्सा पद्धति को बनाकर, व्यापार का रूप देकर एलोपैथिक नाम दिया। उसी एलोपैथिक साइन्स के पूर्ण चिकित्सक महात्मा हैनिमन भी थे। सन् १७५५ ई० के १० वीं अप्रेल को महात्मा हैनिमन का जन्म जर्मनी के माइसेन नामक ग्राम में बर्तन के ऊपर रंग करने वाले के घर हुआ। इनके पिता गरीब थे पर हैनिमैन साहब को पढ़ने की रुची थी इन्होंने महनत करके एम० डी० की परीक्षा पास की। ये बर्लिन विश्वविद्यालय के चिकित्सा विभाग के प्रधान अध्यापक रहे थे। ये पढ़ने में ऐसे तेज थे कि करीब अठाईस भाषाओं के जानकार हो गये ये केमिस्ट्री शास्त्र के पंडित थे। अपनी जीविका चलाने के लिये चिकित्सा शास्त्र की पुस्तकों को वे दूसरी दूसरी भाषाओं में उल्था करते थे। एक समय की बात है कि महात्मा हैनिमैन ने देखा कि मलेरिया बुखार (जाड़ा,बुखार, पसीना) की दवा सिंकोना है। मलेरिया वाले रोगी को सिंकोना अधिक खिलाने से मलेरिया अच्छा हो जाता है तो यदि स्वस्थ मनुष्य ज्यादा सिंकोना खा ले तों क्या होगा इस पर विचार करने के बादवे सिंकोना टिंचर दो ड्राम खाकर एक आदमीको बैठाकर उसे नोट करने को कहा कि देखिए क्या-क्या होता है। सिंकोना खाने के बाद ठीक मलेरिया बुखार की ही भांति उन्हें जाड़ा देकर बुखार हुआ और पसीना देकर उतर गया। इसी से उन्होंने यह सिद्ध किया कि "समः समं शमयति" "बिषस्य विषमौषधम्" का सिद्धान्त ठीक ही है। जो औषधि स्वस्थ शरीर में सेवन करने से जो जो लक्षण प्रकट करती है वही लक्षण यदि किसी रोगग्रस्त शरीर में प्रकटित हों तो उसी लक्षण युक्त रोग में इस औषधि को सेवन करने से आराम होता है। क्योंकि औषधि की परिभाषा यों है:—शरीर की स्वाभाविक क्रियाओं में जो परिवर्तन पैदा कर दे उसको औषधि कहते हैं।

रोग भी इसी तरह के होते हैं पर भेद यह है कि औषधि की क्रिया दो तरफी होती है यानी विकार युक्त शरीर में स्वस्थ कर परिवर्तन (Healthy change) पैदा करता है और स्वस्थ शरीर में विकार युक्त परिवर्तन (Morbid change) पैदा करता है। इसी को औषधि कहते हैं।

यह सिद्ध हो जाने के बाद उन्होंने सोचा कि ज्यादा सिंकोना मलेरिया के रोगी को खिलाने से अच्छा होता है तो सूक्ष्म खिलाने से भी अच्छा हो सकता है कि नहीं ? और अपने रोगियों को सूक्ष्म दवा देने लगे और रोगी अच्छे होने लगे। आज के जुग म जब अणुबम का आविष्कार हुआ तब पता चला है कि अणुशक्ति कितनी प्रबल है। आज के बिशेषज्ञ मनुष्यों को विध्वंश करने के लिये अणुशक्ति का अविष्कार करते हैं पर धन्य महात्मा हैनिमैन जो मानव कल्याण केतु हैअपने

जीवन से बाज़ी लगा लगाकर बड़े-बड़े जहरों को खा खा कर उनकी अणुशक्ति का पता मानव कल्याण के लिये लगाया। इसी वजह से तो उन्हें महात्मा कहते हैं। महात्माओं के अन्दर दिव्य दृष्टि होती है। इस दिव्य दृष्टि से उन्होंने देखा कि सुख का अनुभव जीवनी शक्ति पर होता है जो इस स्थूल शरीर से परे है। "जोवनी शक्ति" एक अदृश्य शकित है जो हमारे सारे शरीर पर शासन करती है और सुचारु रखती है। अपने शरीर को सुचारु रूप में देख कर हम लोग जीवनी शक्ति का ज्ञान प्राप्त करते हैं। परन्तु उसे देख नहीं पाते हैं। कोई भी उसे इस चर्म चक्षु से नहीं देख सकता है। आप देखते हैं कि आत्मा (जीवनी शक्ति) का नाश मौत कहलाती है। जब आत्मा हमारे शरीर से निकलता है तो यह स्थूल शरीर शव अथवा निर्जीव कहलाता है पर उस आत्मा को निकलते किसी ने नहीं देखा। यह आत्मा अमर है पर सुख दुःख अपने कर्म को भोगने के लिए देह धरता है। आत्मा (जीवनीशकित) कोई ऐसी स्थूल वस्तु नहीं है जो छुई जा सके। इसकी पुष्टि गीता के द्वितीय अध्याय के २१ से ३० तक के श्लोक स्पष्ट करते हैं :

अव्यय अजन्मा नित्य अविनाशी इसे जो जानता।
कैसे किसी का वधकराता और करता है बता ॥२१॥
जैसे पुराने त्याग कर वस्त्र नव बदलते हैं सभी।
यों जीर्ण तन को त्याग नूतन देह धरता जीव भी ॥२२॥
आत्मा न कटता शस्त्र से, आग से जलता नहीं।
सूखे न आत्मा वायू से जल से कभी गलता नहीं ॥२३॥
न छिदने जलने और गलने सूखने वाला कभी।
है नित्य निश्चल थिर सनातन और है सर्वज्ञ भी ॥२४॥
इन्द्रीय पहुंच से है परे मन चिन्तना से दूर है।
सविकार इसको जान दुःख में व्यर्थ रहना चूर है ॥२५॥
यदि मानते हो नित्य मरता जन्मता रहता यहीं।
तो भी महाबाहो उचित ऐसी कभी चिन्ता नहीं ॥२६॥
जन्मे हुये मरते मरे निश्चय जनम लेते कहीं।
ऐसी अटल जो बात है उसकी उचित चिन्ता नहीं ॥२७॥
अव्यक्त प्राणों आदि में है मध्य में दीखते नहीं।
फिर अन्त में अव्यक्त क्या उसकी उचित चिन्ता नहीं ॥२८॥
कुछ देखते आश्चर्य से आश्चर्यवत कहते कहीं।
कोई सुनें आश्चर्यवत, पहिचानता फिर भी नहीं ॥२९॥
सारे शरीरों में अमर आत्मा न वध होता किये।
फिर प्राणियों का शोक यों हम को न करना चाहिये ॥३०॥

जब यह सिद्ध हो गया तो अब सूक्ष्म जीवनी शक्ति को आरोग्य करने के लिये सूक्ष्म दवावाली शक्ति चाहिये। दवा की बनावट स्पीरीट के अन्दर होती है, स्पीरीट के अन्दर शक्ति है और दवा की बनावट भी सुक्ष्मातिसुक्ष्म हो जाती है। एक बूंद किसी दवा का असल अर्क लिया उसमें ९९ बूंद अलकोहल मिलाया और उसे १०० या १० बार थपथपाया याने उसमें शक्ति को बढ़ाया यह नम्बर एक हुआ, फिर इसमें से एक बूंद लेकर ९९ बूंद अलकोहल मिलाकर सौ या दस बार थपथपाया यह दो नम्बर हुआ। इसी क्रम से लाख तक का डायल्यूसन बनता है। अब सोचने की बात है कि दवा में स्थूल दवा की मात्रा कितनी रह जाती है। हिसाब की कसौटी पर भी उतारना मुश्किल हो जाता है। पर उसमें सुक्ष्मातिसूक्ष्म शक्ति कितनी हो जाती है जो जीवनी शक्ति के पास पहुँच जाती है। जीवनी शक्ति को इन्द्रीयों के द्वारा जिन-जिन तकलीफों का आभास होता है ठीक उन्हीं समस्त तकलीफों को निवारण करने की क्षमता जिस एक औषधि में हो वही समस्त रोग के लक्षणों पर एक साथ प्रहार करके उसे निर्मूल कर सकती है। अब यहां एक ही दवा एक बार सुक्ष्मातिसूक्ष्म शक्ति तथा सूक्ष्म मात्रा को क्यों देते हैं ? क्यों कि आत्मा एक है उसी को रोग लक्षणों का आभास मिलता है तो दवा भी एक ही उस एक जीवनी शक्ति के पास पहुँच कर उन रोग लक्षणों को समूल नष्ट कर सकती है।

इससे यह तय पाया कि होमियोपैथी रोग की चिकित्सा की जगह रोगी की चिकित्सा करता है।

होमियोपैथिक दवाइयों की प्रूविंग (परीक्षण) की जाती है। दवा स्वस्थ मनुष्य जब खा लेता है तो जो जो मानसिक तथा हर अंगों के उपद्रव दवा का उपद्रव शुरू होता है उसे लिख लिया जाता है (यही सकलन होमियोपैथिक मेटेरीया मेडिका बना) ठीक वैसा ही मानसिक तथा हर अंगों के तकलीफ वाला रोगी होने पर उस दवा की सूक्ष्मातिसूक्ष्म शक्ति तथा मात्रा की दवा, समस्त रोग लक्षणों को आराम करत है। दूसरे पद्धति की जितनी दवायें हैं उनका जांच पशुपक्षियों पर किया जाता है जो मनुष्यों से भिन्न जीव हैं। उनके अन्दर मानसिक विकास तथा ज्ञान और प्रयत्न नहीं रहता तथा अपने अन्दर होने वाले मानसिक तकलीफों को वे पशु पक्षी व्यक्त नहीं कर सकते। इसी वजह से बहुत सी बिमारियां उन दवाओं के कारण ही होते देखी जा रही हैं।

महात्मा हैनीमैन ने बताया है कि होमियोपैथिक सिद्धान्त से रोग का सबसे पहला प्रभाव मन पर होता है और शरीर पर पीछे। इसीलिए उन्होंने दवाई के चुनाव में भी अधिक महत्व मानसिक लक्षणों को ही दिया है। होमियोपैथिक औषधियां मानसिक विकारों को बहुत सफलता से दूर करती है जैसे चोरी करना, झूठ बोलना, चुगल खोरी करना, गाली देना, इत्यादि को दूर कर मनुष्य के भीतर मनुष्यता दे सकती है तो केवल होमियोपैथी, होमियोपैथिक मतानुसार रोग का

मूल कारण "सोरा" है और उस सोरा से सम्बन्धित दो और हैं साइकोसिस और सिफलिस। परमात्मा ने मनुष्यों को इस लिए पैदा किया कि आपस में मिल जुल कर प्रेम से जीवन बितावें परन्तु क्या हुआ इस नियम का उलंघन हुआ। एक दूसरे से ईर्षा करने लगे, नाना तरह की खुराफात करने वाली बातें रात दिन सोचने लगे, इससे दिमाग में अशान्ति उपस्थित हुई। कहीं से सोरा का पैदाइस शुरू हुआ! यही अशान्ति और दिमागी बेचैनी घबराहट नोचनी जो दिमाग में थी वही बाधायें तमाम शरीर में खुजली कोढ़ उक्वत के रूप में प्रगट हुआ। यही सोरा दिमाग में ईर्षा द्वेष की भावना को बढ़ाते बढ़ाते बुद्धि पर पट्टी डाल नाना प्रकार क अनर्थ तथा दुष्कर्म करा देता है। इन्ही दुष्कर्मों में प्रेरणा सोरा द्वारा पाकर व मनुष्य पराथी गनोरीया ग्रसित स्त्री के सा संभोग करता और उसे साइकोसिस घ दबाता है। यही हालत सिफलीस की भी कि सिफलीस से पीड़ित औरत के सा संभोग करने से सीफलीटिक जहर भ आ जाता है। ये बीमारियां बश गत जा हैं पर होमियोपैथिक उच्च शक्ति क दवा के द्वारा इसका जड़ से आराम ह जाता है जिससे उसके खान दान में फि वह बिमारी नहीं रहती है।

Grams :—**Homoeopaths** NEW DELHI. *Phone :*—**45486.**

An up-to-date House
For
Every Homoeopathic requirement

DR. MAHANDRU & CO.

QUTAB ROAD, Post Box No. 50.

NEW DELHI.

Prop. **Dr. PURAN SINGH MAHANDRU.**

Biggest Direct Importers of

B. & T's Homoeo and Biochemic Medicines and Books
&
Manufacturers of Globules
of all sizes and numbers.

ENQUIRIES ARE CORDIALLY INVITED.

गम्बोजिया

डा० रामेश्वर प्रसाद दानापुर कैन्ट

गम्बोजिया होमियोपैथिक मैटेरिया मेडिका में उदरामय के लिए एक उत्कृष्ट औषधि है। विशेषतः प्रचलित औषधियों की श्रेणी में नहीं रहने के कारण चिकित्सकों का ध्यान इस ओर कमती जात है। उदारमय की कई प्रचलित औषधियों से मुझे जब लाभ नहीं मिला तब गम्बोजिया के व्यवहार से आशातित लाभ हुआ।

गम्बोजिया, चीन और कोचीन देश में उत्पन्न एक प्रकार के वृक्ष का गोंद है इसका दूसरा नाम गम्भी-गट्टी भी है।

उदरामय में—गम्बोजिया के निम्नलिखित निर्णायक लक्षण हैं :

(१) मल बहुत पतला और पीला
(२) ,, गाढ़ा, बदबूदार, या आम भरा
(३) प्राचीन उदरामय, समस्त मल एक ही बार बड़े जोर से निकलना
(४) पाखाना होने पर रोगी को बहुत आराम मालूम पड़ता है (नक्स)
(५) कभी कभी मल में जलन और छिल जाने का सा अनुभव (सल्फ)
(६) विशेषतः वृद्ध एव बच्चों का उदरामय
(७) पाखाना होने के पहले एकाएक वेग, नाभी प्रदेश में भयानक यंत्रणा, मलत्याग के पश्चात आराम मालूम होता है (नक्स)

तुलना—गम्बोजिया के लक्षण के साथ क्रोटन का भी सादृश्य है लेकिन क्रोटन मल बड़े वेग से पिचकारी छोड़ने जैसा निकलता है। साथ ही खाने पीने के बाद दस्त हो जाते है। पाखाने के बाद आराम मालूम होना नक्स में भी है लेकिन नक्स वोमिका का मल बार २ थोड़ा ही आता है। और नक्स में गम्बोजिया जैसा हड़हड़ाकर पित्त के दस्त नहीं आते।

अनुभव—एक रोगी उदरामय का आया। उसे हड़हड़ा कर ५—७ दस्त नित्य होते थे। लक्षणानुसार क्रोटन, नक्स, चायना और कलके० फौस दिया कोई विशेष लाभ नहीं हुआ सिर्फ ४ मात्रा ३० शक्ति गम्बोजिया से उसे पूरा लाभ हुआ।

दूसरा एक रोगी शिशु था, उसे आठ, दस बार दस्त आते थे। दस्त का रंग पीला, कभी कभी हरा या आंवयुक्त था। कल्के० फौस, एलो, अर्जेन्टम ना० आदि दिये गये पर कोई लाभ नहीं होने पर गम्बोजिया दिया और उससे आशाजनक लाभ हुआ अब मैं उदरामय में गम्बोजिया की और विशेष ध्यान देता हूं।

दोषघ्न—कैम्फर

व्यवहार्य—६, ३०

गन्धक (सलफर) की आत्मकथा

डा० एच० एल० शर्मा

मैंने पहिले अपने सम्बन्ध में कभी कुछ भी नहीं कहा है क्यों कि पहिले मैं एक नन्हीं बच्ची थी किन्तु अब मैं बड़ी हो गई हूँ और अपना उत्तर दायित्व समझने लगी हूँ कि मैं भी संसार के अन्तर राष्ट्रों की समाज का एक अङ्ग हूँ। मैंने अब अच्छी तरह अनुभव कर लिया है कि जो कुछ सेवा मैं कर सकती हूं उससे बंचित रहने के कारण हजारों मनुष्य प्रति दिन मर रहे हैं।

मेरी खोज होने और होम्योपैथिक-रोगविज्ञान में प्रयोग होने से पूर्व मैं एक सुप्तावस्था में थी और इसी कारण चिकित्सा विज्ञान के प्रसिद्ध-सुधारक डाक्टर हैनिमैन की मैं बहुत कृतज्ञ हूँ। जिन्होंने कि मुझे निद्रा से जगाया कि जब तक यह संसार स्थिर है मैं मनुष्य-मात्र की सेवा करूं। महान डा० हैनिमैन ने मेरे अन्दर (Potency) शक्ति भरदी और एक भारतीय होम्योपैथ डा० शर्मा ने मुझे जिह्वा प्रदान की कि मैं आपके सन्मुख बोलने के योग्य हुई हूँ।

मुझे गन्धक के नाम से पुकारा जाता है। मैं कोई धातू नहीं हूँ मूल पदार्थ हूँ जो रसायन में "S" के चिन्ह से जानी जाती हूं। मेरा एटामिक भार ३२-०६ है, आपेक्षिक घनत्व २-०७ है और ११४° सैंटीग्रेड (२३८° फा०) गर्मी पर मैं पिघल जाती हूँ।

मैं शरीर के लगभग सारे ही प्रोटीन तन्तुओं में विद्यमान हूँ। तुम मुझको ज्वाला मुखी वाले प्रदेशों में पाओगे और भिन्न २ प्रकार के पौधों से प्राप्त कर सकते हो। मैं गरमी से (उड़ाकर) तैयार की जाती हूं। पिघलाने के बाद या तो मुझे गोल सांचों में ढाल दिया जाता है या यूं ही जमने दिया जाता है जिसे "गन्धक के फूल" कहते हैं जो कि एक बारीक रेतीला सा चूर्ण होता है और यही अधिक प्रयोगमें आता है। गरमी में उड़ाई हुई मेरी आकृति को चूने के पानी में उबाला जाता है और फिर हाइड्रोक्लोरिक एसिड में मिलाया जाता है और फिर मैं एक बारीक और हरयावल वाले पीले चूर्ण के रूप में आ जाती हूँ और फिर मुझ को 'प्रेसिपिटेटेड सल्फर' का नाम दिया जाता है। मेरी क्रिया या तो 'चूर्ण के दानों पर निर्भर रहती है' और अधिकतर उस तत्परता पर जिसके साथ मैं दूसरे पदार्थों से मिल कर 'सल्फाइड्ज' और 'सल्फेट्स' के रूप में हो जाती हूँ। इस गुण के फलस्वरूप मेरे अन्दर जीवाणुनाशक शक्ति आ जाती है। जब मेरा प्रयोग आन्तरिक रूप से (खाकर)

होता है तो 'सल्फाइड्ज' बनते हैं वे अंतड़ियों के कार्य को उत्तेजित कर देते हैं और कुछ भाग त्वचा के ऊपरी भाग और वायु नलियों की श्लेष्मिक-झिल्ली से बाहर निकलते समय उनको भी उत्तेजित कर देते हैं।

पुराने विचार के डाक्टरों (एलोपैथ) के लाभार्थ मुझ को जलाया जाता है और बहुत बड़े पैमाने पर प्रयोग में लाने के लिये उसमें से एक कीटाणू नाशक सल्फ्यूरस एसिड गेस बनाई जाती है। बाहरी तौर पर खुजली उतपन्न करने वाले जो कीड़े होते हैं उनके विरुद्ध मेरा मरहम एक अत्यन्त सुन्दर औषध है और सल्फर का दूध चेहरे पर हो जाने वाले मुहासों के लिये धावन के रुप में प्रयोग में आता है। गठिया आदि भिन्न प्रकार की व्याधियों में त्वचा पर मेरे कार्य को उत्तेजित करने के लिये मुझे स्नानागारों में भी प्रयोग में लाया जाता है। इस अभिप्राय के लिये या तो मुझ को मेरे साधारण रूप में या अधिकतर 'सल्फेड आफ पोटाश' के रूप में चौथाई या आधा पौंड को ३० गैलन गरम पानी में मिला दिया जाता है। आन्तरिक तौर पर बहुत पुराने समय से कोष्टबद्ध (कब्ज) की एक उत्तम औषधि हूँ जिस की मात्रा लगभग एक चाय के चमच के बराबर को शर्बत के साथ मिला कर लेही सी बना कर दी जाती है। इसी अभिप्राय के लिये मुझे अधिक स्वादिष्ट बनाने के लिये मेरी मिठाई की टिकियां बनाई जाती हैं जिन को दो चार खालेने से एक हल्का सा रेचन (दस्त) हो जाता है। श्वास नली प्रदाह, गठिया और कब्ज के लिये मैं एक बहुत लाभ दायक औषधि हूं विशेष कर वृद्ध जनों के लिये बड़े विस्तार में मेरा प्रयोग होता है। मेरा बहुत प्रयोग तब होता है जब मुझे भिन्न प्रकार की गठिया मार जड़ी बूटियों के साथ पिला कर "चैलसी-पैनशनर" नाम की मिठाई के रूप दे दिया जाता है। इसी प्रकार मेरे गुण वाली बहुत सी बनस्पतियों के प्रयोग से भी, जैसे उबाली हुई प्याज या पकी मसूर के रस से भी बहुत लाभ प्राप्त किया जा सकता है। सल्फरेट आफ पोटास जिस को उसकी आकृति के के कारण "सल्फर का यकृत" भी कहा जाता है त्वचा के रोगों को ठीक करने के लिये स्नानों में प्रयोग किया जाता है। सल्फ्यूरिक एसिड या गन्धक का तेजाब असली अवस्था में खनिज तेजाबों में सब से अधिक शक्ति शाली होता है। वह भारी होता है और बिना रंग तेल पदार्थों से युक्त तरल होता है, यह भिन्न २ प्रकार की वस्तुओं के बनाने में बहुत प्रयोग में आता है इस ही लिये सल्फ्यूरिक ऐसिड के विषैले प्रभावों के केस आम तौर से मिलते हैं। मैं यदि किसी जैव पदार्थ के मेल में आजाती हूँ तो उसको झुलस देती हूं और अंग विशेष या स्थान विशेष को जला देती हूं—मेरे एन्टीडोट के रूप में खार जैसे कि पकाने का सोडा, मैगनेशिया या साबुन का पानी इस्तेमाल करना चाहिये और शरीर के चोट लगे भाग पर तेल में मिला कर लगाना चाहिये। मेरे तेजाब को पानी में मिलाकर दारचीनी या अदरक की खुशबू मिलाकर जिसको 'विट्रल का अमृत' कहते हैं वह दस्तों के रोग में या शरीर के

अन्तीय भाग से रक्तस्राव में उसकी कब्ज करने के गुण के कारण ५ या २० बूंद तक पानी में मिला कर देते हैं। सीसे से काम करने वालों के लिये थोड़ा सा मेरा तेजाब मिलाकर लेमनेड भी बनाया जाता है क्योंकि वह सीसे के साथ एक न घुलने वाला सल्फेट बन जाता है और इसी कारण वह शरीर में सीसे को मिल जाने से रोकता है जो कि काम करते समय कभी खा लिया गया हो। गन्धक का ईथर साधारणतया उस ईथर को कहा जाता है जो मूर्छित करने के प्रयोग में लाई जाती है क्योंकि उसके बनाने में गन्धक के तेजाब का प्रयोग होता है। सलफूरस एसिड एक ऐसी गैस होती है जो गन्धक को जलाने से तैयार की जाती है। उसकी गन्ध अत्यन्त तीक्ष्ण होती है और वह तेज कीटाणुनाशक है। वह ग्लेसिरीन में मिला देने से पानी में घुट जाती है और त्वचा पर भिन्न भिन्न प्रकार के कीटाणुओं को नष्ट करने के लिये ऊपर से लगाने के प्रयोग में आती है।

मेरा यह सारा कार्य पुराने भेषज विधान (एलोपैथी) के अनुसार है परन्तु मुझे बहुत दुख है कि इन एलोपैथिक डाक्टरों ने मेरा यथार्थ मूल्य नहीं समझा है। वे रोगी जो डाक्टरों के कहने से मेरे से मिश्रित मरहमों का प्रयोग करते हैं वे अपने रोग को अन्दर के किसी और अंग में पहुँचा देते है जिस से कि रोग और अधिक कठिन होजाता है। इस तरह स्थायी और युक्तियुक्त स्वास्थ लाभ के बजाय रोग को बाहर से दबा दिया जाता है यदि कोई रोगी फिर डाक्टर के पास जाता है तो डाक्टर कहता है कि "ओह! यह तुम्हारे आन्तरिक अंग में कोई और नया विकार है। तुम को अपना एक्सरे कराना चाहिये और अपने रक्त, मूत्र, टट्टी और थूक की परीक्षा करानी चाहिये तब मैं तुम्हारे रोग का निदान कर सकूंगा।" रोगी कहता है "यह सब क्या मूर्खता है ? इन परीक्षाओं के होते २ ही यदि मैं मर जाऊं तो।" रोगी की चिकित्सा करने का यह एक हानिकारक, अमानुषिक और गलत तरीका है।

पीड़ित मानवता के अच्छे ही भाग्य थे कि १० अप्रैल सन् १७५५ को जर्मनी में डा० हैनीमैन का जन्म हुआ इनके पिता एक गरीब और चीनी के बर्तनों को रंगनेवाले थे। यह बचपन से ही बड़े बुद्धिमान प्रतीत होते थे "होनहार विरवान के होत चीकने पात!" उन्होंने चिकित्सा का अध्ययन किया और १७७९ में डाक्टर की डिग्री प्राप्त करली। उनके समय में डाक्टर लोग रोगी का इलाज उसका खून निकाल कर या जोंक लगा कर करते थे जिससे रोगी मर भी जाते थे या बिना मूर्छित किये या सड़न रोकने वाली दवाई का प्रयोग किये आपरेशन कर डालते थे या अङ्ग को गरम लोहे से दाग कर या उस पर फफोले डाल कर इलाज करते थे। ऐसे गड़बड़झाले के नियमों और उनके तरीकों के इलाज के विरुद्ध भाषण देते हुए एक बार प्रसिद्ध बोरहेव चिल्ला उठा कि मनुष्य जाति के लिये यह बहुत ही अच्छा होता यदि डाक्टर लोगों का अस्तित्व ही न होता।

चिकित्सा विज्ञान के ऐसे अन्धका

युग में हैनीमैन ने होमियोपैथी या सम चिकित्सा प्रणाली का आविष्कार किया जिसने चिकित्सक को इस योग्य बना दिया कि वह समः समम के अटल सिद्धान्त के अनुसार रोगी को बिना तेज औषधियों के शीघ्रता से कम खर्चे में और पूर्ण रूप से कम से कम मात्रा और शक्ति बढ़ा कर अकेली औषधि से स्वस्थ कर दे। डाक्टर हैनीमैन की प्रसिद्ध पुस्तकों मैटीरिया मैडिका, आर्गेनन और दी क्रानिक डिजीजेज ने चिकित्सा संसार में एक खलबली पैदा कर दी है। यदि वह इस समय जीवित होते तो वह निरोग करने की कला की हर एक नई खोज की परीक्षा करते और उसको उन्नत करते। यह कहा जाता है कि वह अपने समय से एक शताब्द पूर्व हो गुजरे। उनके घोर कठिन एवं सौम्य परीश्रम ने चिकित्सा के क्षेत्र में एक सुधारक होने के नाते उनके अनुयाइयों को ही जीवन नहीं दिया किन्तु मुझे भी जीवन दान दिया है। वह एक पहिला मनुष्य था कि जिसने मेरी अपील सुनने के पश्चात स्वयं मनुष्य शरीर पर मेरी परीक्षा की और मनुष्य जाति को होमियोपैथिक तरीके से सेवा करने के लिये मेरी महति योग्यता को इस प्रकार प्रमाणित किया।

चिकित्सको! क्या आप जानते हैं कि मैं होमियोपैथी के तरीके या हैनीमैन के तरीके इलाज मे किस प्रकार तुम्हारी और तुम्हारे रोगियों की सेवा कर सकती हूं? अच्छा मैं तुमको बताने का प्रयत्न करूंगी।

यद्यपि सरकारी चिकित्सा प्रणाली में मेरा बहुत कम मान है परन्तु होमियोपैथिक डाक्टर मुझको एक बहुत ही प्रभावशाली औषधि समझते हैं। महान डाक्टर हैनीमैन ने बड़ी होशियारी से स्वस्थ मनुष्य शरीर पर मेरा परीक्षण किया और अपनी पुस्तक विशुद्ध मैटीरिया मैडिका में मेरे प्रभाव के प्रमाण के सम्मबन्धी ७५५ परीक्षाओं के परीणामों का जिक्र किया है। बड़े बड़े महान डाक्टर फैरिङ्टन, शुल्ज, हैरिङ्ग, कैन्ट, डन्हम, क्लार्क, रडक, लिपी, नैश और अन्य बहुत से डाक्टर भी उसी परिणाम पर पहुँचे हैं। -

मेरे साफ किये हुए फूलों (ब्रिमस्टोन) को दूध की चीनी के साथ पीसा जाता है और तेज अलकोहल (सुरासार) के साथ मेरी क्रम-शक्ति बढ़ाई जाती है। डाक्टर हैनीमैन के बताये अनुसार दूसरे तरीके से 'स्प्रिटस सल्फूरेटस' या गन्धक का अरिष्ट तैयार किया जाता है जो एक भाग मेरे फूल और १० भाग विशुद्ध सुरासार को मिलाकर हिलाने से बनाया जाता है और उसी प्रकार क्रम-शक्ति बढ़ाई जाती है। साधारणतया मुझको छटे क्रम में तथा दशमलव के विचूर्ण में दस दशमलव की शक्ति से ऊपर के क्रम शक्ति में प्रयोग किया जाता है।

मेरा प्रभाव सारे शरीर पर होता है। मेरे बिना कोई भी सौत्रिक तन्तु स्थित नहीं रह सकते और नाहि अण्डलाल। आक्सीजन गेस से मेरा सम्बन्ध होने के नाते मैं अण्डलाल को जलाने में अधिक योग्य हो जाती हूँ और स्राव करने वाले अंगों की क्रिया को अधिक तीव्र करती हूं और

इस प्रकार समीकरण की क्रिया को बढ़ाती हूं। मेरा कार्य पाचन क्रिया और श्वास-यन्त्र के अङ्गों, रक्तवाहिनो नाड़ियों, मांस पेशियों, नाड़ी स्थान, मूत्रपिण्ड, लैङ्गिक अंगों पर होता है और त्वचा पर अधिक वेग से होता है। क्या मैं एक बहुत बड़े क्षेत्र में लाभ पहुँचाने वाली औषधि नहीं हूँ? मुझे विश्वास है कि आप इससे इन्कार नहीं कर सकते।

यही कारण है कि मेरी ख्याती भी राजा की तरह है क्योंकि मैं सारी औषधियों में सबसे बड़ी हूं और विशेष कर सोरा नाशक औषधियों में। डा० हैनीमैन ने इसी लिये मेरा बड़ा नाम रखा है। इसके अतिरिक्त मैं एक बड़े ऊंचे दर्जे की बहुमुखी दवा हूँ। मैं मुख्यतया एक प्रकृति गत औषधि हूँ। मैं एक गहरी क्रिया वाली औषधि हूँ और मेरी क्रिया अन्दर से बाहर की ओर होती है। पुराने और पेचीदा रोगों के इलाज के आरम्भ में और नये रोगों की समाप्ति पर मैं बहुत लाभप्रद होती हूं। जब ध्यान पूर्वक चुनी हुई और उचित प्रतीत होने वाली औषधियां अच्छे प्रकार कार्य नहीं करती हैं तो मेरा चिन्तन करना चाहिये क्योंकि मैं सोई हुई स्नायविक शक्तियों को जगाने में अत्यन्त समर्थ हूँ जिससे कि संस्थान उचित औषधियों की क्रिया को ग्रहण करने योग्य हो जाते हैं यह एक शुभ अनुमति है यदि मेरे लक्षण उपस्थित हों तो। यदि तुम मित्र भाव से मेरे लक्षण पूछोगे तो मैं कहूंगी कि:—

मनुष्य शरीर में अत्यन्त व्यापक होने के कारण मेरे अन्दर भेषज विधान के सभी लक्षण किसी न किसी प्रकार से विद्यमान हैं। लेकिन कुछ ऐसे व्यापक लक्षण रोगियों में होते हैं जो आपको दवा चुनने में मदद करेंगे। और यदि ये विशेष लक्षण मेरे रोगियों में पाये जावें तो मेरा प्रयोग निश्चित लाभ प्रद होगा। वे लक्षण यह हैं:—

(१) ऐसे मनुष्य जो कि उदासीन चिड़चिड़े, अधीर, स्वार्थी, मूर्ख, अनिश्चित, सुस्त, मैले, गन्दे और बिखरे बाल वाले हों, जो दुर्बल स्मरण शक्ति वाले हों, किसी से बात न करना चाहते हों, हर एक चीज में अरुचि रखने वाले, मन और शरीर में सुस्त, सर्वदा उदास स्वभाव वाले जो अकेले रहना चाहते हों या पुजारियों और वैज्ञानिकों की संगति में रहना चाहते हों, सोचते तो हों परन्तु करते कुछ न हों। अपनी आत्मा की मोक्ष के इच्छुक हों। विशेष कर आविष्कार करने वाले बुद्धिमान, झुके कन्धों वाले तत्वज्ञानी, प्रसिद्ध लेखक, कवि और कलाकार, पुराने शराबी और वे बहुत से मनुष्य जो हर एक बात की 'क्यों और किस लिये' जानना चाहते हों और शीघ्रगति वाले होते हैं।

(२) ऐसे मनुष्य जिनके शरीर और वस्त्रों में ऐसी दुर्गन्ध होती है जो धोये जाने से भी साफ नहीं होती। आपने प्रायः 'भिखारी तत्त्व ज्ञानी' के सम्बन्ध में सुना होगा, वे मनुष्य जो अत्युत्तम बातों पर विवाद करते हैं परन्तु कभी स्नान भी नहीं करते, परन्तु आजकल ऐसे मनुष्य हमें बहुत कम मिलते हैं।

यद्यपि मेरे रोगी स्नान करना तो पसन्द नहीं करते किन्तु चूंकि वह समझदार व्यक्ति होते हैं वह साफ़ रहने का प्रयत्न करते है और चूंकि स्नान उनमें स्फूर्ति उत्पन्न नहीं करता इसलिये वह प्राय: सायंकाल में स्नान करते हैं और फिर सो जाते हैं ताकि सोकर स्नान के कुप्रभावों को हटा दें। जिस वस्तु पर वह विचार करते हैं वही उनको प्यारी लगती है यहां तक कि मैले चिथड़े भी सुन्दर दिखाई देते हैं। यदि अकस्मात वे सो जावें तो उनके सुन्दर और सुहावने स्वप्न होते हैं जो उनको गाते हुए जगा देते हैं परन्तु जब उनको नींद नहीं आती तो प्रातः ४ या ५ बजे उनकी अवस्था अधिक खराब हो जाती है।

(३) मेरे रोगी का सब से बड़ा लक्षण है जलन, चाहे वह शरीर के किसी भाग पर हो या सारे शरीर पर। खोपरी पर गरमी मगर पांव ठंडे, गरम और पसीजे हुये हाथ, बिस्तर में पांव जलने लगते हैं इसलिये वे ठण्डा स्थान चाहते हैं या चादर से बाहर पांवों को निकाल लेते हैं। सारे शरीर पर अग्नि की तरह के गरम झोंके सर की ओर रक्त का दौड़ना और साथ २ सर का चकराना विशेष कर प्रातः और सायंकाल जलन युक्त दर्द कहीं भी हो सकता है और गर्मी से रोग वृद्धि। डाक्टर ई० बी० नेश कहते हैं :

“सल्फर के विशिष्ट लक्षणों और अच्छे हुए रोगियों के लक्षणों के वर्णनों का अध्ययन करने पर जलन का लक्षण इतना प्रमुख आता है कि इस बात पर फिर आश्चर्य करने की गुंजाइश नहीं रहती कि नर्क को गन्धक जला कर गरम रखा जाना क्यों माना गया है ?”

(४) आम तौर पर त्वचा या तो गहरे रंग की होती है या मैली दिखाई देती है, भिन्न प्रकार के त्वचा के रोगों की प्रवृति होना, खुजली से दाने निकलना, बहुत जोर की खुजली जिसमें खुजाने से चैन पड़े परन्तु अन्त में उसमें जलन, सुन्नपना, सूजन और जख्म हो जाते हैं खुजाने से ही नहीं किन्तु स्नान करने से भी ये बढ़ती है, बार २ फुंसियों का होना जो भिन्न भिन्न भागों पर एक साथ निकलती हैं और ऐसे दाद जिनसे बाल भी झड़ जाते हैं।

(५) रोगी अधिक देर तक खड़ा नहीं रह सकता इसलिए पास वाली कुर्सी पर शीघ्रता से गिर पड़ता है। खड़े होने में सब से अधिक कष्ट होता है मूर्छासी आने लगती हैं रात के समय पैरों के तलवों और पिंडलियों में दर्द।

(६) प्रातः ही दस्त होने की हाजत (जिससे रोगी को बिस्तर छोड़ना पड़ता है) और फिर कब्ज, बवासीर में जलन और खुजली।

(७) किसी एक स्थान पर रक्त संचय, विशेषकर रन्ध्र बहुत लाल हो जाते हैं; कान, पलक और होंट लाल होजाते हैं, होंट ऐसे प्रतीत होते हैं जैसा कि रक्त की अधिकता से वे फूट पड़ेंगे और पलक सूज जाते हैं।

(८) थोड़ा नाशता करने वाले मनुष्य जो दुर्बल और मूर्छित से प्रतीत हों, पेट खाली की सी भावना, दिन में ११ बजे के लगभग ऐसा प्रतीत होना कि पेट में कुछ न हो, इस समय एक ग्लास दूध या एक

प्याला चाय या एक सेब या कुछ ऐसी ही चीज खाने को चाहिये और सायं के ५ बजे इससे भी कम। सूखा हुआ मुख, मैली जबान, कड़वा स्वाद, अम्लत्व। खट्टी और कड़वी डकारें, भोजन के पश्चात और सायंकाल में पेट के अन्दर भारीपन और भरे हुए का अनुभव, बहुत सख्त कब्ज या हरा-पीला सा और पीपवाला दस्त और टट्टी आते समय दर्द, मलद्वार में खुजली और जलन. मूत्राशय की दुर्बलता, रात्री में पेशाब बिस्तर पर निकल जाना, चिकने फेन जमा हुआ दुर्गन्धी वाला पेशाब, जननेन्द्रिय में दर्द वाली खुजली और नाना प्रकार की मासिक स्राव में अनियमता

(९) किसी भी मुख द्वार से निकलने वाले स्राव जलन करने वाले होते हैं और जिस भाग पर वह बहते हैं उस को छील देते हैं।

(१०) वे मनुष्य जिनकी दशा झुकने से, खड़े होने से, धोने से और सूर्य की, अग्नि की, कमरे की, बिस्तरे की गर्मी एवं सेक आदि से बिगड़ जाती है। तर मौसम, गर्म और सूखे समय ठंडक से और रात्रि अथवा दिन के ११ बजे और तूफान से पहले भी अवस्था बिगड़ जाती है। खुश्क मौसम में अथवा जब यक्सां मौसम हो तो अच्छा रहना। तापमान के बदलने का रोगी पर प्रभाव पड़ता है और अधिक सरदी से रोगी की अवस्था खराब हो जाती है।

इस समय सारे या कुछ अधिक रोगों को या उन विकृतियों को जिनकी कि मैं बड़ी प्रभाव शाली औषधि हूं बताना असम्भव है। इस पत्र को ध्यान से पढ़ने वाले मनुष्यों का ऊपर लिखी व्याख्या ही नेतृत्व करेगी परंतु प्रिय पाठक वृन्द! मैं आ को यह सम्मति देती हुँ कि होमियोपैथी रोगी का इलाज करती है रोग का नहीं, तुम उसका कुछ ही नाम रखो इससे कुछ मतलब नहीं। यदि उपयुक्त लक्षण किसी मनुष्य में मिलते हैं तो मुझे निश्चय है कि मैं उस को स्थायी रूप से ठीक कर सकती हूँ। आप को यह भी ध्यान करना चाहिये कि पुराने और पेचीदा रोगों में मैं ही एक औषधि हूँ जिसको कि होम्योपैथिक डाक्टर संस्थान की प्रतिक्रिया को उभारने के लिए प्रयोग में लाते हैं जिससे कि उन रोगों में जहां मैं ठीक करने में असमर्थ हूँ उसमें (संस्थान में) अन्य औषधियों के प्रभाव को ग्रहण करने की प्रवृत्ति पैदा कर देती हूं। नए रोगों में मैं बहुत उपयोगी साबित हुई हूँ। बच्चों की अस्थिविकृति और कण्ठमाला के रोगों में भी मैं बहुत उपयोगी हुँ। त्वचा के रोगों में विशेषकर सुर्ख चर्मोभ्देज में जिसमें कि त्वचा में बहुत जलन और खुजली हो मेरा प्रभाव विचित्र है।

चूं कि रोगी की अवस्था अधिक या शीघ्र २ मात्रा में दवा देने से अधिक बिगड़ जाती है अतः कण्ठमाला के रोगी को दवा देने में बहुत होशियारी रखनी चाहिए।

क्या सारे संस्थान पर मेरा एक गहरा प्रभाव नहीं पड़ता? क्या यह सत्य नहीं है कि भेषज विधान में मैं सारी औषधियों की रानी हूं? मुझे विश्वास है कि आप इससे इनकार नहीं कर सकते गत १६० वर्ष से मैंने संसार के सारे भागों में मनुष्य जाति की सेवा की है और

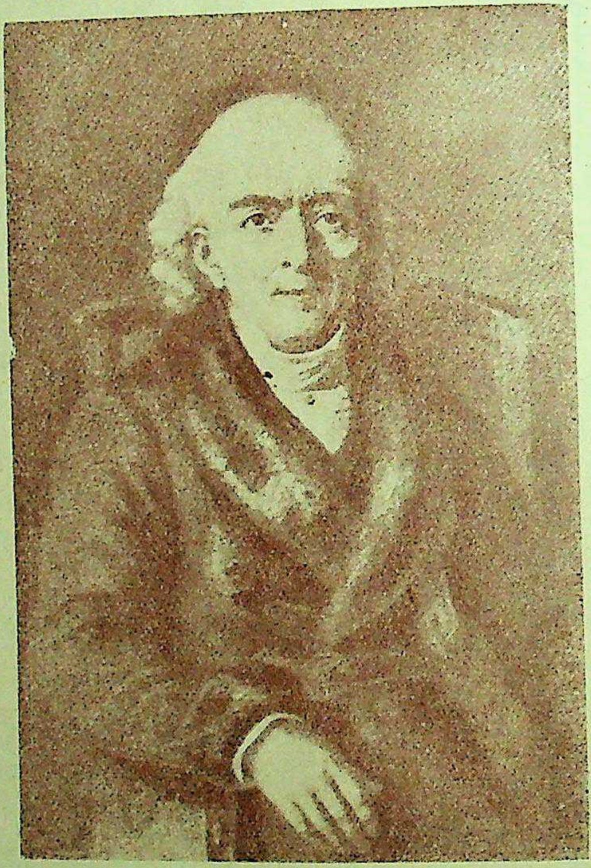

डा० सेमुएल हैनिमैन

जन्म — १७५५ निधन — १८४३

निराशा में आशा लाई हूं और जहां बाह्य अन्धकार फैला हुआ था वहां मैंने प्रकाश फैलाया है। बार बार मैंने वहां पीड़ित मानव की रक्षा की है जहां कि पुराने इलाज (एलोपैथी) ने रोगी भयानक मृत्यु के मुख में दे दिया है परन्तु होम्योपैथी के तरीके इलाज से मैं वह हूँ जिसने चिन्ता के अश्रुओं को सांसारिक सुखों में बदल दिया है। शब्द उस भलाई का बखान नहीं कर सकते जो कि होम्योपैथी पर विश्वास रखने वालों के लिये मैंने की है और करती आ रही हूँ और जोकि यथार्थ में अधिक प्रतिशत रोगियों को ठीक करती है। बजाय अन्य प्रकार के साधारण इलाजों के और जोकि अपने शीघ्र प्रभाव, सस्ते मूल्य और मीठे स्वाद के लिये प्रसिद्ध है इसका इलाज सुरक्षित और उचित ही नहीं है किन्तु स्थायी और अहिंसक है।

यह सम्पूर्ण और सरल वैज्ञानिक चिकित्सा प्रणाली रूढ़ीवाद अन्ध विश्वास को दूर करने की भी शक्ति रखता है। वे शानदार दिन दूर नहीं हैं जब कि हैनीमैन की रोग मुक्त करने की यह कला पूर्ण प्रतिष्ठा प्राप्त करेगी और चिकित्सा क्षेत्र में पूर्ण रूप से मानी जावेगी तथा डा० हैनीमैन को सर्वदा संसार को स्मरण कराती रहेगी जिसने कि दुखित मनुष्य जाति की भलाई के लिए पहले पहल इसकी खोज की और इसके रोग मुक्त करने वाले सुनहरी नियम "सिमिलिया सिमिलिवस" (समः समम्) को प्रचारित किया।

फिर एक बार मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ कि इस चिकित्सा शास्त्र की सत्यता का ध्यान करो—

हैनीमैन आपका नेता है, अनुभव आपका पथ दर्शक है और स्वास्थ्य आप का ध्येय है।

अनु० डा० छैलबिहारी लाल B.A.M.D.H.
(हीलदाइसैल्फ से

For

Genuine **HOMOEOPATHIC & BIOCHEMIC** *Medicines*

Please ring or write to :—

Malik Homœo Pharmacy & Clinic

Sole Distributors :— **Hahnemann Laboratories Calcutta.**
Importers & Suppliers :— **B. T's Original Medicines.**
Publishers :— **The Monthly 'HOMOEOPATHIC Prakash**

3090, Hathi Khana, Bahadurgarh Road, Delhi.

Phone No. — **45361**

होमियोपैथी और आध्यात्मिक वाद

डा० के० के० लखनपाल, करौलबाग नई देहली

कर्म-बन्धन

संसार जब से बना, युद्ध-क्षेत्र बन गया। पाप और पुण्य, दुख और सुख, अशान्ति और शान्ति, तम और प्रकाश, परस्पर वैमनस्य के कारण एक दूसरे के प्रभावक नाम रचे गये। जीवात्मा पुण्य, सुख, शान्ति और प्रकाश की खोज में पाप, दुख, अशान्ति और तम से युद्ध करते हुए सत्य-मार्ग की ओर अग्रसर कर्म-बन्धन में लीन सांसारिक कहलाने लगा। जिसे बलहीन देख यह व्याधियां अनेक रोगों का रूप धारण कर असत्य मार्ग की ओर लिवा जाने का प्रयत्न करने लगीं। परन्तु सांसारिक प्राकृतियां चर-अचर, जड़ और चेतन स्वयं इनका अहार बन जीवात्मा को पाप और पुण्य, दुख और सुख, अशान्ति और शान्ति, तम् और प्रकाश से अलिप्त रखने के लिए औषधि-रूप धारण कर गईं, ताकि शरीर मन, बुद्धि और ज्ञानेन्द्रियों से सुशस्त्र मनुष्य काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार से लिप्त विषय-वासना रूपी पथ पर अप-भ्रष्ट होने से बचने के लिए समस्त औषधि-निधि का चार वर्गों में विभाजन कर दे। जिसे आज का एलोपैथ अथवा होमियोपैथ आयुर्वेद अथवा यूनानी बनस्पति वर्ग (Vegetable products) जीव वर्ग (Animal Products), धातु वर्ग (Mineral Products) और रोग उपलबद्ध वर्ग (Disease Products) का नाम दे कर एक मत हो संसार भर के रोग हरने की चेष्टा कर रहे हैं।

चिकित्सा विकास

व्याधियों ने रोग-रूप धारण किया। जीव इसका अहार बन सत्य मार्ग से विचलित असत्य-मार्ग की ओर बढ़ने लगा। मनुष्य मनुष्य का दुश्मन बन गया। समस्त संसार पाप, दुख, अशान्ति और तम रूपी अग्नि से तप्त त्राहि त्राहि पुकार उठा। निर्लेप आत्मा इसे निरोगी देखने के लिए चेतन शक्ति की उपासक बनी। स्वयं ब्रह्मा चिकित्सा-विधि, जिसका संस्करण आयुर्वेद नाम से किया गया, लेकर उपस्थित हुए। और उन्होंने अपने सपुत्र प्रजापति को इस विज्ञान शास्त्र से सुशोभित किया। जिनसे अश्वनी कुमारों ने ज्ञान प्राप्त कर अपनी कृतज्ञता का भार इन्द्र पर छोड़ा। भारद्वाज इन्द्र के शिष्य बने और उनके अग्नि वैश्य, जिन्होंने इसे सर्व प्रथम वर्णों की माला पहनाई, ताकि भगवान चरक इसे सुसंस्कृत कर संसार भर के लिए कल्याण का मार्ग दर्शा पाये। इधर सुश्रुत इस ज्ञान की अथमत पर

आधुनिक काल के कीटाणु-विज्ञान अनुसन्धान सम्बंधी तथा मधु मेह (Diabetes) पेचिश (Dys-entery), क्षय रोग (Tuberculosis) इत्यादि इत्यादि छूत व अछूत रोगों का विवर्ण ज्ञान दे रहा था, मच्छर और मलेरिया, चूहा और प्लेग का सम्बन्ध इन विद्युत विज्ञान-ज्ञाताओं को उस समय भी भली प्रकार विदित था जब भारत के अतिरिक्त सारा संसार असभ्यता की गहरी नींद सो रहा था। चीर-फाड़ (Surgery) करने के लगभग एक सौ बीस प्रकार के यन्त्र अनेक आकार और साकार ले इन पन्नों पर अब भी अंकित हैं। यह ग्रन्थ कब रचे गये ? कौन जानता है.?

अध्यात्मिक भारत

कला, कौशल, विज्ञान तथा तर्क शास्त्र का केन्द्र आर्य्य-व्रत वर्षों संसार के लिए गौरव का पात्र बना रहा। परन्तु यह सब अध्यात्मिक वाद के बल बोते पर। भारतीय सन्तान ने कठोर तप और व्रत द्वारा गहन से गहन रहस्य का अन्वेषण किया। परन्तु भौतिकवादी आकाश-चुम्बित महल और अट्टालिकाओं की असंख्य सुख सामग्री से ललायित नहीं; वरन बन बन, ग्राम ग्राम, भूखे और नंगे विचर कर। ताकि जन साधारण की कठिनाईयों का विवर्ण स्वयं अनुभूत कर सकें। तब जाकर सुलझा पाई ईश्वर, जीव और प्रकृति सम्बन्धी उलझी हुई वह गुत्थियां जिन्हें समझने के लिये नवीन विज्ञान निपुण पश्चिम आज भी वृद्ध भारत की चरण-बन्दना करता है। यह इसी देश को गौरव है कि वह समय समय पर ऋषि और महर्षियों के रूप में हमें पथ-प्रदर्शक पैदा करता रहा। इस भारत के लिये निसन्देह केवल ऐसा विज्ञान-शास्त्र ही सफल सिद्ध हो सकता है जिसका मूल तत्व अध्यात्मिक वाद पर निर्भर हो।

होमियोपैथी और अध्यात्मिक वाद

होमियोपैथिक चिकित्सा-विधि का मूल तत्व (Similia Similibs Curanter) 'विषस्य विषमौषधिम्' ठहरा। जिसे महात्मा हैनीमैन ने पुनर्जीवित कर ईश्वर, जीव और प्रकृति के उन भेदों का उल्लेख किया जो अध्यात्मिक वाद पर निर्भर हैं। आपका धार्मिक जीवन अध्यात्मिक वाद पर आश्रित था। जिसका विवर्ण उनका हृदय संसार को जीतो रोगों में ग्रस्त देख इस प्रकार प्रस्फूटित हो उठा :

"As if the Creator of these sufferers had not provided remedies for them, also, as if for them the sources of boundless goodness did not exist, compared to which the tenderest mother's love is as thick clouds besides the glory of the noonday sun." Again, "Oh Man, how lofty is thy descent, how God-like thy destiny; how noblest the opinion of thy life ! Are thou not destined to approach by the ladder of hollowed impressions, ennobbling deeds, all penetrating knowledge, even towards the Great-Spirit, whom all the inhabitants of the Universe worship ? Can that Divine Splrit, who gave theethe Soul, or winged thee for such high enterprizes, have designed that you should helplessly or irremediably be oppressed by these trivial bodily ailments which we call diseases ? Ah, no ! The author all good, when He allowed, diseases to injure his offsprings, must have laid down a means by which these torments might be lessened or removed. Let us trace the impressions of this, the noblest of all acts which has been devoted to the use of perishing mortals. This art must be possible, this art which can make so many happy, it must not only be possible, but already exist...... This much is certain, an art of medicine exists; but not in our heads, nor in our systems." And yet again, "Science and Art of Medicine, concerns the cure of the noblest of created beings, it concerns the saving of human life, the most difficult; the most sublime, the most important of all imaginable occupations."

ईश्वर को सर्व-सम्पन्न और सर्व-शक्तिमान समझने वालों ने उसे दयालु भी पाया। दुखित हृदय की पीड़ा उन्हें ही तड़पाया करती है। भौतिकवाद के प्रलोभन ऐसे तपस्वियों के लिए सदैव घृणित बने रहे। इसी तड़प की पीड़ा प्रायः इस महान् आत्मा को रोग, रोगी और चिकित्सक सम्बन्धी गहन समस्या को अपनी पुस्तक आर्गेनान (Organon) में इस प्रस्तावना से आरम्भ करने पर मजबूर करने लगी:—

"The Physician's high and only mission is to restore the sick to health i.e.to cure." (Aph. 1.)

"चिकित्सक का सर्व प्रथम और मौलिक धर्म यही है कि वह रोगी का रोग हरण कर उसे स्वास्थ प्रदान करे।"

और फिर इसी पुस्तक की धारा नः ८४ व १०४ में चिकित्सक के लिए रोगी के रोग हरणार्थ विधि बताते हुए कितने स्पष्ट अक्षरों में आदेश दिया कि चिकित्सा आरम्भ करने से पूर्व रोगी के अन्तर अथवा बाहरी लक्षणों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करे। ताकि औषधि अनुसन्धान करते समय यह ध्यान में रहे कि वह औषधि अपनी प्राकृतिक अवस्था में एक सुस्वस्थ पुरुष से सेवित किये जाने पर ऐसे ही लक्षणों-युक्त रोग पैदा कर सकती हो। यह है होमियोपैथी का मूल तत्व जिसे Similia Similibus Curanter के नाम से प्रचलित किया गया। और जिसे इस चिकित्सा-विधि पर सुचारु रूप से कार्यन्वित करने के लिए मन, वचन और कर्म की गहन गति को समझाते हुए इस पथ-प्रदर्शक ने संसार भर के जीर्ण-रोगों को Psora (सोरा), Syphilis (सिफिलस) और Sycosis (साईकोसिस) इन तीन गुप्त कारणों पर विभाजित कर दिया। ताकि होमियोपैथिक चिकित्सा-विधि, अध्यात्मिकवाद के इन तत्वों पर आश्रित संसार के रोगों की नाशकारि सिद्ध हो।

1. Similimum समतर
2. Minimum न्यून्तर
3. Potentized सूक्ष्मतर
4. Single Medicine एक औषधि

होमियापैथी चिरकालीन है।

होमियोपैथिक चिकित्सा-विधि के अध्यात्मिक वाद के तत्वों पर निर्भर सिद्ध हो जाने के पूर्व इस प्रश्न का उठना संभव है कि क्या होमियोपैथी पौराणिक है? इसका उत्तर श्रीमद्भागवत में भगवान नारद और महर्षि वेदव्यास सम्वाद प्रकरण प्रथम स्कन्द, पांचवां अध्याय का श्लोक न: ३३ उपयुक्त है।

"आययो यश्व भूतानां जायते येन सुब्रत।
तदेव ह्यामच प्रब्यं न पुनाति चिकित्सितम।"

"प्राणियों को जिस पदार्थ के सेवन से जो रोग हो जाता है, वही पदार्थ चिकित्सा-विधि के अनुसार प्रयोग करने पर क्या रोग को दूर नहीं करता?"

भगवान नारद की इस वाणी को हैनीमैन के बताये गये उक्त होमियोपैथी के मूल-तत्व की प्रस्तावना समझा जावे अथवा अनुमोदन? भगवान क्राईस्ट के जन्म से ५७ वर्ष पूर्व विश्व प्रमुख्य, काव्य कौशल महाकवि कालीदास के करांकित शृंगार तिलक में यह रचना कथा इसी प्रकार अमर तत्व की अनुमोदिक नहीं?

"श्रुतये हि पुराबोक विषस्य वियमौपधि।"

"पूर्वकाल से संसार में यह सुनते आये हैं कि विष ही विष की औषधि हैं।"

भगवान् मसीह से लगभग सौ वर्ष पूर्व यूनान के सुप्रसिद्ध विज्ञान कर्ता हिप्पोक्रेटस, (Hippocrates), निकेन्दर (Nicander), जेराक्रोटस (Xerocrates) और रोम के वेरीक्विटनस सैरीसस (Verse quintur's Seresus) सैलसस (Celsus) गैलेन (Galloan) और १४१० में पादरी बैसल बैलेन्टाइन (Basil Valetine) तथा सोलहवीं शताब्दी के पारसी लेसस (Parcelasus) इस तत्व का किसी न किसी प्रकार अपने अपने समय में अवलोकन कर चुके थे। परन्तु जो उपकार महात्मा हैनीमैन ने आधुनिक होम्योपैथिक चिकित्सा विधि का पुनर्विकास कर किया है उसका रोगी संसार सदैव कृतज्ञ रहेगा।

आधुनिक भारत

वर्षों की पराधीनता के बाद, भारत जो किसी समय संसार भर के लिए गौरव का पात्र बना रहा, पिछले पांच वर्षों की स्वाधीनता होते हुए भी आज तक अकाल, भूख और निर्धनता का स्वांग बन रहा है। जिसके कृषक दिन रात खेती करने पर भी रात्री समय बिना अन्न पेट पर हाथ रख धराशायी दिखाई देते हैं। और जिसके श्रम से निरन्तर चीनी और कपड़े की कल में परीश्रम करने पर भी चमचा भर चीनी और गज भर कपड़े के लिए निराश्रित हैं। भला ऐसे देश में भौतिकवादी बहुमूल्य पश्चिमी संस्कारों से सुसंस्कृत औषधि और विज्ञान कर्ता क्योंकर उपयुक्त सिद्ध हो सकते हैं। इसे तो आवश्यकता है आयुर्वेद तथा होम्यौपैथिक चिकित्सक की, जो ग्राम ग्राम भ्रमण कर भूखी और नंगी सन्तान

के रोग अपने व्रत और तप द्वारा हरण कर सकें। परन्तु न जाने यह सब भली प्रकार अनुभव करते हुए भी पश्चिमी विचारों से प्रभावित हमारे नेता-गण स्वाधीन भारत की भारतीय सरकार को क्यों मजबूर कर रहे हैं कि अध्यात्मिकवादी वैद्य और होमियोपैथिक चिकित्सक अध्यात्मिकवादी भारत की दुखित सन्तान की चिकित्सा प्रारम्भ करने से पूर्व भौतिकवादी पाश्चात्य ऐलोपैथी का पूर्ण ज्ञान अवश्य प्राप्त करें। क्या यह आयोजन वर्षों की पराधीनता का छाया अवशिष्ट है ?

संदेश

डा० युद्धवीरसिंह जी के करांकित प्रकाशित होम्योपैथिक सन्देश इस अध्यात्मिक और भौतिकवाद युद्धस्थली में भारत के ही नहीं वरन् संसार भर के इस चिकित्सा-विधि के अनुयाइयों को अपने पांचवे वर्ष में पदार्पण करते समय चेतावनी दे रहा है कि इस युद्ध केन्द्र में सत्य और अहिंसा का युद्ध जारी रखने के लिए एक पताका तले संगठन मार्ग पर अग्रसर स्थान स्थान होम्योपैथिक औषधालय तथा विद्यालाओं की स्थापना कर नवीन अनुसन्धान में शीघ्र संलग्न हो जायें।

❀

डालवर टौनिक (Dalvar Tonic)

(Alfalfa, China, Hydrastis Etc Grape juice Extract)

मूल्य ६॥)—१२ औंस की बोतल

इसका सब से बड़ा कार्य और प्रभाव यह है कि सारे शरीर की निर्बलता को दूर कर के उनकी स्वाभाविक शक्ति को बढ़ाती है जिसके कारण तपेदिक के कीटाणुओं की बढ़ोत्तरी रुक जाती है। यह खून को ठीक दशा में लाती है।

किसी खास व्यक्ति के सम्बन्ध में पूछना हो तो पूरा हाल लिख कर ५) के नोट के साथ रजिस्ट्री पत्र द्वारा भेजें।

डालवर केमिकल कम्पनी

दानापुर कैन्ट

तार का पता : डालवर
फोन नं० १५

उत्तर प्रदेश होमियोपैथिक मेडिसिन एक्ट

शुरू में सन् १९४७ में संयुक्त प्रान्त होमिमोपैथिक मेडिसिन एक्ट पास हुआ। इसको बिल के रूप में श्री मुहम्मद सुलतान आलम खां ने पेश किया था। एक्ट पास हो जाने पर जब यह नियमानुसार राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिये भेजा गया तो उन्होंने इसे वापिस उत्तर प्रदेश सरकार को लौटाया और उसमें कुछ परिवर्त्तनों के आदेश दिये जो भारत गण राज्य के नये विधान के अनुसार आवश्यक थे। यह बात सन् १९५१ की है। उत्तर प्रदेश विधान मंडल ने उचित परिवर्तन करके इसे स्वीकार किया और फिर राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिये भेज दिया। राष्ट्रपति न इस पर अपनी स्वीकृति ५ मई १९५२ को दे दी। विधान मंडल ने एक छोटा सा परिवर्तन फिर किया। जिसकी स्वीकृति भी ३-७-५२ को राष्ट्रपति महोदय ने दे दी। अब इसका नाम "उत्तर प्रदेश होमियोपैथिक मेडिसिन अधिनियम सं०८-१९५२ई०" है और अन्तिम संशोधन इसमें उत्तर प्रदेश अधिनियम १७ द्वारा हुआ है। संशोधित एक्ट अपने उत्सुक पाठकों की जानकारी के लिये हम नीचे देते हैं:

उवर प्रदेश होमियोपैथिक मेडिसिन अधिनियम, १९५१ ई०

(उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या ८, १९५२ ई.)

[जैसा कि उत्तर प्रदेश विधान मंडल द्वारा पारित हुआ]

उत्तर प्रदेश में होमियोपैथिक चिकित्सा प्रणाली की उन्नति और विस्तार करने की व्यवस्था करने के लिये।

एक

अधिनियम

क्योंकि यह उचित और आवश्यक है कि उत्तर प्रदेश में होमियोपैथिक-चिकित्सा-प्रणाली की उन्नति और विस्तार करने की व्यवस्था की जाय;

इसलिये निम्नलिखित अधिनियम बनाया जाता है—

भाग—१

अध्याय १

प्रारम्भिक

१—(१) यह अधिनियम "उत्तर प्रदेश होमियोपैथिक मेडिसिन अधिनियम, १९५१ ई०" कहलायेगा।

(२) यह सारे उत्तर प्रदेश में लागू होगा।

(३) इस अधिनियम का भाग १ उस तारीख से लागू होगा जिसे राज्य सरकार सरकारी गजट में विज्ञप्ति देकर नियत करे। भाग १ के लागू होने की तारीख से दो वर्ष व्यतीत हो जाने के बाद भाग २ उस तारीख से लागू होगा जिसे राज्य

सरकार धारा ५६ के अनुसार विज्ञप्ति द्वारा सूचित करे।

२—इस अधिनियम में जब तक कि कोई बात उसके विषय या संदर्भ के बिपरीत न हो—

(क) "बोर्ड" का तात्पर्य उत्तर प्रदेश के होमियोपैथिक मेडिसिन बोर्ड से है, जो इस अधिनियम के आदेशों के आधीन बनाया गया हो।

(ख) "चेयरमैन" का तात्पर्य बोर्ड के चेयरमैन से हैं।

(ग) "होमियोपैथी" का तात्पर्य होमियोपैथिक चिकित्सा-प्रणाली से है और इसमें प्राणी-रसायन (बायो-कैमिस्ट्री), साधारण शल्य-चिकित्सा (माइनर सर्जरी) और सूतिकर्म (मिडवाइफ़री) से सम्बन्धित अन्य शाखायें सम्मलित हैं।

(घ) "मेम्बर" का तात्पर्य बोर्ड के किसी मेम्बर से है।

(ङ) "निधारित" का तात्पर्य इस अधिनियम के आधीन बनाये हुये नियमों द्वारा निर्धारित से है।

(च) "राज्य सरकार" के तात्पर्य उत्तर प्रदेश की सरकार से है।

(छ) "रजिस्टर" का तात्पर्य होमियोपैथिक डाक्टरों के उस रजिस्टर से है, जो धारा २६ के आधीन रखा जाय।

(ज) "रजिस्टर्ड होमियोपैथ" का तात्पर्य होमियोपैथिक चिकित्सा-प्रणाली के किसी ऐसे चिकित्सक (प्रैक्टिश्नर) से है जिसका नाम इस अधिनियम के आदेशों के आधीन रजिस्टर में दर्ज हो।

(झ) "रजिस्ट्रार" का तात्पर्य इस अधिनियम के आधीन नियुक्त किये गये रजिस्ट्रार से है।

अध्याय २

बोर्ड की संस्थापना तथा उसका संगठन

३—राज्य सरकार सरकारी गजट में विज्ञप्ति द्वारा उस विधि के अनुसार, जिसकी आगे चलकर व्यवस्था की गई है, एक बोर्ड जिसका नाम 'उत्तर प्रदेश होमियोपैथिक मेडिसिन (चिकित्सा-प्रणाली) बोर्ड' होगा, इस अधिनियम के उद्देश्यों को कार्यान्वित करने के लिए संस्थापित करेगी। बोर्ड एक संभूयकारी (कारपोरेट) संस्था होगी जिसका अनुक्रम निरन्तर चलता रहेगा और इसके पास संभूयकारी (कारपोरेट) संस्था की एक मुहर होगी और बोर्ड उपरोक्त नाम से नालिश दायर कर सकेगा और इसी नाम से उस पर नालिश दायर हो सकेगी।

४—बोर्ड में १५ मेम्बर होंगे जो निम्नलिखित तरीके से नियुक्त किये जायेंगे:-

(क) सात ऐसे होमियोपैथिक डाक्टर जिन्हें राज्य सरकार नामजद करेगी।

(ख) तीन ऐसे मेम्बर जिन्हें उत्तर-प्रदेश की स्वीकृत होमियौपैथिक संस्थाओं के अध्यापकगण स्वयं अपने में से निर्वाचित करेंगे।

(ग) पाँच ऐसे मेम्बर, जिन्होंने कम से कम दस वर्ष होम्योपैथिक चिकित्सा-प्रणाली दूवारा चिकित्सा (प्रैक्टिस) की हो और जिन्हें राज्य के रजिस्टर्ड होम्योपैथिक डाक्टर स्वयं अपने में से निर्वाचित करेंगे।

वाक्य खण्ड (ख) और (ग) के अधीन निर्वाचन निर्धारित विधि के अनुसार किये जायेंगे।

५-बोर्ड के चैयरमैन और वाइस-चेयरमैन को बोर्ड अपने मेम्बरों में से चुनेगा।

६—बोर्ड के मेम्बर के (जिसके अन्तर्गत चेयरमैन या वाइस-चेयरमैन के रूप में चुना गया मेम्बर भी होगा) पद की अवधि, मेम्बर के रूप में उसके निर्वाचित या नामजद होने के दिनांक से, तीन साल की होगी। पद पर न रहने वाले चेयरमैन या मेम्बर यदि अन्य प्रकार योग्य होंगे तो चेयरमैन या मेम्बर के रूप से फिर निर्वाचित किये जाने या नामजद होने के अधिकारी होंगे।

७-इस अध्याय में किसी बात के होते हुए भी भाग १ के लागू होने के बाद संघटित प्रथम बोर्ड, जिसके अन्तर्गत चेयरमैन भी होगा, राज्य सरकार द्वारा नामजद किया जायेगा, और उसके पद की अवधि बोर्ड के संघटन से या ऐसे समय से जिसे राज्य सरकार आज्ञा द्वारा आदिष्ट करे, दो साल की होगी।

८-(१) वाइस-चेयरमैन अथवा कोई सदस्य किसी समय बोर्ड के चेयरमैन को पत्र भेज कर अपना पद त्याग सकते हैं। उक्त त्याग पत्र का प्रभाव उस दिनांक से होगा जब बोर्ड उसे स्वीकृत करे।

(२) त्याग पत्र देने का इच्छुक बोर्ड का चेयरमैन अपने लिखित त्यागपत्र को राज्य सरकार के पास भेज सकता है।

(३) त्यागपत्र का प्रभाव ऐसे दिनांक से होगा जब उसकी स्वीकृति राज्य सरकार द्वारा सरकारी गजट में विज्ञप्ति की जाय।

९-(१) यदि बोर्ड का कोई मेम्बर या चेयरमैन मर जाय या त्याग पत्र दे दे या किसी भी कारण से यथा स्थिति मेम्बर या चेयरमैन न रहे, तो इस प्रकार उत्पन्न रिक्तता की पूर्ति यथास्थिति नये निर्वाचन या नामजदगी द्वारा ऐसी अवधि के भीतर, जो निर्धारित की जाय, शेष अवधि के लिये की जायेगी।

(२) उपधारा (१) में उल्लिखित रिक्तता की पूर्ति के लिए निर्वाचित या नामज़द मेम्बर या चेयरमैन के पद की अवधि उस मेम्बर या चेयरमैन की शेष पद अवधि होगी जिसके स्थान पर वह उक्त प्रकार निर्वाचित या नामजद किया गया हो

किन्तु प्रतिबन्ध यह है कि निर्वाचित या नामजद मेम्बर की दशा में यदि रिक्तता छः मास या उससे कम के लिए हो तो बोर्ड या राज्य सरकार क्रमशः यह आदेश दे सकती है कि उक्त रिक्तता की पूर्ति शेष अवधि के लिए न की जाय।

१०-(१) यदि कोई मेम्बर, ऐसी अवधि के भीतर जिसके लिये वह नामजद या निर्वाचित किया गया है—

(क) बोर्ड की तीन लगातार साधारण मीटिंगों में बिना किसी उपयुक्त कारण अनुपस्थित होता हो, अथवा

(ख) धारा १७ में कही गयी किसी अयोग्यता के अधीन आ जाता हो अथवा

(ग) कानूनी पेशेवर [लीगल प्रैक्टिशनर] होते हुए बोर्ड के विरुद्ध किसी दीवानी या फौजदारी के मुकदमे या कार्रवाई (सूट आर प्रोसीडिंग) में कार्य करता हो; अथवा

(घ) बोर्ड के अधीन कोई नियुक्ती (एम्प्लायमेंट) प्राप्त करता या राज्य सरकार की पूर्व स्वीकृति के बिना साक्षात या अन्यथा स्वयं या किसी हिस्सेदार के द्वारा बोर्ड के साथ, उसके द्वारा या उसकी ओर से किसी संविदा (काण्ट्रैक्ट) में कोई अंश या हित (शेयर या इण्टरेस्ट) प्राप्त करता हो, तो बोर्ड उसे मेम्बरी से हटा सकता है।

(२) किन्तु प्रतिबन्ध यह है कि इस धारा के पूर्वोक्त उपबन्धों के आधोन यदि बोर्ड कोई कार्य करना चाहता है तो तत्सम्बन्धी मेम्बर को स्पष्टीकरण का अवसर दिया जावेगा और यदि उक्त प्रकार का कार्य किया जाय तो उसके करने का कारण अभिलिखित किया जायगा।

११ (१)—राज्य सरकार ऐसे चेयरमैन या मेम्बर को हटा सकती है जिसने उसकी राय में किसी ढंग से अपने पद का ऐसी उद्दण्डता से दुरुपयोग किया है जिससे उसका पद पर बना रहना सार्वजनिक हित क लिए हानिकारक हो जाय या जो अपने कर्त्तव्य के निष्पादन में भावतः असफल रहा हो।

किन्तु प्रतिबन्ध यह है कि राज्य सरकार इस धारा के आधीन कार्य करना चाहे तो उस आचरण के स्पष्टीकरण के लिए चेयरमैन या मेम्बर को अवसर देगी जिसके कारण वह उसे हटाना चाहती हो और यदि राज्य सरकार कोई कार्य इस सम्बन्ध में करे तो ऐसा करने के कारण को अभिलिखित करेगी। इस संबन्ध में राज्य सरकार के निर्णय के विरुद्ध किसी अदालत में कोई आक्षेप नहीं किया सकेगा।

(२) राज्य सरकार किसी ऐसे मेम् या चेयरमैन को मुअत्तिल (सस्पेन्ड) क सकती है जिसके विरुद्ध मेम्बर या चेयर मैनके रूप में अपने पद का दुरुपयोग कर के सम्बन्ध में किसी अदालत में अथ राज्य सरकार या बोर्ड की आज्ञा अधीन जांच हो रही हो; यह मुअत्तिल (सस्पेंशन) तब तक रहेगी जब तक यथा स्थिति कानूनी कार्यवाही या जांच के बा कोई अन्तिम आज्ञा पारित न हो जाय उक्त मेम्बर या चेयरमैन मुअत्तिली अवधि में बोर्ड की किसी कार्यवाही भाग नहीं ले सकेगा।

१२—चेयरमैन का कर्त्तव्य होगा कि

(क) जब तक इस अधिनिय में इसके विपरीत आदेश न हो समुचित कारणों के आधार पर ऐस करने से (उसे) रोका न जाय—

(१) वह बोर्ड की मीटिं बुलाये तथा उनका सभापतित्व करे

(२) वह और तरीक़े से बोर् की समस्त मीटिंगों में की जाने वाल कार्यवाहियों का किसी ऐसे विनियम (रेगुलेशन) के अनुसार नियन्त्र करे जो इस सम्बन्ध में बनाये जाय

(ख) बोर्ड के आर्थिक त शासकीय प्रबन्ध की देख-रेख त नियन्त्रण करे और उसमें जो कुछ दो हों उसे बोर्ड के ध्यान में लाये।

(ग) ऐसे अन्य कर्त्तव्यों पालन करे जिनके किए जाने का

अधिनियम अथवा इसके अन्तर्गत बनाये गये नियमों के आधीन आदेश हो या जो इस अधिनियम या उक्त नियमों द्वारा उसे सौंपा गया हो।

१३—(१) बोर्ड चेयरमैन को यह आदेश दे सकता है कि वह उसे—

(क) बोर्ड के शासन प्रबन्ध से संबंधित किसी मामले के बारे में कोई नकशा विवरण, अनुमान, आंकड़े या अन्य सूचना दे।

(ख) उपरोक्त किसी मामले के संबंध में कोई रिपोर्ट दे या स्थिति विशेष का स्पष्टीकरण करे, और

(ग) किसी ऐसे रिकार्ड (काग़ज़), पत्र-विनिमय या नक़शा या अन्य किसी लेख-पत्र की प्रतिलिपि दे जो चेयरमैन होने के कारण उसके अधिकार या नियंत्रण में हो या जो बोर्ड के किसी कर्मचारी के विभाग में लेखबद्ध हो या दाख़िल की गई हो।

(२) चेयरमैन अनुचित बिलम्ब किये बिना ऐसी प्रत्येक मांग की पूर्ति करेगा जो उपधारा (१) के आधीन की जाय।

(३) इस धारा की किसी बात या इस अधिनियम के किसी आदेश से यह न समझा जायगा कि वह बोर्ड को ऐसे विनियम (रेगुलेशन्स) बनाने से रोकता है जिसके द्वारा मेम्बरों को उसकी मीटिंग में प्रश्न करने का अधिकार ऐसे प्रतिबन्धों तथा बन्धनों के आधीन दिया गया हो जो उक्त नियमों या विनियमों (रेगूलेशन्स) में निर्धारित किये जायं।

१४—(१) चेयरमैन साधारण या विशेष आज्ञा द्वारा धारा १२ के वाक्य-खण्ड (क) और (ख) में वर्णित अधिकारों कर्त्तव्यों या कार्यों को छोड़कर अपने एक या अधिक अधिकारों, कर्त्तव्यों या कार्यों को, जो उसके आधीन हों प्रयोग में लाने के लिए वाइस-चेयरमैन को अधिकृत कर सकता है।

(२) उपधारा (१) के आधीन चेयरमैन द्वारा दी गई कोई आज्ञा किसी अधिकार को प्रयोग में लाने, किसी कर्त्तव्य को पालन करने या किसी कार्य के सम्पादित करने के सम्बन्ध में कोई बन्धन नियत कर सकती है तथा कोई प्रतिबन्ध लगा सकती है।

(३) विशेष रूप से ऐसी आज्ञा किसी ऐसे प्रतिबन्ध को निर्धारित कर सकता है कि उपधारा (१) द्वारा उसे प्राप्त किसी अधिकार को उपयोग में लाते हुए वाइस-चेयरमैन द्वारा दी गई कोई आज्ञा चेयरमैन द्वारा खंडित या संशोधित की जा सकती है जब नियत समय के भीतर उसके विरुद्ध अपील की जाय।

१५—वाइस-चेयरमैन—

(क) बोर्ड की किसी मीटिंग में चेयरमैन की अनुपस्थिति में, यदि वह किसी उचित कारणबश ऐसा करने में असमर्थ न हो, उस मीटिंग का सभापतित्व करेगा, उसकी कार्यवाहियों को नियमपूर्वक करायेगा और उसमें व्यवस्था बनाये रक्खेगा।

(ख) चेयरमैन का पद खाली रहने के समय में या चेयरमैन की असमर्थता या अस्थायी अनुपस्थिति के समय में वह चेयरमैन के किसी अन्य

अधिकार या व्यवहार या कर्त्तव्य का पालन करेगा।

(ग) किसी भी समय चेयरमैन के किसी ऐसे कर्त्तव्य का पालन करेगा और जब कभी अवसर पड़े उसके किसी ऐसे अधिकार का व्यवहार करेगा जिसे चेयरमैन ने धारा १४ के आधीन उसे सौंपा हो।

१६—यदि कोई चुनाव करने वाली संस्था, जिसका उल्लेख धारा ४ में किया गया है, ऐसी तारीख तक जो निर्धारित की जाय, किसी रिक्त स्थान की पूर्ति के लिये मेम्बर या मेम्बरों की आवश्यक संख्या न चुने तो राज्य सरकार को अधिकार होगा कि ऐसे रिक्त स्थान या स्थानों की पूर्ति किसी ऐसे व्यक्ति या व्यक्तियों की नामजदगी करके करे जो उस चुनाव की वशेष संस्था द्वारा चुने जाने के योग्य हों।

१७—कोई व्यक्ति बोर्ड का मेम्बर होने या रहने या उसके लिये नामजद किये जाने के अयोग्य होगा, यदि—

(क) उसे किसी फौजदारी की अदालत ने किसी ऐसे अपराध के लिये, जिसमें नैतिक पतन पाया जाय और जो बोर्ड की राय में उसके चरित्र में ऐसे दोष का सूचक हो जिसके कारण उसके नाम का रजिस्टर में दर्ज करना या उसमें कायम रहना अवाञ्छनीय हो, कैद की सजा दी हो और ऐसी सजा का हुक्म बाद की अपील या नजरसानी में मंसूख न कर दिया गया हो, या जो किसी ऐसे हुक्म के जरिये, जिसे देने का राज्य सरकार को अधिकर दिया जाता है, अगर वह इस संबन्ध में ऐसा करना ठीक समझे, माफ न कर गई हो;

(ख) जब बोर्ड ने जांच के वा (जिसमें ऐसे व्यक्ति को यह मौका दि गया हो कि वह स्वयं या किसी प्रतिनि के द्वारा अपनी सफाई पेश करे) ऐ मेम्बरों के २। ३ के बहुमत से, जो मीटि में उपस्थित हों और जिन्होंने वोट दि हो, यह फैसला किया हो कि वह पेशे सम्बन्ध में दुराचरण करने का अ राधी है;

(ग) अगर वह गैर -बरीशुदा दिवा लिया हो, या

(घ) जिसे किसी अधिकृत (मजाज अदालत ने विक्षिप्त-चित्त (खराब दिमा का) करार दिया हो;

(ङ) वह सरकार या लोकल अथारि का निकाला हुआ कर्मचारी हो:

(च) वह किसी अधिकृत हाकिम हुक्म के द्वारा कानूनी पेशा करने से रो दिया गया हो, या

(छ) वह किसी ऐसे लाभप्रद पद प आरूढ़ हो जिसे बोर्ड उपहार-स्वरूप य अन्य प्रकार से प्रदान कर सकता हो।

परन्तु प्रतिबन्ध यह है कि (ङ) औ (च) की अयोग्यतायें इस संबंध में दि गये राज्य सरकार के हुक्म द्वारा हटाई सकती हैं।

१८—किसी मेम्बर अथवा चेयरमै के प्रत्येक चुनाव या नामजदगी सम्बन्ध में तथा प्रत्येक ऐसे रिक्त स्था के संबन्ध में जो मेम्बर अथवा चेयरमै के पद में हो, सरकारी गजट में विज्ञापि की जायगी।

१९—(१) बोर्ड के मेम्बरों को ऐसा यात्रा-खर्च तथा दैनिक भत्ते दिये जायेंगे जो नियत किये जायं और जो उनसे अधिक न होंगे जो राज्य विधान मण्डल के मेम्बरों को दिये जाते हैं।

(२) किसी मेम्बर को वेतन न दिया जायगा।

परन्तु प्रतिबन्ध यह है कि चेयरमैन ऐसा वेतन, भत्ते तथा अन्य प्राप्तियां ले सकता है जो नियमों द्वारा निर्धारित की जायं।

अध्याय ३

कार्य संचालन

२०—(१) बोर्ड की मीटिंग ऐसे समय में तथा उसके कार्यालय के हेडक्वाटर पर होगी जो लखनऊ में या किसी अन्य स्थान पर स्थित होगा और उसकी मीटिंग ऐसी विधि के अनुसार बुलाई जायगी जिसके सम्बन्ध में बोर्ड द्वारा बनाये गये विनियमों (रेगुलेशन्स) में आदेश हो।

(२) बोर्ड की किसी मीटिंग में तब तक कोई कार्यवाही न की जायगी जब तक कि उसमें पांच मेम्बर उपस्थित न हों।

परन्तु प्रतिबन्ध यह है कि जब कोरम के पूरा न होने के कारण किसी मीटिंग की किसी कार्यवाही को स्थगति करना आवश्यक हो तो चेयरमैन अन्य तारीख के लिये मीटिंग को स्थगित कर देगा और वह कार्यवाही जो कोरम के पूरा न होने से स्थगित कर दी जाय, बिना इस बात का विचार किये हुए कि उपस्थित मेम्बरों की संख्या कम है, ऐसी अन्य तारीख को या मीटिंग को पुनः किसी बाद की तारीख को स्थगित कर देने की दशा में, ऐसी बाद की तारीख को, की जायगी।

२१—यदि किसी मिटिंग में चेयरमैन अथवा वाइस-चेयरमैन उपस्थित न हों तो उपस्थित मेम्बर अपने में से एक मेम्बर को चेयरमैन के पद के लिए चुन लेंगे और ऐसा चेयरमैन मीटिंग का सभापतित्व करते समय बोर्ड के समस्त कर्तव्यों का पालन करेगा और समस्त अधिकारों को काम में ला सकता है।

२२ यदि किसी मीटिंग प्रत्येक मीटिंग उस समय तक जन-साधारण के लियेखुली रहेगी जबतककि उसका चेयरमैन यह नसमझे कि जन-साधारण उस सम्पूर्ण मीटिंग अथवा उसके किसी भाग से अलग रक्खे जायं।

२३—जब बोर्ड की किसी मीटिंग में कोई मेम्बर या अन्य व्यक्ति चेयरमैन की किसी ऐसी आज्ञा की अवहेलना करे, जिसके द्वारा वह किसी कार्यवाही अथवा वाद-विवाद या विषय को नियम विरुद्ध घोषित करे अथवा किसी अन्य रूप से मेम्बरों के व्यवहार या कार्यवाही के चालन को नियमित करे अथवा जब कि कोई मेम्बर या व्यक्ति जान-बूझ कर मीटिंग में विघ्न डाले, तो चेयरमैन को अधिकार होगा कि वह ऐसे मेम्बर या व्यक्ति को मीटिंग से चले जाने का हुक्म दे और उसके ऐसा न करने पर वह उसे मीटिंग से हटाने या निकालने के लिये उसके विरुद्ध ऐसी शक्ति का प्रयोग करे, जो आवश्यक हो या जिसे वह नेकनीयती के साथ आवश्यक समझे।

२४—(१) ऐसे समस्त प्रश्न, जो बोर्ड

की किसी मीटिंग के सामने आयें, वोट देने वाले उपस्थित मेम्बरों के बहुमत से निर्णय किये जायंगे।

(२) ऐसी दशा में जबकि वोट बराबर हों मीटिंग के चेयरमैन को एक दूसरा अथवा निर्णयात्मक वोट देने का अधिकार होगा।

२५—(१) बोर्ड की किसी मीटिंग में उपस्थित मेम्बरों के नाम, उनमें की गई कार्यवाही तथा स्वीकृत प्रस्ताव एक किताब में चढ़ाये जायंगे, जिसे मिनट बुक कहा जायगा।

(२) पिछली कार्यवाही का लेखा उस मीटिंग में अथवा दूसरी होने वाली मीटिंग में पढ़ा जायगा और उन मेम्बरों (या उनमें से अधिकांश) द्वारा, जो उसके पढ़ते समय उपस्थित हों, उसके सही मान लिये जाने पर उस मीटिंग का चेयरमैन, जिसमें वह कार्यवाही स्वीकृत की गई हो, इसके प्रमाण-स्वरूप कि वह स्वीकृत कर ली गई हो, अपने हस्ताक्षर कर देगा।

(३) बोर्ड की किसी मीटिंग में स्वीकृत किया हुआ प्रत्येक प्रस्ताव उचित रीति से प्रकाशित किया जायगा।

(४) बोर्ड की प्रत्येक मीटिंग की कार्यवाहियों की एक प्रतिलिपि मीटिंग होने की तारीख से १५ दिन के अन्दर राज्य सरकार अथवा इस बारे में राज्य सरकार द्वारा नियुक्त किये गये किसी अन्य अधिकारी (अथारिटी) के पास भेजी जायगी।

२६—(१) उन नियमों के अधीन, जिन्हें राज्य सरकार ने इस प्रयोजन के लिए बनाया हो बोर्ड किसी भीउद्देश्य के लिये, जिसके लिये इस अधिनियम में आदेश हो, इस संबन्ध में एक प्रस्ताव द्वारा एक ऐसी परामर्शदात्री कमेटी नियुक्त कर सकता है, जिसमें उतने ही मेम्बर या ऐसे बाहरी व्यक्ति, जिन्हें इस उद्देश्य के लिये सम्मलित किया गया हो या दोनों होंगे, जिनके बारे में बोर्ड निर्णय करे और एक संयोजक नियुक्त कर सकता है जो ऐसी कमेटी की मीटिगों का सभापतित्व करेगा। संयोजक की अनुपस्थिति में कमेटी अपने मेम्बरों में से किसी को इस उद्देश्य के लिये चुन सकती है।

(२) कमेटी की किसी मीटिंग के समक्ष आने वाले समस्त प्रश्न वोट देने वाले उपस्थित मेम्बरों के बहुमत से निर्णय किये जायंगे। ऐसी दशा में जब कि वोट बराबर हों सभापतित्व करने वाले व्यक्ति को एक निर्णयात्मक वोट देने का अधिकार होगा।

(३) कमेटी की किसी बैठक में कोई कार्यवाही न की जायगी जब उसमें दो से कम मेम्बर या जितने मेम्बरों की कमेटी हो उसके एक-चौथाई से कम मेम्बर, जो भी संख्या अधिक हो, उपस्थित हों।

(४) प्रत्येक कमेटी की कार्यवाहियां बोर्ड के समक्ष रक्खी जायंगी और बोर्ड को अधिकार होगा कि वह उन पर कोई भी कार्यवाही करे, जिसे वह आवश्यक समझे और कमेटी को मान्य होगा कि वह बोर्ड के आदेशों का पालन करे।

२७—'१) बोर्ड अथवा कमेटी में कोई रिक्त स्थान होने के कारण बोर्ड अथवा ऐसी कमेटी की कोई कार्यवाही या काम अवैध न होगा।

(२) बोर्ड के मेम्बर की हैसियत से अथवा किसी बैठक के चेयरमैन या अध्यक्षता करने वाले अधिकारी की हैसियत से काम करने वाले किसी भी व्यक्ति की कोई अयोग्यता या उसके निर्वाचन या नाम जदगी में कोई दोष के कारण बोर्ड की कोई कार्यवाही या काम के सम्बन्ध में, जिसमें ऐसे व्यक्ति ने भाग लिया है, यह न समझा जायगा कि वह कार्यवाही या काम अवैध है, यदि जिन मेम्बरों ने उस कार्यवाही या काम में भाग लिया था उनमें से अधिकांश ऐसे थे, जो नियमानुसार योग्यता रखते थे।

अध्याय ४

कर्मचारी (स्टाफ) और चिकित्सकों की रजिस्टरी

२८—(१) बोर्ड को अधिकार होगा कि वह सरकार की पूव स्वोकृति से एक रजिस्ट्रार नियुक्त करे, जो बोर्ड का सेक्रेटरी होगा। रजिस्ट्रार को ऐसा वेतन और भत्ते मिलेंगे जो निर्धारित किये जांय। चेयरमैन को अधिकार होगा कि वह उसे (रजिस्ट्रार को) समय-समय पर छुट्टी दे और उसकी जगह काम करने के लिये अस्थाई रूप से किसी अन्य व्यक्ति को नियुक्त करे। कोई भी व्यक्ति, जो रजिस्ट्रार की हैसियत से काम करने के लिये नियुक्त किया जाय, इस अधिनियम के समस्त प्रयोजनों के लिये रजिस्ट्रार समझा जायगा।

(२) रजिस्ट्रार को नियुक्त करने, दण्ड देने या उसे अपने पद से हटाने के संबंध में बोर्ड की कोई भी आज्ञा राज्य सरकार की स्वीकृति के अधीन होगी।

(३) बोर्ड को अधिकार होगा कि वह ऐसे अफसर और नौकर नियुक्त करे, जो इस अधिनयम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिये आवश्यक हों।

परन्तु प्रतिबन्ध यह है किऐसे अफसरों और नौकरों की संख्या, पद, वेतन और भत्ता राज्य सरकार की पूर्व स्वीकृति से नियत किये जायेंगे।

परन्तु प्रतिबन्ध यह भी है कि बोर्ड के किसी भी अफसर या नौकर को दण्ड देने, पदच्युत करने, निकालने और हटाने के सम्बन्ध में बोर्ड के अधिकार, नियमों तथा विनियमों (रूल्स ऐण्ड रेगुलेशन्स) के अनुसार होंगे।

(४) कर्मचारियों के बारे में भर्त्ती, तरक्कियाँ, छुट्टी, प्राविडेन्ट फण्ड और नौकरियों की अन्य शर्तों के सब मामले नियमों के अनुसार तय किये जायंगे।

(५) इस धारा के आधीन नियुक्त किया हुआ रजिस्ट्रार या कोई अन्य अफसर या नौकर भारतीय दण्ड-विधान (इण्डियन पेनल कोड) की धारा २१ के अन्तर्गत सरकारी नौकर (पब्लिक सर्वेण्ट) समझा जायगा।

२९—(१) बोर्ड इस अधिनियम के लागू होने के बाद ज्यों ही सुविधाजनक मालूम हो, और समय-समय पर आवश्यकता के अनुसार, होमियोपैथिक डाक्टरों का एक रजिस्टर नियमित रूप से रखने के लिये आदेश देगा।

(२) उक्त रजिस्टर उस रूप में रक्खा जायगा, जैसा निर्धारित किया जाय।

३०—(१) इस अधनियम के आदेशों की पाबन्दी के साथ और बोर्ड की साधारण या विशेष आज्ञाओं की पाबन्दी के साथ, रजिस्ट्रार का यह कर्त्तव्य होगा कि वह रजिस्टर रक्खे और ऐसे कामों का सम्पादन करे, जो इस अधिनियम के आधीन या राज्य सरकार द्वारा बनाये गये नियमों के अनुसार उसे सम्पादन करने हों।

(२) रजिस्ट्रार को उचित होगा कि वह, जहां तक व्यवहार सम्भव हो, रजिस्टर को ठीक और पूर्णरूप से भरा हुआ रक्खे और समय-समय पर उसमें प्रैक्टिस करने वालों के पतों या योग्यताओं में आवश्यक परियर्तन करे। उसे यह भी अधिकार होगा कि वह ऐसे रजिस्टर्ड प्रैक्टिशनरों का नाम रजिस्टर से निकाल दे, जो मर जायं या जो रजिस्टर्ड प्रैक्टिशनर होने के योग्य नहीं रह जाते।

(३) राज्य सरकार यह आदेश दे सकती है कि अतिरिक्त योग्यताओं के सम्बन्ध में इन्दराजों में कोई परिवर्तन न किया जायगा जब तक की ऐसी फीस, जो निर्धारित की जाय, अदा न कर दी जाय।

(४) इस धरा के प्रयोजन के लिये रजिस्ट्रार को अधिकार होगा कि वह किसी रजिस्टर्ड प्रैक्टिशनर को उस पते पर, जो रजिस्टर में दर्ज हो, यह जानने के लिये चिट्ठी लिखे कि उसने प्रैक्टिस करता बन्द तो नहीं कर दिया है या उसने अपना निवास-स्थान बदल तो नहीं दिया है और यदि तीन महीने के भीतर उक्त चिट्ठी का कोई उतर न मिले रजिस्ट्रार एक उद्बोधक-पत्र (रिमाइण्डर) लिखेगा और यदि इस उद्बोधक-पत्र के भेजने की तारीख के एक महीने के भीतर कोई उतर न आये तो उसे अधिकार होगा कि वह उक्त प्रैक्टिशनर का नाम रजिस्टर से निकाल दे।

परन्तु प्रतिबन्ध यह है कि बोर्ड, यदि उचित समझे तो, यह आदेश दे सकता है

उत्तम व सस्ती होमियोपैथिक दवाएं
होमियोपैथिक स्टोर्स
सुभाष बाजार मेरठ
हमारे यहां—
(१) अमरीका बी० टी० की सरबन्द होम्योपैथिक, बायोकैमिक, मदर टिन्चर्स पेटन्ट दवाईयां,
(२) हैनिमैन पब्लिशिंग क० कलकत्ता,
(३) ऐम भट्टाचार्य क० कलकत्ता,
(४) केनकेनाड़ी व फादर मूलर की दवाईयां,
अंगेजी, हिन्दी व उर्दु की होमियोपैथिकपुस्तकें तथा अन्य डाक्टरी सामान उचित मूल्य पर मिलता है।
कृपया विस्तृत सूची पत्र के लिये आज ही लिखें।

कि प्रैक्टिशनर का नाम रजिस्टर में फिर से लिख लिया जाय ।

३१—(१) हर एक व्यक्ति, जिसको परिशिष्ट में दी गई योग्यता प्राप्त है, इस अधिनियम में दिये हुए आदेशों के आधीन और ऐसी फीस देने पर, जो इस सम्बन्ध में निर्धारित हो गई हो, रजिस्टर में ऐसी पाबन्दियों के साथ, जिनको बोर्ड उचित समझे, अपना नाम लिखाने का अधिकारी होगा;

परन्तु प्रतिबन्ध यह है कि रजिस्टर में नाम लिखाने का किसी ऐसे व्यक्ति का प्रार्थना-पत्र, जिसका मामला इस अधिनियम या इस अधिनियम के आधीन बने हुये नियमों तथा विनियमों के अन्तर्गत नहीं आता, बोर्ड के पास ऐसी कार्यवाही के लिए भेजा जायगा, जिसे वह उचित समझे।

(२) कोई व्यक्ति, जिसे किसी व्यक्ति के रजिस्टरी के सम्बन्ध में या रजिस्टर में कोई लेख लिखने या मिटाने के सम्बन्ध में दिये गये रजिस्ट्रार के निर्णय से क्षति पहुँची हो, ऐसी रजिस्ट्री या लेख के ९० दिन के भीतर बोर्ड को अपील कर सकता है।

(३) बोर्ड निर्धारित विधि के अनुसार ऐसी अपील की सुनवाई करेगा और उस पर निर्णय देगा।

(४) बोर्ड को अधिकार होगा कि वह अपनी ओर से या किसी व्यक्ति के प्रार्थना-पत्र पर और सम्बंधित व्यक्ति से जवाब तलब करने और उस पर विचार करने के उपरान्त किसी लेख को काट दे या बदल दे, यदि बोर्ड के मत में ऐसा लेख धोखा देकर या अशुद्ध लिखा या लिखवाया गया हो।

३२—यदि बोर्ड को विश्वास हो कि—

(क) भारत की या भारत के बाहर की किसी युनिवर्सिटी, मेडिकल कार्पोरेशन, परीक्षा लेने वाली संस्था या दूसरी संस्था की दी हुई उपाधि, डिगरी या उसकी प्रमाणित योग्यता इस बात का पूरा प्रमाण है कि ऐसी उपाधि, डिगरी या योग्यता-प्राप्त व्यक्ति दक्षता से होमियोपैथी की प्रैक्टिस करने का ज्ञान और योग्यता रखता है, या

(ख) ऐसी उपाधि, डिगरी या योग्यता उपरोक्त बातों के लिये पर्याप्त प्रमाण नहीं है,

तो वह यह आदेश दे सकता है कि—

(१) (क) के सम्बन्ध में किसी ऐसी उपाधि, डिगरी या योग्यता रखने के आधार पर किसी भी व्यक्ति को, इस अधिनियम में दिये हुए आदेशों के आधीन और उस फीस के देने पर, जो निर्धारित की गई हो, अपना नाम होमियोपैथिक डाक्टरों के रजिस्टर में दर्ज कराने का अधिकार होगा,

(२) (ख) के सम्बन्ध में ऐसी उपाधि, डिग्री या योग्यता रखने के आधार पर किसी भी व्यक्ति को उक्त रजिस्टर में अपना नाम दर्ज कराने का अधिकार नहीं होगा और इसके बाद इस अधिनियम के साथ नत्थी किये हुए परिशिष्ट के सम्बन्ध में यह समझा जायगा कि उसमें भी उस के अनुसार परिवर्तन कर दिया गया है।

३३—बोर्ड को अधिकार होगा कि वह किसी मेडिकल कारपोरेशन, परीक्षा लेनें वाली संस्था या किसी दूसरी संस्था की, जो परिशिष्ट में शामिल हो या शामिल होने के इच्छुक है, प्रबन्धकारिणी समिति या अधिकारियों को यह आज्ञा दे कि वे—

(क) ऐसी रिपोर्टें, नक्शे या ऐसी दूसरी सूचना दें, जिसकी बोर्ड को इसलिये आवश्यकता हो कि वह इसकी जांच कर सके कि इन संस्थाओं में होमियोपैथी की किस कोटि की शिक्षा दी जाती है, और

(ख) ऐसे मेडिकल कारपोरेशन, परीक्षा लेने वाली संस्था या दूसरी संस्थाओं द्वारा ली जाने वाली परिक्षाओं में उपस्थित होने के लिये बोर्ड के किसी ऐसे मेम्बर को, जिसे बोर्ड इस सम्बन्ध में भेजे, सुविधाएं दे ।

३४—हर एक ऐसे व्यक्ति को, जो होमियोपैथिक डाक्टरों के रजिस्टर में अपना नाम दर्ज करने के लिये दरख्वास्त दें, बोर्ड को यह विश्वास दिलाना चाहिये कि उसकी कोई ऐसी उपाधि, डिग्री या योग्यता है, जिसका उल्लेख परिशिष्ट में किया गया है और उसके लिए आवश्यक है कि वह रजिस्ट्रार को उस तारीख की ठीक सूचना दे जब उसने वह उपाधि, डिग्री या योग्यता प्राप्त की हो, जिसके आधार पर वह इस अधिनियम के अधीन रजिस्टर किये जाने का अधिकारी है और रजिस्ट्रार को ऐसी कोई सूचना भी दे जो रजिस्ट्रार उससे मांगे और जिससे वह इस अधिनियम के आधीन अपना कर्तव्य पालन कर सके ।

३५—यदि कोई ऐसा व्यक्ति, जिसका नाम होमियोपैथिक डाक्टरों के रजिस्टर में दर्ज है, कोई उपाधि, डिग्री या योग्यता उस उपाधि, डिग्री या योग्यता के अतिरिक्त प्राप्त करता है, जिसके आधार पर वह रजिस्टर्ड हुआ था, तो वह ऐसी फीस देने पर, जो इस सम्बन्ध में निर्धारित की जाय, ऐसे इन्दराज कराने का अधिकारी होगा, जिसमें उक्त रजिस्टर में उसके नाम के आगे ऐसी दूसरी उपाधि, डिग्री या योग्यता लिखी जायगी, चाहे यह दूसरा इन्दराज पहिले इन्दराज की जगह या उसके अतिरिक्त किया जाय ।

३६—(१) बोर्ड को अधिकार है कि वह किसी ऐसे होमियोपैथिक डाक्टर का नाम रजिस्टर में दर्ज करने की मनाही कर दे या रजिस्टर से उसका नाम निकाल दिये जाने की आज्ञा दे दे—

(क) जिसे भारत की किसी अदालत ने किसी ऐसे अपराध के लिये कारावास का दण्ड दिया हो, जिसे राज्य सरकार ने नैतिकपतन–सम्बन्धी घोषित किया हो, जिसके कारण रजिस्टर में उसका नाम दर्ज करना या उसमें उसका नाम लिखा रहने देना अनुचित होगा, या

(ख) जिसको बोर्ड या ऐसी कमेटी ने, जिसे बोर्ड ने इस प्रयोजन के लिए विशेष रूप से अधिकार दिया हो, तहकीकात के बाद (जिस में उसको अपनी सफाई पेश करने और व्यक्तिगत रूप से या किसी कौंसिल, वकील, प्लीडर या अटोर्नी के मार्फत उपस्थित होने का अवसर दिया गया हो और जिसकी तहकीकात बोर्ड अपने

विवेक से गुप्त रूप में कर सकती है) उन मेम्बरों की संख्या के दो-तिहाई बहुमत से, जो उस मीटिंग में उपस्थित हों और जिन्होंने अपना वोट दिया हो, पेशे के बारे में दुराचरण के कारण, जो अपयश के योग्य हो, अपराधी ठहराया हो।

(२) अपने को संतुष्ट कर लेने के बाद कि समय के बीत जाने के कारण या किसी कारण से उपधारा (१) में दी हुई अयोग्यता का कोई महत्व नहीं है, बोर्ड को अधिकार होगा कि वह किसी ऐसे व्यक्ति का नाम, जिसके विरुद्ध उपधारा (१) के अधीन कोई आदेश दिया गया हो, रजिस्टर में दर्ज किये जाने या दोबारा दर्ज किये जाने का, जैसी भी अवस्था हो, आदेश दे।

३७—(१) मृतकों के प्रत्येक रजिस्ट्रार को, जो किसी ऐसे व्यक्ति की मृत्यु की सूचना पाये, जिसके नाम के सम्बन्ध में उसे यह मालूम हो कि वह होमियोपैथिक डाक्टरों के रजिस्टर में दर्ज है, मान्य होगा कि वह डाक द्वारा ऐसी मृत्यु का एक सर्टिफिकेट, जिस पर उसके हस्ताक्षर हों और जिसमें मृत्यु का समय और स्थान का ब्यौरा दिया हो, बोर्ड के सेक्रेटरी के पास फौरन भेजे।

(२) ऐसी मृत्यु के सम्बन्ध में ऐसा सर्टीफिकेट या कोई अन्य विश्वस्त सूचना पाने पर उक्त बोर्ड को मान्य होगा कि वह मृतक व्यक्ति का नाम रजिस्टर से खारिज कर दे।

३८—यदि कोई व्यक्ति, जिसका नाम होमियोपैथिक डाक्टरों के रजिस्टर में दर्ज न हो, झूठे तरीके से यह प्रकट करे कि उसका नाम उक्त रजिस्टर में दर्ज है या अपने नाम या उपाधि के साथ ऐसे शब्दों या अक्षरों का प्रयोग करता है, जिससे यह प्रकट हो कि उसका नाम रजिस्टर में दर्ज है, तो चाहे उसके ऐसा करने से कोई व्यक्ति वास्तव में धोखा खाये या न खाये, उसको अर्थ-दण्ड दिया जा सकेगा, जो २०० रु० तक हो सकता है।

३९—धारा ३६ की उपधारा (१) के वाक्यखण्ड (ख) के अधीन की जाने वाली किसी जांच के प्रयोजन के लिए बोर्ड या कमेटी को, जैसी अवस्था हो, वही अधिकार प्राप्त होंगे जो पब्लिक सर्वेंटस इनक्वायरी एक्ट १८५० के अधीन नियुक्त कमिश्नर को प्राप्त होते हैं, और उक्त अधिनियम की धारा ५, ८ से १० तक, और १४ से १६ तक, और १९ और २० तक की शर्तें, जितनी हों, ऐसी प्रत्येक जांच एवम् अपील में लागू होंगी।

४०— (१) रजिस्ट्रार को मान्य होगा कि वह प्रतिवर्ष और समय समय पर जब आवश्यकता हो किसी ऐसी तारीख को या उसके पूर्व जो बोर्ड इसके सम्बन्ध में नियत करे, सरकारी गजट में या किसी ऐसे ढंग से जिसे बोर्ड निर्धारित करें रजिस्टर में उस समय के लिए लिखित डाक्टरों की पूर्ण या पूरक सूची प्रकाशित करें और उसमें नीचे लिखी हुई बातें दी जायेंगी:—

(क) रजिस्टर में दर्ज सब लोगों के नाम वर्णावली के क्रम से लिखे जाएंगे.

(ख) हर उस व्यक्ति का, जिसका नाम रजिस्टर में दर्ज हो रजिस्टर में दर्ज किया हुआ पता और वह पद जि पर वह

नियुक्त हो या वास्तविक नौकरी, और

(ग) हर ऐसे व्यक्ति की रजिस्टर में दर्ज की हुई उपाधियां या डिगरिया और तारीख जब ऐसी उपाधि या डिगरी दी गई या योग्यता स्वीकत की गई।

परन्तु प्रतिबन्ध यह है कि रजिस्ट्रार समय-समय पर सरकारी गजट में ऐसे प्रैक्टिस करने वालों के नाम जिनका नाम इस अधिनियम की किसी शर्त से नियमानुसार हटा दिया गया है, प्रकाशित करेगा।

(२) किसी कार्यवाही में यह समझा जायगा कि प्रत्येक व्यक्ति जिसका नाम ऐसी सूची में दर्ज है वह रजिस्टर्ड प्रैक्टिस करने वाला है और कोई व्यक्ति, जिसका नाम इस प्रकार नहीं दर्ज है, वह रजिस्टर्ड प्रैक्टिस करने वाला नहीं है;

परन्तु प्रतिबन्ध यह है कि ऐसे व्यक्ति की अवस्था जिसका नाम अन्तिम सूची के प्रकाशित होने के बाद रजिस्टर में दर्ज हुआ है, नाम के इन्दराज की एक प्रमाणित प्रतिलिपि, जिस पर रजिस्ट्रार के हस्ताक्षर हों, इस बात का प्रमाण होगी कि उस व्यक्ति का नाम इस अधिनियम के अधीन रजिस्टर्ड है। ऐसा प्रमाण-पत्र निःशुल्क दिया जायगा।

अध्याय ५

बोर्ड के अधिकार और आय-व्यय

४१—बोर्ड के नीचे लिखे हुए अधिकार होंगे, यानी—

(१) संबन्ध करने (ऐफीलियेशन) के प्रयोजन के लिये होमियोपैथिक चिकित्सा प्रणाली की शिक्षा सम्बन्धी संस्थाओं को स्वीकृति देना

(२) बोर्ड से सम्बन्धित संस्थाओं में साधारण शिक्षा के लिए, विशेष शिक्षा के लिए या रिफ्रेशर शिक्षा के लिए होमियोपैथिक चिकित्सा विज्ञान के ऐसे विषय में, जिन्हें बोर्ड उचित समझे, पाठ्य-विषय और पाठ्य-क्रम निर्धारित करना।

(३) परीक्षायें लेना और ऐसे व्यक्तियों को, जिन्होंने बोर्ड से संबंधित संस्थाओं में पाठ्यक्रम के अनुसार अध्ययन किया हो, डिप्लोमा और डिगरी को स्वीकृति देना और उसका वितरण करना।

(४) प्रदर्शिनी का प्रबन्ध करना और उनमें पदक प्रदान करने और बोर्ड की परीक्षाओं में उच्च स्थान प्राप्त करने वाले छात्रों को छात्रवृत्ति या पदक देना या, गरीब और योग्य छात्रों को छात्रवृत्ति देना और राज्य सरकार की स्वीकृति से इस राज्य में निवास-ग्रहण किये छात्रों को विशेष अध्ययन के लिये और किसी मेडिकल संस्था में या प्रसिद्ध फर्म में भारत या भारत के बाहर, जिसको बोर्ड उपयुक्त समझे, होमियोपैथिक औषधि-निर्माण के लिये छात्रवृति देना और बोर्ड से सम्बन्धित संस्थाओं में होमियोपैथी की चेयर स्थापित करना।

(५) विद्यार्थियों से ऐसे शुल्क मांगना और प्राप्त करना जो बोर्ड की परीक्षाओं में भर्ती के लिये निर्धारित किये जायें।

(६) बोर्ड से संबद्ध शिक्षा-संस्थाओं द्वारा विद्यार्थियों के रहन-सहन और अनुशासन के प्रबन्ध की देख-रेख करना और उनके विद्यार्थियों के स्वास्थ्य और साधारण भलाई की उन्नति के लिए प्रबन्ध करना।

(७) परीक्षकों को नियुक्त करना और उन परीक्षाओं के परीक्षा-फल प्रकाशित करना जो बोर्ड ले।

(८) किसी ऐसी संस्था की स्वीकृति को स्थगित करना या वापस लेना जिसका प्रबन्ध इस अधिनियम में या उसके अधीन बनाये गये नियमों में निर्धारित शर्तों के अनुसार न हो रहा हो;

परन्तु प्रतिबन्ध यह है किसी ऐसी संस्था की प्रबन्धकारिणी कमेटी को कोई ऐसा प्रार्थना पत्र प्रस्तुत करने का, जिसे वह उचित समझे, अवसर दिये बिना कोई ऐसी कार्यवाही न की जायगी।

(९) राज्य सरकार की पहले से स्वीकृति लेने के बाद उत्तर प्रदेश में होमियोपैथिक औषधालयों, अस्पतालों और शिक्षा संस्थाओं का निरीक्षण करने के लिए इन्सपेक्टरों को नियुक्त करना।

(१०) अनुसन्धान संस्था स्थापित करना या उसे सहायता प्रदान करना, होमियोपैथिक विज्ञान में पोस्ट ग्रेजुएट की पढ़ाई का प्रबन्ध करना और राज्य में वैज्ञानिक ढंग से होमियोपैथिक औषधियों का निर्माण करने में प्रोत्साहन देना।

(११) होमियोपैथिक पत्रों को प्रकाशित करना।

(१२) इस अधिनियम के उद्देश्यों के प्रसार के लिए ऐसे कार्यों का करना जो इस अधिनियम के उपबन्धों के प्रतिकूल न हों।

४२—(१) बोर्ड प्रत्येक वर्ष ऐसी तारीख के पूर्व, जो इस सम्बन्ध में नियमों के अनुसार निर्धारित की जाय और उक्त तारीख के बाद अगले ३१ मार्च को समाप्त होने वाले वर्ष के सम्बन्ध में, वास्तविक आय और संक्षिप्त प्राप्तियों तथा व्ययों का पूरा-पूरा विवरण और उसके साथ ही आगामी १ अप्रल से प्रारम्भ होने वाले वर्ष के सम्बन्ध में एक बजट, जिसमें बोर्ड की आय और व्यय का आनुमानिक विवरण दिया गया हो, तैयार करायेगा और बैठक के सामने प्रस्तुत करायेगा।

(२) ऐसी मीटिंग में बोर्ड विशिष्ट कार्य के लिये निर्दिष्ट धन और आनुमानिक बजट में दिए हुए साधनों को तय करेगा और बजट को स्वीकार करेगा, जो राज्य सरकार के पास, या ऐसे अधिकारी के पास जिसका राज्य सरकार आदेश दे, उस मीटिंग के पन्द्रह दिन के अन्दर, जिसमें बजट पास हुआ हो भेजा जायगा।

(३) बोर्ड समान शर्तों के अधीन समय-समय पर अवस्थानुसार, जैसा करना उपयुक्त समझे, उपधारा (२) के आधीन स्वीकृत बजट को परिवर्तित कर सकता है।

४३—१ अक्तूबर के बाद जितना शीघ्र हो सके, वर्ष के लिए संशोधित बजट तैयार

किया जायगा और ऐसे संशोधित बजट पर जहां तक हो सकेगा, धारा ४२ के आधीन बने हुए बजट पर लागू होने वाली सब शर्तें लागू होंगी।

४४—एक होमियोपैथिक फण्ड स्थापित किया जायगा और उसमें रखी जायंगी।

(क) राज्य सरकार से प्राप्त ग्राण्ट और ऋण।

(ख) होमियोपैथों की रजिस्ट्री और बोर्ड की परीक्षाओं में सम्मिलित होने के लिए बोर्ड द्वारा प्राप्त सभी शुल्क।

(ग) किसी स्थानीय अधिकारी या होमियोपैथिक मेडिकल एसोसियेशन से प्राप्त चन्दे।

(घ) उपरोक्त वाक्य-खण्डों में दिये हुये साधनों के अतिरिक्त साधनों से बोर्ड द्वारा या बोर्ड के लिए प्राप्त सब धन।

४५—यह आवश्यक होगा कि होमियोपैथिक फण्ड इम्पीरियल बैंक आफ इण्डिया में जमा की जाय या राज्य सरकार की पहले से अनुमति प्राप्त करके किसी अन्य बैंक में।

अध्याय ६

चिकित्सकों के विशेषाधिकार

४६—किसी अन्य क़ानून में, जो कि उस समय के लिये लागू हो, कोई अन्य उपबन्ध होने पर भी—

(१) शब्दावली "वैधानिक रूप से योग्य ली(गली क्वालीफ़ाइड) चिकित्सक" या "उचित रूप से योग्य चिकित्सक" या कोई शब्द, जिससे यह अर्थ निकलता हो कि अमुक व्यक्ति क़ानून द्वारा चिकित्सक या मेडिकल व्यवसाय का सदस्य स्वीकार किया गया है, उत्तर प्रदेश में लागू होने वाले सब अधिनियमों में और भारतीय संसद के सब अधिनियमों में (जब वे उत्तर प्रदेश में लागू हों) जहां तक ऐसे अधिनियमों का सम्बन्ध भारत के संविधान की सातवीं अनुसूची की लिस्ट २ या ३ में विशेष रूप से कहे हुए किसी मामले से हो, यह समझना आवश्यक होगा कि वह रजिस्टर्ड मेडिकल चिकित्सक के अन्तर्गत है।

(२) यह आवश्यक होगा कि किसी चिकित्सक या मेडिकल अफसर का कोई प्रमाण-पत्र, जो किसी कानून या कानून की भांति समझे जाने वाले किसी नियम के अधीन अवश्य हो, वैध समझा जाय, यदि वह प्रमाण-पत्र किसी रजिस्टर्ड चिकित्सक द्वारा दिया गया हो।

(३) यह आवश्यक होगा कि किसी रजिस्टर्ड चिकित्सक को, किसी होमियोपैथिक औषधालय, अस्पताल, आतुरालय या जच्चा-बच्चों के अस्पताल में, जिसे राज्य सरकार से सहायता या आर्थिक सहायता मिलती हो अथवा किसी सरकारी संस्थापन, सार्वजनिक संस्था या संस्था से, जो चिकित्सा के ऐसे ढंगों से सम्बन्ध रखती हो, चिकित्सक सर्जन या अन्य मेडिकल अफसर के किसी पद पर नियुक्त किये जाने योग्य समझा जाय।

(४) किसी रजिस्टर्ड चिकित्सक को

वह अधिकार होगा कि वह—

(क) किसी जन्म या मृत्यु-सम्बन्धी प्रमाण-पत्र पर, जो किसी कानून या नियम के अनुसार आवश्यक हो और जिस पर किसी उचित योग्यता रखने वाले मेडिकल चिकित्सक के द्वारा हस्ताक्षर किये जाने या प्रमाणित किये जाने की आवश्यकता हो, हस्ताक्षर करे या प्रमाणित करे;

(ख) किसी मेडिकल (स्वास्थ्य सम्बन्धी) या फ़िजिकल (शरीर सम्बन्धी) प्रमाण-पत्र पर, जो किसी कानून या नियम के अनुसार आवश्यक हो और जिस पर उचित योग्यता रखने वाले मेडिकल चिकित्सक के हस्ताक्षर किये जाने या प्रमाणित किये जाने की आवश्यकता हो, हस्ताक्षर करे या प्रमाणित करे;

(ग) किसी मृत्यु-सम्बन्धी अन्वेषण (इंक्वेस्ट) के विषय में या किसी न्यायालय में इंडियन एवीडेन्स ऐक्ट, १८७२ की धारा ४५ के अधीन किसी विशेषज्ञ के स्थान पर या किसी मामले में जो चिकित्सा सर्जरी या प्रसव से सम्बन्ध रखता हो, साक्षी दे।

४७- किसी अन्य कानून में, जो उस समय के लिये लागू हो, कोई अन्य उपबन्ध होने पर भी प्रत्येक रजिस्टर्ड चिकित्सक को यह अधिकार होगा कि यदि वह चाहे तो मृत्यु सम्बन्धी अन्वेषण को प्रमाणित करने या भारतीय दण्ड-विधि-संग्रह, १८९८ (कोड आफ़ क्रिमिनल प्रोसीड्योर, १८९८) के अधीन जूरी या असेसर के पद पर काम करने से मुक्त रहे।

४८—रजिस्टर्ड चिकित्सकों को वही विशेषाधिकार प्राप्त होंगे, जोकि युक्त प्रान्तीय मेडिकल ऐक्ट, १९१७ (यूनाइटेड प्राविन्सेज मेडिकल ऐक्ट, १९१७) के अधीन रजिस्टर्ड मेडिकल चिकित्सकों को युक्त प्रान्तीय आबकारी (एक्साइज़) ऐक्ट १९१० (यूनाइटेड प्राविन्सेज एक्साइज़ ऐक्ट, १९१०) या किसी अन्य अधिनियम के अधीन, जो उस समय लागू हों, प्राप्त होते हैं।

अध्याय ७

विविध

४९—(१) किसी ऐसे निर्णय को छोड़ कर, जो बोर्ड ने अपील सुनने वाले अधिकारी के पद से किया हो, इस अधिनियम के अधीन किये हुये बोर्ड की प्रत्येक आज्ञा के विरुद्ध अपील राज्य सरकार के समाने की जा सकेगी।

(२) उप-धारा (१) के आधीन प्रत्येक अपील ऐसी आज्ञा की सूचना की तारीख से तीन मास के भीतर प्रस्तुत की जायगी।

५०—(१) राज्य सरकार के विरुद्ध उसके किसी ऐसे काम के लिये, जो उसने उन अधिकारों को प्रयोग में लाने के लिये किया हो जो इस अधिनियम के अधीन प्राप्त हैं, कोई मुक़दमा या कानूनी कार्यवाही न की जा सकेगी।

(२) बोर्ड या बोर्ड के किसी सदस्य या किसी अफ़सर या नौकर या किसी ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध, जो बोर्ड या उसके चेयरमैन या किसी अफ़सर या बोर्ड के नौकर के आदेशानुसार काम करता हो,

उसके किसी ऐसे काम के सम्बन्ध में, जो उसने इस अधिनियम के अधीन कानूनी तौर पर और नेकनियती से तथा उचित सावधानी और ध्यान से किया हो, कोई मुक़दमा या कानूनी कार्यवाही न की जायगी।

५१—किसी कार्यवाही, रसीद, प्रार्थना-पत्र, ख़ाका, नोटिस, आज्ञा, रजिस्टर का इन्दराज या अन्य लेख-पत्र की कोई प्रतिलिपि, जो बोर्ड के अधिकार में हो, यदि बोर्ड के रजिस्ट्रार ने या बोर्ड से अधिकार प्राप्त किसी दूसरे व्यक्ति ने उसको उचित रूप से प्रमाणित किया हो, उस इन्दराज (लेखा) या लेख-पत्र के मौजूद होने के प्रत्यक्ष प्रमाण के रूप में मानी जायगी और ऐसे इन्दराज या लेख-पत्र और उन सब मामलों के सम्बन्ध में, जो उसमें लिखे हों, प्रत्येक मामले में उसी प्रकार और उसी हद (सीमा) तक प्रमाण में स्वीकार की जायगी जितना और जिस हद तक असली इन्दराज या लेख-पत्र, यदि ऐसे मामलों के प्रमाण में प्रस्तुत की जाती, स्वीकार की जाती।

५२—किसी ऐसी कानूनी कार्यवाही में, जिसमें बोर्ड किसी पक्ष में न हो, उस समय तक बोर्ड के किसी सदस्य या अफ़सर या नौकर को किसी रजिस्टर या लेख-पत्र को प्रस्तुत करने के लिये या उसमें लिखी हुई बातों को ठीक सिद्ध करने के लिये प्रमाण के रूप में अदालत में बुलाया न जायगा जब तक अदालत ने किसी विशेष कारण के आधार पर ऐसा करने की आज्ञा न दी हो।

५३—यदि किसी समय राज्य सरका
को प्रतीत हो कि इस अधिनियम
अधीन या इसके अनुसार बोर्ड को
अधिकार दिया गया है उसने उस
व्यवहार नहीं किया था अपना अधिक
सीमा का उल्लंघन किया है या अप
अधिकार का दुरुपयोग किया है या इ
अधिनियम के आधीन उसके लिये
कर्त्तव्य नियत किया गया है उसक
पालन नहीं कर सका है, तो राज
सरकार को अधिकार होगा कि य
वह यह समझे कि इस प्रकार अधिका
का उपयोग न करना, अधिकार-सीमा
उल्लंघन करना या उसका दुरुपयोग कर
अत्यन्त महत्व रखता है, तो इन स

HOMOEOPATHIC
MEDICINES.
Prepared in our Govt. Licenced
Laboratories
under Direct Supervision of
Dr. PREM RAJ WADHWA
B.Sc. Hons., M.Sc., (Pb.), M.B.H.
(Cal)., & Gold Medalist and Registered
Homœo Practitioner's
Efficiency guaranteed
Price list on application
Dr. WADHWA & Co.,
Original Road, Korol Bagh, DELHI 5.
Phone No. 42335

बातों की सूचना बोर्ड को दे और यदि बोर्ड ऐसे समय के भीतर, जो राज्य सरकार इसके लिए नियत करे, ऐसे दोष, सीमा-उल्लंघन या अधिकार के दुरुपयोग का परिहार न करे तो राज्य सरकार को अधिकार होगा कि बोर्ड को तोड़ दे और बोर्ड के सब या कुछ अधिकारों और कर्त्तव्यों की व्यवहार में लाने या पालन करने के लिये कोई ऐसी संस्था उस समय तक के लिये जिसे वह उचित समझे, नियत करे।

परन्तु प्रतिबन्ध यह है कि वह इस अधिनियम के आदेशों के अनुसार ६ मास के भीतर एक नया बोर्ड बनाने के लिये कार्यवाही करेगी।

५४—(१) प्रथम श्रेणी के मैजिस्ट्रेट की अदालत को छोड़कर कोई अदालत इस अधिनियम के अधीन किये हुए अपराधों की न सुनवाई कर सकती है और न उनकी सुनवाई का अधिकार रखती है।

(२) कोई अदालत इस अधिनियम के अधीन किए हुए किसी अपराध की सुनवाई का अधिकार न रक्खेगी, उस दशा को छोड़ कर जब इस सम्बन्ध में बनाये हुए नियमों के अनुसार किसी अफसर से लिखित अभियोग-पत्र प्रस्तुत किया जाय।

५५—इस अधिनियम के आदेशों और इसके अधीन राज्य सरकार द्वारा बनाये हुए नियमों के अधीन बोर्ड निम्नलिखित बातों को नियमबद्ध करने के लिए विनियम बना सकता है, अर्थात्—

(१) [क] वह प्रतिबन्ध जिनका पालन करते हुए धारा ३२ के अधीन रजिस्ट्री के प्रयोजनों के लिए संस्थाएं मिलाई जा सकतीं और स्वीकृति की जा सकती हैं;

[ख] बोर्ड से सम्बद्ध शिक्षा या शिक्षण सम्बन्धी संस्थाओं में विद्यार्थियों के प्रवेश के लिए;

[ग] वह प्रतिबन्ध नियत करने के लिए जिनके अधीन विद्यार्थी डिगरी या डिप्लोमा या प्रमाण-पत्र का कोर्स और बोर्ड की परीक्षाओं में दाखिल हो सकेंगे और जिनके अधीन विद्यार्थी डिगरी, डिप्लोमा और प्रमाण-पत्र पाने के योग्य होंगे;

[घ] बोर्ड से सम्बद्ध शिक्षा अथवा शिक्षा सम्बन्धी संस्थाओं के विद्यार्थियों के निवासस्थान के प्रतिबन्धों को नियत करने और ऐसे निवासस्थान का शुल्क वसूल करने के लिये;

[ङ] बोर्ड से सम्बद्ध शिक्षा सम्बन्धी संस्थाओं के अध्यापकों की संख्या, योग्यता और वेतन को नियत करने के लिये;

[च] ऐसी संस्थाओं में विषयों की पढ़ाई के लिए और बोर्ड की परीक्षाओं में बैठने, डिगरी, डिप्लोमा और प्रमाण-पत्र प्राप्त करने के लिए शुल्क नियत करने के लिए;

[छ] उन प्रतिबन्धों और उस ढंग को नियत करने के लिये, जिनके अनुसार परीक्षक नियत किए जायेंगे और परीक्षायें ली जायेंगी और परी-

क्षकों के कर्त्तव्य नियत करने के लिए; परन्तु प्रतिबन्ध यह है कि विनियम (रेगूलेशन्स) बनाने में बोर्ड साधारण रूप से संस्थाओं की आर्थिक और अन्य वर्तमान दशाओं का ध्यान रक्खेगा।

(२) [क] समय और स्थान, जहां बैंठक की जायगी;

[ख] ऐसी बैठकों को आमन्त्रित करने की सूचनायें निकालना;

[ग] वहां कार्यवाही करना;

[घ] रजिस्ट्रार के अतिरिक्त बोर्ड के अफसरों और कर्मचारियों के वेतन, भत्ते और नौकरी के अन्य प्रतिबन्ध;

[ङ] दूसरे समस्त अन्य मामले, जो इस अधिनियम के उदेश्यों की पूर्ति के लिए आवश्यक हों।

(३) ऐसे समस्त विनियम सरकारी गजट में प्रकाशित किये जायेंगे।

(४) राज्य सरकार को अधिकार है कि वह सरकारी गजट में विज्ञाप्ति प्रकाशित करके कोई विनियम रद या संशोधित करे।

५६—(१) राज्य सरकार समय-समय पर इस अधिनियम के उदेश्यों के लिये इस अधिनियम के अनुकूलल नियम बना सकती है।

(२) विशेष रूप से और उपरोक्त अधिकार के आशय के साधारणतः विपरीत गये बिना राज्य सरकार निम्नलिखित किसी विषय पर नियम बना सकती है—

(क) धारा ४ के आधीन किस समय, किस स्थान पर और किस प्रकार चुनाव होगा;

(ख) इस अधिनियम के अधीन चुनाव के नियंत्रण के लिये;

(ग) बोर्ड की बैठक की कार्यवाहियों के चलाने और विवरण को भली-भांति रखने के लिए;

(घ) धारा ९ के आधीन रिक्त स्थानों की पूर्ति किस भांति की जाएगी;

(ङ) रजिस्ट्रार तथा अन्य कर्मचारियों के अधिकार, वेतन, भत्ते और सेवा सम्बन्धी शर्तें;

(च) बोर्डों द्वारा हिसाब रखना और किस प्रकार इन हिसाबों का आडिट किया जायगा और इन्हें प्रकाशित किया जायगा और आडिट, डिसएलाउन्स तथा सरचार्ज के संबंध में आडीटरों के अधिकार;

(छ) वह तिथि, जिसके पूर्व ही बजट स्वीकृति के लिये मीटिंग की जायगी;

(ज) बजट तैयार करने में किन फार्मों और रीतियों का उपयोग किया जायगा;

(झ) वे नक्शे, परिशिष्ट और रिपोर्ट, जिन्हें सभी बोर्ड भेजेंगे;

(ञ) इस अधिनियम के अधीन होमियापैथों के रजिस्टर का फार्म और योग्यताओं के आधार पर चिकित्सकों का दो या अधिक वर्गों में वर्गीकरण;

(ट) इस अधिनियम के अधीन दिये शुल्क और उनका उपयोग;

(ठ) धारा ३१ के अधीन रजिस्ट्रार के निर्णय के विरुद्ध बोर्ड द्वारा अपीलें सुनने की विधि;

(ड) बोर्ड के सदस्यों और सभापति को मिलने वाले भत्ते;

(ढ) चैयरमैन को मिलने वाला परिश्रमिक;

(ण) शिक्षण संस्था अथवा परीक्षण संस्था के रूप में बोर्ड के लक्ष्यों का उत्थान;

(त) निर्धारित फार्म में चिकित्सकों द्वारा रोगियों के रजिस्टर का रक्खा जाना;

(थ) बोर्ड अथवा राज्य सरकार द्वारा अपने अधिकारों का सौंपा जाना;

(द) इस अधिनियम के और किसी लक्ष्य का उत्थान।

(३) सभी ऐसे नियम सरकारी गज़ट में प्रकाशित किये जायेंगे।

५७—राज्य सरकार का नियम बनाने का अधिकार और बोर्ड का विनियम बनाने का अधिकार इस प्रतिबन्ध के आधीन है कि नियम तथा विनियम पहले आलोचनार्थ प्रकाशित किये जायें और लागू होने से पूर्व सरकारी गजट में छापें जाय तथा विनियम तब तक लागू नहीं होंगे जब तक राज्य सरकार उन्हें ठीक न मान ले।

५८—जब तक कि इस अधिनियम में इसके विपरीत स्पष्ट आवेश न हों, इस अधिनियम के किसी आदेश का प्रभाव, इस अधिनियम के आधीन किसी रजिस्टर्ड होमियोपैथिक चिकित्सक के अतिरिक्त किसी चिकित्सक पर न पड़ेगा।

भाग २

५९—राज्य सरकार उस तिथि से दो वर्ष की अवधि के पश्चात् जब से प्रथम भाग लागू हो, सरकारी गजट में विज्ञप्ति देकर, इस भाग के आदेशों को या उसके किसी अंश को सारे राज्य पर या राज्य के किसी भी भाग पर उस तिथि से लागू कर सकती है जो उसमें वर्णित हो, परन्तु प्रतिबन्ध यह है कि राज्य सरकार इस विज्ञप्ति को अन्य साधनों द्वारा, जो कि उसे उचित प्रतीत हों, विस्तीर्ण रूप से प्रकाशित करेगी।

BIOCHEMIC

MEDICINES

Prepared in well equipped Laboratories

under Direct Supervision of

Dr. PREM RAJ WADHWA
B.Sc. (Hon)., M.Sc. (Pb)., M.B.H. (Cal.)

Efficiency guaranteed.

Price list on application

Dr. WADHWA & Co.
Original Road, Karol Bagh,
DELHI

६०—(१) धारा ५६ में वर्णित विज्ञप्ति के प्रकाशन के पश्चात रजिस्ट्रार जो उस तिथि को जो उस विज्ञप्ति में दी हुई हो, एक सूची तैयार करेगा और रक्खेगा "होमियोपैथिक विधि से चिकित्सा करने वाले व्यक्तियों की सूची" कहलायेगी।

(२) प्रत्येक व्यक्ति, जो इस अधिनियम के अनुसार रजिस्टर्ड होने के योग्य नहीं है, इस भाग के लागू होने की तिथि से एक वर्ष के अन्दर रजिस्टार को इस बात से संतोष दिला देता है कि उपधारा (१) में लिखित तिथि तक उसने इस राज्या में नियमित रूप से दस वर्ष तक होमियोपैथिक विधि के अनुसार चिकित्सा की है, पांच रुपया देने पर उक्त सूची में अपना नाम लिखवा सकेगा।

(३) धारा ३० की उपधारा (२ और (४) और धारा ३१ धारा (२), (३) और (४) और धारा ३६ की उपधारा (१) के आदेश, जहां तक सम्भव होगा, कथितसूची पर लागू होंगे।

६१--उस व्यक्ति के अतिरिक्त कोई भी व्यक्ति, जिसका नाम इस अधिनियम के भाग १ के अधीन रजिस्टर्ड है या धारा ६० के अधीन जिसका नाम सूची में लिखा है, न तो चिकित्सा कर सकेगा और न प्रत्यक्ष अथवा गौण रूप से इस बात को लक्षित कर सकेगा कि वह चिकित्सा करता है या वह होमियोपैथिक विधि के अनुकूल औषधि-कार्य, शल्य कर्म अथवा धात्री कर्म करने के योग्य है।

परन्तु प्रतिबन्ध यह है कि राज्य सर-

SPECIAL CONCESSION
An offer never to be repeated again
On the auspicious occassion of
DEEPAWALI
18th, OCTOBER 1952
(From 18th OCTOBER to NOVEMBER, 30th 1952)
On all our preparations, patent medicines, injections, Mother Tinctures, dilutions, Bio. Medicines, Globules etc.
ON ALL ORDERS :—
ABOVE Rs. 20 ... ... 12½% DISCOUNT
ABOVE Rs. 100 ... ... 25% DISCOUNT
PLEASE NOTE :—
No discount on English Books.
No discount on B T medicines.
No discount on empty Phials, empty Boxes, corks and Sundries etc.
Because the rates of these articles have been Considerably reduced.
(Biggest Stores in the Province)
Universal Homoeo College Pharmacy
15, Faiz Bazar, Darya Ganj, DELHI.
PHONE — 7838.

कार सरकारी गजट में विज्ञप्ति देकर इस बात का निर्देश दे सकती है कि इस धारा के आदेश किसी वर्ग-विशेष के व्यक्तियों पर अथवा निर्दिष्ट क्षेत्र पर लागू न होंगे।

६२--कोई भी व्यक्ति, जो धारा ६१ का उल्लंघन करता है, प्रत्येक अपराध के सम्बन्ध में अभियुक्त सिद्ध होने पर जुर्माने की सजा से, जो दो सौ रुपया तक हो सकता है, दण्डनीय होगा।

६३-इस अधिनियम की किसी भी धारा में किसी भी बात के होते हुए कोई भी व्यक्ति, जो इस अधिनियम के भाग २ के लागू हो जाने की तिथी से एक वर्ष के पूरे होने पर तब तक रजिस्टर में रजिस्टर्ड चिकित्सक के रूप में न लिखा जायगा जब तक वह बोर्ड द्वारा स्वीकृत परीक्षा नहीं पास कर लेगा या यदि धारा ६० के अधीन उसका नाम चिकित्सकों की सूची में हो, तो जब तक बोर्ड के मत में उसको परिशिष्ठ के पैरा ४ के अर्थ के अनुसार पर्याप्त अनुभव न प्राप्त हो गया हो।

६४—धारा ६१ और ६२ में उल्लिखित कोई भी बात किसी ऐसे व्यक्ति पर न लागू होगी —

(क) जो दांतसाजी की कला तक ही अपनी चिकित्सा को सीमित रखता है।

(ख) जो व्यक्ति संयुक्त प्रांतीय नर्सों, मिडवाइफों, असिस्टेन्ट मिडवाइफों और हैल्थ विजीटरों के रजिस्टेशन के ऐक्ट, १९३४ (यूनाइटेड प्राविंसेज नर्सेज; मिडवाइव्ज, असिस्टैंट मिडवाइव्ज, हैल्थ विजिटर्स रजिस्ट्रेशन ऐक्ट, १९३४) के अधीन रजिस्टर्ड नर्स, मिडवाइफ या हैल्थ विजिटर है या दाई है और केवल प्रसूताओं की परिचर्या का कार्य करता है।

(ग) जो इस अधिनियम की धारा ६३ के अंतर्गत रजिस्टर्ड होने के योग्य है।

६५—(१) इस अधिनियम के अधीन बोर्ड द्वारा स्वीकृत संस्था या सीमित के अतिरिक्त कोई भी व्यक्ति किसी भी ऐसी उपाधि, प्रशंसा-पत्र, लाइसेन्स, प्रमाण-पत्र या अन्य कागज-पत्र, जिससे यह प्रकट होता हो या जिसमें यह लिखा हो कि उपाधारी अथवा उसका प्राप्तकर्ता होमियोपैथिक औषधि विधि के अनुसार चिकित्सा करने के योग्य है, न दे सकेगा।

(२) जो भी इस धारा के इस आदेश का उल्लंघन करेगा वह जुर्माने की सजा से दण्डनीय होगा और यह पांच सौ रुपये तक हो सकता है और यदि ऐसा उल्लंघन किसी समिति द्वारा होता है, तो उस समिति के प्रत्येक उस व्यक्ति को, जो जान बूझ कर और समझ कर ऐसे उल्लंघन के प्रति आज्ञा देता है या उसे अधिकत बनाता है, जुर्माने का दण्ड दिया जाएगा, जो सौ रुपये तक हो सकेगा।

६६—जो कोई व्यक्ति जान बूझ कर झूठी उपाधि, विवरण या अन्य नाम, जिससे यह प्रकट हो कि उसे कोई उपाधि, प्रशंसा-पत्र या प्रमाण-पत्र उस संस्था या समिति से मिला है या प्राप्त है, जिसे बोर्ड ने इस अधिनियम के अधीन स्वीकृत किया

है या वह इस अधिनियम के अधीन होमियोपैथिक प्रणाली के आदेश के अनुसार चिकित्सा करने के योग्य है तो वह जुर्माने की सजा द्वारा दण्डनीय होगा और यह इस अधिनियम के अधीन अपराध के लिए पचास रुपया होगा और बाद को किये जाने वाले प्रत्येक अपराध के लिए दो सौ रुपया होगा।

परिशिष्ट

वे व्यक्ति, जिन्हें होमियोपैथों के रजिस्टर में अपना नाम लिखाने का अधिकार प्राप्त है।

(देखिये धारा ३१, ३२, ३३ और ३४)

(१) वे होमियोपैथ, जिन्होंने बोर्ड आफ होमियोपैथिक मैडिसिन, उत्तर प्रदेश द्वारा संचालित अन्तिम परीक्षा पास कर ली हो।

(२) वे होमियोपैथय, जिन्होंने राज्य के भीतर अथवा बाहर किसी भी होमियोपैथिक संस्था की परीक्षा पास की हो; पर प्रतिबन्ध यह है कि वह संस्था बोर्ड लगाए हुए उन प्रतिबन्धों सहित, जिन् बोर्ड ने उचित समझा हो, बोर्ड द्वार स्वीकृत हो।

(३) वे होमियोपैथ, जो इस अधिनियम के पास होने के समय पिछले पाँ वर्षों से होमियोपैथ की हैसियत से चिकित्सा कर रहे हों और उत्तर प्रदेश होमियोपैथिक मैडिकल एसोसियेशन द्वारा निर्धारत विधि के अनुकूल रजिस्टर्ड होमियोपैथ होने के योग्य समझे गये हों।

(४) वे होमियोपैथ, जो बोर्ड की रा में पर्याप्त ख्याति प्राप्त प्रशंसित और यो हों और व्यवसाय में अपनी कार्यनिपुण के लिए सुविख्यात हों।

Estd. **1928.** ← → ← → *Phone No.* **6265**

For Genuine Medicines at Competitives Rates

— *REMEMBER* —

SEGAL'S PHARMACY (REGD.)

GHASI RAM STREET, CHANDNI CHOWK,
DELHI 6.

The Oldest Homoeopathic Pharmacy of Delhi

Stockists of Homoeopathic & Biochemic Medicines of
M\s. BOERICKE & TAFEL of U.S.A.
and the sole stockists of
Dr. WILLMAR SCHWABE (Germany) preparations.

For Further Information visit us or Write

रोग और रोगी में बड़ा अन्तर है, यह बात कभी न भूलनी होगी ।

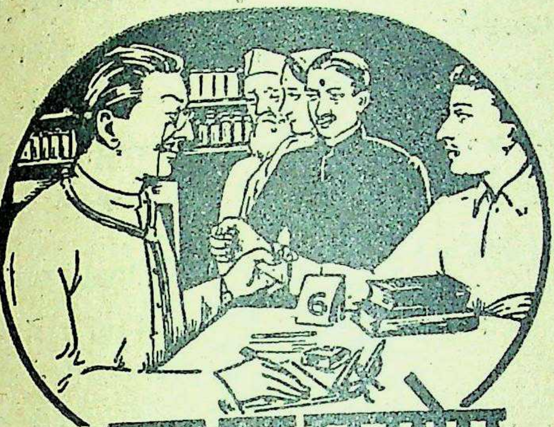

रोग दूर करने लिये रोगी की चिकित्सा करनी होगी ।

अनुभूत प्रयोग

पुरानी पित्ती

एक १८ वर्ष की कन्या मेरे पास अपनी पुरानी पित्ती का इलाज कराने आई। उसकी मां उसके साथ थी और घबराई हुई थी क्योंकि उससे डाक्टर ने कहा था कि मर्ज समझ में नहीं आ रहा है इसके लिए कुछ टैस्ट (परीक्षण) करने होंगे। मैं हंसी और मैंने कहा कि यह तो पुरानी पित्ती है और ठीक हो जावेगी। माता को बड़ी सान्त्वना मिली।

मैंने उसे आर्टिका युरेन्स ६x दिया और १० दिन में वह केवल घुटनों के नीचे २ रह गई और थोड़े दिनों में वे भी साफ हो गये।

—डा० मेरी आर्प

डा० आर० डी० नायक, बम्बई

१३ वर्ष की कन्या, दुबली-पतली, गर्दन में गांठें हो गईं। डाक्टरों ने क्षय के ग्लांड बता दिये। गांठें दाहिनी तरफ कान के ठीक नीचे थी। शुरू में केवल एक गांठ खजूर जितनी देखी गई। दो तीन हफ्ते में उस ही के आसपास उससे जरा छोटी ४-५ गांठें और हो गईं। अब थोड़ा बुखार भी हो गया और गर्दन में दर्द इतना बढ़ गया कि गर्दन इधर उधर मोड़ना कठिन हो गया और चूंकि गांठें दिन-बदिन बढ़ रहीं थीं निगलने में भी कष्ट होने लगा।

कुछ ऐलोपैथिक डाक्टरों ने लड़की को भली भांति देख कर कहा कि गांठें कमज़ोरी से हैं और दिन में दो दफा मछली का तेल पीने को बताया। दो हफ्ते तक लड़की वह तेल पीती रही। लेकिन लाभ कुछ न हुआ, दिन-ब-दिन हालत खराब होती रही।

इसके बाद एक बड़े सर्जन को दिखलाया गया जिन्होंने खूब जांच-पड़ताल के बाद मछली का तेल ही बतलाया और लड़की ने फिर कुछ दिनों तेल पीया मगर लाभ न होने पर उन ही सर्जन के पास फिर पहुँची। उन्होंने फिर दुबारा परीक्षा करके कहा कि इसकी गांठों को आपरेशन करके निकाल देना चाहिये। लड़की की बूढ़ी दादी आपरेशन से डरती थी इसलिए

और कोई चारा न देख उसने होमियोपैथिक डाक्टर को दिखाना ठीक समझा। और इस प्रकार होमियोपैथी की बारी आई

मेरे पास लड़की २५-६-५० को आई जबकि मैंने ये लक्षण नोट किये :—

१—पोषण की कमी व गड़बड़।

२—गर्दन के दाहिनी तरफ ग्रन्थियां बढ़ी हुई एवं दर्द।

३—क़ब्ज़।

४—त्वचा पर कहीं कहीं दाने।

५—ज़ीना चढ़ने या कुछ भी परिश्रम करने पर थक जाना, आंखों पर जोर नहीं दे सकती थी।

६—पसीना जल्दी आता था, नींद में माथे पर पसीना अधिक।

७—कभी २ मुंह में खट्टा २ पानी आना।

८—सर्दी जुकाम जल्दी २ हो जाना।

९—बहुत दुर्बल लगती है हड्डियें कमजोर मालूम होती हैं।

१०—सुस्ती है, काम करने को जी नहीं चाहता, अन्यमनस्क।

११—आंखों की पुतलीयें फैली हुईं।

१२—कभी २ टान्सिल बढ़ जाते हैं।

१३—तेज तबियत और बुद्धिमान् है।

१४—भूख अच्छी है, मिठाई पसन्द करती है।

१५—ठण्डी तर हवा, ठण्डे स्नान, भीग जाने से, मौसम बदलने पर, मांसिक व शारीरिक श्रम से, पढ़ने, सीने या आंखों पर जोर डालने से, ऊंची चढ़ाई से, रोग में वृद्धि ! दूध अच्छा नहीं लगता।

१६—खाने के बाद, खुश्क मौसम में तथा आराम करने से रोग में कमी।

इस प्रकार इस रोगिणी में प्रकृतिगत विकार प्रतीत होता था। लक्षणों के अनुसार कैल्केरियाकार्ब चुना गया और २०० क्रम की एक खुराक देकर प्लासीबो चलाई गई। दो सप्ताह में धीरे २ आठ आने भर आराम हो गया। सूजन व दर्द कम हो गये, गर्दन मुड़ने लगी तब २०० क्रम की ही एक खुराक और दी गई। अब दर्द व सूजन बिलकुल चले गये और चारों तरफ वाली गांठें कम होने लगीं कुछ २ बीच की गांठ में भी फर्क पड़ गया। काफी दिन बाद एक खुराक और दी गई और कोई २ महीने में गांठें बिलकुल गायब हो गईं।

मान लीजिये कि वे गांठें चीर फाड़ के बाद निकाल दी जातीं तो क्या होता, प्रकृतिगत रोग तो वहां का वहां ही रहता! यह ग्रन्थियां प्रकृतिगत रोगों का बाहरी प्रदर्शन मात्र हैं और भिन्न २ कारणों से प्रगट होते हैं। इस लिये इनकी चिकित्सा हमेशा होमियोपैथिक मत से प्रकृतिगत लक्षणों के अनुसार ही करनी चाहिये। आपरेशन करके गांठों को निकाल देने से रोग की जड़ नहीं जाती हां शाखें और पत्ते जरूर कट जाते हैं। कुदरत जो चेतावनी देती है उसको काटना नहीं चाहिये बल्कि कारण ढूंढ कर प्रकृतिगत औषध

कर कारण दूर करना चाहिये, जैसाकि इस केस में हुआ जिस से रोग भी दूर हो जाये, पूर्ण स्वास्थ भी प्राप्त हो । इस लड़की को फिर यह रोग नहीं हुआ।

—हील दाई सेल्फ

डा० लक्ष्मीप्रसाद तिवारी, जालौन

ता० १६—६—५२ को मैं अपने औषधालय में बैठा अपने एक साथी से बात कर रहा था कि एक अपरिचित व्यक्ति जो कि काणवा का रहने वाला था मेरे पास घबराया हुआ सामने आ खड़ा हुआ और कहने लगा कि डाक्टर साहब मेरे घर में औरत को कै दस्त बड़े जोरों से लग रहे हैं सिर में पसीना आ रहा है आप चलकर अवश्य देख लीजिएगा तबियत काफी घबड़ा रही है

मैंने साइकिल उठाई और उसके साथ चल दिया और जाकर देखा कि मकान का दर्वाजा बन्द है और काफी आदमियों की भीड़ लगी हुई है। मैंने जाकर फौरन ही दरवाजा खोलने को कहा तथा भीड़ खतम करने को भी कहा ताकि स्वच्छ वायु का आगमन शुरू होवे।

लक्षण :

१. प्यास ज्यादा और फौरन ही कै करना
२. ललाट में ठण्डा पसीना आना
३. दस्त चावल के धोवन की भांति और वेगः
४. हाथ पैर पटकना
५. पेट में असहनीय दर्द
६. ऐंठन
७. नाड़ी क्षीणयुक्त
८. हवा का मांगना

इन सब लक्षणों को नोट कर मैंने फौरन ही क्यूप्रममेट ३० की चार खुराक डिस्टलडवाटर में बना कर दी और १०-१० मिनट बाद लेने को कहा लेकिन आध घन्टे बाद उस में से निम्नलिखित लक्षण गायब हो गए।

१. हाथ पैर का पटकना
२. ऐंठन
३. दस्त में कमी

लेकिन फिर उसके पेट के दर्द ने और उपरोक्त लक्षणों ने उसे परेशान कर दिया मुझे विवश होकर वेरेट्रम एलबम की याद आ गई और मैंने वेरेट्रम की चार खुराक बना कर दीं और यही १०-१० मिनट में दी करीब चारों खुराक खतम होने पर उसके पेट के दर्द में कुछ कमी हुई और विश्वास हुआ कि वैरेट्रम अनुभूत प्रयोग में सिद्ध होना चाहिये मैंने फिर चार खुराक बना कर दीं इस प्रकार रोग में धीरे २ कमी हुई। क्रम से मैंने दवा देने का समय बढ़ा दिया और रोगी धीरे २ ठीक होने लगा किन्तु उसमें एक रोग बाकी था जो कि पेशाब का था अतएव पेशाब के वास्ते कैन्थेरिस ३०, बाहरी उपचार सड़ी मिट्टी का लेप तथा इन्द्रिय पर कपूर की एक छोटी डली को रखने का आदेश किया अतएव २ घण्टे बाद उसे कुछ पेशाब उतरा और मैं यह सब साधन बतला कर चला आया और अब वह मरीज बिल्कुल ही ठीक है।

* * *

होमियोपैथिक जगत्

अमृतसर में होमियोपैथिक अस्पताल

अमृतसर का समाचार है कि गत २६ ता: को स्वास्थ मन्त्री ला० जगत नारायण जी ने नमक मण्डी में "गांधी सेवासदन होमियोपैथिक फ्री अस्पताल" का उद्घाटन किया आपने कहा कि पंजाब में सिविल अस्पतालों में गरीबों की चिकित्सा का समुचित प्रबन्ध नहीं है। होमियोपैथिक चिकित्सा पद्धति बहुत ही सस्ती और कुशल चिकित्सा प्रणाली है। मैं चाहता हूँ कि इस प्रदेश में कुछ होमियोपैथिक अस्पताल खोले जावें। आपने धनीमानी सज्जनों से अपील की कि वे ऐसे अस्पतालों के खोलने में आर्थिक सहायता प्रदान करें जिससे गरीब रोगियों को उचित सहायता पहुँच सके। आपने डा० केदार नाथ जी को अमृतसर के होमियोपैथिक एसोसियेशन की तरफ से से एक स्वर्णपदक प्रदान किया।

गांधी सेवासदन के इस अस्पताल के उद्घाटन के अवसर पर भारत के प्रधान मन्त्री प० जवाहर लाल नेहरू और स्वास्थ मन्त्राणी राजकुमारी अमृतकौर के शुभ संदेश प्राप्त हुए थे।

दिल्ली एसोसियेशन

दिल्ली होमियोपैथिक मैडिकल एसोसियेशन की मासिक बैठक ३१-८-५२ को होमियोपैथिक फ्री डिस्पेन्सरी कूचा ब्रजनाथ में शाम को ५ बजे डा० युद्धवीर सिंह जी के सभापतित्व में हुई। डा० बी० के० मित्रा साहब ने "मूत्र रोगों में क्या पथ्य देना चाहिये ?" इस विषय पर सारगर्भित लेख पढ़ा। आपके व्याख्यान के पश्चात् विचार विनिमय हुआ जिसमें डा० लखनपाल, डा० चौपड़ा, डा० भटनागर, डा० शारदा आदि ने भाग लिया।

डा० लखनपाल ने बताया कि यदि पेशाब रुक जाय और गुर्दों में भी न बन रहा हो तो मक्का के भुट्टों के बालों का काढ़ा पिलाने से पेशाब बनने लगता है और हो जाता है। डा० चौपड़ा सहाब ने बताया कि ऐसा ही खीरे को बिना जहर निकाले कुचल कुचलाकर खिला देने से भी होता है।

डा० शारदा साहब ने बतलाया कि किस खाने की चीज की क्या तासीर है यह जानना बड़ा कठिन है फिर कई चीजों की तासीर में जरा सा बल पड़ने से काफी फर्क पड़ जाता है जैसे खट्टा गोल अंगूर आमतौर से तर गर्म होता है मगर लम्बा मीठा अंगूर शीतल है। आम खट्टा गरम है मगर पतले रस का मीठा शीतल होता है। मूली गर्म होती है। डा० मित्रा साहब ने बताया कि उदरशोथ व सर्वांगिन शोथ में ऊंटनी का दूध बहुत लाभकारी है और केवल वह देकर इन्होंने रोगी अच्छे किये हैं। करेले का पानी भी शोथ में लाभ करता है। डा० युद्धवीरसिंह ने अन्त में कहा कि भोजन के सम्बन्ध में आयुर्वेद ने बहुत खोज की है और आयुर्वेद के ग्रन्थों में खाद्य वस्तुओं के भिन्न २ रूप में भिन्न २ प्रयोग और उनके गुण दिए हैं हमें इस सम्बन्ध में आयुर्वेद के ग्रन्थों का अध्ययन करना चाहिये।

अन्त में श्री डा० खुशीरामजी की ओर से जल-पान द्वारा स्वागत किया गया।

हा ! डा० अग्रवाल

यह समाचार बड़े दुःख के साथ सुना जायगा कि दिल्ली होमियोपैथिक मैडिकल असोसियेशन के मन्त्रा श्री डा० रामाश्रय अग्रवाल जी का केवल ५० वष की उम्र में ३ अक्तूबर को वैलिंगडन हस्पताल में देहांत हो गया। डाक्टर सहाब ३० ता० तक ठीक थे वैसे आपको कुछ पुराना दर्द गुर्दा व पित्तशूल उठा करता था। पहली व दूसरी को आपको वही दर्द उठा अधिक बढ़ जाने पर ३ को सवेरे आपको वैलिंगडन अस्पताल में दाखिल किया गया जहां सब प्रयत्न व्यर्थ गये और रात्रिको ६ बजे आपका देहवसान हो गया।

आप का शव रात को ही सब्जी मण्डी रामरूप डिस्पेंसरी में लाया गया और सवेरे ८॥ बजे निगम बोध घाट पर ले जाया गया। आपके शव के साथ लगभग १००० व्यक्ति थे जिनमें नगर के प्रतिष्ठित गणमान्य सज्जन थे।

५ ता० रविवार को सायंकाल ४ बजे दिल्ली होमियोपैथिक मैडिकल असोसियेशन की एक शोक सभा हुई जिसमें डाक्टर सहाव की मृत्यु पर हार्दिक शोक प्रगट किया गया और उनके संबंधियों के साथ सहानुभूति प्रगट की गइ। आपने दिल्ली ऐसोसिएशन की जो अमूल्य सेवायें की उनकी भूरि २ प्रशंसा की गई।

डाक्टर साहव १५ वर्ष से सब्जी मंडी में रा० ब० रामरूप होमियोपैथिक फ्री डिस्पेन्सरी के इन्चार्ज थे आपके पीछे आप की धर्मपत्नी एक पुत्र और चार पुत्रियां हैं।

An up-to-date House

For

Every Homoeopathic requirement

The National Homoeo. Stores,

FATEHPURI, KATRA BARIYAN, DELHI

Prop. **Dr. KARTAR SINGH**

Biggset Direct Importers of

B. & T's Homoeo. and Biochemic Medicines and Books

&

Manufacturers of Globules

of all sizes and numbers.

ENQUIRIES ARE CORDIALLY INVITED.

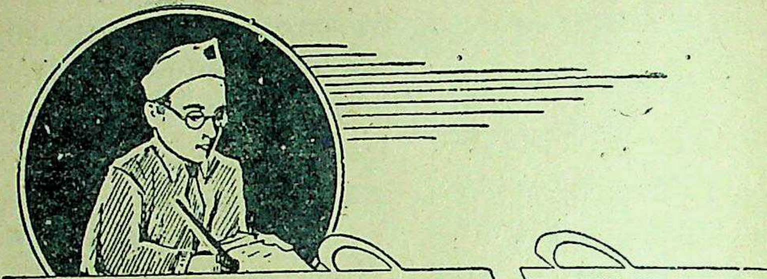

सम्पादकीय विचार

अस्पतालों का कुप्रबन्ध

सरकारी अस्पतालों पर देश के गरीब करदाताओं का करोड़ों रुपया ख़र्च हो रहा है और यह तमाम अस्पताल तथा-कथित माडर्न मैडिसन या एलोपैथिक चिकित्सा प्रणाली के अन्तर्गत चलाये जा रहे है।

हाल ही में कुछ ऐसी प्रमुख घटनायें हो गई हैं कि इनके कुप्रबन्ध की ओर ध्यान आकर्षित हुए बिना नहीं रहता। विशेषतया लखनऊ मैडीकल कालेज में अभी जो विद्यथियों की हड़ताल हुई उसके कारण यह प्रश्न मोटे रूप में सब के सामने आ गया है। उत्तर प्रदेश सरकार के डिप्टी सैक्रेटरी श्री भार्गव के ७ वर्षीय पुत्र की मृत्यु गतवर्ष सितम्बर मास में अस्पताल में हो गई थी उस सम्बन्ध में जांच के बाद चांसलर महोदय ने अस्पताल के दो अधिकारियों को त्याग पत्र देने के लिये कहा इस पर तमाम लड़कों ने हड़ताल कर दी और कहा कि इस प्रकार डाक्टरों को सजा देने से उनकी हिम्मतें पस्त हो जायेंगी और वे अपना कर्त्तव्य पालन न कर सकेंगे।

इस घटना विशेष के सम्बन्ध में क्या तथ्य हैं यह तो हम नहीं जानते मगर हम यह नहीं समझ सके कि किसी डाक्टर सजा देने या न देने में किसी कालेज विद्यार्थियों की क्या ज़िम्मेदारी है उन क्या अधिकार है कि वे हड़ताल करें। ह इसे सर्वथा अनधिकार चेष्टा समझते है

आजकल सरकारी अस्पतालों डाक्टरों के दुर्व्यवहार की इतनी शिक यतें आ रही हैं कि इस सम्बन्ध में क उचित कदम उठाना ही पड़ेगा। सरक से आशा रखनी चाहिये थी मगर हम दे रहे हैं कि स्वास्थ विभाग में डाक्टरों ही बोल बाला है वे एक दूसरे के एबों छिपाते हैं। मेरठ के साप्ताहिक "पंचाय राज" में इसके योग्य सम्पादक श्री विश म्भर सहाय जी प्रेमी ने इस सम्बन्ध अपने जो विचार प्रकट किये हैं उनसे ह अक्षरशः सहमत हैं। पाठकों की जानक के लिये श्री प्रेमी जी का लेख हम नी उद्धृत कर रहे हैं और आशा करते हैं माननीय डाक्टर वर्ग अपने पेशे की प त्रता और महत्व को समझते हुए स चेतेंगे—पैसे के लोभ को छोड़ कर कर्त्त पालन की ओर ध्यान देंगे और अ हृदयों में वैसी ही दया, ममता और स नुभूति भरेंगे जैसी प्रायः ईसाई मिशन अस्पतालों के डाक्टरों में देखने में आती

"सरकारी अस्पतालों का कुप्रबन्ध

"सरकारी अस्पतालों की स्थापना केवल इस भावना को लेकर की गई थी कि जो व्यक्ति गरीबी और असमर्थता के कारण डाक्टर वैद्यों तथा हकीमों से चिकित्सा नहीं करा सकते वे सरकारी अस्पतालों में जाकर चिकित्सा करायें। हमें स्मरण है कि अब से २५—३० वर्ष पूर्व धनी मानी व्यक्ति सरकारी अस्पतालों में चिकित्सा के लिये जाते हुये संकोच अनुभव करते थे और समझतें थे कि वे किसी गरीब के अधिकार का अपहरण करके अपना हित चाहते हैं। धीरे २ यह भावना बदली और गरीबों के साथ २ दूसरे वर्ग के व्यक्ति भी सरकारी अस्पतालों में प्रविष्ठ होगे लगे। इसके पश्चात् अस्पतालों की व्यवस्था में अन्तर पड़ने लगा। डाक्टरों ने प्रभाव शाली, धनी व्यक्तियों की ओर अधिक ध्यान प्रारम्भ कर दिया और साधारण गरीबों को सरसरी तौर पर देखने लगे इसके अतिरिक्त धनी व्यक्तियों ने सरकारी अस्पतालों में कार्य करने वाले कम्पाउन्डरों, नर्सों तथा अन्य कर्मचारियों को भी कुछ देकर उनके उत्तरदायित्व से हटा दिया। जो कर्मचारी समाज सेवा की भावना से सरकारी अस्पतालों में कार्य करते थे, वे केवल वेतन भोगी कर्मचारी बन गये। स्थिति यहां तक बदली कि अस्पतालों के डाक्टर फीस लेकर अपने बंगलों पर उन रोगियों को भी देखने लगे जो अस्पताल में भर्ती होते थे।

सरकार ने (लोकप्रिय कांग्रेसी सरकार ने) इस स्थिति को संभाला या और दूषित किया यह विवादास्पद विषय हो सकता है। परन्तु हम यहां अपने अनुभव से एक घटना का उल्लेख करना आवश्यक समझते हैं। एक वार हमें एक ऐसे शरणार्थी लड़के को सरकारी अस्पताल में भर्ती कराने का अवसर मिला जिसकी एक टांग पेड़ से गिर कर टूट गई थी। वह लड़का लगभग एक मास तक अस्पताल में रहा और उसके उपरांत यह ठीक न होकर मृत्यु को प्राप्त हो गया। जिस समय लड़का अर्थी पर बांधा गया तो उसकी टूटी टांग प्लास्टर के खोखले से बाहर निकल आई। हम लोग आश्चर्य में पड़ गये। इसी प्रकार कितने ही दीन दरिद्र रोगी चीख पुकार करते देखे गये कि उन्हें ठीक प्रकार से दवाई नहीं दी जाती। इस समय तो यह बात तो साधारण हो गई है कि रोगी से कह दिया जाता है

काउन्ट मैटी की
असल
इलैक्ट्रो होमियोपैथिक
दवायें

गोलीयां	छोटी शीशी	१॥)
गोलियां	बड़ी शीशी	३)
बिजलियां	फी शीशी	३॥)
मरहम	फी शीशी	३॥)
अक्वा परला पील	फी शीशी	३॥)
हिन्दी की गाइड		॥)

इटली से आया हुआ ताजा स्टाक
थोक खरीदारों को कमीशन
होमियोपैथिक फ्री डिस्पैंसरी
चाँदनी चौक, दिल्ली—६

कि अस्पताल में अमुक दवाई नहीं है, बाजार से मंगवाने का इन्तजाम करो ।

ऐसी स्थिति में क्या कोई गरीब आदमी इन अस्पतालों से लाभ उठा सकता है ? जहां चिकित्सा में समाज सेवा की भावना आवश्यक थी वहां आज पैसा लेने की प्रवृत्ति जाग उठी है । इस प्रवृत्ति का ही यह फल है कि सरकारी अस्पतालों में पहिले जैसी देखभाल नहीं हो पाती । यदि कोई रोगी अपनी कठिनाइयों को प्रगट करता है तो उसे डरा धमका कर अस्पताल से बाहर कर दिया जाता है । हां जिस समय स्वास्थ मंत्री का निरीक्षण कराते हैं तो सारा कार्य व्यवस्थित ढंग से होता दिखाया जाता है । भले ही उससे पहिले दिन वह आवश्यक औषधियों के स्थान में कोरा पानी ही बोतलों में भरा रक्खा हो ।

असावधानी के सम्बन्ध में किसी डाक्टर के विरुद्ध कुछ कहा जाना कठिन है। परन्तु जब अस्पतालों में मरे व्यक्तियों के सम्बन्ध में जांच पड़ताल होती है उसमें यही पता चलता है कि रोगी की ठीक प्रकार से देख भाल नहीं की गई । हम उत्तर प्रदेश की सरकार से यह आशा करेंगे कि वह इन सरकारी अस्पतालों की व्यवस्था तथा चिकित्सा में सुधार करने का यत्न करे । अस्पतालों में कार्य करने वाले डाक्टरों तथा कम्पाउंडरों को फीस के लालच का शिकार न होने दे । साथ ही जहां जहां सरकारी अस्पताल हों, वहां उन अस्पतालों का निष्पक्ष भाव से विधान सभाओं के सदस्यगण निरीक्षण भी करें और रोगियों से सम्पर्क स्थापित करके उनकी कठिनाइयों को जानने का यत्न करें । अन्यथा सरकारी अस्पतालों का महत्व धीरे धीरे विलुप्त हो जायगा ।

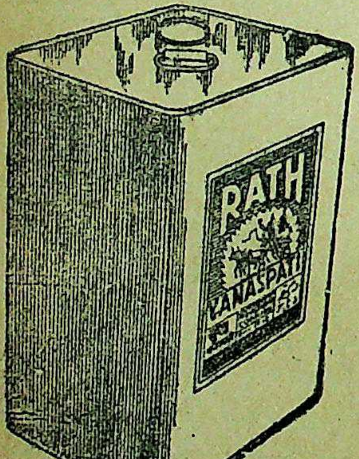

विशुद्ध ! लाभदायक !
सस्ता ! और विटामिन—युक्त

'रथ' छाप याद रखिये । हमेशा यही खरीदिए । यह विशुद्ध शक्तिप्रद वनस्पति डी० सी० एम० के और माल की भांति सदैव उत्तम होता है ।

५ और १० पौंड के टिनों में

रथ
वनस्पती

भोजनालय !
बड़े पैमाने पर इस्तेमाल करने के लिए हम डी० सी० एम० के पनघट व पालकी वनस्पति की ज़ोरदार सिफ़ारिश करते हैं । बड़े टीनों में मिलता है ।

दी डी० सी० एम० वनस्पति मेन्यूफेक्चरिंग वर्क्स, देहली ।

प्रोप्राइटर—दी देहली क्लाथ एन्ड जनरल मिल्स कं० लिमिटेड, देहली

डा० रामाश्रय का निधन

अन्यत्र पाठक डा० रामाश्रय अग्रवाल जी की असमायिक और अचानक मृत्यु का दुखदाई समाचार पढ़ेंगे । डा० अग्रवाल साहब की इस मृत्यु से हमारे एक ऐसे साथी का वियोग हुआ है जिसने पिछले २२ वर्षों में हमारे साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर काम किया था ।

आप की जीवन लीला बीच में ही कट गई आपके एकमात्र पुत्र की अवस्था १७-१८ वर्ष की है । आपके शोकग्रस्त परिवार को सांत्वना देने के लिये हमारे पास शब्द नहीं हैं । हां, इतना अवश्य कह सकते हैं कि उनके इस असह्य दुख में उनके और भी साथी हैं । रामरूप डिस्पेंसरी में डा० साहब के हाथों शफाखाने वाले हजारों रोगी, दिल्ली होमियोपैथिक मेडिकल एसोसियेशन सभा के सभासद एवं कांग्रेस में काम करने वाले डा० साहब के सैंकड़ों साथी आज अत्यन्त दुखित हैं ।

डा० अग्रवाल की उम्र इस समय ५० वर्ष की थी । आप की तालीम कलकत्ते में हुई और वहीं आपने सन् २० में मैट्रिक पास किया और २५ में बी० एच० एम० एस० की डिगी बंगाल एलन होमियोपैथिक कालेज से ली । आप सन् ३० में देहली आ गये । सन् ३२ में जब लेखक जेल गया तो आपने उसकी जगह ८ मास तक सुचारू रूप से काम किया । फिर आप गाजियाबाद में, जहां के आप रहने वाले थे, प्रेक्टिस करने लगे । सन् ३७ में आप रामरूप होमियोपैथिक डिस्पेंसरी सब्जी मण्डी के इनचार्ज नियत हुए और तब से आप मरते दम तक वहीं काम करते रहे । सब्जी मण्डी में हजारों रोगी आप से लाभान्वित हुए ।

आप दिल्ली होमियोपैथिक मेडिकल एसोसियेशन के कई बार मन्त्री रहे । दो साल पूर्व एसोसियेशन की हालत कुछ खराब होने पर आप से सबने मन्त्रीपद सम्भालने की फिर प्रार्थना की । आप ना न कर सके और आजकल आप उसके मन्त्री थे । इन दो वर्षों में एसोसियेशन ने बड़ी उन्नति की । यह आपके ही उत्साह एवं परिश्रम का फल था कि एसोसियेशन ने दिल्ली की प्रसिद्ध नुमायश में तथा कांग्रेस के अवसर पर वहीं होमियोपैथिक डिस्पेंसरी खोली और चलाई । आप का स्वास्थ्य कुछ दिनों से खराब रहने लगा था । कुछ जिगर व गुर्दे में दर्द सा हो जाता था मगर फिर भी आप बराबर काम करते रहते थे । १ अक्टूबर प्रातःकाल तक आप ने बराबर रोगियों को देखा ।

गाजियाबाद में कांग्रेस कमेटी के आप प्रैजीडैन्ट रहे और दिल्ली सब्जी मण्डी की जिला कांग्रेस कमेटी के अब भी उपप्रधान थे । आप सदा खद्दर पहनते और कांग्रेस के काम में अग्रसर रहते १९४२ में थोड़े दिन आप को भी जेल की हवा खानी पड़ी थी । जन सेवा के कामों में आप सदा अग्रसर रहते । सब्जी मण्डी में क्षयरोगियों की सहायक कमेटी के आप मन्त्री थे ।

आप हंसमुख, मिलनसार और उच्च सदाचारी पुरुष थे । कभी क्रोध तो आप

को आता ही न था। किसी काम के लिए आप इन्कार कभी न करते। आप प्रायः गरीब रोगियों को घर मुफ्त जाकर देखते इस ही कारण आप के पास काम अधिक मगर आय कम थी।

आपकी मृत्यु ने होमियोपैथिक जगत के सर्वश्रेष्ठ पुरुष को हम से छीन लिया है। आप दिल्ली एसोसियेशन की तरफ से आल इण्डिया होमियोपैथिक मेडिकल कांफ्रेंस में कई दफा आगरा नागपुर आदि गये। और दिल्ली में भी आल इण्डिया कांफ्रेंस को सफल बनाने में आपका बड़ा हाथ था।

ईश्वर की लीला अपार है। तीन दिन पूर्व हमें ख्याल भी न था कि डा० अग्रवाल न रहेंगे मगर वे आज नहीं हैं। भगवान् सबको सांत्वना दे और उनकी आत्मा को शान्ति। हम पुनः उनके दुखित परिवार के साथ हार्दिक सहानुभूति प्रगट करते हैं।

उत्तम माल की पहचान

लायन ब्रांड

शेर मार्का
५१ सुप्रसिद्ध
किस्में

HARNARAIN GOPINATH
DELHI & NEW DELHI

हरनारायण गोपीनाथ
खारी बावली, देहली (१८६० से देश की सेवा में) क्नाट प्लेस, नई देहली

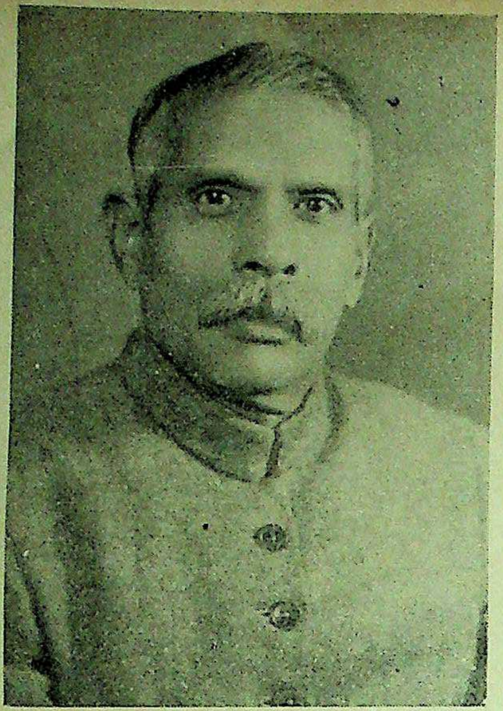

डा० रामाश्रय अग्रवाल बी० एच० एम० एस० इनचार्ज रामरूप होमियोपैथिक डिस्पेन्सरी सब्जी मण्डी-मन्त्री, दिल्ली होमियोपैथिक मैडिकल ऐसो-सिएशन, उपप्रधान, जिला कांग्रेस कमेटी सब्जी-

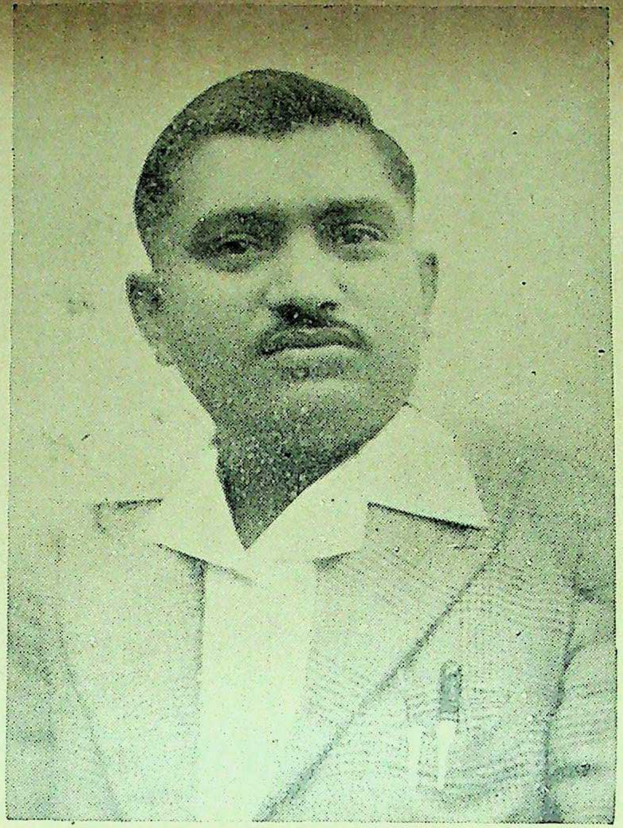

डा० शिवनाथ सिंह जी होमियोपैथ
जयनगर (दरभंगा)

आप जयनगर के लोकप्रिय चिकित्सक हैं आपका एक लेख इसी अंक में अन्यत्र प्रकाशित

THE
HOMOEOPATHIC SANDESH

Editor-in-Chief Dr.— Yudh Vir Singh.

Vol. V No. 1] DELHI [September, 1952.

NOTES & NEWS

Ourselves

With this issue the Homoeopathic Sandesh enters its fifth year. We take this opportunity to thank our readers, subscribers and patrons. We are doubly indebted to our contributors who are contributing regularly to these columns without any remuneration whatsoever.

The fifth year of our existence was a year of trial for us. Our deficit was heavy and we were rather loosing heart that on our issuing an appeal in these columns our many friends were stirred and they came forward to help us. One of our subscribers wrote to us to send him 3 copies of Sandesh every month and charge for them from him. One friend sent his annual subscription Rs. 7/— instead of Rs. 5/— others helped by enrolling subscribres from among their friends.

Thus the 5th year begins with a ray of hope and we while assuring our best services hope that our patrons will not relax their efforts and will help us by recommending the jourual to their friends.

Sometime back we had announced that those of our subscribers who wanted only Hindi Section would get it for Rs 4/- P.A. & those who wanted only English Section would have to pay Rs 1/- P.A. only. We are sorry to withdraw that concession & beg to announce that from September 1952 the Hindi & English Sections will not be issued seperately and subscribers will have to subscribe the Sandesh as one for Rs 5/- P.A

We shall fail in our duty if we do not heartily thank our advertisers through whose kindness alone we had been able to pull on till now. Their continued patronage is solicited.

Wonder drug for Cancer

The following is a news item from Daily Express :

"BUENOS AIRES, Sept. 18.—A rare South American plant used by South American headhunters to shrink human beads is claimed as the latest wonder drug for the cure of cancer. The plant is the *Tzana.*

It was accidentally discovered by the American born Dr Wilburn Ferguson. He claims it will cure formerly hopeless cancer cases. He spent five years in little known parts of Ecuador with wild tribes before completing his research. His discoveries were made accidentally while conducting experiments with cinchona quinine as a cure for malaria.

Dr. Ferguson has just left Ecuador for the U. S. A. The New York Memorial Hospital has invited him to demonstrate the new cure there."

God knows what will come out of these wonder-drugs ultimately. Sulphadrugs are already loosing their popularity and these "myceins" are also now being looked with suspicion.

Homoeopathy has no wonder-drug for cancer but cancer cases are reported to be cured by the indicated Homœopathic remedies. We would urge upon allopaths as well as our Homœopathic brethern to try these remedies on this formidable enemy of mankind which is responsible for so much mischief and misery to human kind.

Caste In Medicine

"Sir,—At a meeting of District Medical Officers of Madras recently Mr Raja gopalachari reiterated the common origin, basic unity and universality of the different systems of medicine and deprecated the perpetuation of prevailing-compartmentalism about them. He expressed similar views at a gathering of Ayurvedic doctors of Calcutta four years ago. In the context of existing medical profession of India only prophetic and bold leaders like Mr Rajagopalachari can do such plain-speaking. Our governments, especially the central Government, should seriously consider his views.

On the basis of this unity of the medical systems, national leaders like Mahatma Gandhi, Hakim Ajmal Khan, Swami Shraddhananda, Pt. Madan Mohan Malaviya and others founded some Ayurvedic and Unani medical colleges in India. Disregarding all official and orthodox opposition based on ignorance, prejudice and selfishness, these colleges included all the useful aspects of ancient and modern medical knowledge as compulsory parts of their courses. It was hoped that in independent India such colleges and their graduates would receive spontaneous recognition and sufficient encouragement from the Government. But in spite of the recommendations of so many provincial and Central Government inquiry committees and the unanimous resolution of the third All-India Health Ministers' Conference (Sept. 1950), nothing has been done to nationalize and standardize such mixed medical education or to give its graduates their due status and rights. Discrimination continued in British days. The national Government should not discourage the spirit of synthesis and liberalism in medicine in this manner and should redress the long standing grievances of qualified medical men, mostly serving the countryside.

To plan the future of medicine in India, keeping in view the advice of Mr Rajagopalachari, I suggest for the consideration of the Government the establishment of a national medical council, with adequate representation of Ayurvedic, Unani and Homoeopathic doctors. It should fix standards of compulsory and uniform basic medical education and enforce it in every kind of medical college. The Ayurvedic Unani and Homœopathic parts of the curricula of the mixed medical colleges should be entrusted to its special committees. Medical colleges of any kind unapproved by this council, should be banned. Secondly; There should be a single All-India Medical Register on the lines of the Travancore Medical Practitioners Act. There is no other way of permanently ending the medical caste-system.—Yours etc."

This is a letter to the Editor Hindustan Times published this very month. We whole heartedly support the views expressed by Shri Bhadra Sain. It is high time to shake off the caste mentality in medicine and specially the superiority complex among the socalled medical practitioners modern medicine. The soul aim of the physician is and should be to restore the sick to health rationally, rapidly, gently and permanently in the shortest, most reliable and most harmless way and no prejudice and no complex should stand in our way in effecting this desired cure of the sick. As we have advised our allopathic brethern to shake of the superiority complex we advise Homœopaths and other medical practitioners to shake off the inferiority complex

Negligence Of Duty

Dhanbad, Sept. 27.—Officials at a hospital for coal-miners in Dhanbad have been reprimanded, for negligence of duty following the death of a miner's wife who, though in a precarious condition, was reported to have been refused admission.

The woman who was with child was taken to the hospital on Tuesday needing an immediate operation in view of complications which had developed.

The officer-in-charge is alleged to have refused her admission since she had no papers to prove her *bona fides* as a dependant of a miner, for whose use the hospital was intended. The patient was later removed to another hospital where both she and the child died on Wednesday night.

The surgeon superintendent of the Central Hospital said yesterday it was unfortunate that the patient had been refused admission. Although the provision of medical aid was rigidly restricted to coal-miners, there was no bar to first aid being rendered to an emergency case, he added.

Action Against Hospital Staff

Calcutta Sept. 21.—The principal of the R. G. Kar Medical College yesterday promised to take disciplinary action against those responsible for the tragic incident of last night when a 13 year old boy with severe injuries was turned away from the emergency ward of the hospital.

The boy, who had fallen from the verandah of a house in North Calcutta was rushed to the hospital by ambulance, but the ambulance driver had been told that there was no doctor on duty and advised to take the boy to another hospital. The boy died on the stretcher.

The Principal said the doctors on emergency duty were not at their posts. A thorough investigation was being made—P.T.I.

Homœopathic Hospital at Amritsar

Amritsar, Sept. 26.—Sri Jagat Narain, Health Minister, Punjab said yesterday that homœopathy should be brought to a certain standard because it was the "cheapest and efficient system of treatment."

The Health Minister, who was inaugurating a branch of the Gandhi Seva Sadan Homœo Free Hospital in Nimak mandi here, said that arrangements for free supply of medicines to the poor patients in the civil hospitals in the State were not adequate. In view of this, he said, he was on the lookout for finding means to open at least a few homœopathic hospitals in the State.

He appealed to the public to contribute their mite for such humanitarian works to mitigate the sufferings of the down-trodden.

Messages wishing the new institution success were received from Prime Minister Nehru and Union Health Minister Rajkumari Amrit Kaur.

Quackery and Homœopathy

Last month the following note was published in the Hindustan Times from its Staff correspondence. Dr. R. S. Rastogi of Dehra Dun sent a reply to that note which too we are going below:

Quackery Thrives in the Capital

"I was awaiting my turn at the clinic which is usually crowded and is more so now that the rainy season is on. Now it was a case of 'flu and then a severe attack of malaria, and so on. Presently a patient with a bandage in his leg went limping in and came out after some time. When my turn came, the doctor who looked exhausted after a heavy morning smiled and asked me if I had noticed the patient who had preceded me. There was a story.

The patient had developed something like a small boil. He was a supporter of homoeopathy and so went to his doctor. He took some doses but they did not give any relief. In the meanwhile, the boil began to swell giving him no sleep. Then the doctor performed an "operation" which made things worse as the patient appeared to have developed septic symptoms. Then he thought of approaching a well-known doctor and there he came.

And here was food for thought. Do homoeopaths indulge in surgery also? Do they do things that only allopaths have been trained to do? These and a host of other questions were answered in the affirmative by the doctor. The doctor said not only did homoeopaths practise quack surgery but they gave the impression to gullible patients that they were allopaths who were completely qualified. Their signboards contained a jumble of alphabets which might mean everything and also nothing. Cases had not been wanting where injections given in wrong spots had affected the veins and nearly paralysed some limb or the other. This was one aspect of the darker side of the profession of quackery.

Another more menacing thing is the appearance of a number of women who have styled themselves as some kind of specialist or the other. I was told by a doctor that a particular "doctor had been classified as "practitioner of modern medicine" in the previous telephone directory and she appears under "hakims and vaids" in the current directory. Then there are persons whose academic qualification is "B. A." and who practise in some branch of the medical profession or the other.

There appears to be no doubt that in the noble profession of medical aid to the suffering humanity a good number of quacks are making money out of a bad situation. The number of charitable dispensaries in Delhi is very small and where it happens to be a municipal dispensary the patient would prefer to take to naturopathy rather than take the acqua content given there. The municipal doctors are not to blame but the municipality which does not sanction adequate funds for stocking the dispensaries with medicine. Thus it appears the municipal dispensary will be in a position to stop a headache or give a purgative but nothing more serious than this.

A practitioner of modern medicine who has a clientele far beyond his physical capacity to cope with told me that in the last 10 years he had noticed a change for the better. Quite a large number of lower middle class people resort to the private practitioner and pay his fees in instalments as they have learnt by experience that in Delhi there is nothing like good public dispensaries. It is thus that doctors, if they happen to be conscientious, get a good fare. Such being the case, is it fair that quacks are allowed to play with the precious lives of ailing patients?"

The other day when I was travelling in a bus there was an interesting conversation on a good thing that the Delhi Municipality had started doing. After I listened for a while I learnt that they were talking about the child welfare centres which had started giving advice to mothers in family planning. The municipal director of health had asked for a grant of Rs. 500 and odd which was to be ploughed back again and again for purchasing some materials to be distributed at cost price. A doctor who had joined in the conversation was expatiating to two of his friends as to how this was a great departure from the past. He said there was awakening among middle class people generally and also among the workers, many of whom were educated enough to know the advantages of family planning. "Thank Nehru for having given the subject a decent name—family planning The other word was crude and harsh," the doctor said and narrated an incident which was rather moving. A working woman went to a doctor and asked for advice. The doctor gave her some sound advice and tried to persuade her against a different course. The woman, however, was not persuaded and after approoching a bigger doctor ultimately went to a near-quack. Hardly had she been put on the operation table than she collapsed. "What does this show," the doctor asked and replied himself: "It only shows how necessary it is for Government to encourage municipalities and such other agencies to open centres where sound and genuine advice will be given".

While on this subject, it will not be out of place to mention the alarming increase in the number of "specialists". If you went to a place like Chandni Chowk you will be surprised to see huge signboards screaming advice on family planning. And most often the "specialist" turns out to be a racketeer in human misery.

A *hakim* who has a big reputation for his skill and knowledge in his branch of medical science told me that *hakim* and *vaids* had descended to such low levels of practice that the name of the profession was in mud. Scandalous and outrageous advertisements were painted on walls and hoardings by them without any regard to the dignity and the fair name of the profession.

One thing is obvious and that is there is a clear need for the Government to make a survey of medical practitioners in the Capital. As a medical practitioner put it, the medical profession itself will welcome it. If needs be, the survey may be entrusted to a committee consisting of reputed practitioners of allopathy and *ayurveda* and all practitioners compelled to take out certificates for practising the respective branches of medicine. There could be no objection to this as every other profession has to take out some form of licence or certificate from some recognized agency for practice."

Dr. Rustogi's Letter to H.T.

"Sir,

With reference to the article "QUACKERY THRIVES IN THE CAPITAL" by a staff correspondent, published in the Hindustan Times dated August 22, 1952, I respectfully submit that the article contains statements which appear unfair and biassed to any dispassionate reader. The correspondent has been too harsh upon homœopaths and has drawn unwarranted conclusions. "Do homœopaths indulge in surgery also which only allopaths have been trained to do ?", he muses. I may be permitted to affirm that surgery is not the exclusive domain of allopathy, but that it is taught in homœopathic medical colleges too, especially minor surgery to which he is referring. The case referred to by him may have been spoiled by the patient's own negligence. For the matter of that many allopaths handle cases which they are not practised to handle or which should, strictly speaking, be referred to specialists, and they spoil them. They are too frequently administering Penecillin injudiciously with out a proper blood examination to cases in which a blood examination would positively contra-indicate its use. Of course, quackery must be checked and eliminated, but no particular paths need be made a target of uncalled for criticism. That the correspondent is definitely prejudiced against homœopathy will appear from the fact that he recommends a survey of medical practitioners by the Government through a committee of reputed practitioners of allopathy and *ayurveda*. The omission of homœopathy here is not without significance."

We completely agree with Dr. Rastogi. Infact more cases are spoiled by Allopaths than by Homœopaths. The Homœopaths frequently get cases spoiled by Allopathy—by over medication, by Quinine drugging, by unnecessary surgical interference. The note of Hindustan Times is not only prejudiced but seems to be inspired, we do not know who is the writer of this note; but we will request the Hon'ble Editor of this respectable paper that neither it had been the policy of this paper nor it seems to be dignified for such a respectable paper to condcscend to such condemnation of poor Homœopaths. We know for certain the Managing Editor of Hindustan Times Shri Dev Das Gandhi is a believer in Homœopathy and other senior members of the staff are not averse to it and we hope that this kind of prejudiced propaganda will not be repeated.

Quackery is after all quackery and we too condemn it but *bonafide* mistakes may occur everywhere. We will like to draw the attention of the learned staff correspondent to the Lucknow Medical College scandal where the senior Surgeons' carelessness resulted in the death of a seven year child. Sometime back a student of a Medical College was operated for Tonsils, in the College Hospital and she died of asphyxiation as some cork etc , were by mistake not removed from her mouth and they choked her to death.

Numerous instances can be quoted where a doctor's needle caused septic abcess, but of course, such instances can not be exploited to condemn a seetion of practitioners.

Meerut Association.

A meeting of the General Body of the above Association was held on Saturday, the 23rd August, 1952, under the Presidentship of Dr. J. M. Choudhri, at his Kothi, Chippi Tank, Meerut from 8 P.M. to congratulate the Honorary President on his nomination to the U P. Homœopathic Registration Board by the Government of Uttar Pradesh. He was garlanded by Dr. Bir Pal Singh (General Secretary) on behalf of the Association. Dr. R. S. Saxena recited a poem in praise of the President. After this Dr. Shankar Lal Singal, Joint Secretary delivered a speech. Dr. Bir Pal Singh (General Secretary narrated briefly the History of the Association from its very start and the services rendered by it in propagating the Homœopathic Science for the last 15 years throughout the District as well as in the neighbouring cities, and paid his tributes to Late Rai Sahib Dr. Jai Ram Sharma, the first President of the Association and Dr. Kanti Prasad Varma, who from the very start served the Association as Secretary and Dr. J. M. Choudhri under whose Presidentship for the last ten years, the Association has gained as such reputation and popularity. Really the services rendered by our worthy President in popularising Homeœopathy in the whole Division are worth emulating and will ever be remembered by the Homœopaths of Meerut.

After light refreshment the meeting ended,

Delhi State Medical and Health Reorganisation Enquiry Committee

The Delhi State Government is pleased to appoint a Committee to be known as the Delhi State Medical and Health Reorganization Enquiry Committee with Dr. M.D.D. Gilder as its Chairman and the following members:—

1. Dr. S. C. Sen, Secretary, Indian Medical Association, 1, Barakhamba Road, New Delhi. In his absence Dr. Ved Prakash, Secretary, Delhi Medical Association, will officiate.
2. Dr. S. N. Mitter, Hony. Opthalmologist, Irwin Hospital, New Delhi, Member D.M.A.
3. Dr. Jirad, Bombay.
4. Dr. A. P. Mittra, Hony., Joint Secretary, Indian Medical Association, 26, Curzon Road, New Delhi.
5. Major M.S. Chadha, Deputy Director, Health Services, Delhi.
6. Dr. Yudhvir Singh, M.L.A.,
7. Shri K.K. Sharma, Secretary (Medical and Health), Delhi State, Delhi.
8. Shri Raj Kumar, Under Secretary, Ministry of Finance.

Major M.S. Chadha shall be the Secretary of the Delhi State Committee.

2. The terms of reference of the Committee are:

(1) To make a survey of the existing medical and health facilities in the State of Delhi and to make recommendations for their reorganization and improvement, consistent with the resources of the State and the need to ensure the maximum return for the money spent;

(2) To review the working of the medical and health organization of Delhi State and to suggest measures for the better integration and co-ordination of all the curative and preventive facilities available;

(3) To make proposals for the standardization of service rules and conditions in respect of the State Medical and Nursing cadres;

(4) To prepare an outline of a contributory Health Insurance Scheme for the public of Delhi; and

(5) To suggest a plan (both short-term and long-term) for weaving State, Municipal, Insurance, Charity and private medical and health facilities into a network of relationships so as to ensure that there is no duplication, overlapping or over-stepping and each person can derive the full benefits of modern medicine in respect of prevention diognosis and treatment.

3. Tne terms of reference have been framed in general terms in order to extend the fullest possible freedomf to the Committee in its treatment o the subject matter of its euquiry.

4. The Committee will have power to co-opt persons who are not members of the Committee but whose special knowledge of a particular subjeot will be of value.

5. The results of the Committee's enquiry should, as far as possible, be made available to the Delhi State Government within a space of three months.

The Committee has started work, the first meeting was held on the 28th September when preliminarles were disccssed.

CLINICAL CASES

From Dr. B. K. Mittra's Diary.

Karol Bagh, Delhi.

Ozæna—May, 1926. Ram Swarup Singh, a middle aged man, Thakur by caste, Alum Ganj, Agra, was an outdoor patient in Thompson Hospital Agra.

He had been suffering for a long time from syphilitic ulceration of nose with severe attacks of intolerable pain occasionally and profuse flow of thick tenacions mucus and blood. The most prominent symptom was carcass like putrid odor in the whole house not to mention the room occupied by the patient. The smell was nauseating.

I gave him a dose of KALI-BICHROME 200 and after washing his nose with Boro-Calendula lotion, inserted a few drops of strong NEEM-OIL into his nostrils and waited for the result.

Soon after black faced white worms about an inch long began to drop out of the nose one by one and nearly 200 of such worms were passed by the patient in 24 hours and the patient was relieved totally of his pain and putrid odor.

Kali Bich 200, one dose daily was repeated for four days and some Placebo Powder given. The patient discharged after 12 days with a dose of Syphillinum 200 and an ounce phial of phytum for daily use.

Curbuncle—Mr. S. C. Mittra, aged 24 in July, 1915, Agra (at present he is Water Works Engineer, Allahabad).

He had an open ulcer between his left shoulder blade and neck which was about 4″ (inches) in diameter. The ulcer had hard edges and was porous and every time the bandage was removed, yellowish thick pus came out of it. There was much pain and burning sensation time to time, the temperature of the patient went upto 102°. He was weak and hopeless about cure. His father had died a few years before with the same disease and Mr. Mittra's case was causing great anxiety to all the members of his family. He had been under Allopathic treatment for two months. The abcess was incised twice and dressing and fomentation was going on regularly. Hot fomentation relieved him greatly of his pain and burning sensation.

I administered him a dose of Ars. Alb. 200 which, within 24 hours relieved him of much of pain and burning, and signs of improvement appeared. After three days, Silicea 12x, 2 Powders daily were given and this healed rapidly the abcess in a fortnight. During this period, dressing with NEEM GHEE was done and I found very satisfactory results.

Carbuncle—Pandit Rajnath Kalla's old father aged 75, retired Station Master, Phulloti Bazar, Agra, May, 1916.

This thin, tall, fair person, had a muscular body in his early age, but diabetes over a period of 20 years had broken up his constitution. His urine indicated 3% of sugar and insuline injections were given under Allopathic treatment. He had a big open deep ulcer, 6″ (inches) in diameter, just in the centre of his spine slightly to the left side. The open ulcer was like a Beehive, *i. e.*, porous throughout. There was profuse oozing of thick tenecious yellowish pus and thin blood. It had rigid edges and there was swelling all over the back, with pain and burning occasionally. The patient was very weak, he could hardly move. There was intense thirst for cold water in large quantities and profuse urination day and night. Heat was unbearable to the patient and always wanted to be fanned.

He had been under Allopathic treatment for nearly 2 months and had been the target of Surgeon's knife several times. On finding no relief, lastly the case was entrusted to a *Jarrah* (a desi surgeon). The method of his treatment was very painful and annoying to the patient.

The case was a hopeless one when it came to me. But thanks to the *Law of Similars*, and Dr Herring for his boon, the patient was saved miraculously.

I gave him a dose of *Lachesis* 200 B.T., and some placebo powder every three hours for the whole day and dressed the abcess with NEEM OIL a preparation of my own.

The next morning I was astonished to see the result. The patient slept the whole night. He was disturbed by the urge to urinate three times only as against 5 to 6 times every night. There was no pain or burning sensation. On his bandage being opened the whole sticky pus came out with the bandage leaving a red and clean surface, The indurated margins became flat and the diameter of the abcess was reduced to 4″ (inches).

The old gentleman came round in three weeks time. Two doses of Lachesis 200 and three doses of Silicia 200 given during the whole period. After the healing up of the Curbuncle, Syzigium Q. 5 drops doses, three times a day, was prescribed for the diabetes and was found very efficacious. The patient lived for five years more and died at the age of 81 of pneumonia.

Neem Oil—By putting pulp of bitter *neem* leaves in the best available sweet oil (*Til ka Tel*) and boiling on a fire. (Proportion 2 to 3 parts of pulp and 4 parts of oil). Lastly strain through a course linen. It will turn green or greenish colour on cooling. My label was as "Dr. Mittra's Surgical Dressing Oil", which I used extensively with great success in all sort of diseases of the skin throughout my practice. It is highly antiseptic, germicide and anodyne, as well as safe and non-corrosive.

(*To be continued*)

Homoeopathic College & Hospital Simla
American Correspondence Course both for Laity & Practitioners.
Diplomas Granted. Prospectus As. 4 Dr. K. C. HITESHI
M.D. L.M.E.H. (Lond.) (*Principal*).

Hiteshi Homoeopathic Hall Simla
Homœo. Med. 2 drs. As. 4., 1 lb. Rs. 3-8 upto 30.
Biochemic Trit. 1 oz. As. 12.. 1 lb. Rs. 6 upto 12
English, Hindi & Urdu Books etc.

Himalaya Herbs Depot, Jama Masjid, Simla
Stockists & Exporters of Himalaya Crude Drugs, Herbs, Musk,
• Honey and Black Beer's Fat.

Homoeopathy's Dynamic Role in the Conquest of Disease

Dr. R. S. Rastogi. B.A., M.D H ,

President, Dist. Homœo. Association, Dehra Dun.

We have assembled here this evening to pay homage to the memory of a great man, a great thinker, a great philosopher, a great medical scientist, Dr. Samuel Hahnemann of Germany, the discoverer of the Homoeopathic system of treatment. Great indeed is the debt the humanity owes to that great personage, though till now we are not fully cognisant of it. The worth of the discoverers and propounders of new ideas is often realised with the lapse of more and more time when the ideas have been properly understood and tested. In their own life time they are often treated as whimsical and outcasts fit only for ridicule, contempt, persecution and perhaps execution.

Homoeopathy was discovered in its present form by Samuel Hahnemann about 150 years ago, but has yet to be discovered by the sick humanity and by the prejudiced medical scientists to enable it to play its due role in reconstructing the health of the peoples and nations of the world.

The problem of medical aid to the poverty stricken millions inhabiting this vast sub-continent of India and other parts of the world has since long been engaging the attention of social workers and thinkers. Can the so-called "Scientific" system of medicine, with its prohibitive cost of diagnostic methods by examinations of blood, stool, urine, sputa and x'rays etc., and a still more expensive treatment, furnish the solution of this gigantic problem for decades to come? How long shall prejudice against new ideas so inherent in human nature, coupled with an anti-propaganda carried on by vested interests continue to obscure-vision in relation to Homoeopathy which alone can furnish the answer to this colossal problem ?

Homoeopathy has been dubbed as quackery and as being unscientific. One need not be surprised at it. Civilisation's friend, philosopher and guide, the grand old Bernard Shaw said: "Where there is no ventilation, fresh air is considered unwholesome; where there is no religion, hypocrisy becomes good taste; where there is no knowledge, ignorance calls itself science!" When Galileo first declared before the scientific world that it was the earth which moved round the sun and not vice versa, he was considered to be a heretic, and was persecuted, exiled and even burnt alive. The discoverer of Homoeopathy, Samuel Hahnemann too suffered exile and to had seek shelter in a foreign land, but he was a bit more lucky in as much as he could secure a following in his own life time. To-day Homoeopathy is recognised as a scientific art of healing practically all over the world. Its pioneers have been old school (allopathic) medical men who investigated honestly and were converted. Its great stronghold is in U.S.A. where there are numerous high grade medical colleges and hospitals catering to the requirement in Homoeopathic education and treatment. Lately England too has accorded official recognition to Homoeopathy by enacting the necessary legislation. On the list of physicians to the Royal family of England has been the eminent homoeopath Sir John Weir for quite a number of years.

In India where old prejudices perhaps die harder than in most other countries, there has been great opposition to the Homoeopathic system of

---

Speech delivered on Hahnemann's Brithday, April 10, 1952, at a public meeting held under the auspices of The Dist. Homoeo. Association, Dehra Dun.

treatment. There has been a persistent and organised opposition from the old school medical practitioners who have always anticipated great injury to their vested interests as Homoeopathic treatment is very cheap besides being very rational, scientific and easy to understand and apply. The heads of the medical and health departments in the governments in various states are allopaths, and on account of traditional prejudices they have been quite unsympathetic so far as State recognition of Homoeopathy has been concerned. The common man's apathy towards Homoeopathy has been due to the fact that it involves a considerable modification of the existing ideas about disease and its treatment. Naturally there has been more confidence in the Ayurvedic system of treatment which is more than 3500 years old, or in the Allopathic treatment which is about 2300 years old and which, in addition, has been state patronised under the British rule and even after that. Homoeopathy is only about 150 years old. But in spite of the strong current of prejudices and opposition, homoeopathy has made headway in its sacred task of alleviating human suffering.

As there still exists lot of misconception about Homoeopathy, it may not be out of place to present a brief exposition of its principles and the way it works. Homoeopathy is only a new method of treatment and it has no opposition with the other branches of medical science. Anatomy, Physiology, Pathology, Surgery, Public Health and Hygeine are basic or essential subjects which are and should be taught in Homoeopathic Medical Colleges. It is only as regards the outlook on disease, its causation and treatment that Homoeopathy strikes a different note.

To understand DISEASE it is necessary to understand HEALTH first. The human machine is an *automatically functioning machine.* "In the healthy condition of man", says Hahnemann, "the spiritual VITAL FORCE, the dynamis that animates the material body, rules with unbounded sway and retains all the parts of the organism in admirable harmonious vital operation, as regards both sensations and functions, so that our indwelling, reason-gifted mind can freely employ this living healthy instrument for the higher purposes of existence." *Thus, health is the state in which the automatic functioning of the human machinery, its parts, organs, endocrine glands etc. is carried on by the Vital Force in perfect harmony and peace so as to ensure the maximum physical, mental and spiritual effieisncy.* The state of health is characterised by a feeling of comfort and ease, by the absence of any morbid sensations, even a consciousness of our various organs.

The VITAL FORCE is the Divine Spark of life or vital energy which is present from the very inception of life, bringing about growth and development in the mother's womb and after that throughout the rest of life till it is extinguished at death. It is the power house that supplies the impetus of growth for the whole economy, the whole individual.

Now what is DISEASE? It is a state of dis-ease, a state in which the normal poise of the healthy state has been *disturbed by the impact on the Vital Energy of some force inimical to health*, resulting in a deranged functioning of the Vital Energy, on account of which man begins to feel morbid, painful sensations. In fact, these morbid and painful symptoms and sensations are *the earliest and the only indications* which the Vital Force gives to the individual about the invasion of its harmony, and if the dis-ease cannot be removed at this earliest stage, *then follow the other [consequences of the* *disordered functioning of the Vital Energy*, viz. disturbances in the functions of the organs and the endocrine glands, the various structural and tissue changes, the alterations in the normal nature of the blood, discharges and excreta, and the presence of various germs; worms, parasites etc. Now, it is at this stage that the old school physicians, the allopaths, recognise the advent of disease in the human body, which is quite natural in consonance with their *materialistic conception* of disease and the purely physical and objective methods of investigation, diagnosis and treatment. In fact these very conditions are considered by them to be the causes of diseases to which they direct the treatment. But, does it conform to reason and logic ? The cause is always prior to the effects. We have already seen that these pathological changes come about sometime after the man has been actually sick as evinced by the subjective symptoms and sensations, and so they cannot be the real causes of that previously existing sickness. *In fact the cause of disease is as subtle, dynamic and invisible as the Vital Energy itself.* It is not a material entity which can be seen, touched, or handled physically, but it is *a morbific influence or force belonging to the realm of dynamic energy* which disturbs and perverts the healthy normal functioning of the Vital Energy, giving rise to morbid sensations and subjective symptoms first, and the germs worms, pathological changes and objective symptoms afterwards. If it were not so, how could sickness result from emotional causes e.g. from a fit of anger, or from the shock due to the death of some dear friend or relation ? The only way in which the cause of disease can be discerned is by means of *the signs and symptoms it produces.* The test-tube, the microscope and the most sensitive scientific instruments have failed to demonstrate the mysterious way in which the chain of life is maintained within us, and likewise the cause of disease and the mysterious way in which it operates are beyond the ken of the senses or the scientific instruments which can only examine *the resultant effects* of disease, wrongly considered by the old school of medicine to be the causes of disease. It is common experience, especially in chronic diseases to find the laboratory reports negative in cases with plenty of signs and symptoms and a history running into several pages. And now it will be easily understood and appreciated *how early homoeopathy can diagnose and trear disease* by properly assessing and acting upon the earliest symptomatic indications, often averting subsequent pathological and other developments.

Now as regards TREATMENT. Samuel Hahnemann, originally a highly qualified and learned medical scientist of the allopathic school, became deeply conscious of the aforesaid unphilosophical approach of the Old School of Medicine to the nature and causation of disease, and of the equally unsatisfactory and crude methods of treatment. Having become disgusted with vague, untenable and everyday changing theories and hypotheses, and purely speculative and lawlessly empirical methods of treatment, he set about thinking if in the realm of medicine also there were some natural laws which could guide with a reasonable certainty in the treatment of sickness. His persistent quest and investigations led him to the discovery of the famous LAW OF SIMILARS *according to which a drug can cure in the sick such symptoms as it has the power to produce in the healthy persons*, provided it is administered in sufficiently small and potentised doses. This is a law of nature as true, universal and immutable as the Law of Gravity, and it has stood the test for over a hundred and fifty years. This is the solid rock on which Homoeopathy stands, firm and secure, and unshaken by millions of medical tempests and blasts which have blown a way theories after theories and hypotheses after hypotheses. Besides the Law of Similars, there are certain other natural laws to guide the homoeopathic prescriber of which we cannot take note in a general discussion like the present one. But all this is enough to show how homoeopathy emancipates us from the lawless empiricism of the old school and offers *a system of treatment based on definite precise and well-tested principles.* Just as an apple detached from the tree falls to the ground and does not fly off in any other direction, so the similar remedy must bring about a cure *if a cure is possible.* If the homoeopathic treatment is applied at too advanced a stage when the vitality of the patient has gone down too low to respond to the indicated remedy, or if the disease has advanced so far that an organ has become altogether useless and unable to carry on its natural functions, homoeopathy cannot be blamed for failure in the treatment. Even in *incurable conditions* where palliation of suffering is all that can possibly be done, Homoeopathy will bring the speediest possible relief, giving quicker and longer lasting results than Morphia Aspirin etc., without any injurious after-effects.

The drug so selected according to the natural laws is administered singly in a dynamised or potentised form in the smallest possible and in frequent doses. Here again we have to bow down in reverence before the mighty genius of Hahnemann for giving us the method of graduated potentisation of drugs, i.e. a method of releasing the dynamic forces residing in drugs according to a graduated scale of decimal or centesimal measurement. This enables the physician not only to adjust the power of the remedy to the depth and chronicity of the affection or the plane of the disease, but also to increase the potency of the remedy when after some time the patient gets habituated to a particular potency, so that the patient can be kept udder the influence of the remedy over a long period till the disease is effectively extinguished. Hahnemann reduced the dosage of remedies to such minimum limits that even the most lethal poisons were deprived of all harmful effects and were able to develop the maximum curative properties in the gentlest yet most potent form.

The *dynamic forces* released from the Homoeopathic remedy arouse the Vital reaction of the patient and enable the Vital Energy to conquer and extinguish the disease force, *thereby restoring the normal functioning of the Vital Force gently, safely effecetively, permanently in its whole extent in the shortest possible time and on easily comprehensible principles*, This is Hahnemann's definition of a CURE which is being abundantly demonstrated by his followers every day in every part of the world.

Homœopathy thus treats the patient and not the disease. When the patient is restored to health, then all his ailments are, as a necessary implication, cured and abnormalities removed. It is only recently that the medical science has started taking note of the mind as a causative factor in physical ailments. Hahnemann had announced this to the medical world more than a hundred and fifty years ago, declaring emphatically that all disease affects the mind first and the body and the organs afterwards He gave the highest importance to *mental symptoms* in the selection of the remedy. While the orthodox medicine looks as a helpless spectator in the cases of most of the mental and nervous ills, Homœopathy is able to treat them effectively.

As Dr. H. A. Roberts has so nicely expressed, "Homoeophathy studies man as an individual in relation to his environment and circumstances more than any other school of medical thought, for it takes into consideration not only his immediate heritage but the more subtle and complex burden that is the heritage of long ages of struggling and developing ancestors. Homoeopathy not only seeks to relieve the individual as much as possible from the heavy burden of the hereditery tendencies he carries but also to guard against increasing this load by enabling his Vital Energy to provide its own IMMUNITY against disease."

We have taken a passing note of the fact that *homoeopathy treats patients with drugs tested on human beings.* It is not rational or scientific to test drugs *on animals* and to expect the same results on administering them to human beings. In a limited field this method has its own utility, for example, in regard to investigations on food, vitamins, hormones etc. But the claims of the experimental pharmacologist that out of the results of these experimental methods an objective materia medica can be built up which can be utilised on objective indications for the control and treatment of diseased conditions, are far too excessive. The reasons are :

1. These experiments can throw light only in respect to a few human functions which are common to man and animals.

2. In experiments on animals we deal with *artificially produced conditions*, and it would not be logical or rational to apply the results of such investigations to the treatment of naturally excited disease phenomena.

3. The human organism, especially in diseased conditions, does not show constancy or *uniformity of reaction*.

4. Some of the effects of drugs on animals may be *altogether different* fro what they are on human beings. I man adrenalin at first retards and late on furthers the gastric movement while the movements of the dog' stomach are influenced in the revers manner. Hypophysis extracts provok diuresis in cats and dogs but oliguri in rabbits and guinea pigs.

Homœopathic stands unrivalled in th treatment of CHRONIC DISEASES Hahnemann has left us a most precio gift in his discovery of the factor which give rise to and keep up th progress of chronic disease, *vi* PSORA, SYPHILIS and SYCOSIS. detailed exposition of this would b beyond the scope of this chapter, an the readers interested in this branch o study are referred to Hahnemann' chronic diseases and other leadin works on Homœopathic philosophy.

Germs As Causes Of Disease.

Now what about the GERMS AN MICRO-ORGANISMS of which we hea every day as being the causes of disea and as being effectively destroyed b one or the other of the Modern Wond Drugs? The investigator is at on confronted with two questions. (1) Ho is it that out of a number of perso exposed to the same infection, all d not develop the disease? (2) Why th ones who do develop it exhibit di ferent symptoms and react differen to the germ destroying drug? Th advocates of the "germs theory answer the first question by sayi that a strong Vitality is able to ove power the infection and it is only t people with a weak Vitality w succumb to it. Well, this is exact what the Homœopathic school asser The real cause is prior to the entry o germs in the body, *being a weak, su ceptible and deranged Vitality wh* alone is to be corrected if the ger are to be destroyed effectively and o a lasting basis. The authority of th

Vital Energy is supreme and final in the human body so far as the maintenance of health and removal and cure of disease are concerned. Why this crusade against the germs and worms which thrive in the human body only so long as they can find suitable living conditions there on account of deranged functioning of the Vital administration, and *which automatically quit when order is restored and the Vital Force reasserts itself?* Experience has abundantly shown that the dynamic powers released from the remedy selected according to Nature's Law of Similars offers the requisite aid to the struggling Vital Force, *gently yet more potently than the germicides or the antibiotics* which convert the human body into a battle field, making the Vital Force suffer all the more by having to struggle against *the resultant pyæmia.* Even if the germs die, the eal cause remains intact and the patient remains susceptible to *repeated attacks* of the infection or disease, and *the germs become more and more resistant* to these drugs. Eventually stronger and stronger antibiotics must be discovered but only to vanish into oblivion like their predecessors! In course of time, the "Wonder" part of the Wonder Drugs drops out and they remain drugs pure and simple, becoming more and more *impotent and obsolete* with lapse of time.

Now regarding the second question relating to the "germs theory", ***viz.***, why the patients infected with the same germs exhibit different symptoms, the Homœopathic view-point is simple to understand. As the Vital Force of no two persons are alike nor are their derangements and perversions alike, so it is highly improbable for their symptoms and sensations to be alike, and hence the necessity of treating them as individual patients with their different symptoms rather than cases of a disease or infection. For the same reasons, if identical treatment is given to patients on the basis of a common disease or infection, their reactions are bound to be different. The so-called modern scientific medicine is increasingly showing a lamentable ignorance of the fact that *the disease and drugs can operate on man only through the medium of the Vital Energy.* The results of test-tube experiments with drugs on germ cultures cannot therefore be rationally transferred to natural sickness in human beings.

Limitations of Homœopathy

The reader is, however, warned against concluding that Homœopathy has no limitations. Hahnemann has clearly stated that a physician's duty is to understand and remove the cause of disease which may at times be purely external or mechanical, requiring only external means of treatment. Thus, in cases of external injuries, when there is bleeding due to an artery being cut, or when a bone has been fractured or a foreign body has got into the eyes, ear or nose, or in cases of poisoning, it would be far from wise to attempt to treat the case Homœopathically alone without the application of the needed mechanical or surgical methods. But a stage may present itself for resorting to internal Homœopathic medication when systemic effects may ensue or are anticipated, *e. g.*, for the prevention of tetanus after injuries, for the sepsis of wounds, or for treating the effects of poisoning after the gastric lavage etc., have been carried out. Again, in a class of diseases where malnutrition results from lack of proper foods rather than from lack of powers of assimilation, Homœo-therapy cannot be expected to take the place of a correction of dietetic deficiencies and errors. In short, *all obstacles to recovery must be removed before we proceed to apply the indicated remedy.* The internal and dynamic causes are to be treated by internal and dynamic means while purely external causes haze to be correctod by external means.

While considerably narrowing the sphere of SURGERY, Homœopathy never claims to do away with it altogether. It rescues many a patient from the surgeon's knife by treating medicinally many conditions considered by the "modern" medical science to be purely surgical. It considers the cure of a diseased part of the body always better than its removal and offers effective treatment to that end. Patients suffering from appendicitis, mastoiditis, defective tonsils, tumours, boils, carbuncles etc., need not run up to the surgeon *in a routine way*, and if Homœo-therapy is applied at not too late a stage, a surgical operation can in most cases be avoided. As already noticed, *surgery can remove only the effects or results of disease* and not its cause. By removal of the cause and restoration of order in the perverted functioning of the Vital Energy, *the disease process can be reverted*, bringing about a disappearance of tumours, boils, carbuncles etc., and a correction of other abnormalities. Yet, circumstances may present themselves when it would be unwise even to attempt a Homœopathic handling of the case and the surgeon must be ealled in, *e. g.*, when there is suppuration in an internal organ with no cxternal outlet, or when a foreign body is lodged up in a Vital place in the body, where starting up of the suppurative process may lead to incalculable and irreparable mischief.

Man is something more than his organs or the physical frame which is worse than a log of wood or a heap of clay the moment that *spark of Vital Energy* which animates it, is extinguished. Science has analysed and knows every bit of the physical man; yet it is unable to make a man by synthesising all those elements in exactly the same proportions. In spite of all this grand "modern" medical knowledge, the span of human life has on the whole decreased in stead of increasing. The writer holds there has been something fundamentally wrong with the concept of health disease and treatment. *No purely materialistic theory or outlook will ever solve the problem of human sickness.* To serve the sick humanity on a satisfactory, rational basis, the medical science must rise from a purely physical to a metaphysical and dynamic plane, and Homœopathy does it. The basic truth underlying Homœopathy was hinted at by the ancient Hindu sages, by Hippocrates, Paracelsus, Stahl and others throughout the course of medical history. It is the expression of DIVINE LAW in the universe. May it guide us as a lamp unto our feet in the sacred task of relieving the sufferings of sick humanity,

FOR
Everything Best & Cheap in
HOMOEOPATHY
Write to :—
The Homoeopathic Store
Subhash Bazar, Meerut City.
Direct Importer & Stockist of :—
1. Original Sealed Boerick & Tafel's Homoeopathic & Biochemic Medicines Mother Tinctures, Externals, & Special preparations etc.
2. Dilutions prepared form B. T. Baek Potencies.
3. Hahnemann Publishing Co. Cal.
4. M. Bhattacharya Co. Calcutta.
5. Father Muller's Specifics etc.
For Medical Books in English Hindi Urdu and other Homoeo requisite at Cheap Rates.
Please Ask for detailed price list to-day

डा : आर० एस० रस्तोगी B. A. LL. B. M. D. H. देहरादून

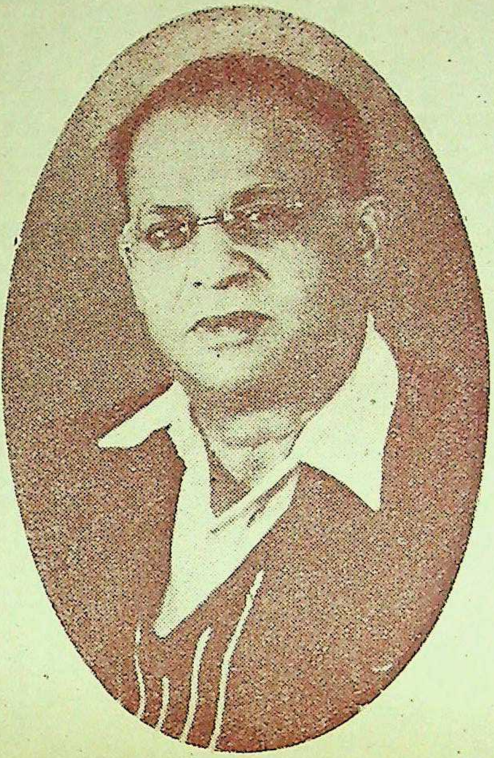

डा : एस० सी० सरकार D. Sc. M. D. H. आगरा

आप दोनों सज्जन उत्तर प्रदेश होमियोपैथिक बोर्ड के सदस्य चुने गये हैं

HOMŒOPATHY AND SURGERY

Dr. B. R. Chugha

Chairman, Homœopathic Registration Tribunal, Bombay.

Surgery has come to have a glamour of its own in the scientific world of today and obviously every new entrant in the medical profession wishes to share that glamour and incidentally earn more also. So he starts dabbling in surgery without any proper training as an apprentice to a senior surgeon. He begins to advise an operation for any ailment for which a surgical operation is possible with the result that the infant surgeon and the ignorant patient both come to grief. Although in the primitive past barbers used to practise surgery in India as well as in the west but modern surgery is a highly specialised art and as such the knife should not be allowed to be handled by any one except a specialist.

Surgery seems to have caught the fancy of the people in general also. Even the patients, instead of taking treatment at the hands of a physician, welcome a surgical operation as a short cut to quick relief and take pleasure in submitting to it without realising the risk they are running. It appears that the stress and strain of modern life is responsible for such a state of affairs. A busy man prefers to have his abdomen cut open and have the Appendix or Stone removed in a jiffy and get on to his work within a few days rather than suffer pain indefinitely and take prolonged treatment from a physician, whether Homœopath or Allopath. It is probably because one cannot afford to miss work and income even for a few days in this era of mounting costs and false values and hence this "Kill-or-save-me-doctor" mentality. But these persons little realise the consequences of this dare devil state of mind.

Dr. Harold S. Foss of the American College of Surgeons recently said in a meeting of surgeons in New York that *A Large Majority of Operations are Needless and Ill-Advised* and are being performed to an extent which demands stricter control by the medical profession. Ability to cope with the complex problems with which the surgeon is confronted is rarely possessed by a man who has not had sound training and long apprenticeship to older surgeons. Yet the glamour of surgery and the promise of increased financial reward are so alluring that they are so difficult for the recent graduate to resist, even though the time and means to acquire thorough training are lacking". It has been my experience also that *A Large Number of Operations are needless and Ill Advised*, resulting in very serious consequences to the patient. I have seen majority of them suffering endlessly thereafter. I have come across cases of operated Piles and Fistula ending in *Cancer* with all its attendent misery. These ill fated patients, if they had been well advised, would have easily got well within a short time under Homœopathic treatmnet. Dr. Foss has rightly sounded a note of warning against the indiscriminate use of knife. It is a matter of great delight to know that there are such noble persons in the profession even today who are so straight forward in telling the *Truth* regardless of any opposition.

During my 40 years' experience in Homœopathic practice I have treated a number of cases which were to all intents and purposes surgical cases and most of them got cured. Carbuncle, Appendicitis, stones in Kidney and Bladder, Gall stones, Pyæmia, Diabetic Gangrene, Mastoid abcess, Nose polypus, Tonsils, Piles and Fistula etc. etc. are all amenable to Homœopathic drugs. Homoeopathy does not exclude Surgery. To say so tantamounts to ignorance and misguided knowledge of Homœopathy. In fact no Homœopath can afford to ignore the need for surgical aid when it is absolutely unavoidable. There can be some occasions when surgical aid becomes imperative. Just as Homœopathy cannot exclude surgery so also surgery cannot exclude Homœopathy. In all such cases surgery can come in as a last resort and that too with the cooperation of the Homoeopath who had been treating the case previously According to Dr. Rudolph F. Rabe of Morristown, New Jersey, America, "A Homoeopath's knowledge of disease and its diagnosis, his understanding of the philosophy of Homoeopathy, all contribute to his ability rightly to estimate the requirements of a given situation in which surgery may become a factor. His knowledge of Materia Medica enables him to prepare the patient for an operation and his after-treatment of the surgical patient contributes greatly to restoration of normal health. This cooperation between the surgeon and the Homoeopath is in the best interest of the patient". But unfortunately this cooperation between the surgeon and the Homoeopath does not exist in India, the result of which is that when a Homoeopath surrenders his patient to the surgeon he does it with some misgivings for the well being of the patient, because he feels that he would not be able to give the patient any post-operative treatment which would lead to speedy and complete recovery.

It is therefore high time that patients and surgeons think twice before undertaking a risk the consequences of which they are not in a position to foreshadow. It may take a little more time to get well but a little faith and patience can save endless suffering.

I earnestly appeal to all my professional brothers, whether Allopaths, Homoeopaths, Ayurvaidyas or Hakims to shed their prejudices and bias and co-operate with each other in their great national effort to eradicate disease and to alleviate the sufferings of their country men.

काउन्ट मैटी की

असल

इलैक्ट्रो होमियोपैथिक

दवायें

गोलीयां	छोटी शीशी	१॥)
गोलियां	बड़ी शीशी	३)
बिजलियां	फी शीशी	३॥)
मरहम	फी शीशी	३॥)
अक्वा परला पील	फी शीशी	३॥)
हिन्दी की गाइड		॥)

इटली से आया हुआ ताज़ा स्टाक

थोक खरीदारों को कमीशन

होमियोपैथिक फ्री डिस्पैंसरी

चाँदनी चौक, दिल्ली—६

COUNT MATTEI'S

ORIGINAL

ELECTRO HOMŒOPATHIC

MEDICINES

Globules	Small Tube	1-8-0
Globules	Large "	3-0-0
Electricities	Per phial	3-8-0
Ointments	Per pot	3-8-0
Aq. per la pele	Per phial	3-8-0
Guide (Hindi)		0-8-0

Fresh and big Stock

Directly Imported from Italy

Discount to Wholesale Buyers.

HOMOEOPATHIC FREE DISPENSARY

Chandni Chowk, DELHI 6

Dr. R. S. Rastogi—A Life Sketch

Of late our readers have been introduced with Dr. Rastogi of Dehradun through the columns of this journal. His ably written articles have been very popular with our readers. Dr. Rastogi has been nominated by the U.P. Government as a member of the U.P. Homœopathic Medical Board. We take this occasion of presenting a brief life sketch of this leading practitioner of Dehradun we are indebted to Dr. H. C. Kumar of Dehradoon for the material supplied by him of this life sketch.

Dr. R. S. Rastogi was born in the year 1908 in the town of Bijnor in U.P. in a respectable Rastogi family. He passed the Intermediate Science Examination in 1926 and graduated in Arts in 1928 and in law in 1930. His father Shri Banarsi Das, a leading advocate, wanted him to follow in his footsteps by taking up the profession of law, but Destiny willed otherwise. In 1930 his wife became very ill. The simplest and the least food upset her, causing loud paroxysmal belching and these attacks would at times result in fainting fits and an anxiety as if she was going to die. A fractional test meal revealed that free hydrochloric acid was wanting while the total acidity was very high. Here was a dilemma for the medical scientists: if they gave hydrochloric acid to improve the digestion, it raised the total acids higher still whereas if an attempt was made to reduce the total acidity by giving alkalies, the digestion promoting hydrochloric acid too was neutralised. The dilemma was solved by Homœopathy which alone treats the patient by a corrective treatment, producing naturally what is required and checking or removing whatever is not required. This event created in his mind a keen desire to study Homœopathy and he forthwith embarked on a study of the leading important homœopathic works. He also acquired a fair working knowledge of the other basic medical subjects.

Another event occurred in 1932 which confirmed his faith in the great principles of Homœopathy. He got a very severe attack of Vertigo followed by diplopia, defective and unsteady vision, feeling as if the objects on either side moved and as if passers by would collide with him when he walked. Eminent allopathic medical men of India and Vienna tugged their brains, compiled various theories, gave sedatives and tonics, diagnosed this and that and then neurasthenia and later enlargement of the Pituitary gland. He could not read or write for ten minutes at a stretch. The constitutional Homœopathic treatment put him right so that a life threatened with an useless existence once again held out hopes of a healthy useful future.

Not very long after, his old mother came down with high fever and an unconscious dazed condition of mind out of which when aroused she only exclaimed—"Let me sleep; I do not want anything; do not disturb me." The allopathic doctors after the routine tests pronounced it to be a case of Pneumonia and asked the family to be prepared for a prolonged and probably fatal illness. Dr. Rastogi persuaded his father in favour of Homœopathic treatment and a few doses of Arnica 30 settled the matter within about twenty-four hours, by bringing down the fever to normal, followed by a speedy convalescence.

These and numerous other cures convinced Dr. Rastogi that Homœopathy, apart from being so very rational, is decidedly very simple, speedy and effctive, and deserved to be propagated with a missionary zeal and fervour, in the interests of the suffering millions in this country. He felt that people with good academic qualifications should study Homœopathy if its cause was to be furthered in a real sense, till such time as we could have regular institutions to turn out thoroughly qualified Homœopaths which was the real objective to be achieved. In 1940, he was asked by his professor of English Shri Amarnath Jha, now Vice-Chancellor of the Allahabad University: "What is your justification for practising medicine after qualifying as a Bachelor of Arts and Law?" The reply was simple and straight: "Homœopathy is based on simple, easily comprehensible principles and being cheap, scientific and rational, is the only answer to the problem of colossal suffering and disease in the country, especially for the poor masses. People of my class went to make Homœopathy known to people so that a demand for regular institutions for training Homœopaths will one day arise. My class will automatically vanish when fully qualified Homœopaths will be available to take its place. But till such time, we must exist so that Homœopathy may live to play its great role in building up the health of the nation." The qualified Homœopaths today want to exterminate the very class which gave birth to them, without which in fact their very existence would have been impossible. Is it fair? And who would deny that this class of Homœopaths has to its credit some of the best prescribers not only in India but in other parts of the globe too? Dr. Boeninghausen, Dr. Chunni Lal Chatterji, Dr. Dinbandhoo Mukerji, Dr. Nilmoni Ghatak and so many others may be quoted as examples.

As early as 1938, Dr. Rastogi attracted the attention of the homœopathic fraternity of U.P. by reading

Gram: 'LYCOPODIUM' Delhi. *Phone* 6694.

Metropolitan Homœo Pharmacy

WEST OF JAMA MASJID—DELHI.

DIRECT IMPORTERS OF

B. & T's (U. S. A.) ORIGINAL SEALED

Homoeo & Biochemic Medicines

AND STOCKISTS OF

Father Muller's Specific, Hapco Products and
Books in English, Hindi and Urdu

a paper on Homœopathic philosophy at the 4th U. P. Homœo. Medical Conference at Lucknow." An eminent Homœopath of Calcutta, Dr. Nilmony Ghatak, Editor of the Homœopathic Advance, in October 1938 number published the following comments on the above mentioned paper—"Excellently written paper. The principles of disease and its true cure have been very nicely delineated. The writer is an ornament to our profession. He richly deserves every success in the line." The same year on presenting a thesis on Homœopathic philosophy (with case reports) he was awarded the degree of M.D.H. by the Faculty College of Homœopathy, Calcutta.

In 1950, he started contributing papers and articles to the Homœopathic Recorder of U.S A. which were received with great appreciation by the Editor Dr. Allan D. Sutherland, M D., of Brattleboro, Vt., U. S. A. In his letter dated January 29, 1952, he said: "All articles mentioned above have been received and are acknowledged with great appreciation. It is a pleasure to read your work and feel it adds much to our magazine".

In 1951 Dr. Rastogi was unanimously accepted as a member by the International Hahnemannian Association Inc. U S.A. His articles have been appearing in the Homœopathic Sandesh and other leading Homœopathic Journals of India.

As a man, Dr. Rastogi combines many qualities of head and heart on account of which he is rightly held in great esteem by those who come in contact with him. His heart is very sensitive to the suffering of the poor and the needy who always receive medicines free of charge from him. In 1941, he built Ganga Devi Mazdoor Ashram at Kincraig, Mussoorie in loving memory of his mother. It is intended to provide shelter to coolies and mazdoors against inclemencies of weather.

"ROSÉ" BRAND
MEDICINAL
CASTOR OIL
× × × × ×
"HOMEGUARD"
CONCENTRATED
PHENYLE
× × × × ×
RAM INDUSTRIAL CORP. Ltd.
GULDHAR Distt. Meerut U.P.

मौलसरी मंजन

मौलसिरी भारत का एक पुराना वृक्ष है जिसके सुगन्धित फूल और मधुर फलों से सब परिचित हैं। इस वृक्ष की छाल और लकड़ी को "वज्रदन्ती" कहा जाता है, इस की दातन नित्य प्रति करने से न केवल दांत मोती की तरह चमकने लगते हैं बल्कि मुंह में भी भीनी सुगन्ध रहने लगती है और दांत बज्र की तरह मज़बूत हो जाते हैं। दांत के दर्द, मसूड़ा फूलने आदि में इस की छाल के कुल्ले बड़े उपयोगी होते हैं।

इस ही मौलसरी की ताजी छाल को सुखा कर कूट पीस कर यह मंजन बनाया गया है। इस में काली मिर्च, नमक, मजीठ, अकरकरा, फिटकरी, सुहागा, आदि २ कुछ औषधियें मिला कर इसे—

एक सम्पूर्ण, सर्वोत्तम दन्त मंजन

बना दिया गया है। यह ऐसा उपयोगी मंजन बना है कि न केवल यह दांतों को साफ रखने में अद्वितीय है बल्कि—**पायरीया**—आदि समस्त दांत रोगों के लिये अचूक औषधि है।

आप इसे एक दफा इस्तेमाल कर लेंगे तो फिर आप दूसरे किसी मंजन को पसन्द न करेंगे।

सेवन विधि—इसको ब्रुश से नहीं लगाना चाहिए केवल उंगली से खूब मल के कुल्ला कर डालिए। यदि पायरीया आदि कष्ट हो तो इस में २-४ बून्द कड़वे तेल की मिला कर मलिये। फिर ५-१० मिन्ट इसे लगा रहने दें उसके बाद कुल्ला कर लें। पायरीया के लिए सुबह और सोने के पूर्व दोनों दफा मलें। डाढ़ में दर्द आदि हो तो इसे मसूड़ों पर मल कर राल टपका दें।

यह एक आदर्श मंजन है

सस्ता है— सादा है— गुण कारक है

आज ही मंगावे

मूल्य एक औंस की शीशी ॥), ४ औंस १॥)

होमियोपैथिक फ्री डिस्पेंसरी, कूचा ब्रजनाथ, चांदनी चौक, दिल्ली।

अपने

परिवार और वृद्धावस्थां

के लिये

क्या

आप अपने भविष्य को सुरक्षित नहीं करना चाहते ?

अवश्य ! अवश्य !! अवश्य !!!

तो फिर आज ही

हमारी कम्पनी में बीमा कराइये

या

इसके ऐजण्ट बन जाइये

हमारी कम्पनी वह सब से पहली बीमा कम्पनी है जिसने अपने पालिसी होल्डरों को डाक्टरी परीक्षा से मुक्त करके जीवन बीमा की स्कीम जारी की !!

न्यू एशियाटिक इन्शुरेन्स कं० लि०

न्यू एशियाटिक बिल्डिंग-कनाट सर्कस, नई दिल्ली

मैनेजिंग डायरेक्टर
श्री लक्ष्मीनिवास बिड़ला

चेयरमैन
श्री बी० एम० बिड़ला

शाखायें- कलकत्ता, मद्रास, नागपुर, जलगांव, बम्बई, आगरा, लखनऊ
कानपुर, पटना, बनारस, हैदराबाद, सीलोन, आदि २ ।

क्या आपकी त्वचा 'खुजली प्रूफ़' है

९९ प्रतिशत व्यक्ति बार बार खुजाने के घृणित स्वभाव से ग्रसित होते हैं। याद रखिये गन्दा रक्त और अस्वस्थ त्वचा ही इस अभ्यास का कारण हुआ करता है।

आपकी त्वचा आपके आन्तरिक अंगों की पोशाक है। क्या पोशाक के समान अपनी त्वचा को भी शुद्ध और स्वस्थ रखना आवश्यक नहीं है।

हमदर्द की "साफ़ी" रक्त को शुद्ध करके खुजली एगजेमा, दाग़ धब्बे, महासे और दाद इत्यादि सभी चर्मरोगों को दूर करने में अद्वितीय है। मूल्य प्रति शीशी एक रुपया।

"चर्म और रक्त की देख-भाल" नामक पत्रिका बिना किसी मूल्य के मंगाइये।

SAFI
THE GREAT BLOOD PURIFIER
Hamdard

'चर्म-रक्त की देख-भाल' पत्रिका बिना मूल्य के मंगाइये।

साफ़ी से रक्त भी साफ़ त्वचा भी साफ़

हर जगा मिलती है

Hamdard

THE CREATORS OF FAMOUS HAMDARD OINTMENT

हमदर्द दवाखाना लेबोरेटोरीज़ देहली

आयुर्वेद
महासम्मेलन पत्रिका

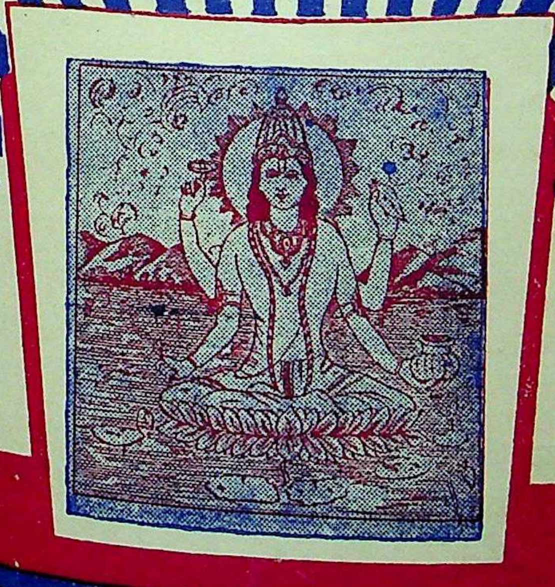

माघ
२०१४

प्रधान सम्पादक—कविराज स्वामी चेतनानन्द चिदाकाशी
उप सम्पादक—कविराज हरिकृष्ण सहगल
संस्कृत विभाग सम्पादक—कविराज नेत्रपाल शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य

दो हजार से भी अधिक शास्त्रोक्त एवं पेटेण्ट औषधियाँ बनाने
वाली उत्तरीय भारत की ८८ वर्ष की प्राचीन रसायनशाला

राजवैद्य शीतल प्रसाद एण्ड सन्स

देहली : नागपुर : कानपुर : इन्दौर

राजवैद्य रसायनशाला में आयुर्वेद के गहरे अनुभवी वैद्यों एवं औषधि निर्माणकला के विशेषज्ञ कैमिस्टों की देखरेख में आयुर्वेद शास्त्रों के मूलभूत सिद्धान्तोंके अनुसार औषधियां तैयार की जाती हैं।

केन्द्रीय और राजकीय मन्त्रियों, संसद सभासदों, डायरेक्टर आफ आयुर्वेद, प्रमुख डाक्टरों, वैद्यों एवं आयुर्वेदिक सम्मेलनों द्वारा हमारी औषधियों की प्रशंसा की गई है। विभिन्न प्रदर्शनियों एवं विज्ञान परिषदों ने प्रशंसा पत्र दिए, स्वर्णपदक और रौप्यपदक भेंट किए और कहा है कि "वास्तव में राजवैद्य रसायनशाला की औषधियां बहुत गुणकारी होती हैं" इसके अतिरिक्त राज्य सरकारों, उपराजकीय संस्थाओं, म्युनिसिपल कमेटियों व जनपद सभाओं के दवाखानों में हमारी दवाएं बड़ी तादाद में प्रयोग की जाती हैं। शहरों व कस्बों में १०,००० से अधिक हमारे औषधि विक्रेता हैं।

हमारी दवाएँ न सिर्फ हिन्दुस्तान व पाकिस्तान में ही बल्कि, नेपाल, बर्मा, सीलोन, दक्षिण अफ्रीका, पर्शियनगल्फ, अदन, फिजीआईलैण्ड आदि में भी इस्तेमाल की जाती हैं।

वैद्यों एवं औषधि विक्रेताओं से

हम अपनी रसायनशाला द्वारा निर्मित आयुर्वेदिक एवं पेटेन्ट औषधियों की बिक्री के लिए मुख्य-मुख्य स्थानों पर बिक्री केन्द्र खोल रहे हैं।

फरनीचर, दुकान किराया, वैद्य का वेतन आदि समस्त सुविधायें दी जायेंगी। जो वैद्य बन्धु अथवा औषध-विक्रेता हमें सहयोग देना चाहते हैं, वह अपना पूरा परिचय देते हुए हम से पत्र व्यवहार करें। बिक्री केन्द्र के लिए सहायक वैद्यों की आवश्यकता है। आवेदन पत्र भेजें—

राजवैद्य शीतलप्रसाद एण्ड सन्स
चांदनी चौक, दिल्ली।

विषय-सूची

विषय		पृष्ठ संख्या
सम्पादकीय		५७
आसव-अरिष्ट पर प्रतिबन्ध	—श्री वैद्यनाथ मिश्र	६३
पंचविध कषायकल्पनम्	—श्री वागीश्वर शुक्ल	६७
आयुर्वेद और प्राकृतिक चिकित्सा	—श्री किशोरीदास गुप्त	७३
फुफ्फुस का यक्ष्मा	—श्री प्रभाकर चटर्जी	७६
Pandit Shiv Sharma's Statement (iv)		७९
Pandit Shiv Sharma's Statement (v)		८३
पं० शिवशर्मा का वक्तव्य—४		९५
पं० शिवशर्मा का वक्तव्य—५		१००
आयुर्वेद-लोक		११५
अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन स्थायी समिति एवं अ० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ केन्द्रीय प्रबन्धक समिति के सम्मिलिताधिवेशन की सूचना		~~१२१~~

महर्षि चरक का अपूर्व योग

* ब्राह्म रसायन *

मानसिक शक्ति, स्फूर्ति, उत्साह, बुद्धि, स्मृति ओज
एवं दीर्घायुष्य प्राप्ति के लिए

अत्युत्तम कल्प है।

नवशक्ति आयुर्वेदालय (प्रा०) लि०
भुसावल - जबलपुर - नागपुर

शुद्ध एवं शास्त्रोक्त आयुर्वेदीय

औषधियां

शुद्ध एवं उत्तम शास्त्रोक्त विधि से बनी आयुर्वेदिक औषधियां रस, भस्में, वटी, अवलेह, पाक, चूर्ण, घृत, कूपीपक्व रस तथा खनिज द्रव्य, वज्राभ्रक, मुक्ता, शंख, सीप, स्वर्ण माक्षिक, प्रवाल, शुद्ध शिलाजीत, केशर, कस्तूरी, अम्बर व दुर्लभ वनस्पतिवर्ग जैसे अष्ट वर्ग, प्रियंगु, सर्पगन्धा, त्रायमाण आदि खरीदते समय निम्न पते पर पत्र व्यवहार अवश्य करें।

विशेष जानकारी के लिये वृहद सूची पत्र मंगवायें।

हमारी औषधियों का व्यवहार कर आप सदैव के लिये हमारे स्थाई ग्राहक बन जायेंगे।

देशरक्षक औषधालय

कनखल (हरिद्वार)

यू० पी०

॥ धन्वन्तरयेनमः

यत्प्रभापटलोद्भासि भाषतेऽद्यापि भारतम् ।
आयुर्वेदात्मकं ज्योतिः शाश्वतं नः प्रकाशताम् ॥

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

(अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का मासिक मुख-पत्र)
प्रधान सम्पादक—कविराज स्वामी चेतनानन्द चिदाकाशी ।
उप-सम्पादक—कविराज हरिकृष्ण सहगल ।
सम्पादक संस्कृत विभाग—वैद्य श्री नेत्रपाल शर्मा शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य ।
पत्रिका कार्यालय—महालक्ष्मी मार्केट, चांदनी चौक, दिल्ली ।
तार का पता—"आयुर्वेद" दिल्ली   टेलीफोन : २८९०२

वर्ष ४५
अंक २
दिल्ली, माघ २०१४, फरवरी १९५८
वार्षिक ५)
एकप्रति ॥)

सम्पादकीय

अ० भा० आयुर्वेद विश्व-विद्यालय की स्थापना का स्वप्न

उत्थातव्यं जागृतव्यं योक्तव्यं भूतिकर्मसु ।
भविष्यतीत्येव मनः कृत्वा सततमव्यथैः ॥
× × ×
विद्यावितर्को विज्ञानं स्मृतिस्तत्परता क्रिया ।
यस्यैते षड्गुणास्तस्य न साध्यमतिवर्तते ॥

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन-विद्यापीठ के मुख्य उद्देश्यों में एक उद्देश्य आयुर्वेद शिक्षण, परीक्षण, संस्थाओं की सम्बद्धता एवं निरीक्षणार्थ एक सर्वाङ्गपूर्ण एवं सर्वसाधन सम्पन्न "निखिल भारतीय आयुर्वेद विश्व-विद्यालय" की स्थापना का भी है। इस उद्देश्य की सिद्धि के निमित्त इस संस्था द्वारा समय-समय पर अनेक प्रयत्न किये जाते रहे हैं, किन्तु यह स्वप्न आज तक साकार न हो पाया और आज भी वैद्य-समाज के माथे पर एक बड़ा प्रश्न-

चिह्न बनकर लटका हुआ है। विश्वविद्यालय स्थापना का प्रश्न गत ३० वर्षों से विशेषतया वैद्यसमाज के सम्मुख रहा है। नासिक में विद्यापीठ की स्थापना के पश्चात् सन् १९०८ में पनवेल सम्मेलन में सर्वप्रथम विद्यालय खोलने का प्रस्ताव हुआ था—तदन्तर प्रयाग (१९११), कानपुर (१९१२), मथुरा (१९१३) सम्मेलनों में इस विषय का काफी जोर रहा किन्तु कुछ विशेष प्रगति न हो पाई। मद्रास (१९१५) सम्मेलन के पश्चात् स्वर्गीय रीवां नरेश के प्रयत्नों से विद्यालय की योजना बनी और श्रीमान् रीवां नरेश ने विद्यालय के लिये १०,०००) रुपये नकद, ६५००) रुपये का सामान और ५०) रुपये मासिक देने का वचन दिया। अलवर नरेश ने भी ३०००) रुपये दिये। पूना (१९१६) सम्मेलन में इसे कार्यान्वित करने के लिये स्व० महामहोपाध्याय श्री गणनाथ सेन के मंत्रित्व में एक समिति बनाई गई थी किन्तु प्रस्तावों के अतिरिक्त कार्य कुछ न हो पाया। तदनन्तर कई सम्मेलनों में विद्यालय से सम्बन्धित प्रस्ताव पास होते रहे, समितियां बनती और बिगड़ती रहीं। एक बार जुलाई १९२० में प्रयाग में श्री बाबू कन्हैयालाल जी की उदारता से विद्यालय का प्रारम्भ भी हो गया था और यह आशा थी "अल्पारम्भः क्षेमकरः" के अनुसार यह विद्यालय ही विशाल रूप धारण कर लेगा। इस विद्यालय की स्थापना हो जाने पर हजारों रुपयों के दान के वचन भी मिले किन्तु होनी कुछ और ही थी—रीवां नरेश, जो विद्यालय कमेटी के कोषाध्यक्ष भी थे, विद्यालय स्थापना से पूर्व ही स्वर्गगत हो चुके थे। उनके स्वर्गवास हो जाने के पश्चात् विद्यालय के लिए उनकी प्रतिज्ञात धनराशि तथा अलवर नरेश से प्राप्त ३०००) रु० रीवां रीजेंसी की हठधर्मी के कारण न मिल सके और कुछ समय चलने के पश्चात् विद्यालय बन्द हो गया।

फिर लगभग १७ वर्षों की सुषुप्तावस्था के पश्चात् १९३९ में जोधपुर अधिवेशन में इस विषय ने पुनः जोर पकड़ा और अग्रिम महासम्मेलन तक रुपया इकट्ठा करके बहुमत से चुने हुए स्थान पर एक सर्वांगपूर्ण महाविद्यालय की स्थापना करने का निश्चय किया गया। इस प्रस्ताव में एक शर्त यह रखी गई थी कि जो प्रान्त एक लाख रुपया दे उसी में यह विद्यालय स्थापित किया जाय और यदि चन्दा द्वारा धनसंचय किया जाय तो बहुमत से निश्चित स्थान पर महाविद्यालय की स्थापना हो। इस अधिवेशन में मैं स्वयं उपस्थित था। मेरे साथ सिन्ध के अन्य प्रतिनिधियों ने सर्वप्रथम १ लाख रुपया एकत्र करने का वचन दिया किन्तु कुछ लोगों ने कहा कि उन्हें सिन्ध स्वीकार नहीं क्योंकि सिन्ध भारतवर्ष के एक कोने में है। अस्तु, उपर्युक्त प्रस्ताव को कार्यान्वित करने के लिए पांच प्रभावशाली महानुभावों का एक प्रतिनिधि मण्डल बनाया गया। धन की व्यवस्था के लिए पांच सदस्यों का एक आयुर्वेद निधि ट्रस्ट भी बनाया गया—आनुमानिक व्यय की योजना भी प्रकाशित की गई और विद्यालय की स्थापना के प्रयत्न किये जाने लगे। इस बार पुनः विजयश्री द्वार पर आई और लौट गई। श्रीमान् कोटा नरेश ने १ लाख रुपया वार्षिक, १०० एकड़ भूमि एवं १ लाख रुपया प्रारम्भ में देना स्वीकार किया। उनके मिनिस्टर और प्राइवेट सेक्रेटरी आदि भी लाहौर में आकर तत्कालीन महासम्मेलनाध्यक्ष वैद्यरत्न श्री पं० शिवशर्मा जी से मिले

और उनके निवासस्थान पर ही रहे। योजना परिपक्व होने की ओर बढ़ी, वे लोग वैद्यसमाज के अन्य लोगों से भी मिले परन्तु नितान्त खेद से लिखना पड़ता है कि आयुर्वेद और वैद्यसमाज के दुर्भाग्य से जहां पं० शिवशर्मा जी इस कार्य को सफलता की ओर ले जाने की चेष्टा कर रहे थे, वहां कुछ वैद्यों के मन में यह विचार आया कि कार्य भले ही न हो किन्तु पं० शिवशर्मा को इसकी सम्पन्नता का श्रेय न मिलना चाहिये। एक व्यक्ति ने तो यहां तक कहा कि पं० शिवशर्मा पहिले ही पृथ्वी से चार फुट ऊँचा चलता है और यदि विश्वविद्यालय उसकी अध्यक्षता में बन गया तो वह आकाश में उड़ने लगेगा। कुछ वैद्यों ने यह भी कहा कि भाई यह रियासत है और वैद्यसमाज की सम्पत्ति को किसी समय भी दबाकर बैठ सकती है। अस्तु, इसी चक्कर में यह योजना भी हाथ से जाती रही और महाविद्यालय स्थापना का प्रश्न कुछ काल के लिये फिर खटाई में पड़ गया। यद्यपि लखनऊ, राजकोट आदि सम्मेलनों में भी यह विषय आया पर कुछ कार्य विशेष न हो सका।

इसके पश्चात् सन् १९५० में दिल्ली में सम्पन्न ३७ वें अधिवेशन में इस विषय पर वैद्यसमाज में पुनः जागृति दिखाई दी, अनेक वक्ताओं ने अ० भा० आयुर्वेद विश्वविद्यालय की स्थापना की आवश्यकता पर बल दिया और बहुत प्रभावशाली भाषण दिये और उपस्थित वैद्य महानुभावों एवं प्रतिनिधियों ने इसके लिये बड़ी-बड़ी रकमें देने के वचन दिये। एक प्रस्ताव भी स्वीकृत किया गया। विश्वविद्यालय की योजना को कार्यान्वित करने के लिये एक उपसमिति बनाई गई और प्रारम्भिक योजना स्वरूप दिल्ली में तुरन्त एक महाविद्यालय खोलने का निश्चय किया गया। इस प्रस्ताव के आधीन महाविद्यालय की स्थापनार्थ भूमि आदि प्राप्त करने के लिये दिल्ली सरकार से बहुत समय तक पत्र-व्यवहार होता रहा किन्तु कुछ परिणाम न निकला। इसी बीच महासम्मेलन में एक दुःखदायी विवाद की स्थिति उत्पन्न हो गई जिसकी मनःसंतापकारी गाथा का यहां उल्लेख न करना ही उपयुक्त होगा। इस विवाद की समाप्ति सन् १९५२ में ३८ वें इन्दौर महासम्मेलन पर हुई।

अस्तु, जहाँ तक विश्वविद्यालय का प्रश्न है, इन्दौर अधिवेशन में एक प्रस्ताव पास किया गया जिसके अनुसार यह निश्चय किया गया कि ऋषिकेश स्थित बाबा काली कमली वाला आयुर्वेद विद्यालय को विद्यापीठ अपना विद्यालय घोषित करे और उसे ही आयुर्वेद विश्व-विद्यालय के रूप में परिवर्तित किया जाय। इस ध्येय की पूर्ति के लिये प्रारम्भिक कार्य पद्धति निश्चित करने एवं सम्पूर्ण योजना बनाने के लिये विद्यापीठ एवं आयुर्वेद सेवा समिति ऋषिकेश के सदस्यों की एक समिति बनाई गई जिसने महासम्मेलन की स्थायी समिति के बंगलौर अधिवेशन में अप्रैल सन् १९५३ में अपनी विस्तृत योजना उपस्थित की जो सर्वसम्मति से स्वीकार हुई, (यह योजना मई १९५३ की आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका में प्रकाशित है) और १० हजार रुपया कार्यारम्भ के लिये काली कमली वाला क्षेत्र ऋषिकेश में जमा कराया गया। तदुपरान्त श्री बाबा काली कमली वाला पंचायत क्षेत्र कलकत्ता की कार्यकारिणी समिति ने भी अगस्त १९५३ में आयुर्वेद विश्वविद्यालय स्थापना की उपर्युक्त

योजना को स्वीकार किया और क्षेत्र की जनरल समिति की असाधारण सभा ने भी सितम्बर १९५३ में अपनी कार्यकारिणी के उपर्युक्त निश्चय की पुष्टि की ।

इसके पश्चात् मार्च १९५४ में अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन-विद्यापीठ का ३९ वां वार्षिक अधिवेशन कोट्टकल (दक्षिण मालाबार) में सम्पन्न हुआ जिसमें विश्वविद्यालय योजना को अग्रसर करने के लिए विभिन्न प्रस्ताव पास किये गये और नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ के केन्द्रीय कार्यालय को दिल्ली से परिवर्तित करके विश्वविद्यालय के लिए निर्धारित स्थान आत्मविज्ञान भवन ऋषिकेश में ले जाया गया। विश्वविद्यालय की विस्तृत योजना बनी, मानचित्र तैयार हुए और शिलान्यास का दिन भी निश्चित हो गया । महामहिम श्री राष्ट्रपति जी ने शिलान्यास के लिये पधारने की स्वीकृति भी दे दी किन्तु कुछ निहित स्वार्थों ने अन्तिम समय में ऐसी दुर्निवार परिस्थितियां उत्पन्न कर दीं जिनके कारण शिलान्यास का शुभ अवसर न आ सका और अन्त में जून १९५५ में महासम्मेलन के त्रिवेन्द्रम अधिवेशन में ऋषिकेश में विश्वविद्यालय स्थापना का विचार छोड़ने का निश्चय करना पड़ा। इस प्रकार विश्वविद्यालय की स्थापनार्थ किये गये अब तक के प्रयत्नों में सबसे महान प्रयत्न भी लक्ष्य सिद्धि के अत्यन्त समीप पहुँच कर दुर्भाग्यवश नष्ट हो गया ।

उपर्युक्त सब प्रयत्नों की विफलता के लिए किसी व्यक्ति विशेष को दोष देना न तो उचित ही है और न न्यायसंगत—इसके लिये समस्त वैद्यसमाज ही उत्तरदायी है ।

अस्तु, जो बीत चुका उस पर अश्रुपात करना, अपनी शक्ति और समय को नष्ट करना है । वैद्यसमाज एक महान् शक्तिशाली और सुसंगठित समाज है जिसके दृढ़ निश्चय और सम्मिलित प्रयत्नों के समक्ष कोई भी कार्य असाध्य नहीं हो सकता । अतीत की असफलताएं हमारा मार्ग-दर्शन करें, हमारे भावी उत्थान के लिये चुनौती बनें और हम दुगने वेग, शक्ति और साहस के साथ प्रगति के मार्ग पर बढ़े चलें । आज किसी पर दोषारोपण करने का अवसर नहीं—हमें अपनी ही दुर्बलताओं पर दृष्टिपात करना है और उनके परिहार का प्रयत्न करना है ।

सर्व प्रकार से समर्थ होते हुए भी हम विश्व-विद्यालय की स्थापना नहीं कर सके यह एक भारी कलंक है जिसे हमें मिलकर दूर करना है । हमें अब इसे मिटा डालना ही चाहिये। इसके लिए वर्तमान परिस्थितियों में मुझे केवल एक ही मार्ग दिखाई देता है और वह यह कि नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ की दृढ़ीकरण की योजना, जो जुलाई १९५६ की पत्रिका में प्रकाशित है, को कार्यरूप में परिणत किया जाय । यह योजना ४२ वें अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन पर स्वीकार हो चुकी है ।

वास्तव में विद्यापीठ तो पहिले से ही एक बना बनाया विश्व-विद्यालय है—इससे सम्बद्ध ३० आयुर्वेद विद्यालय हैं । आवश्यकता केवल इसे व्यवस्थित, संगठित एवं सामयिक बनाकर इसके वास्तविक स्वरूप के प्रदर्शन की है और यह कार्य उपर्युक्त दृढ़ीकरण की

योजना को क्रियान्वित करने से ही सम्पन्न हो सकता है। मेरे विचार में इस योजना के अनुसार कार्य करने का एक व्यवहारिक ढंग यह है कि एतदर्थ भारत के प्रसिद्ध गणमान्य अधिकाधिक २१ वैद्य महानुभावों की एक सर्वोच्च समिति (हाई कमाण्ड) बना दी जाय और इस कार्य को सम्पन्न करने का सर्वाधिकार इसे दे दिया जाय। इस समिति को सर्व-साधनसम्पन्न बनाने के लिये महासम्मेलन की ओर से प्रारम्भ में कुछ धनराशि भी इसे दे दी जाय। यह समिति एक त्रिवर्षीय योजना बनाकर कार्यारम्भ करे। इस समिति का एक पृथक् मन्त्री नियुक्त किया जाय और एतदर्थ कार्यालय में एक पृथक् विभाग भी खोला जाय और पृथक् ही बजट आदि बनाया जाय। समिति अपने कार्य संचालनार्थ नियम आदि स्वयं निर्माण करे और हर तीन मास के पश्चात् अपने कार्य की रिपोर्ट वैद्यसमाज की जानकारी के लिये प्रकाशित करे।

उपर्युक्त एक स्वतन्त्र समिति के निर्माण की योजना रखते हुए मैंने इस तथ्य को दृष्टि में रखा है कि महासम्मेलन एक जनतन्त्रात्मक संस्था है, प्रतिवर्ष इसके पदाधिकारियों का चुनाव होता है। एक पदाधिकारी वर्ग के काल में प्रारम्भ किये हुए महत्वपूर्ण कार्य और योजनाएं भी कई बार उनके बदलने पर समाप्त हो जाती हैं। अतः यह आवश्यक है कि महत्वपूर्ण और हितकारी कार्यों के निमित्त ऐसी स्वतन्त्र समितियां रहें जो इन परिवर्तनों के प्रभावों से सर्वथा मुक्त रह कर अपने कार्य को पूर्व निर्धारित योजना और कार्यक्रम के अनुसार निश्चित रूप से पूरा कर सकें।

विद्यापीठ के निजी विद्यालय हों, विश्वविद्यालय हो—यह आवाज आज वैद्यसमाज में चारों ओर से जागृत हो रही है। विद्यापीठ की सर्वथा निजी शिक्षण संस्थाएं होनी ही चाहिएं। कुछ मान्य महानुभावों ने अपनी-अपनी संस्थायें विद्यापीठ को देने के प्रस्ताव गत नवम्बर मास में सम्पन्न स्थायी समिति के अधिवेशन में प्रस्तुत किये थे। भूतपूर्व विद्यापीठाध्यक्ष श्रीमान् पं० मणिराम जी शर्मा, रतनगढ़, ने अपना धन्वन्तरि मन्दिर, भूतपूर्व संसद सदस्य तथा आयुर्वेद के अनन्य भक्त श्री आर० वी० धुलेकर जी ने झांसी आयुर्वेद विश्वविद्यालय, विद्यापीठ के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री स्वामी दयानिधि जी महाराज, प्रिन्सिपल श्री काली कमली वाला आयुर्वेद विद्यालय, ऋषिकेश, ने लगभग ६०,००० रुपये की लागत का अपना विशाल भवन तथा श्री सेठ सुखदेव जी ने दिल्ली की दयानन्द वाटिका आदि विद्यापीठ को समर्पित कर देने के वचन दिये हैं। श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के मालिक श्री पं० रामनारायणजी शर्मा ने दिल्ली विद्यालय के संचालनार्थ पांच वर्ष तक ५०० रुपया मासिक देने का वचन दिया है। हमें विनम्रता तथा कृतज्ञतापूर्वक इन सब महानुभावों के सहयोग का पूर्ण लाभ उठाना चाहिए और अपना पूर्ण शक्ति से कार्य को अग्रसर करना चाहिए।

दिल्ली में विद्यालय की स्थापना का कार्य भी प्रगति-पथ पर है और हम आशा रखते हैं कि शीघ्र ही इस सम्बन्ध में हमें आशाप्रद शुभ समाचार मिलेंगे।

एक और निवेदन

सदस्य महानुभावों का ध्यान यहाँ मैं एक और महत्वपूर्ण विषय की ओर दिलाना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। किसी भी कार्य को प्रारम्भ कर देना तो सरल है किन्तु एक बार प्रारम्भ करने के अनन्तर भविष्य में भी वह सुचारु रूप से चलता रहे इस पर भी प्रथम ही विचार करके निश्चित योजना बना लेना अत्यावश्यक होता है। अनेक बार बहुत से महानुभाव सहायतार्थ वचन तो दे देते हैं परन्तु आगे चलकर किसी मत-भेद के कारण वह सहायता बन्द भी कर देते हैं—तब वह कार्य वहीं समाप्त हो जाता है। अतः किसी सहायता विशेष पर ही निर्भर न रहकर भविष्य में अष्टांग आयुर्वेद विश्व-विद्यालय के संचालनार्थ पूर्व ही स्थिर-कोष का निर्माण करके फिर ही कार्यारम्भ किया जायेगा तो हमें बाद में विफलता का मुंह न देखना पड़ेगा। ऐसा न हो कि बड़े-बड़े वायदों पर कार्य तो प्रारम्भ कर दिया जाय किन्तु आगे चलकर वह कार्य प्राणहीन हो जाये। ऐसा मैं अपने कई बार के निजी अनुभव के आधार पर निवेदन कर रहा हूँ। कार्यारम्भ करते हुए आशा है वैद्यसमाज विषय के इस पहलू को भी ध्यान में रक्खेगा।

यह मेरा एक तुच्छ सुझाव मात्र है जो मैंने वैद्यसमाज के विचारार्थ रखा है। आशा है विज्ञ वैद्य बन्धु इस पर गम्भीरता से विचार कर आगामी अधिवेशन में इसे कार्यरूप में परिणत करने का सक्रिय प्रयास करेंगे। यही समय की आवश्यकता है जिसे पूर्ण करने में हमें पूर्ण कर्मठता से जट जाना चाहिए।

अन्त में मैं सदस्य महानुभावों का ध्यान लेखारम्भ में दिए हुए श्लोकों की ओर दिलाता हूं जिनमें कहा गया है कि उठो, जागो और प्रसन्नतापूर्वक अपने कर्त्तव्य कर्म में जुट जाओ। निश्चय समझो कि जो कार्य आपने आरम्भ किया है, वह अवश्य पूरा होगा।

जिस व्यक्ति में—ज्ञान, तर्क, विवेकबुद्धि, स्मरणशक्ति, तत्परता और कर्तव्य परायणता, ये छः गुण निवास करते हैं उसके लिए कोई भी कार्य असाध्य नहीं होता।

इन पंक्तियों को दृष्टि में रखते हुए यदि हम अपने कार्य में लगे रहेंगे तो अवश्य ही सफलता का वरण करेंगे इसमें कोई सन्देह नहीं।

—स्वामी चेतनानन्द चिदाकाशी

आयुर्वेद पत्रिका में विज्ञापन देकर लाभ उठाइये

सामयिक विचार

आसव-अरिष्ट पर प्रतिबन्ध

(ले० आयुर्वेदाचार्य श्री वैद्यनाथ मिश्र, शास्त्री, साहित्यरत्न, मुजफ्फरपुर)

हमारी भारत सरकार ने "मेडिसिन एण्ड टायलेट प्रिपरेशंस (एक्साइज ड्यूटीज एक्ट १९५७" के नाम से एक कानून प्रचलित कर इस कानून द्वारा मद्य प्रचार को रोकने के ख्याल से आयुर्वेदिक आसव-अरिष्टों को भी मद्य के अन्तर्गत ही मानकर इनके निर्माण पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया है। एक्ट के खण्ड 'स' नियम ६४ में कहा गया है कि आसव और अरिष्ट ऐसी आयुर्वेदिक औषधियाँ हैं, जिनमें मद्य-सारीय मात्रा स्वयं उत्पन्न होती है और अलग से मिलायी नहीं जाती। नियम ६६ में कहा गया है कि आसव-अरिष्ट विधि से तैयार वे औषधियाँ जिनमें प्रतिशत दो अंश से अधिक मद्यसार हो, वे विधानतः मद्य के समान टैक्स लगने योग्य होंगी। ऐसी औषधियों के तैयार करने में प्रति गैलन ३) टैक्स लगाया गया है। रजिस्टर्ड वैद्यों को ही आसव-अरिष्ट बनाने का अधिकार प्राप्त होगा। जिन राज्यों में अभी तक आयुर्वेद यूनानी कौंसिल की स्थापना नहीं की गई होगी, उन राज्यों के वैद्य एक्साइज कमिश्नर को संतुष्ट कर आसव-अरिष्ट के निर्माण का अधिकार प्राप्त करेंगे। उन्हें १) शुल्क देकर आसव-अरिष्ट बनाने का लाइसेंस मिल सकेगा। ऐसे आसव-अरिष्ट केवल रोगियों को ही दिए जा सकेंगे। वैद्यों से ऐसे आसव-अरिष्टों का नमूना एक्साइज कमिश्नर लेंगे। ऐसे चिकित्सकों को रोगियों को दिए गए आसव-अरिष्टों का हिसाब रखना होगा।

नियम ६९ के अनुसार मद्यकर वाली औषधियों के निर्माता या व्यापारियों को औषधि रखने के लिए कहीं बाण्डेड गोदाम बनाना पड़ेगा, क्योंकि ऐसी औषधियाँ ऐसे गोदामों में नहीं रखी जा सकती जिनका कर चुका दिया गया है या जिनपर कोई कर नहीं लगता। नियम ७० के अनुसार एक्साइज कमिश्नर ऐसी औषधियां रखने के लिए लाइसेंस देगा। वहीं औषधियों के रखने की नीति और रीति भी बतलायगा। ऐसे गोदाम तालेबन्द सुरक्षित रहेंगे। ऐसी औषधि तैयार करने के लिए जो निर्माणशाला होगी, उसमें एक एक्साइज अधिकारी रहेगा। इस अधिकारी की देखरेख और स्वीकृति पर ही माल निकाला जा सकेगा। नियम ७४ के अनुसार जब तक ड्यूटी नहीं चुकाई जाय, तब तक निर्माणशाला से माल निकाला नहीं जा सकेगा। एक गोदाम से दूसरे गोदाम में औषधि ले जाने के लिए भी आवेदन पत्र देना पड़ेगा। नियम ७५ के अनुसार बाण्डेड गोदाम में ३ वर्ष तक कोई ऐसी औषधि रखी जा सकेगी। औषधियों का मालिक टैक्स देकर खर्च के लिए निकाल सकेगा। नियम ८० के अनुसार प्रति-मास एक सप्ताह के भीतर मालिक को एक हिसाब देना पड़ेगा

जिससे औषधि प्राप्त होने, दूसरे गोदाम को भेजने, ड्यूटी चुकाकर निकालने आदि का विवरण रहे। नियम ८२ के अनुसार लाइसेंस लेने या प्रतिवर्ष बदलवाने के लिए आवेदनपत्र कार्यारम्भ के दो महीने पहले एक्साइज अधिकारी को देना पड़ेगा। आवेदनपत्र के साथ निर्धारित शुल्क खजाने में जमाकर उसकी रसीद नत्थी करनी पड़ेगी। नियम ८३ के अनुसार चिकित्सकों को १), निर्माताओं को २५) और गोदाम के लिए २५) प्रतिवर्ष शुल्क देना पड़ेगा। नियम १४१ के अनुसार एक्साइज कमिश्नर जहां चाहेंगे वहां बाण्डेड निर्माणशाला या गोदाम में एक्साइज अफसर और कर्मचारियों की नियुक्ति करेंगे। ऐसे अफसर के लिए जो स्थान का प्रबन्ध करना होगा, उसके लिए मालिक उसके वेतन के १०) प्रतिशत के हिसाब से किराया ले सकेंगे। यदि गोदाम या निर्माणशाला के भीतर स्थान का प्रबन्ध न हो तो आसपास भी हो सकता है।

सरकार कानून द्वारा मद्य प्रचार को रोकना चाहती है। इस पर किसी का विरोध नहीं हो सकता, किन्तु मद्य के अन्तर्गत आयुर्वेदीय आसव-अरिष्टों को स्थान देना अवश्य ही भारतीय जनता के साथ घोर अन्याय करने जैसा है और वैद्य समाज के साथ तो अनावश्यक जबर्दस्ती है। सर्वप्रथम यह विचारणीय प्रश्न है कि आसव-अरिष्ट मद्य के अन्तर्गत क्यों नहीं आ सकते। यह बात ठीक है कि आसव-अरिष्टों का संधान ठीक उसी तरह किया जाता है जिस तरह मद्य का। आसव कच्चे पानी में औषधियां डाल कर और अरिष्ट किसी द्रव्य के क्वाथ में औषधियाँ डालकर गुड़ या मधु के एक निश्चित मात्रा में मास डेढ़ मास संधान करके निर्माण किए जाते हैं। मद्य सन्धान भी आसव-अरिष्ट की तरह ही होता है किन्तु आसव-अरिष्ट भबके के द्वारा मद्य की तरह चुलाये नहीं जाते। बल्कि एक डेढ़ मास तक उसे संधान पात्र में ही रहने दिया जाता है ताकि उसका मद्यसारीय भाग समाप्त होकर उसे चिरस्थाई बनाने भर ही मद्यांश उसमें रह सके। मद्य बनाने के लिए संधान की गई वस्तुओं को अल्कोहल की मात्रा पूर्ण होते ही भबके द्वारा १०-१५ दिनों में ही चुला लिया जाता है, जिसमें शतप्रतिशत मद्यसार अर्क के रूप में प्राप्त हो जाता है। आसव-अरिष्टों में ५ से १० प्रतिशत अल्कोहल रहता अवश्य है, जिससे आसव-अरिष्टों को और आशुलाभकारिता प्राप्त रहती है।

आसव-अरिष्टों की निर्माण प्रक्रिया अत्यन्त पुरानी है। चरक और सुश्रुत में तो आसव-अरिष्टों की विधिवत् चर्चा है ही, उनसे भी प्राचीन वेद ब्राह्मण आदि में किसी न किसी रूप में आसव-अरिष्ट का विधान पाया जाता है। आयुर्वेद में आसव-अरिष्ट की प्रक्रिया शुद्धतया औषधि का द्रव्यसत्व निकालने के लिए ही आविष्कृत तथा उपयुक्त हुई है। इस आसव-अरिष्ट की प्रक्रिया द्वारा इच्छित औषधि का द्रव्यसत्व जल में उत्सेचन क्रिया (खमीर) की सहायता से निकल आता है। यह विधि इतनी अच्छी और सरल होने पर भी इसके द्वारा तैयार किया हुआ सत्व पुराना होने पर हीनवीर्य नहीं होता, प्रत्युत और भी बलवान गुण वाला हो जाता है। इसमें अल्कोहल का परिमाण नहीं के बराबर ही रहता

माघ २०१४

जो हानिकारक कदापि नहीं होता प्रत्युत अवस्था विशेष में रोगनाश करने में पूर्ण समर्थ रहता है। आयुर्वेदीय आसव-अरिष्ट आयुर्वेदीय चिकित्सा का एक प्रमुख तथा अविच्छेद्य अंग है। आसव-अरिष्टों के द्वारा ही समस्त कायिक रोगों की चिकित्सा की जा सकती है। आसव-अरिष्टों में जो थोड़ा-सा अहानिकर अल्कोहल रहता है, वह सिर्फ औषध को सड़ने से बचाने और स्थायित्व देने भर के लिए ही रहता है। यही कारण है कि इन आसव-अरिष्टों से वैसे रोग भी दूर होते हैं जो पित्तप्रधान हैं—जैसे उशीरासव से रक्तपित्त रोग, वासकारिष्ट से राजयक्ष्मा रोग, अशोकारिष्ट से रक्तप्रदर तथा चन्दनासव से पूयमेह आदि-आदि। यदि आसव-अरिष्टों में मद्यसार अधिक होता तो पित्त (उष्णता) प्रधान रोगों में इनसे कभी लाभ नहीं पहुँचता। इनमें मद्यसार उतना ही रहता है, जिससे इनका स्थायित्व और गुण सुरक्षित रहें। इन आसव-अरिष्टों के पीने से नशा होने की तो कोई संभावना ही नहीं। वैद्यों ने कभी इन्हें मद्य के रूप में प्रचार नहीं किया। सभी आसव-अरिष्टों की एक मात्रा आधा औंस से एक औंस तक मानी गई है और रोगियों पर इसी मात्रा में बलाबल का विचार कर इनका व्यवहार होता है किन्तु आयुर्वेदीय किसी भी आसव या अरिष्ट को कोई व्यक्ति एक ही बार एक बड़ी बोतल—जिसमें २४ औंस औषधि रहती है—पी ले, तब भी उस व्यक्ति में नशे का कोई भी चिह्न प्रकट नहीं हो सकता। मात्राधिक्य के कारण वह कुछ उष्णता का अनुभव करेगा।

आसव-अरिष्ट अल्प-व्ययसाध्य भी हैं। इनमें बड़ी भारी विशेषता यह भी है कि ये रस-भस्म की तरह जैसे-जैसे पुराने पड़ते जाते हैं, वैसे-वैसे इनका गुण अधिकाधिक बढ़ता जाता है, ये कभी हीनवीर्य नहीं होते। इनके निर्माण में अधिक कठिनाई नहीं पड़ती और इनके द्वारा गरीब रोगियों की भी चिकित्सा कम मूल्य में सम्पन्न हो जाती है। आयुर्वेदीय रस-भस्म आदि औषधियाँ जिस रोग पर व्यर्थ हो जाती हैं, वहां आसव-अरिष्ट अपने विलक्षण चमत्कार दिखलाते हैं। जब कितनी ही जीर्ण व्याधियां, अन्य योगों से आराम नहीं होतीं, तब आसव-अरिष्ट के सेवन से उनमें सन्तोषजनक लाभ प्राप्त होता है। पता नहीं सरकार ने किस दृष्टिकोण से आयुर्वेदीय चिकित्सा के जनोपयोगी सस्ते तथा सुलभ इस प्रधान अंग को मद्य के अन्तर्गत स्वीकार किया है। जो लोग आसव-अरिष्ट को एक प्रकार का मद्य समझते हैं वे भूलते हैं। मद्य में तो मादक पदार्थ अधिक तथा तेज उत्पन्न होता है, आसव-अरिष्ट में मादक नहीं अपितु औषधियों का सत्व द्रव पदार्थ में रहता है। अतः यह मादक या मद्य पदार्थ कदापि नहीं है और न मादकता के लिए इनका उपयोग ही किया जाता है।

आसव-अरिष्ट के द्वारा ८५ प्रतिशत जनता की चिकित्सा की जाती है और आयुर्वेदीय चिकित्सक एक भी ऐसा नहीं होगा, जिसकी चिकित्सा का मुख्य अंग आसव-अरिष्ट न हों। ऐसी स्थिति में आसव-अरिष्ट को मद्य श्रेणी में लेना आयुर्वेद के प्रभाव और प्रचार पर रुकावट डालने जैसा ही है।

देश स्वतन्त्र हो चुका है और अब अपनी सरकार है जिससे हम आयुर्वेद के पुनरुद्धार

की आशा रखते हैं। हम यह भी आशा बाँधे बैठे हैं कि एक दिन भारत का चिकित्सा वि आयुर्वेद होगा। उसी सरकार द्वारा आयुर्वेद के प्रमुख अंग आसव-अरिष्ट पर कुठाराघ करते देखकर भारतीय जनता तथा वैद्य समाज का दुःखी होना स्वाभाविक है। आयुर्वे आसव-अरिष्टों पर प्रतिबन्ध लगने से आयुर्वेद का अस्तित्व ही खतरे में है और वैद्यों लिए तो जीवन-मरण का प्रश्न है। आयुर्वेद के अनुसंधान तथा प्रोत्साहन की बात तो रही इस प्रतिबन्ध के द्वारा तो आयुर्वेद और पंगु बन जायगा और सम्पूर्ण आयुर्वेद जगत भयंकर संकट का बादल छा जायगा। किसी भी आसव-अरिष्ट में ५ से १० प्रतिशत तक तक मद्यसार उत्पन्न न हों तब तक वह आसव-अरिष्ट न स्थायी होता है और न उसमें तथा शक्ति का आधान ही होता है। २ प्रतिशत मद्यसार का तो कोई अर्थ ही नहीं। इ अधिक तो सिरका, अचार तथा राई-नोन पड़े हुए बासी मट्ठे में भी मद्यसार उत्पन्न जाता है। न जाने किन दिमागों ने सरकार को ऐसे अविवेक पूर्ण कानून के निर्माण में स देकर प्रवृत्त किया है। ऐसे वैज्ञानिक और आयुर्वेदिक विषयों में आयुर्वेद के विद्वानों परामर्श नहीं लेकर कानून बनाना उपहासास्पद ही हुआ है।

हमारा सरकार से अनुरोध है कि वह आयुर्वेदीय आसव-अरिष्टों के प्रतिबन्ध के लि बनाये गये कानून पर अविलम्ब पुनर्विचार करे और आयुर्वेद जगत के क्षोभ और अशा को दूर करने के विचार से तथा ८५ प्रतिशत जनता की हित भावना से वह आसव-अरि पर लगाये गये सभी प्रतिबन्ध हटाकर सदाशयता का परिचय दे।

तार—इंजैक्शन—झाँसी लाο नंο २/ एसο सीο / पीο फोन नंο ५६

मिश्रा आयुर्वेदिक इन्जैक्शन्स तथा आο पेटेन्ट औषधियां

सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त

वैज्ञानिक रसायनशाला में सरकारी मान्यता प्राप्त ट्रेन्ड वैज्ञानिकों, कैमिस्टों की दे रेख में निर्मित होते हैं। लाखों रुο की पूंजी द्वारा आधुनिक विद्युत यंत्रों से सुसज्जि विशुद्ध, प्रमाणिक, निरापद, असली और चमत्कारिक गुणकारी हैं विवरण पत्रि मुफ्त मंगायें। सर्वप्रथम आविष्कर्ता व लाइसेन्स प्राप्त :—

जीο एο मिश्रा आयुर्वेदिक फार्मेसी
श्री भैरवनिकुंज, झांसी नंο १०

हमारे देहली के सोल ऐजेन्ट—मैसर्स रायल स्टोर्स, गोलमार्केट, नई देहली।

पञ्चविध कषायकल्पनम्

आयुर्वेदाचार्य श्री वागीश्वर शुक्ल, A. M. S. सैंट्रल रिसर्च इंस्टिट्यूट, जामनगर

ख्रिस्तस्य विंशीशताब्दी वैज्ञानिकाभ्युन्नतीनां चरमसीमायां वर्तते। अस्यामपि सूक्ष्मतयाऽवलोकनं क्रियेत चेत् स्पष्टं भवति यदणुमात्रमप्यनवधानं विनाशाय सम्पद्यते। यथा भौतिकविज्ञानस्य तथैवायुर्विज्ञानस्याप्युदयो द्रुतगत्या भवति। विंशत्यब्दपूर्वं येषामौषधानां कल्पनाऽपि नाक्रियत, ये रोगा असाध्या आसन्, तेषामद्य साध्यत्वं सहजमेव सम्पद्यते। अस्मिन् महति समृद्धिकाले आयुर्वेदस्योपयोगिता वर्तते न वा ? इति विचारणीयम्।

सुभाषित-वाक्यं विद्यते यत् "पुराणमित्येव न साधु सर्वम्" इति। अतीतकालादायुर्वेदो भारतीयानां स्वास्थ्यरक्षणं व्याधिपरिमोक्षञ्च करोतीत्येव तस्योपयोगितां न प्रमाणयति अपि त्वद्यापि स सर्वेषां वैश्वजनानां रक्षणे समर्थोऽस्तीत्यपि तं साधयति जीवितमग्रे। प्रत्यक्षदर्शी संसारः। प्रमाणानामपि च प्रत्यक्षपूर्वमेव प्रामाणिकतां स्वीकरोति तस्य (प्रत्यक्षस्य) सर्वेषु ज्येष्ठत्वात्। अव्यभिचरितवाक्यत्वमेव वेदत्वम्। चिकित्साशास्त्रस्योपयोगित्वस्य निकषग्रावा तु आतुर एव। यदा प्रयोज्ये हितकरं फलं दृश्यते तदा तु तच्छास्त्रस्योपयोगित्वमन्यथाऽनुपयोगित्वमनिष्टफलदर्शनात्। अयं सामान्यः सिद्धान्तः प्राचीनार्वाचीनासु समस्तास्वपि चिकित्सापद्धतिषु समानरूपेण व्याप्तिग्रहं प्राप्नोति। नव्यचिकित्साप्रणालीद्वारा विपरिणामे अनिष्टफलदर्शनाद् आयुर्वेदे कदाप्यहितकरफलदर्शनाभावाच्च सिद्धं भवति तस्य वेदत्वमतः सर्वास्वप्यवस्थासु तस्यावलम्बनमेव श्रेयस्करम्।

एतदवधार्यं विभिन्नव्याधिषु प्रयुक्तानां तथा तत्र-तत्र विप्रकीर्णानामायुर्वेदीयौषधानां संग्रहार्थं प्रवर्ते। तत्र पञ्चकषायकल्पनायाः संहिताग्रन्थेषु महत्वं दृश्यते। चरकसंहितायामाचार्यस्य मतं वर्तते—

"कषायकल्पना व्याध्यातुरबलापेक्षिणी, नत्वेवं खलु सर्वाणि सर्वत्रोपयोगीनि भवन्ति" इति। (च० सू० ४ अ०)

अत्र चक्रपाणिराह—"कषायकल्पना व्याधेरातुरस्य च बलमपेक्षते। बलवति पुरुषे व्याधौ च द्रव्यसारभागमयत्वेनात्यर्थं गुरु बहुकार्यकरः स्वरसो युज्यते; नायमल्पबले रोगे पुरुषे वा योगवान् स्यात् बलभ्रंश भेषजातियोगदोषकर्तृत्वात्। तथा न सर्वाणि स्वरसादीनि सर्वत्र पुरुषे योग्यानि स्युः, यतः केचित् स्वरसद्विषः, केचित् स्वरसप्रियाः, केचिदितर कल्पना द्विषः। न चात्यर्थं द्विष्टभेषजस्य प्रयोग इष्यते—तत्क्षण वमनारुच्यादिदोषकर्तृत्वादिति।"

न केवलं व्याध्यातुरानुसारेणाऽपि तु द्रव्यभागगतरसवीर्यानुसारेणापि कल्पनाप्रसंगे विचारणा भवतीति दर्शयन् आह—

"मण्डूकपर्ण्याः स्वरसः प्रयोज्यः क्षीरेण यष्टीमधुकस्य चूर्णम् ।
रसो गुडूच्यास्तु समूलपुष्प्याः कल्कः प्रयोज्यः खलु शङ्खपुष्प्याः ॥ इति
(च० चि० १ अ—तृ० रसायन पाद)

आतुरबलग्रहणेनातुरस्याग्निबलमपि गृहीतम्भवति, यथाह वाग्भटः संग्रहे—"मण्डूकपर्ण्याः स्वरसं यथाग्निरिति" । अत एव द्रव्यसारभाग-व्याध्यातुरबलविज्ञानपुरस्सरं कल्पनायाः पञ्चविधत्वमुपदिष्टमाचार्यैः, यथा—

"पंचविधकषायकल्पनमिति, तद्यथा-स्वरसः, कल्कः, शृतः, शीतः, फाण्टः कषायश्चेति" । च० सू० ४ अ०

अत्र चक्रपाणि :—"कषाय शब्दोऽयं स्वरसादिभिरपि सम्बध्यते, तेन स्वरसकषाय इत्यादि" ।

सुश्रुते तु क्षीरमधिकं पठित्वा कल्पनानां षड्विधत्वमुक्तम्, यथा—

"क्षीरं रसः कल्पमथो कषायः शृतश्च शीतश्च तथैव चूर्णम् ।
कल्पाः षडेते………………………………॥" सु० सू० ४४ अ०

संग्रहे वाग्भटेनोक्तं—"तत्र लवण वर्ज्या रसाः कल्पनायां कषाया इत्युच्यन्ते" ।
अ० सं० सू० १५ अ०

अत्रेन्दुनोच्यते—लवणवर्ज्याः पञ्चरसाः क्वाथ चूर्णादि कल्पनायां कषायशब्दवाच्याः तद्योनित्वाद्रसानां ।

अत एव स्फुटम्भवति यत् कषायकल्पनानां पञ्चधात्वमेव वर्तते । यत्तु सुश्रुतेन क्षीरस्याप्युल्लेखः कृतः तन्नाति युक्तिसहं क्षीराणां सर्वेषु द्रव्येषु सम्भवाभावात् । क्षीरशब्देन क्षीरपाकविधिर्गृह्यते चेत्तन्न तादृशान्यपि हि सन्ति द्रव्याणि यैर्न भवितुं शक्नोति क्षीरेण सह संयोगः । अथ चूर्णस्यापि पृथङ्निर्देशो नोचितः तस्य कल्क एवान्तर्भावात् । अतः सुश्रुतोक्तयोः क्षीर चूर्णयो क्रमात् स्वरसकल्कयोरन्तर्भाव एव साधु, तथात्वे कल्पनानां पञ्चधात्वमपि न दुष्यति । तत्तु वाग्भटेन "लवणवर्ज्या रसा" इत्युक्तं, तत्तु रसशब्देन कषाययोनीनां व्यपदेश एवोपपद्यते, यदुक्तं चरके—"पञ्चकषाययोनय इति मधुरकषायोऽम्लकषायः कटुककषायस्तिक्तकषायः कषायकषायश्चेति तन्त्रे संज्ञा" इति (च० सू० ४ अ०)

अत्र मधुरश्चासौ कषायश्चेति मधुरकषायः, एवं शेषेष्वपि । कषायसंज्ञेयं भेषजत्वेन व्याप्रियमाणेषु रसेष्वाचार्येण निवेशिता । कल्पनमुपयोगार्थं प्रकल्पनं संस्करणमिति । शक्तिविशेषाधानार्थञ्च कल्पना क्रियते ।

उपर्युक्तविवरणेन स्फुटं भवति यद् बलवत्यां व्याधौ बहुकार्यंकरत्वात् स्वरसप्रयोग एव श्रेयान् । एतदवधार्यैव वैद्यवृन्दैः प्राय औषधानामनुपानरूपेण स्वरसस्य संयोजना क्रियते । ततश्चादौ स्वरसनिर्माणविधिः पश्चाद् बलाबलतारतम्याज्ज्वरादिव्याधिसु तेषामुपयोगश्च प्रपञ्चयिष्यते ।

माघ २०१४

स्वरसनिर्माणपरिभाषा त्वियम्—

(१) यन्त्रप्रपीडनाद् द्रव्याद् रसः स्वरस उच्यते। (च० सू० ४ अध्याये) क्वचित्पाठोऽयं दृश्यते।

(२) स्वो रसः स्वरसः प्रोक्तः (च० सू० ४ अ० चक्रटीकायां वचनमुपलभ्यते)।

(३) तत्र सद्यः समुद्धृतप्रक्षालितक्षुण्णस्य तान्तरनिष्पीडितस्य स्वरसो निर्यासः। सद्यः समुद्धृतादिगुणयुक्तस्य यः स्वरसः स निर्यास इतीन्दुः। (अ० सं० क० , अ०)

(४) सद्यः समुद्धृतात् क्षुण्णाद्यः स्रवेत् पटपीडितात्।
स्वरसः स समुद्दिष्टः……………………॥ अ० हृ० क० ६ अ०।

(६) आहतात् तत्क्षणाकृष्टाद्द्रव्यात् क्षुण्णात्समुद्धरेत्।
वस्त्रनिष्पीडितो यः स रसः स्वरस उच्यते॥ शा० म० स्वरसाध्यायः

द्रव्यादिति सामान्यग्रहणेनात्र त्वङ्मूलफलादीनां ग्रहणम्। न हतं अहतं तस्माद् आहतात्-"आहतः स्यात् प्रतीघाते आहतं क्षतितेऽपि चे" ति विश्वकोषः।

अत 'आहतादि' ति कृम्यग्न्यादिभिरदूषितात्, कृम्यादि दूषितस्य भेषजकल्पे निषेधात्। तत्क्षणाकृष्टादिति सद्यः समुद्धृतात् न तु पर्युषितात्। क्षुण्णादुलशिलापट्टादिषु मुसलशिलापुत्रकादिभिः कुट्टितात् वस्त्रनिष्पीडित इति पटेन परिस्रुतो रसः स्वरस उच्यते।

सर्वदा हरित द्रव्याऽलाभे तु स्वरसस्य प्रकारमाह—

स्वरसानामलाभे त्वयं स्वरसविधिः—चूर्णानामाठकमाठकमुदकस्याहोरात्रस्थितं मृदितपूतं स्वरसवत् प्रयोज्यम्। (च० चि० १ अ० द्वि० पाद)।

शुष्क चूर्णीकृतानामाठकं (२५६ तोलकम्) यथेष्टपरिमाणं वा तावन्माने जले प्रक्षिप्याहोरात्र स्थितमादौ हस्ताभ्यां मर्दितं पश्चाद् वस्त्रेण गालितं कृत्वा स्वरसवत्प्रयोज्यमिति।

शार्ङ्गधरे मध्यमखण्ड स्वरसाध्याये तु दृश्यते—

कुडवं चूर्णितं द्रव्यं क्षिप्तं च द्विगुणे जले।
अहोरात्रं स्थितं तस्माद् भवेद्वा रस उत्तमः॥ १॥
आदाय शुष्कद्रव्यं वा स्वरसानामसंभवे।
जलेष्टगुणिते साध्यं पादशिष्टं च गृह्यते॥ २॥

कुडव (१६ तोलक) परिमाणं द्रव्यं द्विगुणे जले क्षिप्तं-अहोरात्रस्थितं स्वरसवद्भवति, यद्वाऽष्टगुणे जले क्वथितं पादावशेषितं स्वरसवद्भवतीति योजना। किन्तु चारकीय परिभाषा एव साधु दृश्यते।

स्वरसस्य पानार्थं परिमाणमाह—

स्वरसस्य गुरुत्वाच्च पलमर्धं प्रयोजयेत्।
विशोषितं चाग्निसिद्धं पलमात्र रसं पिबेत्॥ इति (शा० म० स्वरसाध्यायः)

किन्त्वियं पानार्द्ध (२ तो०) मात्रा मृदुवीर्यौषधस्य ज्ञेया। औषध्यातुरबलपूर्वकं तत्र विभागमर्हतीति।

स्वरसे द्रव्याणां प्रक्षेपप्रमाणन्त्विदम्—

मधुश्वेता गुडं क्षारान् जीरकं लवणं तथा ।
घृतं तैलं च चूर्णादीन् कोलमात्रन् रसे क्षिपेत् ॥ (श० म० स्व०)

श्वेता तु सितशर्करा, कोलमित्यर्द्धतोलकम् ।

अथातो ज्वरे प्रयोज्यानां स्वरसानां संग्रहे प्रवर्तिष्ये यथाहुरात्रेय धन्वन्तरि प्रभृतयो महर्षय उत्तरकालीनाऽऽचार्यश्च—

तत्र प्रथमतः नवे वातज ज्वरे—

(१) गुडूच्याः स्वरसो ग्राह्यः शतावर्य्याश्च तत्समः ।
निहन्यात् सगुडः पीतः सद्योऽनिलकृतं ज्वरम् ॥ सु० उ० ३९ अ०

अयमेव योगः शब्दभंग्या अ० सं० चि० १ अ०, चक्रदत्त, ज्वराधिकारे, भैषज्यरत्नावल्याञ्च प्रोक्तः ।

(२) स कृष्णजीरकसितानागरश्चामृतारसः ।
वातज्वरं जयन्त्याशु केवलो वामृतारसः ॥ अ० सं० १ अ०

पित्तजज्वरे तु—

हृतावशेषं पित्तन्तु त्वक्स्थं जनयति ज्वरम् ।
पिबेदिक्षुरसं तत्र शीतं वा शर्करोदकम् ॥ सु० उ० ३९ अ०

अत्र डल्लनेनोच्यते—हृतावशेषमिति हृतावशेषपित्तज्वरे । यद्यपि त्वक्स्थे पित्ते बहिः परिमार्जनं युक्तं नान्तःपरिमार्जनम्, तथापि तद्वीर्ययुक्तस्य रसस्य सर्वतोगमनादन्तः परिमार्ज्जनमुक्तम् ।

वातपित्तज ज्वरे—

गुडूची पर्पटे भेकपर्णी च हिलमोचिका ।
पटोलं पुटपाकेन रसमेषां मधुप्लुतम् ।
वातपित्तज्वरं हन्ति चिरोत्थमपि दारुणम् ॥ भैं० र० ज्वरा०

कफपित्त ज्वरे—

सपत्रपुष्पवासाया रसः क्षौद्रसितायुतः ।
कफपित्तज्वरं हन्ति सास्रपित्तं सकामलम् ॥
चक्रदत्त, भावप्रकाश, भैं० र० ज्वराधि० ।

विषमज्वरे—(१) गुडूच्याः स्वरसं (विषमज्वरे पिबेत्) । च० चि० ३ अ०

(२) मधुना सर्वज्वर नुच्छेफालीदलजो रसः । चक्र०, भैषज्यरत्नावल्याम् ।

चातुर्थिकविषमज्वरे—

(१) पीतो मरिचचूर्णेन तुलसीपत्रजो रसः ।
द्रोणपुष्पीरसोनापि निहन्ति विषमज्वरान् ॥
योगरत्नाकर वि० ज्वर० चि० ।

(२) नस्यम्—

अखण्डितशरत्कालकलानिधिसमानने ।
चातुर्थिकहरं नस्यं मुनिद्रुमदलाम्बुना ॥ यो० वि० ज्वर० चि०

(३) अञ्जनम्—

चातुर्थिकज्वरं हन्ति द्रोणपुष्पीरसाञ्जनात् ॥ ,,

सर्वेऽपि जीर्णज्वरे—

(१) द्राक्षा धात्रीरसं तद्वत् सद्राक्षां वा हरीतकीम् ।
रसमामलकानां वा घृतभृष्टं ज्वरापहम् ॥ अ० सं० चि० २ अ०

(२)……त्रिफलां पिबेद् द्राक्षारसेन वा । ,,

(३) आरग्वधं वा पयसा मृद्वीकानां रसेन वा । ,,
(अयमेव चक्रदत्तेन विरेचनार्थे प्रयुज्यते) ,,

(४) पयोनुपानमुष्णं वा मृद्वीकास्वरसं पिबेत् । ,,

(५) पिप्पलीमधुसंमिश्रं गुडूचीस्वरसं पिबेत् । ,,
जीर्णज्वरकफप्लीहकासारोचकनाशनम् । भैषज्यरत्नावली ज्वराधिकारे ।

(६) अस्थिकर्कटपञ्चांगं, शुण्ठ्या चिरज्वरप्रणुत् । ,,
(पुटपाकविधिना प्रयोक्तव्यम्)

अभिन्यास ज्वरे—(कण्ठरोधे)

कण्ठरोधकफश्वासहिक्कासन्यासपीडितः ।
मातुलुङ्गार्द्रकरसं दशमूल्यम्भसा पिबेत् ॥ चक्र० ज्वरा० ।

वैद्यों को स्वर्ण-अवसर

हमारे यहाँ "रस सिन्दूर" की श्वेतभस्म जो कि आयुर्वेदिक जड़ी-बूटियों द्वारा निर्माण की गई है। नपुंसकता पर एक चामत्कारिक योग है। मूल्य ४५) रु० तोला, डाक व्यय ५) रु० अलग, अग्रिम भेजें। मंगाइये और लाभ उठाइये।

डा० देवेन्द्रदत्त शर्मा वैद्य,
फिज़िको कैमिकल्ज़, सुभाष मार्ग, पठानकोट (उत्तर भारत).

ज्वरचिकित्सायां स्वरसार्थमुपयुज्यमानद्रव्याणां परिचयपूर्वकमकाराद्यनुक्रम

आयुर्वेदशास्त्रीय नाम	वनस्पतिशास्त्रीय नाम	द्रष्टु: नाम (Author's name)	लोकभाषायां नाम
१. अगस्त्य:	Sesbonia Grandiflora	—	स्वनामख्यात:
२. अस्थिकर्कट:	—	—	—
३. आमलकी	Phylanthus Emblica	L	आंवला
४. आरग्वध:	Casia fistula	,,	अमलतास
५. इक्षु: (शर्करासिता	Seccharum officinarum	,,	गन्ना, ऊख
६. कृष्णजीरक:	Carum carbi	—	कालाजीरा
७. गुडूची	Tinisfora corbifolia	—	गुरुच
८. तुलसी	Ocimum Sanctum	—	स्वनामख्यात
९. द्राक्षा-मृद्वीका	Vitis Vinifera	L	मुनक्का
१०. द्रोणपुष्पी	Leucus Cephalotes	—	गुम्म
११. नागरम् (शुण्ठी-आर्द्रक)	Zinziber Officinalis	Rose	सोंठ, आदी
१२. पटोल	Trinchosanthes Diocea	Roxb	परवल
१३. पर्पट:	Rangia repens	Nees	पित्तपापड़ा
१४. पिप्पली	Piper Longum	L	पीपर
१५. भेकपर्णी	Hydrocotylaasciatic	L	मंडूकपर्णी
१६. मधु	—	—	शहद
१७. मरिचम्	Piper Nigrum	L	मरिच काली
१८. मातुलुङ्ग	Citrus decumena	Murr	बिजौरा या बड़ा नीबू
१९, वासा	Adharagns Vacila	Nees	अँडूसा
२०. शतावरी	Asparagus racemusus	—	शतावर
२१. शेफाली	Nyctanthes arbot Tristes	—	हरसिंगार, पारिजात
२२. हरीतकी	Terminalia Chebula	Retz	हर्रा
२३. हिलमोचिका—	—		बथुआ

हिलमोचिकानामानि—

वास्तुकं वास्तु वास्तूकं वस्तुकं हिलमोचिका ।
शाकराजो राजशाकश्चक्रवर्ती च कीर्तित: ।। रा० नि०

गुणा :—

वास्तुकं तु मधुरं सुशीतलं क्षारमीसदमलं त्रिदोषजित् ।
रोचनं ज्वरहरं महार्शसां नाशनं च मलमूत्रशुद्धिकरम् ।। इति राजनिघण्टौ ।

आयुर्वेद और प्राकृतिक चिकित्सा

ले०—वैद्य श्री किशोरीदास भागीरथ गुप्त, बम्बई

रोग निवारण सम्बन्धी कितनी ही बातों में प्रचलित सब ही चिकित्सा पद्धतियों के साथ आयुर्वेद की साम्यता होना और बात है, तथा मौलिक सिद्धान्तों में सामञ्जस्य होना सर्वथा भिन्न बात है। इस दृष्टि से विचार करने पर आयुर्वेद के मौलिक सिद्धान्त जिस शाश्वत सत्य पर अधिष्ठित हैं, उनका परिवर्तनशील सिद्धान्तों के साथ मेल मिलाप होना बिल्कुल असंभव है। ऐसा मेल-मिलाप तो शाश्वत सिद्धान्तों पर आधारित पद्धति के साथ ही हो सकता है फिर चाहे वह आधुनिकतम हों या प्राचीनतम। इस दृष्टि से देखने पर केवल मात्र आधुनिक नेचुरोपैथी में ही आयुर्वेद के सिद्धान्तों के साथ साम्यता पाई जाती है। दोनों ही पद्धति के एकरूपता वाले उन मौलिक सिद्धान्तों का सम्बन्ध रोग निवारण की अपेक्षा उनके प्रतिबन्धक उपायों से सर्वाधिक है।

यद्यपि नेचुरोपैथी का जन्म पाश्चात्य देशों में हुआ तो भी एलोपैथी के सिद्धान्तों के साथ उसका विरोध है। एलोपैथी और नेचुरोपैथी के परस्पर विरोधी उन बुनियादी मुद्दों को स्पष्ट करने से पूर्व उनके आधारभूत प्रमाण जिनका संक्षिप्त उद्धरण यहां दिया जावेगा, की प्राप्ति के स्रोत को स्पष्ट करना आवश्यक है जिससे उनकी प्रामाणिकता एवं महत्ता सहज ही ज्ञात हो सके। ब्रिटिश नेचुरोपैथ एसोशिएशन के सदस्य श्री हेरी बेंजामिन (Harry Benjamin) ने "Your diet in health and disease" नामक जो पुस्तक इंग्लैण्ड से प्रकाशित की उसका भारतीय संस्करण पूज्य गांधी जी के हरिजन आश्रम साबरमती से सन् १९४० में प्रकाशित किया गया है उसी के आधारपर चुने हुये मुद्दों को यहाँ स्पष्ट किया जाता है।

(१) **फिजिओलाजी—क्रियाशारीर विज्ञानः**—किसी भी वैद्यक पद्धति के लिये आवश्यकता स्वास्थ्यपूर्ण या प्राकृत शरीर के मानदण्ड निश्चय करने की है, जिसके आधार पर रोग के कारण उनमें होने वाले परिवर्तनों का तुलनात्मक विचार और उनके निवारण की उपाय-योजना आदि कार्य सुलभता से सम्पन्न किये जा सकें या रोग कारक परिवर्तनों के कारणों की यथार्थ खोज की जा सके। ऐसे ही शास्त्र को आधुनिकों ने "फिजीओलोजी" तथा प्राचीनों ने "क्रियाशारीर" की संज्ञा दी है।

इस प्रकार स्वस्थ शरीर के मानदण्ड या फिजीओलोजी की दृष्टि से पाश्चात्य दोनों ही चिकित्सा पद्धतियों की आधार भूमिका का गम्भीरता पूर्वक विचार करने पर वे आपस में विरोध रखने वाली सिद्ध होती हैं। एलोपैथी का स्पष्ट कथन है कि शरीरगत रस, रक्तादि सब ही क्रिया-गतिशील घटक **अम्ल तथा लवणक्षार** युक्त होते हैं जिनकी लवणता का प्रमाण अम्लता की अपेक्षा अधिक होता है, जब की नेचुरोपैथी का मत उससे सर्वथा विपरीत है। उसका कथन है कि शुद्ध या प्राकृत शरीर में न तो लवणक्षार (Alkalinity) का और न अम्ल-

क्षार (acidity) का किसी भी अंश में अस्तित्व रहता है। उन दोनों का **निष्क्रिय बनना (neutralised) और सम्पूर्णतया शरीर से बाहर निकल जाना (elimination) परम आवश्यक है,** अन्यथा वह शरीर प्राकृत नहीं विकृत है और उसमें रोग के कीटाणुओं का अस्तित्व अथवा आगमन अवश्य **सम्भव** हो सकता है। यथा:—

Elimination

It will be seen, therefore, that proper elimination is as essential to health as proper food, since acid waste products must arise from the work of cell (metabolism), quite apart from the accumulation of waste materials due to the ingestion of dimineralised and over abundant food products—so that even when these residual materials are completely neutralised by the alkaline mineral salts present in the cell, the product of this neutralisation still has to be removed from the system. page 22

स्वस्थ शरीरगत रस, रक्तादि सब ही द्रव घटकतत्वों की रचना के बारे में जो आयुर्वेद का सिद्धांत है, वह नेचुरोपैथी के मत की ही सम्पूर्णतया पुष्टि करता है। उसका भी सुस्पष्ट यही कथन है कि गतिशील उक्त सब ही द्रव घटकों की **प्राकृत रचना-स्वरूप लवण किंवा अम्ल किसी भी प्रकार के क्षार से सर्वथा विरहित होता है,** क्यों कि रस, रक्त और लार (बोधक कफ) का प्राकृत स्वरूप **मधुर** और केवल पित्त का प्राकृत स्वरूप **कटु** होता है। किन्तु विदग्ध या वैकारिक अवस्था को प्राप्त होने पर लार (कफ) को छोड़कर बाकी सब **अम्लता** को और कफ **लवणता** को प्राप्त होता है। यथा:—

सम्यक् पक्वस्य भुक्तस्य सारो निगदितो रसः।
स तु द्रवः सितः शीतः स्वादुःस्निग्धश्चलो
भवेत्। मन्दवाहि विदग्धस्तु **कटुर्वाम्लो** भवेद्रसः। स कुर्याद्बहुलान् रोगान् विषकृत्यं
करोत्यपि ॥ (भा० प्र०)

श्लेष्मा श्वेतो गुरुः स्निग्धः पिच्छिलः
शीत एव च।
मधुरस्त्वविदग्धः स्याद्विदग्धो **लवणः** स्मृतः॥
अनुष्णं शीतं मधुरं स्निग्धं रक्तं च वर्णतः।
शोणितं गुरुविस्रं सिस्याद्विदाहश्च पित्तवत्॥
पित्तं तीक्ष्णं द्रवं पूति नीलं पीतं तथैव च।
उष्णं **कटुरसं** चैव विदग्धं चाम्लमेव च॥
(सु० सू०)

इस प्रकार स्वस्थ-प्राकृत-शुद्ध शरीर के रस, रक्तादि की सूक्ष्म रचना के मानदण्ड के सम्बन्ध में आयुर्वेद और नेचुरोपैथी दोनों का ही एकमत सुस्पष्टता से सिद्ध होता है, जब कि एलोपैथी का मत दोनों से ही विपरीत याने अस्वस्थता विकारी अवस्था का प्रत्यक्ष प्रतीक है।

नोट—नेचुरोपैथी के उक्त शुद्धि करने वाले सिद्धान्त में (Neutralisation) **निष्क्रियता** याने शमन को लेकर जो कुछ भी कहा गया है, वह ठीक वाग्भटोक्त निम्न प्रतिपादन का ही समर्थक है, जिसमें लंघन, पाचन आदि द्वारा शमन किये गये दोषों के पुनः प्रकुपित होने की सम्भावना का स्पष्टीकरण करते हुए उनके संशोधन कर्म पर भार दिया गया है। यथा:—

दोषा कदाचित् कुप्यन्ति जिता लंघनपाचनैः।
ये तु संशोधनैः शुद्धा न तेषां पुनरुद्भवः॥

(२) रोगोत्पत्ति का मूल कारणः—

स्वस्थ या शुद्ध शरीर में होने वाले क्रियाक-

रूप के मुख्याधार रस, रक्तादि की सूक्ष्म रचना के बारे में आयुर्वेद और नेचुरोपैथी दोनों जब एकमत हैं तब आज के प्रचलित रोगों की उनमें होने वाली उत्पत्ति के मूल कारण के सम्बन्ध में उनके भिन्न मत कैसे हो सकते हैं ? नेचुरोपैथी का सुस्पष्ट मत है अम्लक्षार (acidity) की शरीर में व्यापकता और संग्रह आदि प्रचलित सब ही रोगों की उत्पत्ति का मूल कारण है। आयुर्वेद भी उसकी इस मान्यता का सम्पूर्णतया समर्थन करता है, किन्तु अम्लक्षार की उत्पत्ति को शारीरिक चयापचय का जिस प्रकार स्वाभाविक परिणाम नेचुरोपैथी मानती है, उसे आयुर्वेद वैसा नहीं मानता। वह उसे कफ प्रधान आहार जनित **मंदाग्नि** का परिणाम मानता है याने शरीर चयापचय का वह स्वाभाविक नहीं, वैकारिक परिणाम है, जिसका कारण उसकी आहार प्रथा में अति स्पष्टतया मौजूद है जिसमें केवल मात्र कफ प्रधान तीन मधुर, अम्ल, लवण-रसों का ही उपयोग होता है। यह एक छोटा सा मतभेद अवश्य है, किंतु फिर भी उसका, शुद्धिकृत रस,रक्तादि की रचना आयुर्वेदोक्त आहाराक्रम द्वारा जैसी की तैसी बनाये रखते हुये, सरलतापूर्वक निराकरण किया जा सकता है क्योंकि अंततोगत्वा दोनों ही पद्धतियों का मूलाधार भी उपरोक्त एक ही भूमिका पर अधिष्ठित है। इसलिये आहार और रोग का सम्बन्ध बतलाते हुए नेचुरोपैथी का निम्न कथन अवश्य विचारणीय है :—

Food and Disease

Further, in addition to the elements directly necessary for growth, maintainance and repair, the cell requires for its efficient functioning a certain amount of alkaline mineral salts, to be supplied to it continuously by the blood for the purpose of neutralising the waste materials which are formed as the by-products of body metabolism and are always acid in character". Page 15

But if the body's attempts to thus rid itself of its imposed burden are continually thwarted by the suppressive methods of treatment in vogue at the present time, the waste materials in question—which as has been explained, are always acid in character,—are thrown back into the tissues...and thus pave the way for the whole malancholy catalogue of diseases, from bronchitis and heart diseases, down to cancer and paralysis. page 17-18

(क्रमशः)

सूचना

हर प्रकार के शरीर रचना ज्ञान सम्बन्धी आयुर्वेदिक साधन, प्रतिमा (Model), चित्र (Chart), कंकाल (Skelton) आदि तथा औषधि निर्माण फार्मेसी सम्बन्धी यंत्र, मशीन से चलने वाले खरल, टिकियाँ व गोलियाँ बनाने की मशीनें, लोहे व पत्थर के खरल, सर्जीकल इन्स्ट्रूमेंट, सिद्धौषधियाँ, वनौषधियाँ, खनिज द्रव्य आदि के मिलने का पता :—

आयुर्वेदिक रिसर्च लेबोरेटरीज़,
दयालबाग़, आगरा।

फुफ्फुस का यक्ष्मा

राजवैद्य डा० श्री प्रभाकर चटोपाध्याय, आयुर्वेद बृहस्पति, कलकत्ता

[यह लेख लेखक की पुस्तक "राज-यक्ष्मा चिकित्सा" का एक अंश है। चिकित्सा सम्बन्धी अंश आगामी अंक में प्रकाशित किया जायेगा।

—सम्पादक]

शरीर के विभिन्न स्थानों में जितने प्रकार का यक्ष्मा होता है उनमें फुफ्फुस का यक्ष्मा प्रमुख है। यह अनेक कारणों से होता है। १६ से ३२ वर्ष तक के युवक-युवतीगण ही इस रोग से आक्रान्त होते हैं। अधिक आयु वालों पर इस रोग का आक्रमण कम होता है। वयोवृद्ध इससे आक्रान्त होने से बहुत शीघ्र क्षय को प्राप्त नहीं होते। उनका क्षय बहुत धीरे धीरे चलता है। विशेषकर शुक्रक्षय से उत्पन्न क्षयरोग बहुत थोड़े समय में ही राज-यक्ष्मा में परिवर्तित होकर रोगी का प्राण संहार करता है।

हमारा देश ग्रीष्म प्रधान होने से इस देश में क्षय के कारण निरन्तर विद्यमान रहते हैं। ग्रीष्म की दारुण गरमी से शरीर का रस रक्त अधिक क्षय होता है। आजकल प्रचलित फुटबाल, डम्बल, मुद्गर, अधिक वजन का भार उठाना, प्रतियोगिता करके कई सप्ताह तक साईकिल चलाना, तैरना आदि खेल-कूद और व्यायामों से भी युवकों को यक्ष्मा हो जाता है। फुफ्फुस के यक्ष्मा के अन्य करणों में मल-मूत्र आदि का वेगधारण, शरीर शोष और दुःसाहसिक कर्मों का करना आदि प्रमुख हैं।

प्रथम अवस्था का स्वरूप

चिकित्सा क्षेत्र में हमने प्रत्यक्ष किया है कि फुफ्फुस की यक्ष्मा वाला रोगी छाती के भीतर कुछ दवाव पड़ने का सा भाव अनुभव करता है। रोगी को कभी-कभी खाँसी होती है जिसमें कभी-कभी रक्त का छींटा भी आता है। किसी की छाती में जहाँ-तहाँ दर्द का अनुभव भी होता है। किसी को वेदना नहीं भी होती, खाँसी के साथ साधारण कफ उठता है और कभी नहीं भी उठता। खाँसी के साथ रक्त के छींटे सभी रोगियों में नहीं देखे जाते। तीसरे पहर मन्द-मन्द ज्वर होना एक विशेष लक्षण है, परन्तु यह भी सभी रोगियों को नहीं होता। दोपहर के बाद, माथे में दर्द, आँखों में जलन, शरीर मजम-जाना, काम में चित्त न लगना ये इस रोग के मुख्य लक्षण हैं। रोगी की कोष्ठ शुद्धि नहीं होती, ठीक-ठीक भूख नहीं लगती, शरीर कुछ-कुछ सूखता जाता है, कभी-कभी गर्दन और छाती में दर्द होता है, हाथ पांव में जलन जान पड़ती है। किसी-किसी में ये उपसर्ग बहुत कम जान पड़ते हैं। यहाँ तक कि क्षय के सूत्रपात का कोई बाह्य लक्षण सहज में नहीं दीख पड़ता। रोगी और वैद्य के अनजान में धीरे-धीरे फुफ्फुस के किसी अंश में क्षय की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार कुछ दिन बीतने पर अचानक किसी घटना के होने पर रोग अपना प्रकाश करता है। इस दशा में साधारणतः ये लक्षण प्रकट होते हैं, जैसे—(१) अचानक खांसी के साथ रक्त

निकलना, (२) अचानक ज्वर होना, (३) खांसी और (४) रक्त वमन।

चिकित्सा क्षेत्र में प्रत्यक्ष किया है कि अधिकांश क्षेत्रों में स्त्रियों के बायें फेफड़े पर और पुरुषों के दायें फेफड़े पर यक्ष्मा का असर होता है। अनेक समय फुफ्फुस के विभिन्न अंशों में इस तरह के अनेक क्षत उत्पन्न हो जाते हैं। किसी-किसी का रोग एक किनारे से प्रारम्भ होकर सारे फेफड़े को क्रमशः झंझर कर डालता है। किसी-किसी रोगी का उल्लिखित किसी कारण से फुफ्फुस का कोई अंश चटक कर या फट कर वहां से लगातार स्राव होकर क्षत हो जाता है जो बढ़कर सारे फेफड़े को क्षय कर देता है। क्षत की आकृति कई प्रकार की होती है। कोई देखने में दाद के चकले जैसा, कोई छोटे-छोटे छिद्र की तरह, कोई फटे हुये चमड़े की तरह और कोई क्रमशः क्षय वाले क्षत की तरह दीख पड़ता है।

अन्यान्य उपद्रव

स्वरभंग, रक्तवमन, रक्तोत्कास, सदा विशेषकर प्रातःकाल खांसी, गले में खुश्की रहना, पसली में दर्द, कन्धों में दर्द, रक्त हीनता, देह का सूखना, शरीर के रंग का फीका पड़ना, शरीर की चिकनाहट कम होना, अनियमित ज्वर; हाथ पैरों में जलन, शरीर के सब अंग-प्रत्यंग सूख जाना किन्तु चेहरे पर रौनक बनी रहना, आंखों में भीतर सफेदी अधिक होना, दांत नियमानुसार साफ करने पर भी मलिन प्रतीत होना, रात के समय निद्रा न आना। नाखून और बाल जल्दी जल्दी बढ़ना, रात में बुरे स्वप्न देखना, कृशता और सूखने के कारण हाथ पांव की अंगुलियां लम्बी हो जाना आदि।

फुफ्फुस का यक्ष्मा

अनुलोम क्षय—वायु, पित्त और कफ इन तीन दोषों द्वारा रसवह धमनी रुक जाने से रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र का क्षय हो जाता है। सब मार्ग रुक जाने से खाये हुये द्रव्य से उत्पन्न रस हृदय में ठहर कर विदग्ध होता है और खाँसी के साथ मुख से निकल जाता है। इसमें हृदय में संचित रस कफ के आकार में निकलता है। खांसी के बिना भी बल क्षय होता है। पूर्व में कहे हुये मार्ग रुक जाने के कारण वायु कुपित होकर हृदय में स्थित रस को सोखता है। रस सूख जाने से पुष्टि के अभाव में सब शरीर-व्यापी क्षय उत्पन्न होता है। इसके द्वारा अधिकांश क्षेत्रों में फुफ्फुस का यक्ष्मा होता है।

विलोम क्षय

अधिक शुक्र क्षयादि से प्रतिलोम क्रम से रसादि सब धातुयें क्षीण होती रहती हैं। अर्थात् शुक्र क्षीण होने से मज्जा और मज्जा के क्षीण होने से अस्थि क्षीण होती है। इस प्रकार विलोम क्रम से मेद, मांस, रक्त और रस धातु का क्षय होता है। इस प्रकार धातु क्षय के कारण मनुष्य सूख जाता है। इसके परिणाम से अधिकांश क्षेत्रों में फुफ्फुस का यक्ष्मा होता है।

अनुलोम और विलोम क्षय में भेदज्ञान

१—अनुलोम और विलोम दोनों ही प्रकार के क्षय में वायु अन्यान्य धातुओं का शोषण करके शरीर का क्षय उत्पन्न करता है।

२—अनुलोम क्षय में मार्गावरोध अर्थात् शरीरस्थ रसवह नाड़ी (धमनी) के कफ से रुक जाने के कारण हृदय में संचित रस धातु कुपित वायु द्वारा शोषित होता है। इसके

फल से शरीर की अन्यान्य धातुयें, जैसे रक्त मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र आदि पुष्टि के अभाव में क्षीण होकर शरीर क्षय करती हैं।

३—विलोम क्षय में प्रथम अति मैथुनादि कारणों से शुक्र धातु क्षय को प्राप्त होने से वायु बढ़कर मज्जा को क्षय करता है। इस प्रकार मज्जा के क्षय होने पर पूर्वोक्त कारणों से कुपित वायु और भी कुपित होकर अस्थि को क्षय करता है। इस प्रकार विलोमक्रम से मेद, मांस, रक्तादि सब धातुयें क्षय को प्राप्त होती हैं और अन्त में यक्ष्मा काय व्याधि उत्पन्न हो जाती है।

देखा जाता है कि अनुलोम क्षय में प्रथम रस क्षय होता है, फिर पोषण के अभाव से रक्त मांसादि अन्यान्य धातु क्षय होती हैं। विलोम क्षय में प्रथम शुक्र क्षय होता है, फिर मज्जा, अस्थि, मेद, मांस, रक्त रसादि धातुयें क्षय होती हैं।

चिकित्सा क्षेत्र में इन दो प्रकार के क्षय पर ध्यान रखकर क्षय पूरण की चेष्टा करने से सफलता प्राप्त होती है।

(आगामी अंक में समाप्य)

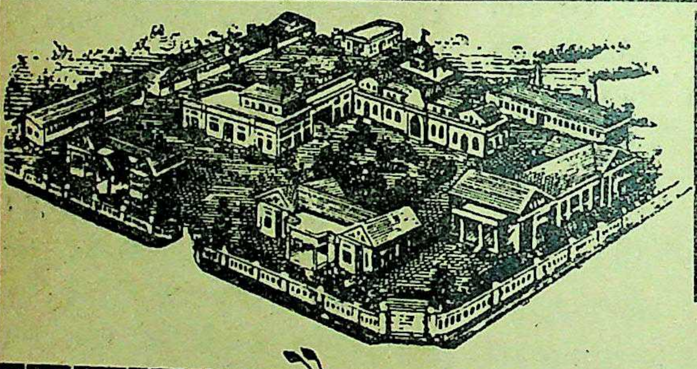

४५ वर्षों से विश्व भर में प्रतिष्ठा प्राप्त भारत की प्रमुख आयुर्वेदिक औषध निर्माणशाला

रसशाला औषधाश्रम REGD. गोंडल, सौराष्ट्र।

गोंडल रसशाला के कारखाने में विविध प्रकार की भस्में, रसरसायन, कूपिपक्व रसायन, पर्पटी, गुटिका, चूर्ण, वगैरह सैकड़ों प्रकार की हाथ से बनी औषधियाँ तैयार रहती हैं। हिन्दुस्तान के प्रत्येक प्रदेश में और चीन, फीजी, अफ्रीका, अमेरिका, युरोप में भी जाती हैं। सब भाषा के सूचीपत्र मुफ्त भेजते हैं।

ऋद्धिखडः—वादिखडः मूल्य ३) रुपया

नित्यनाथ सिद्ध का यह धातुवाद सुवर्ण सिद्धिका अद्भुत अप्राप्य ग्रन्थ संवत १७८ साल की हस्त लिखित प्रति के आधार से प्रसिद्ध किया है। पत्र २०० पक्का जिल्द २ उपदेश हैं। धातुवाद में रस लेने वालों के लिए संग्राह्य है। मूल श्लोक मात्र है।

गोंडल रसशाला औषधाश्रम शाखा नं० १
वसंत वाडी के सामने, ४१६ कालबा देवी रोड, मुम्बई २।

Pandit Shiv Sharma's Statement

IV

(*Continued from December 1957 issue*)

Having made clear previously how the learned Magistrate had to take recourse to conjecture due to no fault of mine, having himself rejected as "irrelevant and unnecessary" even the key evidence of Shri Morarji Desai and Shri Gulzarilal Nanda, the Union Ministers, who had very kindly agreed to appear as my witnesses to establish the truth, I will close my statement IV, with the replies of Shri Gulzarilal Nanda as received from him by post and the testimony of Dr. Ervin Baktay such as I have been able to collect from his writings.

SHRI GULZARILAL NANDA'S ANSWERS

(The 10 answers received from Shri Nandaji are given below in a re-arranged sequence so as to negative the wrong conclusions of the judgment more effectively and make it clearer as to how much factual information the Magistrate inadvertently lost when he refused me permission to produce Shri Nandaji as a witness).

7 & 8. Pandit Shiv Sharma's criticism has *not at all hurt* the cause of Ayurveda, on the other hand, it has helped in *creating a realisation* on the part of the Planning Commission and the Government that it owed to Ayurveda much more than had been done so far. The trends of Government policy regarding Ayurveda, have moved in the directions of suggestions so frequently made by Pandit Shiv Sharma. His writings and speeches have generally helped to creat wider support for Ayurveda. In this he has the advantage of a profound knowledge of Ayurveda, reinforced by a very good understanding of the modern sciences.

3. It is true that Shri Jawaharlal Nehru gave Pandit Shiv Sharma an interview at my request. This was an unofficial and informal meeting and Shri Nehru had made it clear that he was receiving Pandit Shiv Sharma in his *personal* capacity and not as a representative or office-holder of any organisation.

9. I have known Pandit Shiv Sharma for a sufficiently long time to be able to state with confidence that he is a person of unimpeachable integrity and sincerity. He is deeply devoted to his ideals and his service to his profession is characterised by selfless and missionary spirit.

5. Pandit Shiv Sharma was made a member of the Health Panel of the Planning Commission on the basis of his experience and learning and *not as a representative of a particular group or organisation.* His contribution to the deliberations of the Health Panel and other meetings held under the auspices of the Planning Ministry was always outstanding and won admiration even from those who were opposed to

him. In fact, after hearing him many times on various issues, it is generally felt that no other Ayurvedic physician in the country can plead the cause of Ayurveda as ably and vigorously as he has been doing.

6. I am the Chairman of the Universal Health Institute which Pandit Shiv Sharma is serving as the chief visiting physician and also as the Director of the Ayurvedic Research at the Institute. From what I have seen of his work at the Institute I can say that his popularity with the patients and his clinical skill fully match his scholarship and power of exposition.

2. Pandit Shiv Sharma used to criticise Raj Kumari Amrit Kaur in very strong terms. I told him that it was rather embarrassing for me to have to consult him on official and personal matters in these circumstances. This was some time in 1954. He appreciated my view point and adopted a much milder tone in his subsequent speeches and writings.

1. I have known Pandit Shiv Sharma for over 15 years. My first distinct recollection is that I met him at Sevagram where he used to come to attend on Gandhiji.

4. As a well wisher of Ayurveda I have to come into contact with a large number of Vaidyas in the country both in my personal and official capacity. I can safely say that Pandit Shiv Sharma's contribution to my faith and respect for Ayurveda is by far the richest.

10. He has had a long association with me. He has never approached me for any personal favour or benefit. Every time he has met me, except when he did so in his capacity as my physician, he invariably wanted the Government to do something for Ayurveda or the Ayurvedic profession but he never, even by a hint, wanted anything for himself or for any individual in whom he was personally interested.

DR. ERVIN BAKTAY'S TESTIMONY

The fear expressed in my application (rejected by the Magistrate) that if not permitted, Dr. Baktay's evidence would be lost to me for ever, has proved to be well-founded. Dr. Ervin Baktay, an eminent Indologist and orientalist, author of over 30 works, visited India at an invitation of the Union Government. Having completed his assignments here he has returned to Hungary. Like Shri Morarji Desai and Shri Gulzarilal Nanda, he had kindly agreed to tender evidence in this case. His evidence would have blown to bits the defence insinuation that newspapers started giving me publicity mainly due to my being the President of the Ayurvedic Congress.

As early as July 1928, over ten years before I became the President, even the *Civil and Military Gazette*, a staunch anti-Ayurvedic Anglo-Indian Daily of Lahore, (leaving aside the entire national press which always supported me) published a statement by me on its front page, under a double column heading, with a commendatory note that its "reasonable tone was in a welcome contrast to interminable abuse" which other Ayurvedic writers were indulging in. The editor was an

Englishman, utterly unknown to me, and I was not even a resident of Lahore at that time. The publication of my article criticising Lt. Col. Harper-Nelson, whom the paper was supporting in his anti-Ayurvedic campaign, on its front page, amounted to my breaking into the enemy territory by sheer merit. No President of the Ayurvedic Congress ever got that display. Dr. Ervin Baktay was greatly influenced by my article as well as by his personal contact with me. He knew that Dr. Gino Scarpa, Italian Foreign Minister for Eastern Affairs, had placed himself under my treatment after the failure of other systems to cure him, a fact, mentioned in Patrika of 1938 also. He knew a number of Maharajas who, at that time, or a little later, were under my treatment. I had introduced him to the fundamentals of Ayurveda and he had written two chapters—one on me and one on Ayurveda—in his two-volume treatise, *Indiai Eveim* (*My Years in India*). He had also reviewed my book, "*The System of Ayurveda*," which was published in 1929, in a continental magazine, "*Zazadunk*". Since it is no longer possible to contact Dr. Ervin Baktay in Hungary, my last letter written to him over three months ago having remained unreplied, I am quoting some passages from his above-mentioned book of which I possess an original copy in Magyar language, and which was published in 1938, before I became the President. The passages given below are from an English translation made from the original by the author himself.

(These extracts have already been published in the May 1957 issue of the Ayurved Mahasammelan Patrika-Pages 283 to 290, under the caption "A Hindu Physician".—*Chief Editor*.)

"One of the most interesting and instructive experiences I had during the months spent at Patiala was my acquaintance with the son of the Court Physician of the Maharaja. He was a Brahman Shiv Sharma by name. His father was an expert practioner of the Hindu system of Medicine which is based on very old traditions. It is called *Ayurveda* i.e. "The Science of Life"....The system contains very remarkable scientific truths and can boast of serious achievements....

"I was much interested by his statements and wished to learn more about the science of Ayurveda. At that time I knew nothing about it except its name, and felt extremely pleased by the opportunity which made it possible for me to obtain information from an expert. He was not too orthodox, for a really orthodox Brahman would have regarded the European nearly as much untouchable as a low caste Hindu.

"His ancestors were physicians, and he was the first member of his family who felt it necessary to study Western science too. This was a proof of his unprejudiced way of thinking. He explained to me later on that he wished to become acquainted with the Western system of medicine in order to compare its methods with those of Ayurveda. It was another proof of his broadmindedness, for there are many learned Hindus who regard their cultural traditions as being superior to modern Western achievements, without ever taking trouble to acquire a serious acquaintance with the latter.

"Shiv Sharma, being the descendent of an educated Brahman family, was well-versed in Sanskrit classical literature. At the same time he was surprisingly well-versed in Western literature too...When he learnt from me that I was a modest student of Sanskrit, he kindly offered to read with me...Later on he often gave me lessons according to the Indian method of teaching the classic language and I found it much more practicable than the method used in Western grammatical works which often made the matter too complicated.

"...I learned much from him. But we did not spend all our time in serious studies. He was extremely interested in Western matters, in the questions of Western way of life and thinking. He enquired about many subjects and I endeavoured to give correct information. We had very pleasant talks and I was glad to discover that he had a sound sense of humour. I regarded this as a valuable addition, for learning and knowledge should never turn a man into a tedious or gloomy fellow...

"Shiv Sharma began to explain the Ayurvedic system to me, 'Our system is based on a qualitative knowledge of the phenomena and facts of nature as opposed to the Western methods which tend to value everything in a mainly quantitative manner. We knew the latent qualities hidden in plants, medicaments and natural materials, and therefore, do not believe that a certain drug would have always the same effect, without regard to the person and the circumstances..."

These two chapters are rather lengthy, particularly the latter one which deals with Dr. Baktay's illness in Patiala, the failure of the allopathic medicine on him, and his subsequent quick and spectacular recovery under the Ayurvedic treatment. The last paragraph, of the English translation, however, may be quoted. Says Dr. Baktay, "I regard it my duty to give the above statement for it goes to prove that... Ayurvedic treatment succeeded in effecting an almost 'prodigious' cure, by healing a vertibral fracture in a very short time. In order to support my statement with a convincing document, I am including one of the original Roentgen photos showing the clearly recognisable traces of the fracture taken by Dr. Ladislas Pota in Budapest some years ago."

Sd. Ervin Baktay, Ph. D.

THE DEFENDANT'S OWN ADMISSIONS

Another interesting document, not allowed to be placed on record by the Magistrate, is the "Farewell address to Pandit Shiv Sharma," by "Yours most affectionately, Ram Narain Sharma Vaidya (Proprietor) on behalf of Shri Baidyanath Ayurveda Bhawan, Calcutta, 11-10-40."

In this the defendant has referred to my "self scarificing spirit in cause of popularising Ayurveda...genius which baffles description...store of profound and accurate knowledge, resulting from keen and objective study..." Further, he has unreservedly admitted, "All India Ayurveda Mahamandal has *honoured itself* by electing you at this young age twice its President...It is not in our power to do full justice to your noble character in such a short address and words seem to fail in paying homage to such a shining savant...We humbly request you to accept *Sincere* tribute of your *devoted* followers..."

Pandit Shiv Sharma's Statement

V

In view of the inordinate length these statements are running into, and the truths already established, I will now drop many issues. When the major and the most powerful attacks on my integrity have been shown in the true light of facts, it would be cantankerous to lengthen the readers' task by going into details on smaller matters. Of course I will always be ready to clarify any issue which a member of the Ayurvedic Congress may like to be explained.

The Raj-Kumari Episode

The episode of my past criticism of Raj-Kumari Amrit Kaur is by far the most perplexing. The facts are as follows :—

I had criticised Raj Kumari Amrit Kaur in some of my earlier speeches.

The counsel for the accused argued that my severe criticism of the Union Health Minister caused a "reasonable apprehension" in the mind of the accused that by thus antagonising high authorities, I was taking the Congress "to the bottom of the earth".

The Magistrate, in his judgment, enlarged this reference to my severe criticism of one person "to my highhanded denunciation of *all and sundry who approached him* (*me*) *not excepting the Union Ministers*" (plural not mine, italics mine), and changed the "editor" into the "writer", probably as inadvertently as he had written "accused" instead of "complainant" at another place (p. 60), for, otherwise, he must be aware that the writer was not the accused in this case which I had confined to the editors and publishers exclusively.

The Magistrate, justifying the "reasonable apprehension" of the accused, remarked that my speech "had caused so much embarrassment to the Ministers at the Centre and in the States that he (I) thought it best to resign as a President. This is what he has said in his own speech Exhibit Z5" (p. 27).

The Magistrate rejected my counsel's application for producing the Central and the State Ministers themselves as witnesses to prove beyond doubt that the embarrassment was not caused in the sense in which the Magistrate has takan it but in a different sense altogether (read Shri Morarji Desai's and Shri Nandaji's testimony in statement (IV) : he rejected an editorial of the Patrika which proved that my resignation was an act of grace when every one, without a single exception was opposed to excepting it : and that the real reason behind my resignation was an impulse to see new blood experimenting with the leadership of the Congress. He also rejected the relevant text which preceded, and was connected with, the critical passages, thereby unconsciously depriving himself of even the complete picture of the critici itself.

The Magistrate justified the accused's remarks on the sole plea the "reasonable apprehension" on his part. I am confining the discu sion to only those two critical passages which the Magistrate selected as 'high-handed denunciation of all and sundry' to justify editor's attack on me :—

It is a misconception however honest to say that the term Am Kaurian Frankenstein refers to Raj Kumari herself. It clearly refers the two years trained matriculate who has been criticised by the al paths themselves. The actual target of the word frankenstein wou become obvious from the passage in which the word occurs, "Will it b safe to keep the potent drugs like the sulphonamides and the barbit rates in the hands of these hopelessly undertrained people ? It is almo certain that this Raj Kumarian Frankenstein, far from killing th village vaidya, shall start exterminating the Indian nation itself." Th disposes the charge of using the word Frankenstein against the Uni Minister.

The second passage, the worst I ever spoke, selected by th Magistrate is from my Indore speech. It is as follows : " She seems t bring to the Ayurvedic question a layman's ignorance, a woman obstinacy, a convert's fanaticism and a partisan's injustice."

On this our case was :—

(a) The speech containing the passage was published in full b the accused in his magazine in 1952 with an editorial no extolling the complainant's services to Ayurveda exuberant and fanatically (Ex. Z9 on record).

(b) The complainant's language was severe but chaste.

(c) Bur while the complainant had changed the tone, the accus himself had *continued* to criticise Raj Kumari Amrit Kaur ve sharply even *after the complainant had ceased to do so.* (Six the many editorials were offered in proof. The Magistra rejected three and accepted three, collectively marked Ex Z8

(d) *All* the editorials in the collective Ex. Z8 were written af the complainant's speech.

(e) The language of all these editorials was far from chaste an dignified and was even vulgar. While attacking Raj Kum personally (even referring to her unmarried life) the editori attacked the entire Government (a truly "all and sd ryu affair). To note only a few passages :—

"Either Government *practices fraud* on people .... *deceives* th supporters of Ayurveda....extremely disreputable....The bodies of th administrators are certainly made up of Indian food, air and water, b the evolution of their "interior" is a result of contamination by fore *vikaras* (disease, perversion, etc.)"

Regarding Raj Kumari the editor (i.e. the accused) refers to th “unhealthy thoughts of the Health Minister.”......He further accuses her of “holding an agency for the British” and of “holding office with the express intention (*Sankalpa*) *of sending to foreign countries a sum of crores of rupees* ... The mentality.... a proof of her own ignorance and inefficiency ... evil boldness...... un-Indian *sanskaras* (upbringing and culture)” .... “Alerted......by the women-Minister's doings ...... path simple and *unrestricted* .... expect *nothing whatsoever* from the administration. We shall have to resuscitate our knowledge by advancing along *our own path through our own effort*.”

“Raj Kumari says .... ‘Girls ! Do not marry ! Take to maiden life for the service of the country !......O neighbouress, become like me !’ Raj Kumari has lived her life in celibacy. *India does not trust ‘miss’-life. Here the life of a widow is considered much better than it.*”

The italics everywhere are mine. The passages are strictly from the collective Ex. Z.8 and not from the rejected editorials.

It was fantastic that the man who continued to attack Raj Kumari Amrit Kaur in a most undignified and vulgar manner even after the complainant had ceased to criticise her in his speeches which, at that time, he himself used to fanatically extol, should bring in a plea of “reasonable apprehension” of danger to Ayurved based on the complainant's past remarks. It merely showed that “any stick was good enough to beat the complainant with”. Mr. Desai quoted.

Ham ah bhi karte hain to ho jate hain badnam
Woh qatl bhi karte hain to charcha nahin hota.

“We get a bad name even if we sigh. *They* are not discussed even while they massacre.”

The Magistrate in his judgment has made no reference whatsoever to the accused's editorials against the Government and the Raj Kumari (Ex. Z 8). He has not referred to the accused at all or, as is more probable, he has inadvertently referred to him as the “writer”, But he distinctly remembered the remark “any stick, etc.” and hurled it back at Mr. Desai in his judgment, in what context and in how much factual justification has already been discussed by me in Statement III.

Further, Mr. Desai asked, what greater proof of malice could the Court demand than the fact that first the editor published the same passage in his magazine with an editorial (Z.9) claiming the complainant to be the greatest benefactor of Ayurveda and five years later, produced the same passage as a basis of reasonable apprehension of the ruin of Ayurveda, *while continuing a vulgar campaign against the Raj Kumari and the entire Government himself ?*

Another interesting aspect of this episode is that the Magistrate, by holding else where in the judgment that the evidence showed “that the accused praised or criticised according to what the conduct of the individual deserved on a particular occasion” (p.23), and remaining silent on the editorials (Ex. Z.8) has implied that Raj Kumari Amrit Kaur deserved all the criticism levelled at her by the accused including his references to her ‘miss’-life, but did not deserve my milder criticism.

In the light of the forgoing, my criticism of the Raj Kumari was meritorious in 1952 as it appeared with the accused's approval, but it became unmeritorious after 5 years, since the editor, who was always fair, decided, *after the case was filed*, that that was ruinous for Ayurveda. It was a unique experience for me to learn that my criticism was wrong and the accused's fanatical support of it was right and his subsequent enunciation of it was also right. Again the same passage published in 10 copies of the Presidential address was dangerous but republished in 5000 or more copies of the accused's journal, with editorial support was meritorious.

To show what exculsive and unparalleled service my speeches had rendered to Ayurveda at the public, the State and the Union levels, I offered to produce as witnesses State and Union Ministers and representatives of leading newspapers of India. I was not allowed by the Court to produce the evidence of the Ministers, the foreign newspapers and some Indian papers. The Journal of American Medical Association was not "proved" and therefore not considered. Shri Bapalal's article as tendered by the defence was admitted without being "proved". His subsequent articles neutralising his previous stand were rejected when produced by me. There must be some technical reason behind this which I do not understand. However, the leaders in *The Times of India*, *The Hindustan Times*, *The Hindu*, *The Bombay Samachar* and *The Janshakti* and editorial comments in the *Free Press Jounral* on my speeches and work were produced to show how I had aroused the public opinion in favour of Ayurveda to a pitch hitherto unknown to the Ayurvedic world. It was pointed out that the defence was not producing a single witness to prove that Aurveda was in danger as a result of my speeches. What greater proof of the yoeman's service the complainant had rendered to Ayurveda could be given than offering Ministerial evidence at the Centre and the State levels and the highest newspapers' leading editorial evidence at the public level ?

The magistrate has made no reference to all this in his judgment. He also rejected, after first permitting, Sir Francis Lowe's leading article in the Evening News of 19th December 1938 praising my speech as characterised by "wealth of knowledge and dignity of presentation".

MY RELATIONS WITH SHRI JADAVJI

For sheer boldness of attempt to reverse the truth, the defence suggestion that I got myself elected as the Vice-President at Delhi (February 1950) to "oust" Shri Jadavji with whom I was supposed to have a standing quarrel is perhaps the most dramatic. In this connection, instead of giving the relevant texts of the judgment first I am narrating the story of my relations with Shri Jadavji. The conjectures in the judgment will follow.

In 1937-38 Shri Jadavji started a propaganda that the President should be an active person like Jawaharlal Nehru who should do some touring and organising work, (Ex. E and E1). In April 1938, he gave an impromptu invitation at the Nagpur Session and secured the next Session for Bombay. He then set about working hard to get me as the

President. As the Magistrate observes, "Jadavji was the person responsible for ushering him (me) as the President of Congress in 1938" (p.30). Shri Jadavji's assessment of my ability was very high (vide his Reception Address in Ex. F). During the $2\frac{1}{4}$ years that I remained the President, there was unprecedented peace and progress in the Congress. This cannot be challenged on facts, the Magistrate does say, "the disputes started soon after he became President in 1938, ended after his going into oblivion in 1944 and sprung up again after his reappearance in 1950....", but he negatives this statement when he again says, "there was a dispute between him and Jadavji from 1941 right upto 1951" (p.30). Since at that time, my differences with Shri Jadavji on M.K. case constituted the only dispute in the entire record, and since only one of the two contradictory statement could be true, the latter is correct, though only with regard to the period between 1941 and 1944. The fact is that my period of Presidentship comprising the $2\frac{1}{4}$ years shall continue to defy all research and effort to yield a single instance of dispute or unrest even in a large and unmanageable body like the All India Ayurvedic Congress with many cantankerous elements in it.

At the Lucknow Session a resolution was passed for taking legal steps, if they become necessary, against the M.K. Trust of Lahore. Shri Jadavji supported it and it was passed unanimously. The Magistrate observes, "the suit was by resolution of Congress and he (I) was only a Secretary" (p.28).

Shri Jadavji, till the time of his death, was a great force in the Congress and its chief guide. I have referred to him as a guide of the Congress in my Kottakkal (1954) Address, and the accused has also claimed him as the only guide of the Congress in a sponsored life sketch of his, "When the machinery of the Congress runs generally under his (Jadavji's) exclusive direction" (Sachitra Ayurveda, Jan-Feb.1950, p.537). The learned Magistrate rejected both these documents.

Then, when the question of filing the suit against the M. K. Trustees, all of whom were millionaires, came up, Shri Jadavji turned against the Congress resolution which he had supported at Lucknow. On this issue we differed. I admit that it could be called a dispute between me and him. In December 1942 I accepted Shri Jadavji's demand that the Lahore case should cease to be the responsibility of the Congress, and thereafter the case had nothing to do with the Ayurvedic Congress. An editorial of Pandit Kishori Dutt extolling this compromise (Patrika, editorial, Jan. 1943) was rejected by the Magistrate although the adjoining editorial on the same page put in by the defence was admitted. An year later the office was shifted from Lahore and I could not take much part in the Congress affairs. The Magistrate has called it my going into "oblivion" from 1944 till 1950, i.e. for a period of 7 years (though he has included these 7 years in the period of my absolute "dictatorship")

The partition of the country drove me out of Lahore in 1947, and it took me 3/4 years to get properly settled down in Bombay. One of the first things I did here was to call on Shri Jadavji. I found him very friendly. In 1950, my name was in the elected panel of five but I withdrew in favour of Shri Jadavji (to "oust" whom I "got elected" myself the Vice President !). My withdrawal in his favour is on Court record. The accused in his Magazine held the combination of his Presidentship and my Vice-Presidentship as an ideal one. "Those who are aware of Shiv Sharmaji's capacity to work (*Karmashakti*) during his two terms of the Ayurvedic Congress Presidentship, can easily understand how auspicious will be the result of the combination of Shri Jadavjibhai's guidance and Shiv Sharmaji's working capacity (Karyashakti !!)". The double exclamation marks here are those of the original author— Sachitra Ayurveda, Jan.-Feby. 1950, (p. 538). *The Magistrate did not permit these texts to come on record.*

That a Vice Presidentship by itself is not at all an important office compared with that of the General Secretary or the President is beautifully but effectively illustrated by the popular parody of the Bibilical text, "Blessed are the meek for they shall be elected Vice Presidents." I agreed to become the Vice President purely in a spirit of co-operation and friendliness. If I was a dictator and coveted Presidentship, I need not have withdrawn in Shri Jadavji's favour.

I give below some very significant incidents which conclusively show that firstly, Shri Jadavji leaned on me for harder work. trusting me fully ; and secondly, the relations between us were extremely friendly from the moment we accepted offices together till the time of his sad demise :—

1. His accepting the presidentship when I withdrew in his favour. He was assured that I would help him.

2. His insistence on my accepting the Vice-presidentship even if the rest of the election could be held later.

3. His asking me to lead the All-India deputation to the Health Ministers' Conference at New Delhi (31st. August, 1950) inspite of his being the President and therefore, the natural and the constitutional leader. The fact that he made me the spokesman showed that he realised my worth and fully utilised it even if it became necessary to play the role of a follower of his junior.

4. His withdrawal in my favour, *in my absence, even when I was not a candidate*, from the presidentship of the First Bombay State Vaidya Conference (1951) and to get me elected unanimously to it ; although one of the main functions of this conference was to felicitate him, which was eventually done under my presidentship.

5. His asking me to preside over the special session of the Ayurvedic Congress at Ghaziabad in August 1951 in his place.

6. Very important. His *dissatisfaction with others* and *trust* in me as evidenced by his resignation (Feb. 12, 1952) and withdrawal thereof (29th June, 1952). Both these letters were in the Court in the office papers of the Congress but my counsel's request to put them on record was turned down by the Court. Their full text will destory the defence fiction of the imaginary dispute between us :—

A. Shri Jadavji's resignation.

Bombay, 12.2.1952.

Syt. Vaidyaraj Pandit Guru Duttji,
Genl. Secy., A. I. A. Congress,
New Delhi.

I feel that, at this time, quarrel and enmity are going on among the Vaidyas of Delhi and our energy is being spent in disputes instead of constructive work. In this situation I am unable to hold the office of the President. Therefore, through this resignation, I consider myself relieved of this responsibility from this date.

Vaidya Jadavji Acharya's
Pranam.

B. Withdrawal of resignation.

Tel. No. 24356
Vaidya Jadavji Trikamji.
Dr. Veigas Street, Bombay-2.
Dated 29-6-1952.

Shriyut Vaidyaraj Pandit Guru Duttji,
Genl. Secy., A. I. A. Congress,
New Delhi.

Received your letter. I withdraw my resignation. But, at the same time, I do not wish to take part in any work of the Congress. Therefore conduct all correspondence connected with the Congress with the Acting President Vaidya Ratna Pandit Shiv Sharmaji.

Jadavji Acharya.

My statement on record that Shri Jadavji withdrew his resignation was unchallenged, still I offered these letters as Exhibits through the office representative. On rejection by the Court we did not press in view of the absence of challenge to my statements).

7. Shri Jadavji's prevailing upon the defendant to specially invite me to the Council he held in Hardwar. (Vide his letter to me, rejected by the Court).

8. The defendant's praising me and Shri Jadavji in one breath in Sachitra Ayurveda (July 1952) and a pamphlet (Ex. rejected).

9. Shri Jadavji's and my resigning together from the membership of the Board of Ayurvedic Research, Bombay, in 1953 or thereabout. No other member resigned.

10. Shri Jadavji's appending his signature, even if with an additional provision, to my majority report of the Ayurvedic Department Reorganisation Committee of the Banaras Hindu University. Shri Bapalal G. Vaidya, opposed to that line of approach, deprecated this voluntary support of Shri Jadavji to my views in one of his editorials.

11. Our holding mutual scientific discussions all by ourselves. The Patrika will show that an error committed by me in attributing the first use of arsenic to Bhavamishra was pointed out to me by him (without his mentioning it to any one else) and I myself openly acknowledged in the Press the fact of his bringing it to my notice, which gesture he very much appreciated. The Patrika will also show (vide my speech in Surat) that I had pointed out to him his error in calling Satva as a "*Manasikdosha*" in his latest book, as it would entirely reverse the Ayurvedic concept and mislead the students eggregiously. These exchanges of views never took place in anybody's presence but strictly between ourselves.

12. His not allowing the so-called All India Vaidya Hakim Congress to be held during his life-time.

13. His agreeing in the teeth of opposition of some his followers with my proposal to have his diamond jubilee celebrated at Bikaner at a special sesson of the Ayurvedic Congress, which was duly done.

14. On my nomination as the Chairman of the Prevention of Spurious Drugs Committee by the Government of Bombay, my requesting the then Health Minister to take Shri Jadavji as Chairman in my place, and on being approached by Shri Vamanrao to consider my offer on behalf of the Minister, his expression of satisfaction on my nomination and declining to replace me.

15. His going all the way to Indore session to support all the measures adopted there unanimously.

It will thus be seen that my differences with him were born some months after the Trust resolution was passed at Lucknow in April 1941 and died with the removal of this cause of his dissatisfaction from the Congress in December 1942.

To sum up, Shri Jadavji had brought me as a President in 1938. He took me again as a Vice President in 1950. Since 1950 onwards the relationship between him and me was unique. We thought alike and acted alike in the higher interests of the Congress. *Unless what I am stating is absolutely true, the texts of Shri Jadavji's letter withdrawing his resignation and resuming the Presidentship will show him in a very bad light.* Either it will show him as my stooge covering the Presidentship nominally for me while I was the real dictator, or it will show him as a person coveting Presidentship so much that as long as he was called a President, he minded neither being neglected totally nor my indulging into destructive "dictatorship !" There can be only one more alternative, that I, a "dictator," browbeat him and terrified him into accepting the Presidentship while I worked under his cover. I am sure neither the accused nor the Court, nor even anybody else could see Shri Jadavji in that light. The Magistrate's assessment of Shri Jadavji can be judged from the fact that he unconsciously substituted the words "very revered" for my words "one of the most eminent" for Shri Jadavji, words, which were never uttered by me or anyone else in the Court, and are nowhere on record. The accused uses these words often for Shri Jadavji but he was never in the witness box and did not use this expression in his written statement. However, in view of the expression, "very revered" the learned Magistrate has used for Shri Jadavji, I can infer that had he not rejected Shri Jadavji's letter of withdrawal of resignation, he was not likely to choose one of the above unpleasant alternatives in preference to the only other obvious and possible interpretation, that ever since he prevailed upon me to help him as one of the Vice Presidents, I had lived up to his expectations and he trusted me implicitly for not doing anything against his wishes or without consulting him. And it was for this reason that the accused had held us both as a great combination of a good guide and a good worker in the rejected issue of his magazine and had continued to fanatically praise me throughout his Guru Shri Jadavji's Presidentship. There is no ground whatsoever to imagine a dispute between me and Shri Jadavji during these years unless it was secret and unilateral !

Relevant texts of Shri V.M. Gehani's judgement

In the light of above let the reader assess the factual aspect of the relevant texts of the judgement I am giving below. The Learned Magistrate says :

"Jadavji, a very revered leader of the Congress and its President three times, had also sent in his resignation though the complainant says he withdrew it before the other six office bearers sent in theirs (read the original resignation and withdrawal reproduced above and mark the utterly wrong impression as a result of their not being on record). There is however no explanation why he, that is, the complainant continued to act throughout that period if Jadavji had withdrawn his resignation (p. 19). (This is an unfortunate lapse of memory on the part of the learned Magistrate. Ex. Z.1 was introduced on the record on 1-10-56 to show that things were going on in consultation with President Shri Jadavji).

"The defence then suggested to him that even at Delhi Sessions the office bearers could not be elected because of his dispute with Jadavji and that he in fact wanted to oust Jadavji. He denied this but *had to admit* that Jadavji did resign his Presidentship in early 1951, i.e,, *soon after the session* (he resigned on 12-2-52, just *a week short of full two years!*) and that he became President because of being elected Vice President.... It would be reasonable to *infer* from this evidence that there was a dispute between him and Jadavji from 1941 right upto 1951" (p. 29-30). But on page 31 the Magistrate completely changes the picture of the conjectural dispute in the following words ; "the disputes...*ended with his going into oblivion in 1944 and sprang up again soon after his reappearance in 1950*". In other words first the Magistrate says that there was a war going on between me and Shri Jadavji for the seven years (from 1944 to 1950) ; again he says, on the opposite page, that absolute peace reigned during this lengthy period of my disappearance into oblivion.

How incredible it is to suggest that the Office-bearers could not be elected at the Delhi Session *because of my dispute with Shri Jadavji* can be well understood by the hundreds of Vaidyas who were present on that occasion at the Delhi Session in 1950.

Miscellaneous

There are many inadvertant slips in the judgement, e.g., describing the writer as a member of the congress when he had ceased to be so, saying that items were not on agenda (p. 23, 36) when they were (Ex. Z-20), taking withdrawn and accepted resignations as creating identical situations as in case of those of mine and Shri Jadavji's, referring to my proposing Shri Parthanarayana Pandit's name for Presidentship as a "gross violation" at one place (p.37) and "the right thing to do" at another, etc., but I need not touch all of them.

At certain places, decisive material has been inadvertantly lost. Many examples have been given above, I am giving below one more of those which have been left out :—

In a statement I published in 1942 (*Who is Guilty ?*) which was in custody of the Court clerk but did not go on record, I had said :—

"I have confessed I aspired for Bombay Presidentship. I *wish to assure the profession that the end of the first of my Presidentships saw my aspiration for any such honour completely dead.*"

The passage in italics did not go on record and its absence changed the entire picture of the "admission."

At many places the learned Magistrate has put, inadvertently, two different interpretations on the same incident. For instance, he says, "His fondness of power can be gathered from the fact that unlike other Presidents, he undertook extensive tours of various provinces in India immediately after being elected." (p. 50). Again, he says, "His tours were *obviously* with a view to enrolling members *as is clear* from the mandate given to the new President by the veteran Vaid Jadavji in his statements Exs. E and E.-1" (53).

There are many conjectures in the judgement which I have left out, but I may quote one here, "The complainant states that Parth Narayan told him to write this letter. The suggestion, however, *must have* come from him, i.e., the complainant, and Parth Narayan who was beholden to him *must only have* agreed." (p. 51). Instead of having just a letter written by me, Shri Jadavji had his entire work done by me while himself remaining the President (vide his letter dated 29.6.52, quoted above); I had withdrawn in his favour in 1950 and he in mine in 1951 (Bombay State Congress). He was, on this basis, far more beholden to me than Shri Parthanarayana Pandit, but the former is supposed to have had a dispute with me.

The Other Case

I am also leaving out the case of Swami Harisharnanand, as it will be tedious, both for me and the readers, to rediscuss parallel issues. Whatever has been said here should be enough to convey the true picture before the profession with regard to the connected case also.

In Passing

A word on my being called an "M. A." etc. without my being one and the "surprise" shown by these gentlemen on this "new information."

A. The M.K. Trust lawyer, who was also the counsel for Swami Harisharnanand, Shri Kanahaiya Lala Bhera and others, cross-examined me at length on my qualifications in 1945-46. That was not all. A Commission went to Patiala where my father was examined and cross-examined at length, as the Head of the Ayurvedic Department, Patiala; the issue, again, being my qualifications and the academic value of the Ayurvedic training in Patiala.

B. Shri Ram Narayan Sharma, was a witness (No.2 on list A) of Swami Harisharnanand and was to be examined on Dec. 28, 1946, in Patna by a Commission (vide Commissioner Prakash Chand Mahajan's letter to Vaidya Ram Narain, Prop. Baidya Nath Ayurveda Bhavan, Kadam Kuar, Bankipur, Patna—D/12.12.46). But he fell ill and had to go to a hill station for treatment and rest (vide his reply to the Commissioner) and therefore could not be present at the appointed hour at the Railway Station, Patna, where the evidence was to be recorded. The Commissioner had to take the next defence witness, Kaviraj Pratap Singh. at Banaras.

These gentlemen want us to believe that they have "forgotten" all they had assiduously learnt from the lengthy examinations of myself and my father on the subject of my qualifications! Those who can believe in such "forgetfulness" are welcome to do so.

I have nothing to say beyond that I do not possess any non-Ayurvedic qualifications, nor ever claimed any, nor I consider them relevant to the efficiency or learning, or reputation of a vaidya. As regards the Ayurvedic standards of the Patiala qualifications, without making any odious comparisons, I will merely say that the State recognised the Ayurvedacharya as its highest official qualification for all purposes where Ayurveda was concerned.

And Finally

This case has been won by a millionaire, proprietor of a huge publishing and drug-manufacturing concern and a glass factory. Some idea of his wealth can be had from the fact that, apart from spending lakhs of rupees in this lengthy case on the most expensive legal aid, he announced a donation of Rs. five lakhs even as the case was going on. But this is nothing, I am told, compared with his expenditure on a new project. A person who can amass so much wealth after paying the present day heavy taxes, is in a position to inflict heavy damage, particularly when strengthened by a judicial document so derogatory to the character and integrity of the subject of his campaign.

He is distributing a booklet, referred to as the Calcutta Booklet in the Statements, with some false matter added (contradicted by the Rashtrapati Bhawan correspondence in Statement I). He is said to have freely distributed thousands of copies of it already in addition to other literature along the same lines. The magnitude of the area covered by the distribution of this additional defamatory pamphlet can be guessed from the two questions two people put to me recently. Mrs. Vimla Wijewardene, the Health Minister of Ceylon, who visited India recently, asked me, "Who sent me that pamphlet against you?" She found it on her table in the Galle Face Secretariat, Colombo! The former Health Minister of Hyderabad, Shri Phool Chand Gandhi, asked me, "I was pained to read that pamphlet against you, but how on earth did they trace my address in Bombay to post it to me?" A former Chief Minister of Delhi State referred to this literature against me when I accidently met him before Parliament House in New Delhi. Shri S. V. Krishnamoorthy Rao, Deputy Chairman of the Rajya Sabha also enquired about it. The parliamentarians, the legislators and people from all walks of life ask me the same question all over the country wherever I go.

I am not in a position to answer this question further than what I have said in these statements. One can only do his best. Failure or success does not always lie in the excellence of our effort or deserts. But no experience, howsoever bitter, should destroy man's faith in man. Eschewing hatred, malice and bitterness, one should steadily continue to do one's duty with unflinching hope in the ultimate strength and triumph of truth. These moments should be welcomed as moments of test of a man's true character, as also the true characters of those ranged for or against him. Our contribution to the cause which we hold just and sacred should neither cease nor slacken.

SHIV SHARMA

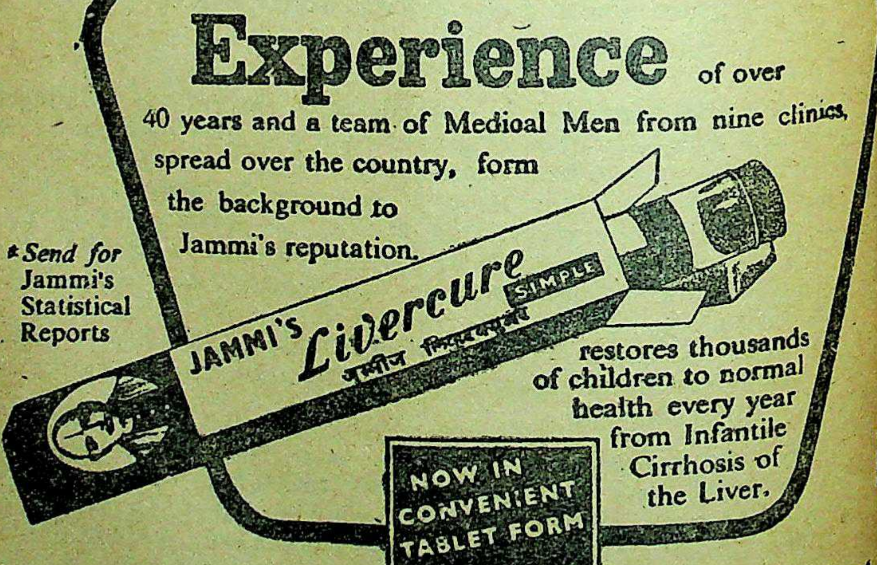
Experience of over
40 years and a team of Medioal Men from nine clinics,
spread over the country, form
the background to
Jammi's reputation.

*Send for
Jammi's
Statistical
Reports

JAMMI'S Livercure SIMPLE

restores thousands
of children to normal
health every year
from Infantile
Cirrhosis of
the Liver.

NOW IN
CONVENIENT
TABLET FORM

JAMMI VENKATARAMANAYYA & SONS. 'Jammi Building', Mylapore, Madras

पं० शिवशर्मा का वक्तव्य

: ४ :

(गत दिसम्बर १९५७ अंक से आगे)

पहले यह स्पष्ट कर चुका हूँ कि मैजिस्ट्रेट को कल्पना का सहारा मेरी किसी त्रुटि के कारण नहीं लेना पड़ा। उन्होंने स्वयं ही श्री मोरारजी देसाई और श्री गुलजारी लाल जी नन्दा, केन्द्रीय मंत्रियों, जो सत्य प्रतिपादन के लिए मेरी साक्षी देने के लिए कृपा करके तैयार हो गये थे, की अत्यावश्यक गवाही को "असंगत तथा अनावश्यक" कह कर अस्वीकार कर दिया था। मैं अब श्री गुलजारी लाल जी नन्दा के उत्तर, जो डाक से आए हैं और डा० र्विन वैंकटे के कथन, जो उनके लिखे लेखों से संकलित किये गये हैं, नीचे उद्धृत करता हूं और वक्तव्य सं० ४ को समाप्त करता हूँ।

श्री गुलजारी लाल जी नन्दा के उत्तर

(जो १० उत्तर श्री नन्दा जी के आए हैं वे इस प्रकार क्रम बदल कर नीचे दिए गये हैं जिससे जजमैण्ट के भ्रान्त निर्णयों का अधिक बलपूर्वक निराकरण हो सके। ऐसा इस लिए भी किया गया है कि श्री नन्दा जी की गवाही अस्वीकार करके मैजिस्ट्रेट ने हाथ से कितनी तत्वपूर्ण सूचना अनजाने में खो दी यह भी अधिक स्पष्ट हो जाए)।

(७-८) पं० शिवशर्मा की समालोचना ने आयुर्वेद की बिल्कुल भी हानि नहीं की, अपितु उसने प्लैनिंग कमिशन और सरकार में यह जागृति उत्पन्न करने में सहायता की कि अब तक उन्होंने आयुर्वेद के लिए जो कुछ किया उससे बहुत अधिक करना उनका कर्त्तव्य था। सरकार की आयुर्वेद सम्बन्धी नीति की गतिविधि उसी दिशा की ओर चली जिस ओर पं० शिवशर्मा की निरन्तर प्रेरणा रही। प्रधानतया उनके लेखों और भाषणों ने आयुर्वेद के और अधिक विशाल समर्थन का सर्जन किया। इसमें उनको यह सुविधा थी कि उनका आयुर्वेद का ज्ञान गम्भीर था और आधुनिक विज्ञानों को वह बहुत अच्छी प्रकार समझते थे।

(२) यह सत्य है कि श्री जवाहरलाल नेहरू ने मेरी प्रार्थना पर पं० शिवशर्मा को भेंट दी। यह एक अनाफ़िशियल तथा अनौपचारिक भण्ट थी और श्री नेहरू का यह स्पष्टीकरण था कि वह पण्डित शिवशर्मा को केवल व्यक्तिगत रूप में बुला रहे थे न कि किसी दल अथवा संस्था के प्रतिनिधि के रूप में।

(९) मेरा पं० शिवशर्मा से इतना दीर्घकालीन परिचय है कि मैं विश्वास के साथ यह कह सकता हूं कि उनकी सत्यप्रियता तथा दृढ़चरित्रता पर आक्षेप नहीं किया जा सकता। उनकी अपने आदर्शों में गम्भीर श्रद्धा है और अपने समाज की जो सेवा उन्होंने की है निस्वार्थता और "मिशनरी स्पिरिट" उसकी विशेषता है।

(५) पं० शिवशर्मा को प्लैनिंग कमिशन की स्वास्थ्य समिति का सदस्य उनके अनु और विद्या के आधार पर बनाया गया था न कि किसी संस्था अथवा समाज के प्रतिनि के कारण। इस समिति तथा प्लैनिंग मिनिस्ट्री की अन्य समितियों पर जो कार्य उन्हों किया वह अत्युत्कृष्ट था जिसकी उनका विरोध करने वाले भी प्रशंसा करते थे। प्राय: य अनुभव किया जाता है कि देश का अन्य कोई आयुर्वेदिक चिकित्सक आयुर्वेद के हितों क समर्थन इस योग्यता तथा बल से नहीं कर सकता जिससे कि वह करते हैं।

(६) मैं यूनिवर्सल हैल्थ इन्स्टिट्यूट का चेयरमैन हूँ जहां पं० शिवशर्मा प्रधा चिकित्सक तथा संस्था के रिसर्च विभाग के संचालक के रूप में कार्य करते हैं। वहां उनक जो कार्य मने स्वयं देखा है उससे मैं कह सकता हूं कि रोगियों में उनकी लोकप्रियता त चिकित्साकौशल उनकी विद्वता और व्याख्यान शक्ति से कम नहीं।

(२) पं० शिवशर्मा राजकुमारी अमृतकौर की कड़ी समालोचना किया करते थे। मैंने उन्हें कहा था कि ऐसी परिस्थिति में मुझे उनसे सरकारी अथवा व्यक्तिगत मामलों प सलाह लेने में झिझक प्रतीत होती है। यह १९५४ की बात है। उन्होंने मेरा दृष्टिको पसन्द किया और तदनन्तर अपने भाषणों की भाषा अधिक धीमी बना ली।

(१) मैं पं० शिवशर्मा को १५ वर्ष से अधिक से जानता हूँ। मुझे पहला स्म स्मरण यह है कि मैं उन्हें सेवाग्राम में मिला जहाँ वह गांधी जी की चिकित्सा के लि आया करते थे।

(४) आयुर्वेद का शुभचिंतक होने के नाते सरकारी तथा व्यक्तिगत रूप में मेर देश के वैद्यों की एक बड़ी संख्या से सम्पर्क होता है। मैं कह सकता हूँ कि आयुर्वेद के प्र मेरी श्रद्धा और आदर बढ़ाने में पं० शिवशर्मा का दान सर्वोत्कृष्ट है।

(१०) मेरा उनका दीर्घकालीन सम्बन्ध है। इस बीच में उन्होंने कभी मुझ अपने मतलब या लाभ की बात नहीं की। जब कभी भी वह मुझे मिले, सिवाय मेर चिकित्सा के लिए मिलने के, उन्होंने सदैव यही मांग की कि सरकार आयुर्वेद अथवा वै समाज के लिए कुछ करके दे। परन्तु यह कभी इशारा भी नहीं किया कि उनके अपने लि या किसी अपने सम्बन्धी या मित्र के लिए कुछ किया जाए।

डा० अर्विन बैकूटे का कथन

मेरे प्रार्थना पत्र में (जिसे मैजिस्ट्रेट ने अस्वीकार कर दिया था) यह भय प्र किया गया था कि यदि उनकी गवाही नहीं ली गई तो वह सदा के लिए मेरे हाथ से नि जायगी। यह भय यथार्थ सिद्ध हुवा। डा० बैक्टे, जो एक प्रसिद्ध भारतवेत्ता, 'पूर्व' वि षज्ञ, और ३० से अधिक पुस्तकों के रचयिता हैं केन्द्रीय सरकार के निमंत्रण पर भार आए थे। वह अपना कार्य समाप्त करके हंगरी वापिस चले गये हैं। श्री मोरारजी दे और श्री गुलजारी लाल जी नन्दा की भान्ति इन्होंने भी इस अभियोग में गवाही देना अ पूर्वक स्वीकार कर लिया था। उनकी गवाही उत्तरपक्ष के इस कथन को कि समाचार प

ने मुझे महासम्मेलन का सभापति होने के कारण प्रकाशन दिया, सर्वथा असत्य सिद्ध कर देती।

मेरे सभापति बनने से १० वर्ष पूर्व, जुलाई १९२८ में, लाहौर के एक कट्टर एङ्गलो-इण्डियन तथा आयुर्वेद विरोधी दैनिक पत्र, "सिविल एण्ड मिलिटरी गजट" ने अपने प्रथम पृष्ठ पर डबल कालम शीर्षक के नीचे मेरे एक वक्तव्य को इस संपादकीय टिप्पणी के साथ प्रकाशित किया कि मेरे लेख की प्रामाणिक शैली उस अटूट गाली-गिलौंच की अपेक्षा बहुत स्वागत योग्य थी जो इस सम्बन्ध में अन्य वैद्य लिख रहे थे। संपादक एक अंग्रेज था जिसका मेरा कोई परिचय नहीं था। एक ऐसे पत्र के मुख पृष्ठ पर जो कर्नल हार्पर-नैल्सन के आयुर्वेद विरोधी आन्दोलन का समर्थन कर रहा था, अपना लेख निकलवा लेना एक प्रकार से केवल योग्यता के बल पर शत्रु के दुर्ग में प्रवेश के तुल्य था। आयुर्वेदिक कांग्रेस के किसी अध्यक्ष को (अध्यक्षता के बल पर) वह स्थान प्राप्त नहीं हुआ।

डाक्टर अर्विन बैंक्टे उस लेख तथा मेरे संपर्क से विशेष प्रभावित हुए थे। उन्हें यह ज्ञात था कि डा० गीनो स्कार्पा जो उस समय इटली के पूर्व देशीय विदेश मन्त्री थे, डाक्टरी चिकित्सा के असफल होने पर मेरी चिकित्सा द्वारा स्वस्थ हुए थे—यह १९३८ की पत्रिका में भी प्रकाशित हुआ। वह कई महाराजाओं से परिचित थे जो उस समय या उसके कुछ काल पश्चात् मेरी चिकित्सा में थे। मैंने उन्हें आयुर्वेद के सिद्धान्तों से परिचित कराया था। उन्होंने "भारतवर्ष में मेरे वर्ष" नामक दो भागों में एक पुस्तक लिखी (जो १९३८में प्रकाशित हुई) और उसके दो अध्याय, एक मुझ पर और एक आयुर्वेद पर, मेरे संपर्क के फलस्वरूप लिखे। हंगरी के एक मासिक पत्र "ज़ाज़ादुङ्क" में उन्होंने मेरी पुस्तक, "दि सिस्टम ऑफ आयुर्वेद" जो १९२९ में प्रकाशित हुई थी, पर एक प्रशंसात्मक आलोचना भी की थी। डा० बैंक्टे से अब संपर्क स्थापित करना संभव नहीं। तीन मास पहले एक पत्र मैंने उन्हें लिखा था उसका आज तक उत्तर नहीं आया। उनकी उपर्युक्त पुस्तक हंगेरियन भाषा में प्रकाशित मेरे पास है। उसके आयुर्वेद सम्बन्धी दो अध्यायों के ही कुछ अंश जो मूल लेखक के अपने ही किए हुए अंग्रेज़ी अनुवाद से लिए गये हैं, गवाही के रूप में नीचे उद्धृत करता हूँ :—

(इन लेखों का सारांश आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका के मई १९५७ मासीय अंक में पृष्ठ २८३ से २९० पर "A Hindu Physician" शीर्षक के अन्तर्गत अंग्रेजी में प्रकाशित हो चुका है—प्र० सम्पादक)।

"पटियाले में जो मास मैंने व्यतीत किए उनमें सबसे अधिक रुचिकर और शिक्षाप्रद अनुभवों में से एक महाराजा के दरबार के चिकित्सक के पुत्र से मेरा परिचय होना था। वह ब्राह्मण था। उसका नाम शिवशर्मा था। उसका पिता हिन्दु चिकित्सा प्रणाली, जो कि अत्यन्त प्राचीन परम्पराओं पर आधारित है, का कुशल चिकित्सक था। उसे आयुर्वेद अर्थात् "जीवन का ज्ञान" कहते हैं···इस पद्धति में अत्युत्कृष्ट तथ्य भरे हैं और इसकी कृतियां गंभीर हैं···

"मैं उसके कथनों में बहुत दिलचस्पी लेता था और आयुर्वेद के सम्बन्ध में अधिक ज्ञान प्राप्त करना चाहता था। उस समय तो मैं इसके नाम के सिवाय और कुछ भी नहीं

जानता था और एक विशेषज्ञ द्वारा सूचना प्राप्त करने का अवसर पाकर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई। वह बहुत कट्टर भी नहीं था क्योंकि वास्तव में कट्टर ब्राह्मण तो यूरोपियन को भी प्राय: उतना ही अस्पृश्य समझते हैं जितना कि एक नीची जाति के हिन्दू को।

"उसके पूर्वज भी चिकित्सक थे और वह अपने कुटुम्ब में पहला व्यक्ति था जिसने पाश्चात्य विज्ञान का अध्ययन आवश्यक समझा। यह उसकी निष्पक्ष विचार प्रणाली का प्रमाण था। पीछे उसने मुझे बताया कि वह पाश्चात्य चिकित्सा का ज्ञान केवल आयुर्वेद की पद्धति से तुलना करने के लिए प्राप्त करना चाहता था। यह उसके उदारचेता होने का दूसरा प्रमाण था, क्योंकि हिन्दुओं के बहुत से विद्वान् अपनी पुरानी सांस्कृतिक परम्पराओं को आधुनिक पाश्चात्य कृतियों से, उनका वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने का कष्ट उठाए बिना ही, अधिक उत्कृष्ट मानते हैं।

"शिवशर्मा, एक सुशिक्षित ब्राह्मण कुल में जन्म लेने के कारण प्राचीन संस्कृत साहित्य से सुपरिचित था। साथ ही उसको पाश्चात्य साहित्य में भी विस्मयजनक योग्यता प्राप्त थी। ज़ब उसे ज्ञात हुआ कि अति साधारण रूप में मैं भी संस्कृत का अध्ययन करना चाहता हूँ, उसने कृपापूर्वक मुझे अध्ययन करने में सहायता देने के लिए स्वयं कहा। उसके पीछे वह मुझे इस प्राचीन भाषा के अध्ययन की भारतीय पद्धति के अनुसार पाठ पढ़ाता रहा और मुझे यह अनुभव हुआ कि पाश्चात्य पद्धति, जो पहले व्याकरण पर बल देती है और जो विषय को अत्यन्त क्लिष्ट बना देती है, की अपेक्षा यह पद्धति कहीं अधिक कृतिसाध्य है।

"···मैंने उससे बहुत कुछ सीखा। परन्तु हम अपना संपूर्ण समय गम्भीर अध्ययन में ही व्यतीत नहीं करते थे। पश्चिम के सम्बन्ध में उसकी बहुत दिलचस्पी थी, पश्चिमी रहन-सहन और पश्चिमी विचारों के प्रश्नों में। वह बहुत विषयों पर प्रश्न किया करता था और मैं निर्भ्रांत सूचना देने का प्रयत्न करता था। हमारी गोष्ठी बहुत आनन्ददायक होती थी और मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि उसका हास्यरस पर भी पूर्ण अधिकार था। मैं इसको एक बहुमूल्य गुण समझता था, क्योंकि विद्या और ज्ञान को मनुष्य को ऐसा व्यक्ति नहीं बना देना चाहिए कि उसकी संगति से मनुष्य ऊब जाए अथवा दुखी हो जाए···

"शिवशर्मा ने मुझे आयुर्वेदिक पद्धति समझाना शुरू किया "जहां पाश्चात्य पद्धति प्रत्येक भाव का मूल्यांकन प्राय: भौतिक अंशों की संख्या तथा मात्रा आदि पर निर्धारित करती है हमारी पद्धति में प्राकृतिक तत्वों के अध्ययन में उनके गुणों को प्रधानता दी जाती है। वृक्षों, औषधों अथवा अन्य प्राकृतिक द्रव्यों में जो अनुद्भूत गुण विद्यमान हैं हम उनसे परिचित हैं—इसलिए हम यह नहीं मानते कि एक विशेष औषध का सदा एक ही प्रकार का गुण होगा चाहे व्यक्ति और अवस्था में भेद भी हो··"

यह दोनों अध्याय लम्बे हैं, विशेषतया पिछला अध्याय जो पटियाले में डाक्टर वैद्य के रुग्ण होने, उन पर डाक्टरी चिकित्सा के निष्फल होने तथा फिर आयुर्वेदिक चिकित्सा द्वारा उनको शीघ्र तथा आश्चर्यजनक लाभ होने का वर्णन करता है। अतएव मैं अंग्रेजी अनुवाद के अन्तिम पैरे को ही उद्धृत करता हूं:—

"मैं अपना वक्तव्य देना इसलिए कर्त्तव्य समझता हूँ क्योंकि इससे यह सिद्ध हो जाएगा कि…आयुर्वेदिक चिकित्सा को एक भग्न कशेरुक का अत्यल्प समय में संधान करने में आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त हुई। अपने वक्तव्य को एक विश्वस्त प्रमाण द्वारा प्रमाणित करने के लिए मैं मौलिक एक्सरे चित्र भेज रहा हूँ जिसमें रोपित अस्थिभंग के अवशेष स्पष्टतया पहिचाने जाते हैं। यह चित्र, कुछ वर्ष हुए, बूडापेस्ट में डा० लादिस्लास फोता ने लिया था।"

हस्ताक्षर—अर्विन बैक्टे, पी-एच० डी०

मुद्दायले की अपनी स्वीकृतियां

एक अन्य मनोरंजक पत्र, जो मैजिस्ट्रेट ने रिकार्ड पर लाने की आज्ञा नहीं दी, थी "पं० शिवशर्मा को बिदाई अभिनन्दन" इसके देने वाले थे "आपके (अर्थात् मेरे) स्नेह भाजन, रामनारायण शर्मा वैद्य, श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन, कलकत्ता की ओर से, ११-१०-४०" इसमें मुद्दायले ने मुझे निम्न शब्दों में संबोधित किया है:—

"आपकी आयुर्वेद को लोकप्रिय बनाने के कार्य में की गई कुर्बानियां,…विशाल बुद्धि जो वर्णनातीत है…बारीक और लक्ष्यपूर्ण अध्ययन से उपजा हुआ गम्भीर तथा निर्भ्रांत शुद्ध ज्ञान…" इत्यादि। आगे फिर वह स्पष्ट माना है कि "इस तरुणावस्था में आपको दो बार सभापति चुनकर अ० भा० आयुर्वेद महामण्डल ने अपने आपको सम्मानित किया है। यह हमारी शक्ति से बाहर की बात है कि इस छोटे से अभिनन्दन पत्र में आपके उत्कृष्ट चरित्र का न्यायोचित वर्णन कर सकें। आप सरीखे प्रतिभाशाली विद्वान के प्रति श्रद्धांजली अर्पण करने में हमारे शब्द अपर्य्याप्त हैं…हम नम्रतापूर्वक आपसे प्रार्थना करते हैं कि अपने श्रद्धालु अनुयायिओं की यह सच्ची श्रद्धांजली स्वीकार करें…"

सचित्र लघु द्रव्य-गुणादर्श
(द्वितीय परिवर्धित संस्करण) मूल्य ३।।)रु० डाक व्यय ।।।)
१—छात्रों को तथा ६ या अधिक प्रतियाँ एक साथ मंगाने पर डाक व्यय माफ।
१—अधिक प्रतियाँ मंगाने पर भरपूर कमीशन।
द्रव्यगुण तथा रसशास्त्र पर अपने ढंग की अनोखी पुस्तक, आधुनिक पद्धति के अनुसार लिखित, नवीन द्रव्यों के गुणों सहित। एक सम्मति :—
"........The book carries very important information on Ayurvedic materia medica. It will prove an effectively helpful book of ready reference to students and teachers of all types of Ayurvedic Colleges throughout India as well as to pharmacies and Ayurvedic dispensaries."
—PANDIT SHIV SHARMA
पता :—आयुर्वेद निकेतन, १२१, सुपारी बाग रोड, परेल, बम्बई-१२

पं० शिवशर्मा का वक्तव्य

: ५ :

यह देखते हुए कि यह वक्तव्य बहुत लम्बे हो गए हैं और सत्य का स्पष्ट प्रतिपादन भी हो गया है मैं अब बहुत से विषय छोड़ रहा हूँ। जब मेरी चरित्रदृढ़ता पर किए गए सब ही महत्वपूर्ण आक्षेप वास्तविक सत्य के प्रकाश में आगए हैं तो छोटी बातों की चर्चा करके पाठकों के कार्य को बढ़ाना अनुचित होगा। महासम्मेलन का कोई सदस्य कोई स्पष्टीकरण चाहेगा वह मैं सदा ही करने को उद्यत रहूँगा।

राजकुमारी काण्ड

राजकुमारी अमृतकौर की मेरे द्वारा अतीत में की गई समालोचना की घटना इस अभियोग में विशेष विस्मयजनक रही। तथ्य इस प्रकार हैं :—

मैंने अपने कुछ पहले के भाषणों में राजकुमारी अमृतकौर की आलोचना की थी। उत्तर पक्ष के वकील ने यह दलील दी कि भारत की स्वास्थ्य मंत्रिणी की मेरे द्वारा की गई तीव्र आलोचना ने अभियुक्त के मन में यह "अनिराधार भय" उत्पन्न कर दिया कि इस प्रकार उच्चाधिकारियों को विरोधी बनाकर मैं महसम्मेलन को रसातल में पहुँचा रहा था।

जजमैण्ट में मेरी इस एक व्यक्ति की समालोचना को बढ़ाकर इन शब्दों में लिखा गया है "जो कोई भी उससे मिलने आते थे जिनसे भारतीय मन्त्री भी बाहर नहीं थे उस द्वारा की गई सब की अन्यायपूर्ण निन्दा।" साथ ही "सम्पादक" के स्थान पर "लेखक" शब्द का प्रयोग किया गया जो वैसी ही भूल प्रतीत होती है जैसी पृष्ठ ६० पर "फरियादी" के स्थान पर "अभियुक्त" लिखने में हुई है, अन्यथा उन्हें यह तो ज्ञात ही था कि इस अभियोग को मैंने सम्पादकों और प्रकाशक तक ही सीमित रखा था, लेखक इसमें अभियुक्त नहीं था।

मैजिस्ट्रेट ने अभियुक्त के "अनिराधार भय" को उचित बताते हुए यह लिखा कि मेरे भाषणों ने "केन्द्र तथा राज्यों के मन्त्रियों में इतनी झिझक उत्पन्न कर दी कि उन्हें सभापति पद से त्याग पत्र देना पड़ा। यह उसने स्वयं अपने भाषण (प्रदर्शन जैड-५) में कहा है" (पृष्ठ २७)

मैजिस्ट्रेट ने मेरे वकील की यह प्रार्थना, कि उन्हें केन्द्रीय तथा राज्यीय मन्त्रियों को गवाहों के तौर पर पेश करने दिया जाए जिससे वह असंदिग्ध रूप से यह सिद्ध कर सकें कि झिझक शब्द का प्रयोग उस अर्थ में नहीं हुआ (जिसमें मैजिस्ट्रेट ने लिया है) परन्तु दूसरे अर्थ में हुआ है, अस्वीकार कर दी (मेरे वक्तव्य ४ में श्री मोरार जी देसाई और श्री नन्दा

माघ २०१४

जी के उत्तर पढ़ें); उन्होंने पत्रिका का एक सम्पादकीय लेख भी रिकार्ड पर आने की आज्ञा नहीं दी जो यह स्पष्ट करता था कि मेरा त्यागपत्र प्रसन्नता से दिया गया था जब कि एक भी व्यक्ति इसके स्वीकार करने के पक्ष में नहीं था और इस त्यागपत्र का उद्देश्य महासम्मेलन के नेतृत्व में नया खून प्रविष्ट करने की उदार भावना थी। उन्होंने उसी भाषण के उसी वाक्य के पहले का अंश भी अस्वीकृत कर दिया जिसका उस वाक्य से घनिष्ट सम्बन्ध था जिसके फलस्वरूप उन्हें अनजाने में ही उस समालोचना के पूर्ण चित्र को देखने से भी अपने को वंचित रखना पड़ा।

मैंजिस्ट्रेट ने अभियुक्त की भाषा को केवल "अनिराधार भय" के एकाकी आधार पर उचित ठहराया। मैं निम्न व्याख्या अपनी आलोचना के केवल उन दो वाक्यों तक ही सीमित रखूंगा जो मैंजिस्ट्रेट ने "सभी की अन्यायपूर्ण निन्दा" के प्रमाण समझ कर मुझ पर किए गए सम्पादक के आक्षेप के औचित्यप्रतिपादन के लिए छांटें हैं :—

यह भ्रान्ति है (चाहे वह ईमानदारी से ही हुई हो) कि "अमृतकौरीय राक्षस" का प्रयोग राजकुमारी के लिए किया गया है। इसका सम्बन्ध स्पष्टतया उस द्विवर्षीय शिक्षा प्राप्त मैट्रिकुलेट से है जिसकी डाक्टरों ने स्वयं निन्दा की है। "राक्षस" का लक्ष्य किससे है यह उस वाक्य से ही स्पष्ट हो जाएगा जिसमें इसका प्रयोग किया गया है :—

'क्या इन अत्यल्पशिक्षित व्यक्तियों के हाथों में सल्फोनामइडों और बार्बिट्युरेटों जैसी औषधियां दे देना खतरनाक नहीं होगा ? यह तो प्रायः निश्चित ही है कि यह राजकुमारीय राक्षस गांव के वैद्य को नष्ट करने में सफल न होकर देश की जनता को नष्ट करने में ही सफल होंगे।"

दूसरा वाक्य जो मैंजिस्ट्रेट ने छांटा (और जो मेरा कटुतम वाक्य है), मेरे इन्दौर के भाषण में से है, वह निम्नलिखित है :—

"ऐसा प्रतीत होता है कि वह (राजकुमारी) आयुर्वेद के प्रश्न पर अविशेषज्ञ की अनभिज्ञता, स्त्री की हठधर्मिता, परधर्मावलम्बी की कट्टरता और पक्षपाती का अन्याय, सभी का सन्निपात कर देती है"

इस ("अभियुक्त का अधिकारियों के प्रति ऐसी भाषा के प्रयोग से भयभीत होकर मुझ पर आक्षेप करने के औचित्य") पर हमारा उत्तर निम्नलिखित था :—

(१) जिस भाषण में यह वाक्य था वही अभियुक्त ने १९५२ में अपने पत्र सचित्र आयुर्वेद में पूरे का पूरा प्रकाशित किया था और उसके ऊपर एक सम्पादकीय टिप्पणी भी दी थी जिसमें फ़रियादी की आयुर्वेदिक सेवाओं की मुक्तकण्ठ से और अतिशयपूर्ण प्रशंसा की थी (प्रदर्शन जैड-९ रिकार्ड पर)।

(२) फ़रियादी की भाषा कड़ी थी किन्तु पवित्र थी।

(३) परन्तु, जब कि फ़रियादी ने अपनी ऐसी शैली त्याग भी दी, अभियुक्त स्वयं राजकुमारी की समालोचना अत्यन्त तीव्र भाषा में फ़रियादी द्वारा वैसी समालोचना त्याग देने

के पश्चात् भी निरन्तर करता रहा है। (६ सम्पादकीय लेख प्रमाण में उपस्थित किए गए। मैजिस्ट्रेट ने तीन स्वीकार किए और तीन अस्वीकार-संयुक्त प्रदेशन जैड-८)।

(४) संयुक्त प्रदर्शन जैड-८ के सब के सब सम्पादकीय लेख फ़रियादी द्वारा वह भाषण दिए जाने के पश्चात् लिखे गए हैं।

(५) इन सभी सम्पादकीय लेखों की भाषा न पवित्र थी न गम्भीर, वल्कि कहीं उसमें अश्लीलता की झलक भी थी। जब इनमें राजकुमारी पर आक्षेप किए गए (जिन में उसके अविवाहित जीवन की ओर भी संकेत किया गया) तब सम्पादक ने सम्पूर्ण गवर्नमैण्ट पर भी आक्षेप किए (जो वास्तव में "सभी की निन्दा" थी)। उनमें से कुछ वाक्य नीचे उद्धृत किए जाते हैं :—

"या तो सरकार आयुर्वेद की अवैज्ञानिक दवाएं सस्ती समझकर जनता में फैलाती है और जनता को धोखा देती है......या आयुर्वेद के पक्षपातियों को धोखा देती है।... अत्यन्त निन्दनीय...।"

"भारत के अन्न-जल-वायु से इन शासकों के शरीर तो अवश्य बने हैं परन्तु इनके अन्तर का विकास विदेशी विकारों से दूषित होकर हुआ है।"

राजकुमारी के सम्बन्ध में सम्पादक (अभियुक्त) "स्वास्थ्य मन्त्राणी के अस्वस्थ विचारों" का वर्णन करता है। उस पर "अंग्रेजों की एजंसी" लेने तथा "करोड़ों की रकम विदेश भिजवाने का संकल्प लिए शासन में सत्ताधारी" बनने का आरोप लगाता है। अन्य वाक्यों में से कुछ यह हैं "...मनोवृत्ति...उनके अज्ञान और अयोग्यता का ही प्रमाण ...दुःसाहस...जिस वर्ग से सम्बन्धित...उसके संस्कार सर्वथा अभारतीय......मन्त्राणी की कृतियों ने सतर्क बना दिया...अब हमारा मार्ग सरल और खुला है। हमें शासन से किसी प्रकार की आशा नहीं करनी चाहिए। अपने पथ पर अपने पुरुषार्थ पर ही प्रगति कर अपने विज्ञान को ऊपर लाना होगा।"...

"राजकुमारी तो...कहती हैं कि "लड़कियों विवाह मत करो, देश-सेवा के लिए कौमार-व्रत धारण करो।"...'हैं जो पड़ोसिन मो सी।' राजकुमारी ने तो कठोर ब्रह्मचर्य से जन्म निकाल दिया...'मिस' जीवन पर भारतीय विश्वास नहीं करते। इसकी अपेक्षा वैधव्यव्रत यहां अधिक अच्छा समझा गया है।"

यह वाक्य (केवल आपत्तिजनक शब्द) सर्वथा संयुक्त प्रदर्शन ज़ैड-८ से ही लिए गए हैं और मैजिस्ट्रेट द्वारा अस्वीकृत सम्पादकीय अग्र लेखों में से नहीं।

यह आश्चर्य-जनक है कि वह व्यक्ति जो राजकुमारी अमृतकौर पर फरियादी के उन भाषणों के अनन्तर ओछी और अयुक्त भाषा में आक्षेप करता रहा जिनकी वह उन दिनों में स्वयं अतिशय प्रशंसा करता रहा, आज फ़रियादी के उन्हीं अतीत कथनों के आधार पर "सु-आधारित भय" का आश्रय ले। इससे तो यही स्पष्ट होता है कि फ़रियादी पर चोट करने के लिए कोई लाठी भी प्रयोग में लाई जा सकती है। श्री देसाई ने एक उर्दू की शेर कही :—

"हम आह भी करते हैं तो हो जाते हैं बदनाम।
वोह कत्ल भी करते हैं तो चर्चा नहीं होता।"

मैजिस्ट्रेट ने जजमैण्ट में कहीं भी सरकार तथा राजकुमारी पर किए गए अभियुक्त के संपादकीय अग्रलेखों (प्रदर्शन जैड-८) का जिकर नहीं किया। उन्होंने इस विषय पर अभियुक्त का भी जिकर नहीं किया और, शायद भूल से, संपादक के स्थान पर 'लेखक' का प्रयोग किया। परन्तु "कोई लाठी भी प्रयोग में लाई जा सकती है" यह वाक्य उनको पूरा स्मरण रहा और उन्होंने उलटकर उसे मिस्टर देसाई पर कसा, किस स्थान पर और किस वास्तविक औचित्य के साथ यह वक्तव्य ३ में दिया जा चुका है।

मिस्टर देसाई ने यह भी पूछा कि द्वेष-बुद्धि का कोर्ट को इससे अधिक और क्या प्रमाण दिया जा सकता है कि पहले तो संपादक ने वही वाक्य अपने पत्र में इस टिप्पणी के साथ प्रकाशित किए कि फरियादी आयुर्वेद का सबसे बड़ा हितकर्ता है, फिर पांच वर्ष पश्चात्, उन्हीं वाक्यों को आयुर्वेद के संभव विनाश से "भयभीत" होकर पेश किया, जबकि वह स्वयं राजकुमारी और पूरी सरकार के विरुद्ध अपना कटु आन्दोलन निरन्तर चलाता रहा।

इस काण्ड का दूसरा पहलू यह भी है कि मैजिस्ट्रेट ने एक अन्य स्थल पर यह लिख कर कि "अभियुक्त विशेष अवसर पर व्यक्ति की पात्रता के अनुसार ही प्रशंसा या निंदा करता था" (पृष्ठ २३), तथा संपादकीय अग्रलेखों (प्रदर्शन जैड ८) पर कुछ भी न कहकर यह तथ्य किया है कि अभियुक्त ने राजकुमारी की जो भी समालोचना की (जिसमें उसके 'निज' जीवन पर संकेत भी शामिल है) वह सर्वथा उसकी पात्र थी। परन्तु मेरी समालोचना, जो कम तीव्र थी, की पात्र नहीं थी।

उपर्युक्त कथन के प्रकाश में मेरी समालोचना १९५२ में सर्वथा उचित थी क्योंकि जिसे अभियुक्त ने पसन्द किया था, परन्तु पांच वर्ष के अनन्तर वहा अनुचित हो गई क्योंकि सम्पादक ने, जो सदा ही निर्दोष था, अभियोग आरम्भ होने के पश्चात् यह निश्चय कर लिया कि वह कुल पांच वर्ष पुरानी समालोचना आयुर्वेद के लिए घातक सिद्ध होगी। मेरे लिए यह ज्ञान एक विचित्र अनुभव था कि मेरी समालोचना तो अयुक्त थी और अभियुक्त का उसी समालोचना का अन्ध समर्थन भी युक्त और उचित तथा उसी का उत्तरकालीन विरोध भी युक्त और उचित। वही वाक्य १००० अध्यक्षीय भाषणों में प्रकाशित होने पर भयंकर और वही वाक्य संपादकीय समर्थन सहित, अभियुक्त के ५००० अथवा इससे भी अधिक संख्या में छपने वाले पत्र में प्रकाशित होने पर न्याय्य'।

यह सिद्ध करने के लिए कि आयुर्वेद की कितनी एकाकी तथा अनन्य सेवाएं जनता, राज्यों, तथा केन्द्र के विभिन्न स्तरों पर फरियादी ने की, मैंने राज्यों तथा केन्द्र के मन्त्रियों तथा भारतवर्ष के मुख्य समाचार-पत्रों के प्रतिनिधियों को गवाही में पेश करने की आफर दी। कोर्ट ने मुझे मिनिस्टरों, विदेशी समाचार पत्रों तथा कुछ भारतीय पत्रों को पेश करने की आज्ञा नहीं दी। जर्नल आफ़ अमेरिकन मैडिकल ऐसोशिएशन पर विचार नहीं किया

क्योंकि वह उचित गवाह द्वारा पेश नहीं हुआ। ठीक इसी परिस्थिति में पेश किया गया उत्तरपक्ष की ओर से श्री बापालाल का लेख स्वीकार कर लिया गया। उसी का खंडन करने वाला उसी पत्र का उसी लेखक का निराकरणात्मक लेख मेरे पेश करने पर अस्वीकृत किया गया। मैं कानून नहीं जानता, अवश्य इन स्वीकृतियों और अस्वीकृतियों के पीछे कुछ कानूनी नियम होंगे जो मैं समझ नहीं सकता।

अस्तु, टाइम्स आफ़ इण्डिया, हिन्दुस्तान टाइम्स, हिन्दू, बम्बई समाचार तथा जनशक्ति के संपादकीय मुख्य अग्रलेख तथा फ्री प्रेस जर्नल की संपादकीय टिप्पणी, जो मेरे भाषणों से सम्बन्ध रखते थे, पेश हो गये। मेरी ओर से यह कहा गया कि मेरे भाषणों तथा कार्य ने जनता की सम्मति को आयुर्वेद के पक्ष में उस सीमा तक पहुँचा दिया था जिसका आयुर्वेद-जगत में अब तक दूसरा उदाहरण नहीं था। यह भी स्पष्ट किया कि अभियुक्त एक भी ऐसा गवाह पेश न कर सका जो यह कह दे कि मेरे भाषणों से आयुर्वेद की हानि हुई। फरियादी ने जो महान सेवा आयुर्वेद की की उसका इससे अधिक प्रमाण वह क्या दे सकता है कि राज्यीय तथा केन्द्रीय स्तर पर मंत्रियों तथा सार्वजनिक स्तर पर सर्वाग्रणी समाचार-पत्रों के मुख्य संपादकीय अग्रलेखों की गवाही पेश कर दे।

मैजिस्ट्रेट ने इस सम्पूर्ण अंश की जजमैण्ट में कहीं चर्चा नहीं की। उन्होंने पहले पेश करने की आज्ञा देकर, ईवनिंग न्यूज़, दिसम्बर २९, १९३८ में प्रकाशित सर फ्रान्सिस लो के उस अग्रलेख को, जिसमें उसने मेरे अध्यक्षीय भाषण की "ज्ञान संपद और शैली सौष्ठव" की विशेषता की ओर ध्यान आकर्षित किया था, पुनः अस्वीकृत कर दिया।

श्री यादव जी से मेरे सम्बन्ध

उत्तरपक्ष का यह दावा कि मैंने अपने आपको देहली (फरवरी १९५०) में श्री यादव जी को "बाहर निकालने के लिए निर्वाचित कराया" क्योंकि उनके साथ मेरा निरन्तर विवाद चलता रहा सत्य को उलटने के साहस का एक नाटकीय उदाहरण है। इस विषय पर जजमैण्ट के सम्बद्ध अंश पहले न उद्धृत कर मैं सर्वप्रथम अपने और श्री यादव जी के सम्बन्ध का इतिहास देता हूं। जजमैण्ट के अनुमान उसके पीछे उद्धृत करूंगा।

१९३७-३८ में श्री यादव जी ने एक आंदोलन आरम्भ किया कि अध्यक्ष पं॰ जवाहरलाल नेहरू की तरह एक क्रियाशील व्यक्ति होना चाहिए जो प्रचार-यात्रा और संगठन कार्य भी करे (प्रदर्शन ई, ई-१)। एप्रिल १९३८ में उन्होंने नागपुर में तात्कालिक निमन्त्रण देकर आगामी अधिवेशन बम्बई के लिए स्वीकार करा लिया। फिर उन्होंने मुझे अध्यक्ष बनाने के लिए कठिन परिश्रम किया। मैजिस्ट्रेट ने स्वयं लिखा है "१९३८ में महासम्मेलनाध्यक्ष के रूप में प्रविष्ट करने का उत्तरदायित्व जादव जी पर था" (पृ ३०)। श्री यादव जी ने मेरी योग्यता का मूल्यांकन ऊंचा किया (स्वागत भाषण-प्रदर्शन एफ)। मेरे प्रथम सभापतित्व के सवा दो वर्षों में महासम्मेलन में अभूतपूर्व शान्ति और उन्नति रही। तथ्यों पर इस कथन को चुनौती नहीं दी जा सकती। यद्यपि एक स्थान

मैजिस्ट्रेट ने कहा है कि "विवाद १९३८ में उसके अध्यक्ष बनने के तुरन्त पश्चात् आरम्भ हो गये, १९४४ में उसके 'तिरोभूत' होने पर समाप्त हो गये और १९५० में पुनः प्रकट हो जाने पर फिर उत्पन्न हो गये", परन्तु उन्होंने इसका एक अन्य कथन द्वारा स्वयं ही खण्डन कर दिया जहां कहा है कि "उसके और यादव जी के बीच १९४१ से १९५१ तक निरन्तर विवाद चला" (पृष्ठ ३०)। क्योंकि उस समय से सम्बन्धित एक ही विवाद (मूलचन्द ट्रस्ट सम्बन्धी मेरे तथा श्री यादव जी के बीच) सम्पूर्ण रिकार्ड पर है और क्योंकि इन दो परस्पर-विरोधी वाक्यों में से एक ही सत्य हो सकता है, केवल १९४१ से १९४४ तक के काल के लिए पिछला वाक्य तथ्यपूर्ण है। यद्यपि महासम्मेलन एक विशाल तथा कठिनाई से नियन्त्रण में रखी जा सकने वाली संस्था है जिसमें कई कलहकारी तत्व विद्यमान रहते हैं, तो भी यह निश्चित है कि कोई प्रयत्न या खोज इन सवा दो वर्षों में एक भी ऐसा उदाहरण नहीं निकाल सकेगी जिसे विवाद कहा जा सके।

लखनऊ अधिवेशन में एक प्रस्ताव पास हुआ कि आवश्यकता पड़ने पर लाहौर के मूलचन्द ट्रस्ट पर कानूनी कार्यवाही की जाए। श्री यादव जी ने इसका समर्थन किया और यह सर्वसम्मति से पास हुआ। मैजिस्ट्रेट स्वयं लिखते हैं, "अभियोग महासम्मेलन के प्रस्ताव द्वारा किया गया, वह तो केवल मंत्री ही था" (पृष्ठ २८)।

श्री यादव जी आजीवन महासम्मेलन में एक बड़ी शक्ति रहे और इसके मुख्य पथ-प्रदर्शक रहे। मैंने कोट्टकल (१९५४) के भाषण में उन्हें पथ प्रदर्शक लिखा है और अभियुक्त ने एक संपादक-समर्थित लेख में उन्हें पथ-प्रदर्शक स्वीकार किया है। **"जबकि सम्मेलन का तंत्र प्रायः आप ही की प्रेरणा से चलता हो"**—(सचित्र आयुर्वेद, जनवरी-फरवरी १९५०, पृष्ठ ५३७)। सुयोग्य मैजिस्ट्रेट ने यह दोनों पत्र अस्वीकार कर दिये।

फिर, जब मूलचन्द निधि के सदस्यों के, जो सभी लक्षाधीश थे, विरुद्ध अभियोग चलाने का प्रश्न उठा तब श्री यादव जी उस प्रस्ताव को कार्यान्वित करने के विरुद्ध हो गये जिसका उन्होंने लखनऊ में समर्थन किया था। इस विषय पर हमारा मतभेद हुआ। मैं यह स्वीकार करता हूं कि इसे हमारे बीच विवाद कहा जा सकता था। दिसम्बर १९४२ में मैंने श्री यादव जी की यह मांग स्वीकार कर ली कि वह अभियोग महासम्मेलन के उत्तरदायित्व पर न चले। तत्पश्चात् महासम्मेलन का उस अभियोग से कोई सम्बन्ध नहीं रहा। इस समझौते की प्रशंसा में लिखा गया पंडित किशोरीदत्त का संपादकीय लेख (पत्रिका जनवरी १९४३) मैजिस्ट्रेट ने अस्वीकार कर दिया। उसी के साथ का उसी पत्रिका के उसी अंक का एक संपादकीय उत्तरपक्ष की ओर से स्वीकार कर लिया। एक वर्ष पश्चात् लाहौर से कार्यालय चला गया और मैं महासम्मेलन कार्य में अधिक भाग न ले सका। मैजिस्ट्रेट ने सन् १९४४ से १९५० तक के सात वर्ष के काल को मेरा सप्तवर्षीय 'आबुलिवियन' अर्थात् तिरोभाव, "अन्धकार प्रवेश" अथवा अज्ञातवास कहा है। परन्तु इसी अज्ञातवास के सप्त-वर्षीय दीर्घकाल को मेरे "एक क्षत्राधिपतित्व" अर्थात् डिक्टेटरशिप का काल भी ठहराया है।

१९४७ में देश-विभाजन के कारण मुझे लाहौर छोड़ना पड़ा और बम्बई में ठीक प्रकार पुनः स्थापित होने में मुझे ३-४ वर्ष लग गये। यहां के पहले कार्यों में एक मेरा श्री यादव जी से मिलना था। मैंने उन्हें सद्भावना से पूर्ण पाया। १९५० में मेरा नाम पहले पांच नामों में निर्वाचित हुआ और मैंने अपना नाम उनके पक्ष में हटा लिया (जिनको "बाहर निकालने" के लिए मैंने अपने आपको उपसभापति "निर्वाचित करा लिया!") उनके पक्ष में मेरा नाम वापिस लेना कोर्ट के रिकार्ड पर है। अभियुक्त ने मेरे पत्र में उनकी अध्यक्षता और मेरी उपाध्यक्षता को एक आदर्श संयोग प्रकाशित किया, "जिन्होंने पहले दो बार नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के अध्यक्ष के रूप में शिवशर्मा जी की कार्यशक्ति का परिचय पाया है, वे इस बात की सहज कल्पना कर सकते हैं कि वैद्य यादव जी भाई की योजना तथा शिवशर्मा जी की कार्यशक्ति का संयोग कितना शुभग परिणाम उपजायगा!!" (यह दोहरे विस्मय चिह्न मेरे नहीं मूल लेखक के ही हैं) सचित्र आयुर्वेद, जनवरी-फरवरी १९५० पृष्ठ ५३८। मैजिस्ट्रेट ने इसे अस्वीकार कर दिया।

उपाध्यक्षता, अध्यक्षता अथवा प्रधान-मंत्रित्व की अपेक्षा, कुछ महत्व नहीं रखती, यह बाइबल के पाठ के प्रसिद्ध हास्यपूर्ण विकृत स्वरूप से स्पष्ट हो जायगा, "नम्र व्यक्तियों को ईश्वर का बरदान है कि वे उपसभापति चुने जाएंगे।" मैंने उपसभापतित्व सहयोग तथा मैत्री की भावना से ही स्वीकार किया। यदि मैं डिक्टेटर अथवा पदलोलुप होता तो श्री यादव जी के पक्ष में अपना नाम पहिले ही वापिस न लेता।

मैं नीचे कुछ अर्थपूर्ण घटनाएँ दे रहा हूँ जो निश्चित रूप से यह सिद्ध कर देंगी कि एक तो अधिक कठिन कार्य के लिए श्री यादव जी मेरा सहारा लेते थे और मुझ पर पूरा भरोसा रखते थे, तथा दूसरे जब से हमने इकट्ठे पदाधिकार स्वीकार किया तब से उनके दुःखद निधन तक मेरा और उनका सम्बन्ध अत्यन्त मैत्रीपूर्ण रहा :—

(१) जब मैंने उनके पक्ष में अपना नाम वापिस लिया उस समय मेरी सहायता के आश्वासन पर उनका सभापतिपद स्वीकार करना।

(२) उनका यह आग्रह कि शेष निर्वाचन पीछे रखकर भी मैं उपाध्यक्ष पद स्वीकार करूँ।

(३) उनके अध्यक्ष, अतएव स्वाभाविक और नियमानुकूल नेता, होते हुए भी ३१ अगस्त १९५० को दिल्ली स्वास्थ्य सचिव सम्मेलन से भेट करने वाले शिष्टमंडल का नेतृत्व मुझे संभालना। यह तथ्य कि उन्होंने शिष्टमण्डल का अग्रवक्ता मुझे बनाया यह स्पष्ट करता है कि वह मेरे कार्य को पहिचानते थे और अपने कनिष्ट अनुयायी का अनुसरण करके भी उसका पूर्ण लाभ उठाते थे।

(४) बम्बई राज्य वैद्य सम्मेलन (१९५१) में, मेरी अनुपस्थिति में ही, जब कि मैं उम्मीदवार भी नहीं था उन्होंने अपना नाम वापिस लेकर मुझे सर्वसम्मति से अध्यक्ष निर्वाचित कराया, यद्यपि इस सम्मेलन का मुख्य ध्येय उनका ही अभिनन्दन करना था जो फिर मेरे सभापतित्व में किया गया।

(५) उनका मुझे अपने स्थान पर आयुर्वेद महासम्मेलन के गाजियाबाद विशेषाधिवेशन (अगस्त १९५१) की अध्यक्षता करने के लिये कहना।

(६) यह अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रमाण है जो उनका दूसरों से दुखी होकर मुझपर विश्वास रखना स्पष्ट करता है अर्थात् उनका फरवरी १२, १९५२ को त्याग पत्र देना और २६ जून १९५२ को त्याग पत्र वापिस लेना। यह दोनों पत्र कार्यालय के कागजों में कोर्ट में आए हुए थे परन्तु उन्हें रिकार्ड पर लाने की मेरे वकील की प्रार्थना कोर्ट ने अस्वीकार कर दी। उनका पूरा पाठ उस उत्तरपक्षीय असत्य का पूर्ण निराकरण कर देगा जो हमारे बीच एक सर्वथा काल्पनिक विवाद का जनक था :—

(क) श्री यादव जी का त्यागपत्र

श्रीयुत् वैद्यराज पं० गुरुदत्त जी,
प्रधान मन्त्री, नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन
नई दिल्ली।

मैं अनुभव करता हूँ कि इस समय देहली के वैद्यों में आपस में वैमनस्य और कलह चल रहा है और हम लोगों की शक्ति रचनात्मक कार्य करने के बजाय विवाद करने में खर्च हो रही है। इस परिस्थिति में मैं अध्यक्ष पद संभालने में असमर्थ हूँ। अतः इस त्याग पत्र द्वारा आज से इस जिम्मेवारी से मैं अपने को मुक्त समझता हूँ। वैद्य यादव जी त्रिकम जी आचार्य का प्रणाम।

(ख) श्री यादव जी का त्यागपत्र वापिस लेना

टेलीफोन नं० २४३५६
वैद्य यादव जी त्रीकम जी आचार्य
डा० वीगास स्ट्रीट, बम्बई नं०-२
ता० २६-६-५२

श्रीयुत् वैद्यराज पं० गुरुदत्त जी,
प्रधान मन्त्री, नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन
न्यु दिल्ली।

आपका पत्र मिला। मैं अपने त्यागपत्र को वापिस लेता हूँ। परन्तु अब सम्मेलन के किसी कार्य में भाग भी नहीं लेना चाहता। अतः सम्मेलन सम्बन्धी सब पत्र-व्यवहार आप स्थानापन्न अध्यक्ष वै० र० पं० शिवशर्मा जी से ही करें।

यादव जी आचार्य

(कोर्ट रिकार्ड पर मेरे इस बयान को कि श्री यादव जी ने अपना त्यागपत्र वापिस ले लिया चुनौती नहीं दी गई। तो भी मैंने यह पत्र पेश करने चाहे। कोर्ट की अस्वीकृति के अनन्तर हम लोगों ने इसलिए आग्रह नहीं किया कि चैलेंज के अभाव में मेरा कथन ही प्रमाण होगा)।

(७) अभियुक्त ने जो परिषद् हरिद्वार में बुलाई उसमें मेरे सम्मिलित होने के लिए श्री यादव जी का मुझे आग्रहपूर्वक पत्र लिखवाना।

(८) अभियुक्त का स्वयं मेरी और श्री यादव जी की एक स्वर में प्रशंसा करना (प्रमाण एक पैम्फलेट और सचित्र आयुर्वेद का उपर्युक्त अंक—अस्वीकृत।)

(९) श्री यादव जी का और मेरा इकट्ठे ही बम्बई के बोर्ड आफ रिसर्च से त्यागपत्र देना। अन्य किसी सदस्य ने त्यागपत्र नहीं दिया था।

(१०) बनारस हिन्दू-विश्वविद्यालय की आयुर्वेद विभाग सुधार समिति द्वारा मेरी बहुपक्षीय रिपोर्ट पर श्री यादव जी का, चाहे कुछ भावी संशोधन के साथ ही, हस्ताक्षर कर देना। श्री बापालाल ने, जो मेरे विचारों से सहमत नहीं थे, श्री यादव जी द्वारा किए गए मेरे समर्थन का विरोध भी किया।

(११) हमारी पारस्परिक शास्त्रीय गोष्ठी। पत्रिका यह दिखाएगी कि मुझसे जो भूल 'भाव मिश्र द्वारा प्रथम मल्ल प्रयोग हुआ' ऐसा कहने में हुई थी, वह उन्होंने मुझे, बिना किसी अन्य को बताए, दिखाई, जिसके लिए मैंने ही उनके प्रति कृतज्ञता प्रकाशित की जिसे उन्होंने पसन्द किया। पत्रिका यह भी दिखाएगी (सूरत का भाषण) कि मैंने उन्हें उनकी नवीनतम पुस्तक "आयुर्वेदीय व्याधि विज्ञान" में उनकी यह भूल दिखाई कि सत्व को मानसिक दोष लिख दिया गया है (सत्व की वृद्धि और तम का ह्रास भी दोषवत् व्याधि के कारण समझ लिए गए हैं)। मैंने उन्हें कहा कि इससे विद्यार्थी आयुर्वेद के सिद्धान्त को सर्वथा भ्रान्त रूप में ग्रहण करेंगे। हमारा यह विचार-विनिमय सर्वथा हमारे बीच ही होता था और किसी की उपस्थिति में नहीं।

(१२) उन्होंने अपने जीवन-काल में तथाकथित नि० भा० वैद्य हकीम कांग्रेस का अधिवेशन नहीं होने दिया।

(१३) अपने कई निकट अनुयायियों के विरोध करने पर भी उन्होंने मेरे कहने पर बीकानेर में अपनी हीरक जयन्ती अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के विशेषाधिवेशन के तत्वावधान में मनाया जाना स्वीकृत किया और वह मनाई गई।

(१४) बम्बई सरकार द्वारा अप्रमाणित औषधों के प्रतिषेध के लिए बनाई गई समिति का मुझे चेयरमैन नियुक्त किए जाने पर मैंने स्वास्थ्यमंत्री से प्रार्थना की कि चेयरमैन श्री यादव जी को बनाना चाहिए। स्वास्थ्य मंत्री की ओर से श्री वामनराव श्री यादव जी से मिले। उन्होंने मेरी अध्यक्षता पर संतोष प्रगट किया और मुझे उस स्थान से हटाने के विरुद्ध सलाह दी।

(१५) इतनी लम्बी यात्रा करके वे इन्दौर के अधिवेशन पर सब प्रस्तावों को सर्वसम्मत स्वीकृति दिलवाने के लिए स्वयं उपस्थित हुए।

इससे स्पष्ट हो जाएगा कि मेरा उनका मतभेद अप्रैल १९४१ के लाहौर ट्रस्ट विरोधी-लखनऊ के प्रस्ताव के कुछ मास पश्चात् आरंभ हुवा और दिसम्बर १९४२ में उनके मतभेद का कारण दूर कर दिये जाने पर नष्ट हो गया।

माघ २०१४

संक्षेप में श्री, यादव जी १९३८ में मुझे अध्यक्ष बनाकर लाए। १९५० में उन्होंने पुनः मुझे उपाध्यक्ष बनाकर साथ लिया। १९५० के पश्चात् हमारा विशेष घनिष्ट सम्बन्ध रहा। महासम्मेलन की उन्नति के लिए हमारे समान विचार थे और समान कार्य। यदि यह कथन सत्य नहीं तो श्री यादव जी का त्यागपत्र वापिस लेना उनको बहुत बुरे प्रकाश में दिखाएगा। या तो वह मेरे हाथों की कठपुतली सिद्ध होंगे जो केवल सभापति पद को बने हुए थे और वास्तविक डिक्टेटर मैं था या उन्हें सभापति पद की लालसा ऐसी थी कि जब तक उन्हें सभापति कहा जाए उन्हें इस बात की परवाह नहीं थी कि उनको बिल्कुल ही विस्मृत कर दिया जाय और मैं संस्थानाशक "एकक्षत्राधिपतित्व" में प्रवृत्त रहूं। एक और भी विकल्प हो सकता है कि एक डिक्टेटर होने के कारण मैंने उन्हें दबाकर अथवा भयभीत करके सभापतित्व स्वीकार किए रखने पर विवश कर दिया और उनकी आड़ में मैं सब कार्य करता रहा। मुझे विश्वास है कि न तो कोई अन्य और न ही अभियुक्त उनको उस प्रकाश में देख सकते थे। मैजिस्ट्रेट द्वारा उनका मूल्यांकन इसी से ज्ञात हो सकता है कि उन्होंने "अत्यन्त प्रसिद्ध (विख्यात) में से एक," मेरे इस विशेषण को अनजाने में "परमपूज्य" में परिणत कर दिया जो कि न तो मैंने ही कहे थे न ही कोर्ट में किसी अन्य व्यक्ति ने, न ही रिकार्ड पर कहीं ऐसे शब्द आए हैं। अभियुक्त इन शब्दों का प्रयोग श्री यादव जी के लिए प्रायः करते हैं परन्तु वह न तो बयान देने ही आए, न उनके लिखित जवाबदावे में कहीं ऐसे शब्द आए हैं। अस्तु, यह देखते हुए कि सुयोग्य मैजिस्ट्रेट ने "परम पूज्य" शब्द का प्रयोग श्री यादव जी के लिये किया है मैं यह अनुमान लगा सकता हूँ कि यदि वह श्री यादव जी की त्याग-पत्र की वापसी का पत्र अस्वीकार न करते तो वह उपर्युक्त अवांछनीय विकल्पों में से किसी को न लेकर उस पत्र का एक ही संभव और स्पष्ट अर्थ लेते कि जब से उन्होंने मुझे उपाध्यक्ष बनाकर सहायता के लिए सहाधिकारी बनाया तब से मैंने उनकी आज्ञाओं की पूर्ति की और उन्होंने मुझ पर यह विश्वास रखा कि मैं उनकी इच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं करूंगा। और यही कारण था कि अभियुक्त ने अस्वीकृत अंक में हम दोनों को एक अच्छे पथ-प्रदर्शक और एक अच्छे कार्य-कर्त्ता का संयोग कहा था और उनके सभापतित्व में वह निरंतर मेरी अन्ध-प्रशंसा करता रहा। मेरे और श्री यादव जी के बीच इन वर्षों में विवाद की कल्पना के लिए कोई भी आधार नहीं यदि वह विवाद गुप्त तथा एकपक्षीय नहीं था।

श्री गेहानी की जजमैण्ट के सम्बन्धित अंश—उपर्युक्त कथन के प्रकाश में पाठक जजमैण्ट के वे अंश देखलें जो मैं नीचे उद्धृत करता हूँ। मैजिस्ट्रेट लिखते हैं "यादव जी जो कांग्रेस के एक परम पूज्य नेता थे और तीन बार अध्यक्ष रह चुके थे, ने भी अपना त्यागपत्र भेज दिया था। यद्यपि फ़रियादी कहता है कि अन्य छः पदाधिकारियों के त्यागपत्र देने से पहले उन्होंने अपना त्यागपत्र वापिस ले लिया था। (मौलिक त्यागपत्र और उनके वापिस लेने के पत्र पढ़िए और देखिये कि उनके रिकार्ड पर न आने से कितनी भ्रांति हो गई) परन्तु यह नहीं बताया गया कि यदि यादव जी ने अपना त्यागपत्र वापिस ले लिया

तो फ़रियादी उस सम्पूर्ण काल में कार्य क्यूँ करता रहा" (पृष्ठ १९) (यहां सुयोग्य मैजिस्ट्रेट दुर्भाग्यवश भूल गए कि प्रदर्शन जैड—१ रिकार्ड पर था जो यह दिखाने के लिए पेश किया गया था कि कार्य अध्यक्ष यादव जी से सलाह लेकर किया जाता था)।

"उत्तरपक्ष ने फिर उसे कहा कि दिल्ली अधिवेशन पर भी पदाधिकारियों का चुनाव इसलिए नहीं हो सका क्योंकि उसमें और यादव जी में विवाद चल रहा था। बल्कि सत्य यह था कि वह यादव जी को बाहर निकाल देना चाहता था। उसने यह नहीं माना। परन्तु उसे यह तो मानना ही पड़ा कि यादव जी ने १९५१ के आरम्भ में अर्थात् अधिवेशन के तुरन्त पश्चात् त्यागपत्र दे दिया था, (वास्तव में उन्होंने १२-२-५२ को त्यागपत्र दिया, पूर्ण दो वर्ष पश्चात् से केवल एक सप्ताह कम) और वह उपाध्यक्ष होने के कारण अध्यक्ष बन गया। इससे यह अनुमान लगाना युक्ति-युक्त होगा कि उसके और यादव जी के बीच में १९४१ से १९५१ तक निरन्तर विवाद चला" (पृष्ठ २९-३०)। परन्तु पृष्ठ ३१ पर मैजिस्ट्रेट ने इस आनुमानिक विवाद के चित्र को निम्नलिखित शब्दों द्वारा बिल्कुल बदल दिया है, "विवाद......१९४४ में उसके "अन्धकार प्रवेश" के साथ समाप्त हो गए और १९५० में उसके पुनः प्रकट होने पर आरम्भ हो गए।" दूसरों शब्दों में पहले मैजिस्ट्रेट ने यह कहा कि सात वर्ष (१९४१-५०) मुझ में और श्री यादव जी में युद्ध छिड़ा रहा और दूसरी बार यह कहा, दूसरे ही पृष्ठ पर, कि मेरे इस दीर्घकालिन "अन्धकार प्रवेश" के कारण इस समय शान्ति का राज्य रहा।

यह कहना कितना अविश्वसनीय है कि दिल्ली अधिवेशन में पदाधिकारियों का चुनाव श्री यादव जी से मेरे विवाद के कारण नहीं हो सका, इसे वह वैद्य-बन्धु भली प्रकार समझ सकेंगे जो कि १९५० में दिल्ली के अधिवेशन में उस अवसर पर उपस्थित थे।

मिश्रित

जजमैण्ट में अनजाने में कई विस्मृतियां हो गई हैं जैसे "लेखक" को महासम्मेलन का वर्तमान सदस्य समझना जब कि वह कभी से पृथक् हो चुका था, यह कहना कि विषय एजण्डे पर नहीं थे (२३,३६) जब कि वह थे (जैड-२०), वापिस लिए गये तथा स्वीकार किए गये त्यागपत्रों को एक ही स्वरूप देना जैसा कि मेरे और श्री यादव जी के त्याग-पत्रों को, श्री पार्थनारायण पण्डित का मेरे द्वारा सभापतित्व के लिए नाम सूचित करने को एक स्थान पर "भयंकर नियम भंग" कहना और दूसरे स्थान पर "उचित कार्य" कहना इत्यादि, परन्तु मैं उन्हें छोड़ रहा हूं।

कहीं-कहीं अनजाने में निश्चयप्रद सामग्री खो दी गई है। ऊपर बहुत से उदाहरण दिए जा चुके हैं। जो छोड़ दिये गये हैं उनमें से केवल एक उदाहरण और दे देता हूं :—

१९४२ में मैंने एक वक्तव्य (अपराधी कौन ?) प्रकाशित किया था जो कोर्ट क्लर्क के पास तो पहुँच गया था किन्तु रिकार्ड पर नहीं गया। मेरे शब्द थे :—मैंने स्वीकार किया है कि मैं बम्बई की अध्यक्षता का इच्छुक था। मैं वैद्य समाज को यह विश्वास

दिलाना चाहता हूं कि मेरी प्रथम अध्यक्षता के अन्त के साथ ही किसी ऐसे सम्मान की इच्छा भी नष्ट हो गई।" मोटे शब्दों का वाक्य रिकार्ड पर नहीं गया और इसके अभाव ने "स्वीकृति" के चित्र को बिल्कुल उलट दिया।

कई स्थानों पर योग्य मैजिस्ट्रेट ने एक ही घटना के विस्मृतिवश दो अर्थ कर दिए हैं उदाहरणार्थ वह कहते हैं "अधिकारलिप्सा का इसी से अनुमान लग सकता है कि अन्य अध्यक्षों की प्रथा के विरुद्ध निर्वाचित होते ही उसने भारत के विभिन्न प्रान्तों का लम्बा दौरा किया।" (पृ० ५०) पुनः वे कहते हैं "यह स्पष्ट है कि उसके दौरे सदस्य भर्ती करने के लिए किए गए जैसा कि उस आज्ञा से भी स्पष्ट है जो वृद्ध वैद्य यादव जी ने नए अध्यक्ष को दी अपने ई तथा ई-१ प्रदर्शनों के अनुसार।" (पृष्ठ ५३)

जजमैण्ट में बहुत कल्पनाएं हैं जो मैंने छोड़ दी हैं। उदाहरणार्थ केवल एक यहां देता हूं, "फ़रियादी कहता है कि यह पत्र उसे पार्थनारायण ने लिखने के लिए कहा। परन्तु यह सुझाव अवश्य उसकी अपनी ही ओर से आया होगा और पार्थनारायण, जो उसका कृतज्ञ था, ने अवश्य केवल मान लिया होगा" (पृष्ठ ५१)।

श्री यादव जी ने, एक पत्र लिखवाना तो क्या, संपूर्ण कार्य ही मुझ से कराया जब कि वह स्वयं अध्यक्ष बने रहे (उनके उपर्युद्धृत २९-६-५२ के पत्रानुसार); मैंने उनके पक्ष में अपना नाम वापिस लिया (१९५०), और उन्होंने १९५१ में मेरे पक्ष में अपना नाम वापिस लिया (बम्बई राज्य सम्मेलन)। इस आधार पर तो श्री पार्थनारायण पण्डित की अपेक्षा वह मेरे कहीं अधिक कृतज्ञ थे, तो भी यह कहा गया कि मुझ में और उनमें विवाद था।

स्वामी हरिशरणानन्द का अभियोग

मैं स्वामी हरिशरणानन्द के मामले को भी छोड़ रहा हूं। उसपर इतनी ही लम्बी टिप्पणी लिखना मेरे और पाठकों, दोनों के लिए ही श्रमजनक होगी तथा समान विषयों का पिष्टपेषण होगा। जो कुछ यहां कहा गया है वह संबन्धित अभियोग के लिए भी वैद्य समाज के सामने सच्चा चित्र लाने के लिए पर्याप्त होगा।

चलते-चलते

मेरे एम० ए० आदि कहे जाने के सम्बन्ध में एक शब्द कह दूं। मेरा बिना एम० ए० हुए ऐसा कहा जाना इन सज्जनों के लिए 'नवीन सूचना' थी जिससे उन्हें विस्मय हुवा, ऐसा कहा जाता है।

(क) लाहौर के मूलचंद ट्रस्ट के वकील ने, जो उस समय स्वामी हरिशरणानन्द और श्री कन्हैयालाल भेड़ा आदि का भी वकील था, १९४५-४६ में मेरी योग्यता के सम्बन्ध में मुझ पर लम्बी जिरह की थी। यही नहीं, एक कमीशन भी पटियाले गया जहां पूज्य पिता जी का बयान भी, उनके पटियाला आयुर्वेद विभाग के अध्यक्ष होने के नाते, लिया गया और लम्बी जिरह भी की गई। वहां भी मेरी योग्यता तथा पटियाले की आयुर्वेद शिक्षा का शास्त्रीय मूल्य यही जिरह के विषय थे।

(ख) श्री रामनारायण शर्मा, जो स्वामी हरिशरणानन्द की लिस्ट ए पर गवाह नं० २ थे, का बयान पटना में कमीशन द्वारा २८ दिसंबर १९४६ को होना था (कमिश्नर प्रकाश चन्द्र महाजन के 'वैद्य रामनारायण, मालिक वैद्यनाथ भवन, कदम कुआ, बांकीपुर पटना' को १२-१२-४६ के पत्र के अनुसार)। परन्तु वह बीमार पड़ गए और उन्हें पहाड़ पर विश्राम और चिकित्सा के लिए चला जाना पड़ा (कमिश्नर को उनके उत्तर के अनुसार), अतएव वे निश्चित समय पर पटना रेलवे स्टेशन पर जहां गवाही होनी थी नहीं पहुंच सके और कमिश्नर को बनारस जाकर स्वामी हरिशरणानंद के दूसरे गवाह, कविराज प्रतापसिंह की गवाही लेनी पड़ी।

यह सज्जन हमें यह विश्वास दिलाना चाहते हैं कि जो सूचना इन्होंने मेरी योग्यता पर मेरी और मेरे पिता जी की गवाही तथा लम्बी जिरह द्वारा इतने परिश्रम से इकट्ठी की थी, वे उसे भूल गये हैं। जो इस "विस्मृति" पर विश्वास कर सकते हैं अवश्य करें।

इस सम्बन्ध में मैं इससे अधिक कुछ नहीं कहना चाहता कि मेरी आयुर्वेद से बाहर न कोई योग्यता (उपाधि रूप) है, न मैंने होने का कभी दावा किया। न मैं यह समझता हूं कि ऐसी योग्यता का किसी वैद्य के चिकित्साकौशल, शास्त्रज्ञान अथवा यश से कोई सम्बन्ध है। रहा पटियाला की योग्यता के आयुर्वेदिक मान के सम्बन्ध में, मैं कोई कष्टप्रद तुलना न करके इतना ही कहना चाहता हूं कि उस राज्य में आयुर्वेद सम्बन्धी सभी कार्यों के लिए आयुर्वेदाचार्य सर्वोच्च योग्यता मानी गई है।

और अन्त में

यह अभियोग एक लक्षाधीश, वृहद् औषध निर्माता तथा प्रकाशक फर्म, और एक ग्लास फैक्ट्री के अधिपति ने जीता है। उसकी सम्पत्ति का कुछ अनुमान इससे लग सकता है कि इसी अभियोग पर बहुत मंहगी कानूनी सहायता पर लाखों रुपया व्यय करने के अतिरिक्त उसने अभियोग के दौरान में ही पांच लाख रुपये का दान और घोषित किया। परन्तु मैं सुनता हूं कि यह सब कुछ इनकी नई योजना की तुलना में कुछ भी नहीं जो यह बना रहे हैं। एक व्यक्ति जो आजकल के भारी टैक्स देकर भी इतना धन एकत्रित कर सकता है ऐसी परिस्थिति में है कि वह गंभीर हानि पहुंचा सके, विशेषतया जब उसके हाथ एक ऐसे न्यायालय के निर्णय से सबल हों जो उसके आन्दोलन के विषय के आचरण और चरित्रदृढ़ता के लिए विशेष हानिकर हो।

वह एक पुस्तक बांट रहे हैं, जो मैंने कलकत्ता पैंफलेट के नाम से वक्तव्यों में वर्णित की है। उसमें और भी असत्य जोड़ा गया है। (जिसका खण्डन प्रथम वक्तव्य में राष्ट्रपति भवन के पत्र व्यवहार द्वारा किया गया है)। इसकी सहस्रों प्रतियां अब तक निशुल्क बंट चुकी बताई जाती हैं अन्य समान साहित्य के अतिरिक्त। इस नई अपमानजनक पुस्तिका को कितने विशाल क्षेत्र में वितीर्ण किया गया है इसका अनुमान निम्नलिखित दो प्रश्नों से हो सकेगा जो मुझ से पूछे गये। लंका की स्वास्थ्य मंत्रिणी श्रीमती विमलाविजयवर्धन जो इन्हीं दिनों भारत आईं थीं, ने मुझे पूछा "आपके विरुद्ध वह पैंफलेट किसने मुझे भेजा ?" उन्हें

पुस्तक गालफेस सैक्रेटेरियेट, कोलम्बो में अपनी मेज पर प्राप्त हुई। हैदराबाद के भूतपूर्व स्वास्थ्य सचिव, श्री फूलचन्द गांधी ने मुझे पूछा, "मुझे आपके विरुद्ध पैंफ्लेट पढ़कर खेद हुआ, परन्तु उन लोगों को मेरा बम्बई का पता कैसे प्राप्त हो गया जो यह पोस्ट कर सके ?" दिल्ली राज्य के एक भूतपूर्व प्रधानमंत्री ने, जब नई दिल्ली में पार्लियामेंट हाउस के सामने उनसे मेरी अचानक भेंट हुई, मेरे विरुद्ध इस साहित्य की चर्चा की। राज्यसभा के उपाध्यक्ष श्री एस० वी० कृष्णमूर्त्ति राव ने भी इसके सम्बन्ध में पूछ-ताछ की। जहां भी मैं जाता हूँ देश भर में लोकसभा सदस्य, विधानसभा सदस्य तथा जीवन के प्रत्येक व्यवसाय के लोग मुझ से यही प्रश्न करते हैं।

मैं इस प्रश्न का उत्तर उससे अधिक देने की परिस्थिति में नहीं हूं जो मैंने इन वक्तव्यों में दे दिया है। मनुष्य अपना श्रेष्ठतम प्रयत्न ही कर सकता है। सफलता अथवा असफलता सदा हमारे प्रयत्न अथवा पात्रता की उत्कृष्टता में ही नहीं मिलती। परन्तु कोई अनुभव, वह कितना भी कटु क्यों न हो, मनुष्य का मनुष्य में विश्वास नष्ट करने में सफल नहीं होना चाहिए। घृणा, द्वेष और कटुता को नष्ट कर और सत्य की अन्तिम विजय और उस पर अचल आशा रख कर उसे स्थिरता से अपना कर्त्तव्य पालन करते रहना चाहिए। ऐसे समय का, उसे अपने वास्तविक चरित्र की परीक्षा के क्षण समझ कर तथा अपने विरोधियों और मित्रों के चरित्रों की परीक्षा का काल समझ कर, स्वागत करना चाहिए और जिस लक्ष्य को हम सत्यपूर्ण और पवित्र समझते हैं उसके अग्रसर करने में हमारा प्रयत्न न तो रुक जाना चाहिए और न ही ढीला पड़ना।

शिवशर्मा

॥ सम्पूर्ण ॥

"मार्तण्ड के चमत्कारी इन्जेक्शन्स"

मार्तण्ड फार्मेस्युटिकल्स भारत की एक मात्र सर्वसाधनसम्पन्न एवं इलेक्ट्रिक आटोमेटिक मशीनों द्वारा सुसज्जित लैबोरेट्री है, जिसमें सरकार द्वारा प्राप्त लाइसेंस के आधीन, सरकार द्वारा क्वालिफाइड कैमिस्टों की देख-रेख में इन चमत्कारी तथा फौरन असर करने वाले आयुर्वेदिक इंजेक्शनों का निर्माण पूर्ण वैज्ञानिक तरीके पर होता है। निरापद तथा स्वदेशी चिकित्सा के लिये इन अपने "मार्तण्ड" के इंजेक्शनों को उपयोग में लाइये, इनके आशुगुणकारी, निरापद और पूर्णलाभकारी होने की हम गारंटी देते हैं। अतः इस बार हमारे—चमत्कारी इंजेक्शनों की भी परीक्षा कीजिये। आपको पूर्ण संतोष एवं आयुर्वेद पर गर्व होगा। मार्तण्ड का बड़ा सचित्र सूचीपत्र मंगाकर आर्डर दीजिये।

मार्तण्ड फार्मेस्युटिकल्स, बड़ौत, एस० एस० रेलवे, (मेरठ) यू० पी०।

नेत्रों की अनेक व्याधियों और नेत्रों को
सुरक्षित रखने के लिये

श्री हरि
जीवदया
नेत्रप्रभा
रजिस्टर्ड

अत्यंत लाभदायक है।

नेत्रप्रभा—नेत्रकण्डु, कुकरे, धुन्ध, जाला, फूली, नेत्रस्राव, लाली रतोंधी, नेत्रों का दुखना, कम दिखाई देना, आदि के लिए अनुपम है।

जीवदया नेत्रप्रभा—अधिक परिश्रम, वेल्डिग, गाड़ी चलाना, धुआँ, सिनेमा, लिखना-पढ़ना, धूप, टाइफाइड, सूर्यावर्त और जागरण के कारण होने वाले सिर दर्द और आँखों के दर्द में लाभदायक है। सोते समय अंजन करने से बढ़िया नींद आती है। दिमाग स्फूर्ति पाता है।

नेत्रप्रभा—की बड़े-बड़े वैद्य डाक्टर, विख्यात संस्थाओं, संत महात्माओं तथा समाचार पत्रों ने प्रशंसा की है। जैसे:—श्री बंबई आयुर्वेद चिकित्सक मंडल, सूरत वैद्य सभा, श्री राजकुमार सिंह आयुर्वेद कालेज इन्दौर। राजकोट के ग्रामों में आयुर्वेदिक बक्स में इसे स्थान प्राप्त हुआ है।

Jivadaya
Netraprabha

नेत्रप्रभा—नित्य व्यवहार से कोई हानि नहीं होगी—बालक तथा वयस्क दोनों ही दिन में एक से तीन बार दर्द के अनुसार इसे लगा सकते हैं। अधिक विवरणके लिये लिखिये—

जीवदया नेत्रप्रभा कार्यालय
(निर्माता:—आर. एम. शाह)
जूनी विक्टोरिया मिल्स कम्पाउण्ड,
गामदेवी रोड, बंबई ७

सभी जानते हैं

प्रामाणिक वस्तुओं का उचित मूल्य पर
मिलने का एकमात्र स्थान

नेपाली स्टोर्स

२१२, बड़गादी, बम्बई-३

- नेपाली कस्तूरी
- जंगबारी अम्बर
- बसरा मोती
- स्पेन केसर
- सूर्यतापी शिलाजीत
- विशुद्ध गोरोचन

के अतिरिक्त

प्रवाल शाख, प्रवाल मूल, प्रवालकांडी, बंसलोचन, भीमसेनी कपूर, जहरमोरा खटाई, केहरुवा, जुन्द वेदस्तर, हरड़ें, अकीक, सीप, कौड़ी, शंख, शिंगरफ, वर्की हड़ताल तथा सब प्रकारकी खड़ें (जवाहिरात) आदि।

विशेष विवरण के लिये सूचीपत्र मंगाएँ।

आयुर्वेद लोक

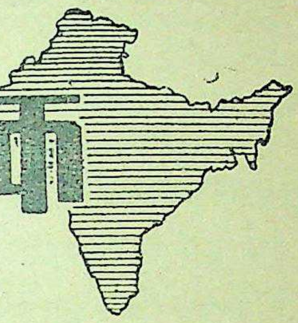

आयुर्वेद चिकित्सा-पद्धति को अलग रखने पर जोर

न्द्रीय स्वास्थ्य परिषद् की बैठक में सुझाव

केन्द्रीय स्वास्थ्य परिषद् की बैठक गत नवरी को बंगलौर में सम्पन्न हुई जिसमें ओं ने आयुर्वेदिक और आधुनिक चिकित्सा तियों के एकीकरण का विरोध किया। क में उपस्थित अधिकांश सदस्यों का मत ह था कि आयुर्वेद प्रणाली का पूरा लाभ कहित की दृष्टि से उठाया जाना चाहिए न्तु उसको आधुनिक प्रणाली में मिला देना नीय नहीं।

बैठक का उद्घाटन मैसूर के मुख्य मंत्री स० निर्जलिगप्पा ने किया। उन्होंने कहा कि लोगों को अधिक संतुलित भोजन खाने की आदत डालनी चाहिये जिससे सामान्य स्थ्य की रक्षा की जा सके।

परिषद् के अध्यक्ष तथा केन्द्रीय स्वास्थ्य त्री श्री करमरकर ने कहा कि देश में स्वास्थ्य का स्तर ऊंचा करने का काम हमारी सूझ-झ को चुनौती है। मुझे इसमें कोई सन्देह हीं कि हमारे मिले-जुले प्रयत्न हमें हमारे श्य के निकट ले जा सकेंगे।

केन्द्रीय सामुदायिक विकास मंत्री श्री स० के० दे ने कहा कि वर्तमान अवस्थाओं में धुनिक चिकित्सा प्रणाली से हमारी स्वास्थ्य म्बन्धी समस्यायें हल नहीं की जा सकतीं। हम यह अनुभव करते हैं कि इस सम्बन्ध में आयुर्वेदिक चिकित्सा प्रणाली महत्वपूर्ण सहायता देगी। इसको आधुनिक चिकित्सा प्रणाली से मिलाना ठीक न होगा।

महासम्मेलन प्रधान मंत्री का स्वास्थ्य मंत्रियों को सन्देश

केन्द्रीय स्वास्थ्य परिषद् के उक्त अधिवेशन से एक दिन पूर्व अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के प्रधान मंत्री श्री वामनराव दीनानाथ वैद्य ने केन्द्रीय तथा अन्य १४ राज्यों के स्वास्थ्य मंत्रियों के नाम एक तार-सन्देश भेजकर उनसे अनुरोध किया कि वे दवे समिति की रिपोर्ट के सम्बन्ध में आयुर्वेद विशेषज्ञ समिति, जिसका अधिवेशन गत जून मास में बम्बई में हुआ था, द्वारा केन्द्रीय स्वास्थ्य एवं योजना मंत्रियों की उपस्थिति में किये गए निर्णयों पर अवश्य विचार कर उन्हें स्वीकार करें और यदि उन सर्वसम्मत निर्णयों को बदला गया तो अपार कठिनायां एवं अव्यवस्था उत्पन्न हो जायेगी। उक्त तार-संदेश का अंग्रेजी अनुवाद निम्नलिखित है:—

Regarding Dave Committee Report kindly do consider and endorse the conclusions arrived at the Experts' Committee in the presence of Union Health and Planning Ministers at Bombay in June last stop Insurmountable difficulties and confusion will result if those unanimous decisions are altered.

Vamanrao D. Vaidya

निखिलोत्कल वैद्य सम्मेलन का वार्षिक चुनाव

निखिलोत्कल वैद्य सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन बालासोर में दिनांक २३ दिसम्बर १९५७ को कविराज श्री कामाक्षी प्रसाद की अध्यक्षता में पूर्ण समारोह एवं सफलता से सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर आगामी वर्ष के लिये पदाधिकारियों का चुनाव निम्न प्रकार से हुआ :—

अध्यक्ष—कविराज कामाक्षीप्रसाद शर्मा, वरहामपुर। उपाध्यक्ष—कविराज कृष्णचन्द्र त्रिपाठी, आसका; प्रधान मंत्री—कविराज बनमाली दास, कटक; संयुक्त मंत्री—कविराज मिहिर कुमार पाणिग्रही, बालासोर।

अधिवेशन का संक्षिप्त विवरण पत्रिका के आगामी अंक में प्रकाशित किया जायेगा।

अहिफेन खरीदने की सुविधा दी जाय

मालवा आयुर्वेद मण्डल ने अपने अधिवेशन में एक प्रस्ताव द्वारा पंजाब सरकार से मांग की है कि औषधोपयोगी अहिफेन के लिए वैद्यों को लाइसेंसदारों से खरीदने में सुविधा दी जाय।

धन्वन्तरि शील्ड प्रतियोगिता

इन्दौर—मध्यप्रदेश के आयुर्वेद विद्यालय और आयुर्वेद छात्रों के सर्वतोमुखी विकास के लिये अष्टांग आयुर्वेद महाविद्यालय इन्दौर की ओर से एक प्रतियोगिता का आयोजन किया गया है। प्रतियोगिता का विषय है—"आयुर्वेद ही राष्ट्रीय चिकित्सा हो सकती है और वही हितकर है।"

इस प्रतियोगिता में प्रत्येक विद्यालय से दो दो छात्र पक्ष एवं विपक्ष में भाग ले सकेंगे। प्रतियोगिता में भाग लेने के लिए १६ रु० का शुल्क रखा गया है। सर्वप्रथम तथा सबसे अधिक अंक प्राप्त करने वाले विद्यालय को "धन्वन्तरि शील्ड" भेंट की जायगी जो उसे एक वर्ष तक रख सकेगा। प्रथम द्वितीय एवं तृतीय आने वाले छात्रों को पारितोषिक दिये जायेंगे।

उक्त आयोजन को सफल बनाने के लिए नगर के प्रसिद्ध विद्वान वैद्य पं० लक्ष्मीनारायण त्रिवेदी ने ५०१) रुपये प्रदान किये हैं।

उक्त प्रतियोगिता का निर्णय प्रान्त के गणमान्य आयुर्वेद विद्वान करेंगे।

मत भूलिए। शीघ्रता कीजिए।

रस भस्में कम मूल्य पर केवल ३१ मार्च तक

अभ्रक वज्र भस्म ४५) सेर, अकीक भस्म ५०) सेर, कौड़ी भस्म ७) सेर, कुक्कुटांडत्वक भस्म १८) सेर, कान्तलोह भस्म ३०) सेर, कसीस भस्म १०) सेर, गौदन्ती भस्म ४) सेर, चन्द्र प्रभावटी २८) सेर, त्रिवंग भस्म ४५) सेर, प्रवाल भस्म ३०) सेर, प्रवाल पिष्टी ३०) सेर, बंग भस्म श्वेत ३२) सेर, मुक्ता शुक्ति भस्म १०) सेर, योगराज गुगल १५) सेर, रस सिंदूर ८५) सेर, शंख नाभि भस्म ७) सेर, स्वर्ण वंग नं० १ ९०) सेर, स्वर्ण माक्षिक भस्म २८) सेर, च्यवन प्राश (नया) १२५) मन, सुपारी पाक १४०) मन।

नोट—इन भावों पर रस भस्में २० तोला व पाक ५) सेर से कम नहीं भेजे जायेंगे।

पता—चावला आयुर्वेदिक फार्मेसी
कुब्बी बेरी, किला भंगियां, अमृतसर।

इस समारोह के उद्घाटन के लिए मुख्य-मंत्री तथा पुरस्कार वितरण के लिए स्वास्थ्य मंत्राणी रानी पद्मावती से आग्रह किया जा रहा है। इस सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी पं० लक्ष्मीदत्त शास्त्री, ३०५, मलहार गंज, इन्दौर, से प्राप्त की जा सकती है।

वैद्य पं० सीताराम मिश्र जी आयुर्वेद मार्तण्ड की उपाधि से विभूषित

निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठ के मंत्री श्री पं० सीताराम जी मिश्र, आयुर्वेदाचार्य, बम्बई नगर को श्री १०८ जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी कृष्ण बोधाश्रम जी महाराज ने उनकी चिकित्सा योग्यता से प्रभावित होकर अपने दिल्ली प्रवास के समय "आयुर्वेद मार्तण्ड" की उपाधि से विभूषित किया।

श्री डा० ए० लक्ष्मीपति का सम्मान

आयुर्वेद के प्रति की गई सेवाओं की प्रशंसा

जयपुर—वर्तमान समय आयुर्वेद का परीक्षण काल है। इस परीक्षा में सफलता प्राप्त करने के लिए प्रत्येक वैद्य को सचेष्ट होना चाहिए। उक्त शब्द आयुर्वेद कालेज त्रिवेन्द्रम के प्रिन्सीपल डा० ए० लक्ष्मीपति ने अपने एक स्वागत समारोह में कहे।

इस स्वागत समारोह का आयोजन जयपुर के वैद्य बन्धुओं ने किया था। श्री रामप्रकाश स्वामी, रजिस्ट्रार राजस्थान इण्डियन मेडिसन बोर्ड, जयपुर, ने इस अवसर पर डा० श्री लक्ष्मीपति जी का स्वागत करते हुए कहा कि डाक्टर साहब एलोपैथी के स्नातक होते हुए भी आयुर्वेद के प्रति अत्यन्त उदार हैं। आप निरंतर ४० वर्ष से आयुर्वेद की सेवा कर रहे हैं। आजकल आप आयुर्वेद पद्धति से

नवरत्न रस

स्त्री, पुरुष और बालकों के लिये महौषधि

यह नवरत्न रस हीरा, पन्ना, मोती, माणिक आदि नौ रत्नों की भस्म और सुवर्ण आदि के संयोग से तैयार किया जाता है। शरीर में स्थित रस, रक्त आदि धातुओं की उत्तरोत्तर वृद्धि और पोषण तथा वीर्यधातु की शुद्धि और पुष्टि करना इसका विशिष्ट कार्य है। शुक्र स्थान को पुष्टि मिलने से वीर्य में स्थित निर्बलता दूर होकर नपुंसकता, क्लैव्य, ध्वजभंग, वीर्यपात, स्वप्नदोष आदि नष्ट होते हैं और शरीर नवयौवन प्राप्त करता है।

यह गर्भावस्था में पांडु, रक्त की कमी, हाथ और पैरों में शोथ तथा श्वास आदि रोगों की उत्पत्ति को रोकता है। अल्पसत्वयुक्त प्रजा होती हो या बालक जन्मते ही मर जाता हो तो नवरत्न रस प्रथम मास से प्रसव काल तक सेवन कराने से प्रसव सुखपूर्वक होता है। बालक भी तन्दुरुस्त जन्मता है। इसके सेवन से अकाल प्रसूति और रक्तस्राव नहीं होता।

इसके उपरांत, किसी भी कारण से पांडु, क्षय, जीर्णज्वर, कास, श्वास, वातव्याधि, मधुमेह, रक्तस्राव, मगज की निबलता, वीर्यविकार आदि में बाल, वृद्ध, युवा, स्त्री, पुरुष सबको नवरत्न रस देने से शक्ति प्राप्त होती है। निरोगी शरीर के लिये यह रसायन है रोगी शरीर के लिये औषध।

मूल्य २८ गोली का रु. ५), तोला १०)

ऊंझा फार्मेसी ऊंझा

ऊंझा (उ० गु०).

कैंसर रोग की चिकित्सा के लिए अनुसन्धान कर रहे हैं।

आसव-अरिष्टों पर लगाये गये प्रतिबन्ध पर रोष

सीतापुर जनपद वैद्य सभा का प्रस्ताव

सीतापुर जनपद वैद्य सभा की कार्यकारिणी ने एक प्रस्ताव पास कर केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकार का ध्यान आसव-अरिष्टों पर लगाये गये प्रतिबन्ध पर आकर्षित किया है। प्रस्ताव में कहा गया है कि उक्त प्रतिबन्ध सर्वथा असंगत एवं अविचारपूर्ण हैं। क्योंकि आसव-अरिष्ट शुद्ध शास्त्रोक्त औषध मात्र हैं उन्हें मद्य की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। इसका सम्बन्ध जनता के स्वास्
से है। यदि सरकार ने प्रतिबन्ध लगाये र
तो इससे हानि होगी।

यूनानी, आयुर्वेदीय वनौषधि और खनिज द्रव्य सस्ते मूल्य पर शुद्ध व उत्तम

हमारी दुकान से दुर्लभ केसर, कस्तूरी, विविध प्रकार की काष्ठौषधि, मुक्ता, सीप, शंख, शुद्ध शिलाजीत, सुवर्णमाक्षिक, प्रवाल, पारद, गंधक आदि सब प्रकार के खनिज तथा वनौषधि द्रव्य थोक व परचून भाव पर प्राप्य

हमारी विशेषता-वास्तविक और शुद्ध सामान

विस्तृत विवरण के लिए पत्रव्यवहार करें और बड़ा सूचीपत्र मंगवायें।

तार का पता : आयुर्वेद फोन : ३१७९६
पता : शा० जादवजी लालूभाई एण्ड को०
२४५, कालबादेवी रोड़, बम्बई।

बड़ौदा जिला मण्डल के पदाधिका

बड़ौदा जिला वैद्य मण्डल कार्यकारि
की बैठक १७ जनवरी १९५८ को सम्पन्न
हुई जिसमें आगामी वर्ष के लिए निम्नलिखि
पदाधिकारी चुने गये :—

प्रधान—वैद्य मोहनलाल न० चौक
उपप्रधान—वैद्य धीरजलाल मा० शाह
उपप्रधान—वैद्य अम्बालाल म० पटेल, प्रधान
मंत्री—वैद्य जगदीशचन्द्र मु० पंडया, प्रचार
मन्त्री—वैद्य कनुभाई जि० त्रिवेदी, स
मन्त्री—वैद्य विष्णुप्रसाद बोरसदवाला
काषाध्याक्ष—वैद्य रविशंकर पुरोहित, आ
व्यय निरीक्षक—तोला शंकर जे० भट्ट।

श्री अष्टांग आयुर्वेद महाविद्याल इन्दौर का ३८ वां वार्षिकोत्सव सम्पन्न

श्री अष्टांग आयुर्वेद महाविद्याल
इन्दौर का ३८ वां वार्षिक अधिवेशन ए
पूज्य स्वामी द्वारकादत्त महाराज की पु
तिथि, माननीय मंत्री श्री मिश्रीलाल
गंगवाल की अध्यक्षता में बड़े समारोहपूर्व
सम्पन्न हुई।

पंडित श्री लक्ष्मीदत्त जी शास्त्री द्वा
संस्था की प्रगति एवं भावी रूपरेखा पर वि
प्रकाश डाला गया एवम् जनता से वि
आयुर्वेद की उन्नति में संस्था को पूर्ण
योग देने की अपील की गई। अन्त में मा
नीय वित्त मंत्री महोदय ने विशुद्ध आयुर्वेद
और पूर्ण रूप से अग्रसर होने और
त्कारिक ढंग से जनता के समक्ष होने के लि
सारगर्भित भाषण के साथ प्रोत्साहित कि

माघ २०१४

प्रतापगढ़ में धर्मार्थ औषधालय

प्रतापगढ़ (उ० प्र०) स्थानीय जनता के स्वास्थ्य लाभ के लिए सेठ बाबूलाल फूलचन्द धर्मार्थ आयुर्वेदिक औषधालय की स्थापना समारोह धूम-धाम से सम्पन्न हुआ। इस औषधालय की स्थापना का श्रेय सेठ जी के सुपुत्र श्री बद्रीप्रसाद बी० ए० एल० एल० बी० को है।

सर्वोदय सम्मेलन में आयुर्वेद चिकित्सा पर बल

स्याना—दिसम्बर मास ६, ७, ८ तिथि को वैरा फिरोजपुर में सर्वोदय सम्मेलन का द्वितीय सम्मेलन सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर आयुर्वेद के भविष्य पर भी विचार हुआ। आयुर्वेद वाचस्पति पं० त्रिलोकीनाथ शास्त्री के नेतृत्व में वैद्यों का विशाल समूह एकत्रित हुआ। श्री शास्त्री जी ने उपस्थित जनता के समक्ष आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति पर प्रकाश डाला।

श्री त्रिलोकीनाथ शास्त्री ने वैद्य समाज पर किये गये आघात "मद्यकर कानून" की आलोचना की और संसद सदस्यों से अनुरोध किया कि ऐसे कानून का विरोध करें तथा आयुर्वेद को प्रोत्साहन दिलाने का प्रयत्न करें।

इस सर्वोदय-सम्मेलन में श्री सिद्धराज ढड्ढा, मंत्री विनोबा संघ, डा० सुशीलानायर, श्रीमती मदालसा देवी, श्री मलकानी संसद सदस्य, श्री कपिल भाई तथा श्री रामसरन एवं श्री बनारसी दास चतुर्वेदी संसद सदस्यों ने भाग लिया।

झुंझुनूं जिला वैद्य सम्मेलन

झुंझुनूं जिला वैद्य सम्मेलन का छठा अधिवेशन जेजूजर में बाबा श्री जयरामदास की अध्यक्षता में धूमधाम से सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर स्वास्थ्य प्रदर्शनी का भी आयोजन किया गया। स्वास्थ्य प्रदर्शनी का उद्घाटन नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ के मंत्री श्री पं० सीताराम मिश्र आयुर्वेदाचार्य ने किया। उक्त सम्मेलन का उद्घाटन आयुर्वेद विभाग के इंसपैक्टर श्री चन्द्रशेखर ने किया। आपने अपने उद्घाटन भाषण में आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति पर प्रकाश डाला।

इस अवसर पर चिकित्सा परिषद् का भी अधिवेशन श्री किरोड़ीमल शर्मा की अध्यक्षता में हुआ। इसका उद्घाटन श्री विरंचीलाल शर्मा आयुर्वेद वाचस्पति ने किया।

जिला वैद्य संमेलन में वैद्यराज मणिराम जी भिषगाचार्य की "हीरक जयन्ती" मनाने का निश्चय किया गया।

प्रताप आयुर्वेदिक फार्मेसी प्रा० लि० के

आशुफलप्रद आयुर्वेदीय इन्जैक्शन

हिमाचल के अंचल देहरादून में सरकार द्वारा लायसैन्स प्राप्त लेबोरेटरी में आयुर्वेदीय औषधों के मूलतत्वों का पूर्ण अनुसन्धान करने के उपरान्त प्राचीन और आधुनिक विज्ञानवेत्ता, सिद्धहस्त वैज्ञानिकों की देखरेख में इन्जैक्शन तैयार किये जाते हैं जो पूर्णतया निरापद विशुद्ध प्रामाणिक हो चुके हैं। प्रत्येक वैद्य का कर्त्तव्य है कि इन आशुफलप्रद पूर्णतया विशुद्ध एवं चमत्कारिक गुणकारी इन्जैक्शनों को प्रयोग में लाकर लाभ उठावें।

प्रताप आयुर्वेदिक फार्मेसी लि०

इन्जैक्शन ब्रांच

१६७ राजपुर रोड़, देहरादून (यू० पी०)

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन सदस्यों की सेवा में सदस्यता एवं पत्रिका शुल्क भेजने का अनुरोध

महासम्मेलन के माननीय सदस्यों से विनम्र निवेदन है कि वे अपना अपना १९५८ वर्षीय सदस्यता अथवा पत्रिका शुल्क शीघ्रातिशीघ्र भेज दें। गत वर्ष की भाँति विलम्ब न करें। बहुत से मान्य सदस्यों ने अपना १९५७ वर्षीय सदस्यता शुल्क वर्ष के अन्त में भेजा था—कुछ अब तक भी भेज रहे हैं—ऐसे मान्य सदस्यों से मेरी प्रार्थना है कि वे अपना वर्तमान १९५८ वर्ष का सदस्यता शुल्क भी अभी से भेज दें और आगे भी वर्षारम्भ में ही शुल्क भेज दिया करें।

अनेक मान्य सदस्य महानुभावों ने मेरे बार-बार के अनुरोध पर भी १९५७ वर्षीय सदस्यता शुल्क अभी तक भी नहीं भेजा है—उनसे मेरा पुनः निवेदन है कि वे १९५७ व १९५८ दोनों वर्षों के सदस्यता शुल्क के १०) शीघ्र ही भेजकर कृतार्थ करें। इसी प्रकार आश्रयदाता, संरक्षक, आजीवन एवं विशिष्ट सदस्य महानुभाव भी जिन्होंने १९५७ तक पत्रिका शुल्क दे दिया है वे १९५८ के लिए २), जिन्होंने १९५६ तक का पत्रिका शुल्क दे दिया है वे १९५७ व १९५८ के लिए ४) तथा जिन्होंने अभी तक १९५६ व १९५७ दोनों ही वर्षों का पत्रिका शुल्क नहीं दिया है वे १९५६, १९५७ व १९५८ तीनों वर्षों के पत्रिका शुल्क के ६) शीघ्र भेजने का कष्ट करें।

आशा है वैद्य बन्धु मेरे इस नम्र निवेदन पर अवश्य ध्यान देकर मुझे अनुगृहीत करेंगे।

वामनराव दी० वैद्य
प्रधान मंत्री
अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन

१९५७ वर्षीय मतदाता सूची

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन की १९५७ वर्षीय मतदाता सूची छपकर तैयार हो चुकी है। इस सूची में महासम्मेलन विद्यापीठ के १४२८ सदस्यों (मतदाताओं), १८ प्रादेशिक शाखाओं एवं २७ विद्यापीठ सम्बद्ध विद्यालयों के नाम पूरे पते सहित संग्रहीत हैं। आयुर्वेदीय संस्थाओं, व्यवसाइयों, प्रकाशकों, औषध निर्माणशालाओं एवं विक्रेताओं के बहुत काम की चीज है। मूल्य साधारण डाक से १=) रजिस्टर्ड डाक से १॥=) है।

प्राप्ति स्थान :—

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन
महालक्ष्मी मार्केट, चांदनी चौक, दिल्ली।

कृष्णगोपाल आयुर्वेद भवन" द्वारा प्रकाशित

आयुर्वेद जगत में ख्यातिप्राप्त दो अनमोल ग्रन्थ

आयुर्वेद में रुचि रखने वाले और औषधि निर्माण करने वाले
प्रत्येक वैद्य के लिये मार्गदर्शक ग्रन्थ रत्न :—

(१) रसतंत्रसार व सिद्धप्रयोग संग्रह
प्रथम खण्ड अष्टम संस्करण
मूल्य अजिल्द रु० ९)
मूल्य सजिल्द रु० ११)

(२) रसतंत्रसार व सिद्ध प्रयोग संग्रह
द्वितीय भाग तृतीय संस्करण
मूल्य अजिल्द रु० ६)
मूल्य सजिल्द रु० ७॥)

(पैकिंग और पोस्टेज पृथक्)

इन ग्रन्थों की विशेषतायें—

अ) सब प्रकार की औषधियों के शतशः अनुभूत प्रयोग इनमें दिये हैं।

आ) कूपीपक्व रसायन निर्माण की सरल अनुभूत विधियां इनमें दर्शाई गई हैं।

) रोगानुसार और औषधियों के नामानुसार अनुक्रमणिका दी गई है।

) बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय और यू० पी० मेडिसिन बोर्ड द्वारा इन्हें आलोच्य ग्रन्थ रूप से स्वीकृत किया गया है।

:—इन ग्रन्थों की उपयोगिता और मांग के कारण इनका गुजराती अनुवाद भी प्रकट किया गया है। मूल्य प्र० खं० सजिल्द रु० १०) और द्वि० खं० सजिल्द रु० ८)।

परोक्त विशेषताओं के कारण इन ग्रन्थों की उपादेयता स्वयं सिद्ध है।

) इन ग्रन्थों को मंगवा कर धन और यश प्राप्त करने का अवसर न चूकें।

) विशेष जानकारी के लिए कार्यालय से सूची-पत्र मुफ्त मंगवाएं।

प्रकाशक:—कृष्ण गोपाल आयुर्वेद भवन
कालेड़ा-कृष्ण गोपाल (अजमेर)।

Editor-in-Chief—Swami Chetnanand.
अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के लिए कविराज स्वामी चेतनानन्द द्वारा प्रकाशित
मुद्रक—नया हिन्दुस्तान प्रेस, दिल्ली

खोज का आश्चर्यजनक परिणाम

खोज का क्रम आज नया नहीं-किन्तु युग युगान् चला आ रहा है। खोजके ऊपर किसी कवि के ये शब्द क्षरोंमें लिखे हुए हैं कि :-"जिन खोजा तिन पाइय पानी पैठ" त्रेतायुग में जब रावण के लड़के मेघना शक्तिबाण से श्री लक्ष्मणजी मूर्च्छित पड़े हुए थे औ चन्द्र जी की व्याकुलता का अन्त नहीं था, उस समय ल णजी में पुनः जीवन लानेके लिये हनुमान जी को स बूटी की खोज में जाना पड़ा था। हनुमान जी अपनी खोज में सफल हुए। परिणाम लङ्का के युद्धमें श्रीराम लक्ष्मण की विजय हुई।

आज का यह वैज्ञानिक युग भी मानवता और रोगों के महायुद्ध में, रोग द्वारा त्रस्त मानव को मुक्त करने के लिये नयी नयी खोज में लगा है और अपनी खोज में सफल हो नये अन्वेषणों द्वारा मानवजाति की रक्षा में सफल होता जा रहा है।

डाबर कार्यालय भी गत ७२ वर्षों से सऔषध सेवारत हो लगातार खोजों द्वारा आयुर्वेदिक, पेटेण्ट दवाओं के निर्माण क्षेत्र में दूसरों का पथ प्रदर्शक बनता जा रहा है। डाबर कार्यालय की बनी हुई आयुर्वेदिक तथा पेटेण्ट दवाएं इत्यादि आज जिस प्रकार लोकप्रिय बनी हुई हैं उसका एक मात्र कारण है— डाबर कार्यालयका निरन्तर खोजका परिणाम! साथ ही स्वच्छता और सर्वाङ्ग पूर्णता से औषध निर्माण की क्रिया !! इसी खोज के परिणाम स्वरूप डाबर कार्यालय आज भारतीय जनता के स औषध निर्माण करने वाला एक श्रेष्ठ कार्यालय बना हुआ है।

डाबर (डा·एस·के·बर्म्मन) लि॰ कलकत्ता-२९

अपूर्व गुणकारी आयुर्वैदिक तथा पेटेन्ट दवाओं के निर्माता

आयुर्वेद

महासम्मेलन पत्रिका

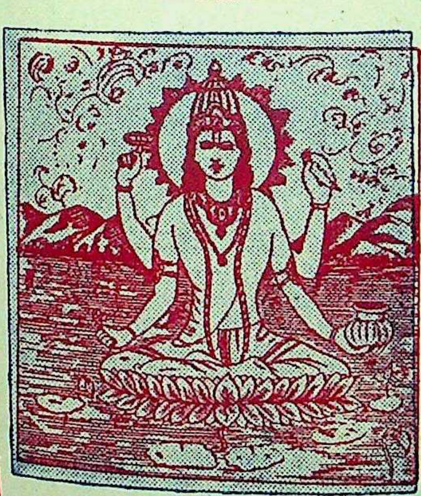

फाल्गुन
२०१४

प्रधान सम्पादक—कविराज स्वामी चेतनानन्द चिदाकाशी
उप सम्पादक—कविराज हरिकृष्ण सहगल
संस्कृत विभाग सम्पादक—कविराज नेत्रपाल शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य

जनक

युग युगा
वि के ये श
तिन पाइ
लड़के मेघ
ई हुए थे औ
, उस समय
न जी का
ए। परिणाम

और रोगों
खोज में लगा

जनता के

निर्माता

दो हजार से भी अधिक शास्त्रोक्त एवं पेटेण्ट औषधियाँ बनाने वाली उत्तरीय भारत की ८८ वर्ष की प्राचीन रसायनशाला

राजवैद्य शीतल प्रसाद एण्ड सन्स

देहली : नागपुर : कानपुर : इन्दौर

राजवैद्य रसायनशाला में आयुर्वेद के गहरे अनुभवी वैद्यों एवं औषधि निर्माणकला के विशेषज्ञ कैमिस्टों की देखरेख में आयुर्वेद शास्त्रों के मूलभूत सिद्धान्तोंके अनुसार औषधियां तैयार की जाती हैं।

केन्द्रीय और राजकीय मन्त्रियों, संसद सभासदों, डायरेक्टर आफ आयुर्वेद, प्रमुख डाक्टरों, वैद्यों एवं आयुर्वेदिक सम्मेलनों द्वारा हमारी औषधियों की प्रशंसा की गई है। विभिन्न प्रदर्शनियों एवं विज्ञान परिषदों ने प्रशंसा पत्र दिए, स्वर्णपदक और रौप्यपदक भेंट किए और कहा है कि "वास्तव में राजवैद्य रसायनशाला की औषधियां बहुत गुणकारी होती हैं" इसके अतिरिक्त राज्य सरकारों, उपराजकीय संस्थाओं, म्युनिसिपल कमेटियों व जनपद सभाओं के दवाखानों में हमारी दवाएं बड़ी तादाद में प्रयोग की जाती हैं। शहरों व कस्बों में १०,००० से अधिक हमारे औषधि विक्रेता हैं।

हमारी दवाएँ न सिर्फ हिन्दुस्तान व पाकिस्तान में ही बल्कि, नेपाल, बर्मा, सीलोन, दक्षिण अफ्रीका, पर्शियनगल्फ, अदन, फिजीआईलैण्ड आदि में भी इस्तेमाल की जाती हैं।

वैद्यों एवं औषधि विक्रेताओं से

हम अपनी रसायनशाला द्वारा निर्मित आयुर्वेदिक एवं पेटन्ट औषधियों की बिक्री के लिए मुख्य-मुख्य स्थानों पर बिक्री केन्द्र खोल रहे हैं।

फरनीचर, दुकान किराया, वैद्य का वेतन आदि समस्त सुविधायें दी जायेंगी। जो वैद्य बन्धु अथवा औषध-विक्रेता हमें सहयोग देना चाहते हैं, वह अपना पूरा परिचय देते हुए हम से पत्र व्यवहार करें। बिक्री केन्द्र के लिए सहायक वैद्यों की आवश्यकता है। आवेदन पत्र भेजें—

राजवैद्य शीतलप्रसाद एण्ड सन्स

चांदनी चौक, दिल्ली।

॥ धन्वन्तरयेनमः

यत्प्रभापटलोद्भासि भाषतेऽद्यापि भारतम् ।
आयुर्वेदात्मकं ज्योतिः शाश्वतं नः प्रकाशताम् ॥

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

(अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का मासिक मुख-पत्र)
प्रधान सम्पादक—कविराज स्वामी चेतनानन्द चिदाकाशी।
उप-सम्पादक—कविराज हरिकृष्ण सहगल।
सम्पादक संस्कृत विभाग—वैद्य श्री नेत्रपाल शर्मा शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य।
पत्रिका कार्यालय—महालक्ष्मी मार्केट, चांदनी चौक, दिल्ली।
ार का पता—"आयुर्वेद" दिल्ली
टेलीफोन : २८६०२

र्ष ४५
ंक ३
दिल्ली, फाल्गुन २०१४, मार्च १९५८
वार्षिक ५)
एकप्रति ॥)

सम्पादकीय

आयुर्वेदिक चिकित्सा की व्यापक उत्कृष्टता और एलोपैथी

आयुर्वेद की उन्नति का प्रश्न आज कई वर्षों से सरकार के सामने है। भारत का समस्त वैद्यसमाज आयुर्वेद महासम्मेलन के नेतृत्व में इसके विकास के लिए आवाज उठाता रहा है जिसके परिणामस्वरूप सरकार का ध्यान इस ओर किंचित गया भी है। जामनगर में आयुर्वेदिक अनुसंधान और स्नातकोत्तर शिक्षा का कार्य चालू है, अन्य संस्थाओं को भी थोड़ी बहुत सहायता दी जा रही है। यह कहां तक पर्याप्त और सन्तोषजनक है यह तो भविष्य ही बतायेगा।

केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्री श्री करमारकर ने राज्यसभा में श्री भक्तदर्शन के प्रश्न के उत्तर में भारतीय चिकित्सा पद्धति के लिए आम कार्यक्रम पर प्रकाश डालते हुए बताया कि सरकार अनुसंधानशालाओं के लिए काफी सहायता देती है और इस पद्धति के उपयोग करने के लिए तथा प्रोत्साहन देने वाली संस्थाओं के विकास के लिए सहायता देती है। कुछ आम

अनुदान दिया जाता है। आपने यह भी बताया कि **आमतौर से इसका कुछ अच्छा स्वागत नहीं हो रहा है और जितना रुपया इसके लिए निश्चित किया जाता है वह पूरा व्यय नहीं कर पाते।**

श्री करमारकर के इस कथन में सचाई कहां तक है ? इस आरोप को सिद्ध करने के लिए उन्होंने कोई विशेष बात नहीं कही—केवल पूर्व परम्परा के अनुसार ही ऐसा आरोप लगा दिया गया है। तथ्य यह है जो कुछ भी आयुर्वेदिक संस्थायें इस समय देश में कार्य कर रही हैं उनका क्षेत्र बहुत सीमित करके रखा गया है जिन पर व्यय तो कम होगा ही। उनमें पर्याप्त विस्तार की आवश्यकता है। आयुर्वेद की अनेकों ऐसी शाखायें हैं जो अभी तक अनछुई और उपेक्षित पड़ी हैं जैसे पंचकर्म चिकित्सा, विशुद्ध द्रव्य और वनस्पतियों के संग्रह का काम, लुप्त ग्रंथों की खोज और प्रकाशन, शास्त्रीय औषधियों का विधिपूर्वक निर्माण, केन्द्रीय आतुरालयों एवं वनौषधि उद्यानशालाओं की स्थापना, शास्त्र विधि से शिरावेध और शल्य-शालाक्य का प्रयोगिक शिक्षण तथा कल्प चिकित्सा इत्यादि, ऐसे कार्य हैं जो आयुर्वेद के पूर्ण विकास के लिए आवश्यक हैं। **यह नहीं कि इन सब के लिए माँग नहीं की जाती किन्तु सरकार की उपेक्षा नीति के कारण प्रत्येक अवसर पर** हतोत्साह होना पड़ रहा है। इन कार्यों के लिए पर्याप्त धनराशि और परिश्रम की आवश्यकता है। एकाकी संस्थाओं द्वारा यह सम्पन्न नहीं हो सकते। एलोपैथी के समान यह दायित्व सरकार स्वयं ग्रहण करे तभी यह कार्य सम्पन्न हो सकते हैं। इसमें भारतीय पद्धतियों के लिए निर्धारित धनराशि का न केवल सदुपयोग ही होगा बल्कि इससे भी बहुत अधिक धनराशि की आवश्यकता पड़ेगी।

किन्तु सरकार के पास उपर्युक्त कार्यों को करने का न कोई कार्यक्रम ही है और न समय ही। एलोपैथी के निरर्थक और अनुपयोगी कार्यक्रमों के भार से ही वह इतनी लदी है कि आयुर्वेद की ओर वास्तविक ध्यान देने का उसे अवकाश ही नहीं मिलता। एलोपैथी का धुआँधार प्रचार किया जा रहा है, उसकी वैज्ञानिक और चमत्कारिक उपलब्धियों की प्रशंसा के पुल बांधे जा रहे हैं और इन्जैक्शन एवं टीकों से जनता के शरीर को दिनरात छेदा जा रहा है।

दुःख की बात तो यह है कि जिन देशों ने एलोपैथी को जन्म दिया और जहां इसका एकछत्र साम्राज्य है उन देशों के विशेषज्ञ विद्वानों की चीख-पुकार की ओर भी उसका ध्यान नहीं जाता। विदेशी विद्वान समय समय पर एलोपैथिक औषधियों के दुष्प्रभावों एवं घातक परिणामों के विरुद्ध चेतावनी देते रहते हैं। ऐसी ही एक चेतावनी अमेरीकी मेडिकल एसोसियेशन की पत्रिका के नये अङ्क में प्रकाशित हुई है जिसमें कहा गया है कि पेनीसिलीन के अधिक प्रयोग की प्रतिक्रिया चर्म पर ही नहीं हो सकती बल्कि उसको भारी आघात पहुँचा कर यह प्रतिक्रिया उसकी मौत का कारण भी बन सकती है। लेख में आगे कहा गया है कि अस्पतालों में तीन वर्षों के परिणामों के विश्लेषण से ज्ञात हुआ है कि २५१७ व्यक्तियों पर पेनीसिलीन की वुरी प्रतिक्रिया हुई और उसे दूर करने के लिए दूसरी दवायें देनी पड़ीं।

यह तो उस देश की रिपोर्ट है जहां औषधियों का बड़ा संयत प्रयोग किया जाता है किन्तु भारत में जहां प्रत्येक रोग में आंख मूंद कर पेनीसिलीन दी जा रही है वहाँ की

परिस्थिति की भयंकरता का अनुमान सहज ही किया जा सकता है। पिपरिया (पूना) में हमारी सरकार ने १० करोड़ रुपये की लागत से पेनीसिलीन का कारखाना खोलकर इसके निर्माण की व्यवस्था की हुई है। विदेशी विशेषज्ञों की उपर्युक्त चेतावनी के पश्चात् भी यदि भारत सरकार पेनीसिलीन आदि के निर्माण पर इतना व्यय करती रहे तो यह धन का अपव्यय ही होगा। परन्तु भारतीय डाक्टर तो इस विष को अब भी अमृत सिद्ध करने में सदा की भांति पीछे नहीं रहेंगे।

२६ फरवरी १९५८ के हिन्दुस्तान म प्रकाशित एक समाचार में कहा गया है कि लाखों की संख्या में टीके लगाने के पश्चात् भी बिहार में एक सप्ताह में ३२४० व्यक्ति चेचक से पीड़ित हुए और उनमें से १ हजार व्यक्तियों की मृत्यु हो गई। यह संख्या तो सरकारी एलोपैथिक अस्पतालों में भरती हुए रोगियों की है, वास्तविक संख्या तो इससे कहीं अधिक होगी क्योंकि बहुत से रोगी एलोपैथी के बजाय आयुर्वेद से ही चिकित्सा कराते हैं।

इण्डियन मेडिकल एसोशियेशन की पटना शाखा के अध्यक्ष डा० एन० पी० त्रिपाठी ने २५ फरवरी को सम्वाददाताओं के समक्ष बोलते हुए कहा कि कई ऐसे मामलों की रिपोर्ट मिली है कि जिन व्यक्तियों ने पहिला या दूसरा टीका लगवा लिया था, वे भी चेचक के शिकार हो गए।

इस प्रकार एलोपैथिक औषधियों की विफलता और उनके दुष्परिणाम समय समय पर हमारे और सरकार के समक्ष आते ही रहते हैं। इसके विपरीत आयुर्वेद औषधियों एवं चिकित्सा की निर्दोषता और सफलता अनेक अवसरों पर सिद्ध हो चुकी है जिनमें पाण्डु, प्रतिश्याय कैंसर, जलोदर, और बालपक्षाघात आदि दुस्साध्य एवं घातक रोग भी सम्मिलित हैं। हाल ही में स्वामी अचलानन्दजी ने २८वर्षों के अनुसंधान के पश्चात् बालपक्षाघात की एक सफल आयुर्वेदिक चिकित्सा खोजकर जनता के सामने रखी है। पत्रिका के इसी अङ्क में दिल्ली के कविराज श्री राधाकृष्णजी उपाध्याय का एक लेख प्रकाशित है जिसमें उन्होंने दिल्ली के सबसे बड़े एलोपैथिक अस्पताल से असाध्य घोषित एक जलोदर के रोगी की म्युनिसिपल आयुर्वेदिक आतुरालय में सफल चिकित्सा का विवरण दिया है। ऐसी सफल चिकित्सा आयुर्वेदिक चिकित्सक प्रायः करते ही रहते हैं। यदि इन सब के आंकड़े एकत्रित किये जायें तो सरकार की आंखें खुल सकती हैं किन्तु सरकार यह सब कुछ करने का महान् उत्तरदायित्व अपने ऊपर नहीं लेना चाहती क्योंकि उसकी दृष्टि में केवलमात्र एक ही वैज्ञानिक चिकित्सा पद्धति है और वह है—एलोपैथी। भले ही उससे उनके देखते देखते सहस्रों व्यक्ति हताश होकर मरते हों। उसकी यह धारणा ही आयुर्वेद के प्रति उसे कुछ करने नहीं देती और आयुर्वेद के आगे न बढ़ने का दोष वैद्यों के ऊपर डालकर स्वयं इससे बचने का प्रयत्न करती रहती है। हमारे कुछ स्वार्थी लोग भी स्वार्थवश सरकार के स्वर में स्वर मिलाकर आयुर्वेद की उन्नति में बाधा डाल रहे हैं।

अस्तु, सरकार कुछ भी करे आयुर्वेद तो उसकी उपेक्षा के पश्चात् भी उन्नति के मार्ग पर शनैः-शनैः अग्रसर हो रहा है। विदेशों में भी अब उसकी औषधियों का प्रयोग किया जाने

लगा है। १५ फरवरी को रूसी वैज्ञानिकों के एक प्रतिनिधिमण्डल ने साधना औषधालय के कलकत्ता स्थित कारखाने का निरीक्षण किया था। उस समय डा० ईट्सकोव ने बताया कि सोवियत संघ में आयुर्वेदिक दवाइयों को प्रयोग में लाया जा रहा है। यह एक महत्वपूर्ण कद है, जो यह सिद्ध करता है कि विदेशों में भी आयुर्वेद अपनी सत्यता और उपादेयता के कार अपना स्थान बना रहा है। यह भारतीय वैद्य समाज के लिए गौरव और भारतीय सरकार के लिए आंख खोल कर देखने की बात है।

हम चाहते हैं कि सरकार इस तथ्य को समझे और अपनी निष्क्रियता का शीघ्र परित्याग कर आयुर्वेद के विकास का ठोस कार्यक्रम बनाये। आयुर्वेद भारत की पूर्वजों द्वारा प्रदत्त अमूल्य निधि है, इसकी रक्षा और विकास करना भारत सरकार का पुनी कर्तव्य है। अन्य राष्ट्रों ने भी अपने शास्त्र और कलाओं की रक्षा की है और उन्हें उन्न बना रहे हैं। भारत का वैद्य समाज तथा अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन इस महान् कार्य में सरकार से पूरा सहयोग करने को उद्यत है। वैद्य समाज वास्तविक कार्य चाहता है। वह अब किसी प्रकार के भुलावे में आने को तैयार नहीं। वह जागरूक है और अपनी उन्नति के लिए कटिबद्ध भी। संसार की कोई शक्ति भी उसे आगे बढ़ने से नहीं रोक सकती।

—स्वामी चेतनानन्द चिदाका

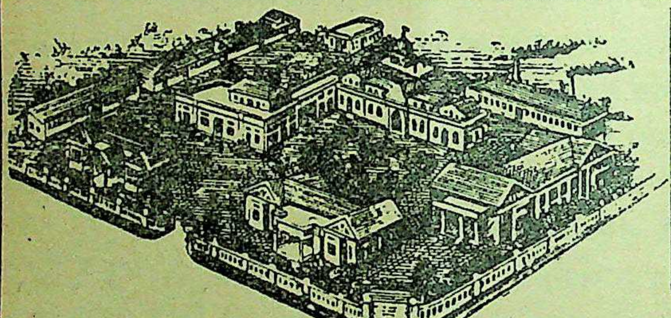

४५ वर्षों से विश्व भर में प्रतिष्ठा प्राप्त भारत की प्रमुख आयुर्वेदिक औषध निर्माणशाला

रसशाला औषधाश्रम REGD. गोंडल, सौराष्ट्र।

गोंडल रसशाला के कारखाने में विविध प्रकार की भस्में, रसरसायन, कूपिपक्व रसायन, पर्पटी, गुटिका, चूर्ण, वगैरह सैंकड़ों प्रकार की हाथ से बनी औषधियाँ तैयार रहती हैं। हिन्दुस्तान के प्रत्येक प्रदेश में और चीन, फीजी, अफ्रीका, अमेरिका, युरोप में भी जाती हैं। सब भाषा के सूचीपत्र मुफ्त भेजते हैं।

ऋद्धिखड:—वादिखड: मूल्य ३) रुपया

नित्यनाथ सिद्ध का यह धातुवाद सुवर्ण सिद्धिका अद्भुत अप्राप्य ग्रन्थ संवत १७ साल की हस्त लिखित प्रति के आधार से प्रसिद्ध किया है। पत्र २०० पक्का जिल्द उपदेश हैं। धातुवाद में रस लेने वालों के लिए संग्राह्य है। मूल श्लोक मात्र है।

गोंडल रसशाला औषधाश्रम शाखा नं० १
वसंत वाडी के सामने, ४१६ कालबा देवी रोड, मुम्बई २।

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन की स्थायी एवं कार्यकारिणी समितियों –

का

सम्मिलिताधिवेशन

स्थान—यूनीवर्सल हैल्थ इन्स्टीट्यूट, बुद्ध भवन, औट्रम रोड, फोर्ट बम्बई-१ ।

समय—ता० २५ मा, १९५८, २ बजे अपराह्न से ।

विचार्यविषय :—

१—गताधिवेशन के कार्य विवरण की स्वीकृति ।

२—नवीन सदस्यता स्वीकृति ।

३—दिल्ली में सम्पन्न होने वाले ४३वें अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के लिये स्वागतसमिति द्वारा प्रस्तुत ४, ५ तथा ६ मई, १९५८ की तिथियों की स्वीकृति पर विचार ।

विशेष—आगामी महासम्मेलन के लिये तिथियां निश्चित करने के विषय पर श्री महासम्मेलनाध्यक्ष जी ने स्थायीसमिति के सदस्य महानुभावों की सेवा में एक पत्र दिनांक १२-२-५८ को भेजा था जिसके द्वारा स्वागतसमिति की ओर से ६, ७ व ८ अप्रैल की तिथियां विचारार्थ सूचित की गई थीं । इस पत्र में प्रस्तुत तिथियों के पक्ष में भी तथा विरोध में भी महासम्मेलन कार्यालय में पत्र आये हैं । परन्तु कुछ पत्रों द्वारा यह भी सूचित किया गया है कि किसी विषय पर भी पत्रों द्वारा स्थायी समिति की सम्मति प्राप्त करने का नियम नहीं है और एतदर्थ स्थायीसमिति का एकत्रित होना आवश्यक है । इसी बीच में स्वागतसमिति ने पहिले प्रस्तावित तिथियों में परिवर्तन की मांग भी की है, और अब ४, ५ तथा ६ मई की उपर्युक्त तिथियाँ प्रस्तुत की हैं । अतएव यह विषय नियमित रूप से विचारार्थ सदस्य महानुभावों की सेवा में पुनः प्रस्तुत है ।

४—उपर्युक्त ४३वें अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के लिये स्वागतसमिति द्वारा प्रस्तुत कार्यक्रम की स्वीकृति पर विचार ।

विशेषः—स्वागत समिति द्वारा प्रस्तावित कार्यक्रम मार्च की पत्रिका में प्रकाशित हो रहा है । सभा में उसी कार्यक्रम पर विचार किया जायेगा ।

५—अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन एवं नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ के सन् १९५६-५७ वर्षीय आय-व्यय एवं सन्तुलन पत्रों पर आडीटर महोदय की रिपोर्ट सहित विचार ।

विशेषः—उक्त सन्तुलन एवं आय-व्यय पत्र तथा आडीटर महोदय की रिपोर्ट सदस्य महानुभावों के अध्ययनार्थ आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका के मार्च मास के अंक में प्रकाशित किये जा रहे हैं।

६—स्थायी समिति के गताधिवेशन के प्रस्ताव सं० ३ (१) तथा ३ (२) द्वारा निर्मित उपसमितियों की सिफारिशों पर विचार।

सारांश में वे सिफारिशें निम्न प्रकार हैं :—

(क) १—दिल्ली में एक आयुर्वेदिक संस्था जिसके अन्तर्गत प्रचलित दयानन्द महिला आयुर्वेद विद्यालय भी होगा, शीघ्र ही स्थापित की जाय और संस्था का नाम जैसा अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन निश्चय करे रक्खा जाय।

२—श्री सेठ सुखदेव जी मेहता १५ व्यक्तियों द्वारा संगठित एक ट्रस्ट बनाकर उसकी विधिवत् रजिस्ट्री करायें। तदुपरान्त उक्त ट्रस्ट से अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन को भूमि परिवर्तित कराने के लिये आगे बातचीत की जाय। कविराज श्री उपेन्द्रनाथ जी दास तथा श्री सीताराम जी मिश्र को इस विषय पर कार्य सम्पादन का अधिकार दिया गया। यह भी निश्चय हुआ कि यदि श्री सेठ सुखदेव जी ट्रस्ट के लिये नामों की मांग करें तो श्री इन्द्रप्रस्थीय वैद्य सभा ये नाम भेज दे।

(ख) श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन, झांसी के, पत्र सं० २६८७ तिथि शून्य पर, जो कि श्री महासम्मेलनाध्यक्ष जी को ता० २७-११-५७ को मिला था, विचार-विमर्श के अनन्तर निश्चय किया गया कि :—

१—यह समिति दिल्ली की प्रस्तावित आयुर्वेदिक संस्था के लिये श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड, के ५०० रुपये मासिक दान को धन्यवादपूर्वक स्वीकार करती है।

२—निश्चय हुआ कि श्री पं० रामनारायण जी शर्मा को इस प्रस्ताव की एक कापी जानकारी और आवश्यक कार्यवाही के लिये भेज दी जावे और उनसे प्रार्थना की जाय कि यह दान वे १ जनवरी, १९५८ से प्रारम्भ कर दें और अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन को इसे अभी तक श्री दयानन्द महिला आयुर्वेद विद्यालय के संचालन पर व्यय करने का अधिकार दें।

३—उनसे यह भी प्रार्थना की जाय कि यदि वे चाहें तो कोई ऐसी व्यवस्था कर दें जिससे ५०० रुपया का यह दान स्थायी रूप धारण कर सके।

(ग)—श्री मणिराम जी शर्मा, रतनगढ़, के पत्र ता० १२-११-५७ पर विचार के अनन्तर निश्चय हुआ कि वे अपनी संस्था धन्वन्तरि मन्दिर के संचालनार्थ व्यय का पूर्ण विवरण समिति के विचारार्थ भेजें।

(घ)—श्री स्वामी दयानिधि जी, ऋषिकेश, के पत्र ता० २४-११-५७ तथा २३-२-५८ पर विचार-विमर्श हुआ। इस विषय पर श्री विद्यापीठ मन्त्री जी का मौखिक

फाल्गुन २०१४

वक्तव्य भी सुना गया। निश्चय हुआ कि श्री मन्त्री जी इस विषय पर श्री बाबा काली कमली वाला ट्रस्ट तथा आयुर्वेद सेवासमिति ऋषिकेश से शर्तों पर बात-चीत करें और लिखित रूप में उनकी सम्मति लेकर समिति के समक्ष यथासम्भव शीघ्र प्रस्तुत करें।

७—दिल्ली में स्थापित किये जाने वाले उपर्युक्त प्रस्तावित विद्यालय के लिये प्रबन्ध की व्यवस्था पर विचार।

८—अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन की नियमावलि में अपेक्षित संशोधनों की सिफारिशें करने के लिये महासम्मेलनाध्यक्ष, प्रधानमन्त्री तथा ३ अन्य सदस्यों द्वारा निर्मित एक उपसमिति के निर्माण पर विचार।

९—अन्यान्य विषय श्री अधिवेशनाध्यक्ष जी की अनुमति से।

महासम्मेलन की स्थायी एवं कार्यकारिणी समितियों के सभी सदस्य महानुभावों से विनम्र प्रार्थना है कि इस अधिवेशन में सम्मिलित होकर अनुगृहीत करें। यदि किसी कारण आप उपस्थित न हो सकें तो विचार्य-विषयों पर अपनी अमूल्य सम्मति यथासमय भेजकर कृतार्थ करें।

निवेदक

वामनराव दी० वैद्य

प्रधानमन्त्री

अखिल भारतीय आयुवद महासम्मेलन

प्रकाशक तथा प्रेषक :—

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन कार्यालय,
महालक्ष्मी मार्केट, चाँदनी चौक,
दिल्ली-६
तार का पता…"आयुवद दिल्ली"
टेलीफोन नं०—२८९०२
ता० १० मार्च १९५८

नेत्रों की अनेक व्याधियों और नेत्रों को सुरक्षित रखने के लिये

श्री हरि
जीवदया
नेत्रप्रभा
रजिस्टर्ड

अत्यंत लाभदायक है

नेत्रप्रभा—नेत्रकण्डु, कुकरे, धुन्ध, जाला, फूली, नेत्रस्राव, लाली रतोंधी, नेत्रों का दुखना, कम दिखाई देना, आदि के लिए अनुपम है।

जीवदया नेत्रप्रभा—अधिक परिश्रम, वेल्डिंग, गाड़ी चलाना, धुआँ, सिनेमा, लिखना-पढ़ना, धूप, टाइफाइड, सूर्यावर्त और जागरण के कारण होने वाले सिर दर्द और आँखों के दर्द में लाभदायक है। सोते समय अंजन करने से बढ़िया नींद आती है। दिमाग स्फूर्ति पाता है।

नेत्रप्रभा—की बड़े-बड़े वैद्य डाक्टर, विख्यात संस्थाओं, संत महात्माओं तथा समाचार पत्रों ने प्रशंसा की है। जैसे:—श्री बंबई आयुर्वेद चिकित्सक मंडल, सूरत वैद्य सभा, श्री राजकुमार सिंह आयुर्वेद कालेज इन्दौर। राजकोट के ग्रामों में आयुर्वेदिक बक्स में इसे स्थान प्राप्त हुआ है।

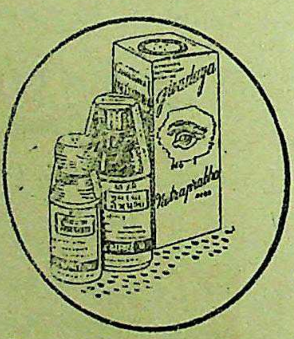

नेत्रप्रभा—नित्य व्यवहार से कोई हानि नहीं होगी—बालक तथा वयस्क दोनों ही दिन में एक से तीन बार दर्द के अनुसार इसे लगा सकते हैं। अधिक विवरणके लिये लिखिये—

जीवदया नेत्रप्रभा कार्यालय
(निर्माताः—आर. एम. शाह)
जूनी विक्टोरिया मिल्स कम्पाउण्ड,
गांमदेवी रोड, बंबई ७

सभी जानते हैं

प्रामाणिक वस्तुओं का उचित मूल्य पर
मिलने का एकमात्र स्थान

नेपाली ट्रेडर्स

२१२, बड़गादी, बम्बई-३

- नेपाली कस्तूरी
- जंगबारी अम्बर
- बसरा मोती
- स्पेन केसर
- सूर्यतापी शिलाजीत
- विशुद्ध गोरोचन

के अतिरिक्त

प्रवाल शाख, प्रवाल मूल, प्रबालकांडी, बंसलोचन, भीमसेनी कपूर, जहरमोरा खटाई, केहरुवा, जुन्द वेदस्तर, हरडें, अकीक, सीप, कौड़ी, शंख, शिंगरफ, वर्की हड़ताल तथा सब प्रकारकी खड़ें (जवाहिरात) आदि।

विशेष विवरण के लिये सूचीपत्र मंगाएँ।

पञ्चविधकषायकल्पनम्

आयुर्वेदाचार्य श्री वागीश्वर शुक्ल, A. M. S. सैंट्रल रिसर्च इंस्टिट्यूट, जामनगर

(गताङ्कादूर्ध्वम्)

“ऊष्मापित्ताहृते नास्ती” त्यादिवचनेन ज्ञायते यज्ज्वररक्तपित्तयोर्दोषसाम्यता, दूष्यञ्चात्र रक्तमतो ज्वरसन्तापाद् रक्तपित्तोत्पत्तेर्ज्वरमनु रक्तपित्ते प्रयोणानां स्वरसानां संग्रहे प्रवर्तिष्ये यथाहुरात्रेयधन्वन्तरिप्रभृतयो महर्षयस्तदुत्तरकालिकाऽऽचार्याश्च—

योगानां संग्रहात्पूर्वं ज्ञातव्यं वर्तते यद्रक्तपित्तस्य चिकित्सा त्रिविधा :—ऊर्ध्वगस्य विरेचनेन, अधोगस्य वमनेन, शोषादिभिरुपद्रुतस्य च संशमनेनेति ।

यदुक्तम्—

“काले संशोधनार्हस्य तद् (रक्तपित्तं) हरेन्निरुपद्रवम् ।
संशोधनेनोर्ध्वगभागमधोगं वमनेन च ॥

तथा—

आवम्यमविरेच्यं वा यं पश्येद् रक्तपित्तिनम् ।
शोषेण सानुबन्धं वा तस्य संशमनी क्रिया ॥” च० चि० ४ अ०

सुश्रुते चाप्युक्तम्—

“अधः प्रवृत्तं वमनैरूर्ध्वमार्गं विरेचनैः ।
जयेदन्यतरच्चापि क्षीणस्य शमनैरसृक् ॥” सु० उ० ४५ अ०

तन्त्रान्तरेऽपि दृश्यते—

“अधोगं वमनैर्धीमान् ऊर्ध्वगं रेचनैर्जयेत् ।
ऊर्ध्वगं वाप्यधोगं वा क्षीणस्य शमनैर्जयेत् ॥”

यद्यप्यधोगरक्तपित्तरोगोऽयं वातानुगः, ऊर्ध्वगश्च कफानुगस्तथापि तयोर्वमनविरेचने युज्येते व्याधिप्रभावत्वात् ।

अस्मिन् रोगे पित्तदोषो ह्यनुबन्ध्यः, संशोधनानि चास्य प्रधानभेषजत्वेनोक्तानि । दृश्यन्ते हि शास्त्रवचनानि—“विरेचनं हि पित्तस्य जयार्थे परमौषधम्” तथा प्रतिमार्गञ्च हरणं रक्तपित्ते विधीयते” (च० नि० २ अ०) त्याादयः । ऊर्ध्वगरक्तपित्तन्तु साध्यम् अधोगं याप्यम्, साध्यस्य साधनमेव श्रेयष्करमत एव पूर्वमुर्ध्वगमधिकृत्य तच्चिकित्सायां प्रयुक्ता विरेचनयोगा उच्यन्ते—

(१) त्रिवृतामभयां प्राज्ञः फलान्यारग्वधस्य वा ।
त्रायमाणां गवाक्ष्या वा मूलमामलकानि वा ॥

विरेचनं प्रयुञ्जीत प्रभूतमधुशर्करम् ।
रसः प्रशस्यते तेषां रक्तपित्ते विशेषतः ॥ च० चि० ४ अ०

अत्र चक्रपाणिराह—रक्तपित्ते विशेषत इत्यनेन रक्तपित्तादन्यत्र कल्कादयोऽप्येषां भवन्ति। जज्जटेनाप्यत्रोच्यते—गवाक्षी-इन्द्रवारुणी, विरेचनकरत्वात्तस्याः रसः प्रशस्यते। किन्त्वस्मन्मते तु नेयं स्वरसकल्पना गवाक्ष्येकविषया अपि तु सर्वाषां विषया।

(२) त्रिवृतां त्रिफलां धात्रीत्रायन्त्यारग्वधाभयाः ।
गवाक्षीक्षुरसक्षीरद्राक्षाक्षौद्रसितोत्कटाः ॥
यथास्वं कल्पविहिता विरेकार्थं प्रयोजयेत् ॥ अ० सं० चि० ३ अ०

अत्रेन्दुः—त्रिवृतादयोऽभयान्ताः पृथक्कल्पोक्तेन विधानेन यथास्वं विषयेषु गवाक्षीक्षुरसादिभिर्यथायोगमेक-द्वि-त्रैरुत्कटा विरेकार्थं रक्तपित्ते प्रयोजयेत्।

"अधोयाप्य" इत्युक्तत्वात्तथा "अधोवहो रक्तपित्ते वमनं परमुच्यते" इत्यादि वचना वमनयोगा उच्यन्ते—

(१) वमनं मदनोन्मिश्रः—इक्षूणां रस एव वा। च० चि० ४ अ०। अत्रेक्षुरसस्य मदनयोगादेव वमनकर्तृत्वं ज्ञेयम्। मदनस्य दोषाद्यपेक्षया कर्षादिकामात्रा कल्पस्थाने उक्ता ज्ञेयेति चक्रपाणिः।

(२) फलेन्द्रयवगांगेयीमधुकं वा समाक्षिकम् ।
क्षीरं वा रसमिक्षोर्वा·········॥ अ० सं० चि० ३ अ०

अत्रेन्दुनोच्यते-क्षीरेक्षुरसयोरनुक्तान्यपि फलानि वमनत्वात् प्राधान्याच्चोपलभ्यन्ते। अत्र क्रमप्राप्ता संशमनयोगा उच्यन्ते—

(१) (क) प्रपौण्डरीकं मधुकं मधु चाश्वशकृद्रसे ।
यवासभृङ्गरजसोर्मूलं वा गोशकृद्रसे ॥
विनीय रक्तपित्तघ्नं पेयं स्यात्तण्डुलाम्बुना ।
युक्तं वा मधुसर्पिभ्यां लिह्याद् गोऽश्वशकृद्रसम् ॥ च० चि० ४ अ०

(ख) तुरङ्गवर्चः स्वरसं समाक्षिकं पिबेत् सिताक्षौद्रयुतं वृषस्य वा ।
केचिदेवं पठन्ति—वासाकषायं ससितं पिबेद् वा तुरङ्गवर्चः स्वरसं
समाक्षिकम् ॥" सु० उ० ४५ अ०

(ग) लिह्याद् वा मधुसर्पिभ्यां गवाश्वशकृदोरसम् । अ० सं० चि० ३ अ०
गवाश्व शकृद्रसो घृतमाक्षिकाभ्यां लेहप्रयोगः। (इन्दुः)

(२) वैदूर्य्य मुक्तामणि गैरिकाणां मृच्छङ्खहेमाममलकोदकानाम् ।
मधूदकस्येक्षुरसस्य चैव पानाच्छमं गच्छति रक्तपित्तम् ॥ च० चि० ४ अ०

अष्टाङ्गसंग्रहे श्लोकोयं भङ्ग्यन्तरेणोक्तः। यथा—

वैदूर्यमुक्तामृच्छङ्खगैरिकामलकोदकम् ।
मधूदकं रसं चेक्षोः पिबेन् जयति शोणितम् ॥ अ० सं० चि० ३ अ०
अत्र वैदूर्यादिभिः सह स्थितं जलं वैदूर्य्यादि जलं ज्ञेयम् ।

(३) उदुम्बरफलं पिष्ट्वा पिबेत् तद्रसमेव वा । सु० उ० ४५ अ०

फाल्गुन २०१४

अत्रोदुम्बरफलस्वरसं मधुयुतं पिबेदिति योजना ।

(४) वासारसेन फलिनीमृल्लोध्राञ्जनमाक्षिकम् । अ० सं० चि० ३ अ०
फलिन्यादि वासास्वरसेन पीतं पित्तासृक्शमनमितीन्दुः ।

(५) वासारसेन भूनिम्बकटुकाशर्कराः पिबेत् ।
तेनैव वा क्षौद्रयुक्तं पद्मकेसरपद्मकम् ॥ अ० सं० चि० ३ अ०
सलोध्रनागकुसुमशाड्वलोत्पलवास्तुकम् ॥

इन्दुनोच्यतेऽत्र—भूनिम्बादिचूर्णं वासारसेन प्रयोगः । तेनैव माक्षिकयुक्तं पद्मकेसरादिवास्तुकान्तं प्रयोगः ।

(६) वासायां विद्यमानायामाशायां जीवितस्य च ।
रक्तपित्ती क्षयी कासी किमर्थमवसीदति ॥

श्लोकोऽयं चक्रदत्त, बंगसेन, भावप्रकाश, भैषज्यरत्नावली-योगरत्नाकरादिग्रन्थेषु दृश्यते ।

(७) वृषपत्राणि निष्पीड्य रसं समधुशर्करम् ।
पिबेत् तेन शमं याति रक्तपित्तं सुदारुणम् ॥ चक्रदत्ते रक्तपित्त, चिकित्साधि०

श्लोकोऽयं वंगसेन-योगरत्नाकरेऽपि दृश्यते ।

(८) तालीशचूर्णसंयुक्तः पेयः क्षौद्रेण वासकस्वरसः ।
कफपित्ततमकश्वासस्वरभेदरक्तपित्तहरः ॥ चक्रदत्ते, भैषज्यरत्नावल्यामपि

(९) समाक्षिकः फल्गुफलोद्भवो वा पीतो रसः शोणितमाशु हन्ति । चक्रदत्ते

(१०) वासकस्वरसे पथ्या सप्तधा परिभाविता ।
कृष्णा वा मधुना लीढा रक्तपित्तं द्रुतं जयेत् ॥ चक्र, भै. र., बंगसेन, यो०

(११) वासकस्वरसः पेयो मधुना रक्तपित्तजित् ।
ज्वरकासक्षयहरः कामलाश्लेष्मपित्तहा ॥ शार्ङ्गधर म० खण्ड, स्वरसाधिकारो

ऽमूर्ध्वंगे विशेषान्मुखात्प्लुते रक्तपित्ते योज्यः । अत्र वासकस्वरसः अर्धपलं, मधु टंकद्वयम् ।

(१२) वासापत्रसमुद्भूतो रसः समधुशर्करः ।
क्वाथो वा हरते पीतो रक्तपित्तं सुदारुणम् ॥ भावप्रकाश, बंग०, भै० रक्तपित्ताधि० ।

(१३) पिष्टानां वृषपत्राणां पुटपाकरसो हिमः ।
समधुर्हरते रक्तपित्तं कासज्वरक्षयान् ॥ भा० प्र०, यो० र० रक्तपित्ताधिकारे

(१४) वृषस्य स्वरसं कृत्वा द्रवैरेभिः प्रयोजयेत् ।
प्रियंगुमृत्तिकालोध्रमञ्जनञ्चेति चूर्णयेत् ॥
एतच्चूर्णं तु पातव्यं रसक्षौद्रसमन्वितम् ॥
नासिकामुखपायुभ्य योनेर्मेढ्राच्च वेगतः ।
रक्तपित्तं स्रवद्धन्ति सिद्ध एष प्रयोगराट् ॥
यच्च शस्त्रक्षतेनैव रक्तं स्रवति वेगतः ।
तदप्यनेन चूर्णेन तिष्ठत्येवावचूर्णितम् ॥ वंग० रक्तपित्ताधिकारे

(१५) मध्वाटरूषकरसौ यदि तुल्यभागौ कृत्वा नरः पिबति पुण्यतरः प्रभाते।
तद्रक्तपित्तमतिदारुणमप्यवश्यमाशु प्रशाम्यति जलैरिव वह्निपुञ्जः ॥ यो.र.
(१६) अश्वत्थ पत्राग्ररसात्षडंशो बोलोऽथ तस्माद्द्विगुणं मधु स्यात्।
रक्तप्रवाहं हृदयस्थितं वा वातो यथाभ्रं हरते तथैव ॥ यो. र.

अथ नासाप्रवृत्तरुधिर चिकित्सा।

(१) द्राक्षारसस्येक्षुरसस्य नस्यं क्षीरस्य दूर्वास्वरसस्य चैव।
यवासमूलानि पलाण्डुमूलं नस्यं तथा दाडिमपुष्पतोयम् ॥ च. चि. ४ अ.
(२) उशीर वानीरजलम्—प्रलेपार्थम् (च. चि. ४ अ.)
(३) घ्राणप्रवृत्ते जलमाशुदेयं सशर्करं नासिकया पयो वा।
द्राक्षारसं क्षीरघृतं पिबेद् वा सशर्करञ्चेक्षुरसं हिमं वा ॥ सु. उ. ४५ अ.

अत्र सशर्करं द्राक्षारसं नासिकया पिबेदिति प्रथमो योगः। द्वितीयस्तु इक्षुरसं हिमं नासिकया पिबेदिति योजना।

तन्त्रान्तरेप्युक्तम्—"द्राक्षारसस्य नस्यं नस्यं वा क्षीरसर्पिषः सपदि।
इक्षोरसस्य नस्यं सशर्करं रक्तनुद्भवति।"

सुश्रुतोक्तोऽयं श्लोकः वंगसेन-भावप्रकाश-योगरत्नाकरादि ग्रन्थेषु दृश्यते। चरकोक्त "द्राक्षारसस्येत्यादि" श्लोकः चक्रदत्तयोगरत्नाकरे दृश्यते।

(४) रसो दाडिमपुष्पस्य दूर्वारससमन्वितः।
अलक्तकरसोपेतः पथ्यारससमन्वितः॥
योजितो नासयोः क्षिप्रं त्रिदोषमपि दारुणम्।
नासारक्तं प्रवृत्तन्तु हन्यादिति किमद्भुतम् ॥ वंग., भै. र. रक्तपित्ताधिकारे
(५) दूर्वाऽभया दाडिमपुष्पकानां लाक्षामलक्याः स्वरसेन नस्यम्।
दिनत्रयं यः कुरुते प्रभाते नासासृजं नाम रुजं निहन्ति ॥ वंग.

तार—इंजैक्शन—झाँसी लाο नंο २/ एसο सीο / पीο फोन नंο ५६३

मिश्रा आयुर्वेदिक इन्जैक्शन्स तथा आο पेटेन्ट औषधियां

सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त

वैज्ञानिक रसायनशाला में सरकारी मान्यता प्राप्त ट्रेन्ड वैज्ञानिकों, कैमिस्टों की देख रेख में निर्मित होते हैं। लाखों रुο की पूंजी द्वारा आधुनिक विद्युत यंत्रों से सुसज्जित विशुद्ध, प्रमाणिक, निरापद, असली और चमत्कारिक गुणकारी हैं। विवरण पत्रिका मुफ्त मंगायें। सर्वप्रथम आविष्कर्ता व लाइसेन्स प्राप्त :—

जीο एο मिश्रा आयुर्वेदिक फार्मेसी
श्री भैरवनिकुंज, झांसी नंο १०३

हमारे देहली के सोल ऐजेन्ट—मैसर्स रायल स्टोर्स, गोलमार्केट, नई देहली।

पारद पर नवीन अनुसन्धान

(कांचन युक्ति व मुक्ति)

कृष्णकुमार एम०ए०, आयुर्वेदालंकार, उपाध्यक्ष रसशास्त्र, आ० कालेज, गुरुकुल कांगड़ी

पाठक श्री नारायण स्वामी जी से सम्भवत: परिचित ही होंगे। आप रसशास्त्र के विलक्षण विद्वान हैं। इस ७२ वर्ष की आयु में भी आप जिस लगन तथा अनथक परिश्रम से आयुर्वेदीय रस शास्त्र में शोधन कार्य कर रहे हैं उसके लिए आयुर्वेद जगत की ओर से बधाई के पात्र हैं। आपने अबसे ६ वर्ष पूर्व गढवाल के देव प्रयाग नामक स्थान पर पारद पर अनुसंधान कार्य प्रारम्भ किया था। परन्तु कतिपय कारणों से आपको यह स्थान छोड़ना पड़ा। अब आप गंगा के किनारे कनखल नामक स्थान पर अनुसंधान कार्य कर रहे हैं। प्राचीन काल में रस विद्या उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर पहुँच चुकी थी। रस प्रयोग के अद्‌भुत चमत्कार प्राचीन रस शास्त्र के ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं, परन्तु इन ग्रन्थों की भाषा इतनी गूढ व रहस्यमय है कि उनका भाव ठीक प्रकार से समझ में नहीं आता तथा प्रयोग किए जाने पर उनका फल प्राप्त नहीं होता। इन रहस्यों को न समझने के कारण अनेक विद्वान इन प्रयोगों को कपोल-कल्पित ही समझते हैं।

श्री नारायण स्वामी जी इन प्रयोगों की सत्यता को सिद्ध करने के लिए अनेकवर्षों से प्रयत्न कर रहे हैं। इस कार्य में लगभग ६० सहस्र रुपया वे व्यय कर चुके हैं। पर्याप्त सीमा तक स्वामी जी को इस कार्य में सफलता भी प्राप्त हुई है। स्वामी जी को पूर्ण विश्वास है कि इस कार्य में सफलता अवश्यम्भावी है। आयुर्वेद के प्रेमी किसी समय स्वामी जी द्वारा किये गये अनुसन्धान कार्यों से अवश्य परिचित होंगे।

मैं स्वामी जी के पास पारद अनुसंधान कार्यालय में अनेक बार गया तथा स्वामी जी से प्रार्थना की कि वे आयुर्वेद प्रेमियों के हितार्थ उनकी ज्ञानपिपासा की शान्ति के लिए कुछ प्रयोग बताने की कृपा करें। स्वामी जी ने अत्यन्त कृपा करके पारद को अग्निस्थायी करने के लिए स्वयं अनुभूत कुछ प्रयोगों को बताने की कृपा की है। यह अग्निस्थायी व रंजित पारद धातुवाद (लोहवेध) के लिए उपयुक्त होता है। मैं उन प्रयोगों को आयुर्वेद जगत के सम्मुख उपस्थित कर रहा हूँ। कुछ समय पश्चात् अन्य प्रयोगों को भी पाठकों के सम्मुख रखने का प्रयत्न करूंगा।

आयुर्वेदीय रसशास्त्र में पारद के २५ बन्ध बताये गये हैं। पारद अनुसंधान कार्य करते हुए श्री नारायण स्वामी जी ने समय समय पर पारद को अग्निस्थायी व रंजित करने के लिए जो अनुभव किये हैं, उनमें से सरलता से प्राप्त होने वाली वस्तुओं से पारद को अग्निस्थायी व रंजित करने के लिए जो अनुभव स्वामी जी ने अपनी रसायन

शाला में किये हैं, उनको मैं आयुर्वेद प्रेमियों के सामने रख रहा हूँ।

१—बिल्वपत्रों के स्वरस से पारद को रंजित व अग्निस्थायी करने की विधि—

कोमल बिल्वपत्रों को प्रातःकाल धूप निकलने से पहिले तोड़ कर लावें, निर्धूम उपलों की अग्नि में पाक करके पुटपाकविधि से स्वच्छता पूर्वक इनका स्वरस निकालें। एक मृत्तिका पात्र इस प्रकार तैयार कर लें······

मिट्टी का कूण्डा कच्चा (आवे में पकाने से पहिले) लें। सुहागा तथा रसरत्नसमुच्चय के रक्तवर्ग की भावना देने की विधि के अनुसार शोधित तुत्थ समान भाग लेकर पानी में बारीक पीस लें तथा कूण्डे के भीतर और बाहर लेप कर दें। इस कूण्डे को आवे में पकवा लें। इस लेख में पारद के बन्धन के लिये जितने भी मृत्तिका पात्र लिये जायेंगे उन सब में इसी प्रकार के मृत्तिका पात्रों का व्यवहार होगा। साधारण मृत्तिका पात्र से बिना निगड पारद बाहर निकल आता है। ऐसे पात्र बनाने में जिन्हें कष्ट मालूम हो और जिनके आर्थिक साधन हों उन लोगों का पोर्सिलेन या सिलिका के पात्रों में यह कार्य करना चाहिये।

एक सेर पारद के लिये १० सेर बिल्वपत्र स्वरस उपर्युक्त कूण्डे में डाल कर बालुका यन्त्र या बिजली के हीटर पर ४० दिन रात रस डाल डाल कर पकावें। यदि कूण्डे छोटे हों तो दूसरी बार रस डाल कर पकावें। दूसरी बार रस डालने से पहिले पारद को तीक्ष्ण चाकू से खुरच कर कूण्डे से पृथक् कर लें। बाद में फिर पकायें। ४० दिन रात स्वरस में पकाने के बाद पारद का ऊर्ध्वपातन यन्त्र में परीक्षण करें कि यह अग्निस्थायी हुआ है या नहीं। नव्य विज्ञान के अनुसार पारद ६३५° श० पर अग्निस्थायी रहना चाहिये। पूर्ण अग्निस्थायी होने तक पारद का बिल्वपत्र स्वरस में पाक करें। इस प्रक्रिया से पारद अपने मूल स्वरूप जैसा तरल एवं लाख के रंग के समान रक्ताभ और पूर्ण अग्निस्थायी तथा बुभुक्षित होता है।

२—जयपाल के बीजों से पारद को रंजित व अग्निस्थायी करने की विधि—

देसी जमालगोटे के बीजों को शुद्ध करके उनको मशीन में डालकर तेल निकलवा लें। इस तेल में पहिले कही गई विधि के अनुसार मृत्तिका पात्र में पारद को ४० दिन तक पकावें। बाद में ऊर्ध्वपातन यन्त्र द्वारा पारद के अग्निस्थायित्व का परीक्षण करें। यदि कोई कमी हो तो पुनः जयपाल के तेल में पाक करें। इस प्रकार से सिद्ध किया हुआ पारद तरल तथा पीताभ रंजित होता है और अग्निस्थायी तथा बुभुक्षित होता है।

३—कुसुम्भ के बीजों से पारद को रंजित व अग्निस्थायी करने की विधि—

ऊपर कही गई विधि से कुसुम्भ के बीजों के तेल से पारद का मृत्तिका पात्र में ४० दिन तक पाक करें। इस विधि से सिद्ध पारद तरल तथा पीताभ रंजित और अग्निस्थायी तथा बुभुक्षित होता है।

४—अलसी के तेल से पारद को रंजित व अग्निस्थायी करने की विधि—

ऊपर कही गई विधि से अलसी के तेल में पारद का मृत्तिका पात्र में ४० दिन तक अग्निस्थायी होने तक पाक करें। इस विधि से सिद्ध पारद माखन जैसा गाढ़ा तथा पीताभ और अग्निस्थायी तथा बुभुक्षित होता है।

५—भिलावे के तेल से पारद को रंजित तथा अग्निस्थायी करने की विधि-

शुद्ध भिलावों का पाताल यन्त्र से तेल

वा लें। इस तेल में पारद का मृत्तिका में ४० दिन तक पाक करें तथा उसके स्थायित्व की परीक्षा करें। इस विधि द्ध पारद तरल तथा पीताभ रंजित और स्थायी तथा बुभुक्षित होता है।

नोट—भिलावे के तेल व जमालगोटे के में पारद को पकाते समय इनके धूएं से ना चाहिये अन्यथा शरीर पर सूजन ती है। इनका धुआं आंख, नाक व मुख बिलकुल नहीं लगना चाहिये। जहां तक के यह कार्य खुली वायु म करना चाहिये। प्रकृति वाले को विशेष रूप से इन तेलों क नहीं करना चाहिये।

६—गन्ध बिरोजा 'श्री वेष्टक' द्वारा द को रंजित व अग्निस्थायी करने विधि—

सर्व प्रथम गन्धबिरोजे को साफ करने कार्य करें। चौड़े मुख के पात्र में ३ हिस्से नी भर कर इसके ऊपर स्वच्छ कपड़ा दें। इस कपड़े पर उसी वर्ष का बिरोजा दें। वर्तन को चूल्हे पर रख कर आंच से बिरोजा छन कर नीचे के पात्र में जायेगा, तथा कपड़े पर मैल व लकड़ी जायेगी। इस विधि से साफ किया हुआ रोजा पारद को रंजित व अग्निस्थायी ने के कार्य में आता है।

शुद्ध बिरोजे को १ सेर पारद के लिये १० सेर लें। सुहागा व तुत्थ से लिप्त पूर्वोक्त मृत्तिका पात्र में इस बिरोजे के साथ पारद का ४० दिन तक पाक करें। जब पात्र में बिरोजा पकते-पकते सूख जावे और उसमें दरार पड़ जावे तब कूण्डे को फोड़ कर पारद अलग कर लें तथा दूसरे कूण्डे में पारद और बिरोजा डालकर पाक करें। इस प्रकार ४० दिन तक पाक करने के बाद पारद के अग्निस्थायित्व का परीक्षण करें। इस विधि से सिद्ध पारद तरल तथा पीताभ रंजित और पूर्ण अग्निस्थायी तथा बुभुक्षित होता है।

धरणीधर संहिता में कुछ श्लोक हैं जिनमें पारद के वेध का विधान बताया गया है—

अथ वेधविधानं हि कथयामि सुविस्तरम्।
यस्य विज्ञानमात्रेण वेधज्ञो जायते नरः॥
धूर्ततैलमहेः फेनं कंगुणीतैलमेव च।
भृंगतैल विषं चैव तैलं जातीफलोद्भवम्॥
हयंमारशिखातैलमब्धिशोपकतैलकम्।
एतान्यन्यानि तैलानि व्यवायकरणानि च॥
संस्कारैः संस्कृतः सूतः समस्त तैलव्यवायिना।
यामैकं मर्दितं सम्यक् पारदो वेधकृद्भवेत्॥

ऊपर के श्लोकों में पारद के वेध की विधि बतलाई गयी है। स्वामी जी ने अपनी प्रयोग शाला में इस विधि का प्रयोग करके अनुभव प्राप्त किया है। स्वामी जी ने इसमें दो प्रकार के अनुभव प्राप्त किये। बीजजारित पारद को उपर्युक्त तेलों से एक एक प्रहर तप्त खल्व में घोटने से उपर्युक्त सारे तेल अलग-अलग क्रामण करके काम देते हैं। इसके अतिरिक्त स्वामी जी ने अपनी रसायनशाला में साधारण शुद्ध पारद पर इन तेलों का क्या प्रभाव होता है इसकी भी जांच की। इनको अनुभव हुआ कि उपर्युक्त रसबन्ध के लिये बताये तेलों में पारद को द्विगुण तेल में पकाने से पारद अग्निस्थायी, रंजित व बुभुक्षित होता है। स्वामी जी ने अनुभव किया कि ऊपर की रसबन्ध की विधि से जो पारद अग्निस्थायी व रंजित होता है वह

स्वयं क्रामण, बन्धन तथा वंग स्तम्भन करता है। स्वामी जी का यह भी अनुभव है कि ऐसे जो हठरस बनाये जाते हैं उनमें अभ्रक या गन्धक का जारण न करने पर भी रस शास्त्र के सिद्धान्त के अनुसार पारद को आहिस्ता-आहिस्ता ग्रास देने से उसमें बीज जारण करने से उपर्युक्त सारे पारद दशवेधी होते हैं।

ऊपर के लेख से आयुर्वेद रसशास्त्र के अनुसन्धान कार्य को एक नयी दिशा मिलती है। आशा है आयुर्वेद प्रेमी इस दिशा में विचार करेंगे तथा अनुसन्धान कार्य को आगे बढ़ाने का प्रयत्न करेंगे।

——

प्रतिश्याय

आयुर्वेद बृहस्पति पं० सोमदेव शर्मा सारस्वत, साहित्यायुर्वेदाचार्य B.A., A.M.S.
रीडर गवर्नमेंट आयुर्वेदिक कालेज, रायपुर (मध्य प्रदेश)

प्रतिश्याय एक प्रसिद्ध रोग है जो 'जुकाम' नाम से जनता में प्रसिद्ध है। आयुर्वेदिक ग्रन्थों में इसकी नासिका के रोगों में गणना की गई है, इसका निदान[1] दो प्रकार का होता है—

(१) सद्योजनक, (२) चयादि क्रम-जनक।

१. **सद्योजनक**—यह अधिकतर मल मूत्रादि वेग विधारण, अजीर्ण, रात्रिजागरण, नवीन स्थान के जलवायु के परिवर्तन, आस एवं शीतलवायु और वर्षा में भीग जाने आदि कारणों से चय आदि क्रम के बिना ही शिर में कुपित वात (वायु[2]) दोष से शीघ्र ही उत्पन्न हो जाता है।

२. **चयादि क्रम जनक**—विविध प्रकोपक कारणों से शिर में संचित वात, पित्त, कफ़ दोष, क्रम से प्रकोप आदि अवस्थाओं में होकर धीरे-धीरे प्रतिश्याय रोग को उत्पन्न करते हैं।

प्रतिश्याय रोग का मुख्य लक्षण प्रारम्भ में नाक से बार-बार जलसदृश स्राव का होना है जो दोषानुसार पतला, गाढ़ा, श्वेत, एवं पीले रंग का कम या अधिक होता है। इस के अतिरिक्त शिर में भारीपन, शूल आदि भी लक्षण होते हैं।

भेद

(१) वातज (२) पित्तज (३) कफज (४) रक्तज (५) सन्निपातज भेद से प्रतिश्याय पांच प्रकार का होता है। चिकित्सा न करने पर प्रत्येक प्रतिश्याय 'दुष्ट प्रतिश्याय' (बिगड़ा हुआ जुकाम) हो जाता है। इस कारण इसको छठा[3] प्रतिश्याय नहीं माना गया है।

---

[1] —तस्य निदानं द्विविधम्-एक सद्योजनकं तद्बलवत्वेन चयं न।पेक्षते, चयादिक्रमजनकमपरम्।

[2] —संस्त्यानदोषे शिरसि प्रवृद्धो वा प्रतिश्यायमुदीरयेत्तु।

[3] —अयं च पंचप्रतिश्यायानामेवावस्थान्तरतमः, न षष्ठो गणनीयः। (शा- धर संहिता दीपिका व्याख्या)।

फाल्गुन २०१४

वातज प्रतिश्याय—इसमें नासास्राव कम मात्रा में होता है। गले, तालु और ओठ में शुष्कता, शंख प्रदेश में पीड़ा एवं स्वरोपघात (गला बैठ जाना) हो जाता है।

पित्तज प्रतिश्याय—इसमें गर्म, पीला नासास्राव और नाक से धुआँ (धूम्र) सा निकलता है।

कफज प्रतिश्याय—इसमें श्वेत वर्ण का नासास्राव अधिक मात्रा में होता है और गले, तालु और होठ में खुजली होती है तथा सिर भारी रहता है।

रक्तज प्रतिश्याय—इसमें नाक से रक्तस्राव, नेत्रों में लालामी, नाक और मुख से दुर्गन्धि आना तथा गन्ध का ज्ञान नहीं होता है यह कष्ट साध्य है।

सन्निपातज प्रतिश्याय—इसमें बार-बार प्रतिश्याय हो जाता है और सब दोषों के लक्षण पाये जाते हैं।

चिकित्सा

चिकित्सक के पास अधिकतर सद्योजनक निदान से उत्पन्न तीव्र प्रतिश्याय के रोगी ही आते हैं। चयादिजनक निदान से उत्पन्न प्रतिश्याय के रोगी तो कास (खांसी) के रोगी के रूप में ही आते देखे जाते हैं। कभी-कभी दुष्ट प्रतिश्याय के रोगी भी आ जाते हैं।

सद्योजनक निदान से उत्पन्न तीव्र प्रतिश्याय के रोगियों में वायुदोष के प्रकोप के साथ कफ दोष का भी अनुबन्ध होता है जिससे उनमें शिरःशूल, शीतल नासास्राव, गले और तालु में सुरसुराहट (खुजली), भूखनाश और विबन्ध के लक्षण पाये जाते हैं। ऐसे रोगियों का आहार विहार एवं औषधि-व्यवस्था निम्नलिखित रूप से करनी चाहिए।

आहार—

प्रतिश्याय के रोगी को लंघन❀ कराना सबसे अधिक हितकर होता है। यदि रोगी बलवान हो तो प्रारम्भ में पांच दिन, या कम से कम तीन दिन लंघन अवश्य कराना चाहिए, इससे रोग की तीव्रता बहुत कम हो जाती है और भूख लगनी प्रारम्भ हो जाती है और विबन्ध (कब्ज़) भी दूर हो जाती है। यदि रोगी दुर्बल हो तो उसको पचने में लघु, गर्म नमकीन, कुछ स्निग्ध, द्रवरहित भोजन दे एवं अदरक का उपयोग प्रतिदिन दिन में दो तीन बार कराना चाहिए और उसको चावल तथा अरहर की दाल देने का निषेध कर देना चाहिए। रोटी बिना घृत लगा के मूंग की दाल से दे सकते हैं।

विहार—

सब प्रकार के नूतन प्रतिश्याय में रोगी शीतल वायु से बचने के लिए मकान के भीतरी भाग के कमरे में खिड़की बन्द करके विश्राम करे, गर्म और भारी ऊनी वस्त्र पहिने तथा शिर पर मफलर या गुलूबन्द आदि लपेट ले।

औषधि—

१—शृंगभस्म १ रत्ती, शुद्ध नौसादर ४ रत्ती—१ मात्रा।

२—ऐसी दो मात्रा प्रातः सायं गर्म जल से रोगी खावे और निम्नलिखित क्वाथ पिलावें—

उन्नाव ७, लिसोड़ा ७, बनफ़शा ६ माशा, खसखस ६ माशा, मुलहठी ६ माशा,

---

❀ अक्षिकुक्षिभवा रोगाः प्रतिश्यायव्रणज्वराः। पञ्चैते पञ्चरात्रेण रोगा नश्यन्ति लंघनात्॥

(योगरत्नाकर)

गावज़वां ६ माशा, सौंफ़ ६ माशा, तुरंजबीन १ तोला ।

रोगी इन सब वस्तुओं को थोड़ा कूट ऽ।। जल में पका कर क्वाथ बनावे और आधा भाग शेष रहने पर उतार मिश्री २ तोला मिलाकर प्रातः सायं पीवे ।

नं० १ की औषधि के सेवन करने से नवीन प्रतिश्याय में कफ का स्राव शीघ्र हो जाने से थोड़े समय में प्रतिश्याय और शिरःशूल शान्त हो जाता है ।

नं० २ की औषधि से प्रतिश्याय के साथ मन्दज्वर, विबन्ध, (क़ब्ज़ी), शिर का भारी रहना और शिरःशूल ३ दिन में शान्त होते हैं ।

३. नस्य—बालछड़ ६ माशा, गुलबनफ़शा ६ माशा, पाठा १ तोला, उस्तखद्दूस १ तोला ।

रोगी, इन औषधियों को खूब सूक्ष्म पीस कपड़े में छानकर शीशी में रख ले और फिर नाक के दोनों नथनों में इसका नस्य लेवें ।

इस नस्य से शिर में एकत्रित कफ दूर हो जाता है और श्वास नलिका साफ हो जाती है जिससे प्रतिश्याय का आंख पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ने पाता और शिर दर्द शान्त हो जाने से मस्तिष्क शान्त हो जाता है । अथवा निम्नलिखित नस्य दें—

शुद्ध नवसादर १ भाग, चूना १ भाग ।

इन दोनों को पीस कर शीशी में रख मज़बूत डाट लगादें और उस को बार-बार सूँघा करें । इससे तीव्र शिरःशूल शान्त हो जाता है ।

४. व्योषादि वटी—रोगी को एक-एक वटी गर्म जल के साथ दिन में ३ बार दें । इस वटी से प्रतिश्याय के साथ खांसी, श्वास, अरुचि, पीनस और स्वरभंग (गला बैठ जाना) आदि उपद्रव भी शान्त हो जाते है ।

५. त्रिभुवन कीर्तिरस—यदि रोगी को प्रतिश्याय के साथ मन्द ज्वर, शुष्क कास गले की श्लैष्मिक कला में क्षोभ भी हो तो रोगी को योग रत्नाकर ग्रन्थ का—त्रिभुवन कीर्तिरस अदरख के रस और शहद के साथ प्रातः सायं देना चाहिए । एक-एक रत्ती इस रस से प्रतिश्याय के साथ वात श्लैष्मिक मन्द ज्वर में भी अत्यन्त लाभ होता है ।

पुराना (जीर्ण) प्रतिश्याय में

६. समीरगज केसरी रस $\frac{१}{४}$ रत्ती पान के रस या गर्म जल के साथ दें । इस से पीला या श्वेत गाढ़ा नासास्राव दूर हो जाता है ।

बार-बार होने वाले सन्निपातज प्रतिश्याय में

७. चित्रक हरीतकी—एक-एक तोला गर्म गो दुग्ध के साथ प्रातः सायं देना हितकर होता है तथा—

८. षडबिन्दु तैल—६ बूंद नाक के दोनों नथनों में (तीन-तीन बूंद) दिन में प्रातः सायं डालें । यदि प्रतिश्याय के पुराने रोगी की नाक में कृमि भी हो गये हों तो निम्नलिखित कृमिहर नस्य दें—

९. नस्य—सोंठ, काली मिर्च, छोटी पीपल, हल्दी, सहंजने के बीज सम भाग चूर्ण कर बकरी के मूत्र में घोट और सुखा कर शीशी में रख लें और इस नस्य को रोगी को देना चाहिए । अथवा

१०. विडङ्गादि तैल—(योग रत्नाकर) का नस्य दें । अथवा

११. नासा कृमिहर घृत—(रस तन्त्रसार व सिद्धप्रयोग संग्रह) पाँच-पांच बूंद दोनों नथनों में प्रातः डालें । इससे थोड़े दिनों में नाक से मरे हुए कृमि गिर जाते हैं ।

आयुर्वेद और प्राकृतिक चिकित्सा

ले०—वैद्य श्री किशोरीदास भागीरथ गुप्त, बम्बई

(गतांक से आगे)

कफोत्पादक आहारगत रस जनित विदग्ध रस धातु की अम्लता किस प्रकार अनेकानेक रोगों की उत्पादक होती है ? उसीका आयुर्वेदीय स्पष्टीकरण "स कुर्याद्बहुलान् रोगान्" वाले वचन द्वारा ऊपर किया जा चुका है। इस प्रकार प्रचलित प्रायः सब ही रोगों के मूल कारण के सम्बन्ध में आयुर्वेद द्वारा नेचुरोपैथी का सम्पूर्णतया समर्थन हो रहा है जब कि वे दोनों ही एलोपैथी द्वारा निर्मित रोग कारण—कीटाणुवाद की सम्पूर्णतया विरोधक भी हैं जिसका अति स्पष्ट कारण जैसा कि प्रथम बतलाया जा चुका है—उस विज्ञान का मूलभूत भित्ति आधार ही दोनों पद्धतियों से विपरीत याने विकारी शरीर रचनावादी भूमिका पर रचा गया है। रोगोत्पादक सूक्ष्म कीटाणुओं के बारे में तो सुश्रुताचार्य जैसे प्रत्यक्षवादी का स्पष्ट मत है कि स्वस्थ शरीर में अस्वास्थ्यकारी कीटाणुओं का अस्तित्व जो एलोपैथी की फिजिओलाजी के अनुसार स्वाभाविक माना गया है, तब ही सम्भव होता है जब कफ सहित पित्त दोष की वृद्धि एवं प्रकोप आदि निर्माण होते हैं अन्यथा स्वास्थ्यपूर्ण शरीर में न तो किसी प्रकार के सूक्ष्म कीटाणु उत्पन्न होते हैं और न पनप ही सकते हैं। यथाः—

कृमिरोग प्रतिषेधाध्याय

"…श्लेष्मा पित्तं च कुप्यति। कृमिन् बहुविधाकारान् करोति विविधाश्रयान्… विंशते कृमिजातीनां…। दृश्यास्त्रयोदशाद्यास्तु कृमीणां परिकीर्तिताः। केशाद्यास्त्वदृश्यास्ते।" (सु० उत्तर ५४)

"रोगोत्पादक सूक्ष्म कीटाणुओं के बारे में नेचुरोपैथी का मत ठीक आयुर्वेद के जैसा ही है। केवल मात्र भिन्नता इतनी ही है कि उसने "निर्मित परिणाम" को उनकी उत्पत्ति का या आगमन का कारण बतलाया है जैसा कि अम्लता की उत्पत्ति के बारे में ऊपर कहा जा चुका है। यथाः—

What of the Germ Theory ?

Surely disease is due to the presence in the system of germs and microbes, is not it ? Does not disease enter the body from outside and must it not be fought against and expelled ?

In reply to these very pertinent questions it may be stated briefly that no germ or microbe can develop in a body that is absolutely clean and wholesome inside. As a matter of fact, the self-same germs or microbes so much anathematised to-day by the medical profession as the cause of all our ills and ailments, are Nature's tiny scavangers sent to rid the human body of the refuse it has collected etc. page 19.

रोग कारण में आहार के "अतियोग" का उत्तरदायित्व

प्रचलित जमाने के प्रायः सब ही रोगों

की उत्पत्ति कौन से आहार के कारण है इसका विचार करने पर भी वही विपरीत परिस्थिति खड़ी होती है जिसमें आयुर्वेद और नेचुरोपैथी का एकमत और वह भी उसके "अतियोग" के पक्ष में है। तो कीटाणुवादी एलोपैथी का मत उन दोनों के विपक्ष में और "हीनयोग" का प्रतिपादक है। उसका तो स्पष्टतया कहना है कि पोषक आहार के अभाव से अथवा उसके हीनयोग के कारण ही शरीर पर रोग कीटाणुओं का आक्रमण होता है। इसलिये आहारगत पदार्थों की पौष्टिकता का, जठराग्नि के बराबर के प्रमाण से साथ तुलनात्मक विचार किये बिना ही, आज जो छूट से उपयोग किया जा रहा है उसके परिणाम स्वरूप दन्त स्वास्थ्य पर शारीरिक सम्पूर्ण आरोग्य का अवलम्बन मानते हुये भी वह, रोगों का प्रतिकार कर, दांतों का संरक्षण करने में सर्वथा असफल सिद्ध हो रही है। इतना ही नहीं बल्कि उसके आहार प्रथा का अन्धानुकरण करने वाले देश, समाज या व्यक्ति ही आज कैन्सर और हार्टफेल जैसे भयंकर तथा घातक रोगों का अधिकाधिक शिकार बनते चले जा रहे हैं जिसका प्रगट प्रमाण ही "विश्व स्वास्थ्य संघटना, न्यूयार्क-अमेरिका" द्वारा प्रकाशित उसकी अद्यतन रिपोर्ट है, जिसका अतिस्पष्ट कथन है कि—"सुधरे हुये देशों में उक्त दोनों ही रोगों का प्रमाण दिन-प्रति-दिन बढ़ता चला जा रहा है।"

इस प्रकार के आहार "अतियोग" जनित आधुनिक रोगों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में आयुर्वेद और नेचुरोपैथी की एकमतता को दर्शाने वाले प्रमाण यहां नीचे दिये जाते हैं, जो सामान्य में सामान्य पायोरिया आदि मुखरोगों से लगाकर कैन्सर तक की उत्पत्ति के कारण—"पौष्टिक आहार के अतियोग" पर सुस्पष्टतया प्रकाश डाल रहे हैं। यथाः—

"आनूपपिशितक्षीरदधिमत्स्यातिसेवनात्।
मुखमध्ये गदान्कुर्युः क्रुद्धाः दोषाः कफोत्तराः
(भा० वि०)

"मधुरो रसः। आजन्मात्म्यसात्कुरुते धातूनां प्रबलं बलम्।...प्रशस्तो बृंहणः... कुरुते अत्युपयोगेन समेदः कफजान् गदान्... अर्बुदादिकान्।" (वा० सू०)

"पाण्ढयांध्यवीसर्पदकोदराणां
विस्फोटकोन्मादभगंदराणां।
मूर्च्छामदाध्मानगलग्रहाणां
पाण्ड्वाममत्स्यामविषस्य चैव॥
किलासकुष्ठग्रहणीगदानां
शोषास्रपित्तज्वरपीनसानां।
सन्तानदोषस्य तथैव मृत्यो-
र्विरुद्धमन्नं प्रवदन्ति हेतुम्॥
एषां च खलु परेषां च वैरोधिक-
निमित्तानां व्याधीनाम्"...
(च.सू.)

Disease-Nature's self-cleansing efforts

"How does the system throw off or rid itself of, these excess... not required for its work but nevertheless persistantly forced upon it by a food-ignorant owner, in the belief so common to all, that all food is good food and the more we have of it the better.

These excess food materials are broken down in the cell into acid products similar in kind to the waste residue and debris of ordinary cell metabolism,..., and their presence is a continual hinderance and burden to the organism, the y periodically and systematically cleanses itself by ejecting this r present mass of acid waste terials—through the medium of ous membranes of the nose and oat and other parts of the body" page 17.

इस प्रकार आयुर्वेद और नेचुरोपैथी—प्राकृतिक चिकित्सा दोनों ही पद्धतियां आपस में एक दूसरे की पोषक, समर्थक और विकास मार्गों की दृष्टा हैं। इतना ही नहीं बल्कि दोनों ही मिलकर अन्य सब ही चिकित्सा प्रणालियों के लिये भी सत्य की खोज के लिये एक विशालतम मार्ग निर्माण कर देने वाली सिद्ध हो सकती हैं। यही एक मात्र का कारण हो सकता है कि जिसने सत्य के निष्ठ उपासक हमारे राष्ट्रपिता-स्वर्गीय गांधी जी को, अपनी ओर आकृष्ट कर, उन्हें लाने की प्रेरणा दी हो। साथ ही यदि वे आयुर्वेद के संशोधन पूर्वक विकास के लिये रहे होवें, तो उसका कारण भी यही हो सकता है।

किन्तु आज अत्यन्त ही खेदपूर्वक कहना पड़ता है कि अपने आपको उन्हीं राष्ट्रपिता के परम अनुगामी कहलाने वाले नेतागण अपनी मूर्खतावश उसी परिवर्तनशील-प्रगतिकारक एलोपैथी के मानदण्ड से अन्य सब ही चिकित्सा प्रणालियों को मापने लगे हैं और वह भी देश को सब ही तरह से अन्तर्राष्ट्रीय महत्व का स्थान प्राप्त करवाने की भावना से। भावना के साथ कर्तव्य की शुद्धि का होना भी, उतना ही आवश्यक है। इसलिये इस धनहीन नवनिर्मित राष्ट्र की उन्नति के हेतु धन और जन की नाशक खर्चीली एलोपैथी के पिछलग्गूपने के मोह को त्याग, यदि वे राष्ट्रपिता के ही पद-चिह्नों को अपनावें तो, आज भी वे अतीत के सर्वश्रेष्ठ गौरव की देश को आयुर्वेद के द्वारा प्राप्ति करवा सकता है और संसार के मानव समाज को यथार्थ सुख और शान्ति के मार्ग की ओर प्रवृत्त भी कर सकते हैं।

इसी प्रकार आयुर्वेद और नेचुरोपैथी के मर्मज्ञों के लिये भी युग की नितान्त आवश्यकता एवं पुकार है कि वे आपस में एक दूसरे के सहयोग से उसी अपने सुनिश्चित एवं शाश्वत सत्य शारीरिक मान दण्ड-शुद्धि-कृति शरीर के आधार पर सर्व प्रथम नित्य-प्रति के आहार सम्बन्धी सरलातिसरल क्रम का निश्चय करें और पूर्व तथा पश्चिम की दुनिया में उसको प्रचारित करते हुये एलोपैथी की प्रगतिपरता के तीव्र प्रकाश में भटकते हुये पथिकों को यथार्थ सुख और शान्ति का मार्ग ग्रहण करने में लगावें।

मत भूलिए। शीघ्रता कीजिए।

रस भस्में कम मूल्य पर केवल
३१ मार्च तक

अभ्रक वज्र भस्म ४५) सेर, अकीक भस्म ५०) सेर, कौड़ी भस्म ७) सेर, कुक्कुटांडत्वक भस्म १८) सेर, कान्तलोह भस्म ३०) सेर, कसीस भस्म १०) सेर, गोदन्ती भस्म ४) सेर, चन्द्र प्रभावटी २८) सेर, त्रिवंग भस्म ४५) सेर, प्रवाल भस्म ३०) सेर, प्रवाल पिष्टी ३०) सेर, बंग भस्म श्वेत ३२) सेर, मुक्ता शुक्ति भस्म १०) सेर, योगराज गुगल १५) सेर, रस सिंदूर ८५) सेर, शंख नाभि भस्म ७) सेर, स्वर्ण वंग नं० १ ६०) सेर, स्वर्ण माक्षिक भस्म २८) सेर, च्यवन प्राश (नया) १२५) मन, सुपारी पाक १४०) मन।

नोट—इन भावों पर रस भस्में २० तोला व पाक ५) सेर से कम नहीं भेजे जायेंगे।

पता—चावला आयुर्वेदिक फार्मेसी
कुब्बी बेरी, किला भंगिया, अमृतसर।

यकृद्दाल्युदर (Cirrhosis Liver) में आयुर्वेदीय चिकित्स

लेखक—कविराज राधाकृष्ण उपाध्याय, सदर पहाड़ी धीरज, दिल्ली

जलोदर की चिकित्सा वैद्य लोग भारत में बड़ी सफलता से करते रहते हैं। पिछले तीस वर्षों में मैंने भी साध्य-कष्टसाध्य और असाध्य ऐसे अनेकों रोगियों को देखा है। इनमें से कुछ रोगियों की सफल चिकित्सा भी हुई है। पेट में पानी कई कारणों से होता है। Cirrhosis Liver याने यकृद्दाल्युदर में भी जलोदर हो जाता है। वर्तमान ऐलोपैथिक विज्ञान में इसे असाध्य मानते हैं। प्राय: ऐलोपैथी के चिकित्सक ऐसे रोगी का टेपिंग द्वारा पानी निकाल कर उसे थोड़े समय के लिए आराम देते हैं किन्तु पानी फिर भर जाता है और रोगी क्रमश: निर्बल होता जाता है। जनता का रुझान भी पश्चिमी चकाचौंध के कारण ऐलोपैथी की ओर ही ज्यादा रहता है, जिससे बहुत बार वैद्यों को उनकी समय पर सहायता करने का अवसर भी नहीं मिलता। रोगी वैद्यों के पास तभी आते हैं जब रोग बढ़ जाता है और रोगी निर्बल हो जाता है।

इस रोग में यकृत् के जीवकोषों का क्षय शुरु हो जाता है और उनके स्थान पर सौत्रिक तन्तुओं की वृद्धि होने लगती है। इस से यकृत् की कार्यक्षमता नष्ट होने लगती है, और Portal obstruction होकर (Paritonium) परिविस्तृत कला में पानी भर जाता है। यकृद्दाल्युदर के अतिरिक्त हृदय और वृक्क रोगों में भी जलोदर हो जाता है। यहां मैं एक ऐसे जलोदर रोगी का संक्षेप में वर्णन कर रहा हूं, जिसकी चिकित्सा दिल्ली के ऐलोपैथी के सबसे बड़े अस्पताल में हुई और बाद में आयुर्वेदीय आतुरालय में हुई। आयुर्वेद से उसे जो लाभ हुआ उसके विषय में ऐलोपैथी के बड़े सर्जन की सम्मति भी मिली।

सन् १९५६ में जब मैं दिल्ली के म्युनिसिपल आयुर्वेदीय आतुरालय बल्लीमारान का अध्यक्ष था, तब एक म्युनिसिपल कमिश्नर महोदय ने बुलाकीदास नामक जलोदर रोगी को आतुरालय में दाखिल करने के लिए भेजा। यह रोगी दिल्ली के सबसे बड़े सरकारी अस्पताल (इर्विन हास्पिटल) में ता० ११-५-५६ से २९-५-५६ तक दाखिल रहा और इसका इस अर्से में दो बार पानी निकाला गया, किन्तु थोड़े दिन बाद ही क्रमश: फिर पानी भरना शुरू हो गया और तीन सप्ताह में तो पूर्ववत् जलोदर बन गया। इस बार वह ऐलोपैथी की शरण में न जाकर आयुर्वेद की ओर झुका। आतुरालय में दाखिल करते समय रोगी की अवस्था बहुत निर्बल थी, पेट तो पानी से भरा था और बाकी शरीर सूख गया था। आतुरालय के कर्मचारियों को भी बड़ा डर लगा कि कहीं इससे आतुरालय की बदनामी न हो। वैज्ञानिक अनुसन्धान की इच्छा से इसे ता० ३०-६-५६ को दाखिल कर लिया गया। यह रोगी फिर आतुरालय में १३-१०-५६ तक बैड नं० १२ पर रहा। इस दौरान में दिल्ली राज्य के तत्कालीन स्वास्थ्य मन्त्री श्री डा० युद्धवीरसिंह जी २६-७-५६ को

तुरालय का निरीक्षण करने आये, उनके य दिल्ली राज्य के डायरेक्टर हैल्थ-विसेस डा० चड्ढा, साहब, नगर पालिका के थ आफिसर तथा अन्य एम० एल० ए० भी । डाक्टर साहब आयुर्वेद के बड़े भक्त उन्होंने इस रोगी के इतिहास में बड़ी दिखाई और कहा कि रोगी के पेट का न पानी सूख जाये और आगे पानी रे तो हम आयुर्वेद की उत्तमता समझेंगे साथ ही यह आदेश दिया कि जब रोगी हो जाय तो हमें अवश्य दिखाना। चिकि-चलती रही और रोगी का क्रमशः सुधार लगा पूर्व से पानी भी कम होने लगा। १-८-५६ को देशी चिकित्साओं की के लिए भारत सरकार से नियुक्त कमेटी" के सदस्य भी आतुरालय का क्षण करने आये, उनमें भी दिल्ली के स्वास्थ्य मन्त्री के अतिरिक्त अन्य राज्यों के स्वास्थ्य मन्त्रीगण तथा श्री प्राणजीवन मेहता तथा वैद्यराज भाई भी थे। उन्होंने भी इस रोगी तिहास में रुचि दिखाई थी। तीन मास जब रोगी का पानी सूख गया और स्वस्थ हुआ, तो मन्त्री महोदय को उनकी नुसार उसे दिखाया गया। उन्होंने स्वास्थ्य के डायरेक्टर महोदय को कि इस रोगी का वैज्ञानिक अनुसन्धान र रिपोर्ट भेजी जावे। डायरेक्टर ने इस वैज्ञानिक जांच पड़ताल का इर्विन अस्पताल के मैडीकल सुपरिं-टैंडैंट महोदय डा० आर० एल० मेहरा, आर० सी० एस० को २७-१०-५६ के द्वारा सुपुर्द कर दिया। श्री डा० मेहरा ने भाषी विद्वान चिकित्सकों के साथ रोगी को अपने प्रत्यक्ष निरीक्षण में रख कर सब प्रकार की वैज्ञानिक जांच पड़ताल ता० २५-१२-५६ से नवम्बर १९५७ तक की अर्थात् एक वर्ष बाद उसकी जो रिपोर्ट डायरेक्टर हैल्थ सर्विसेस को भेजी वो मैं बन्धुओं के अवलोकनार्थ नीचे देता हूं।

जांच के इस वर्ष के दौरान में रोगी के पेट में फिर से पानी नहीं भरा, रोगी स्वस्थ रहा तथा अपना काम काज और खान-पान स्वस्थ व्यक्तियों की तरह करता रहा। जांच के दिनों में डाक्टर लोग रोगी की लीवर वायोपसी करना चाहते थे, किन्तु रोगी को इस से खतरा मालूम पड़ता था और वह उस जांच के लिए राजी न होता था। पहली बार जब वह इर्विन अस्पताल में दाखिल हुआ था तब उसके रोग का निदान Cirrhosis Liver (सिरोसिस लीवर) ही किया गया था, जिसे वह असाध्य मानते हैं, यही निदान उसके डिस्चार्ज पत्र पर भी लिखा हुआ है।

रोगी अब स्वस्थ और अपना कामकाज करता है। उसके यकृत् और प्लीहा अब भी बढ़े हुए, हैं, किन्तु पहले से कम हैं। रोगी साढ़े तीन मास आतुरालय में रहा। औषधी की दृष्टि से उसे विशेषकर पुनर्नवा, मन्डूर अद्रक के रस और गुड़ के अनुपात से दिया जाता था, कभी-कभी क्षीर पिप्पली एक माशा दी जाती थी, साथ ही पुनर्नवाष्टक क्वाथ भी देते थे और लांक्षणिक चिकित्सा भी आवश्यकता अनुसार करते थे। भोजन में रोगी को मक्खन निकला दूध और रसवाले फल दिये जाते थे। इसका विस्तृत विवरण अगले लेख में दिया में जायेगा। रोगी का पता :—बुलाकीदास पुत्र किशनलाल, राम-नारायण का मकान, समोसा गली फराशखाना दिल्ली है।

No. 34-117/2426

OFFICE OF THE IRWIN HOSPITAL, NEW DELHI

To,

Shri Radha Kishan Vaid,
Incharge Municipal Ayurvedic Hospital,
Billimaran, Delhi.

Dated, New Delhi, the 15-11-57.

Sub :— *Treatment of patient Bulaki Dass, a case of ascites.*

Dear Sir,

I have the pleasure in recording the following statement regarding the treatment of patient Bulaki Dass—

1. Patient Bulaki Dass a case of ascities was clinically diagnosed as a case of cirrhosis of Liver and remained as indoor patient in the Irwin Hospital from 11-5-56 to 29-5-56. He was tapped twice and large quantities of fluid was removed each time. His peritoneal cavity filled up again but was treated by Vaid Radha Kishan successfully. He was placed under constant observation from 25-12-56 to November, 1957. During this period the patient has been free from fluid and is in good health. The enlargement of liver and spleen persist.

2. The ascites can be caused by the cirrhosis of liver which is an incurable disease and by a thrombosis of the large viens draining the liver. The latter is a disease which cures itself spontaneously in a large number of cases. Clinically it is not possible to distinguish one from the other. The only method to diagnose accurately is by means of liver biopsy. Unfortunately this patient refused to submit to this test and therefore the exact diagnosis of this case still remains unsolved.

3. I do feel that the treatment of Vaidji deserves trial on cases of established cirrhosis diagnosed by liver biopsy, as the cure of cirrhosis of liver is a major achievement in the field of medicine.

The paper received from you are hereby returned.

Yours faithfully,

Sd/—R.L. Mehra.
F.R.C.S.
Medical Superintendent.

Copy to the Director of Health Services, Delhi, for information with reference to his Memo. No : F. 45 (3)/56 M.S. dated 27th Oct. 1956.

(R.L. Mehra)
F.R.C.S.
Medical Suprintendent.

Why Ayurveda

By

KAVIRAJ SHRI BANMALI DAS *Ayurved Shastry, Cuttuck*

Civilization and growth of science and technology

History tells us that first human civilization flourished in the ins of Niles, Tigries-Euphrates and the Indus. Different civilizations d cultures developed according to their respective environments. ence and technology developed in close correspondence with the ges of man's social progress and became progressively self consicious human life became more purposive. The unending struggle between e forces of nature and human ingenuity has given birth to different pes of civilization, culture, ideology, philosophy, science, art and craft. o justify the above relation between nature and human being S.G. Growther has defined "Science as the behaviour by which man acquires stery over his environment".

As such science and culture developed on different lines in Western d Eastern countries and difference in development was due to the nner in which nature behaved in these regions. In Western countries ture was found to be absolutely unfavourable to the man's progress d consequently science developed on a line with a view to conquering ture and making it yield to man's requirements. Causation of diseases s based on superstition. Describing the theories of causation Dr. Walter C. Alvarza has remarked :

"Now it will be noticed in the examples which I have given of sent day medical superstition that disease is supposed to be due to e malevolence of the devils or of witches or wicked elves or of men o know enough of the magic arts to summon help from the powers darkness".

This belief of Westerners was gradually removed by the influence f Inonian and Egyptian school of thought. As a result of which the moral Pathology was adopted by the physicians of Pythogorean ool of Croton in the West.

It is evident from the early history that the Hindu Civilization ndated whole of Asia and part of Europe. Mr. Manning has observ-d "Later Greeks at Baghdad are found to have been acquainted with e medical works of the Hindus and have availed themselves of their dicaments". The healing art of Asia was carried to Western Countries and different places of Asia was much more misunderstood by e followers of other countries as they were not fully associated with e Aryan philosophy and religion. As such the ancient system of digenous medicine of Western countries and South Eastern countries e lacking in scientific and philosophical background. Moreover the political and social environment of Western countries could not provide virtuated broth for the growth of Aryan science and philosophy. Western civilization flourished and developed from the death of

Aristotle in 320 B. C. to the death of Galen in I99 A. D. and there came a rapid decline up to the 9th century. The new civilization arose out of the grave of the slave society and soon flowered in series of new inventions which transformed the economic basis of life. Political power came to the hands of a mercantile aristocracy and the mercantile aristocracy was actively engaged in promoting the rapid development of techniques on which their prosperiety depended. At a pole of society it ranged the workers or wage slaves, at the other the adminstrators, kings, priests and the nobles. Considering this aspect of development of science and technology Dr. J.D. Bernel has observed.," "Science hitherto remained in the hands of a particular exploiting class and how time after time this has been a factor holding of, frustrating or perverting its potential developments and use."

After the Industrial Revolution in the 18th century there came rapid change in the society as a result of which political power remained in the hands of the capitalists. Science was transformed into a vigorous commercial power. Medical science also followed the same course. Researches and inventions were carried for the prosperity of the capitalist society. Reviewing the progress of science and technology of the past two or three centuries Dr. Alduox Huxly has observed "Further more the results of disinterested researches were from the first applied in such a way that the upper and middle classes of all industrialised society formed themselves becoming steadily richer and richer".

Now-a-days science and scientists have become costly commodities. Professor Parson has given a statistical data how the Government of U. $. A. is suffering from the dearth of best scienstists and best scientists are preyering to serve under the commercial firms for higher earning.

On the other hand in Eastern countries nature was found extremely favourable to man's need and consequently nature was adored and propritiated.

Professor Stuart Paggott, reviewing the early Aryans life has mentioned :—"Like the Amurru in Mesopotamia the Aryans were people who had never known a city. Their way of life is clearly in the Rigveda and is far from being that of the complicated urban organisations traditional to the ancient centres of Oriental civilization".

Its background is an agricultural economy which includes the growing of grain crops but in which herds of cattle and flock of sheep and the goats are of prime importance following the Indo European tradition."

The Eastern civilization and culture developed under the agrico economical society in the above manner. Different sciences and technology also followed the same path on decentralised basis. Though in India due to the rigidity of caste system most of our technological knowledge remained in the hands of a particular class still the seers of Ayurved added much importance not to utilise medical science as merchandise. Punarbasu Atreya, one of the greatest authority on Ayurved has advised his followers. "Not for self, nor for any earthly gains, but the medical science is purely meant for the service of distressed humanity. One who merchandises with medicaments earns ashes instead of Gold." Further it can be evidenced from the Charak-Samhita how strict regulations were imposed upon the practitioners of Ayurved to keep the humanitarian view in the medical profession. But after the foreign domination in India the medical science of capitalist society began to flourish under the patronage of foreign Government.

True to Toynabe "As civilization grows old, there is a tendency for its ruling classes, its dominating minority, more and more to exploit the whole society". When the Britishers fully occupied India they tried to bring rapid changes in the social, cultural and economic structure of Indian life. Macaulay dreamt, "whether such a day will ever come I know not. When ever it comes it will be the proudest day in the English history." To cherish the above dream of Macaulay, Institutions of Indigenous system of medicine were closed by the Govt. and medical colleges were established in the year 1835 to meet the needs of the ruling class.

Hired scholars like Dr. Hass and others were recruited from the western countries to misinterpret Ayurvedic theories before the modern educated masses and to make them antagonistic of their own civilization and culture with the intention to exercise their policy of divide and rule.

As such the struggle between Ayurved and Allopathy remained as a manifestation of centralised and decentralised economy and foreign and national system of treatment.

Danger for Ayurved :—

The greatest danger for Ayurved is not so much due to Governmental apathy or lack of financial assistance as is due to the unbalanced view expressed by some of our intellectuals commanding public prestige and dignity. It is often stressed that research ought to be made in Ayurved on Allopathic lines for scientific test. I would prove latter how the above slogan was coined by the Allopaths to liquidate Ayurvedic system altogether. It is pity that the same slogan is being made by some of our intellegentia without much of serious thought and consideration.

Definition of Science :—

Some define science as a branch of knowledge dealing with facts or truths systematically arranged and showing the operation of general law. Commenting on the above conception Dr. I. I. Rabi (Noble prize winner 1944) Chairman of the Advisory Committee of the U. K. Atomic Energy Commission has observed, "this definition brings to my mind a solitaire player or head book keeper for a mail order concern. It is a partial truth which is also a caricature. Now does this definition account for the violence of the opposition to scientific discovery which still exists in the same quarters in our own age." Further Dr. Rabi has remarked, "scientific approach is not one way street. It may have dual or alternative approach towards the truth." Dr. Otto Frish one of the greatest Atomist of our age has remarked:—

"The physicist appears to be in the awkward position of a judge who is called upon to settle a quarrel between two parties each of whom has an equally convincing case and an equally large crowd of trustworthy witness." (Meet the Atoms).

The above illuminating illustration will prove how scientific approach may be more than one. Influenza can be cured according to the various theories of Allopathy and tridosa theory of Ayurved and the result is exhibitable. It is wonder to crave to standardise Ayurved on scientific lines. Dr. Kenneth Walker has very convincingly remarked, "It is never the great scientists but always the second or third grade scientists who regard the so called scientific path is the only path to truth." Thus the clamour of standardising Ayurved in modern lines is a misnomer of Allopaths who are eager to have dictatorial hold on the Government and the public.

Scientific Attitude :—As regards scientific attitude Dr. B. Mukhajee observed, "Science requires freedom, open mindedness and tolerance. The spirit of science teaches us that there may be no barriers to ones' quest for new knowledge, new experience and new truth. Science advances by bringing into view facts and phenomena previously unknown, science needs imagination and creative thinking based on observed facts, scientific attitude connotes a receptive frame of mind which is not hide bound or straight jacketed but which is sufficiently alert not to pass by natural phenomena and observations of others with scant courtesy." Shree Morarjee Desai commenting on the attitude of the Allopaths towards Ayurvedic system has remarked, "science does not mean an intolerence towards truth, we do not know. Science means, on the contrary a respectful approach towards the truth others may propound. Let therefore those who proclaim science as their God not have an unscientific attitude." To attack a system of which one is completely ignorant is most uncharitable. But this is often done by many of our socalled scientific friends. Dr. Nelson Annadles addressing the Indian science congress has vehemently criticised the undesirable trend of some of the modern scientists in the following lines. "The true test in all controversy is the inner feeling of the disputant so long as a man respects his opponents and feels no bitterness towards him. Controversy is a good thing but in scientific controversy there must be no reservation no quibling". The resolutions of the All India Medical Association and constant interefence of Allopaths in the Ayurvedic problems on the official level clearly exhibit their intolerance towards Ayurveda. The rise of Ayurveda in India have created great anxiety in the minds of Allopaths. The following extract of a letter of Dr. Klasa published in the "Ayurvedic letters" reveals the intrigue of the allopaths against Ayurveda in India and abroad.

"We intended to organise another lecture in St. Gall for which we had made publicity. In the morning of January 22nd 1953 the police of Hygine of St. Gall phoned me, the state chief physician personally told me "We the Doctors of St. Gall do not wish that any one in St. Gall learns that the sick can be cured through other means than through us. This lecture therefore was prohibited through the physician by the Police. Such intolerance clearly reveals the inner feeling of the socalled scientific Allopaths of India and abroad. Considering the above attitude of the Allopaths one is led to conclude in the light of what Burnel and Toynbee said that these are nothing but symptoms of class struggle.

Basic Science and Ayurved :—

Now-a-days good deal of stress is given on the introduction of Basic Sciences as premedical course of Ayurved. Though the above ration approved for Allopathic system of education, still the front rank leaders of the above system do not approve the so called basic sciences, as Dr. Alix Carl (Nobel Prize Winner in Surgery), Sir Charles Sherington (Nobel Prize Winner in Physiology) have very boldly expressed the failure of Chemistry, Physics and Biology in understanding the principles of human life.

Recently Dave Committee has also recommended inter-science as a pre-medical course for Ayurved. But the above view is not only disapproved by the Ayurvedic profession but also by learned scholars like Dr. Laxman Swamy Mudaliar, Vice Chancellor, Madras University. Dr. Mudaliar has warned that the recommendation of the Dave Committee would lower standards at the same time destroy Ayurved. Repeated stress given upon the introduction of Basic Sciences as a pre-medical course of Ayurved is a shrewed policy of some Allopaths to liquidate the system altogether. This is not merely an imaginary conception of Ayurvedist but admitted by many Allopaths. Dr. Karunakaran very boldly has exposed the evil intrigue of the official allopaths in the following lines while addressing the All-India Medical Association held at Trivandrum, "Others think that notwithstanding the temporary lowering of standards this is the easiest way to liquidate the indigenous systems. But most of us do not wish that Ayurved, our ancient heritage should disappear in that manner." The above statement strongly confirms the apprehension of the Ayurvedic Physicians.

It is true that one cannot deny the marvellous achievement of scientific progress of our time but it is not possible to fit the same into the structure of Ayurved. Ayurved is not merely a pathy or a healing art or science, but a harmonious and judicious combination of all pathies and soundly based on science, philosophy and religion having inter relation with physics, chemistry, biology, metalurgy, etc. As such Ayurvedists advocate—Ayurved is to be developed and taught on it's fundamental doctrine and modern scientific methods and technique may be adopted where it is necessary for the fragmentation, explanation of Ayurvedic theories and hypothesis.

Medical Science and humanity :—

Now the front rank teachers of allopathic system are craving for reorientation of their system on more humanitarian basis which in fact is the very basic principle of Ayurved. But it is a wonder that we are now asked to saddle back by leaving the humanitarian side in preference to the so called basic science at a time when recognition of the former is becoming increasingly strong day by day.

Jhon A. Ryle has observed "How shall the medical education of the future, without further complications of or addition to the carriculum provide a better scientific and general training for the student could ensure a more organised and intigrated approach to the clinical subject and in place of accumulations of memorised but poorly correlated details a wide appreciation of first principles? How in the process shall it help to develop a breed of Doctors better blessed with humanity and judgment with simultaneous gain rather than loss to their scientific sense." Lt. Col. M. Saha has remarked, "Western system of medicine is in urgent reform. Though impressive in the collection of facts it is still barren in ideas. There is too much of specification and too little of thoughtful practice."

Research :—

Once the so-called scientists proved which as false and useless and are now denouncing their so-called scientific validity and again accepting older truth.

Sri Havelock Charles, declared the Ayurvedic profession a set of fools who thought Filariasis to be "lovers promenading about during the moonlight ridiculing the Ayurvedic maxim that filariasis aggravates a t night and during sleep. Now the above notion of Charles is discarded and Ayurvedic truth is accepted.

Thousand and thousand years back the Physicians of Ayurveda advised to avoid the use of salt and fat in the treatment of anasaca and ascities which direction is only recently adopted by the Allopaths.

Due to want of proper training, culture, research and investigation in Ayurvedic lines many of us were influenced with phenomenal progress and newer discoveries of Allopathic system and have misinterpreted the Ayurvedic theories and hypothesis. Eminient scholars like late Mahamahopadhaya Gannath Sen and late Dr. D. N. Banerjee tried to establish मस्तिष्कं चेतनाधिष्ठानम् instead of हृदयं चेतनाधिष्ठानम् of Ayurvedic conception. Now the above modern conception is challenged by the psocotheopits in the following lines.

"The heart does not exist all by itself, isolated from the rest of the body, like the bit of chiken heart which Alix Carel kept alive for years. In human beings the heart is inseparable from the whole individual. If the whole individual is kept well the broken heart can be left to the poets." Many such illuminating illustrations of misnomer can be cited which invalidates the notion of scientific research. Considering such illustrations Lt. Col. M. Saha has observed, "In the past these principles have been regarded as being contradictory of the facts of science but in the light of more modern knowledge they appear to be generalisation of such a wide nature that they could now be accepted by us."

Surgeon General Sir Pardy Lukis, Director General of Indian Medical Services once commented :—

"Many of the socalled discoveries of recent years are merely rediscoveries of the facts known centuries ago to the ancient Indians.

Dr. Walter S. Kipnis has mentioned "Why allopathy should act as a standard of another healing art is beyond me. It has changed its medicines and its methods of treatment so often that it reminds me of the rapidly changing hemline of our womens' skirts. The rapid claims of to-day prove to be but the wishful hope of yesterday, but while the hope may be worthy the claim is in main false."

Hence the advocates of scientific research of Ayurveda should consider what would have been the fate of Ayurveda if the theories and hypothesis of Ayurveda would have followed the so called scientific path. The value of research cannot be denied. The Ayurvedic physicians also crave for research of their system but they do not consider research on modern lines could help the promotion of Ayurvedic system. Research of Ayurveda on Ayurvedic lines by its protagonists could only develop the system and there is no hesitation to take the help of science where it is necessary.

The present clamour of research in indigenous system of medicine of the Union Government is nothing but a stage name of Allopathic research.

The triumph of success over infectious diseases and surgical cases may be correct but the rapid growth of degenerating and wasting diseases is equally alarming. Srimati Bijoy Vardhan, Minister for Health Services, Government of Ceylon has rightly warned the medical profession while addressing the World Health Assembly, Zeneva :-

"You in the West have mastered the diseases of infection but are you not entering a new area of diseases of degeneration, perhaps the result of newer and more potential drugs ?"

"Although Allopathic system has advanced very much in the Western countries, it has utterly failed to eradicate the distress of diseased humanity".

The following Communique issued by the P.T.I., New York, dated the 28th November, 1956, reveals the miserable plight of the toiling masses of the U.S.A.

The Communique adds :- "At least one out of ten persons walking on the city streets, working at jobs, or living at homes in the U.S.A. is mentally ill."

In the week ended 13th December, 1952, 2484 deaths were registered in the administrative country of London. If the number of deaths in the week on account of the fog with the figures for a week during the great fog of 1873 and another during the Influenza epedemic of 1918 be compared certainly the death rates of 1952 stand increasingly greater.

Professor Henry S. Simms of the College of Physicians and Surgeans Colombia University has revealed a startling fact that ninety per cent of the deaths in the United States each year is the result principally of the progressive loss of resistance. This shows the failure of Allopathic system with its innumerable modern techniques, anti-biotics, Bacteriosides and potential drugs saving the sick from the jaw of death.

Further deleterious effect of the bacteriocide medicines on the delicate organs such as heart, kidney, liver and nerves is spectecular and treatment of the side effects becomes more expensive than the original disease itself and the improper use of such drugs makes the germs resistant to drugs. Ultimately the germs would be so very resistant that the so-called antibiotics will utterly fail to eliminate them if used in their highest concentration.

At the tenth meeting of the American Medical Association a warning was issued against random and indiscriminate use of Isonacotine Acid Hydrazide and its derivatives describing the awful effect at length (U.S.A. in Rav. 1952). The socalled clamour of search for as certaining the extent of action of the drugs on human system is also beyond the limitations of Chemistry and Bio-chemistry.

Describing the limitation of Chemistry, Dr. Flander Dunbar has observed, "Science has discovered no way to reverse the process by which milk turns sour."

The rapid claim of Allopathic system as regards the scientific discovery of causation of disease and bodily disorder is now in the main false. The great medical authorities like Sir William Oskar, Dr. Leonard Williams, Professor Godard, Professor Henry S. Simms are now thinking to revise their thinking.

Sir Willam Oskar has warned his profession that the fate of the tubercular depended more on what they had in their heads than what was in their chest. Dr. Flander Dundar has observed, "Of course, T.B. Germs are every where and always were. But we have to revive our thinking as to just why one person never gives the germ a chance and another seems to provide a virtuated broth culture in which they thrive".

A proper explanation to the ahove questions is still being awaited. Here Ayurved gives the most logical and appropriate explanation. "This is due to Dhatu equipoise or innate immunity" and recently the Allopaths have come to think in the above direction. Professor Henry S. Simms has observed, "But there are other types of immunity that have nothing to do with exposure to any specific germ or disease. They are known collectively as innate immunity, which, rather being specific against infections caused by bacteria as well as virus in general, also gives a high degree of protection against non-infectious diseases. As yet we know very little about these all important types of natural immunity. which appears to be part of an individual's constitutional make up transmitted by heredity.

Comparative etiological analysis of Ayurved and Allopathy in regard to disease causing agencies invading the body are diametrically different. Whereas Allopathic system regards the foreign agencies as sole cause of disease and bodily disorder, Ayurved considers an alternative approach emphasising on abnormality of Dhatu equipoise. The very symbolic conception of Ayurvedic etiology and its art of treatment has sustained the system in respect of perennial glory and tradition in the face of keen competition, rivalary, class, communal struggle and the continued apathy of both the foreign and national Governments.

The fundamental difference of Ayurved with Allopathy and other sciences line in the difference of approach towards truth. Whereas modern science approaches matter from the objective point of view, Ayurved approaches it from subjective point of view. With this difference of approach Ayurved and Allopathy have developed and have come in to existance. This does not mean that Ayurved and Allopathy are all out correct and all out complete in their approach. During these days Ayurved has suffered a lot due to the domination of foreign agencies and development of Allopathy is made more on the basis of commercial gain less on the basis of science, Philosophy or humanity.

Time may come to break the line of difference but time is not ripe for replacement or assimilation. Whether both should remain or one would survive will be decided when time will come to make a synthesis of compromise of matter and spirit, war and peace, subjective approach and objective approach and centralised economy and decentralised economy. Any form of over enthusiasm is to be discouraged and the Government should protect both with all sincerity. Ayurvedists should be allowed to enjoy a free atmosphere and its future should not be left in the hands of anti-Ayurvedic elements who are eager to liquidate the system out of existence. Ayurvedists are well aware of the defects and lacuna of their system and that can be eradicated by the protagonists of Ayurved but not by superimposition of contradictory doctrine.

---

*Reproduced from writer's speach delivered at the annual session of the Nikhilotkal Vaidya Sammelan held at Balasore in December 1957.

आयुर्वेद लोक

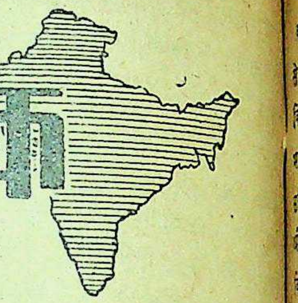

रूस में आयुर्वेद औषधियों के प्रति झुकाव

कलकत्ता—आयुर्वेदिक औषधियों के निर्माता साधना औषधालय (ढाका) के कलकत्ता स्थित कारखाने का रूसी वैज्ञानिकों के प्रतिनिधि मण्डल ने निरीक्षण किया।

साधना औषधालय के संचालक श्री नरेशचन्द्र घोष ने अतिथियों को निर्माण शाला के विविध भागों को दिखाया एवं उन्हें आयुर्वेदिक औषधियां भेंट कीं।

इस अवसर पर स्वागत का उत्तर देते हुये रूसी वैज्ञानिक प्रतिनिधि मण्डल के डा० इट्सकोव ने कहा कि रूस में आयुर्वेदिक औषधियों के प्रति झुकाव बढ़ रहा है और औषधियों को जांच के बाद प्रयोग में लाया जा रहा है।

हैदराबाद के स्वास्थ्य मन्त्री द्वारा आयुर्वेद पद्धति की सराहना

केन्द्र तथा राज्य सरकारों से आयुर्वेद को प्रोत्साहन देने का अनुरोध

हैदराबाद सरकारी आयुर्वेदिक कालेज के वार्षिक अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए स्वायत्तमन्त्री श्री ब्रह्मेन्द्र रेड्डी ने कहा—"इस समय देश में अंग्रेजी चिकित्सा प्रणाली पर बहुत रुपया खर्च किया जाता है। इस चिकित्सा-प्रणाली के लिए बहुत रुपया खर्च किया जा रहा है, किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि देश की अधिकांश जनता स्वास्थ्य-रक्षा के लिए आयुर्वेद पर ही निर्भर है। केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारों को आयुर्वेद पर ध्यान देना चाहिए। आयुर्वेद के वैज्ञानिक विकास पर जोर दिया जाना चाहिए। इस विद्यालय के विद्यार्थी जब शिक्षा प्राप्त कर लें तो उन्हें ग्रामीण जनता के साथ रह कर उनके हित-सम्पादन का संकल्प करना चाहिए।"

कालेज के आचार्य महोदय ने अपने स्वागत भाषण में कहा--"प्रथम पंचवर्षीय योजना में आयुर्वेद के लिए कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं हुआ दूसरी योजना में भी आयुर्वेद को कोई लाभ नहीं हो रहा है।

शिशु पक्षाघात की चिकित्सा में आयुर्वेद पद्धति से सफलता

स्वामी अचल नारायण की साधना का

आयुर्वेद-मर्मज्ञ स्वामी श्री अचलनाराय जी ने जोधपुर में बताया कि संसार की प्रमुख खतरनाक बीमारी पोलियो माईलिटि (शिशु पक्षाघात) के उपचार की चिकित् में आयुर्वेद-पद्धति से सफलता प्राप्त कर गई है। आपने कहा कि संसार में सबसे ख रनाक बीमारियां चार हैं—पोलियो, कैं टी० बी० और हृदयगति का अवरुद्ध होना मैं जब सन् १९३३ में लन्दन में था तब मैंने पोलियो की बीमारी के बारे में

फाल्गुन २०१४

री प्राप्त की और वहीं से आयुर्वेद-पद्धति है इसकी चिकित्सा के विभिन्न प्रयोग शुरू लिए, जिसमें अब सफलता प्राप्त हुई है। भारत सरकार के स्वास्थ्य सचिवालय के सचिव कर्नल श्री विश्वनाथम, अनुसंधान मन्त्री श्री सी० जे० पंडित तथा राजस्थान स्वास्थ्य विभाग के भू० पू० संचालक श्री एम० के० दिवाकर आदि की सलाह पर सरकारी अस्पतालों के कुछ रोगियों की इस पद्धति से चिकित्सा शुरू की गई और उसमें सफलता प्राप्त हुई। स्वामी जी ने रायबहादुर डा० ओंकारसिंह और स्वास्थ्य विभाग के मुख्य संचालक डा० चटर्जी के रोगियों की सफलता के प्रमाण पत्र भी बताये।

पत्रकारों के प्रश्नोत्तर में स्वामी जी ने बताया कि शुरू में चिकित्सा में १८ मास लग जाते थे, पर अब दो मास में रोगी बिल्कुल ठीक हो जाता है। पुराना रोग भी ठीक कर दिया गया है।

स्वामी जी को इस अनुसंधान की साधना में लगभग २५ वर्ष का लम्बा समय और लग भग पौने दो लाख की धनराशि व्यय करनी पड़ी है। तीन बार आपकी नेत्र-ज्योति भी पड़ गई पर आयुर्वेद पद्धति में गहरी निष्ठा के कारण आप उसी धुन में लगे रहे। इसी के परिणाम स्वरूप वह आज पोलियो जैसे घातक रोग की आयुर्वेदिक चिकित्सा में सफलता प्राप्त कर सके हैं।

आसव-अरिष्टों के प्रतिबन्धों पर असन्तोष

पठानकोट वैद्य मण्डल की कार्यकारिणी की बैठक में सरकार द्वारा आसव-अरिष्टों पर लगाये गये प्रतिबन्ध पर रोष प्रकट किया गया और मांग की गई कि प्रतिबन्ध को तत्काल उठाकर आयुर्वेद पद्धति के प्रति न्याय किया जाय।

एक अन्य प्रस्ताव द्वारा पंजाब सरकार से मांग की गई कि अहिफेन आदि खरीदने तथा रखने के लिए वैद्यों को सुविधा दी जाय।

नयी नियुक्ति

आयुर्वेदिक कालिज रायपुर (मध्यप्रदेश) में वैद्य पं० सोमदेव शर्मा सारस्वत, आयुर्वेदाचार्य, बी० ए०, ए० एम० एस०, रीडर के पद पर नियुक्त किये गये हैं। इससे पूर्व आप लखनऊ में राजकीय आयुर्वेद कालेज में थे।

यूनानी, आयुर्वेदीय वनौषधि और खनिज द्रव्य सस्ते मूल्य पर शुद्ध व उत्तम

हमारी दुकान से दुर्लभ केसर, कस्तूरी,
विविध प्रकार की काष्ठौषधि, मुक्ता,
सीप, शंख, शुद्ध शिलाजीत, सुवर्ण-
माक्षिक, प्रवाल, पारद, गंधक
आदि सब प्रकार के खनिज
तथा वनौषधि द्रव्य थोक
व परचून भाव पर प्राप्य

हमारी विशेषता-वास्तविक और शुद्ध सामान

विस्तृत विवरण के लिए पत्रव्यवहार करें और बड़ा सूचीपत्र मंगवायें।

तार का पता : आयुर्वेद फोन : ३१७९६

पता : शा० जादवजी लालूभाई एण्ड को०
२४५, कालबादेवी रोड़, बम्बई।

मध्य प्रदेशीय आयुर्वेद मण्डल की बैठक में महत्वपूर्ण प्रस्ताव पारित

वित्त मन्त्री श्री गंगवाल द्वारा आयुर्वेद की सराहना एवं सहयोग का आश्वासन

मध्य प्रदेशीय आयुर्वेद मण्डल की कार्यकारिणी की बैठक दिनांक १९-१-५८ रविवार को जायसवाल धर्मशाला भोपाल में श्री रामनारायण जी शास्त्री की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई। केन्द्रीय शासन द्वारा आसवारिष्ट पर लगाये गये एक्साइज टेक्स एवं प्रतिबन्धों का विरोध, कर्मचारी राज्य बीमा योजना में वैद्यों की नियुक्ति की मांग, शासकीय सेवा में नियुक्त वैद्यों के अधिकार एवं वेतन स्तर उच्च रखना, स्वतन्त्र आयुर्वेदिक डायरेक्टर नियुक्त करना, उज्जैन में शासन द्वारा प्रस्तावित आयुर्वेदिक आतुरालय का शीघ्र निर्माण करना एवं विक्रम विश्वविद्यालय में आयुर्वेदिक फैकल्टी खोलना आदि महत्वपूर्ण प्रस्ताव सर्वानुमति से स्वीकृत हुए।

इसी अवसर पर भोपाल नगर वैद्य परिषद् की ओर से, भोपाल कमिश्नरी के वैद्यों की एक गोष्ठी का भी आयोजन किया गया, जिसमें राजगढ़, शाजापुर, भोपाल, भेलसा, आदि स्थानों के वैद्यों ने भाग लिया। इस गोष्ठी में प्रांत के वित्त मन्त्री श्री मिश्रीलाल जी गंगवाल विशेष निमन्त्रित थे। माननीय वित्त मन्त्री जी ने आयुर्वेद की महत्ता की प्रशंसा करते हुए शासकीय दृष्टिकोण उपस्थित किया एवं पूर्ण सहयोग का आश्वासन दिया।

प्रताप आयुर्वेदिक फार्मेसी प्रा० लि० के

आशुफलप्रदआयुर्वेदीय इन्जैक्शन

हिमाचल के अंचल देहरादून में सरकार द्वारा लायसैन्स प्राप्त लेबोरेटरी में आयुर्वेदीय औषधों के मूलतत्वों का पूर्ण अनुसन्धान करने के उपरान्त प्राचीन और आधुनिक विज्ञानवेत्ता, सिद्धहस्त वैज्ञानिकों की देखरेख में इन्जैक्शन तैयार किये जाते हैं जो पूर्णतया निरापद विशुद्ध प्रामाणिक हो चुके हैं। प्रत्येक वैद्य का कर्त्तव्य है कि इन आशुफलप्रद पूर्णतया विशुद्ध एवं चमत्कारिक गुणकारी इन्जैक्शनों को प्रयोग में लाकर लाभ उठावें।

प्रताप आयुर्वेदिक फार्मेसी लि०

इन्जैक्शन ब्रांच

१६७ राजपुर रोड़, देहरादून (यू० पी०)

राजस्थान प्रदेश कार्य समिति का चतुर्थ अधिवेशन सम्पन्न

आयुर्वेद को प्रगति देने की योजना

जोधपुर (डाक से) राजस्थान प्रदेश वैद्य सम्मेलन की कार्य समिति का चतुर्थ अधिवेशन कविराज श्री माधवप्रसाद शास्त्री जोधपुर की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। राजस्थान में आयुर्वेद को क्रियाशील बनाने के उद्देश्य से श्री मिश्रीप्रसाद शास्त्री के संयोजन में एक समिति का निर्माण किया गया।

राजस्थान में शीघ्र ही आरम्भ होने वाले अनुसंधान कार्य को सम्पन्न करने के उद्देश्य से प्रदेश की कार्य समिति ने सरकार को एक नामावली सहित बोर्ड के गठन का सुझाव भेजा है ताकि आयुर्वेद के उत्तरदायित्व को ठीक प्रकार निभाया जा सके।

सरकारी रूप से समान वेतन स्तर को बनाने के लिये कविराज श्री नित्यानन्द शर्मा, बूंदी के संयोजन में समिति ने अपनी रिपोर्ट

प्रस्तुत की और वह कुछ संशोधनों के उपरान्त स्वीकार करली गई।

आयुर्वेद के उत्थान में कठोर परिश्रम की आवश्यकता

श्री लक्ष्मीकान्त पाण्डेय की चेतावनी

कलकत्ता के आयुर्वेदीय चिकित्सकों ने एक विशेष सभा में इस बात पर जोर दिया कि केन्द्रीय एवं प्रान्ताय सरकारें आयुर्वेदीय शिक्षा का स्वरूप तथा राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति में आयुर्वेद के स्थान सम्बन्धी नीतिको अविलम्ब घोषित करें।

इस सभा का आयोजन आयुर्वेद पत्रिका नागार्जुन के सम्पादक श्री लक्ष्मीकान्त पाण्डेय ने किया।

श्री पांडेय ने कहा कि समय आ गया है क्योंकि वैद्यों को आयुर्वेद के उत्थान सम्बन्धी कार्य में जुट जाना चाहिए और सामूहिक रूप में ऐसा प्रयत्न होना चाहिए जिससे आयुर्वेद सर्वसाधारण में अधिकाधिक लोकप्रिय बनता जाय।

उन्होंने कहा कि चिकित्सा का सर्वश्रेष्ठ आदान यह है कि रोगी को चिकित्सा से पूर्ण सन्तोष मिले और पूर्ण लाभान्वित रोगी ही हमारी प्राचीन चिकित्सा प्रणाली का सर्वश्रेष्ठ प्रचारक है।

श्री पाण्डेय ने कहा कि कुछ लोग आयुर्वेदीय चिकित्सा पद्धति एवं इसकी दवाओं को गुप्त रखने के आदी हैं, किन्तु हमें चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट आदि में पड़े अक्षुण्ण भण्डार को सर्वसाधारण एवं चिकित्सा जगत के सामने लाना होगा और ऐसा करने से जहां वैद्य समाज का लाभ है वहां भारत की ख्याति संसार में बढ़ेगी।

आयुर्वेद को व्यापक बनाने के सम्बन्ध में विचार प्रकट करते हुए श्री पाण्डेय ने कहा

नवरत्न रस

स्त्री, पुरुष और बालकों के लिये महौषधि

यह नवरत्न रस हीरा, पन्ना, मोती, माणिक आदि नौ रत्नों की भस्म और सुवर्ण आदि के संयोग से तैयार किया जाता है। शरीर में स्थित रस, रक्त आदि धातुओं की उत्तरोत्तर वृद्धि और पोषण तथा वीर्यधातु की शुद्धि और पुष्टि करना इसका विशिष्ट कार्य है। शुक्र स्थान को पुष्टि मिलने से वीर्य में स्थित निर्बलता दूर होकर नपुंसकता, क्लैब्य, ध्वजभंग, वीर्यपात, स्वप्नदोष आदि नष्ट होते हैं और शरीर नवयौवन प्राप्त करता है।

यह गर्भावस्था में पांडु, रक्त की कमी, हाथ और पैरों में शोथ तथा श्वास आदि रोगों की उत्पत्ति को रोकता है। अल्पसत्वयुक्त प्रजा होती हो या बालक जन्मते ही मर जाता हो तो नवरत्न रस प्रथम मास से प्रसव काल तक सेवन कराने से प्रसव सखपूर्वक होता है। बालक भी तन्दुरुस्त जन्मता है। इसके सेवन से अकाल प्रसूति और रक्तस्राव नहीं होता।

इसके उपरांत किसी भी कारण से पांडु, क्षय, जीर्णज्वर, कास, श्वास, वातव्याधि, मधुमेह, रक्तस्राव, मगज की निबलता, वीयविकार आदि में बाल, वृद्ध, युवा, स्त्री, पुरुष सबको नवरत्न रस देने से शक्ति प्राप्त होती है। निरोगी शरीर के लिये यह रसायन है रोगी शरीर के लिये औषध।

मूल्य २८ गोली का रु. ५), तोला १०)

ऊंझा फार्मेसी ऊंझा

ऊंझा (उ० गु०).

कि यह परमावश्यक है कि वैद्यों के संगठन हों। तभी आयुर्वेद राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति का स्थान ग्रहण कर सकेगा।

दीक्षांत समारोह सम्पन्न

राजपूताना आयुर्वेदिक व यूनानी तिब्बी कालेज के ३१ वें वर्ष का दीक्षान्त समारोह जयपुर में श्री देवीशंकर जी तिवारी की अध्यक्षता में समारोह पूर्वक सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर आपने छात्रों को सम्बोधित करते हुए कहा कि भारतीय चिकित्सा की प्रगति सत्य एवं लगन से ही पूर्ण हो सकती है। किसी संस्था की प्रगति उसकी आर्थिक दशा की अपेक्षा उसके कार्यकर्त्ताओं पर निर्भर है।

इस समारोह में ४२ छात्रों को आयुर्वेद में तथा ११ छात्रों को यूनानी में उपाधियाँ दी गईं।

इसी अवसर एक आयुर्वेदिक व तिब्बी प्रदर्शनी का भी आयोजन किया गया था।

आयुर्वेद अनुसन्धानशाला का उद्घाटन

केन्द्रीय आयुर्वेदिक अनुसन्धान शाला, राजस्थान का उद्घाटन राजस्थान सरकार के स्वास्थ्य मन्त्री श्री बद्रीप्रसाद जी गुप्ता की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर आयुर्वेद विभागीय परीक्षाओं का दीक्षान्त समारोह भी हुआ।

आयुर्वेद प्रदर्शनी का उद्घाटन श्री भीखाभाई उप-स्वास्थ्य मन्त्री राजस्थान सरकार के कर कमलों से हुआ।

इस समारोह में वाद-विवाद प्रतियोगिता, क्रीड़ा प्रदर्शन, कवि सम्मेलन आदि सांस्कृतिक कार्यक्रम भी आयोजित किये गये।

विद्यापीठ मन्त्री पं० सीताराम मिश्र का सम्मान

बड़ागांव वाराणसी। नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ के मन्त्री आयुर्वेद मार्तण्ड श्री सीताराम मिश्र आयुर्वेदाचार्य, श्री बलदेव आयुर्वेद महाविद्यालय, बड़ागांव, वाराणसी के अनुरोध पर उसके निरीक्षण के लिए यहां पधारे। विद्यालय की प्रगति एवं सुव्यवस्था को देखकर आप बहुत ही प्रभावित हुए। विद्यालय की ओर से उनका अभिनन्दन किया गया। आचार्य शिवमोहन अग्रवाल ने मन्त्री

"मार्तण्ड के चमत्कारी इन्जेक्शन्स"

मार्तण्ड फार्मेस्युटिकल्स भारत की एक मात्र सर्वसाधनसम्पन्न एवं इलेक्ट्रिक आटोमेटिक मशीनों द्वारा सुसज्जित लैबोरेट्री है, जिसमें सरकार द्वारा प्राप्त लाइसेंस के आधीन, सरकार द्वारा क्वालिफाइड कैमिस्टों की देख-रेख में इन चमत्कारी तथा फौरन असर करने वाले आयुर्वेदिक इंजेक्शनों का निर्माण पूर्ण वैज्ञानिक तरीके पर होता है। निरापद तथा स्वदेशी चिकित्सा के लिये इन अपने "मार्तण्ड" के इंजेक्शनों को उपयोग में लाइये, इनके आशुगुणकारी, निरापद और पूर्णलाभकारी होने की हम गारंटी देते हैं। अतः इस बार हमारे— चमत्कारी इंजेक्शनों की भी परीक्षा कीजिये। आपको पूर्ण संतोष एवं आयुर्वेद पर गर्व होगा। मार्तण्ड का बड़ा सचित्र सूचीपत्र मंगाकर आर्डर दीजिये।

मार्तण्ड फार्मेस्युटिकल्स, बड़ौत, एस० एस० रेलवे, (मेरठ) यू० पी०।

दय का स्वागत करते हुए कहा कि हम आयुर्वेद की सेवा के लिए सतत् प्रयत्नशील है एतदर्थ अन्वेषण एवं ग्रंथ प्रकाशन कार्य क्षित है। श्री मिश्र जी ने विद्यापीठ के र्यों पर प्रकाश डाला ।

इस अवसर पर श्री मिश्र जी को अभिनन्दन पत्र भी दिया गया ।

हासम्मेलन का मान्य सदस्य बनाने के लिए श्री मिश्र का अनुरोध

आयुर्वेदिक इंजक्शन भवन पानापुरा (बिहार) के अध्यक्ष वैद्य ब्रजनन्दन मिश्र ने भारत के समस्त वैद्य बन्धुओं से अखिल भारतीय महासम्मेलन के सदस्य बनने का अनुरोध किया है। इसके साथ ही आपने महासम्मेलन के सदस्य बन्धुओं से आग्रह किया है कि प्रत्येक सदस्य जागरूक होकर इस दिशा में क्रियात्मक पग उठायें और कम से कम पांच सदस्य अवश्य बनायें।

हम श्री मिश्र जा के आभारी हैं। मिश्र जी स्वयं इस दिशा में सतत् प्रयत्नशील हैं और अब तक बहुत से वैद्य बन्धुओं को महासम्मेलन का मान्य सदस्य बना चुके हैं और बना रहे हैं।

शोक समाचार

शकूर बस्ती (दिल्ली) निवासी कविराज भारतभूषण के पिता श्री स्वामी सत्यानन्द जी का १४ जनवरी १९५८ को स्वर्गवास हो गया।

श्री स्वामी जी पंजाब प्रान्तीय हिन्दू महासभा (लाहौर) के मन्त्री और आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (लाहौर) के प्रमुख कार्यकर्ता थे।

पत्रिका परिवार स्वामी जी के निधन पर हार्दिक वेदना प्रकट करता है और परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करता है कि दिवगंत आत्मा को शांति दे तथा कविराज जी एवं संतप्त परिवार को दुःख सहन करने की शक्ति प्रदान करे।

आसवारिष्टों पर प्रतिबन्धों का विरोध

मशरक थानान्तर्गत रसौली (सारन) के स्थानीय वैद्यों की एक सभा श्री ब्रजनन्दन मिश्र, अध्यक्ष आयुर्वेदिक इंजैक्शन भवन, पानापुर के सभापतित्व में सम्पन्न हुई जिसमें भारत सरकार द्वारा आसवारिष्टों पर लगाये गये प्रतिबन्धों का घोर विरोध किया गया तथा सरकार से उन्हें हटाने की मांग की गई।

एक अन्य प्रस्ताव द्वारा आयुर्वेदिक सफल औषधियों को एलोपैथी में सम्मिलित करने का विरोध किया गया।

आयुर्वेद विश्वभारती सरदारशहर के प्रिन्सिपल

आयुर्वेद विद्यापीठ के भूतपूर्व अध्यक्ष रतनगढ़ निवासी पं० मणिराम शर्मा भिषगाचार्य, ग्राम ज्योतिकेन्द्र सरदार शहर स्थित आयुर्वेद विश्वभारती के प्रिन्सिपल नियुक्त हुए हैं।

निखिलोत्कलवैद्यसम्मेलनस्य ऊनविंश वार्षिकमधिवेशनम्

स्थानं बालेश्वरपत्तनम्

विगते दिसम्बरमासस्य २३ तमे दिवसे निखिलोत्कल-वैद्य सम्मेलनस्य ऊनविंशं वार्षिकमधिवेशनं सुमहता समारोहेण उत्कलराष्ट्रस्य प्रधानसचिवानां डाक्टरविरुद विभू-

षितानां श्रीहरेकृष्णमहताबमहोदयानामधिपतित्वेन बालेश्वरनगरे सुसम्पन्नमासीत् । विभिन्नमण्डलेभ्यः पञ्चशताधिका वैद्यप्रतिनिधयः समवेता अभवन् । प्रातर्नवमहोरायां भैषज्यप्रदर्शिनी उत्कलराष्ट्रस्य परिवहनमन्त्रिभिः श्रीनीलमणिरावुतरायमहोदयैरुद्घाटिता समपद्यत । प्रदर्शिन्यां प्रदेशे समुपलभ्यमानाः उच्चावचा वृक्षवनस्पतयो बहुविधानि च भेषजानि स्थानमलभन्त । चीनदेशस्य चिकित्सापद्धतिप्रकारः बहुविधैः पुस्तकैः मानपत्रैश्चित्रपटैश्च सह प्रदर्शितः । प्रदर्शिनीमुद्घाटयद्भिर्मन्त्रिमहोदयैरुत्कलराजकुलस्य मुख्यमन्त्रिणामात्मनश्चायुर्वेदसमुन्नतये हार्दिकमभिलषितं प्रकटितमासीत् । विषयनिर्वाचनसभा प्रातर्मध्याह्ने च सम्मिलिता । अष्टौ प्रस्तावान् स्वीकृतवती । अपराह्ने विषयनिर्वाचनसभां मुख्यमन्त्रिणः समलं चक्रुः प्रस्तावांश्च परिशीलयामासुः ।

सायं पञ्चमहोरायां फकीरमोहनकलाशालायाः सुसज्जितायां कक्षायां सम्मेलनं प्रारब्धम् । अभ्यर्थनासमितेरध्यक्षाः कविराजश्री अनिरुद्धनन्दमहाभागाः समागतान् पारिषदानभिनन्द्य, सम्मेलनस्य साफल्याय बालेश्वरवासिनामुत्साहं त्यागं च बहुधा प्राशंसन् । तैर्भाषणावसरे आयुर्वेदस्य भारतीयसंस्कृत्यै सुमहदवदानं, राजकुलस्य चौदासीन्यं प्रदर्श्य आयुर्वेदस्य समुन्नतये स्वीयां योजनामुपास्थापयन् । सम्मेलनस्य युग्मसम्पादकैः श्री कामाक्षीप्रसादशर्मभिः वार्षिकं विवरणं पठितम् । तदवसरे सम्मेलनस्य कार्यक्रमं राजकुलस्य च प्रतिश्रुतावप्यौदासीन्यं समालोचयत् । आयुर्वेदस्य समुन्नतये, दीयमानस्य विपुलस्य अर्थजातस्य परिचालनाया नियन्त्रणाभावेनासदृशमुपयोगं प्रादर्शियत् । सम्मेलनस्योपसभापतिभिः श्रीकृष्णचन्द्रत्रिपाठिशर्मभिः आयुर्वेदस्य विभिन्ना दिशः पर्यालोच्य, आयुर्वेदस्य समुपबृंहणाय वैद्यमहोदयाः संघबद्धा भवितुमामन्त्रिताः ।

सम्मेलनस्य मुख्या अतिथयो वङ्गदेशस्य विशिष्टाः कविराजाः श्री इन्दुभूषणसेनमहाभागाः केन्द्रराजकुलेन आयुर्वेदस्योन्नतिकल्पनाव्याजने कथं ध्वंसं साधयितुमुपक्रान्तं, तत्प्रदर्श्य मिश्रचिकित्सापद्धत्याः इदानीमादृताया आयुर्वेदगवेषणायाश्च विषमपरिणामत्वं च विवृत्यायुर्वेदस्योन्नतिमायुर्वेदधोरण्यैव साधयितुमुपदिदिशुः । उपसंहारे च प्रधानमन्त्रिणां श्रीहरेकृष्णमहताबमहोदयानां सहयोगेनायुर्वेदस्य समुन्नतिमाशशंसुः ।

सम्मेलनस्य साधारणसम्पादकाः कविराज श्रीवनमालिदासमहोदयाः केन्द्रराजकुलस्य आयुर्वेदस्योन्नतये क्रियमाणं कार्यजातं व्यवसायोन्मुखं, साम्प्रदायिकं, श्रेणीसंघर्षात्मकं च व्याख्याय समालोचितवन्तः । विभिन्नानामाचार्यवर्याणां भारतीयानां वैदेशिकानां चोच्चावचा उक्तीः समुद्धृत्य आयुर्वेदस्य वैशिष्ट्यमुपादेयतां च समसाधय । वैदेशिकचिकित्सानिर्विशेषमायुर्वेदाय समुचितं स्थानं दातुं राजकुलस्य प्रादेशिकस्य कैन्द्रिकस्य च दृष्टिमाचकृषुः ।

अखिलायुर्वेदमहामण्डलस्य सभापतिभिः श्री अनन्तत्रिपाठिशर्मभिः कथं वैदेशिकचिकित्सकानां परिचालनेन नियन्त्रणेन चायुर्वेदशिक्षायाश्चिकित्सायश्चावनतिर्भवति, अयथातथं च राजकीयमर्थजातं व्ययीक्रियते, वैमातृकभावश्च प्रदर्श्यते, एतत्सर्वं सभापतिमहोदयानां निर्बन्धेन संस्कृतभाषया समुपवर्णितम् ।

अन्ते सभापतयः श्री हरेकृष्णमहताबमहोदयाः आयुर्वेदस्य समुन्नतये युक्तितर्का-

शामनावश्यकतां प्रतिपाद्य राजकुलस्य दृष्ट्या सर्वा अपि चिकित्साः समासेव प्रतिपत्तिमर्हन्ति, न आयुर्वेदस्योन्नतौ राजकुलस्यौदासीन्यमुचितमिति प्रत्यपादयन् । स्वयं चोत्कले आयुर्वेदस्य परिचालनार्थं स्वतन्त्रं विभागं स्थापयितुं, आयुर्वेदशिक्षायाः चिकित्सायाश्च प्रोत्साहं साधयितुमुदघोषयन् । राजकुलं वैद्येभ्यः चिकित्सकेभ्यः कुष्ट-राजयक्ष्मादिरोगाणामुपशमाय प्रयतमानेभ्यः आर्थिकीं सहानुभूतिं दास्यतीति प्रत्यपादय । न चिराच्च पुरीपारलाखेमण्डी बलाङ्गिरसंस्कृतकलाशालासु आयुर्वेदविभागे वैषयिकशिक्षायाः समुपबृंहणार्थं चिकित्साकेन्द्राणि स्थाप्यन्त इति वज्रनिर्घोषसममुदघोषन् ।

तेषां घोषणाः पण्डितकविराजश्री अनन्तत्रिपाठिशर्मभिः परमभिनन्दिताः, सर्वे चोपस्थिताः धन्यवादैः साकं सभाजिताः ।

खेद-प्रकाश

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन की १९५७ वर्षीय मतदाता सूची में माननीय श्री पं० जगन्नाथ प्रसाद जी शुक्ल, प्रयाग, का नाम सम्बन्धित कर्मचारी की भूल से प्रकाशित होने से रह गया है जिसका हमें हार्दिक खेद है । श्री शुक्ल जी का एक पत्र हमें इस सम्बन्ध में मिला था और उसका समाधान कारक उत्तर कार्यालय से यथासमय भिजवा दिया गया था, तिस पर भी कुछ महानुभाव इस साधारण सी भूल को हमारी दलीय कूटनीतिज्ञता का नाम दे रहे हैं तथा इसका उपयोग अपने विरोधी प्रचारार्थ कर रहे हैं, जो उचित नहीं है ।

सभी सदस्य महानुभावों की सूचनार्थ हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि श्रद्धेय श्री शुक्ल जी का नाम मतदाता सूची में से जानबूझ कर नहीं हटाया गया । श्री शुक्ल जी महासम्मेलन के भूतपूर्व सभापति होने के कारण महासम्मेलन के विशिष्ट सदस्य हैं—फिर भी ५) रु० मान्यसदस्यता शुल्क के रूप में वे प्रतिवर्ष भेजा करते हैं । इसी कारण मतदाता सूची में भी उनका नाम मान्य सदस्यों की श्रेणी में प्रकाशित होता था । गतवर्ष क्योंकि उनका सदस्यता शुल्क ३० जून तक कार्यालय में नहीं पहुँचा था, अतः सम्बन्धित कर्मचारी ने सामान्य नियमानुसार उनका नाम मान्य सदस्य मतदाताओं की श्रेणी में प्रकाशित नहीं किया, किन्तु ऐसा करते समय उसे यह स्मरण नहीं रहा कि श्री शुक्ल जी भूतपूर्व सभापति होने के कारण विशिष्ट सदस्य भी हैं और नियमानुसार उनका नाम विशिष्ट सदस्यों की सूची में दिया जाना चाहिए । अतः श्री शुक्ल जी का नाम विशिष्ट सदस्यों की श्रेणी में भी प्रकाशित होने से रह गया । यह एक मात्र निर्दोष भूल ही है, जानबूझ कर किया गया कार्य नहीं। इस भूल की ओर कार्यालय का ध्यान पहले ही चला गया था और उसका अपेक्षित सुधार कर लिया गया था । यह भूल केवल मतदाता सूची में ही हुई है, सदस्य सूची में नहीं । सदस्य सूची में श्री शुक्ल जी का नाम पूर्ववत् स्थिर है । मतदाता सूची केवल सभापति चुनावों में मतदानार्थ ही प्रकाशित की जाती है । वर्तमान में विद्यापीठ सभापति चुनाव के लिए जो मतदान कराया जा रहा है उसका मत-पत्र श्री शुक्ल जी की सेवा में भी यथासमय भेजा जा चुका है ।

फिर भी उक्त भूल के लिए हम हार्दिक खेद प्रकट करते हैं और श्री शुक्ल जी के समक्ष क्षमाप्रार्थी हैं । श्री शुक्ल जी आयुर्वेद महासम्मेलन के प्रमुख महारथी हैं और उनके प्रति हमारी पूर्ण श्रद्धा तथा सम्मान बराबर बना हुआ है ।

४३वें अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन तथा तदन्तर्गत शिक्षासम्मेलन के

सभापतियों का चुनाव

महासम्मेलनाध्यक्ष के पद पर वैद्यराज श्री अनन्त त्रिपाठी शर्मा पुनः निर्विरोध निर्वाचित

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के ४३वें वार्षिक अधिवेशन तथा तदन्तर्गत आयुर्वेद शिक्षासम्मेलन (विद्यापीठ) के सभापतियों के चुनाव के लिए नियमानुसार महासम्मेलन की प्रान्तीय शाखाओं से पांच-पांच नाम प्रस्तावित कराये गये, जिन में बहुमत प्राप्त करने वाले महानुभावों के नाम निम्नलिखित हैं :—

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन—

१—वैद्यरत्न श्री पं० शिवशर्मा, बम्बई	१२	प्रदेश सम्मेलनों से प्रस्तावित
२—वैद्यराज श्री पं० अनन्त त्रिपाठी शर्मा, बरहामपुर	१०	,, ,, ,,
३—वैद्यराज श्री वामनराव दीनानाथ, बम्बई	८	,, ,, ,,
४—वैद्य श्री बाबूराम शर्मा मिश्र, हापुड़	७	,, ,, ,,
५—वैद्य श्री वाई पार्थनारायण पण्डित, बंगलौर	५	,, ,, ,,

नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ—

१—वैद्य लक्ष्मीशंकर रामकृष्ण शास्त्री, अहमदाबाद	७	प्रदेश सम्मेलनों से। प्रस्तावित
२—वैद्य श्री हरिदत्त शास्त्री, बम्बई	७	,, ,, ,,
३—वैद्य श्री रामगोपाल शर्मा, बम्बई	६	,, ,, ,,
४—कविराज श्री उपेन्द्रनाथ दास, दिल्ली	५	,, ,, ,,
५—कविराज श्री प्रभाकर चटर्जी, कलकत्ता	५	,, ,, ,,
६—वैद्य श्री गुलराज शर्मा मिश्र, नागपुर	५	,, ,, ,,

महासम्मेलन सभापति का निर्विरोध निर्वाचन

महासम्मेलन के सभापति-पद के लिए प्रस्तावित महानुभावों में से वैद्यरत्न श्री पं० शिवशर्मा जी द्वारा साधारणतया तथा वैद्य श्री वामनराव दीनानाथ, वैद्य श्री वाई पार्थनारायण पण्डित तथा वैद्य श्री बाबूराम मिश्र द्वारा वर्तमान महासम्मेलनाध्यक्ष वैद्यराज श्री अनन्त त्रिपाठी जी शर्मा के पक्ष में अपने-अपने नाम वापिस ले लिए जाने के कारण वैद्यराज श्री पं० अनन्त त्रिपाठी जी शर्मा पुनः महासम्मेलन के निर्विरोध सभापति निर्वाचित हुए हैं।

फाल्गुन २०१४

विद्यापीठ सभापति-पद के लिए संघर्ष

नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ के सभापति-पद के लिए प्रस्तावित नामों में तीन महानुभावों के लिए एक से प्रस्ताव आने के कारण पांच के स्थान पर ६ नाम घोषित किए गए। इनमें से श्री लक्ष्मीशंकर रामकृष्ण जी शास्त्री ने अपना नाम साधारणतया वापिस ले लिया है। श्री पं० हरिदत्त शास्त्री, श्री रामगोपाल शर्मा तथा श्री पं० गुलराज शर्मा ने अपने-अपने नाम कविराज श्री प्रभाकर चटर्जी के पक्ष में वापिस ले लिए हैं। इस प्रकार विद्यापीठ सभापति-पद के लिए अब कविराज श्री प्रभाकर चटर्जी, कलकत्ता, तथा कविराज श्री उपेन्द्रनाथ दास, दिल्ली, चुनाव क्षेत्र में रह गये हैं। महासम्मेलन के माननीय मतदाताओं को इन दो महानुभावों में से ही एक को विद्यापीठ सभापति-पद के लिए चुनना है। महासम्मेलन कार्यालय से इस अन्तिम चुनाव के लिए मत-पत्र १० मार्च को मतदाताओं की सेवा में प्रेषित किए जा चुके हैं जिनकी वापसी की अन्तिम तिथि २५ मार्च १९५८ है। इस तिथि के पश्चात् प्राप्त मत-पत्र गणना में नहीं लिए जायेंगे और न ही उन मत-पत्रों को गणना में लिया जायेगा जो कि उनकी वापिसी के लिए कार्यालय से प्रेषित बी० आर० पी० लिफाफे के अतिरिक्त अन्य लिफाफे में प्राप्त होंगे।

वामनराव दीनानाथ वैद्य
प्रधानमन्त्री
अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन

महर्षि चरक का अपूर्व योग

* ब्राह्म-रसायन *

मानसिक शक्ति, स्फूर्ति, उत्साह, बुद्धि, स्मृति ओज
एवं दीर्घायुष्य प्राप्ति के लिए

अत्युत्तम कल्प है।

नवशक्ति आयुर्वेदालय (प्रा०) लि०
भुसावल - जबलपुर - नागपुर

४३वें वार्षिक अधिवेशन की तिथियों में परिवर्तन का प्रस्ताव

अ०भा०आयुर्वेद महासम्मेलन के ४३वें वार्षिक अधिवेशन के लिए स्वागत-समिति ने पहिले ६,७ व ८ अप्रैल की तिथियों का प्रस्ताव किया था जिन्हें श्री महासम्मेलनाध्यक्ष जी ने स्थायी समिति के सदस्य महानुभावों की सेवा में एक पत्र दिनाँक १२-२-५८ द्वारा विचारार्थ भेजा था। इन तिथियों के पक्ष-विपक्ष में स्थायी समिति के सदस्य महानुभावों की ओर से कार्यालय में मत प्राप्त हुए हैं। विपक्ष में प्राप्त कुछ पत्रों में यह मत व्यक्त किया गया है कि किसी विषय पर भी पत्रों द्वारा स्थायी समिति की सम्मति प्राप्त करने का नियम नहीं है और एतदर्थ स्थायी समिति का एकत्रित होना आवश्यक है। इसी बीच स्वागत समिति ने भी समय की अल्पता के कारण पूर्व प्रस्तावित तिथियों में परिवर्तन की माँग की है और अब ४,५ व ६ मई की तिथियां प्रस्तुत की हैं। इन तिथियों की स्वीकृति पर स्थायी समिति के आगामी २५ मार्च १९५८ को बम्बई में सम्पन्न होने वाले अधिवेशन में नियमानुसार विचार होगा। स्वीकृत तिथियों की सूचना अप्रैल मास की पत्रिका द्वारा यथासमय दी जायेगी।

अधिवेशन के लिए प्रस्ताव भेजें

इस बीच महासम्मेलन के वे सदस्य महानुभाव जो अधिवेशन में प्रस्ताव प्रस्तुत करना चाहते हैं, अपने-अपने प्रस्ताव २६ मार्च तक महासम्मेलन कार्यालय में अवश्य पहुंचा दें। प्रस्ताव सुस्पष्ट एवं शुद्ध भाषा में लिखे होने चाहिएं।

रेलवे कन्सेशन सर्टिफिकेट

सदस्य महानुभावों को यह ज्ञात ही है कि महासम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन में सम्मिलित होने वाले सदस्यों के लिए रेलवे बोर्ड ने एक ओर के किराए से दोनों ओर की यात्रा की सुविधा दी हुई है। एतदर्थ आवश्यक सर्टिफिकेट जिसके आधार पर कन्सेशन टिकट प्राप्त किया जायेगा, सम्बन्धित सूचनाओं के साथ अप्रैल मास की पत्रिका द्वारा सभी सदस्य महानुभावों की सेवा में भेजा जायेगा। वर्तमान सदस्यों के अतिरिक्त अन्य जो वैद्य-बन्धु अधिवेशन में उपस्थित होना चाहें उन्हें शीघ्र ही महासम्मेलन का सदस्य बन जाना चाहिए ताकि उन्हें भी यह सुविधा मिल सके। जो महानुभाव अप्रैल मास की पत्रिका पोस्ट होने तक सदस्य बन जायेंगे उन्हें पत्रिका द्वारा कन्सेशन सर्टिफिकेट यथासमय पहुँच जायेगा। पत्रिका ७ अप्रैल को पोस्ट की जायेगी।

वामनराव दी० वैद्य
प्रधानमन्त्री
अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन

दिल्ली
ता० १४-३-५८

४३ वां अखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद महासम्मेलन, दिल्ली

आवश्यक सूचनायें एवं कार्य-क्रम

नीय वैद्य बन्धु,

यह सूचित करते हुए हमें परम हर्ष है कि अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का ४३वां धिवेशन भारत की राजधानी दिल्ली में ४,५ तथा ६ मई १९५८ को होना निश्चित आ है। अधिवेशन का कार्य-क्रम इसी अंक में अन्यत्र प्रकाशित है।

दिल्ली का भारत के इतिहास में एक विशेष महत्वपूर्ण स्थान है। इसने अनेक म्राज्य तथा महासाम्राज्यों के उत्थान एवं पतन देखें हैं। विविध संस्कृति की जातियों के जनैतिक नेताओं, कला-विशेषज्ञों तथा वैज्ञानिकों का यह विशेष आकर्षण केन्द्र रहा है। हां अनेक क्रान्तियां उत्पन्न हुईं और उन्होंने यहाँ से प्रसार पाकर समस्त भारत को प्रभा-वित किया है। आयुर्वेद के लिए यह क्रान्ति का युग है। आयुर्वेद के उद्धारक महारथियों ो भी इसी नगर से इस क्रान्ति की घोषणा कर देनी है। इसके लिए अब अवसर भी पयुक्त है।

अब तक भारत सरकार तथा देश के विशिष्ट जन-समुदाय की आयुर्वेद की ओर क्षा दृष्टि रही है। पाश्चात्य शिक्षा से प्रभावित व्यक्ति आयुर्वेदीय चिकित्सा पद्धति को वैज्ञानिक ही कहते रहे हैं। इसकी प्रतिक्रिया क्रान्तिकारी विचार एवं कार्यों में होनी हिए। इसके लिए यही समय है, समस्त आयुर्वेद प्रेमियों को इस समय सब प्रकार का मनस्य तथा आलस्य त्यागकर, संगठित एवं कटिबद्ध होकर, एक मत होकर, भारत की दिशाओं में क्रान्ति का नारा लगा देना चाहिए, जिसके महानाद में कुछ समय के लिए य आन्दोलनों का स्वर विलीन हो जाय। इस समय आयुर्वेद के पुनर्जीवन तथा आयुर्वेदोप-जीवियों के जीवन-मरण का विकट प्रश्न है। अतः इसका उत्तर सुदृढ़ भाषा तथा दृढ़तर दय के अटल संकल्प के साथ देना होगा।

इस सम्मेलन में सर्वप्रथम और सर्वोपरि अपना कर्त्तव्य क्रियात्मक रूप में पालन करने के लिए एवं जिस विज्ञान के आश्रय में हमारा पालन हो रहा है उसके प्रति अपने उत्तर-यित्व के निर्वाहार्थ शीघ्राति शीघ्र इस विज्ञान के प्रकाश तथा विकास के लिए प्रयत्नशील होकर अ० भा० आयुर्वेद विश्वविद्यालय की नींव डालनी है।

द्वितीय कार्य सरकार को देशी चिकित्सा पद्धति के केन्द्रीय तथा प्रादेशिक डायरेक्टो-रेट स्थापित करने के लिए प्रेरित करना है।

स्वागत समिति का यह दृढ़ मत है कि आज की विकट परिस्थिति में अन्य सब प्रस्तावों को छोड़ कर उक्त दो विषयों पर अपनी शक्ति केन्द्रित करनी चाहिए। अतएव ारतीय वैद्यों से सादर, सविनय, सप्रेम तथा सानुरोध निवेदन है कि सम्मेलन को सफल बनाने के लिए अधिकाधिक संख्या में सम्मिलित होकर उक्त विषयों को विशेष महत्व देकर वसर अपने विचार प्रकट करने की कृपा करें।

महासम्मेलन प्रतिनिधि एवं दर्शकों के लिए आवश्यक सूचना

दिल्ली में निवास स्थान की समस्या कुछ विकट होते हुए भी प्रतिनिधियों के ठहरने की व्यवस्था स्वागत समिति की ओर से की जायगी।

दर्शक रूप में उपस्थित होने वाले महानुभावों से प्रार्थना है कि वे अपना ठहरने का प्रबन्ध स्वयं करनें का कष्ट करें। स्थान के संकोच के कारण हम इतने बड़े जनसमूह को ठहराने में असमर्थ हैं। अतएव बाहर से आने वाले जो दर्शकगण अपने मित्रों या सम्बन्धियों के पास ठहरने की व्यवस्था न कर सकें वह कृपा कर हमें शीघ्र सूचित करें, जिससे कि हम उनके ठहरने की व्यवस्था कर सकें। यथासमय सूचना न मिलने पर सहसा स्थान का प्रबन्ध करना हमारे लिए संभव न होगा।

स्वयंपाकी सज्जन अपने साथ अपने वर्तन अवश्य लाने की कृपा करें।

दर्शकों को भोजन के लिए २) प्रतिदिन देना होगा।

दिल्ली स्टेशन पर स्वागत समिति की ओर से प्रथम तथा द्वितीय द्वार के पास ३ मई तक प्लेटफार्म पर अस्थायी कार्यालय का ३ दिन के लिए प्रवन्ध किया गया है, जो कि समागत अतिथियों को सर्वप्रकार की सूचनायें एवं सहयोग देने में सहायक होगा।

दिल्ली में आने वाले नए महानुभावों से हम अनुरोध करते हैं कि यदि वे भ्रमणार्थ जाना चाहें तो कार्यालय को शीघ्र ही सूचित करें जिससे कि उसका प्रबन्ध किया जा सके और यहां आने पर कोई कठिनाई न हो।

सम्भाषा परिषदों में भाग लेने वालों से प्रार्थना है कि वे अध्यक्ष के भाषण की एक प्रति एक दिन पूर्व कार्यालय से लेकर उसका अध्ययन कर अपने विचारों को प्रकट करें। इससे समय की बचत होगी तथा कार्य भी सुचारु रूप से सम्पन्न होगा।

प्रतिनिधियों से प्रार्थना है कि अधिवेशन की सफलता के लिए निम्न बातों को अवश्य ध्यान में रखने का कष्ट करें—

१—कार्यक्रम के समयानुसार सदस्यगण निश्चित स्थान पर समवेत हों।

२—एक चर्चा बार-बार दोहराने का कष्ट न करें।

३—सम्यक्तया अनुशासन का पालन करने की कृपा करें।

वैद्य बन्धुओं से निवेदन है कि अपने आसपास तथा अपने प्रदेश की आयुर्वेद सम्बन्धी जो भी वस्तुएँ प्रदर्शन योग्य प्राप्त हो सकें जैसे यंत्र, शस्त्र, धातु, उपधातु, प्राणिज, खनिजद्रव्य तथा हस्तलिखित प्राचीन पुस्तकों एवं आयुर्वेद सम्बन्धी ज्ञानवर्द्धन के लिए अन्य वस्तुओं को प्रदर्शन मंत्री, श्री शान्ति प्रसाद जैन, राजवैद्य शीतल प्रसाद एण्ड संस, चांदनी चौक, दिल्ली के पते पर भेज दें। उपयुक्त समझे जाने पर प्रदर्शित वस्तुओं का मार्गव्यय व मूल्य भी प्रदर्शनी की ओर से दिया जा सकेगा। उत्तम प्रमाणित होने पर पारितोषिक भी दिया जावेगा।

निवेदक—
वैद्य ओंकार प्रसाद शर्मा
स्वागत मंत्री
४३वां अ० भा० आ० महासम्मेलन।

स्वागत-समिति

४३वां अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन, दिल्ली

सम्मेलन एवं प्रदर्शिनी स्थल-गांधी ग्राउण्ड्स, फव्वारा, दिल्ली।

कार्यालय स्वागत समिति—मजुमदार आयुर्वेदिक चिकित्सालय, हौजकाजी, दिल्ली।

पदाधिकारी स्वागतसमिति

कार्यवाहक स्वागताध्यक्ष—कविराज श्री बी० एन० सरकार।
संरक्षक—वैद्यराज पं० मनोहरलाल शर्मा, वैद्यराज पं० घनानन्द पन्त।
वरिष्ठ उपस्वागताध्यक्ष—कविराज श्री केशव प्रसाद आत्रेय।
उपस्वागताध्यक्ष—कविराज शिवनाथ शर्मा वैद्यरत्न परमानन्द पाण्डे
कविराज नारायण दत्त शर्मा कविराज गयाप्रसाद भट्ट
,, गुरुदत्त ,, बनवारी लाल दुआ
प्रधान स्वागत मंत्री—वैद्य ओंकार प्रसाद शर्मा।
स्वागत मंत्री विद्यापीठ—कविराज रामगोपाल शास्त्री।
संयुक्त मंत्री—कविराज कैलाशचन्द्र अग्रवाल
कार्यालय मंत्री—कविराज आशुतोष मजुमदार।
प्रचार मंत्री—राजवैद्य सुधन्वा।
स्वागताध्यक्ष शास्त्र चर्चा परिषद्—वैद्यरत्न कविराज प्रतापसिंह।
मंत्री—कविराज जगदीश प्रसाद शर्मा।
" छात्र प्रतियोगिता—कविराज शंकर देव शर्मा।
मंत्री—कविराज खुशवख्तराय भारद्वाज।
स्वागत मंत्री प्रदर्शिनी—कविराज शान्ति प्रसाद जैन।
सहायक मंत्री—क० गोविन्द सहायदत्त।
अध्यक्ष अर्थ संग्रह समिति—कविराज बी० एन० सरकार।
मंत्री—कविराज नित्यानन्द वर्मा
अध्यक्ष धन्वन्तरि महायज्ञ समिति—क० पं० मनोहर लाल शर्मा।
मंत्री—क० जागेराम गुप्त।
" आतिथ्य सत्कार समिति—कविराज दौलतराम शर्मा।
मंत्री—क० हजारी लाल शर्मा।
" यातायात एवं स्वयं सेवक समिति—क० रामलाल मलहोत्रा।
मंत्री—क० भुवनचन्द्र जोशी।

कार्य-क्रम

शनिवार ३-५-५८

सायं—४ बजे धन्वन्तरि पूजन ।
५ से ५-१५—प्रदर्शिनी स्वागताध्यक्ष का भाषण ।
५-१५ से ५-३०—,, ,, का उद्घाटक महोदय से उद्घाटन के लिए निवेद
५-३०—प्रदर्शिनी का उद्घाटन ।
रात्रि— ९ बजे से—महासम्मेलन स्थायी समिति एवं विद्यापीठ प्रबन्धक समिति की बैठ

रविवार ४-५-५८

प्रातः— ८ से ८-५—विद्यापीठ स्नातक सम्मेलनाध्यक्ष का स्वागत ।
८-५ से ८-३५—,, ,, ,, ,, भाषण ।
८-३५ से १०—विद्वानों के भाषण ।
१० से १२—छात्र प्रतियोगिता ।
अपराह्न—४ बजे महासम्मेलन उद्घाटक महोदय का आगमन ।
४-५—मंगलाचरण ।
४-५ से ४-२५—स्वागताध्यक्ष का भाषण ।
४-२५ से ४-४५—उद्घाटक महोदय का भाषण ।
४-४५ से ५-२०—महासम्मेलनाध्यक्ष का भाषण ।
सायं— ५-२० से ५-३५—शिक्षा सम्मेलन स्वागताध्यक्ष का भाषण ।
५-३५ से ५-५५—,, ,, उद्घाटक महोदय का भाषण ।
५-५५ से ६-३०—विद्यापीठाध्यक्ष का भाषण ।
६-३० से ६-४०—धन्यवाद प्रदर्शन ।
६-४० से ७-१०—विषय निर्धारिणी समिति का निर्वाचन ।
७-१० से ८-१०—प्रादेशिक आयुर्वेद सम्मेलनों के प्रधान एवं प्रधान मंत्रियों क
महासम्मेलनाध्यक्ष के साथ संगठन सम्बन्धी विचार ।
रात्रि— ९ बजे से विषय निर्धारिणी समिति का अधिवेशन ।

सोमवार ५-५-५८

प्रातः— ९ से ९-५—चिकित्सा संभाषा परिषदाध्यक्ष का स्वागत ।
९-५ से ९-३५—,, ,, ,, ,, भाषण ।
९-३५ से १०-३०—विद्वानों के भाषण ।
१०-३० से ११—वाद-विवाद ।
अपराह्न—३ से ५-३०—महासम्मेलन का खुला अधिवेशन ।
सायं— ५-३० से ७—विद्यापीठ स्नातकों को उपाधि एवं निबन्ध प्रतियोगिता पारितोषिक वितरण तथा दीक्षान्त भाषण ।
रात्रि— ९ बजे से विद्यापीठ विषय-निर्धारिणी समिति का अधिवेशन ।

मंगलवार ६-५-५८

प्रातः— ९ से ९-५—शल्य शालाक्य परिषदाध्यक्ष का स्वागत।

९-५ से ९-३५— ,, ,, ,, ,, भाषण।

९-३५ से १०-३०—विद्वानों के भाषण।

१०-३० से ११—वाद-विवाद।

राह्न—३ से ५—विद्यापीठ का खुला अधिवेशन।

यं— ५ से ६—महासम्मेलन-विद्यापीठ के पदाधिकारियों का निर्वाचन एवं विदाई मिलन।

(उपरिलिखित कार्य-क्रम में स्थायी समिति की सहमति से परिवर्तन एवं परिवर्द्धन स्वागत समिति को अधिकार है।)

ओंकार प्रसाद शर्मा
स्वागत मंत्री
४३वां अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन

सदस्यता श्रेणी में परिवर्तन की सुविधा

४२-वें अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन, बंगलौर, के प्रस्ताव सं० १६ (छ) रा प्रदत्त सुविधा का उपयोग करने वाले थम आजीवन सदस्य कविराज श्री रामस्वरूप चक्रवर्ती, आयुर्वेदाचार्य, एम० ए० एम० ० दिल्ली।

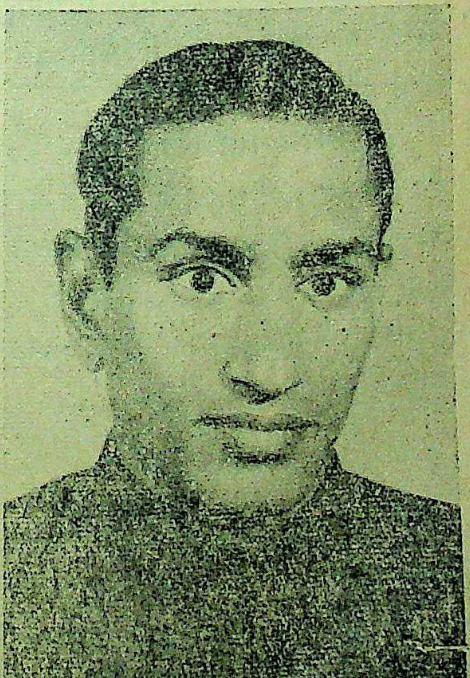

आपने उक्त प्रस्ताव के अनुसार ५०)रु० देकर अपनी आजीवन सदस्यता को आश्रयदाता सदस्यता में परिवर्तित कराया है। इसी प्रकार आश्रयदाता सदस्य महानुभाव भी (१००)देकर अपनी सदस्यता संरक्षक सदस्यता में परिवर्तित करा सकते हैं। महासम्मेलन के आजीवन व आश्रयदाता सदस्यों को इस सुविधा का लाभ उठाना चाहिये। जो सदस्य महानुभाव उपर्युक्त प्रस्ताव के अनुसार अपनी सदस्यता श्रेणी परिवर्तित करायेंगे उनका चित्र एवं संक्षिप्त जीवन-वृत्त पत्रिका में प्रकाशित किया जायेगा।

संस्था के विरुद्ध मानहानि का अभियोग रद्द

नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ आयुर्वेद की बहुत प्राचीन शिक्षण संस्था है तथा देश में इसकी परीक्षाओं का बड़ा सम्मान है। हजारों की संख्या में प्रति वर्ष परीक्षार्थी इसकी विभिन्न परीक्षाओं में सम्मिलित होते हैं और इसकी उपाधियों से विभूषित बहुत से विद्वान् अनेक उच्च स्थानों पर आयुर्वेदीय प्रशासन का सुचारू रूप से संचालन कर रहे हैं।

विद्यापीठ के इस महत्व को दृष्टि में रखते हुए विद्यापीठ कार्यालय एवं अधिकारियों का उसके सम्मान की रक्षा करना और उसे अक्षुण्ण बनाये रखना सर्वोपरि कर्तव्य हो जाता है। समस्त भारतवर्ष में फैले हुए विद्यापीठ के ७४ परीक्षा केन्द्रों की व्यवस्था का कार्य कोई सहज-साध्य कार्य नहीं है, तो भी विद्यापीठ एवं महासम्मेलन के पदाधिकारियों का यह प्रयत्न सदा ही रहा है कि केन्द्रों में परीक्षा का कार्य निष्पक्ष एवं सुचारू रूप से सम्पन्न हो और किसी भी छात्र को अनुचित साहाय्य अथवा सुविधा न दी जाय। इसी दृष्टि से केन्द्राध्यक्षों को अनुशासन एवं नियमों का दृढ़ता से पालन करने की हिदायतें दी जाती हैं। फिर भी इतने विशाल कार्य में यत्र-तत्र कुछ अव्यवस्था मिलती है। जो शिकायतें इस सम्बन्ध में कार्यालय में पहुँचती है उनकी सम्यक् प्रकार से जांच की जाती है जिनमें से अधिकांश तो असत्य ही सिद्ध होती हैं और जो सत्य सिद्ध होती हैं उनके विरुद्ध उचित कार्यवाही की जाती है।

सन् १९५५ की परीक्षाओं में नागपुर केन्द्र के प्रति कुछ शिकायतें प्राप्त हुई थीं जिनकी जांच के लिए कार्यकारिणी ने पहिले एक निरीक्षक तथा पुनः स्थायी समिति ने एक उप-समिति का निर्माण किया था।

नागपुर परीक्षा केन्द्र में सम्मिलित होने वाले परीक्षार्थियों में आर्वी के एक श्री हनुमान् प्रसाद दाधीच भी थे जिन्होंने आयुर्वेदाचार्य द्वितीय खण्ड की परीक्षा दी थी। परीक्षकों ने उत्तर पुस्तकों की जांच के पश्चात् जो परिणाम प्रस्तुत किया था उसके आधार पर श्री हनुमान प्रसाद को उक्त परीक्षा में उत्तीर्ण घोषित किया गया था और अन्य सफल परीक्षार्थियों के परीक्षाफल के साथ उनका परीक्षाफल भी जुलाई १९५५ की पत्रिका में प्रकाशित कर दिया गया था।

किन्तु जैसा कि हमने ऊपर लिखा है नागपुर केन्द्र में अव्यवस्था और गड़बड़ी की कुछ गम्भीर शिकायतें कार्यालय में पहुँची थीं जिनकी जांच की जा रही थी—इसी जांच के सिलसिले में उक्त श्री हनुमान प्रसाद की उत्तर पुस्तकों की भी पुनः जांच की गई और उन पर नकल करने का आरोप बन गया। इस आरोप के आधार पर उनके मामले की गम्भीर और पूरी जांच की गई जिसके परिणाम स्वरूप उन पर नकल का आरोप पूर्णतः सिद्ध हुआ। ४१ वें महासम्मेलन, करनूल, में स्थायी समिति द्वारा उन्हें अनुत्तीर्ण घोषित करने का सम्मति से निश्चय किया गया। स्थायी समिति का वह कार्य-विवरण जिसमें उन्हें

नुत्तीर्ण घोषित किया गया था जनवरी १९५६ की पत्रिका में महासम्मेलन प्रधान मंत्री श्री वामनराव दीनानाथ जी के हस्ताक्षरों से प्रकाशित हुआ जिसके आधार पर श्री हनुमान प्रसाद ने आर्वी कोर्ट में मानहानि का फौजदारी मुकद्दमा श्री महासम्मेलन प्रधान मंत्री और पत्रिका प्रकाशक तथा प्रधान सम्पादक श्री स्वामी चेतनानन्द जी चिदाकाशी के विरुद्ध दायर कर दिया।

श्री हनुमान प्रसाद को पूर्ण जांच पड़ताल के बाद नकल के आरोप के सिद्ध होने पर अनुत्तीर्ण घोषित किया गया था और उनके लिए यही उचित और सम्माननीय था कि वे इस निर्णय को स्वीकार कर सत्यता से पुनः परीक्षा देकर सफलता प्राप्त करते किन्तु मानहानि के झूठे दंभ के कारण आवेश में आकर उन्होंने न्यायालय द्वारा संस्था को हानि पहुंचाने का अनुचित प्रयास किया किन्तु न्याय के समक्ष उन्हें नीचा देखना पड़ा।

उक्त मामले का फैसला २६ फरवरी १९५८ को घोषित हो गया है। मजिस्ट्रेट श्री पाण्डे ने श्री हनुमान प्रसाद शर्मा के आक्षेपों को अमान्य करते हुए महासम्मेलन प्रधान मंत्री तथा पत्रिका सम्पादक को सम्मान पूर्वक निर्दोष घोषित किया है।

इस अभियोग के लड़ने में संस्था का लगभग एक सहस्र रुपया, एक परीक्षार्थी की परीक्षार्थी के कारण, मिट्टी में मिल गया, इस बात का हमें हार्दिक खेद है, किन्तु संस्था की गौरव और सम्मान की रक्षा हुई इस बात का परम सन्तोष भी हमें है।

केन्द्राध्यक्षों एवं परीक्षार्थियों को इस मामले से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए और भविष्य में इस प्रकार की अनुचित सहायता देने, प्राप्त करने अथवा अन्य प्रकार से लाभ उठाने का प्रयत्न न करके विद्यापीठ के सम्मान और परीक्षाओं के स्तर को ऊँचा बनाये रखने में अधिकारियों की सहायता करनी चाहिए। इसी में संस्था का, आयुर्वेद का और प्रत्येक आयुर्वेद प्रेमी का गौरव है।

—स्वामी चेतनानन्द चिदाकाशी

सचित्र लघु द्रव्यगुणादर्श (द्वितीय परिवर्धित संस्करण)
मूल्य ३॥) डाक व्यय ।।।)
निघण्टु (द्रव्यगुण) तथा रस शास्त्र—चिकित्सा में सफलता की कुंजी है। इन दोनों विषयों के तत्कालज्ञानार्थ (Ready Reference) तथा आयुर्वेद की परीक्षाओं में उत्तीर्णता प्राप्त करने के लिए अनुपम ग्रंथ है। लेखक हैं उक्त दोनों विषयों के अधिकारी तथा परीक्षक विद्वान् कविराज श्री महेन्द्रकुमार शास्त्री B.A.,D.Sc.(A) आयुर्वेदाचार्य। आयुर्वेद के सभी विद्वानों द्वारा प्रशंसित।
नोटः—(१) ६ या अधिक पुस्तकों पर डाक व्यय नहीं लिया जाता।
(२) थोक विक्रेताओं को कमीशन।
(३) स्थानीय पुस्तक विक्रेता से प्राप्त करें।
पताः—**आयुर्वेद निकेतन**, १२१, सुपारी बाग रोड, परेल, बम्बई-१२.

बम्बई के फैसलों तथा तत्सम्बन्धी लेखों में कार्यालय-मंत्री पर लगाये गये आरोपों का स्पष्टीकरण

लेखक—तिलकराम शर्मा, एम० ए०, कार्यालय-मंत्री, अ० भा० आयुर्वेद
महासम्मेलन-विद्यापीठ।

सेवा में,

महामहिम श्रीमान् प्रधान महोदय तथा सम्माननीय सदस्यगण,
अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन।

अयि वैद्यप्रवर विद्वांसः महाभागाः,

जैसा कि आपको विदित होगा बम्बई न्यायालय के दो निर्णय दो आयुर्वेदिक मासि पत्रिकाओं द्वारा बड़े पैमाने पर प्रकाशित एवं प्रचारित किये गये हैं। इन निर्णयों ए तत्सम्बन्धी लेखों में कहीं-कहीं इस संस्था के एक छोटे से सेवक के नाते मेरे पर भी छींटे डा गये हैं। यद्यपि वह सब कुछ इतना भ्रममूलक, मिथ्या, असंगत, अप्रमाणित, अनधिकृत एवं अप्र है कि मैं उसे बिना उत्तर दिये ही छोड़ सकता था परन्तु वर्तमान के रजोगुणात्मक युग एवं सम् स्थिति को ध्यान में रखते हुए मेरे "मौन" को कोई "स्वीकृति" न मान ले, अतएव मैं निवेदन करने को उद्यत हुआ हूँ। वैसे भी जिस महती संस्था की एकदम तन्मयता से सच्ची से करने का मैं दावा रखता हूँ उसमें मेरे कार्य और आचरण के विषय में हमारे सत्यनि सदस्य महानुभावों को कोई सन्देह न रहे इसलिए भी मैं यह संक्षिप्त स्पष्टीकरण करने लिए तत्पर हुआ हूँ। तीसरे क्योंकि संस्था के किसी भी सदस्य महानुभाव ने सम्भवतः स्व मेव वास्तविकता को समझते हुए इस विषय में मेरे से कोई जवाबतलबी की मांग नहीं की इसलिए भी उनके और संस्था के प्रति मेरा पुनीत कर्तव्य हो जाता है कि मैं स्वतः ही स्प करण प्रस्तुत करके सम्भावित भ्रम का निवारण करूँ। इस प्रकार नितान्त विनम्र भाव मैं आप महानुभावों की सेवा में उपस्थित हो रहा हूँ।

क—"आयुर्वेद विज्ञान" में प्रकाशित आरोप—

"आयुर्वेद विज्ञान" के अक्तूबर १९५७ के अंक के पृष्ठ १६१ पर प्रकाशित जिस लेख द्वा मेरे पर विभिन्न आरोप लगाये गये हैं, उसे सम्पादक महोदय ने आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रि से उद्धृत किया है। वह लेख मौलिक रूप से ही नितान्त झूठा और भद्दा था परन्तु "आयु विज्ञान" के सम्पादक महोदय ने उसे उद्धृत करने में कुछ छोड़कर और कुछ बदल क अपनी इमानदारी के स्तर का पूरा परिचय दे दिया है और उस उद्धरण को ही झूठा ब दिया है। इस स्थिति में पूर्व इसके कि मैं उसका उत्तर दूं मैं सदस्य महानुभावों की जानकारी के लिए मूल लेख को अक्षरशः निम्न उद्धृत करता हूँ।

"मेरा त्यागपत्र और उसका कारण

"कुछ समय से हमारी संस्था में विवाद के दो दल बन गये हैं। ये दोनों ही दल इतने नेशन पर उतर आये हैं कि किसी शिष्टता की परवाह नहीं करते और संस्था के लिए र्ण घातक हो गये हैं।

"इस दल के एक पक्ष के मुखिया हमारे शिवशर्मा जी हैं जो अपने दल के शुरू से नी मुवानी हैं। इस समय हमारी संस्था के सर्वेसर्वा भी आप ही हैं। आपके प्रयत्नों से वर्ष सभापति भी आपके अनुकूल और⋯मिल गये हैं।

"गत मास में उन्हीं के नाम पर प्रकाशित एक पुस्तिका मई के अङ्क में पत्रिका के ाथ वितरण हुई है। यह उनका वक्तव्य बताया जाता है। इसके वितरण करने का ढंग भी अजीब ही रहा है। यह सम्पादक को दिखाया भी नहीं गया। यह इसलिए किया गया कि उसका यह कार्य सम्पादक रोक न दे। विवाद का तिरस्कार पत्रिका ने सदा किया, किसी दलबन्दी को आश्रय नहीं दिया।

"२४ अप्रैल को वक्तव्य छपाकर लाहौर से कार्यालय का क्लर्क श्रीयुत पं० तिलकराम शर्मा अपने साथ लाया और जो कुछ उसे करना था उस विवरण का आज्ञापत्र भी साथ ही लाया। वह सम्पादकीय विभाग के किसी व्यक्ति से भी नहीं मिला। शहर में ठहर कर प्रेस वालों को अपनी मुट्ठी में करके पत्रिका छपनी रुकवा दी और मई का केवल आरम्भिक १ फार्म छोड़कर बाकी उद्दिष्ट वक्तव्य मिलाकर पत्रिका की मिसल उठवा कर मई की पत्रिका तैयार कराना आरम्भ कर दी। सारा सिलसिला बांधकर—

"रात को ९ बजे क्लर्क महोदय सम्पादक के पास आज्ञापत्र लेकर पहुंचे। इस समय रुग्ण सम्पादक ज्वर में बात भी नहीं कर सकते थे। उन्होंने सहायक सम्पादक को बुला दिया। क्लर्क महोदय आज्ञा-पत्र देकर चले गये। आज्ञापत्रानुसार पत्रिका के लिखित और अलिखित पते लेकर सहायक सम्पादक प्रातः क्लर्क के पास प्रेस में पहुँच गये। पत्रिका तैयार हो रही थी। क्लर्क ने रामचन्द्र जी को संयत करके बैठा लिया और अलिखित पतों में से कुछ क्लर्क ने लिखे और कुछ रामचन्द्र जी से लिखाये। दोपहर तक पत्रिका के सारे पैकट बनवा लिये और उनमें से कुछ डिस्पैच भी करा लिये तब क्लर्क महोदय प्रेस से हटे।"

"वक्तव्य की पुस्तक में क्या भरा है, यह बात सम्पादक ने दूसरे दिन जानी। पढ़ने से ज्ञात हुआ कि (१) वह विवाद के एक दल की चूड़ान्त पक्षपोषण सामग्री है। (२) सम्पादक पर अविश्वास और उसके सम्मान पर पूरी आघात पुस्तक है। (३) पत्रिका की मूल नीति पर कुठाराघात है।

"इन ३ कारणों से मैं त्यागपत्र देकर पत्रिका से हाथ खींचता हूं और सम्पादकत्व से अपना नाम हटाये लेता हूं।

२६-४-४३

—किशोरीदत्त शास्त्री"

हमारे सदस्य महानुभाव पहिले "आयुर्वेद विज्ञान" में दिये गये झूठे और पुनः उपरिलिखित सच्चे उद्धरण को पढ़ें। असल लेख को भी आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका के जून १९४३के अङ्क के पृष्ठ १९२ पर देखें। बात सूक्ष्म है, जो व्यक्ति उद्धरणमात्र में इतना फेर-फार कर सकता है उसका मूल्यांकरण आप स्वयं ही करें।

अब मैं सदस्य महानुभावों की जानकारी के लिये यह भी निवेदन कर देना उचित समझता हूं कि मई १९४३ के पत्रिकांक के साथ जो पुस्तिका वितरित हुई थी वह तत्कालीन महासम्मेलनाध्यक्ष स्वनाम-धन्य राजवैद्य श्री पण्डित जीवराम कालीदास जी शास्त्री, गौंडल (वर्तमान में श्री स्वामी चरणतीर्थ जी महाराज) का विस्तृत वक्तव्य था जो उन्होंने ३१ वें अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन, लाहौर, पर अपने अनुभवों के सम्बन्ध में पहिले गुजराती और पुनः हिन्दी में लिखा था। उक्त वक्तव्य को भी सदस्य महानुभाव स्वयं पढ़ने का कष्ट करें।

आवश्यक प्रारम्भिक सूचनायें देने के पश्चात् अब मैं उपर्युक्त उद्धृत लेख में किये गये आरोपों को एक-एक करके लेता हूं।

१—लेख का मौलिक आरोप यह है कि वह वक्तव्य एक-पक्षीय था। यद्यपि इस आरोप का मेरे से कोई सीधा सम्वन्ध नहीं और श्री सभापति महोदय के उस वक्तव्य पर कोई टीका-टिप्पणी करना मेरे अधिकार-क्षेत्र से बाहर की बात भी होगी तो भी केवल सदस्य महानुभावों की अपेक्षित जानकारी के लिये मैं उस सम्पादकीय टिप्पणी को अक्षरशः निम्न उद्धृत करता हूं जो कि इसी वक्तव्य के विषय पर मई १९४३ के पत्रिका के पृष्ठ १६० पर प्रकाशित है और जो कि श्री पं० किशोरीदत्त जी शास्त्री के सहायक द्वारा लिखी गई थी।

सम्पादकीय ………………………………………………श्री रामचन्द्र शर्मा

सभापति का वक्तव्य

"महासम्मेलन-सभापति के जिस (हिन्दी) वक्तव्य की सूचना पिछले अङ्क में दी गई थी वह इस अङ्क में प्रकाशित हो गया है। यह वक्तव्य परिस्थिति के स्पष्टीकरण के लिए निष्पक्ष भाव से लिखा गया है। अतः प्रत्येक पाठक को इसे ध्यानपूर्वक पढ़ना चाहिए। इसके पढ़ने से लाहौर-सम्मेलन-सम्बन्धी बहुत सी गलतफहमियां दूर हो जायेंगी। वक्तव्य के बड़े हो जाने से पत्रिका का सब मेटर रोकना पड़ा है। बहुत से आवश्यक लेख, समाचार, सूचनाएं और समालोचना जो इस अङ्क में अवश्य जानी चाहिए थीं, इसी वजह से नहीं जा सकीं। अगले अङ्क में जायेंगी।"

अब सदस्यगण विचार करें, इस सम्पादकीय टिप्पणी के लेखक थे पत्रिका के तत्कालीन सहायक सम्पादक, श्री पं० रामचन्द्र जी शर्मा शास्त्री, एम० ए०, आयुर्वेदाचार्य, जो कि पत्रिका के प्रतिनिधि के रूप में स्वयं लाहौर महासम्मेलन पर उपस्थित थे जबकि तत्कालीन प्रधान सम्पादक श्री किशोरीदत्त जी शास्त्री लाहौर महासम्मेलन पर स्वयं गये ही नहीं थे। इस प्रकार मैं समझता हूँ कि स्वयं श्री किशोरीदत्त जी शास्त्री के निजी प्रत्यक्षदृष्टा प्रतिनिधि

द्वारा लिखित इस सरल एवं सामयिक सम्पादकीय टिप्पणी के सन्मुख बाद में किसी निष्पक्ष व्यक्ति के लिये तो कुछ लिखने का अवसर शेष नहीं रह गया था और श्री किशोरीदत्त जी शास्त्री द्वारा बाद में उस प्रकार एक प्रत्यक्ष झूठ लिखने में कोई विशेष हेतु रहा होगा।

इस लेख के सर्वथा अयुक्त और झूठे होने के सम्बन्ध में तत्कालीन प्रधानमन्त्री जी का भी एक वक्तव्य उससे अगले मास की पत्रिका अर्थात् जुलाई १९४३ के पत्रिकांक में पृष्ठ २०४ से २०६ तक प्रकाशित हुआ था। सदस्य महानुभावों की जानकारी के लिए उसे अविकल रूप से निम्न उद्धृत किया जाता है—

पं० किशोरीदत्त जी के सम्पादकीय पर प्रधानमन्त्री का वक्तव्य

"गत मास की पत्रिका में पं० किशोरीदत्त जी ने अपने त्यागपत्र पर एक सम्पादकीय लेख लिखा है। वह त्याग-पत्र अभी तक भी मुझे नहीं भेजा, न प्रधान जी से मुझे उसके सम्बन्ध में कोई सूचना आई है।

"सम्पादकीय में आपने लिखा है कि दोनों दल कमीनेपन पर उत्तर आये हैं" और शिष्टता की परवाह नहीं करते। एक दल का मुखिया मुझे बताया गया है, दूसरे के मुखिया का नाम नहीं बताया गया। "त्याग-पत्र" इसलिये दिया गया (यद्यपि वह वास्तव में अभी तक भी नहीं दिया गया) कि "वक्तव्य सम्पादक को दिखाया भी नहीं गया" कार्यालय का क्लर्क "सम्पादकीय विभाग के किसी व्यक्ति से भी नहीं मिला प्रेस......वालों को अपनी मुट्ठी में करके पत्रिका छपनी रुकवा दी......रात को ९ बजे क्लर्क महोदय आज्ञापत्र देकर चले गये......रामचन्द्र जी को संयत करके बैठा लिया"

वास्तविकता

यह आज्ञापत्र नहीं था, प्रार्थनापत्र था। जो पत्र क्लर्क महोदय श्री सम्पादक महोदय के पास रात को ९ बजे छोड़कर चले गये उसकी प्रतिलिपि पढ़िये। रुग्ण सम्पादक जी से प्रार्थना है कि इसके एक एक अक्षर को ध्यान से पढ़ें।

सं १९२५

लाहौर, २१ व २२-४-४३

सेवा में,

राजवैद्य श्रीयुत पं० किशोरीदत्त जी शास्त्री,
प्रधान सम्पादक, आयुर्वेदमहासम्मेलनपत्रिका,
नयागंज चौराहा, कानपुर।

माननीय शास्त्री जी,

"सविनय प्रणाम। इस मास कई आवश्यक रोगियों को देखने के लिये मुझे बहुत समय लाहौर से बाहर रहना पड़ा। श्री प्रधान जी का गुजराती वक्तव्य जो १७ मार्च को प्रकाशित हो चुका है आज एक महीने से भी अधिक समय के पश्चात् बड़ी कठिनाई से तैयार हो पाया है और मेरी अनुपस्थिति के कारण इतने विलम्ब पर श्री प्रधान जी ने असन्तोष प्रकट किया है। सम्पूर्ण पत्रक रेलवे पार्सल से भेजने ही वाला थ

कि रेलवे की दयनीय दशा देखकर मुझे अपना विचार बदलना पड़ा। आगरे तथा अन्य स्थानों से परीक्षा-उत्तरपुस्तकों के कई रेलवे पार्सल अभी तक भी हमें नहीं मिले और तार तार देने पर भी कुछ पता नहीं चलता। यही दशा इस वक्तव्य के पार्सल के साथ भी न और पत्रिका को अनावश्यक ही रुकना न पड़े यह विचार कर विवश होकर श्री तिलकरा जी को वक्तव्य देकर भेज रहा हूं।

"श्रीमान् प्रधान जी को विवश होकर यह वक्तव्य प्रकाशित करना पड़ा है। उन्हें स्वयं रक्तपात आदि की धमकियाँ दी गई हैं, जैसा कि पहले प्रधान श्री व्रजविहारी को भी धमकी दी गई थी, तो मौनावलम्बन से कोई भयंकर हानि न हो यह समझ कर स्थिति के स्पष्टीकरण मात्र के लिये यह लिखा गया है। कृपया इसे पत्रिका के साथ करवा दें। यदि आप ऐसा करना उचित न समझें तो मुझे लिखें ताकि प्रधान जी से की जाय कि पृथक् डाक द्वारा भेजने की आज्ञा प्रदान करें। यदि आप इसे पत्रिका के स्टिच कराना उचित समझें तो अपने सम्पादकीय में इस विषय पर दो चार लाइनें लिख दें। श्री तिलकराम जी प्रत्येक कार्य में आप की आज्ञा का पालन करेंगे तथा आपके कार्य में हाथ बटायेंगे।

"आशा है अब आपका स्वास्थ्य अच्छा हो गया होगा। हमारे महान् कार्य में प्रकार हाथ बटाने के लिये आप शीघ्र ही स्वस्थ हों यही हमारी प्रार्थना है।

"अन्य योग्य सेवा से सूचित करें—

विनीत
(ह०) शिवशर्मा, प्रधानमन्त्री,
अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन।

"यह है वह "आज्ञापत्र" जिसने पं० किशोरीदत्त जी के हाथ बाँध दिये और उनको सम्पादकीय में भी "वक्तव्य" के सम्बन्ध में टिप्पणी करनी पड़ी। और दुबले पतले शरीर के हैं वे क्लर्क जिन्होंने पण्डित किशोरीदत्त जी के चिकित्सक प्रेस के कर्मचारियों को मुट्ठी में कर लिया और पण्डित रामचन्द्र जी को बाँधकर बिठा लिया।

"मार्च में मैं बागला जी के यहाँ कानपुर गया था। सम्मेलन में स्वयं बिना उपस्थित हुये, चिन्ताजनक अवस्था होते हुये भी आप सहायक सम्पादक की आँखों देखी रिपोर्ट के विरुद्ध लाहौर-सम्मेलन पर कटाक्ष करने से नहीं चूके थे। श्री सभापति जी ने इन्हें पूछा था कि बिना कुछ जाने बूझे यह आपने किसके कहने से लिख दिया। इसके उत्तर में भी आपने एक त्यागपत्र लिखा था। क्योंकि मैं कानपुर गया था, इनके दर्शन करने चला गया। मैंने जो इनकी चिन्ताजनक अवस्था देखी तो मुझे बहुत खेद हुआ। इन्हें पहिचानना भी कठिन था। वह अवस्था इनकी चली आ रही है और अब यह हालत है कि कानपुर छोड़कर गाँव में चले गये हैं। उस समय मैं उनसे यही पूछने गया था कि आप बराबर एक पक्ष के ही विरोध पर क्यों तुले हुये हैं परन्तु उस अवस्था में मैं कुछ भी न कह सका और जो कुछ इन्होंने लाहौर-सम्मेलन के विरुद्ध किया था वह मैंने भुला दिया।

"इनकी पुरानी "निष्पक्षता" की नीति देखकर मैंने (इनके कथित) "आज्ञापत्र" रा उत्तरदायित्व इन्हींपर डाल दिया था, यहाँ तक कि इन्हें इसे न प्रकाशित करने का कार भी दे दिया था। तब भी यह स्पष्ट न कह कर कि अब शरीर और मस्तिष्क दे रहे हैं यह नाटक रच दिया।

"श्री किशोरीदत्त जी की भूलों की सूची प्रकाशित करना अनुदारता होगी। परन्तु सूची उनको भेज दी गई है। उनके उत्तर और त्यागपत्र दोनों माँगे गये हैं। यदि आपत्ति न की तो सब कुछ प्रकाशित कर दिया जायगा।

समाज से प्रार्थना

"इस त्यागपत्र को लेकर श्री प्रधान जी के विरुद्ध जो-ढ़ोंग रचा जा रहा है और जो न स्थानों में सभायें करके इस त्याग-पत्र को महत्व देने का निष्फल प्रयत्न किया जा रहा है उससे वैद्य-समाज को सावधान रहना चाहिये। श्री सभापति महोदय अभूतपूर्व मता- से प्रधान बने हैं। भारतवर्ष का वैद्य-ससाज उनके पीछे है। उनकी आज्ञा होगी तो र्ण भारतवर्ष में कराची से आसाम तक और लंका से काश्मीर तक सभायें ही सभायें ही दिन और एक ही समय में हो जायेंगी। परन्तु उनका हृदय विशाल है और वह ा और कलह से घृणा करते हैं, परन्तु उनकी शान्ति को जो कायरता समझेगा वह धोखा खायेगा।

"अन्त में वैद्य-समाज से यह प्रार्थना है कि एक बार ध्यान से "आज्ञापत्र" को पढ़ें और फिर ध्यान से पं० किशोरीदत्त जी के सम्पादकीय को।

शिवशर्मा, प्रधान मन्त्री,
अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन।
लाहौर"

जुलाई १९४३ में आज से लगभग १५ वर्ष पूर्व प्रकाशित इस लेख से सदस्य महानु- ों को यदि इस विषय में कोई सन्देह रहा भी होगा तो वह भी नष्ट हो जायगा। महानुभाव स्वयं देख लें मैं "आज्ञापत्र" लेकर श्री पं० किशोरीदत्त जी शास्त्री के पास था या एक "प्रार्थनापत्र" और वहाँ पर मेरा कार्य था एकमात्र श्री किशोरीदत्त जी की का पालन करना और उनके सारे कार्य में हाथ बटाना।

२—मैं वक्तव्य लेकर लाहौर से कानपुर गया और जो कुछ मैंने करना था उस का आज्ञापत्र भी साथ ले गया......इत्यादि यह मेरे पर दूसरा आरोप है।

सदस्यगण इस आरोप को ध्यान से पढ़ें। मैं संस्था का एक वैतनिक सेवक था। के तत्कालीन महामान्य अध्यक्ष महोदय के निर्देश पर तत्कालीन प्रधानमन्त्री के आदेश धीन मैं कानपुर गया था और साथ में श्री प्रधानमन्त्री जी का पत्र भी ले गया था। आज्ञा पत्र" था कि "प्रार्थना पत्र" यह आप स्वयं ही ऊपर पढ़ चुके हैं। कहिये, क्या मेरा नाम जोड़ने की कोई बात थी ?

३—मैंने वक्तव्य सम्पादक को नहीं दिखाया। मैं सम्पादकीय विभाग के किसी व्यक्ति से भी नहीं मिला। शहर में ठहर कर मैंने प्रेस वालों को मुट्ठी में कर लिया और पत्रिका छपनी रुकवा दी……इत्यादि यह मेरे पर तीसरा आरोप है।

सदस्य महानुभाव इस आरोप को एक बार पढ़ें, पुनः पढ़ें, उनको स्वयमेव इसकी निःसारता का आभास हो जायगा। यह वक्तव्य इतना असत्यता पर आधारित है कि मैंने उस समय भी इसको घृणा की दृष्टि से बिना उत्तर दिए ही छोड़ दिया था और न ही उक्त आरोप का मेरे से किसी ने स्पष्टीकरण ही माँगा था। इसको झूठा सिद्ध करने के लिए आज लगभग १५ वर्ष पश्चात् भी मुझे किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं क्योंकि सभी प्रमाण इस वक्तव्य में ही विद्यमान हैं। मैं सम्पादक को भी मिला था और सहायक सम्पादक को भी, यह संदर्भाधीन लेख के चौथे पैरा में स्वयं आरोप-कर्त्ता ने ही स्पष्ट कर दिया है। इन दोनों के अतिरिक्त सम्पादकीय विभाग में और कोई प्राणी था ही नहीं, अतएव अविद्यमान को मिलने का प्रश्न ही नहीं उठता था। शहर में कानपुर स्टेशन की समीपतम धर्मशाला में मैं ठहरा था, यह भी कोई अपराध था? पाठकगण स्वयं विचार कर लें। प्रेस भी श्री पं० किशोरीदत्त जी शास्त्री और उनके भाई, भतीजों, भानजों का निजी था। उसमें न तो मैं किसी को जानता था और न मुझे ही कोई जानने वाला था। मैं कानपुर से ६०० मील की दूरी पर लाहौर का रहने वाला था, अजनबी था, वहां पर मेरा कोई साथी भी नहीं था। मैं बलवान भी नहीं था, धनाढ्य भी नहीं था, आज की अपेक्षा बच्चा भी था। प्रेस वालों को मुट्ठी में करने के लिए मैंने कोई धन खर्च किया हो इसका आरोप तो श्री किशोरीदत्त जी ने भी नहीं लगाया क्योंकि उन्हीं का प्रेस होने के कारण प्रेस को रिश्वत देना उन्हीं को रिश्वत देना बनता। इस अवस्था में प्रेस वालों से सीधे ही अथवा किसी प्रकार के दबाव से कार्य करवाना मेरे लिए स्पष्टतया असम्भव था। इस प्रकार मेरे ऊपर यह आरोप अन्धे को भी दीख जाने वाला एक बड़ा मोटा और स्थूल सफेद झूठ था।

अब लीजिये चित्र का दूसरा पहलू। इस तथाकथित काण्ड में शत प्रतिशत सच्चाई यह है कि मैं सर्वप्रथम सीधे जाकर श्री पं० किशोरीदत्त जी शास्त्री से मिला। उनको श्रीमान् प्रधानमन्त्री जी का "प्रार्थनापत्र", "आज्ञापत्र" नहीं, भी जाकर दिया और श्री महासम्मेलनाध्यक्ष महोदय के वक्तव्य की कापी भी। श्री प्रधान सम्पादक जी ने ही अपना आदमी भेजकर सहायक सम्पादक को बुलाया (जैसा कि वे स्वयं लिख ही रहे हैं) और उसे कार्य सम्पादन के लिए आवश्यक आदेश दिया, तदुपरान्त श्री सहायक सम्पादक जी ही मुझे प्रेस में ले गये और स्वयं आदेश देकर उन्होंने सभी कार्य प्रधान सम्पादक जी के निर्देशानुसार कराया, क्योंकि प्रेस में मुझे तो कोई जानता भी नहीं था।

४—सहायक सम्पादक श्री रामचन्द्र जी आज्ञानुसार प्रातः मेरे पास प्रेस में पहुंच गये। मैंने उन्हें संयत करके बैठा लिया और उनसे पते लिखवाये। दोपहर तक पत्रिका के सारे पैकट बनवा लिये और उनमें से कुछ डिस्पेच भी करा लिये तब मैं प्रेस से हटा"

यह मेरे पर चौथा आरोप है।

यह भी जहां तक इसमें किसी को लांछित करने का अंश है प्रत्यक्षतः झूठा है। मेरे पास कोई जादू नहीं था जो मैंने सभी को वशीभूत कर लिया। उस समय श्री रामचन्द्र जी मेरे से कहीं अधिक विद्वान, कहीं अधिक अनुभवी और आयु में भी काफी बड़े थे। स्वाभाविक रूप से न तो मैं उन पर कोई दबाव डाल सकता था और न ही वे ऐसे किसी दबाव को झेल सकते थे विशेषतया जबकि वे अपने घर कानपुर में विराजमान थे और मैं एक मामूली सा अनजान परदेसी व्यक्ति था। ऐसा लेख वास्तव में उनकी बुद्धि का घोर अपमान था और हमारे विज्ञ सदस्य महानुभावों की विवेक-शक्ति का भी तिरस्कार। मैंने तो सभी कार्य केवल विधि-पूर्वक, सीधे सरल ढंग से कर देने में श्री रामचन्द्र जी शर्मा, शास्त्री, एम० ए०, आयुर्वेदाचार्य, को अपनी सेवाओं मात्र का लाभ दिया था, अधिक कुछ भी नहीं। पत्रिका भी वास्तव में तब उसी दिन पोस्ट नहीं की गई थी क्योंकि उस दिन २५ अप्रैल था जबकि वह पत्रिकांक मई मास का था।

यह लेख कितना मनघड़न्त था इसका एक और प्रमाण स्वयं उस लेख में विद्यमान है। श्री पं० किशोरीदत्त जी त्यागपत्र देते हैं मई १९४३ के पत्रिकांक के विषय पर जिसके कि १ मई से पहिले पोस्ट होने का प्रश्न ही नहीं उठता। परन्तु जो वे त्यागपत्र देते हैं वह प्रकाशित होता है जून १९४३ के पत्रिकांक में और उस पर तिथि वे अंकित करते हैं २६-४-४३ की। इस प्रकार यह स्पष्टतया उनका बाद का विचार था जो प्रसंग से ही विश्वसनीय प्रतीत नहीं पड़ता। इससे सिद्ध होता है कि उन्होंने कहीं बाद में त्यागपत्र लिख कर कहीं पहिले की तिथि उस पर किसी हेतु-वश अंकित की।

संदर्भाधीन विषय पर उपर्युक्त केवल प्रासांगिक साक्षी है। अब लीजिये दूसरी साक्षी। सौभाग्य से श्री रामचन्द्र जी शर्मा आज भी जीवित हैं और भारत सरकार के सूचना और प्रसार विभाग में कहीं उत्तर प्रदेश में अच्छे पद पर नियुक्त हैं, उनसे पूछा जा सकता है और यदि मेरे उपर्युक्त कथन में से एक भी बात असत्य सिद्ध हो जाय तो मैं स्वयमेव सहर्ष इस नौकरी से त्यागपत्र दे दूंगा। आखिर झूठ की भी तो कोई सीमा होनी चाहिये।

उपर्युक्त मेरे स्पष्टीकरण से सदस्य महानुभाव स्वयं इस निर्णय पर पहुँचेंगे कि इस विषय में मुझ जैसे निर्लिप्त वैतनिक कर्मचारी को किस प्रकार सर्वथा हठधर्मी और अन्याय से बदनाम करने का अधम प्रयास किया गया है और यह कितना निन्दनीय कार्य है। इसी के आधार पर आप "आयुर्वेद विज्ञान" की भावनाओं और मस्तिष्क का अच्छा मूल्याँकन कर सकेंगे।

मेरे विरुद्ध "सचित्र आयुर्वेद" में प्रकाशित आरोपों का उत्तर पत्रिका के आगामी अंक में प्रकाशित होगा। सदस्यगण उसकी प्रतीक्षा करें।

Statement about ownership and other particulars about newspaper AYURVED MAHASAMMELAN PATRIKA to be published in the first issue every year after the last day of February.

FORM IV

1. Place of Publication :	Delhi
2. Periodicity of its Publication :	Monthly
3. Printer's Name :	Kaviraj Swami Chetnanand Chidakashi
Nationality :	Indian
Address :	1542, Daryaganj, Delhi.
4. Publisher's Name :	Kaviraj Swami Chetnanand Chidakashi
Nationality :	Indian
Address :	1542, Daryaganj, Delhi.
5. Editor's Name :	Kaviraj Swami Chetananand Chidakashi
Nationality :	Indian
Address :	1542, Daryaganj, Delhi.
6. Names & Addresses of individuals who own the newspaper and partners or shareholders holding more than one per cent of the total capital.	There are no individual owners nor any shareholders of the Ayurved Mahasammelan Patrika. It is owned by the All India Ayurvedic Congress, an association representing the science and profession of Ayurved in the country.

I, Kaviraj Swami Chetnanand Chidakashi, hereby declare that the particulars given above are true to best of my knowledge and belief.

Swami Chetnanand Ckidakashi

Dated 14th March, 1958

Publisher & Printer

एजेण्ट्स चाहिएं

रणजीत फार्मास्युटिकल वर्क्स जामनगर की सुप्रसिद्ध आयुर्वेदिक पेटेन्ट औषधियों की बिक्री के लिए अनुभवी एजेण्ट्स चाहिएं। आकर्षक नियम एवं भरपूर कमीशन दिया जावेगा। आयुर्वेदिक औषधियों के विक्रेता एवं आयुर्वेदिक चिकित्सकों को विशेष सुविधाएँ प्रदान की जायेंगी। नियम एवं साहित्य के लिए आज ही निम्न पते से पत्र-व्यवहार करें। सोल एजेन्ट—

आर्यन एजेन्सीज, ४४ महारानी रोड, इन्दौर सिटी

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन, दिल्ली

३१ अक्तूबर १९५७ को समाप्त होने वाले वर्ष का आय व्यय पत्र

व्यय		रु० न०पै०	आय	रु० न०पै०
वेतन		१,५०८.४५	संरक्षक सदस्यता शुल्क	२००.००
मुद्रण तथा लेखन सामग्री		९२०.३९	आश्रयदाता सदस्यता शुल्क	१००.००
प्रचार (संसदीय आयु० औषधालय)		८०.१५	आजीवन सदस्यता शुल्क	२,२५०.००
डाक, तार तथा टेलीफोन व्यय		५८५.३३	मान्य सदस्यता शुल्क	५,५५५.००
यातायात व्यय		१६३.०९	सम्बद्धता शुल्क	५०५.००
यात्रा व्यय		४७०.००	विविध आय	२३.०६
कार्यालय किराया		८००.००	ब्याज़	२,६२९.५६
आडिट व्यय		५०.००	प्रतिनिधि शुल्क	१५८.००
विविध व्यय		१३०.५६	पुस्तक-विक्रय पर लाभ	३६९.१४
बैंक व्यय		३९.१२	पत्रिका विज्ञापन	२,८७३.७५
जल तथा विद्युत व्यय		९०.००	स्थायी सदस्यों से पत्रिका शुल्क	२,५१४.००
उपकरण पर घटती		८८.१७		
पत्रिका-व्यय				
कागज	३,५१८.९९			
मुद्रण	५,०२३.१२			
मुद्रण तथा लेखन सामग्री	२००.७८			
वेतन	१,९५२.१८			
यातायात	३२.२९			
यात्रा व्यय	१९३.५०			
डाक व्यय	५७९.२२			
विविध व्यय	४९.९५	११,५५०.०३		
कर्मचारी रक्षा कोष		१४५.२०		
आय की व्यय से अधिकता		२५७.०२		
कुल योग		१७,१७७.५१	कुल योग	१७,१७७.५१

राममूर्ति संगर	एस० के० चारी	तिलकराम शर्मा	शिवनाथ शर्मा	वामनराव दीनानाथ	अनन्त त्रिपाठी शर्मा
अकाउन्टेन्ट	कैशियर	कार्यालय मंत्री	कोषाध्यक्ष	प्रधान मंत्री	प्रधान

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन, दिल्ली

३१ अक्तूबर १९५७ को सन्तुलन पत्र

देय		
	रु० न०पै०	रु० न०पै०
स्थिर कोष		
गत सन्तुलन-पत्र के अनुसार	२,२२६.०२	
व्यय से आय की अधिकताको जोड़ा	२५७.०२	२,४८३.०४
१९५८ वर्षीय अग्रिम प्राप्त सदस्यता शुल्क		२३६.००
नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ		१,०९,८०५.४५
विभिन्न देय धनराशि		४९०.३८
देय बिल		३७७.५१
नचन्त खाता		२९१.५०

सम्पत्ति		
उपकरण	रु० न०पै०	रु० न०पै०
गत वर्ष का	८३३.७५	
वर्ष में वृद्धि	३३७.००	
	१,१७०.७५	
उपकरण पर घटती को कम किया	८८.१७	१,०८२.५८
पुस्तकों का स्टाक		
पुस्तकालय		२३६.८७
विभिन्न ऋणी		
पत्रिका विज्ञापनदाता	१,३०१.३४	
अन्य	२,००७.३१	३,३०८.६५
विनियोगों पर प्राप्य व्याज		१६,५४८.४४
निधि समिति कोष		
ट्रेजरी सेविंग सर्टिफिकेट्स	२५,०००.००	
नेशनल सेविंग सर्टिफिकेट्स	५८,११०.००	
नाथ बैंक (दिवालिया)	२,००२.००	८५,११२.००
विभिन्न प्राप्तव्य शुल्क		३,३१०.००
कानूनी व्यय (एडजस्टेबल)		१,६८०.५०
सेंट्रल बैंक आफ इण्डिया	९९७.८७	
यूनाइटिड कमर्शियल बैंक	४०१.७४	
नाथ बैंक (दिवालिया)	८००.६५	२,२००.३६
नकद रोकड		

		सेंट्रल बैंक आफ इण्डिया	९९७.९७	
		यूनाइटिड कमर्शियल बैंक	४०१.७४	
		नाथ बैंक (दिवालिया)	८००.६५	२,२००.३६
		नकद रोकड़		१७४.४८
कुल योग	१,१३,६५३.८८	कुल योग		१,१३,६५३.८८

राममूर्ति संगर	**एस० के० चारी**	**तिलकराम शर्मा**	**शिवनाथ शर्मा**	**वामनराव दीनानाथ**	**अनन्त त्रिपाठी शर्मा**
अकाउन्टेन्ट	कैशियर	कार्यलिय मंत्री	कोषाध्यक्ष	प्रधान मंत्री	प्रधान

आडीटर का प्रमाण पत्र

हमने अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन, दिल्ली के ता० ३१ अक्तूबर सन् १९५७ को समाप्त होने वाले वर्ष के उपरिलिखित सन्तुलन पत्र तथा उक्त तारीख तक के संलग्न आय-व्यय पत्र को हिसाब की किताबों, रसीदों तथा व्यय-पत्रों से जांचा और समस्त जानकारी तथा सूचनायें जो हमें चाहिये थीं, प्राप्त कीं। हमारे विचार में उपर्युक्त सन्तुलन-पत्र तथा आय-व्यय-पत्र, हमारी प्रथक् रिपोर्ट के आधीन, ठीक प्रकार से बनाये गये हैं तथा सन्तुलन-पत्र, हमें दी गई सूचनाओं एवं जानकारी के आधार पर और महासम्मेलन की पुस्तकों के अनुसार, अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन की स्थिति का सच्चा और सही परिचायक है।

१८९३/१/ एफ, चाँदनी चौक,
दरीबा के सामने, दिल्ली।

ता० ३१ जनवरी, १९५८

कृते आर० सी० दास माथुर एण्ड कं०
चार्टर्ड अकाउन्टेन्ट्स

ह० आर० सी० दास माथुर
बी० ए० काम०, एफ० सी० ए०
प्रोप्राईटर

निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठ, दिल्ली

३१ अक्तूबर १९५७ को सन्तुलन पत्र

देयं	रु० न०पै०	रु० न०पै०
स्थिर कोष		
गत वर्ष के सन्तुलन-पत्र के अनुसार	१,२७,२१६.७४	
आय की व्यय से अधिकता को जोड़ा	१,०८६.२२	१,२८,३०२.९६
विभिन्न कोष		
पुरस्कार कोष	१४६.६२	
विश्वविद्यालय कोष	१,८४१.३४	
श्री शंकरदा जी पदे स्मारक कोष	१७,३६८.३४	
धन्वन्तरि भवन निर्माण कोष	११७.००	१९,४३३.३०
विभिन्न देय धन		४०६.७९
देय बिल		१,६८३.५७
१९५८ वर्षीय अग्रिम प्राप्त परीक्षा शुल्क		५७०.००

सम्पत्ति	रु० न० पै०	रु० न० पै०
उपकरण		
गत वर्ष का	२,५८७.१८	
वर्ष में वृद्धि	२४६.४५	
	२,८३३.६३	
उपकरण पर घटती १० %	२८३.३६	२,५५०.२७
पुस्तकों का स्टाक		२,०३६.००
विभिन्न ऋणी (अच्छे)		
अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन	१,०९,८०५.४५	
अन्य	४८५.६९	१,१०,२९१.१४
श्री शंकरदा जी पदे स्मारक		
कोष विनियोग खाता		
ट्रेजरी सेविंग सर्टिफिकेट्स	१०,०००.००	
पंजाब नेशनल बैंक (बचत खाता)	६,८१७.९७	१६,८१७.९७
बाबा काली कमलीवाला ऋषिकेश के पास जमा		७५०.००
प्राप्तव्य सम्बद्धता शुल्क		४५.००
कानूनी व्यय (एडजस्टेबल)		८१७.७२
बैंकों में जमा		
पंजाब नेशनल बैंक (बचत खाता)	१३,८२०.२७	
,, ,, ,, (चालू खाता)	३,२४४.८३	१७,०६५.१०
नकद रोकड़		६२.९२

		बाबा काली कमलीवाला ऋषिकेश के पास जमा		७५०.००
		प्राप्तव्य सम्बद्धता शुल्क		४५.००
		कानूनी व्यय (एडजस्टेबल)		८१७.७२
		बैंकों में जमा पंजाब नेशनल बैंक (बचत खाता)	१३,८२०.२७	
		,, ,, ,, (चालू खाता)	३,२४४.८३	१७,०६५.१०
		नकद रोकड़		६२.६२
कुल योग	१,५०,४३६.६२	कुल योग		१,५०,४३६.६२

रामपूर्ति संगर	एस० के० चारी	तिलकराम शर्मा	सीताराम मिश्र	शिवनाथ शर्मा	वामनराव दीनानाथ	वा० बा० नटराज शास्त्री
अकाउन्टेन्ट	कैशियर	कार्यालय मंत्री	विद्यापीठ मंत्री	कोषाध्यक्ष	प्रधान मंत्री	प्रधान

आडीटर का प्रमाण पत्र

हमने नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ, दिल्ली के ता० ३१ अक्तूबर सन् १९५७ को समाप्त होने वाले वर्ष के उपरिलिखित सन्तुलन-पत्र तथा उक्त तारीख तक के संलग्न आय-व्यय पत्र को हिसाब की किताबों, रसीदों तथा व्यय-पत्रों से जांचा और समस्त जानकारी तथा सूचनायें जो हमें चाहिये थीं प्राप्त कीं। हमारे विचार में उपर्युक्त सन्तुलन-पत्र तथा आय-व्यय पत्र, हमारी पृथक् रिपोर्ट के आधीन, ठीक प्रकार से बनाये गए हैं तथा सन्तुलन-पत्र, हमें दी गई सूचनाओं एवं जानकारी के आधार पर और विद्यापीठ की पुस्तकों के अनुसार नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ की स्थिति का सच्चा और सही परिचायक है।

१८९३/१/ एफ, चाँदनी चौक,
दरीबा के सामने, दिल्ली।
ता० ३१ जनवरी, १९५८

कृते आर० सी० दास माथुर एण्ड कं०
चार्टर्ड अकाउन्टेन्ट्स
ह० आर० सी० दास माथुर
बी० ए० काम०, एफ० सी० ए०
प्रोप्राईटर

निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठ, दिल्ली

३१ अक्तूबर १९५७ को समाप्त होने वाले वर्ष का आयव्यय पत्र

व्यय	रु० न०पै०	आय	रु० न०पै०
वेतन व्यय	११,७०८.४७	आयुर्वेदाचार्य परीक्षा शुल्क	४,५३०.००
मुद्रण तथा लेखन सामग्री	२,१७७.१७	वैद्याचार्य ,, ,,	२,२६५.००
डाक, तार तथा टेलीफोन	१,५१०.६५	आयुर्वेद विशारद परीक्षा शुल्क	४,४९०.००
केन्द्र तथा परीक्षा	९,१७५.२३	वैद्य विशारद , ,,	२,८६०.००
यात्रा व्यय	१,१५७.२२	आयुर्वेद भिषक् ,, ,,	८,७९२.००
आडिट व्यय	१००.००	रजिस्ट्रेशन शुल्क	१,९००.००
रेलवे पार्सल	८.५६	विलम्ब शुल्क	१,२०५.००
यातायात	१३६.७२	प्राप्तांक तथा पुनः शोधन शुल्क	१,०३१.००
बैंक व्यय	३५.२४	सम्बद्धता शुल्क	२८०.००
कार्यालय किराया	८००.००	उपप्रमाणपत्र तथा प्रमाणपत्र प्रतिलिपि शुल्क	२८९.५०
जल एवं विद्युत	६८.०९	केन्द्र-परिवर्तन शुल्क	२०.००
कर्मचारी रक्षाकोष	४३४.३९	ब्याज	२९६.३८
विविध	१९८.६५	विद्यापीठीय प्रकाशनों से आय	७४३.६४
उपकरण पर घटती १० %	२८३.३६	विभिन्न	१८१.०५
आय की व्यय से अधिकता	१,०८६.२२		
कुल योग	२८,८८३.५७	कुल योग	२८,८८३.५७

रामर्मूति संगर	एस० के० चारी	तिलकराम शर्मा	सीताराम मिश्र	शिवनाथ शर्मा	वामनराव दीनानाथ	बा०बा० नटराज शास्त्री
अकाउन्टेन्ट	कैशियर	कार्यालय मंत्री	विद्यापीठ मंत्री	कोषाध्यक्ष	प्रधान मंत्री	प्रधान

आडीटर्ज का प्रमाण पत्र

सन्तुलन पत्र पर हमारे प्रमाण पत्र के अनुसार

१८९३/१/ एफ, चाँदनी चौक
दरीबा के सामने, दिल्ली ।
ता० ३१ जनवरी, १९५८

कृते आर० सी० दास माथुर एण्ड कं०
चार्टर्ड अकाउन्टेन्ट्स
ह० आर० सी० दास माथुर
बी० ए० [illegible], एफ० सी० ए०,

१८९३/१/एफ, चांदनी चौक
दरीबा के सामने, दिल्ली ।
ता० ३१ जनवरी १९५८

निर्देशांक /RCDM/58

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन-विद्यापीठ दिल्ली के सदस्यों के नाम
३१ अक्टूबर १९५७ को समाप्त होने वाले वर्ष के लिये

आडीटर की रिपोर्ट

महानुभावाः,

हमने आपके महासम्मेलन और विद्यापीठ के ३१ अक्तूबर १९५७ को समाप्त होने वाले वर्ष के हिसाब का, हिसाब की किताबों तथा वाऊचरों से एवं हमें दी गई जानकारी तथा स्पष्टीकरण के अनुसार निरीक्षण किया है .और आय-व्यय का चित्र प्रस्तुत करते हुए हम अपना मत निम्न प्रकार व्यक्त करते हैं—

महासम्मेलन विभाग

१—कर्मचारी रक्षा-कोष के हिसाब का हमने निरीक्षण नहीं किया है। इसका पृथक् निरीक्षण होना चाहिए।

२—**आजीवन सदस्यता शुल्क**—यह देखा गया है कि सम्पूर्ण आजीवन सदस्यता शुल्क उसी वर्ष के आय-व्यय के हिसाब में ले लिया जाता है जिसमें कि वह प्राप्त होता है।

हमारा सुझाव है कि आजीवन सदस्यता शुल्क से एक आजीवन सदस्यता कोष खोला जाय और उस कोष से प्रतिवर्ष आयव्यय चित्र में साधारण (मान्य) सदस्यता शुल्क के अनुपात से धनराशि परिवर्तित की जाया करे।

विद्यापीठ विभाग

१—७५० रु० की जमा धनराशि की बाबत काली कमली वाले (क्षेत्र) की पुष्टि प्राप्तव्य है।

अन्त में हम आपका धन्यवाद करते हैं और हर समय अपने पूर्ण सहयोग का विश्वास दिलाते हैं।

भवदीय
वास्ते आर० सी० दास० माथुर एण्ड कं०
चार्टर्ड अकाउण्टेंट्स
ह० आर० सी० दास माथुर
बी० ए० काम०, एफ० सी० ए०

शुद्ध एवं शास्त्रोक्त आयुर्वेदीय

औषधियां

शुद्ध एवं उत्तम शास्त्रोक्त विधि से बनी आयुर्वेदिक औषधियां रस, भस्में, वटी, अवलेह, पाक, चूर्ण, घृत, कूपीपक्व रस तथा खनिज द्रव्य, वज्राभ्रक, मुक्ता, शंख, सीप, स्वर्ण माक्षिक, प्रवाल, शुद्ध शिलाजीत, केशर, कस्तूरी, अम्बर व दुर्लभ वनस्पतिवर्ग जैसे अष्ट वर्ग, प्रियंगु, सर्पगन्धा, त्रायमाण आदि खरीदते समय निम्न पते पर पत्र व्यवहार अवश्य करें।

विशेष जानकारी के लिये वृहद सूची पत्र मंगवायें।

हमारी औषधियों का व्यवहार कर आप सदैव के लिये हमारे स्थाई ग्राहक बन जायेंगे।

देशरक्षक औषधालय

कनखल (हरिद्वार)

यू० पी०

हजारों ग्राहक जिसकी मुक्तकंठ से प्रशंसा कर चुके हैं
औषधि-निर्माण और चिकित्सा-कार्य में

* पथ-प्रदर्शक ग्रन्थ *

सतन्त्रसार व सिद्ध प्रयोग संग्रह (प्रथम खंड) } अजिल्द मू० ६)
सजिल्द मू० ११)

(पैकिंग पोस्टेज पृथक् होगा)

इस ग्रन्थ की विशेषताएँ—

१. इस ग्रन्थ के सात संस्करण हाथों-हाथ बिक गये हैं। आठवां संस्करण सेवा में प्रस्तुत है।

२. शास्त्रीय और आयुर्वेदिक औषधियों के सैंकड़ों अनुभूत प्रयोग पूर्ण सत्यता और बिना छिपाव के इसमें दिये हैं।

३. बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, यू० पी० मेडिसिन बोर्ड, निखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ और अनेक पाठशालाओं में आलोच्य ग्रन्थ रूप से स्वीकृत किया गया है।

४. गुजरात प्रान्तीय आयुर्वेद प्रेमी जनता की मांग के कारण इसका गुजराती संस्करण भी प्रकाशित किया है।

५. १००० पृष्ठों का ऐसा ग्रन्थरत्न अन्यत्र किसी भाषा में उपलब्ध न होगा।

नोट—अपने आर्डर के साथ चौथाई रकम पेशगी रूप से भेजना मत भूलिये।

प्रकाशक—
कृष्ण गोपाल आयुर्वेद भवन
पो० कालेड़ा-कृष्ण गो.पाल (अजमेर)

स्थानीय विक्रेता—
भारत सेवक औषधालय
नई सड़क, दिल्ली।

Editor-in-Chief—Swami Chetnanand.
प्र० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के लिए कविराज स्वामी चेतनानन्द द्वारा प्रकाशित
मुद्रक—नया हिन्दुस्तान प्रेस, दिल्ली

खोज का आश्चर्यजनक परिणाम

खोज का क्रम आज नया नहीं-किन्तु युग युगान्त चला आ रहा है। खोजके ऊपर किसी कवि के ये शब्द क्षरोंमें लिखे हुए हैं कि :- "जिन खोजा तिन पाइयाँ पानी पैठ" त्रेतायुग में जब रावण के लड़के मेघना शक्तिबाण से श्री लक्ष्मणजी मूर्च्छित पड़े हुए थे औ चन्द्र जी की व्याकुलता का अन्त नहीं था, उस समय णजीमें पुनः जीवन लानेके लिये हनुमान जी को सं बूटी की खोज में जाना पड़ा था। हनुमान जी अपनी खोज में सफल हुए। परिणाम लङ्का के युद्धमें श्रीराम लक्ष्मण की विजय हुई।

आज का यह वैज्ञानिक युग भी मानवता और रोगों के महायुद्ध में, रोग द्वारा त्रस्त मानव को मुक्त करने के लिये नयी नयी खोजमें लगा है और अपनी खोज में सफल हो नये अन्वेषणों द्वारा मानवजाति की रक्षा में सफल होता जा रहा है।

डाबर कार्यालय भी गत ७२ वर्षों से सऔषध सेवारत हो लगातार खोजों द्वारा आयुर्वेदिक, पेटेण्ट दवाओं के निर्माण क्षेत्र में दूसरों का पथ प्रदर्शक बनता जा रहा है। डाबर कार्यालय की बनी हुई आयुर्वेदिक तथा पेटेण्ट दवाएं इत्यादि आज जिस प्रकार लोकप्रिय बनी हुई हैं उसका एक मात्र कारण है—डाबर कार्यालयका निरन्तर खोजका परिणाम! साथ ही स्वच्छता और सर्वाङ्ग पूर्णता से औषध निर्माण की क्रिया!! इसी खोज के परिणाम स्वरूप डाबर कार्यालय आज भारतीय जनता के सम औषध निर्माण करने वाला एक श्रेष्ठ कार्यालय बना हुआ है।

डाबर (डा॰ एस॰ के॰ बर्मन) लि॰ कलकत्ता-२९

अपूर्व गुणकारी आयुर्वेदिक तथा पेटेन्ट दवाओं के निर्माता

रजिस्टर्ड न

जनक

युग युगान्त
वि के ये शब्द
ा तिन पाइयां
लड़के मेघना
ड़े हुए थे और
ा, उस समय
ान जी को स
हुए। परिणाम

ा और रोगों
खोज में लगा

ीय जनता के सम

के निर्माता

आयुर्वेद

महासम्मेलन पत्रिका

चैत्र
२०१२

प्रधान सम्पादक—कविराज स्वामी चेतनानन्द चिदाकाशी
उप सम्पादक—कविराज हरिकृष्ण सहगल
संस्कृत विभाग सम्पादक—कविराज नेत्रपाल शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य

विषय-सूची

विषय	लेखक	पृष्ठ संख्या
बम्बई स्थायी समिति के मुख्य निश्चय		१८९
सम्पादकीय		१९१
अभियोगस्योत्तरम्		१९५
रसशास्त्र के रहस्यों पर नवीन प्रकाश	—श्री रमेश बेदी	१९७
कैंसर पर मेरा अनुभव	—श्री ईश्वरचन्द्र शर्मा	२०१
आमाशय का त्रिदोषार्बुद	—श्री पुरुषोत्तम देव	२०४
निर्गुण्डी	—श्री नानकचन्द्र शास्त्री	२०७
कस्तूरी	—श्री सी० एल० द्विवेदी	२०९
आयुर्वेद का भविष्य	—श्री महेन्द्र शास्त्री	२११
The Necessity of An Ayurvedic University	—Shri Upendra Nath Dass	२१५
कार्यालय मंत्रा पर लगाये गए आरोपों का स्पष्टीकरण	—श्री तिलकराम शर्मा	२२१
सत्यान्वेषण	—श्री स्वामी चेतनानन्द चिदाकाशी	२३५

विशेष-सूचना

दिल्ली से प्रकाशित होने वाले 'आयुर्वेद-विज्ञान' एवं लखनऊ से प्रकाशित होने वाले 'आयुर्वेद-सन्देश' आदि कुछ पत्रों में इधर कुछ समय से महासम्मेलन में मेरे कार्य के सम्बन्ध में असत्य और भ्रामक विरोधी प्रचार किया जा रहा है, यह प्रचार इतना अनर्गल और निराधार है कि मैंने इसका अभी तक कोई उत्तर देना आवश्यक नहीं समझा, परन्तु यह अब सीमोल्लंघन कर रहा है अतः मेरे लिये इसका उत्तर देना अनिवार्य हो गया है। हमारे सदस्य महानुभाव इससे विचलित न हों और मेरे उत्तर की प्रतीक्षा करें।

वामनराव दी० वैद्य
प्रधानमन्त्री
अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन

बम्बई स्थायीसमिति के मुख्य निश्चय

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन की स्थायी समिति का अधिवेशन दिनांक २५-३-५८ को बम्बई में निश्चित कार्यक्रमानुसार सम्पन्न हो गया। समिति द्वारा विचार्य-विषयों पर लिये गये निश्चयों का विस्तृत विवरण पत्रिका के आगामी अंक में प्रकाशित किया जायेगा। तब तक सदस्य महानुभावों की जानकारी के लिये यहाँ हम संक्षेप में महत्वपूर्ण निर्णयों को प्रकाशित कर रहे हैं।

१. अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के दिल्ली में सम्पन्न होने वाले ४३ वें वार्षिक अधिवेशन की तिथियों के सम्बन्ध में निश्चय हुआ कि क्योंकि स्वागत समिति की प्रस्तावित मई की तिथियों में दिल्ली में गरमी अधिक रहेगी अत: अधिवेशन सितम्बर अथवा अक्तूबर मास में किया जाय।

२. नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ शिक्षा सम्मेलन के सभापति के निर्वाचन में दोनों पक्षों की ओर से प्राप्त मतपत्रों सम्बन्धी शिकायतों पर विचार के अनन्तर विद्यापीठाध्यक्ष का चुनाव संशोधित नियमों के अनुसार दुबारा करने का निश्चय किया गया। इस निश्चय के अनुसार मतदाताओं की सेवा में ८-४-५८ को नये मतपत्र भेजे जा चुके हैं जिनकी कार्यालय में वापिसी की अन्तिम तिथि २३ अप्रैल है।

३. अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन तथा विद्यापीठ के १९५६-५७ वर्षीय आय-व्यय एवं सन्तुलन पत्रों को स्वीकार किया गया।

४. दिल्ली में विद्यालय स्थापना सम्बन्धी उपसमिति तथा अन्य दानों को लेने के लिये की तदर्थ उपसमिति की सिफारिशों को वैसे ही स्वीकार किया गया जैसे कि वे एजेण्डा में प्रकाशित की गई थीं।

५. महासम्मेलन नियमावली के संशोधन के लिये निम्न सात सदस्यों की एक उपसमिति का निर्माण किया गया :—

१. श्री महासम्मेलनाध्यक्ष।
२. „ पं० शिवशर्मा, बम्बई।
३. „ वी० बी० नटराज शास्त्री, त्रिचनापल्ली।
४. „ बद्रीविशाल त्रिपाठी, कानपुर।
५. „ पं० जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल, प्रयाग।
६. „ वैद्यनाथ सरकार, दिल्ली।
७. „ महासम्मेलन प्रधानमन्त्री।

जो सदस्य महानुभाव नियमावली में संशोधन सम्बन्धी प्रस्ताव भेजना चाहें वे इन्हें महासम्मेलन कार्यालय में शीघ्र भेजने का कष्ट करें।

वामनराव दी० वैद्य
प्रधानमन्त्री
अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन

शुद्ध एवं शास्त्रोक्त आयुर्वेदीय

औषधियां

शुद्ध एवं उत्तम शास्त्रोक्त विधि से बनी आयुर्वेदिक औषधियां रस, भस्में, वटी, अवलेह, पाक, चूर्ण, घृत, कूपीपक्व रस तथा खनिज द्रव्य, वज्राभ्रक, मुक्ता, शंख, सीप, स्वर्ण माक्षिक, प्रवाल, शुद्ध शिलाजीत, केशर, कस्तूरी, अम्बर व दुलभ वनस्पतिवर्ग जैसे अष्ट वर्ग, प्रियंगु, सर्पगन्धा, त्रायमाण आदि खरीदते समय निम्न पते पर पत्र व्यवहार अवश्य करें ।

विशेष जानकारी के लिये वृहद सूची पत्र मंगवायें ।

हमारी औषधियों का व्यवहार कर आप सदैव के लिये हमारे स्थाई ग्राहक बन जायेंगे ।

देशरक्षक औषधालय

कनखल (हरिद्वार)

यू० पी०

।। धन्वन्तरयेनमः
यत्प्रभापटलोद्भासि भाषतेऽद्यापि भारतम् ।
आयुर्वेदात्मकं ज्योतिः शाश्वतं नः प्रकाशताम् ।।

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

(अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का मासिक मुख-पत्र)

प्रधान सम्पादक—कविराज स्वामी चेतनानन्द चिदाकाशी ।
उप-सम्पादक—कविराज हरिकृष्ण सहगल ।
सम्पादक संस्कृत विभाग—वैद्य श्री नेत्रपाल शर्मा शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य ।
पत्रिका कार्यालय—महालक्ष्मी मार्केट, चांदनी चौक, दिल्ली ।
ार का पता—"आयुद" दिल्ली
टेलीफोन : २८९०२

वर्ष ४५
अंक ४
दिल्ली, चैत्र २०१५, अप्रैल १९५८
वार्षिक ५)
एकप्रति ।।)

सम्पादकीय

आयुर्वेद सम्बन्धी नीति में परिवर्तन के शुभ लक्षण

देशी चिकित्सा प्रणाली को प्रोत्साहन देने की मांग वर्षों से चली आ रही है। पराधीनता काल में परकीय सरकार होने से इस दिशा में कोई पग नहीं उठाया गया और यह समझा गया कि स्वाधीनता मिलने के उपरान्त ही देशी चिकित्सा पद्धति के भाग्य उदय होंगे। भारत का नवीन विधान लागू होने के उपरान्त केन्द्रीय शासकों के समक्ष यह तथ्य रखा गया और भारत के स्वास्थ्य के अनुकूल चिकित्सा पद्धति को प्रोत्साहन एवं संरक्षण देने की मांग पुनः जोरदार शब्दों में गूंजने लगी। तत्कालीन केन्द्रीय स्वास्थ्य अधिकारियों की अनुकम्पा से देशी चिकित्सा पद्धतियों की ओर उपेक्षा रही और जो स्थान आयुर्वेदिक एवं यूनानी पद्धति को मिलना चाहिए वह नहीं मिला।

२४ मार्च १९५८ को लोक सभा में स्वास्थ्य मन्त्रालय के व्यय के लिए मांगी गई रकम पर वाद-विवाद के समय जो तथ्य प्रकाश में आये हैं उससे हमें कुछ आशा की किरण

दिखायी दी है कि अब भारत सरकार का स्वास्थ्य मन्त्रालय देशी चिकित्सा पद्धति की ओर उपेक्षा-वृति नहीं अपनाने पायेगा। हमें प्रसन्नता है कि लोक सभा के अधिकांश सदस्यों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है और उनकी आकांक्षा है कि भारत की भूमि से उद्भूत चिकित्सा प्रणाली को यहाँ के नागरिकों के स्वास्थ्य की देख-रेख का कार्य सौंपा गया और इस कार्य के हेतु देशी चिकित्सा पद्धति को प्रोत्साहन दिया जाय। मान्य सदस्यों ने अपने भाषणों में जो तथ्य प्रस्तुत किये हैं उन्हें त्रिकालवाधित सत्य की संज्ञा दी जा सकती है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि यहां की ८० प्रतिशत जनता आयुर्वेदिक औषधियों का प्रयोग करती है फिर भी आज तक जनता की आकांक्षाओं का स्वप्न पूरा नहीं हुआ। इस दिशा में सर्व श्री नरदेव स्नातक, बी० डी० मिश्र, पण्डित ठाकुरदास भार्गव, श्रीराम वर्मा, राधेलाल व्यास, श्री ब्रजनारायण ब्रजेश और डॉ० सुशीलानायर, आदि प्रशंसा के पात्र हैं जिन्होंने आयुर्वेद के पक्ष में आवाज उठाई और उसे अधिक प्रोत्साहन देने की मांग की। हमें विश्वास है कि यदि मान्य सदस्यों का देशी चिकित्सा पद्धति के प्रति आकर्षण बना रहा तो वह दिन दूर नहीं जब राष्ट्रीय सरकार देशी चिकित्सा पद्धतियों को प्रोत्साहन ही नहीं देगी अपितु राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति के पद पर आसीन करेगी।

हम स्वास्थ्य मन्त्री श्री डी० पी० करमरकर के भी आभारी हैं कि अब उनका झुकाव आयुर्वेद एवं यूनानी पद्धतियों की ओर होने लगा है और आयुर्वेद का भविष्य अब उनके सबल हाथों में सुरक्षित सा जान पड़ता है।

बहस का उत्तर देते हुए उन्होंने कहा कि अनुसंधान के बाद आयुर्वेद की जिन औषधियों को उपयोगी पाया जायेगा सरकार उनका व्यापक रूप से उपयोग करेगी। उन्होंने कहा कि इसमें कोई सन्देह नहीं कि आयुर्वेद की प्रमाणित उपयोगिता वाली औषधियां एक दिन देश के प्रत्येक औषधालय में प्रयोग में ली जायेंगी। आयुर्वेद तथा अन्य पद्धतियों के साथ विमाता का सा व्यवहार करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

श्री करमरकर के उपर्युक्त शब्दों में आशा की एक हल्की सी झलक दिखाई देती है और यह समझा जा सकता है कि आयुर्वेद का महत्व धीरे-धीरे अधिकारी वर्ग पर उद्भाषित हो रहा है। जितना शीघ्र आयुर्वेद के प्रति उनका अज्ञानान्धकार समूल नष्ट हो सके उतना ही देश के लिये सुखदायी होगा।

यहां हम श्री करमरकर और अपने सम्मानीय संसद सदस्यों का ध्यान इस बात की ओर विशेषतया दिलाना चाहते हैं कि आयुर्वेदिक औषधियों का अनुसंधान आयुर्वेद के सिद्धान्तों के अनुसार ही किया जाय—अनुसंधान का आधुनिक प्रकार आयुर्वेद की उपयोगिता के पक्ष में अच्छे परिणाम नहीं उपजा सकता, क्योंकि दोनों चिकित्सा पद्धतियों के मूल सिद्धान्तों में आकाश-पाताल का अन्तर है और इनमें समझौते की कोई गुंजाईश नहीं है। माननीय संसद सदस्यों को विषय के इस पहलू पर सरकार का ध्यान अवश्य दिलाना चाहिये तभी सरकार आयुर्वेद से इच्छित लाभ उठाने में समर्थ हो सकती है।

उक्त वाद-विवाद में देशी चिकित्सा प्रणाली को प्रोत्साहन देने की मांग इतनी प्रबल रही कि श्री करमरकर के लिये चिकित्सा सम्बन्धी वर्तमान नीति में परिवर्तन किये

ता सदस्यों को सन्तुष्ट करना कठिन दिखाई पड़ता था। अतः बहस में हस्तक्षेप करने के लिये अचानक श्री नेहरू जी को आना पड़ा।

श्री नेहरू जी ने कहा कि देशी और अंग्रेजी चिकित्सा प्रणाली में विवाद छेड़ने की आवश्यकता नहीं है। चिकित्सा एक ही विषय है और हमें इस बात पर कोई आपत्ति नहीं कि वैद्य डाक्टर मरीज का किस चिकित्सा प्रणाली से इलाज करता है किन्तु इलाज करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को वैज्ञानिक शिक्षा अवश्य मिली हुई हो।

श्री पण्डित जी के कथन का हम भी समर्थन करते हैं—हम भी नहीं चाहते कि आयुर्वेद और एलोपैथी में कोई विवाद छिड़े—किन्तु यह विवाद वहां स्वतः ही उत्पन्न हो जाता है जहां सरकार एक पद्धति के विरुद्ध दूसरी को अधिक प्रोत्साहन देती है। एलोपैथी में जो अच्छाइयां हैं उन्हें सभी स्वीकार करेंगे किन्तु उसकी बुराइयों की उपेक्षा भी तो न की जानी चाहिये। दूसरी पद्धति के मूल्य पर उसका अन्ध-समर्थन सभी के लिये हानिकारक है। हम सरकार की इस मूल नीति में ही परिवर्तन की मांग करते हैं। आयुर्वेद को एलोपैथी के समान ही प्रोत्साहन मिले, उसके विकास और समुन्नति की ओर भी उतना ही ध्यान दिया जाये जितना कि एलोपैथी की ओर दिया जाता है तो यह विवाद स्वमेव ही शान्त हो जायेगा—दोनों चिकित्सा-पद्धतियां एक दूसरे की पूरक और सहायक सिद्ध होंगी। दिनांक ६ अप्रैल को श्री तंगमीण के एक प्रश्न के उत्तर में लोकसभा में दूसरी योजना के अन्तर्गत दी जाने वाली सहायता के सम्बन्ध में श्री करमरकर ने जो कुछ बताया वह आयुर्वेद के विकास के लिये पर्याप्त नहीं कहा जा सकता। अनुसंधान की जो योजनायें वर्तमान में चालू हैं उनमें देशी चिकित्सा के वर्तमान और नये विद्यालयों के लिये दी जाने वाली सहायता में वृद्धि करने की आवश्यकता है। सरकार को अनुसंधान के लिये व्यापक योजनायें, जो आयुर्वेद के सिद्धान्तों के अनुसार आयुर्वेदज्ञों द्वारा संचालित हों, अपनानी चाहिये, विद्यालयों को अधिक सहायता दी जानी चाहिये ताकि वे पूर्ण साधन-सम्पन्न बनकर आयुर्वेद के गौरव को बढ़ा सकें।

—स्वामी चेतनानन्द चिदाकाशी

"मार्तण्ड के चमत्कारी इन्जेक्शन्स"

मार्तण्ड फार्मेस्युटिकल्स भारत की एक मात्र सर्वसाधनसम्पन्न एवं इलेक्ट्रिक आटोमेटिक मशीनों द्वारा सुसज्जित लैबोरेट्री है, जिसमें सरकार द्वारा प्राप्त लाइसेंस के अधीन, सरकार द्वारा क्वालिफाइड कैमिस्टों की देख-रेख में इन चमत्कारी तथा फौरन असर करने वाले आयुर्वेदिक इंजेक्शनों का निर्माण पूर्ण वैज्ञानिक तरीके पर होता है। निरापद तथा स्वदेशी चिकित्सा के लिये इन अपने "मार्तण्ड" के इंजेक्शनों को उपयोग में लाइये, इनके आशुगुणकारी, निरापद और पूर्णलाभकारी होने की हम गारंटी देते हैं। अतः इस बार हमारे— चमत्कारी इंजेक्शनों की भी परीक्षा कीजिये। आपको पूर्ण संतोष एवं आयुर्वेद पर गर्व होगा। मार्तण्ड का बड़ा सचित्र सूचीपत्र मंगाकर आर्डर दीजिये।

मार्तण्ड फार्मेस्युटिकल्स, बड़ौत, एस० एस० रेलवे, (मेरठ) यू० पी०।

नेत्रों की अनेक व्याधियों और नेत्रों को सुरक्षित रखने के लिये

श्री हरि
जीवदया
नेत्र प्रभा
रजिस्टर्ड

अत्यंत लाभदायक है

नेत्रप्रभा—नेत्रकण्डु, कुकरे, धुन्ध, जाला, फूली, नेत्रस्राव, लाली रतोंधी, नेत्रों का दुखना, कम दिखाई देना, आदि के लिए अनुपम है।

जीवदया नेत्रप्रभा—अधिक परिश्रम, वेल्डिग, गाड़ी चलाना, धुआँ, सिनेमा, लिखना-पढ़ना, धूप, टाइफाइड, सूर्यावर्त और जागरण के कारण होने वाले सिर दर्द और आँखों के दर्द में लाभदायक है। सोते समय अंजन करने से बढ़िया नींद आती है। दिमाग स्फूर्ति पाता है।

नेत्रप्रभा—की बड़े-बड़े वैद्य डाक्टर, विख्यात संस्थाओं, संत महात्माओं तथा समाप्रचार पत्रों ने प्रशंसा की है। जैसे:—श्री बंबई आयुर्वेद चिकित्सक मंडल, सूरत वैद्य सभा, श्री राजकुमार सिंह आयुर्वेद कालेज इन्दौर। राजकोट के ग्रामों में आयुर्वेदिक बक्स में इसे स्थान प्राप्त हुआ है।

Jivadaya
Netraprabha

नेत्रप्रभा—नित्य व्यवहार से कोई हानि नहीं होगी—बालक तथा वयस्क दोनों ही दिन में एक से तीन बार दर्द के अनुसार इसे लगा सकते हैं। अधिक विवरणके लिये लिखिये—

जीवदया नेत्रप्रभा कार्यालय
(निर्माताः—आर. एस. शाह)
जूनी विक्टोरिया मिल्स कम्पाउण्ड,
गांमदेवी रोड, बंबई ७

यह तथ्य है

औषधि तभी गुणकारी व प्रभावशाली हो सकती है जब उसमें पड़ने वाला कच्चा द्रव्य असली व उत्तम हो।

प्रामाणिक द्रव्यों के लिये

नेपाली प्रदर्श

२१२, बड़गादी, बम्बई-३

- नेपाली कस्तूरी
- जंगबारी अम्बर
- बसरा मोती
- स्पेन केसर
- सूर्यतापी शिलाजीत
- विशुद्ध गोरोचन

के अतिरिक्त

प्रवाल शाख, प्रवाल मूल, प्रवालकांडी, बंसलोचन, भीमसेनी कपूर, जहरमोरा खटाई, केहरुवा, जुन्देदस्तर, हरडें, अकीक, सीप, कौड़ी, शंख, शिंगरफ, वर्की हड़ताल तथा सब प्रकारकी खड़ें (जवाहिरात) आदि।

विशेष विवरण के लिये सूचीपत्र मंगाएँ।

अभियोगस्योत्तरम्

देहली आयुर्वेदसम्मेलनस्य कार्यकारिण्या समित्या विद्यापीठस्याध्यक्षताथ श्री प्रभाकरचट्टोपाध्यायानां निर्वाचनप्रचारपत्रे मम हस्ताक्षरसन्निवेशः समधिकतया नैव क्षोदक्षमोऽसंगतश्चेति १६-३-५७ दिवसीयाधिवेशने कश्चन प्रस्तावः पारितो वर्तते। मया तत्र निखिलायुर्वेदमहासम्मेलनस्य सभापतिरूपेण नैव हस्ताक्षरसन्निवेशः कृतः परन्तु व्यक्तिगतरूपेण कृत इति इन्द्रप्रस्थवैद्यसभायाः अध्यक्षाणामन्तिकं तदीयतन्त्रीवार्त्तायाः प्रत्युत्तररूपेण प्रहितमास्ते। यदा हस्ताक्षरसन्निवेशः कृतः, तदाहं नैव सर्वसम्मत्या निर्वाचित आसम्। न च तत्रभवतामुपेन्द्रनाथदासमहोदयानामाक्षेपपरं किमपि प्रचारपत्रे विलिखितमास्ते। नापि यल्लिखितं, तत्र असत्यता वर्तते। अतः बहोः कालात्परिचितानां तत्रभवतां प्रभाकर शास्त्रिणां परिचयप्रदानपरे प्रचारपत्रे व्यक्तिगतरूपेण मम हस्ताक्षरसन्निवेशो नैव दोषावहः प्रत्युत गणतन्त्रसम्मत एवेति विज्ञापयामि। एवमेव विद्यापीठाध्यक्षाणां श्री नटराजशास्त्रिणामपि व्यक्तिगतरूपेण प्रचारं नैवं दोषावहं कलयामि। आङ्गलभाषामये प्रचारपत्रे मदीयनाम्नोऽधस्तात् "Present President All India Ayurvedic Congress" इत्येवमंशं च कुण्डलितं पश्यामि।

निखिलायुर्वेदसम्मेलनस्याधिपतिरूपेण हि सर्वेषां पुरत एकरूपो निष्पक्षपातेन तिष्ठामीति सहृदयानां वैद्यमहोदयानां पुरत उद्घोषयामि। मम कुत्रचित् जातस्तत्र भवद्भिः प्रदर्शितश्चेत्, तमिमं च समाधातुं यतिष्ये। इति।

-४-५८

आश्रवः श्री अनन्तत्रिपाठिशर्मा

महर्षि चरक का अपूर्व योग

* ब्राह्म-रसायन *

मानसिक शक्ति, स्फूर्ति, उत्साह, बुद्धि, स्मृति ओज
एवं दीर्घायुष्य प्राप्ति के लिए

अत्युत्तम कल्प है।

नवशक्ति आयुर्वेदालय (प्रा.) लि.
भुसावल - जबलपुर - नागपुर

सन्यासी की दवा से कैन्सर का इलाज

आन्ध्र प्रदेश के आयुर्वेदिक बोर्ड के अध्यक्ष डा० ए० लक्ष्मीपति ने हैदराबाद में एक पत्र प्रतिनिधि सम्मेलन में बताया कि कैन्सर की एक अ्र_भुत दवा जो पश्चिमी पंजाब के एक शरणार्थी को एक सन्यासी ने बतायी थी और जिसे अब तक उसके परिवार ने गुप्त रखा था, अब मनुष्य समाज की भलाई के लिये उक्त परिवार द्वारा सरकार को बता दी गई है ।

उन्होंने कहा कि उक्त पंजाबी शरणार्थी ने ज़ो अपना नाम प्रकट करना नहीं चाहता, यह दवा सरकार को दी है, और उस का नुसखा भी बता दिया है । साथ ही उसने प्रयोग के तौर पर इस दवा से छः रोगियों का इलाज भी अपनी देख-रेख में किया जाना स्वीकार कर लिया है ।

यह औषधि हीरे (पुरुषजाति) की भस्म और पारा ताम्र तथा कुछ जड़ी बूटियों के संमिश्रण से बनायी जाती है । इस शरणार्थी ने जिसके दादा इस औषध से कैन्सर से मुक्त हुए थे और जो वैद्य न होने पर भी उनके आदेश से परोपकार के लिये इस रोग की चिकित्सा करता है, दावा किया है कि उसने इसी दवा से क्षयरोग के कारण हो जाने वाली गांठों और होडकिन्स डिसीज नामक रोग की भी सफल चिकित्सा की है ।

डा० लक्ष्मीपति ने, जो त्रिवेंद्रम आयुर्वेदिक कालेज के अवैतनिक प्रिंसिपल हैं, कहा कि मुझे इस दवा की गुणकारिता का प्रमाण भी मिल गया है । इस दवा से इलाज की बुनियादी पद्धति भी वही है जिससे मैं इस रोग का इलाज किया करता हूं । और वह यह है कि शरीर के भीतर विद्यमान दुश्मन को मारने के बजाय रोगी के शरीर का गठन ही बदल दिया जाय ।

नवरत्न रस

स्त्री, पुरुष और बालकों के लिये महौषधि

यह नवरत्न रस हीरा, पन्ना, मोती, माणिक आदि नौ रत्नों की भस्म और सुवर्ण आदि के संयोग से तैयार किया जाता है । शरीर में स्थित रस, रक्त आदि धातुओं की उत्तरोत्तर वृद्धि और पोषण तथा वीर्यधातु की शुद्धि और पुष्टि करना इसका विशिष्ट कार्य है। शुक्र स्थान को पुष्टि मिलने से वीर्य में स्थित निर्बलता दूर होकर नपुंसकता, क्लैव्य, ध्वजभंग, वीर्यपात, स्वप्नदोष आदि नष्ट होते हैं और शरीर नवयौवन प्राप्त करता है ।

यह गर्भावस्था में पांडु, रक्त की कमी, हाथ और पैरों में शोथ तथा श्वास आदि रोगों की उत्पत्ति को रोकता है। अल्पसत्वयुक्त प्रजा होती हो या बालक जन्मते ही मर जाता हो तो नवरत्न रस प्रथम मास से प्रसव काल तक सेवन कराने से प्रसव सखपूर्वक होता है। बालक भी तन्दुरूस्त जन्मता है। इसके सेवन से अकाल प्रसूति और रक्तस्राव नहीं होता ।

इसके उपरांत किसी भी कारण से पांडु, क्षय, जीर्णज्वर, कास, श्वास, वातव्याधि, मधुमेह, रक्तस्राव, मगज की निबलता, वीयविकार आदि में बाल, वृद्ध, युवा, स्त्री, पुरुष सबको नवरत्न रस देने से शक्ति प्राप्त होती है। निरोगी शरीर के लिये यह रसायन है रोगी शरीर के लिये औषध ।

मूल्य २८ गोली का रु. ५), तोला १०)

ऊंझा फार्मेसी ऊंझा

ऊंझा (उ० गु०).

रसशास्त्र के रहस्यों पर नवीन प्रकाश

वैद्य श्री रामेश बेदी, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार

आयुर्वेद के अनुसार सभी धातुयें स्वर्ण में रूपान्तरित हो सकती हैं। सभी धातुओं का बीज पारद में जारण करने से पारद अन्य धातुओं को स्वर्ण बना सकता है। रुद्रयामल तन्त्र के अनुसार सभी धातुओं की अत्यन्त शुद्धि के बाद निरुत्थ भस्में बनाई जायें तो उन भस्मों के योग से अन्य धातुओं को स्वर्ण में रूपान्तरित कर सकते हैं।

रसशास्त्र में पारद की दो प्रकार की जारणा बताई है—खेचरी और भूचरी। खेचरी में रत्नों की जारणा होती है। रत्नों की जारणा अत्यन्त व्ययसाध्य है। श्री नारायण स्वामी जी ने पूर्वाश्रम में इसका अनुभव किया था। परन्तु अब सन्यासाश्रम ग्रहण करने पर वे अपरिग्रही हो गये। वर्तमान समय में पूरे साधन न होने से उन्होंने इस व्यय-साध्य खेचरी जारणा को अभी हाथ में नहीं लिया। भूचरी जारणा के सारे नमूने उन्होंने बनाये हैं। उसमें स्वर्ण के अतिरिक्त शेष जो कल्पित बीज बनाये हैं, उनका विवरण मैं इस लेख में दे रहा हूं। स्वर्ण के बदले में धातुओं के जो कल्पित बीज दिये जाते हैं वे उन्होंने पांच प्रकार से बनाये हैं।

नाग, ताम्र, यशद, जीवित भूनाग और नाग ताम्र।

एक पारद में आपने प्रथम शुद्धि के बाद बुभुक्षित करने के लिए विषों का जारण किया। बाद में अग्निस्थायी निर्धूम निर्गन्ध गन्धक का जारण किया। बाद में उसी पारद में भास्कराभ्र (ताम्र अभ्रक) का जारण किया। फिर उसी पारद में जीवित भूनाग का जारण किया। यह पारद मने स्वामी जी की अनुसन्धानशाला में देखा है। यह अत्यन्त तेजस्वी, निर्मल, रंजित, स्वर्णाभ है। स्वामी जी का कहना है कि डमरू यन्त्र में ऊर्ध्वपातन करने पर यह पूर्ण अग्निस्थायी पाया गया है। यह बुभुक्षित है। आप इसमें से थोड़े से पारद में अब स्वर्ण जारण करने वाले हैं।

पारद का दूसरा प्रकार

पारद की शुद्धि के बाद अग्निस्थायी गन्धक के त्रिगुण तेल से पारद का सतत् एक वर्ष तक जारण हुआ अर्थात् गन्धक तेल के अन्दर बालुका यन्त्र में सिलिका बेसिन (कटोरी) में और पोर्सलेन कुण्डों में लकड़ी के कोयले की अंगीठी पर पकाया गया। इस प्रक्रिया से पारद बुभुक्षित, अग्निस्थायी और रंजित हुआ है। पारद में स्वर्ण, स्वर्ण बीज, कल्पित बीज या माया बीज देने से पारद बीजों के जारण के प्रमाण के अनुसार अलग-अलग प्रकार की बेधन शक्ति पारद में आयेगी। दशवेधी से कोटिवेधी तक जैसा जैसा जारण होगा वैसी-वैसी शक्ति आयेगी। पारद में सुवर्ण अभ्रक जारण करने से यह पारद देह सिद्धि और रोगनाश के लिए काम देगा।

पारद का तीसरा प्रकार

शुद्धि के बाद त्रिगुण गन्धनागद्रुति का जारण किया है। यह पारद अग्निस्थायी,

बुभुक्षित एवं रंजित हुआ है। इसमें आप कल्पित बीज, माया बीज और स्वर्ण बीज देने वाले हैं। इसमें भी जारण की मात्रा के अनुसार पारद की अलग-अलग वेध शक्ति होगी। यह पारद धातुवाद में उपयोगी है।

शुकतुण्ड ताम्र

दो सेर ताम्र को अनेक रासायनिक विधियों से गुजारने के बाद स्वामी जी ने शुकतुण्ड ताम्र प्राप्त कर लिया है। एक प्रयोग में उनको दो सेर ताम्र से २३॥ तोले ताम्र प्राप्त हुआ है। मैंने यह ताम्र देखा है। इसके पृष्ठ पर चमक है। इसका आपेक्षिक गुरुत्व अब ताम्र का न रहकर स्वर्ण के आपेक्षिक गुरुत्व के समान है। स्वर्ण जैसा ही मुलायम यह बन गया है।

दूसरे शुकतुण्ड ताम्र की भस्म तैयार की गई है। यह पारद में जारण करने योग्य हो गई है। इसको पारद में जारण करने से पारद सहस्र वेधी बन जायगा।

पहले प्रकार के शुकतुण्ड ताम्र के बारे में स्वामी जी का कथन है कि इस ताम्र का स्वर्ण में रूपान्तर करना बहुत सुगम है और इस रूपान्तर में स्वर्ण उतना ही प्राप्त होगा जितना कि ताम्र था। इसकी भस्म बनाकर पारद को जारण करने से वह सहस्रवेधी बन जायेगा। स्वामी जी का कहना है कि ताम्र, स्वर्ण और नाग के जारण से पारद अग्निस्थायी और वेधक होता है। शेष धातुओं के जारण के लिए पारद को प्रथम पूर्ण अग्निस्थायी करके बाद में जारण करना चाहिए। स्वामी जी का यह भी अनुभव है कि अभ्रक या भूनाग सत्व के या जीवित भूनाग के जारण से पारद पूर्ण अग्निस्थायी होता है और उसकी वेधक शक्ति बढ़ती है। यहां अभ्रक और स्वर्णमाक्षिक का सत्व आपने निकाला था। उनकी इस समय भस्म बनाई जा रही है। इस सत्व से आपने पारद का जारण भी किया है।

यशद बीज

यह दो प्रकार से बनाया जाता है। यशद को शुद्ध करके अग्निस्थायी बनाया गया है। इसका बीज बनाया है। इसके जारण से पारद सहस्रवेधी होगा। प्रथम प्रक्रिया में चौदह सेर यशद लिया था और अग्निस्थायी होने पर तेरह छटांक बचा था। दूसरी प्रक्रिया में सवा सेर लिया था और एक रत्ती भी नहीं घटा था।

नाग बीज

सात सेर नाग को विधिवत् शुद्धि करने के बाद फिर बीज रंजक तेल में २१ वार रंजित किया, फिर इसे बुभुक्षित किया। इस सारी प्रक्रिया के बाद ढाई सेर शेष प्राप्त हुआ। यह नाग अग्निस्थायी तथा बुभुक्षित हुआ। इसमें से एक नाग की भस्म बनाई है। यह जारण और वेध समय में क्रामण के रूप में काम आयेगा। स्वामी जी ने अन्य क्रामण भी बनाये हैं।

बीज रंजक तेल

चार कनस्तर सरसों का तेल लेकर उसमें पलाश पुष्प, रतनजोत, रक्त चन्दन आदि रक्त-पीत वर्ग की औषधियों के योग से यह तेल बनाया गया है। इस तेल के योग से कोई भी धातु पीत-रक्त हो सकती है। किसी भी धातु की लोह संक्राति (कालिमा) नष्ट होती है। इससे धातु स्वर्ण में परिवर्तित नहीं होती परन्तु उसमें स्वर्ण की आभा आ जाती है और तपाने से धातु काली नहीं पड़ती है। इसमें स्वर्ण को इक्कीस बार बुझाया जाय तो वह अधिक तेजस्वी तथा

लाभ होगा। इस तरह के रंजित स्वर्ण को आरित करने का शास्त्र में विधान है।

रस रंजक तेल

हरिताल, संखिया, शिंगरफ और मैनसिल को स्वामी जी ने अग्निस्थायी करके आकाश-यन्त्र से इसका तेल पातन किया है। इस तेल को पारद में जारण करने से पारद अग्नि-स्थायी, रंजित और वेधक होगा। तेल का जितना-जितना जारण किया जायेगा, उतनी-उतनी उसकी वेधक शक्ति बढ़ेगी। रस शास्त्र के सिद्धान्तानुसार यह तेल जारण करने के बाद किसी अन्य धातु का बीज देने की आवश्यकता नहीं। उपर्युक्त चीज़ें माया बीज मानी जाती हैं। इसके अतिरिक्त दो प्रकार के अग्निस्थायी शोरा बनाया है। अग्निस्थायी सुहागा भी बनाया गया है। इनके मिश्रण से एक ऐसा मोमियां शोरा बनाया है, जिसमें सारे रस-उपरस अग्निस्थायी हो जाते हैं। स्वामी जी का कहना है कि इस क्रिया में दिनों के प्रमाण में रस-उपरस अग्निस्थायी किये जा सकते हैं।

माया बीज

शिंगरफ, हरिताल, मैनसिल, गन्धक और संखिया को आपने अग्निस्थायी बनाया है, उनका उपर्युक्त किसी पारद में आप अलग अलग जारण करने वाले हैं।

अभ्रक जारण करने के लिए आप बीज बना रहे हैं। आपके एक मित्र आयुर्वेद रस-शास्त्र में जिज्ञासा रखते हैं। उनका नाम श्री टी० गोपालप्पा है। वे वेंकटगिरी टाऊन आन्ध्र राज्य के प्रसिद्ध वैद्य हैं। आपने अत्यन्त परिश्रम करके बालमूत्र का क्षार लगभग एक सेर बीज के निर्माणार्थ बनाकर भेजा है। प्राकृतिक नर-क्षार का वास्तव में क्या प्रयोग होता है, उस पर आप अपनी प्रयोगशाला में परीक्षण कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त गाय, भैंस, बकरी और भेड़ के दध्यम्ल का क्षार बना कर उनके पारद पर प्रभाव के प्रयोग जांच रहे हैं। गोरक्ष संहिता में तथा अन्य रस ग्रन्थों में हीरे के जारण के बदले में नर-मूत्र क्षार के और दध्यम्ल क्षार के जारण का संकेत मिलता है। साथ ही अन्य रस-ग्रंथों में छः वनस्पतियों के क्षारों की जारणा की प्रक्रिया से पारद अग्निस्थायी करने के विधान मिलते हैं। उनमें से भी कुछ क्षारों का पारद पर प्रभाव का प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे हैं। आपने बाजारू ठीकरी का नौसादर अग्निस्थायी किया है और उस का तेल पातन किया है। उसको भी आप बीज के रूप में काम में लेने वाले हैं। आपका कहना है कि उसकी सहायता से पारद अग्नि-स्थायी और बुभुक्षित हो सकता है। इस तरह से सारे भूचरी जारण के प्रत्यक्ष नमूने स्वामी जी ने अपनी प्रयोगशाला में तैयार किए हैं। भगवान नागार्जुन की अमर प्रेरणा "सिद्धे रसे करिष्यामि निर्दारिद्र्यगदं जगत्" से आप इस कठिन मार्ग की ओर चल रहे हैं। अपने प्रयोगों में उन्हें बड़े विचित्र अनुभव हुए हैं। विषाक्त पदार्थों की गैसों से मूर्च्छाग्रस्त हो जाना उनके परीक्षणों में असाधारण बात नहीं है। पारद के परीक्षणों में मूर्च्छावस्था में वे तीन बार स्ट्रेचर पर हास्पिटल में पहुंचाये गये हैं। उन की सहकर्मिणी श्रीमती कमला जी भी पारदीय विष में आक्रांत होकर मरते मरते बची हैं।

इस वर्ष मैं कन्दों और जड़ी बूटियों की तलाश में फूलों की घाटी म्यूधार में जा रहा था। बद्रीनाथ के पूर्व-दक्षिण में कोई पन्द्रह हजार फीट की ऊँचाई पर यह सुरम्य घाटी है, जिसमें सैकड़ों प्रकार की वनस्पतियां

फूलती हैं। अपने मोहक सौन्दर्य में अनेकों विदेशियों को और विशेषज्ञों को इस घाटी ने आकृष्ट किया है। इस घाटी को जाते हुए मैं स्वामी जी के प्रयोगों को देखने के लिए यहां ठहरा था। पिछले वर्ष मैं कुछ घण्टों यहां ठहरा था। परन्तु इस बार तीन दिन ठहरा और स्वामी जी के कार्य के बारे में मैंने अधिक से अधिक जानने का प्रयत्न किया। मैंने अनुभव किया कि स्वामी जी का उद्देश्य स्वर्ण-निर्माण मात्र नहीं है। उनका लक्ष्य बहुत विशाल है। आयुर्वेद के रस शास्त्र में वर्णित जिन बातों का ज्ञान अब वर्तमान जगत को नहीं रहा, उस सबका वे प्रत्यक्ष ज्ञान करना चाह रहे हैं। बात-बात में वे शास्त्रों के उदाहरण देते हैं। उन्हें अपने शास्त्रों के वचनों पर पूरा भरोसा है। अब तक वे जितना कार्य कर चुके हैं, उससे आयुर्वेद के विलुप्त गौरव की निश्चय ही पुनः स्थापना हुई है। यह ठीक है कि विगत छः वर्षों में इन प्रयोगों में पचास हज़ार रुपये से अधिक व्यय हो चुके हैं, परन्तु इनके सम्पादित कार्य को देखते हुए यह राशि नगण्य ही है। मैं आयुर्वेद रस-शास्त्र के प्रेमियों को सलाह दूंगा कि वे स्वयं स्वामी जी के कार्यों को देखें। एक बात उन्हें ध्यान में रखनी चाहिए कि सोना बनाने का नुस्खा जानने मात्र के उद्देश्य से वहां जाने पर उन्हें निराशा मिलेगी। परन्तु अपने रस-शास्त्र के विलुप्त प्रकरणों को समझने के उद्देश्य से जब वे वहां जायेंगे तो उन्हें सचमुच आनन्द आयेगा। नागार्जुन की परम्परा को आगे चलाने की लगन में स्वामी जी का कार्य उन्हें निस्सन्देह अत्यन्त उपयोगी नज़र आयेगा। अच्छा हो स्वामी जी के समान ही धुन के पक्के रसायनशास्त्र के जिज्ञासु त्यागी और तपस्वी कुछ व्यक्ति स्वामी जी के साथ इस कार्य में जुट जायें। मुझे विश्वास है कि इसमें देश का महान कल्याण होगा। स्वामी जी द्वारा रस-शास्त्र में एक नये अध्याय की अभिवृद्धि की हम उत्सुकता से प्रतीक्षा करेंगे। भगवान इस महान प्रयत्न में स्वामी जी को दीर्घायु और स्वास्थ्य प्रदान करें।

यूनानी, आयुर्वेदीय वनौषधि और खनिज द्रव्य सस्ते मूल्य पर शुद्ध व उत्तम

हमारी दुकान से दुर्लभ केसर, कस्तूरी,
विविध प्रकार की काष्ठौषधि, मुक्ता,
सीप, शंख, शुद्ध शिलाजीत, सुवर्ण-
माक्षिक, प्रवाल, पारद, गंधक
आदि सब प्रकार के खनिज
तथा वनौषधि द्रव्य थोक
व परचून भाव पर प्राप्य

हमारी विशेषता-वास्तविक और शुद्ध सामान

विस्तृत विवरण के लिए पत्रव्यवहार करें और बड़ा सूचीपत्र मंगवायें।

तार का पता : आयुर्वेद फोन : ३१७९९
पता : शा० जादवजी लालूभाई एण्ड को०
२४५, कालबादेवी रोड, बम्बई।

कैंसर पर मेरा अनुभव

ईश्वरचन्द्र शर्मा, वैद्यवाचस्पति, शान्ति औषधालय, पटियाला

[नोट—मेरा लेख पढ़ने से पहले मार्च १९५७ की महासम्मेलन पत्रिका में प्रकाशित माननीय डा० ए० लक्ष्मीपति महोदय, प्रिंसिपल गवर्नमेंट आयुर्वेदिक कालेज, त्रिवेन्द्रम (केरल) का 'कैंसर की आयुर्वेदिक चिकित्सा' नामक लेख अवश्य ही पढ़ें, क्योंकि मेरा अनुभव इसी लेख के योग पर है यह लेख लिखने का मेरा यह अभिप्राय नहीं है कि मैं डाक्टर साहिब के अनुभव को झुठला रहा हूं (क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः) किन्तु अनुभव का एक अन्य रूप पाठकों के सामने रख रहा हूँ, जिससे हम सब इस योग के गुण दोषों को परख सकें और इस दिव्य योग के दोषों को गुणों में बदल सकें, इसके बिना यह योग घातक है यह मेरा अनुभव है, विस्तृत विवरण इस लेख में पढ़िये।]

आयुर्वेद की पत्र-पत्रिकाओं में अनेकों अनुभव सिद्ध योग प्रकाशित होते रहते हैं किन्तु सभी योगों को अनुभव में लाना तो कठिन रहता है किन्तु गण्यमान्य विद्वानों के योगों को सत्य मानकर उनसे लाभ उठाने की इच्छा सभी में होती है।

डाक्टर साहिब ने कैंसर के लिये 'भल्लातक' का प्रयोग किया है और उन्होंने अपने अनुभव के आधार पर उसमें यह विशेषताएँ मानी हैं कि—

१. कैंसर की सभी अवस्थाओं में दिया जा सकता है।

२. आठ भल्लातकों का प्रयोग कई मास किया जा सकता है।

३. सदैव अनुकूल परिणाम होते हैं।

४. कण्डू आदि हो जाने पर, दवा बन्द कर देने से उपद्रव शान्त हो जाते हैं।

यह चारों अनुभव पढ़ लेने से चिकित्सक के मन में से भल्लातक की भयंकरता निकल जाती है और वह इसका प्रयोग करने लग जाता है जिस प्रकार समर्थ स्वामी की आज्ञा पाकर सेवक किसी पर आक्रमण कर देता है कि स्वामी मेरी रक्षा कर लेगा, इसी प्रकार का आज्ञा पालन मैंने कर दिया।

पूर्व इतिहास—नाम—शकुन्तलादेवी—वय: ४५ वर्ष। लगभग छः मास पहले यकृत प्रदेश में कभी-कभी भयंकर पीड़ा हो जाती थी जो साधारण पाचक औषधियों से ठीक हो जाती थी और सब लक्षण ठीक थे—धीरे-धीरे यह औषधियां गुणहीन होती गईं, अंग्रेजी, यूनानी तथा वैद्यक चिकित्सा चलती रही किन्तु दुःख बढ़ता गया, जो कि "कोडोपायरीन" की टिकिया देने से शान्त हो जाता था, डाक्टरों ने निदान किया कि हमें "पित्ताश्मरी" का सन्देह है, इसका आपरेशन करवा लेना चाहिए—सो २७-१-५८ को यकृत प्रदेश का आपरेशन कर लेने के बाद डाक्टर साहिब ने देखकर कहा कि मुझे तो 'कैंसर' प्रतीत होता है, तभी उन्होंने बिना कुछ और किये जखम सी दिया और मांस

को टैस्ट करने पर जो परिणाम आया वह इस प्रकार है—

Report

To be filled by Pathologist only.
NAME—Shakuntla Devi, Bed No. Special ward 11.
Pathology No. 127/58
Glass Appearance—
Microscopic Appearance.
LIVER—Metastatic adeno Carcinoma (Primary) Consistent with the Structure of Gall bladder or G. A. I. Tract Carcinoma.
29-1-58.
S/D.
Professor of Pathology.

यह रिपोर्ट पढ़ते ही मुझे डाक्टर साहिब वाले लेख का ध्यान आया और उसे बार-बार पढ़ा, स्थानीय चिकित्सकों से भी सम्मति ली, यही मत स्थिर हुआ 'सम्भव है भयंकर रोग के नाश के लिए यह अग्निरूप भल्लातक लाभकारी हो', तब उसका ११-२-५८ से प्रयोग आरम्भ किया जो कि इस अनुपात से था—

जलसिक्त भल्लातक—एक अदद	
धुले हुए साफ-तिल	६ माशा
गुड़	१ तोला

इसकी पिष्टी बना कर, १० तोला जल में उबाल कर ५ तोला शेष रखा।

गोदुग्ध	१० तोला
उपर्युक्त क्वाथ	५ तोला

पुनः उबालकर छानकर पहले थोड़ा सा माखन खिलाकर केवल प्रातःकाल पिला दिया जाता था।

इसके साथ—बादाम गिरी	५ तोला
बीज छोटी इलायची	१ तोला
बंसलोचन	१ तोला
मिशरी	५ तोला
माखन	५ तोला

इस सबकी यथाविधि चटनी सी बना कर थोड़ी-थोड़ी कई बार देते थे, उपर्युक्त दवा लेने से पहले भी चटा दिया करते थे जिससे मुख-पाकादिक न हों।

प्रतिदिन शरीर पर तिल तेल की मालिश, स्नान करवाते थे।

पथ्य—दूध, बिस्कुट उपर्युक्त बादाम वाली चटनी, सेव, अंगूर, खील आदि कभी कभी दे दिया करते थे। यह क्रम ११-२-५८ से १८-२-५८ तक रहा, तब तक भल्लातक का कोई बिषैला चिह्न प्रतीत नहीं हुआ—तब इसके बाद सायंकाल भी इतनी ही मात्रा दी जाने लगी। इससे २०-२-५८ को कण्डू आरम्भ हो गई और मैंने इसी दिन से इसे देना बन्द कर दिया और कण्डू आदि का बाह्य तथा आभ्यांतरिक उपचार आरम्भ कर दिया। बाह्य उपचार में दही, तिल तेल दूध की मालिश, आभ्यांतरिक में इन्हीं चीजों को पिला भी देते थे। किन्तु दुःख बढ़ता गया। १८-२-५८ को इस अवस्था से पूर्व डाक्टर साहिब को रुग्णा का पूर्ण इतिहास हिन्दी में लिखकर भेजा, जिसका कि मुझे २७-२-५८ को उत्तर मिला कि 'आप सब बातें अंग्रेजी में लिखकर भेजें तब उत्तर दिया जा सकता है' अस्तु! मैंने इसी दिन सारी स्थिति अंग्रेजी में लिख कर भेज दी, जिसका उत्तर मुझे १५-३-५८ आज तक नहीं मिला।

हां, तो २०-२-५८ से जो कण्डू आरम्भ हुई थी वह २१-२-५८ को ज़रा तेज हुई सारा शरीर लाल सा हो गया, बेचैनी बढ़ने लगी। २२-२-५८ को यही लक्षण तीव्र हो गए, फुँसियाँ बन गईं, आंखों में से पानी निकलने लगा, क्षणमात्र के लिए भी खुजली बन्द नहीं होती थी, प्यास, मुखशोष, अनिद्रा

आदि लक्षण हो गए। २३-२-५८ को वही फुंसियां भर गईं, छाले से पड़ गये, फूट-फूट कर और स्थानों पर भी उत्पन्न होने लग गईं, आंख, मुख, मल, मूत्र स्थान आदि में भी फुंसियां हो गईं, मलमूत्र त्यागने के समय भयंकर पीड़ा होती थी, सभी लक्षण तीव्रतर हो गए। २४-२-५८ को यह सभी लक्षण उग्र हो गए, वमन भी आरम्भ हो गए, मल के साथ रक्त भी आया, मूत्र त्यागने में अत्यन्त कष्ट रहा। २५-२-५८ को यही लक्षण रहे किन्तु दोपहर के समय अकस्मात् ही आक्षेप आरम्भ हो गए, प्रलाप, मूर्छा, बार-बार होती रही, नाड़ी भी लुप्त हो गई, इस समय तो घर में कुहराम मच गया, लाक्षणिक उपचार करते रहे। सबसे अधिक लाभ जिस औषध से हुआ वह था—

कहरवाई नारियल पिष्टी	१ तोला
काले तिल	२ तोला

पिष्टी बनाकर

३ मात्रा लेकर, ५ तोला रूह गुलाब में घोल-घोल कर पिलाते रहे जिससे नाड़ी तो कुछ देर बाद ठीक हो गई, बाकी लक्षण भी कम हो गए। इसी प्रकार का मिलता-जुलता उपचार आज १५-३-५८ तक भी चल रहा है किन्तु अब भयंकर लक्षण नहीं हैं, कण्डू अब भी है। मल मूत्र की जलन के लिए दही और दूध जैतून का तेल मिला कर बस्ति दी। तुत्थ रहित "जात्यादि तेल" की पिचकारी भी दी, और व्रणों पर भी लगाते रहे आंखों में भी यही डालते रहे, आँखों में रूह गुलाब तो बार-बार डालते रहते थे—"खमीरा मरवारीद" तो इन दिनों में छटाँक भर खिलाया होगा इसी प्रकार और भी मिश्रित चिकित्सा चलती रही।

इन सब उपद्रवों का विवरण मैंने २८-२-५८ को डाक्टर साहिब को लिखा, यह भी लिखा कि कोई ऐसा उपाय बताएं जिससे आपका और हमारा यश रह जाय" कहां लाभ तो क्या होना था अपितु "पूर्वमेव संशयः" वाली बात चरितार्थ हो गई क्योंकि यह पत्र भी हिन्दी में था इसका उत्तर भी आज तक नहीं मिला। यह सब चिह्न २८-२-५८ को अंग्रेजी में भी लिख भेजे थे किन्तु उत्तर नहीं मिला।

हमें भी चिकित्सा कार्य करते हुए आधी सदी हो गई, भल्लातक की भयंकरता से हम भलीभांति परिचित थे, किन्तु यदि इसका प्रयोग किया तो डाक्टर साहिब के लेख के कारण कि इनका अनुभव विश्वसनीय है, इसी प्रकार न जाने और भी किन्हीं वैद्यों ने प्रयोग किया हो। मैं इस लेख के द्वारा अनुभव के दोनों पक्ष सामने रख रहा हूं।

"उपायं चिन्तयेत्प्राज्ञस्तथाऽपायं प्रचिन्तयेत्" के आधार पर ही सभी कार्य होने चाहियें, चिकित्सा में तो विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिये कि "रोग को लाभ हो, या न हो, प्रत्युत अन्य रोग उत्पन्न नहीं होना चाहिए" इसी आधार पर ही शास्त्रों में लिखा है कि—

"प्रयोगः शमयेद् व्याधिं योऽन्यमन्यमुदीरयेत्।
नासौ विशुद्धः, शुद्धस्तु शमयेद्यो न कोपयेत्"॥

ग्राहकों के आग्रह पर एक मास के लिए और

रस भस्में कम मूल्य पर केवल

३१ मार्च तक

अभ्रक वज्र भस्म ४५) सेर, अकीक भस्म ५०) सेर, कौड़ी भस्म ७) सेर, कुक्कुटांडत्वक भस्म १८) सेर, कान्तलोह भस्म ३०) सेर, कसीस भस्म १०) सेर, गोदन्ती भस्म ४) सेर, चन्द्र प्रभावटी २८) सेर, त्रिवंग भस्म ४५) सेर, प्रवाल भस्म ३०) सेर, प्रवाल पिष्टी ३०) सेर, बंग भस्म श्वेत ३२) सेर, मुक्ता शुक्ति भस्म १०) सेर, योगराज गुगल १५) सेर, रस सिंदूर ८५) सेर, शंख नाभि भस्म ७) सेर, स्वर्ण वंग नं० १ ९०) सेर, स्वर्ण माक्षिक भस्म २८) सेर, च्यवन प्राश (नया) १२५) मन, सुपारी पाक १४०) मन।

नोट—इन भावों पर रस भस्में २० तोला व पाक ५) सेर से कम नहीं भेजे जायेंगे।

पता—चावला आयुर्वेदिक फार्मेसी
कुब्बी बेरी, किला भंगिया, अमृतसर।

आमाशय का त्रिदोषार्बुद

कविराज पुरुषोत्तम देव मुल्तानी, आयुर्वेदालंकार, बाल-विहार,
बरकत पुरा, हैदराबाद दक्षिण—१

'कैंसर' शब्द के हिन्दी के पर्याय के सम्बन्ध में चिकित्सकों में गहरा मतभेद है। इस भयानक रोग के कई रोगों से लक्षण सामान्य होने से इसके अनेक संज्ञाभेद व नामकरण वैद्य लोग करते हैं। अर्बुद, विद्रधि, बल्मीक व्रण आदि इसके प्रसिद्ध नाम हैं। स्वयं डाक्टरों में भी इस सम्बन्ध में तीव्र मतभेद है*। हम इस विवरण में न जाकर आमाशय के त्रिदोषार्बुद (कैंसर) का ही संक्षिप्त वर्णन करेंगे।

आमाशय में तीन प्रकार के अर्बुद होते हैं:—

(१) जबकि आमाशय के श्लैष्मिक स्रावक कोष्ठक बढ़ जाएँ, इसे शलेष्मार्बुद (एडिनो कारसिनोमा Adeno-Carcinoma) कहते हैं।

(२) आमाशय की आवरण कला में यदि संयोजक तन्तु (Scirrohsus सिरो-सस) अथवा कोष्ठकों की वृद्धि हो जाय तो वह आवरण कला के विनाश का कारण बनती है। इसे वातार्बुद (Epithelial Carcinoma एपिथिलियल कारसिनोमा) कहते हैं।

(३) आमाशय के कोष्ठक कभी-कभी द्रवीभूत (पिच्छिल) हो जाते हैं, इसे पिच्छार्बुद (Mucinoid or Colloid Carcinoma कोलायड कारसिनोमा) कहते हैं।

यह अर्बुद वैसे तो आमाशय के किसी स्थान पर हो सकते हैं परन्तु अधिकतर आमाशय के निम्न द्वार (Pylorus पाईलोरस) पर होते हैं और कभी-कभी ऊर्ध्वमुख (Cardiac orifice) तथा निम्न सीमा (Greater Curvature) पर भी होते हैं।

सम्प्राप्ति—यह व्रण आमाशय की अन्दर की श्लेष्मकला से प्रारम्भ होकर बाहिर के मांसमय स्तर की ओर जाता है (अन्दर से बाहिर की ओर)। आमाशय के बाह्या-वरण (Serous coat) में श्लेष्म स्रावक वाहिनियाँ (Lymphatics) होती हैं उनमें जरा-जरा सी गांठें पड़ जाती हैं।

यदि संयोजक तन्तु की वृद्धि हो जाए तो आमाशय की सारी दीवार चमड़े की तरह कठोर हो जाती है। सारा का सारा आमाशय शुष्क व कठिन सा मालूम देता है।

---

* (i) Perhaps in no department of medical science does so much confusion exist as in the classification of tumours.
(ii) Cancer is the name for an important group of malignant tumours.
(iii) Tumour, cancer or carcinoma are general names for forms of tumour to which the term 'malignant' is applied because they destroy the general health, break down the organ in which they grow, after apparent removal tend to grow again and by rapid spread lead usually to death in some months or years.

चैत्र २०१५

यदि व्रण श्लेष्माधिक हो तो आमाशय मृदु रहता है अन्दर के प्रदेश पर स्राव बहुत मात्रा में होता रहता है।

यदि शुष्क होने के साथ-साथ निम्न छिद्र भी साथ-साथ संकुचित हो जाये तो भोजन निम्न द्वार से निकल नहीं सकता और आमाशय भोजन के द्वारा अधिकाधिक फैल जाता है।

यदि ऊर्ध्वभाग में रोग हो और वह संकुचित हो तो भोजन बीच-बीच में अटक जाता है और अन्दर ठीक-ठीक नहीं जा पाता, परिणामस्वरूप भोजन प्रणाली फैल जाती है। यदि व्रण में श्लेष्माधिक हो तो आमाशय मृदु होता है और अन्दर के प्रदेश पर स्राव बहुत मात्रा में होता है।

यदि आमाशय की झिल्ली में से स्राव होता रहता हो तो किसी न किसी शिरा में क्षत हो जाने से व्रण भी हो जाते हैं। यदि कोई व्रण गहरा हो जाय तो यह भी सम्भव है कि आमाशय के बाहिर परिस्रावी व्रण हो जाने से स्राव भी होने लगे। साधारणतः आमाशय का वाह्यावरण शोथ युक्त होकर सविषा हो जाता है और साथ के यकृत, आंतें या अग्न्याशय आदि किसी अंग से चिपक जाता है। चिपक जाने से विष अन्य अंगों में भी संचार कर जाती है।

कारण—इस रोग के कारणों के विषय में यद्यपि निश्चित तौर से कह सकना कठिन है लेकिन इतना अवश्य कहा जा सकता है कि यह एक प्रकार की क्षीणता है जो मुख्यतः शारीरिक क्षीणता, मानसिक रोग, चिन्ता, श्रम, व्यायाम व क्षय आदि के कारण होती है। आमाशय में सौत्रिक तन्तुओं के बढ़ जाने से कोष्ठकों के नष्ट होने से अवयव कठोर हो जाता है प्रायः ४० वर्ष की आयु के बाद यह रोग होता है। कई मनुष्य जिन्हें प्रायः अजीर्ण रहता है उन्हें यह रोग नहीं भी होता—

नैपोलियन बोनापार्ट कहा करता था कि मेरा पेट पत्थर का है (I Have had my Stomach of iron—Napolean) लेकिन उसकी मृत्यु इसी त्रिदोषार्बुद में हुई थी।

लक्षण—प्रारम्भ में तो इस रोग का पता नहीं लगता, २-३ मास के बाद इसका पता लगता है। यदि पहले बिल्कुल किसी को अजीर्ण न रहा हो और ४० वर्ष के बाद अजीर्ण मालूम हो और उसे २-३ मास लग जायें तो इसी रोग का सन्देह करना चाहिये।

इसके मुख्य लक्षण निम्न हैं—

खाने के पहले और पीछे हर समय पेट में दर्द सदा रहती है। श्लैष्मिक स्राव तथा क्षत होने के कारण रक्त युक्त वमन होती है। अन्न द्रव में लवणाम्ल नहीं के बराबर होता है किन्तु लैक्टिक अम्ल अधिक होता है। आमाशय के गढ़े में गांठ भी मालूम देती है। छूने में या दबाने में दर्द मालूम होता है। गांठ को इधर उधर हिला सकते हैं। श्वास लेने पर भी इधर उधर हिलती है। कई रोगियों में यह गांठ नहीं भी होती। आमाशय शैथिल्य भी हो जाता है। यदि निम्न छिद्र में रोग हो तो रोगी के वमन में एल्ब्युमिन आती है। इसकी परीक्षा के लिए "वल्फ जंघम परीक्षा" करते हैं। यह परीक्षा अन्नद्रव की परीक्षा के लिये होती है। इस रोग में ही अन्न द्रव में एल्ब्युमिन होती है जो कि और किसी वमन में नहीं आती। इसके लिये आमाशय द्रव को निकालकर हल्का करते हैं। हल्का करने के लिये १० तश्तरियां ले लेते हैं। एक में ६ भाग पानी १ भाग आमा-

शय रस, दूसरी में १९ भाग पानी १ भाग रस, तीसरी में ३९ भाग पानी १ भाग रस, चौथी में ९९ भाग पानी १ भाग रस, पांचवीं में २०० भाग पानी १ भाग रस, छठी में ४०० भाग पानी १ भाग रस, इस प्रकार १० तश्तरियों में आमाशय द्रव को हल्का कर लेते हैं। अब निम्न Reagent तैय्यार करते हैं।

फास्फोटन्गस्टिकाम्ल (Phosphotungstic Acid) ३ भाग
लवणाम्ल (Hel) १ भाग
अलकोहल (Alcohal) 96% २० भाग
जल (Water) २०० भाग

अब इस घोल को परीक्षण नली के द्वारा उपर्युक्त तश्तरियों में ज़रा ज़रा सा छोड़ देवें। जहां यह दोनों द्रव मिलेंगे वहां यदि एल्ब्युमिन होगी तो उसके जम जाने से एकछल्ला (Ring) बन जाएगा।

भेदक लक्षण—यह रोग चालीस वर्ष से ऊपर की आयु में होता है। (अन्य आमाशयिक रोग युवावस्था में हो जाते हैं) दर्द लगातार रहता है। (अन्य दर्दों का भोजन के साथ अवश्य सम्बन्ध रहता है) वमन बहुत अधिक मात्रा में होती है। (अन्य रोगों में वमन बहुत अधिक नहीं होतीं) वमन में रक्त और एल्ब्युमिन अवश्य होती है। (अन्य वमनों में यह दोनों नहीं होतीं।) आमाशय प्रदेश पर अर्बुद का स्पर्श होता है। रोगी कृश होता जाता है। घातक पाण्डु रोग से भी इसका भेद करना चाहिये।

साध्यासाध्य—बहुत से रोगियों के देहावसान के बाद शवच्छेदन (पोस्ट मार्टम) करने पर इस रोग का पता लगता है। प्रारंभ में इस रोग का, पता लगाने पर चिकित्सा सम्भव है अन्यथा आमाशय की आवरण कला में पूर्ण विकृति होने पर यह रोग असाध्य है। अथवा शस्त्र चिकित्सा या रेडियम द्वारा चिकित्सा कराने पर रोगी की अवस्था पर साध्यासाध्य निर्भर है।

चिकित्सा—रोगी को बहुत हल्का तथा सुपच भोजन देना चाहिये। तीव्र शूल दूर करने के लिये अहिफेन का हल्का सा सूचिवेध करना चाहिये। प्रातःकाल प्रतिदिन आमाशय का प्रक्षालन करना चाहिये। आमाशय में क्योंकि दुर्गन्ध भी पर्याप्त होती है, इसके लिये कोई दुर्गन्धहर औषधि देनी चाहिये। अन्तर्विद्रधि की चिकित्सा से इस रोग में लाभ देखा गया है। शोभाञ्जन का पञ्चांग विशेषतः सद्योद्धृत मूल का स्वरस अथवा मूल त्वक् के क्वाथ में हिंगु, सैंधव का प्रक्षेप बहुत लाभकारी सिद्ध हुआ है। शूल में इसका लेप भी उपयोगी है। प्रातः स्मरणीय स्वर्गीय श्री स्वामी लक्ष्मीराम जी महाराज निम्न क्वाथ में यवक्षार का प्रक्षेप डालकर इस रोग में उपयोग करते थे।

त्रायन्ती, त्रिफला, निम्ब
कटुका मधुका समम्।
त्रिवृत् पटोल मूलाभ्याम्
चत्वारोंऽशाः पृथक् पृथक्।

मसूरा न्निस्तुषादष्टौ
तत्क्वाथः सघृतो जयेत्।
विद्रधि गुल्म वीसर्प
दाह मोह मद ज्वरान्।
तृण्मूर्छा छर्दि हृद्रोग
पित्तासृक् कुष्ठ कामलान्।

औषधि चिकित्सा से लाभ न होने पर शस्त्र चिकित्सा का आश्रय लेना चाहिये। इसमें रुग्ण अवयवों को काटकर निकाल दिया जाता है अथवा रेडियम चिकित्सा में जला दिया जाता है।

निर्गुण्डी

लेखक—आयुर्वेदाचार्य कविराज श्री नानकचन्द्र जी वैद्य शास्त्री

निर्गुण्डी एक प्रकार का वृक्ष ८ से १० ऊंचा होता है । यह प्रायः भारत के सब न्तों के वनों तथा उपवनों में प्राप्त हो जाता है। इसके दो भेद शास्त्रों में वर्णित हैं । नाम भावप्रकाश से—सिन्दुवारः श्वेतपुष्पः सिन्दुकः सिन्दुवारकः । भेद—

नीलपुष्पी तु निर्गुण्डी शेफाली सुवहा च सा ।

देशान्तर नाम—नीलपुष्पा निर्गुण्डी को इन्द्राणी सुरसा भी कहा है ।

हिन्दी में—निर्गुण्डी, निंगोरी । बंगाल में—निशिन्दा, समालू ।

बरार में—सेमालु । बम्बई—निर्गुण्ड, री, लिगुर, शिवारी ।

गुजरात में—नगोड़, नगोदम, निगोड़, निगोरी ।

मराठी में—लिंगड़ । फारसी—बजाल-त, सिसपन ।

पंजाब—वनकाहू, मरवा, मरवार, आदि । तामिल—निकुण्डी, नीचिसिन्दुर । तेलगु—नल्लाहाचिटी, सिन्दुवरम । अंग्रेजी—Indian Private । लैटिन में—Viten, Nagundo.

परिचय—इसके वृक्ष की शाखा पतली होती है । श्वेत का रंग—हलका श्वेत तथा रंग का होता है । इसके पत्ते जुड़े हुये तीन या पांच के समूह में होते हैं । ऊपर से पत्ते और रुएंदार होते हैं । निर्गुण्डी के नीलवर्ण तथा संभालू के श्वेत पुष्प होते हैं । निर्गुण्डी के फल कृष्ण होते हैं । इस के अनीदार तथा सम्हालू के सादे होते हैं । प्रथम पत्ते वाला गुणाढ्य माना है । अधिकतर निर्गुण्डी का पञ्चाङ्ग प्रयोग में लाया जाता है ।

प्रभाव-गुण-दोष—

सिन्दुकः स्मृतिदस्तिक्तः कषायः कटुको लघुः ।
केश्यो नेत्रहितो, हन्ति शूलशोथाममारुता ॥
कृमि कुष्ठारुचि श्लेष्म व्रणान्नीला हि तद्विधा ।
सिन्दुवारदलं जन्तुवातश्लेष्महरं लघु ॥

सिन्दुवार स्मृति कारक, स्वाद में तिक्त, कषाय कटु तथा लघु पाक होता है । केशों के लिए हित तथा नेत्ररोगों में लाभप्रद है । शूल, शोथ, आमवात, कृमिघ्न, कुष्ठहर, कफ तथा व्रणों को नष्ट करता है । नीलपुष्प भी वैसा ही होता है और इस के पत्ते जन्तुनाशक तथा वातश्लेष्म को हरने वाले तथा लघु होते हैं ।

वातनाशक—वेदनाहर-कुष्ठघ्न-व्रणशोधक-रोपण-शोथघ्न-कफनिस्सरण आदि इस का प्रभावशाली गुण है । ज्वररोधक-काशनाशक, मूत्र तथा आर्तव के रोगों में हितकर और जन्तुनाशक-बलवृद्धिकारक तथा रसायन है ।

प्रभाव—निर्गुण्डी शोथनाशक-वेदनाहर वातनाशक गुण इसका प्रभाव मानते हैं । इन रोगों में इस की जितनी प्रशंसा की जाय वह न्यून ही है । किसी स्थान पर बाह्य वा आभ्यन्तरशोथ हो उसे यह दूर कर देती है ।

आमयिक प्रयोग—निर्गुण्डी के पत्तों को लेकर उन्हें थोड़ा कूट कर एक हांडी में डालकर ढकने से मुख मुद्रा देकर हलकी आग

पर गरम करें, गरम होने पर निकाल कर उसमें धतूरा तथा नीम के पत्ते मिला कर सूजन पर बान्ध दें और एक प्रहर तक रहने दें फिर गरम कर बांधने से शोथ उतर जायेगी। इसी प्रकार मोच हो जाने पर भी बांधने से लाभ हो जाता है।

गण्डमाला में—गण्डमाला में इसके पत्तों का सेक दें तथा इसी के रस की चार पांच बून्द नित्य नाक में डालने से लाभ हो जाता है।

स्नायुरोग—स्नायुरोग (वारुआ रोग) में इसके पत्तों के रस को नित्य १ तो० २ तो० तक पिलाने से तथा सेंक कर पत्ते ऊपर बांधने से रोग दूर होता है।

कर्ण रोगे—कर्ण स्राव में निर्गुण्डी के पत्तों का स्वरस निकाल तैल पका कर मधु-मिश्रित कर कान में डालने से लाभ होता है।

चर्म रोगे—व्रण-कुष्ठ-श्लेष्मिक विसर्प—रक्त पित्त जनित विकारों में निर्गुण्डी का अन्त: तथा बाह्य प्रयोग लाभदायक देखा गया है।

पूय मेहे—सुजाक की प्रथमावस्था में निर्गुण्डी के पत्तों का क्वाथ लाभदायक होता है। मूत्राघातावस्था में रोगी को निर्गुण्डी के पत्तों के टब में बैठाने से लाभप्रद कहा है।

स्मर्तव्य—निर्गुण्डी के प्रयोग में प्राय: मलावरोध हो जाता है अत: रोगी को दूसरे तीसरे दिन रेचन अवश्य करवा देना युक्त होता है।

धूमपान—कण्ठ के अन्दर शोथ हो जाने पर निर्गुण्डी के सूखे पत्तों को पीस कर चिल्म में रखकर पीने से लाभ होता है।

जन्तुनाशकर—निर्गुण्डी के पत्तों का क्वाथ कर अर्थात् २ तो० पत्ते सेर पानी में औटा कर आधा रहने पर छान कर पुन: अग्नि पर रख गाढा कर अवलेह बन जाय तो ७ दिन सेवन कराने से सभी जन्तु मुख नाक कान में से निकल कर श्वास कास क्षय रोग शान्त हो जाते हैं।

निर्गुण्डी कल्प—निर्गुण्डी के मूल का चूर्ण ८ पल, उसमें १६ पल मधु मिला कर चिकने मिट्टी के पात्र में रख मुख मुद्राकर उस पात्र को धान्य राशि में एक मास रख दें। मासान्तर निकाल कर १ या २ मात्रा नित्य दोनों समय सेवन करने से मनुष्य सर्व रोगों से मुक्त होकर दीर्घायु प्राप्त कर लेता है। यदि इसी प्रयोग को गोमूत्र के साथ सेवन करें तो कुष्ठ नाड़ी व्रण-कण्डु-गुल्म-यकृत रोग नष्ट होकर स्वास्थ्य लाभ हो जाता है।

स्मर्तव्य—निर्गुण्डी कल्पार्थ द्रव्य (मूल) प्राप्त करने से एक दिन पूर्व निर्गुण्डी वृक्ष के पास जाकर उसे निमन्त्रण करे। यह विधि पुष्य नक्षत्र से एक दिन पूर्व करनी युक्त होती है। दूसरे दिन प्रात: स्नान सन्ध्यादि से निवृत्त होकर उत्तराश्रित होकर निर्गुण्डी के मूल को "ओं सर्वार्थसाधिन्यै स्वाहा" इस मन्त्र का उच्चारण करता हुआ ग्रहण करे तब विशिष्ट फलदायक होती है।

औषधियाँ
और
मशीनें
हर प्रकार की विधिपूर्वक विनिर्मित रस, रसायन, आसव, अरिष्ट भस्म, अवलेह आदि औषधियां और औषधि निर्माण संबंधी कुटाई, पिसाई, घुटाई व गोलियाँ आदि बनाने की बिजली तथा हाथ दोनों प्रकार से चलने वाली मशीनें आदि मिलने का एक मात्र विश्वसनीय स्थान—
दयालु फार्मास्युटिकल वर्क्स
बीकानेर

कस्तूरी

लेखक—साहित्यायुर्वेदाचार्य पं० सी० एल० द्विवेदी, लेक्चरर,
शासकीय आयुर्वेद महाविद्यालय, रायपुर

नाम—कस्तूरी, मृगमद, मद, मृगनाभि, मृगाण्डजा, श्यामा।

परिचय—नर कस्तूरा मृग की नाभि के पास एक अण्डाकार थैली होती है। इसके ऊपर सफेद बाल रहते हैं और बीच में एक छोटा सा छिद्र होता है। इसी थैली के भीतर द्रव पदार्थ भरा रहता है जिसे कस्तूरी कहते हैं (मृगाण्डजा)। इसका रंग श्याम होने से इसे श्यामा और गन्ध तीव्र तथा फैलने वाली होने से इसे कस्तूरी (कसतिगंधोऽस्याः, कस गन्धो-अमरकोश संस्कृत व्याख्या) कहा जाता है। नाफा (नाभि, अण्ड) के अन्दर इसके कई प्रकार के दाने पाये जाते हैं जो देखने में चूर्णाकृति (खरिका) तिल के आकार के (तिलका), कुलथी बीज सदृश (कुलित्थकाः) उससे मोटे (पिण्डिका) और उससे भी मोटे (नायिका) होते हैं। (देखें राजनिघन्टु)

प्राप्ति स्थानः—रूस, चीन, आसाम, तिब्बत, नैपाल, भूटान और काश्मीर आदि हिमालय प्रदेश की ७-८ हजार फीट ऊंची चोटियों के सघन वन।

भेदः—भाव मिश्र ने वर्ण और उत्पत्ति स्थान के आधार पर तीन भेद माने हैं। इस के अतिरिक्त रूसी भी कस्तूरी आती है जो सबसे निकृष्ट कोटि की होती है।

भावमिश्र के अनुसार उत्पत्ति स्थान—कामरूप (आसाम), नैपाल, काश्मीर; वर्ण—क्रमशः कृष्ण (श्याम), नीलाभ श्याम, कपिलाभ श्याम; कक्षा—क्रमशः उत्तम, मध्यम और अधम। (भावप्रकाश)

परीक्षा—गन्ध, तीव्र, केवड़े के समान, वर्ण—पिंगलाभ श्याम।

स्वाद—तिक्त, कटु, वजन—लघु (हलका); स्पर्श—मर्दन करने पर चिकना।

अग्नि परीक्षा—अग्नि में डालने पर जलकर राख न होना अपितु सिकुड़ कर मुलायम हो जाना तथा जलते समय चमड़े के जलने सरीखी गन्ध आना।

जल परीक्षाः—हथेली में पानी लेकर उसमें डालने पर न घुलना (जलाविलेयता), सुरासार विलेयता। (कैयदेव निघन्टु)

विशेष १:—यद्यपि उत्तम कस्तूरी जिसमें उक्त सभी परीक्षायें सिद्ध हो सकें मिलना कठिन है क्योंकि इस प्रकार की कस्तूरी मृग के मदकाल (Rutting-Season) में कदाचित प्राप्त होती है जैसा कि चीन के व्यापारियों का मत है (राजनिघन्टु)

२—पंजाब के चिकित्सक एक परीक्षा और करते हैं जो कि इस प्रकार है—सूत के धागे को पहले हींग के बड़े टुकड़े में से इस प्रकार गुजारते हैं जिससे वह हिंगु गंध से

पूर्ण हो जावे, पश्चात् नाफा में से। नाफा में से गुजरने के बाद यदि धागे में हींग की गंध बनी रहती है तो कस्तूरी नकली अन्यथा असली मानते हैं। यह परीक्षा वृद्ध वैद्य लशुन स्वरस में धागों को डुबो कर भी करते हैं।

गुण कर्म—रस—तिक्त, कटु; गुण—लघु, तीक्ष्ण; वीर्य—उष्ण, विपाक—कटु।

वात कफ नाशक, बल्य, वृष्य, शीत-नाशन, दौर्गन्ध्यहर। अर्दित, पक्षाघात, अपतन्त्रक, आक्षेपक, स्वाप (सुन्नता), कम्प-वात, वातिक उन्माद, अपस्मार, सन्यास, विस्मृति, कुकुर खांसी, वातोल्वण, कफोल्वण किंवा वातकफोल्वण सन्निपात, हृद्दौर्बल्य, क्लैब्य, विशूचिका आदि की शीतांगावस्था। (राजनिघन्टु)

दौर्गन्ध्यता नाशन के लिये अंगराग के रूप में बाह्य प्रयोग।

संस्थानः—हृदय, मस्तिष्क, उरस्, शुक्र स्थान और त्वक्।

मात्राः—आधा से एक रत्ती, मकरध्वज में मिलाकर मधु से।

कल्पः—कस्तूरी भैरव, बृहत्कस्तूरी भैरव, कस्तूरी भूषण, मृगमदासव।

प्रतिनिधि—अम्बर, गन्धमार्जारवीर्य (जवाद) जुन्दवेदस्तर।

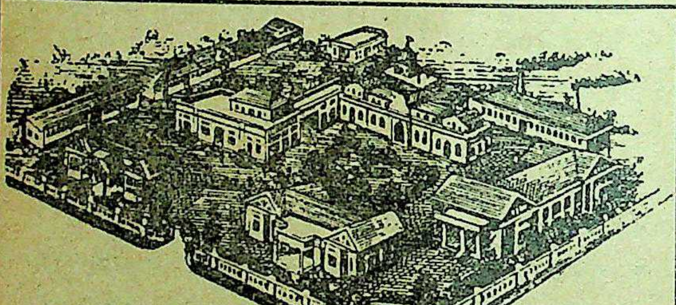

५० वर्षों से विश्व भर में प्रतिष्ठा प्राप्त भारत की प्रमुख आयुर्वेदिक औषध निर्माणशाला

रसशाला औषधाश्रम (REGD.) गोंडल, सौराष्ट्र।

गोंडल रसशाला के कारखाने में विविध प्रकार की भस्में, रसरसायन, कूपिपक्व रसायन, पर्पटी, गुटिका, चूर्ण, वगैरह सैकड़ों प्रकार की हाथ से बनी औषधियाँ तैयार रहती हैं। हिन्दुस्तान के प्रत्येक प्रदेश में और चीन, फीजी, अफ्रीका, अमेरिका, युरोप में भी जाती हैं। सब भाषा के सूचीपत्र मुफ्त भेजते हैं।

ऋद्धिखडः—वादिखडः मूल्य ३) रुपया

नित्यनाथ सिद्ध का यह धातुवाद सुवर्ण सिद्धिका अद्भुत अप्राप्य ग्रन्थ संवत १७८५ साल की हस्त लिखित प्रति के आधार से प्रसिद्ध किया है। पत्र २०० पक्का जिल्द २० उपदेश हैं। धातुवाद में रस लेने वालों के लिए संग्राह्य है। मूल श्लोक मात्र है।

बम्बई शाखाः—गोंडल रसशाला औषधाश्रम

वसंत वाडी के सामने, ४१६ कालबा देवी रोड, मुम्बई २।

आयुर्वेद का भविष्य

लेखक—कविराज महेन्द्रकुमार शास्त्री, वैद्यवाचस्पति आयुर्वेदाचार्य, बम्बई

संसार इस समय संक्रमण काल में से गुजर रहा है। द्वितीय महायुद्ध और अणुबम्ब के आविष्कार ने संसार का चित्र बहुत कुछ बदल दिया है। संसार का प्रत्येक देश और वातावरण इससे प्रभावित है।

हमारे देश में भी महान् परिवर्तन हो रहे हैं, लोगों का जीवन क्रम, मानसिक धारणाएं और समस्याएं बदल रही हैं। इस परिवर्तन के युग में "आयुर्वेद के भविष्य" पर विचार करना सामयिक ही है।

इस समय आयुर्वेद का विरोध करने वाला नेता हमारे देश में संभवतः ही कोई हो! हो सकता है, वे आयुर्वेद की ओर से उदासीन हों अथवा आयुर्वेद के समर्थक न हों। इसके विपरीत श्री मुरार जी देसाई, श्री गुलजारीलाल नन्दा, श्री कन्नमवार जी आदि नेता आयुर्वेद के प्रबल पक्षपाती हैं और वे आयुर्वेद को बढ़ाने का प्रयत्न भी कर रहे हैं। इस उच्च स्तर पर आयुर्वेद के समर्थक प्राप्त करने का श्रेय श्री पंडित शिवशर्मा जी को है। वैद्य समाज एतदर्थ उनका अनुगृहीत है।

यह समर्थन न केवल मौखिक रूप में ही मिल रहा है अपितु सक्रिय रूप में सरकार और नेताओं ने वैद्यसमाज को यह सुअवसर दिया है कि वे आयुर्वेद की उपयोगिता तथा न्नता को सिद्ध करें। अनेक स्थानों पर अनुसन्धान (Research) कार्य हो रहे हैं। प्रमुखतः जामनगर और बम्बई में। अनेक स्थानों की फैकल्टियां और बोर्डों पर वैद्यों की सत्ता है। अतः वैद्यसमाज के लिए आयुर्वेद को पुनरुज्जीवित करने का यह शुभ सुअवसर मिला है। परन्तु उत्तरदायित्व भी कम नहीं है। क्या वैद्य समाज इस उत्तरदायित्व को निभाहने की क्षमता रखता है?

इस प्रश्न पर आगे चलकर विवेचन किया गया है। यहां हम एक विशेष खतरे की ओर वैद्य समाज का ध्यान दिलाना चाहते हैं, जो प्रच्छन्न रूप से आयुर्वेद को हानि पहुँचा सकता है।

अब से कुछ वर्ष पहले तक तो पाश्चात्य शिक्षा से प्रभावित डाक्टर महानुभाव खुले रूप से आयुर्वेद का विरोध करते तथा आयुर्वेदीय संस्थानों पर छाए हुए थे। किन्तु अब वे जाग्रत तथा आयुर्वेद श्रद्धापरायण जनमत के प्रभाव से प्रभावित हो गये हैं और खुले रूप में आयुर्वेद का विरोध नहीं करते। साथ ही आयुर्वेदीय संस्थाओं में से भी उनका प्रभुत्व समाप्त प्रायः ही है। प्रबल जनमत आयुर्वेद के पक्ष में बनाने का और आयुर्वेदीय संस्थाओं को डाक्टरों से मुक्त करने का सम्पूर्ण श्रेय वैद्यों की उस लड़ाई को है जो उन्होंने अखिल भारतवर्षीय आयुर्वेदिक कांग्रेस के तत्वावधान में श्रीयुत शिवशर्मा जी और उनके साथियों के नेतृत्व में निरन्तर कई दशाब्दियों तक लड़ी है, और विजय प्राप्त की है।

किन्तु इन खुले विरोधियों का स्थान अब प्रच्छन्न शत्रुओं ने ले लिया है। इनमें कुछ तो डाक्टर हैं जिन्होंने आयुर्वेद का कुछ ज्ञान

प्राप्त कर लिया है। अन्य व्यक्ति वे हैं—जो आयुर्वेद और ऐलोपैथी से भिन्न विषयों को पढ़ाने के लिए-यथा केमिस्ट्री, भौतिकी आदि-आयुर्वेद विद्यालयों के सम्पर्क में आए। इन चालाक लोगों ने वैद्यों के छिद्र को भाँप लिया और आयुर्वेद का एक अक्षर न जानने पर भी ये बी० एस० सी०, एम० एस० सी, इत्यादि उपाधि धारी केमिस्ट और बाँटनिस्ट कई स्थानों पर आयुर्वेद के कर्त्ता-धर्त्ता बन बैठे और वैद्यों को पीछे धकेल दिया। कितने आश्चर्य की बात है कि आयुर्वेद का क, ख, न जानने वाले ये लोग ही आज आयुर्वेद में अनुसन्धान के ठेकेदार और नेता बन गये और वैद्यों के इतने परिश्रम से प्राप्त विजय श्री का लाभ उठाने लगे। आयुर्वेद की स्थिति उस प्राणी जैसी हो गई जो गढ़े में से निकल कर कुएँ में गिर गया हो। डाक्टर कम से कम चिकित्सा विज्ञान की जानकारी तो रखते थे जब कि ये जन इससे सर्वथा शून्य होते हैं तिस पर भी वैज्ञानिक कहलाने का दावा करते हैं।

अतः अनेक वर्ष बीत जाने पर भी इन अनुसन्धान पुगंवों द्वारा किये गए कार्य की झांकी वैद्यों के सामने नहीं आई है। आए क्या? बिना ज्ञान के अनुसन्धान किस का करें और बिना अनुसंधान किए जनता के समक्ष रक्खें क्या? उनके कार्यों से आयुर्वेद बदनाम ही हुआ है तथा अनुसंधान के निराशाजनक परिणामों को देखकर सरकार पर आयुर्वेद के व्यर्थत्व की छाप पड़ती जाती है।

यहां एकाध उदाहरण देना पर्याप्त है बम्बई के प्रगतिशील रिसर्च बोर्ड ने कुटजारिष्ट का मानदण्ड निर्धारित करने का अनुसंधान किया और कई सहस्र रुपया व्यय कर तथा दीर्घ समय लगाकर श्वेत कुटज Hollerhn पर अनुसंधान कर कुटजारिष्ट मानदण्ड निर्धारित किया। उक्त क्षुप के अतिरिक्त कुटज के अन्य प्रकारों को छुआ तक नहीं। कुटजारिष्ट का प्रतिमान तो निश्चित कर दिया गया केवल एक कुटज को लेकर। यदि कोई कुटज की दूसरी जाति (कृष्णकुटज) से 'कुटजारिष्ट' बनाए तो क्या वह आयुर्वेदीय नहीं होगा और उस पर प्रतिबन्ध लगा दिया जायगा? वस्तुतः होना यह चाहिए था कि कुटज के सब प्रकारों का परीक्षण कर सर्वोत्तम जाति के कुटज का निर्धारण किया जाता और उस सर्वाधिक गुण सम्पन्न कुटज से निर्मित 'कुटजारिष्ट' का प्रतिमान नियत किया जाता। क्या मालूम किन्हीं अवस्थाओं में श्वेत की अपेक्षा कृष्ण-कुटज उपयोगी हो। किन्तु इतना सब करने के लिए आयुर्वेद का ज्ञान तो होना चाहिए। उसके अभाव में कुटज के एक प्रकार के वानस्पतिक नाम 'Anti-Dysentrica (एन्टी डिसेन्ट्रिका)' को लेकर कुटजारिष्ट का प्रतिमान नियत कर डाला। आयुर्वेदोक्त वर्णन तथा गुणों की ओर ध्यान जरा भी नहीं दिया। इसी प्रकार मिरज में महाराष्ट्र प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन रिसर्च का चमत्कार देखने में आया। असली केसर (कुंकुम) तथा मिलावटी केसर की अणुवीक्षणादि से साटोप परीक्षा करके वैद्यों को बताया गया कि असली केसर का रंग केसरिया होता है और मिलावटी या नकली केसरों में मिलावट की मात्रा के अनुसार रंग बदल जाता है। यह है आयुर्वेदिक रिसर्च! जिसे एक साधारण बच्चा भी जानता है उस पर हजारों रुपयों की फिजूल खर्ची कर और वर्षों का समय लगाकर वैद्यों को मूर्ख बनाना। आयु-

आयुर्वेद का भविष्य क्या इन्हीं अनुसन्धानों पर होगा!

साथ ही वैद्य समाज भी आयुर्वेद की अवनति के लिए कम उत्तरदायी नहीं है। अधिकांश वैद्य समाज आयुर्वेद की उन्नति का इच्छुक है और सहयोग के लिए उद्यत, किन्तु साथ ही साथ भोला भी।

दुर्भाग्यवश भारत भर में सर्वत्र आजकल राजनीति का बोलबाला है। सामाजिक, शैक्षणिक, वैज्ञानिक, औद्योगिक-सर्वत्र प्रजातन्त्रात्मक राजनीति ही राज्य कर रही है। आयुर्वेद भी इससे अछूता नहीं है। इस प्रकार की राजनीति का सबसे बड़ा दुर्गुण यह है कि इसमें योग्यता को नहीं, संख्या को महत्व दिया गया है। अपनी ओर आप कितनी अधिक संख्या में हाथ उठवा सकते हैं यही आपकी सफलता का प्रमाण है।

आज की राजनीति सरकार के चारों ओर चक्कर काटती है। पार्टी के नेताओं तथा मन्त्रियों के हाथ में शक्ति संचित हो गई है। सभी लोगं उनके इर्द-गिर्द चक्कर काटते हैं जिस प्रकार बड़े ग्रहों के चारों ओर छोटे-छोटे ग्रह। आयुर्वेद भी इस 'वात्याचक्र' से बच नहीं सका है।

उक्त प्रकार के व्यक्ति जब मन्त्रीगण के चारों ओर चक्कर काटते हैं, और आयुर्वेद की हितैषिता तथा प्रतिनिधित्व का दम भरते हैं। तो आखिर मन्त्रीगण भी मनुष्य ही है। वे उन्हें ही आयुर्वेद के वेत्ता और नेता समझ बैठते हैं क्योंकि वास्तविक विद्वान् आयुर्वेदज्ञ तो समयाभाव या स्वाभिमान के कारण उन तक पहुंच ही नहीं पाते। इसमें मन्त्रियों का दोष नहीं।

राजनीतिज्ञ अवसरवादी होते ही है। कुछ सच्चे नेता ही इसके अपवाद हैं। किन्तु, केवल राजनैतिक व्यक्ति कुछ रचना नहीं कर सकते जब तक विज्ञों का सहयोग उनके साथ न हो क्योंकि वर्तमान अनुसन्धान संस्थाओं और बोर्डों में उक्त प्रकार का ही वातावरण है। "अन्धा बांटे रेवड़ियां फिर-फिर अपने को देय"। अतः जब कारण ही नहीं वहां कार्य क्या हो सकेगा। जहां अभीष्ट प्रकार का ज्ञान नहीं वहां तज्जन्य फल कहाँ निकलेगा। अतः अनेक वर्ष बीत जाने पर भी इन अत्यन्त विज्ञापित आयुर्वेद अनुसन्धान प्रतिष्ठानों का कुछ भी फल अभी तक निकला नहीं और उक्त स्थिति के कारण निकलने वाला भी नहीं। अन्ततः सरकार बन्ध्या के समान इनकी व्यर्थता जानकर इन्हें बन्द कर देगी और आयुर्वेद के पुनरुज्जीवन के प्रश्न की भी अन्त्येष्ठि कर दी जाएगी।

दूसरी बाधा है आत्मप्रवंचना। हमारे विचार में सम्पूर्णता केवल परमेश्वर में है। शेष सब असम्पूर्ण हैं। यह बात सब कोई मानते हैं कि आयुर्वेद का बहुत सा भाग लुप्त हो गया है अतः वह सर्वांग सम्पूर्ण है इस का दावा कोई नहीं कर सकता। वस्तुतः काय चिकित्सा को छोड़कर शेष सभी अंग लुप्त या निष्क्रिय अवस्था में पड़े हैं। अतः आयुर्वेद की आज उपलब्ध पुस्तकों में ही समग्र आयुर्वेद ज्ञान समा गया है और उसके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है यह मत अग्राह्य है आयुर्वेद को बहुत कुछ ग्रहण करना है। वैद्य बन्धु कुछ नवीन ग्रहण करने से डरते हैं। क्योंकि उनको आयुर्वेद पर तथा अपने पर विश्वास नहीं कि वे उसको आत्मसात् कर सकेंगे। वे डरते हैं कि कहीं नवीन ही उन्हें उदरस्थ कर समाप्त न कर दे। वे तथ्यों से मुंह मोड़ लेते हैं और वास्तविकता को स्वीकार करने को तैयार नहीं। यद्यपि गुप्त-

रूप से नव्य का व्यवहार करने से नहीं चूकते और यदि स्वजन रुग्ण हो तो नव्य को पसन्द करते हैं। यह आत्म प्रवंचना ही है।

बम्बई के एक प्रख्यात सरकारी आयुर्वेदीय हास्पिटल के अधिकारी महोदय ने यही रुख अपनाया, जब उनके स्वजन बीमार हुए साधारण से वात कफ ज्वर से तत्काल स्ट्रेप्टोमायसीन-पेनिसिलीन का प्रयोग किया गया। बेचारे आयुर्वेद को एक घन्टे का भी समय नहीं दिया। यद्यपि हास्पिटल में दूसरों पर अत्यन्त विशुद्ध आयुर्वेद का प्रयोग करते हैं। आत्म वंचना का इससे अच्छा उदाहरण और क्या हो सकता है।

दूसरा उदाहरण इससे भी उत्तम है। एक प्रसिद्ध सरकारी आयुर्वेदिक हास्पिटल में शल्यविभाग में एक प्रसिद्ध आयुर्वेदीय औषधि का परीक्षण किया गया। वह कुछ विशेष अवस्थाओं में सफल पाई गई अन्यों में नहीं तथा उसके कुछ दुर्गुण भी जाने गये। किन्तु उसका फल प्रकाशित करने से कई आयुर्वेदीय समाचार पत्रों ने इन्कार कर दिया।

इसी प्रकार एक प्रमुख अनुसंधान संस्था के कार्य करने वाले वैद्य महानुभाव स्पष्ट से बात कहना नहीं चाहते क्योंकि उनकी व्याख्या के अनुरूप आयुर्वेद के स्वरूप में कुछ तथ्य फिट नहीं बैठते। वे डरते हैं कहीं आयुर्वेद जगत् उन्हें आयुर्वेद द्रोही न कह दे।

इस प्रकार की आत्म प्रवंचनाओं और भयों को छोड़कर जब हम सत्य को निकट लेकर ग्रहण करेंगे तभी आयुर्वेद बढ़ेगा, क्योंकि चरकादि आचार्यों ने तो स्वनिर्मित ग्रन्थों के सम्बन्ध में भी "अल्प बुद्धिनां व्यवहाराय महद् बुद्धिनां च मार्गदर्शनाय" कहा है। अतः आयुर्वेद को वर्त्तमान ग्रन्थों में ही बंधा नहीं समझना चाहिए।

इस समय सबसे बड़ी आवश्यकता है आयुर्वेद के उपलब्ध साहित्य का विद्वानों द्वारा मन्थन कराकर पूर्णरूप से अधिकृत प्रकाशन जिससे ज्ञात हो कि यह आयुर्वेद है। इस कार्य की ओर से सभी उदासीन हैं।

इस शास्त्र मन्थन के पश्चात् यदि आयुर्वेद में वर्त्तमान परिस्थितियों में कुछ अपूर्णता प्रतीत हो तो उसे ग्रहण कर आत्मसात् करना।

"आवश्यकता आविष्कार की जननी है" अतः अनेक आयुर्वेदज्ञ आधुनिक विज्ञान की सहायता ले ही रहे हैं। आवश्यकता इस बात की है कि हम नव्य विज्ञान से ग्राह्य पदार्थ लेकर अपने को इस प्रकार पुष्ट करें कि सब कुछ आयुर्वेदमय ही हो जाए और आयुर्वेद ही राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति बन जाए। इसके लिए राजनीतिक वैद्यों का साहस और विद्वान् वैद्यों का सहयोग अपेक्षित है। क्या यह नहीं हो सकेगा? इसी पर आयुर्वेद का भविष्य अवलम्बित है।

प्रताप आयुर्वेदिक फार्मेसी प्रा० लि० के

आशुफलप्रद आयुर्वेदीय इन्जैक्शन

हिमाचल के अंचल देहरादून में सरकार द्वारा लायसैन्स प्राप्त लेबोरेटरी में आयुर्वेदीय औषधों के मूलतत्वों का पूर्ण अनुसन्धान करने के उपरान्त प्राचीन और आधुनिक विज्ञानवेत्ता, सिद्धहस्त वैज्ञानिकों की देखरेख में इन्जैक्शन तैयार किये जाते हैं जो पूर्णतया निरापद विशुद्ध प्रामाणिक हो चुके हैं। प्रत्येक वैद्य का कर्त्तव्य है कि इन आशुफलप्रद पूर्णतया विशुद्ध एवं चमत्कारिक गुणकारी इन्जैक्शनों को प्रयोग में लाकर लाभ उठावें।

प्रताप आयुर्वेदिक फार्मेसी लि०

इन्जैक्शन ब्रांच

१६७ राजपुर रोड़, देहरादून (यू० पी०)

The Necessity of an Ayurvedic University

Written in Sanskrit by :

Kaviraj Shri Upendra Nath Dass, Kavya-Vyakaran Sankhyatirtha, Delhi

Translated by :

Kaviraj Rabindra Chandra Chowdhry, B.A., Kavyatirtha, L.A.M.S., Bhishagratna.

During pre-independence days in India, the foreign Government established the monopoly of trade in foreign medicines for earning crores of rupees in return for foreign drugs, whose benefit would accrue to foreign traders only. For this purpose, they ignored the indigenous drugs and the indigenous system and appointed clever propagandists of foreign medicines and entrenched them in various ways. Further, they exported such cheap or free drugs as Basak, Kutaj and Punarnava etc. from India to their country, gave them good-looking forms, re-imported them here, and sold them at exorbitant prices with the help of canvassers and earned a lot of money. This fact is known to all Indians who are in the know of things.

Even after independence propagandists of foreign medicines still influence the medical departments of the Government and thereby weild sufficient power and drain away a lot of wealth of the country. The political leaders feel that Indigenous Systems of Medicine whose practitioners are treating 85% of the population, should no longer be ignored. Consequently the Central and State Governments have taken some pains for the uplift of the Indigenous System but their efforts in this direction are quite neglectable so far.

The respected President, the Hon'ble Prime Minister of India and other Ministers and National Leaders all desire improvement of Ayurveda and advise us accordingly :—

(1) That Research in Ayurveda has not been done long since. So Research should be done by all means.

(2) That all-round progress has been achieved in modern medicine. So the new discoveries of Modern Medicine should be taken up by Ayurvedists.

These two pieces of advice are no doubt valuable and appropriate and we do not entertain any doubt about them. But the duties of the authorities do not end with tendering advice only. On the contrary, they should see that the advice is carried into effect. As the peasants do not get the capacity of producing more grains simply on receipt of the advice of "Grow More Food" but they become successful in their operations on getting all kinds of help from the Government, so the practitioners of Indigenous medicine too are expected to make the two-fold advice fruitful on getting all kinds of help from the Government. Because there is none, not to speak of several among Vaidyas who are so capable as to make this advice successful. If it is asked why, I am giving a detailed reply to it. Let me, first of all, take up Research in Ayurveda. Research can broadly be divided into 4 heads :—

1. Clinical Research or Research for discovery of successful and cheap treatment of certain diseases as is being done at Jam Nagar where a Research Centre for treatment of Panduroga has been established by the Central Government. Recently work has been started in the Ayurvedic Department of Banāras Hindu University for discovery of successful and easy treatment of Grahaniroga and Udararoga. Such work can never be successful without the assistance of the Government. Work of Research on only three diseases among the innumerable diseases has been started. It is not known when it will be successful nor when work on the rest of diseases will begin.
2. *Research on drugs* :—It would not be enough if experiments on single drugs as well as the compound prescriptions of ancients which are in use in these days, are only made. But for the purpose of cure of newly-discovered diseases, successful and cheap remedies should be discovered, preventive medicines for epidemic diseases as Cholera, Plague and small-pox and ready remedies and preventive and medicines against infectious diseases as Leprosy, fever, T.B. conjunctivitis etc. should be discovered. So for this purpose, research on drugs should be taken up early.
3. Text books on all subjects of Ayurveda should be written so that practical use of all the eight different branches of Ayurveda may be made. But books written by individual writers are full of mistakes and so, do not fulfil the need. So books written by scholars of both the eastern and western systems after thorough discussion and agreed conclusion would be most opportune and would satisfy the demand. It is not possible for an individual to compile such a book.
4. The different Sanakaras or processes of purification of mercury will not only lead to cure of diseases and longevity of life but research in this direction will help in converting cheap metals into precious ones. Moreover, efforts should be directed towards revealing the wonderful uses of the uparases, metals and the stones namely, jewels, pearls, diamonds, Vaikranta and the like effective and ready medicines.

These efforts being fruitful, remedies of fatal diseases will be discovered. The use of them will involve no risk, create no new diseases, produce no reaction and will be conducive to good out and out. So we hope.

Such four-fold research and similar research work is possible in a university only where presence and co-operation of learned, experienced and expert scholars versed in different Shastras are available. It is doubted if success can be attained in a single research centre where two or three workers work with all this might. Hopes of success are likely to be fulfilled if a university collects together scholars of different types having great practical experience and knowledge of the different Shastras as well as capable students too.

Thus we have seen that research is likely to be fruitful if such a university is established. It would be beneficial if the newly-discovered medicines as well as other instruments which are useful implements in the diagnosis and treatment of diseases are examined and incorporated in our science when they are found to be really useful. It is easy to copy another literally. But it is difficult to find out the beneficial and discard the harmful from the whole which can be done by worthy people only. So it has been said by the great poet Kali Das :—

"The sages select one after proper scrutiny. But an ignorant man is carried away by the intelligence of others."

Though many are able to pass the examination, still only those who are of sharp intellect since boyhood, become learned in the true sense of the term. Even among them, those boys whose guardians are capable of spending large sums of money, are in these days, able to acquire higher education. But so long as the University of Ayurveda is not established, neither higher education in the eight branches of Ayurveda nor research in them nor proper prestige for the practitioners of Ayurveda is feasible. Students endowed with wealth and knowledge are generally found to be averse to Ayurveda. Not only are they averse to the study of Ayurveda but they do not know even a bit of Sanskrit, Vyakarana, Literature, Philosophy and other Shastras. As it is not possible to obtain mastery of the modern medicine and science without knowledge of the modern sciences as Chemistry etc. which are written in English, so also students who ignore knowledge of Sanskrit, Vayakarana, Literature and Philosophy (Darshan) are not expected to get at the reality of Ayurveda . Those who disregard this and endeavour to lift up Ayurveda are never expected to be successful. Time alone will prove it to be true.

In dependent India, learning was a good credential for the Vaidyas. But later on, conditions changed. There was no scope for one to serve in a Government dispensary nor any respect, unless he passed a diploma or a degree from a College, Ayurveda-Vidyapith, nor to speak of admission in a foreign university to receive special training in Modern Medicine. Even the Indians possessed of highest degrees in modern medicine go to foreign countries to receive special training. How will it be possible for Hakims, Vaidyas to get such special training until the Government of India establishes a well-equipped university for the teaching of Indian medical science ?

A University is said to be an institution for imparting education in different sciences and arts. Here we are speaking about a university for the medical science, nay of the Indigenous system of Medicine. If it is possible to start a university for technical education or the Engineering art, what is the harm in establishing a university for indigenous medicine ?

Besides, if the Government so wills, in that University there may be arrangements for teaching Sanskrit, Grammar, Literature, Philosophy, Astronomy and allied subjects, Arabic, English. In that case, students desirous of learning medicine, will have an easy and strong beginning of the course. If such an oriental university is established, it will not only facilitate all-round progress of Ayurveda but will also ensure uplift of Tantra Shastra and Astronomy—Sciences of practical nature. It has truly been said by some :-

In other sciences, there is simply controversy. Nothing tangible is seen whereas the medical science, Tantra and Jyotish Shastras inspire confidence at every step.

On the other hand, if an Oriental University is established, not only the practical sciences as for instance, Tantra Shastra, Jyotish Shastra and medical science will find an impetus for development but the reading and teaching of the Darshan-Shastras through the medium of Sanskrit will elevate Indian Culture and raise the morals and character of Indians. It would also bring about all-round improvement of the country and thus fulfil the good wishes of the Government. Thus the Oriental University would be the mother of all-sided welfare. Our wise leaders of the country should take note of it. There is no doubt that the establishment of the University will cost huge sums of money. None will admit that the Government of India is unable to spend money for the education of medical men who treat eighty-five percent of the Indian population. On the contrary in free India many new Universities have been set up at the cost of huge sums of money. The degree or diploma-holders of those Universities are seen to roam about unemployed anxiously whereas the graduates of this University are not expected to remain without a livelihood. It is also said :—

"There is no country without men. Nor men are without ailments. Consequently the livelihood of a Vaidya is rather assured anywhere."

Moreover, the Government will have income from the sale of pure medicines inland and abroad, stamped and prepared in the big State Pharmacy to be run alongwith the University. The patients as well as the Vaidyas will get supply of pure medicines at a cheap rate, thus leading to two-fold good of India and the Indians. While much money will have to be spent for the compilation of subject-wise text books for all the branches of Ayurveda as well as for the publication of revised editions of old tantras, sale of books will fetch far more money. If the discovery of medicines for particular diseases or the remedy for their prevention will prove successful, it will fetch more money than the amount spent, not to speak of several remedies proving successful. Pure genuine constituent drugs cannot be procured from the shop even at exorbitant prices but if these drugs are procured in the proposed University, after proper scrutiny, they may be sold at reasonable rates with profit to the University. It will also put a stop to the drainage of foreign exchange that is required for import of foreign drugs.

barring a small quantity required for the purchase of essential drugs. It is no exaggeration to say that from the economic stand-point also, the university will prove a lucrative concern incourse of a very short time.

With the dawn of independence, all-round progress of India is being and will be achieved on account of the efforts of the Government. Though, to speak the truth, considerable progress has not been achieved in the spheres of food, cloth, housing schemes, electricity, transport, arms ammunition, education & other essential matters, but proper progress is visible in the fields of attractive fine arts as painting, dancing. Whose mind is not mortified to see absence of proper progress of Ayurveda, the life-saver? This accounts for the succession of aspersions cast on the Health-Ministry in the Parliament by the Hon'ble Members. Our regret is not because of the total indifference of the Government to the progress of Ayurveda. We have already proved that in this vast country like India, the efforts of the Central as well as the State Governments for the achievement of all round progress of Ayurveda are not at all adequate. If the Government so desires, proper progress of indigenous medicine can be achieved in course of a very short time. If one Central University is established, arrangements for the education, teaching, practice of all the eight branches of Ayurveda will be of a higher order. There will be equal recognition of the graduates of this central university throughout the whole of India. The students, after having completed their course, will be considered well-trained and efficient and will receive recognition everywhere. Talented and well-to-do students will come forward, eager to study Ayurveda. Among them some of superior merits will turn out to be good physicians. Some possessed of still superior calibre, will turn out to be efficient and gradually increase the glory of Ayurveda.

Smart young men see that graduates in technology, military art get proper honour and money and consequently flock to get training in them and spend enough money. It is much more difficult to achieve proficiency in the life giving Ayurveda. If there is assurance of necessary arrangements for proper training as well as of hopes of proper respect, many capable youngmen will run after Ayurveda. They will acquire special proficiency in the different branches to a higher level. In this Government sponsored university of Indigenous medicine, the passed students may, if necssary, go to foreign universities, with the object of special proficiency in special subjects and propagation of Indian medicine. Neither the Indians nor the foreigners will consider efficient and learned graduates of Indian medicine capable of establishing contact with foreign universities as long as a university for Indian medicine is not established by the Government of India. Therefore, if the Government wants real progress of Indigenous medicine, it should first of all establish a university.

Another point needs consideration. As it is not possible to obtain a proper foot-hold on the modern medicine without a tolerable knowledge of English, Science and Chemistry, so also it is equally not possible to get at the fundamentals of the Ayurvedic Text Books without proper knowledge of Sanskrit and Philosophy. It is an undeniable truth. In the existing universities and colleges run along the English method, there are no facilities of teaching modern science and Chemistry, Sanskrit and Darshana. The Government consider candidates who have passed the Intermediate Science examination with English, Modern Science and Chemistry, as eligible for the Ayurveda Final Examination. They do not realise that these graduates are not capable of probing into the truths of Ayurveda.

Those who do not know Sanskrit and Darshan well but are well-versed in English and Modern medicine, do not realise the importance of Sanskrit & Darshan. They, on the contrary, think that students who passed Intermediate with English, Modern Sceince & Chemistry, will be able to probe into the intricacies of the Ayurvedic Text Books. These modern students, in spite of their knowledge of both sides, are weak in both and compare ill with the practitioners of modern medicine in competition. Therefore practitioners of modern medicine who are already more expert, ultimately prove the best in the field. But if the practitioners of indigenous medicine with western qualifications gain knowledge of the ancient texts, they, already expert, will prove to be the best in the field.

Thus even the faithful advisers of the Government in spite of their sincerity of purpose, for the uplift of Ayurveda, failed to do any good to the system. So it is our earnest request to them that they should accept the advice of the old Ayurvedic practitioners and establish a Central University of Indigenous Medicine for the real up-keep of the indigenous medicine, which will ensure all-round progress of all its branches and the huge expenditure incurred thereby will be fruitful as well as lucrative in the long run.

I have simply attempted hereby to draw up a sketch of the requirements necessary to make Ayurveda, which has long since been ignored by the Government, quite up-to-date. Now if considering all these seriously, a line of action is decided upon by the Govt. and acted upon accordingly with vigour, then in course of not a very long time, the glory of Ayurveda will not only flourish in India but it will illuminate the whole world by its effulgence.

Though the totality of efforts begun by the Government for the reclamation of Ayurveda, is insignificant and like a drop in the ocean. But still it deserves commendation on account of its being the beginning. But it should be remembered that it is not sufficient. So for the sake of the reclamation of indigenous medicine the establishment of a university is essential at present. Otherwise there can be no hope for it.

The Government cannot afford to remain indifferent towards Ayurveda simply because we, Ayurvedic practitioners are bent on the subject of the establishment of an Ayurvedic University. Recently, even the Hon'ble Shree Ananta Shayanam Iyengar, Speaker of the Parliament speaking on the occasion of the inauguration of the 42nd. Session of Ayurveda Mahasammelan at Bangalore, declared the usefulness of an Ayurvedic University in unequivocal terms. So every wise person will admit that the Central Government should come forward to take effective steps for the implementation of the wishes of such a popular Leader.

म्बई के फैसलों तथा तत्सम्बन्धी लेखों में कार्यालय-मन्त्री पर लगाये गये आरोपों का स्पष्टीकरण

(आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका के मार्च १९५८ के अङ्क के पृष्ठ १७९ से आगे)

ति श्रीमन्तः पीयूषपाणयो वैद्यवर प्रवराः,

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका के गतांक में प्रकाशित अपने निवेदन द्वारा मैं उन भियारोपों का खण्डन कर चुका हूँ जो "आयुर्वेद विज्ञान" के अक्तूबर १९५७ के अंक में रे विरुद्ध प्रकाशित हुये थे। अब मैं विषय से सम्बन्धित दूसरी पत्रिका "सचित्र आयुर्वेद" में प्रकाशित आक्षेपों के सम्बन्ध में निवेदन करने के लिये आपकी सेवा में पुनः उपस्थित हुआ हूँ। इस प्रकार आप महानुभावों का जो मैं अमूल्य समय ले रहा हूँ, आशा है उसके लिये प क्षमा करते रहेंगे।

ख—"सचित्र आयुर्वेद" में प्रकाशित आरोप

"सचित्र आयुर्वेद" के जुलाई १९५७ के अंक के पृष्ठ ११६ के प्रारम्भ से ११८ के न्त तक बम्बई न्यायालय का जो निर्णय अंग्रेजी-हिन्दी में छपा है उसमें मेरे विरुद्ध विभिन्न कार के आरोप लगाये गये हैं जिन्हें आप पूर्णतया पढ़ ही चुके होंगे। यद्यपि मूल अंग्रेज़ी ख का वह हिन्दी अनुवाद अनेक स्थानों पर दूषित कहा जा सकता है तथापि विषय से र्ण न्याय करने के ध्येय से तथा अपने सम्माननीय सदस्य महानुभावों की स्मृत्यर्थ एवं र्ण और सही जानकारी के लिये सर्वप्रथम मैं उस लेख के हिन्दी अनुवाद में वर्णित दो ख्य आरोपों को अक्षरशः नीचे उद्धृत करता हूँ और शेष ६ आरोपों को सारांश में देता हूँ।

अ—आरोप पक्ष

ो मुख्य आरोपः—

१—"द्वितीय अभ्यारोप कांग्रेस के कर्मचारियों के सम्बन्ध में है। इस सिलसिले में प्रति-वादी पक्ष ने कार्यालय मन्त्री तिलकराम का उदाहरण पेश किया है। वादी ने स्वीकार किया है कि उसने इस तिलकराम और प्रधान मन्त्री वामनराव को अपने मित्र जंगबहादुर के पास धिक सभा की मांग करने वालों के खिलाफ अदालती निषेधाज्ञा की अर्जी देने के सम्बन्ध में सलाह लेने के लिए भेजा था। जंगबहादुर के नाम लिखित पत्र एक्स० नं० ३४ से भी, जो इनके हाथ उसने भेजा था, यही प्रकट होता है। उस पत्र में उसने तिलकराम को अपना मित्र बताया है। कार्यालय मन्त्री को इस प्रकार उल्लेख करने के ढंग को विनम्रता कहा जा सकता है, जैसा कि वादी ने बताने की चेष्टा की है, लेकिन मैं आशा करता हूँ कि वादी भी इस बात को इनकार करने के लिए तैयार नहीं होगा कि कांग्रेस के दो गुटों के विवाद में निर्वाचित सदस्यों का बहुमत चाहे जिस गुट के साथ भी हो, लेकिन वैतनिक कर्मचारी को

हमेशा तटस्थ रहना चाहिए और किसी पक्ष का समर्थन नहीं करना चाहिए। सभा के लिए मांग करने वालों के साथ अपने इस विवाद में तिलकराम को वादी ने एक पत्र के साथ निषेधाज्ञा के लिए अदालत में अर्जी देने में सहायता देने के लिए जंगबहादुर के पास जो भेजा था वह बिल्कुल अवैधानिक कार्य था और इस बात से कि तिलकराम ने इस विवाद में अपना इस तरह उपयोग वादी के पक्ष में होने दिया, उस टिप्पणी का औचित्य सिद्ध होता है जो टिप्पणी लेखक ने इस अनुच्छेद में की है।"

२—"यह भी जाहिर होगा कि वादी और उसके गुट को इस विषय में तिलकराम की भक्ति का दृढ़ विश्वास था, क्योंकि अपने पत्र एक्स०जेड/१ में वादी को निषेधाज्ञा के बारे में सूचित करते हुए ओंकारप्रसाद ने कहा था:—

> "अदालत का बहुत काम बाकी पड़ा है। अतएव आप तिलकराम या उसके जरिये दफ्तर के किसी किरानी को मेरी मदद करने को कहें और यदि वह ऐसा करने में असमर्थ हो तो किसी अन्य व्यक्ति को नियुक्त करने की उसे आज्ञा दें।"

"मैं नहीं जानता कि कोई अन्य व्यक्ति नियुक्त किया गया था या तिलकराम ने उसकी मदद की थी किन्तु इन बातों से इस खेदजनक अवस्था पर प्रकाश पड़ता है कि वैतनिक कर्मचारियों की सेवाओं का उपयोग संस्था के अधिकृत कार्यों में नहीं, वरन् विरोधी दल के साथ विवाद को चलाने में किया गया। कर्मचारियों के लिए उभय पक्ष ही मालिक हैं और जहाँ इन मालिकों में संघर्ष हो वहाँ कर्मचारियों को बिल्कुल तटस्थ रहना चाहिए। अध्यक्ष की हैसियत से वादी का यह कार्य काफी बुरा हुआ लेकिन कार्यालय मन्त्री ने अपना उपयोग इस तरह होने दिया वह घोर अनुचित हुआ और इससे साफ जाहिर होता है कि वह वादी के प्रभाव में था और इसीलिए उसके कार्य की वैधता या अवैधता पर उसने विचार नहीं किया था।"

उपर्युक्त दोनों आरोपों के गम्भीर और मौलिक रूप के होने के कारण मैंने उन्हें पूरी तरह अक्षरशः उद्धृत किया है। शेष सभी आरोपों को आप पहिले ही "सचित्र आयुर्वेद" में पढ़ ही चुके होंगे अतएव आपका अधिक समय न लेने के ध्येय से उनको अक्षरशः उद्धृत न करके उनका सारांश मात्र नीचे देता हूँ।

शेष आरोपों का सारांश :—

३—श्री पं० किशोरीदत्त जी शास्त्री के त्याग-पत्र में भी मेरा जिक्र आया है और उस समय भी मैंने मनमानी की थी और मैंने वह अपराध किया था……और इस प्रकार मैं वादी के प्रभाव में था।

४—"गुरुदत्त ने जब १९५२ में इस्तीफा दे दिया तो उससे अपना दायित्व अन्य उपलब्ध सहायक मन्त्रियों के बदले कार्यालय मन्त्री तिलकराम को सम्भाल देने के लिए गया"……और यह वादी का मेरे लिए पक्षपात था।

५—१९३८ में मेरा वेतन ४० रुपये था और सन् १९५६ में ४०० रुपये यद्यपि बीच में मैंने दो या तीन बार कांग्रेस अर्थात् महासम्मेलन को छोड़ भी दिया था।

६—वादी ने मेरी वेतन-वृद्धियां कराईं।

७—१९५६ में मेरे ३०० रुपया मासिक वेतन में जो १ रुपया मासिक वेतन वृद्धि की गई वह नियम विरुद्ध थी क्योंकि मेरे वेतन-क्रम में संशोधन होना चाहिए था।

८—सबसे आश्चर्य की बात तो यह हुई कि जब मैं कामदार लि० में काम कर रहा था तो मुझे महासम्मेलन से छुट्टी मिली हुई थी।

सभी आरोपों का निष्कर्ष

सारांश में वादी ने मुझे नियुक्त किया, वादी ने मेरी वेतन-वृद्धियां कराईं, वादी का मैं प्रिय पात्र था, उनका आभारी था, उनसे प्रभावित था, मैं उनका पक्षपाती था, उनकी आज्ञाओं का बिना विचार किये पालन करता था, मैंने उनका उद्देश्य साधन किया तथा मैंने उनके पक्ष में किसी विवाद में भाग लिया⋯⋯इत्यादि।

आ—उत्तर पक्ष

सम्भवतः इन आरोपों को पढ़कर, जो कि प्रत्यक्षतः बड़े गम्भीर हैं, आप चकित हुये होंगे परन्तु जब इनके अन्तर्निहित मिथ्यावाद, धोखा और स्पष्ट भूलें आपके सामने खुलेंगी तो आप अवश्य ही आश्चर्य-चकित होंगे। परन्तु पूर्व इसके कि मैं इनका उत्तर दूं, विषय को समझाने के हेतु यह बता देना आवश्यक समझता हूं कि इन आरोपों में "वादी" शब्द का अभिप्राय वैद्यरत्न श्री पं० शिवशर्मा जी से है और "प्रतिवादी" शब्द या पक्ष से "सचित्र आयुर्वेद" एवं श्री पं० रामनारायण जी शर्मा, वैद्यशास्त्री, और वैद्य श्री सभाकान्त जी झा से है। अब मैं क्रमशः प्रत्येक आरोप का उत्तर देता हूं।

१—आरोप सं० १ एक पत्र पर आधारित है जिसे प्रधानमन्त्री वैद्य श्री वामनराव दीनानाथ जी के साथ मिलकर मैं किसी जंगबहादुर के पास लेकर गया और इस प्रकार मैंने किसी विग्रह में सक्रिय भाग लिया। परन्तु वैद्य समाज आज यह जानकर दंग रह जायगा कि इस पत्र का जिक्र या उल्लेख मैंने अपने जीवन में सर्वप्रथम न्यायालय के इस निर्णय में पढ़ा। उक्त पत्र मैंने कभी देखा नहीं, कभी पढ़ा नहीं, कभी छुआ नहीं, ऐसे पत्र को कहीं ले जाने के लिये मुझे किसी ने कहा ही नहीं और मैं लेकर उसे कहीं गया नहीं, किसी जंगबहादुर को ऐसा पत्र लेकर मैं मिला नहीं, प्रधानमन्त्री वैद्य श्री वामनराव दीनानाथ जी ने मुझे कभी ऐसा पत्र लेकर साथ चलने के लिये कहा नहीं, और मैं कहीं ऐसा पत्र लेकर उनके साथ गया नहीं। यही नहीं, मैंने जाग्रतावस्था में तो क्या स्वप्न में भी न यह कार्य किया और न ही कभी इसका मेरे मन में लेशमात्र भी कभी कोई भाव या विचार आया।

इस प्रकार जहां तक ऐसे पत्र का मेरे से अदालत के समक्ष कोई सम्बन्ध स्थापित किया गया है, यह एक आमूल-चूल बड़ा भारी झूठा काण्ड "सचित्र आयुर्वेद" ने अपने पक्ष की सफाई में रचा है और इस प्रकार एक मामूली कर्मचारी से घोर अन्याय किया है। यदि

अभी या कभी भी यह प्रमाणित हो जाय कि मैं ऐसा पत्र लेकर कहीं गया था तो मुझे तुरंत ही इस नौकरी से बहिष्कृत ही न किया जाय वरन् अन्य अपेक्षित दण्ड भी दिया जाय, अन्यथा सत्य का तकाज़ा है कि इस प्रकार का झूठा काण्ड घड़ने के लिये जो अपराधी सिद्ध हों उन्हें मेरे से क्षमा याचना के लिये वाध्य किया जाय।

मेरा उपर्युक्त वक्तव्य पढ़ने के पश्चात् आप कहेंगे कि आखिर यह हुआ कैसे ? थोड़ी सी जांच इस विषय में मैंने की है और मैं आपको विश्वास से कह सकता हूँ कि एक बीच के व्यक्ति ने सर्वप्रथम तो श्री पं० शिवशर्मा जी से विश्वासघात किया, पुनः मेरे से और श्री प्रधानमन्त्री वामनराव दीनानाथ जी से धोखा किया, और बाद में उन जंगबहादुर जी से वञ्चना की जिनके लिये वह पत्र कहा जाता है तथा जिन्हें कि वह कभी मिला ही नहीं। अन्त में उसी व्यक्ति ने एक झूठा काण्ड रचने के लिये उस पत्र का उपयोग करके अदालत और न्याय को धोखा दिया। आप सत्य को जानना और वास्तविक दोषी को पकड़ना चाहें तो इस विषय विशेष में जांच कीजिये। परन्तु जहाँ तक इससे मेरा सम्बन्ध बताया गया है यह स्पष्ट है कि वह सर्वथा झूठे रूप से प्रपञ्च से स्थापित किया गया है। इस झूठे आधार पर न्यायाधीश ने जो तर्क की है और उस निराधार तर्क पर जो निर्णय दिया है वह क्या मूल्य रखता है इसका निर्णय आप श्रीमन्तों पर ही छोड़ता हूं।

परन्तु इस पर भी आपकी यह जिज्ञासा बनी रहेगी कि श्री पं० शिवशर्मा जी ने यह बात अदालत के समक्ष मान कैसे ली ? इसी का अचम्भा मुझे भी हुआ था। तत्सम्बन्धी गुत्थी को सुलझाने के लिये मुझे वाध्य होकर "सचित्र आयुर्वेद" के अगस्त तथा सितम्बर १९५७ के अंकों का आश्रय लेना पड़ा जिनमें कि श्री पं० शिवशर्मा जी की अदालत के समक्ष साक्षी अक्षरशः प्रकाशित है। परन्तु उक्त साक्षी के अक्षरशः अध्ययन के पश्चात् मैं और भी चकित हुआ जब मुझे यह स्पष्ट हो गया कि श्री पं० शिवशर्मा जी ने जो कुछ इस निर्णय में उनके मुख में डाला गया है, वह कहा ही नहीं और सम्भवतः इसी प्रकार की विविध अन्य भूलों की भांति इस विषय में भी भूल-वश ही अदालत ने उनके वास्तविक कथन को अनजाने में ही उल्टा समझ लिया। परन्तु खेद तो इस बात का है कि इस बुद्धि-विभ्रम का नज़ला मेरे जैसे विषय से सर्वथा निर्लिप्त व्यक्ति पर गिरा।

आपके समय के दुरुपयोग के भय से इस विषय पर श्री पं०शिवशर्मा जी की पूरी साक्षी यहाँ उद्धृत नहीं करता हूँ परन्तु यह साक्षी आप "सचित्र आयुर्वेद" के अगस्त १९५७ के अंक के पृष्ठ १६४ तथा सितम्बर १९५७ के अंक के पृष्ठ २५८ तथा २५९ पर मूल अंग्रेजी में उसके द्वारा दिये गये अनुवाद सहित पढ़ सकते हैं। श्री पण्डित शिवशर्मा जी ने वहां यह बात कदापि नहीं कही कि उन्होंने "तिलकराम और प्रधानमन्त्री श्री वामनराव को अपने मित्र जंगबहादुर के पास प्राथिक सभा की मांग करने वालों के खिलाफ अदालती निषेधाज्ञा की अर्जी देने के सम्बन्ध में सलाह देने के लिये भेजा था।" इस विषय पर श्री पं०शिवशर्मा जी की साक्षी का सारांश तो यह निकलता है कि ता० ३१-७-५२ को संस्था के विरुद्ध कोर्ट से निषेधाज्ञा जारी होने की सूचना उनको टेलीफोन द्वारा दिल्ली से मिली और उसी दिन-उन्होंने श्री जंगबहादुर जी के लिये एक आवश्यक पत्र भेजा ताकि इस निषेधाज्ञा को हटवाने के लिये उचित कानूनी

परामर्श प्राप्त करने में उनकी सहायता मिल सके। दिल्ली से यह ट्रंक टेलीफोन करने वाले महानुभाव थे "सचित्र आयुर्वेद" के मालिकों के निकट सम्बन्धी, यह दिल्ली के टेलीफोन रिकार्ड से सम्भवतः अब भी सिद्ध हो सकता है। ऐसा पत्र भी मंगवाया था उन्होंने ही और उन्हीं के पास वह पत्र पहुँचा भी था। अस्तु, श्री पं० शिवशर्मा जी ने अपनी साक्षी में इस आशय का स्पष्टतया खण्डन किया है कि उन्होंने श्री जंगबहादुर को वह पत्र प्रार्थिक सभा के विरुद्ध निषेधाज्ञा प्राप्त करने में सहायता प्राप्त करने के लिये लिखा। इसी प्रकार उन्होंने यह भी कोर्ट में नहीं कहा कि उन्होंने मुझे जंगबहादुर के पास भेजा, उन्होंने तो उस पत्र में मेरे केवल नाम के विद्यमान होने के विषय पर ही कहा। दूसरे जो निषेधाज्ञा कोर्ट ने संस्था के प्रस्तावाधीन मत-संग्रह के विरुद्ध ता० ३१-७-५२ को प्राप्त की गई थी उसी दिन श्री पं० शिवशर्मा जी उसे हटवाने के लिये ही कार्यवाही करने की सोच सकते थे क्योंकि प्रार्थिक सभा का जब आयोजन ही तब तक नहीं किया गया था तो किसी निषेधाज्ञा की प्राप्ति का प्रश्न ही नहीं उठ सकता था। क्योंकि प्रार्थिक सभा की सूचना उस समय से कोई ३३-३४ दिन पश्चात् २,३ सितम्बर के लगभग निकली थी इसलिये उस अविद्यमान वस्तु के विरुद्ध निषेधाज्ञा प्राप्त करने का विचार उस के जन्म से लगभग ३३-३४ दिन पहले उठ ही कैसे सकता था? यह तो साधारण विचार की बात है। इस प्रकार कोर्ट ने श्री पं० शिवशर्मा जी की जिस प्रकार की साक्षी का हवाला दिया है वह वास्तव में कोर्ट के रिकार्ड पर ही विद्यमान नहीं है और एक अविद्यमान वस्तु का किसी भूल-वश स्वयमेव अस्तित्व बनाकर उस पर पहिले तर्क करना और फिर उस तर्क पर निर्णय देना कहाँ तक युक्ति-युक्त एवं न्यायोचित है इसका निर्णय भी हमारे सदस्य महानुभाव स्वयं ही करें। संक्षेप में मैं तो अपनी बात मानता हूं कि वह तथाकथित पत्र न मेरे पास कभी पहुंचा और न मैं ऐसे किसी पत्र को लेकर किसी के पास गया। इस अवस्था में मेरे से बिना कोई पूछ-ताछ किये जो टिप्पणी बम्बई न्यायालय ने मेरे विरुद्ध की है वह सर्वथा अन्याय हुआ है। साथ ही जब इस विषय से मेरा कोई सम्बन्ध ही नहीं हुआ और न ही मैंने ऐसा कोई कार्य ही किया तो मैंने न किसी के विवाद में हिस्सा लिया और न किसी को सहयोग दिया। अतएव मेरे विरुद्ध ऐसा आरोप अपनी मौत स्वयं मर जाता है।

२—दूसरा आरोप महासम्मेलन के तत्कालीन उपाध्यक्ष श्री पं० ओंकारप्रसाद जी शर्मा के पत्र पर आधारित है। किसी को कोई पत्र लिखने में सभी लोग स्वतन्त्र हैं। इसी प्रकार किसी के विषय पर किसी अन्य को कुछ भी अण्ट-सण्ट लिखने में श्री पं० ओंकारप्रसाद जी भी स्वतन्त्र थे, परन्तु मुझे नितान्त खेद से लिखना पड़ता है कि श्री पं० ओंकारप्रसाद जी ने एतदर्थ मेरे जैसे एक मामूली वैतनिक कर्मचारी, जिसका सभा में न कोई मत है और जो न सभा का सदस्य है, को किसी हेतु-वश चुना। अस्तु, ऐसी स्थिति में भी देखना यह है कि क्या मैंने उस पत्र पर कोई कार्यवाही की। इसका असंदिग्ध उत्तर हमारा रिकार्ड देता है। श्री पं० शिवशर्मा जी ने इस पत्र पर मुझे कोई आदेश नहीं दिया। न कोई हमारा कर्मचारी श्री पं० ओंकारप्रसाद जी शर्मा की अनधिकृत मदद के लिये कभी गया, न मैं था और न मैंने उनके कहने से कोई नियुक्ति की। जब उस पत्र पर मैंने लेशमात्र भी कोई

अनधिकृत कार्य किया ही नहीं तो उसके आधार पर कोई तर्क करना और फिर किसी निर्दोष व्यक्ति पर उससे बिना पूछ-ताछ किये कोई आरोप लगा देना कितना अन्याय है इसका निर्णय भी सदस्य महानुभाव स्वयं ही करें। वैसे इस पत्र से ही यह स्पष्ट है कि वे वास्तव में उनकी कोई मदद नहीं कर रहा था और इसीलिये उन्हें आगे लिखना पड़ा। अर्थात् इसी पत्र से यह स्पष्ट है कि जिस कार्यवाही का अदालत मेरे पर आरोप लगा रहे है ठीक वही कार्य न करके मैंने संस्था के कर्मचारियों के दुरुपयोग से उनकी रक्षा की और एक कठिन परिस्थिति में निष्पक्ष रीति से अपने कटु कर्त्तव्य का पालन किया।

न्यायाधीश महोदय स्वयं मान रहे हैं कि वे नहीं जानते कि मैंने इस पत्रानुसार कोई अन्य व्यक्ति नियुक्ति किया अथवा स्वयं उनकी मदद की। परन्तु इस व्यक्त अनभिज्ञता पर भी उन्होंने तर्क की और उस तर्क के आधार पर अपना मत भी व्यक्त किया। अधिकारी का कर्तव्य था कि इस विषय पर पहिले अपने ज्ञान को परिपूर्ण करता और फिर किसी परिणाम पर पहुँचता। इस प्रकार यह आरोप स्पष्टतया निराधार, अयुक्त एवं अप्रमाणित सिद्ध हो जाता है।

३—आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका के गतांक में "आयुर्वेद विज्ञान" से उद्धृत आरोप "क" के अन्तर्गत प्रकाशित तीसरा आरोप श्री पं० किशोरीदत्त जी शास्त्री के त्यागपत्र से सम्बन्धित है जिसका पूर्ण उत्तर "आयुर्वेद विज्ञान" के आरोपों के स्पष्टीकरण के अन्तर्गत ही पत्रिका के गतांक में मैं दे चुका हूँ। क्योंकि तत्सम्बन्धी सभी आरोप पहिले ही सर्वथा मिथ्या सिद्ध किये जा चुके हैं इसलिये इस विषय में भी जो राय अदालत ने व्यक्त की है वह वास्तविकता पर आधारित नहीं।

४—चौथे आरोप में जो कथन किया गया है वह निराधार है क्योंकि न श्री गुरुदत्त जी ने मुझे चार्ज दिया, न मैंने उनसे कोई चार्ज लिया और न ही ऐसा कोई आदेश ही मुझे मिला था। तत्कालीन कार्याध्यक्ष श्री पं० शिवशर्मा जी ने तो केवल उनकी अपनी देख-रेख में कार्य को तब तक संभाले रखने मात्र का मुझे आदेश दिया था जब तक कि अधिकृत व्यक्ति श्री संयुक्त मन्त्री जी दिल्ली पहुँच कर प्रधान मन्त्रित्व का चार्ज श्री गुरुदत्त जी से न ले लें, क्योंकि पदाधिकार से अवशिष्ट मन्त्रियों में वैद्यराज श्री वामनराव दीनानाथ जी संयुक्त मन्त्री ही सीनियर अर्थात् सर्वोपरि थे। इसमें मेरे से पक्षपात की कोई भी बात या ऐसी धारणा के लिये तो कोई अवसर ही नहीं था। इसलिये इस मनघड़न्त पक्षपात के आधार पर कोई तर्क करना और ऐसी तर्क पर कोई निर्णय देना कहां तक न्यायानुकूल हो सकता है इसका निर्णय भी स्वयं पाठक करें।

५ तथा ६—आरोप सं० ५ तथा ६ मेरे वेतन आदि से सम्बन्ध रखते हैं, अतएव मैं इन्हें एक साथ लेता हूं। पूर्व इसके कि इस आरोप का मैं विशद स्पष्टीकरण करूँ, मैं इसमें लिखित झूठी बातों को गिनाता हूँ :—

१—सन् १९३८ में मैं इस संस्था में नहीं था और न इस संस्था का कार्यालय ही उस समय लाहौर में था।

२—सन् १९५६ में या आज तक भी मेरा वेतन ४००) नहीं हुआ। यह न्यायाधीश

धीश स्वयं ही लिखते हैं कि सन् १९५६ में मेरा वेतन ३००)रुपया से बढ़कर ३०१)रुपया किया गया। इस प्रकार इस कथन को २५ प्रतिशत खोटा तो वह न्यायाधीश स्वयं ही सिद्ध कर रहे हैं।

३—मैंने संस्था को दो तीन बार तो क्या एक बार भी नहीं छोड़ा। केवल संस्था ने मुझे एक बार छोड़ दिया था जबकि सन् १९४४ में इसका कार्यालय लाहौर से कलकत्ता परिवर्तित हो गया था और मैंने अपने घर से १२०० मील की दूरी एवं कलकत्ते जैसे नगर के अनुकूल वेतन की मांग की थी।

४—कामदार लिमिटेड के पास मैं केवल एक विशेष कार्य के लिये अपने अर्जित अवकाश के दिनों में संस्था के तत्कालीन अधिकारियों से विधिवत् छुट्टी स्वीकार करा कर ही गया था। इसलिये मैं नियमों के विरुद्ध वहां नहीं गया था।

इन असत्यों का दिग्दर्शन करा देने के पश्चात् अब मैं इस संस्था में अपने रहने और कार्य के विषय में संक्षेप में निवेदन करता हूं ताकि इस विषय को समझने में आपको कोई संशय अवशिष्ट न रहे।

गवर्नमेन्ट कालेज, लुधियाना, पंजाब, से हिन्दी, संस्कृत तथा फिलास्फी में सर्वप्रथम रह कर और विभिन्न पारितोषिक प्राप्त करके अपने बी० ए० होने के पश्चात् मैं लाहौर में फरवरी १९४० में इस संस्था में अकाउण्टण्ट नियुक्त हुआ था। मेरी नियुक्ति किसी सिफारिश या परिचय से नहीं हुई थी बल्कि एक कठिन प्रतियोगिता के परिणामस्वरूप हुई थी जोकि महासम्मेलन के अधिकारियों ने तब कोई पन्द्रह ग्रेजुएट्स के मध्य में आयोजित की थी। इस प्रतियोगिता में सर्वप्रथम रहकर एक मात्र योग्यता के आधार पर तब मैं चुना गया था और मेरी नियुक्ति तत्कालीन प्रधान मन्त्री श्री डा० आशानन्द जी पंचरत्न ने की थी। मुझे स्वयं नहीं लिखना चाहिये परन्तु महासम्मेलन के तत्कालीन पदाधिकारियों के प्रमाणपत्रों के आधार पर मैं कह सकता हूं कि मैंने योग्यता, लगन और परिश्रम से संस्था की बहुत दिलचस्पी से सेवा की जिसके परिणामस्वरूप मुझे विद्वत् वैद्य-समाज जानने लगा। इस प्रकार मैं मार्च १९४४ तक, जबकि कार्यालय कलकत्ता को परिवर्तित होने वाला था, इस संस्था में रहा।

उपर्युक्त प्रकार ४ वर्ष आपकी सेवा करके मैंने सन् १९४४ में डी० ए० वी० कालेज, लाहौर, में प्रवेश पाकर सन् १९४६ में इक्नामिक्स अर्थात् अर्थशास्त्र में Distinction अर्थात् महत्व के साथ एम० ए० की परीक्षा पास की। यह परीक्षा समाप्त होने के तुरन्त पश्चात् ही मैंने पंजाब की प्रमुख और प्रसिद्ध औद्योगिक संस्था में प्रवेश किया और वहां विभिन्न उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर कार्य किया। उस समय मेरा वेतन आदि २५०) रुपया मासिक था और मैं इनकमटैक्स देता था।

अगस्त १९४७ में पाकिस्तान बनने पर निर्वासित होकर मैं अक्तूबर १९४७ में दिल्ली पहुंच गया और एक पार्टटाइम काम पर भी लग गया। एक दिन अचानक नई सड़क पर मैंने कविराज श्री गणेश दत्त जी सारस्वत का साइनबोर्ड देखा। मैं इस संस्था के सम्बन्ध में पहिले से ही उनसे परिचित था, अतएव शिष्टता के नाते उनके दर्शनों के लिए अन्दर चला गया। उन्होंने मुझे बताया कि महासम्मेलन कार्यालय कलकत्ता से परिवर्तित

होकर दिल्ली आ गया है और वे प्रधानमन्त्री चुने गये हैं। उन्होंने मुझे पुनः महासम्मेलन में आने के लिए कहा। मैंने उन्हें बताया कि मैं इस बीच में डिस्टिंकशन के साथ अर्थशास्त्र में एम० ए० कर चुका हूँ और विभिन्न प्रकार की अन्य योग्यतायें एवं अनुभव भी संगृहीत कर चुका हूँ तथा एक उपयुक्त पार्टटाइम काम पर भी लग गया हूँ। मैंने उनसे कहा कि वे मेरा उपयुक्त वेतन न दे सकेंगे। उन्होंने मुझे बताया कि यद्यपि कार्यालय बराबर पूरे कर्मचारियों से भरा हुआ है परन्तु उसकी दुर्दशा हो रही है और वे इसे पुनर्गठित करना चाहते हैं। यह कार्यालय के रिकार्ड पर विद्यमान है कि उससे पूर्व सैकड़ों की संख्या में पत्र आफिस ट्रेज़ में बिना किसी कार्यवाही के एकत्रित हो रहे थे। संस्था का आर्थिक वर्ष ३१ अक्तूबर को समाप्त हो चुका था परन्तु हिसाब-किताब अस्त-व्यस्त अवस्था में था। वार्षिक आडिट भी इस स्थिति में नहीं हो पाया था। इस स्थिति में वे बहुत चिन्तित थे। संस्था से पुराने सम्बन्ध और मोह के कारण और उनके आग्रह पर स्वयं बिना कोई प्रार्थना-पत्र दिये दिसम्बर १९४७ में मैंने पुनः एक पार्टटाइम कार्यकर्ता के नाते आपकी इस संस्था में केवल दैवयोग से प्रवेश किया। मेरी पुनर्नियुक्ति में भी श्री पं० शिवशर्मा जी का न कोई हाथ था, न कोई दिलचस्पी, वे रहते भी उस समय बम्बई में थे और मजिस्ट्रेट के अपने कथन के अनुसार वे थे भी उस समय Oblivion अर्थात् अन्धेरे में। अस्तु, कविराज श्री हरिरंजन जी मजुमदार की अध्यक्षता में ११ जुलाई, १९४८ की स्थायी-समिति की सभा ने मेरा पार्टटाइम वेतन १९०) रुपये मासिक निश्चित किया। मैं इसी प्रकार चलता रहा। १९५० के मध्य में तत्कालीन पदाधिकारियों ने एक विधिवत् स्वीकृत प्रस्ताव के आधार पर मेरे से यह मांग की कि मैं पूरे समय के लिये कार्य स्वीकार करूं। यद्यपि इसमें मुझे स्पष्टतया घाटा था तथापि उनके आग्रह पर मैंने इसे स्वीकार किया। १ नवम्बर, १९५०, से मेरा कुल वेतन २७९) रुपया मासिक निश्चित हुआ। महासम्मेलन के तत्कालीन उपाध्यक्ष वैद्य श्री ओंकार प्रसाद जी शर्मा की अध्यक्षता में पहिले एक उप-समिति और पुनः स्थायी समिति के निश्चयानुसार ऐसा विधिवत् रूपेण किया गया। इसमें भी न श्री पं० शिवशर्मा जी का कोई हाथ था, न कोई दिलचस्पी, न कोई सम्बन्ध और न कुछ लेना और न कुछ देना। स्थायी समिति द्वारा निर्धारित वेतन-क्रम के अनुसार मुझे सन् १९५१ और १९५२ में वार्षिक वेतन-वृद्धि मिलीं और इन्दौर महासम्मेलन, १९५२, से पूर्व मेरा मूल वेतन २९०) रुपया तथा मंहगाई भत्ता ३९) रुपया मासिक, कुल ३२९) रुपया था।

इन्दौर महासम्मेलन पर संस्था के कार्य पर मैं उपस्थित था। कुछ स्वार्थान्ध व्यक्तियों द्वारा संस्था को हथियाने का दिल्ली का बड़ा काण्ड उस समय सभी के हृदयों में ताजा था। अस्तु, तभी वैद्यराज श्री पं० ओंकार प्रसाद जी शर्मा, जो कि उस समय तक उपाध्यक्ष भी थे, मेरे पास पधारे। उन्होंने मुझे कुछ शब्द कहे जिनका तात्पर्य यह था कि बहुत कठिन परिस्थियों में मेरे द्वारा संस्था की कर्त्तव्य-निष्ठा और दृढ़ता से अनन्य सेवा के लिये वे प्रसन्न थे। सदस्य महानुभावों की बहुत बड़ी संख्या ने भी मेरी कर्तव्य-परायणता और कार्य पर संतुष्टि व्यक्त की है। अन्त में उन्होंने मुझे कहा कि विशेष वेतन-वृद्धि के लिये मैं उन्हें एक प्रार्थना-

सं २०१५

हूं। उनकी आज्ञानुसार मैंने उसी रात्रि को प्रार्थना-पत्र लिखा और उन्हीं के कर कमलों में उसे सौंप दिया। वे स्वयं ही उस प्रार्थनापत्र को लेकर महासम्मेलन के अध्यक्ष वैद्यरत्न श्री पं० शिवशर्मा जी के पास गये, मैं वहीं गया। बाद में खुली सभा में विधिवत् स्वीकृत प्रस्तावानुसार मेरा मौलिक वेतन ३००) रुपया मासिक कर दिया गया। इस प्रकार अपनी अनन्य सेवा द्वारा अर्जित इस छोटी सी वेतन-वृद्धि के लिये मैं यद्यपि साधारणतया सम्पूर्ण महासम्मेलन का आभारी हूँ तो भी इसका विशेष निमित्त वैद्यराज श्री पं० ओंकार प्रसाद जी शर्मा बने। इस प्रकार मेरी इस वेतन-वृद्धि का उत्तरदायित्व एक मात्र श्री पं० शिवशर्मा जी पर डालना श्री पं० ओंकार प्रसाद जी शर्मा के प्रति अन्याय है क्योंकि वास्तव में यह वेतन-वृद्धि करवाने का श्रेय केवल श्री पं० ओंकार प्रसाद जी शर्मा को ही प्राप्त था। अपने इस कथन के प्रमाण में म यही कह सकता हूँ कि इस सम्पूर्ण घटना के प्रत्यक्ष-द्रष्टा हमारे वर्तमान प्रधानमन्त्री वैद्यराज श्री पं० वामनराव दीनानाथ जी हैं जिनकी उपस्थिति में मेरा प्रार्थनापत्र लेकर वैद्यराज श्री पं० ओंकार प्रसाद जी शर्मा तत्कालीन महासम्मेलनाध्यक्ष जी के पास गये थे। "सचित्र आयुर्वेद" के मालिकों के श्री पं० ओंकार प्रसाद जी समधी हैं, अतएव इस प्रकार एक पक्ष मात्र को सिद्ध करने के लिये इस सामान्य और साधारण सी वेतन-वृद्धि को अनुचित रूप में प्रदर्शित करना उन्हें शोभा नहीं देता।

अब मैं अपनी वेतन के विषय पर आगे निवेदन करता हूँ। साधारण बुद्धि का भी व्यक्ति जानता है कि आज से १८ वर्ष पूर्व के ४०) रुपये आज के २००) रुपया से कम तो किसी प्रकार भी नहीं हैं। यदि अपने जीवन के श्रेष्ठतम भाग में वर्षों के सेवा-कार्य के बाद मेरा मूल वेतन अब ३०१) रुपया है तो यह मेरे पर किसी ने विशेष कृपा नहीं की है। यदि मैं वस्तुतः ही श्री पं० शिवशर्मा जी का कृपापात्र होता तो श्री पं० ओंकार प्रसाद जी शर्मा द्वारा दिलवाई हुई उपर्युक्त एक वेतन-वृद्धि के बाद उनके कार्य-काल में निरन्तर कई वर्षों तक मेरी वेतन-वृद्धि इस प्रकार न रुकी रहती। इस समय गवर्नमेंट आफ इण्डिया में एक असिस्टेंट का वेतन-क्रम ४५०) रुपया मासिक तक जाता है। यही नहीं, इस समय हमारे कार्यालय में चपड़ासी को वेतन तथा भत्ता आदि मिलाकर ८३) रुपये मासिक से अधिक मिलते हैं। मैं दृढ़ता से कह सकता हूं कि अपने वेतन के अतिरिक्त मैं इस संस्था से १ पाई भी नहीं कमाता। कोई चोरी नहीं करता, कोई रिश्वत नहीं लेता, किसी को अनुचित सहायता नहीं पहुँचाता, मोह-द्वेष को छोड़कर कार्य-निर्वाह करता हूं। आपकी संस्था का व्यय बहुत सीमा तक मेरे द्वारा होता है। इसे मेरा अहम् भाव न समझा जाय, मैं खुली चुनौती देता हूं कि कोई मेरी चोरी या रिश्वत पकड़े। यह मेरे सत्यनिष्ठा से कार्य करने का ही फल है कि आज कुछ लोग मेरे विरोधी हैं। परन्तु मेरे विरुद्ध यह सब नितान्त झूठा और द्वेषमूलक प्रचार है क्योंकि मैं उन लोगों को अनियमित लाभ नहीं पहुँचा सका हूँ और इस प्रकार "उनका अपना" नहीं बन सका हूं।

मेरी आपसे विनय-पूर्वक / विनम्र प्रार्थना है कि समस्त वैद्यसमाज में १०,१२ मेरे विरोधी झूठे प्रचारकों से मेरे विरुद्ध लिखवा कर आरोप लें और उन पर पूर्ण जांच करके मुझे दण्ड दें या उन लोगों को, अन्यथा कोई भी वैतनिक व्यक्ति ईमानदारी से आपकी

संस्था का कार्य-निर्वाह न कर सकेगा। इस अवस्था में बम्बई की अदालत ने जो टीका टिप्पणी मेरी वेतन-वृद्धि की अयुक्त आधारों पर की है मैं उसका पूरा विरोध करता हूं।

७—जहाँ तक मुझे करनूल महासम्मेलन द्वारा १ रुपया मासिक वेतन-वृद्धि से का प्रश्न है तत्सम्बन्धी पूर्ण कार्यवाही में सदस्य महानुभावों की जानकारी के लिये यहाँ उद्धृत करता हूँ :—

"छ—श्री तिलकराम शर्मा, कार्यालय मन्त्री, का वेतन वृद्ध्यर्थ प्रार्थनापत्र उपस्थित हुआ। बहुत से सदस्यों ने संस्था में उसके कार्य की प्रशंसा की। श्री प्रधानमन्त्री जी ने भी उसकी योग्यता एवं कार्यकुशलता पर कुछ शब्द कहे। कुछ सदस्यों ने कहा कि बड़ी-बड़ी विकट परिस्थितियों में उसने संस्था की सेवा की है और अपने कटु-कर्त्तव्य को निभाया है। पर्याप्त चर्चा के अनन्तर श्री पं० शिवशर्मा जी ने कहा कि हम सभी उसके कार्य के प्रशंसक हैं और वेतन-वृद्धि का वह सर्वथा अधिकारी है, परन्तु संस्था की आर्थिक स्थिति बलवान नहीं है अतएव उसके कार्य की सराहना स्वरूप अभी तक उसकी केवल एक रुपया मासिक सांकेतिक वेतन-वृद्धि token increment की जाय और निश्चय किया जाय कि ज्यों ही संस्था की आर्थिक स्थिति अच्छी हो जाय तो उसे उपयुक्त वेतन-वृद्धि दी जाय। वह भी इसे सहर्ष स्वीकार करेगा, ऐसा मुझे विश्वास है। सभी सदस्यों ने प्रसन्नता-पूर्वक इस प्रस्ताव को स्वीकार किया।"—आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका, जनवरी. १९५६, के
पृष्ठ ६० तथा ६१ से उद्धृत।

इस कार्यवाही को आप पढ़िये। मैं आपसे विनयपूर्वक पूछना चाहता हूँ कि क्या किसी को भी यह अधिकार प्राप्त है कि वह एक इतनी बड़ी सभा जिसको कि मुझे कोई भी वेतन-वृद्धि देने की सामर्थ्य प्राप्त थी, द्वारा १) रुपया वेतन-वृद्धि दिये जाने पर टीका-टिप्पणी कर सके। उक्त सभा को अधिकार प्राप्त था कि मेरे लिये वह कोई भी वेतनक्रम निश्चित कर देती। मैं अपनी तुच्छ बुद्धि से यह नहीं समझ सका कि हमारी सम्माननीय सभा पर किस हेतुवश कटाक्ष किया गया है, कम से कम किसी बुद्धिमान व्यक्ति के मस्तिष्क में तो ऐसी बात आ नहीं सकती थी। अस्तु।

इस विषय में श्री पं० शिवशर्मा जी के दृष्टिकोण का भी आप सूक्ष्म निरीक्षण कीजिये। यदि वास्तव में वे मेरे पक्षपाती ही होते तो कई वर्ष तक वेतन-वृद्धि रोके रखने के अनन्तर भी वे मुझे केवल १)रु.मात्र मासिक वेतन-वृद्धि देने का प्रस्ताव न करते। इस से स्पष्ट है कि सर्वोपरि वे संस्था के ही पक्षपाती थे। इस सम्बन्ध में यह तथ्य भी विशेष ध्यान दिये जाने योग्य है कि दिसम्बर १९५५ की करनूल की सभा में यदि १) रुपया के स्थान में वे अपने प्रस्ताव में १०) या २०) रुपया कह देते तो क्या वही स्वीकार न हो जाता? अवश्य होता, सभा का रुख आप ऊपर जान चुके हैं। परन्तु इस पर भी उन्होंने तो बच्चों को कुछ दिये जाने की भांति केवल १) रुपया हीं देकर मुझे सन्तुष्ट करने का प्रयास किया। अस्तु, मैं ने उसे ही सहर्ष स्वीकार किया, क्योंकि अन्ततोगत्वा हम लोग रुपये के लिये ही नहीं जीते, सिद्धान्तों के लिये भी जीते हैं। रुपया संसार में बड़ी वस्तु है, परन्तु सर्वश्रेष्ठ नहीं।

८—अब मैं कामदार लिमीटेड के पास दो ढाई मास कार्य करने के विषय में निवे- करता हूं। मैं उनके पास विधिवत् छुट्टी लेकर गया था जो कि मैंने पहिले अर्जित कर थी। जब मेरी अर्जित छुट्टी पूरी हो गई तो कुछ दिन के लिये मैं निर्वेतन अवकाश पर । अपनी अर्जित छुट्टी को अपने किसी भी नियमित लाभ के लिये उपयोग करने का सभी न्याय-सिद्ध अधिकार है। हमारी संस्था के सेवानियम भी इसके बाधक नहीं। मैंने कहीं कोई चोरी नहीं की, न महासम्मेलन से न कामदार से, इसलिये ऐसे किसी कटाक्ष का र देने की मेरे लिये आवश्यकता नहीं थी। आपकी सूचनार्थ मैं यह भी निवेदन कर देना त समझता हूं कि आपकी संस्था की दिन रात सेवा करके इस समय मेरा ७ मास से र अवकाश जमा है। किस लहू पसीने से यह अवकाश अर्जित हुआ है यह कोई स्था स्वामी तो नहीं भुला सकता। मैं समझता हूं कि इस विषय पर अब अधिक लिखना के अमूल्य समय का दुरुपयोग होगा।

स्पष्टीकरण का निष्कर्ष

वैद्यरत्न श्री पं० शिवशर्मा जी का कोई पत्र लेकर मैं किसी जंगबहादुर के पास नहीं । श्री पं० ओंकारप्रसाद जी के पत्र पर मुझे श्री पं० शिवशर्मा जी ने कोई आदेश नहीं , और न ही उस पत्र पर मैंने किञ्चिन्मात्र भी कोई कार्यवाही की। इस प्रकार संस्था के किसी भी भीतरी विग्रह में मैंने कोई भाग नहीं लिया और न किसी का पक्ष किया। पं० किशोरीदत्त जी शास्त्री के त्याग-पत्र में मेरा नाम अनियमित, अनधिकृत एवं अयुक्त से जोड़ा गया है, किन्तु जैसे किसी भी झूठ का सिर पैर नहीं होता उसी प्रकार उस तथा- त त्यागपत्र में विद्यमान विविध पारस्परिक विरोधी कथन ही एक दूसरे का खण्डन कर हैं। श्री पं० शिवशर्मा जी ने मुझे वैद्य श्री गुरुदत्त जी से कोई चार्ज नहीं दिलवाया। मेरी युक्ति श्री पं० शिवशर्मा जी द्वारा कभी नहीं हुई। समय-समय पर मेरी वेतन-वृद्धियां संस्था नियमों के अनुसार विधिवत् हुई हैं। श्री पं० ओंकारप्रसाद जी शर्मा के प्रयास से मुझे एक र वेतन-वृद्धि भी विधिवत् ढंग से ही मिली थी, किन्तु उसके बाद आजतक विरोधी प्रोपे- डा के कारण मेरी वेतन-वृद्धि एक प्रकार से रुकी पड़ी है जो कि मेरे से और अन्याय हो रहा है। श्री पं० शिवशर्मा जी ने मेरी केवल १) रुपया मासिक वेतन-वृद्धि करवाई थी और वह री सभा में खुले प्रस्ताव के द्वारा। श्री पं० शिवशर्मा जी ने मेरी क़दर अवश्य की परन्तु रा कोई पक्षपात कभी नहीं किया। मैं उनके किसी अनियमित दबाव में कभी नहीं रहा। के अध्यक्ष के नाते जो आज्ञायें उन्होंने मुझे दीं उन्हें अपनी बुद्धि से सही और नियमित कर ही मैंने उनका पालन कियां, अन्यथा नहीं। वैसे उन्होंने कभी भी मुझे कोई अनिय- कार्य करने के लिये कहा हो ऐसा एक भी उदाहरण मुझे स्मरण नहीं। इसी प्रकार मैंने का कदापि भी कोई निजी उद्देश्य साधन नहीं किया। इस संस्था में कार्य-निर्वाह ते हुए मैंने एक मात्र संस्था के विधान, हित और सम्मान को सर्वोपरि रखते हुए दृढ़ता कर्तव्य-पालन करने की चेष्टा की है। मेरे विरुद्ध एक भी आरोप प्रमाणित एवं युक्त नहीं है।

सारांश में किसी का यह मानना बड़ी भूल है कि म एकमात्र वैद्यरत्न श्री पं० शिवशर्मा जी का प्रिय-पात्र हूं। मैं अपने आपको समस्त वैद्यसमाज का प्रिय-पात्र समझता हूं। वह व्यक्ति किसी भी सज्जन का स्थायी प्रिय-पात्र बन सकता है जो कर्मठ है और अपने मस्तिष्क को ठिकाने रखकर नियमानुकूल निष्पक्ष और न्यायोचित ढंग से कार्य-निर्वाह करता हुआ दूसरों को अपनी ओर आकर्षित करता है। किन्तु झूठा, धोखेबाज अथवा कोई क्रीतदास चिरकाल तक किसी अपने का भी प्रियपात्र नहीं रह सकता। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मैं श्री पं० शिवशर्मा जी की बड़ी भारी कदर करता हूं परन्तु ऐसा मैं उनके अद्भुत गुणों के लिये करता हूँ न कि इसलिये कि उन्होंने मेरे पर कोई विशेष कृपा की है। आजकल के समय में न्याय भी मिल जाय तो बड़ी बात है। पक्षपात में मुझे वैसे ही विश्वास नहीं। श्री पं० शिवशर्मा जी का और मेरा सम्बन्ध एकमात्र संस्था के अधिकारी और नेता के नाते रहा है। यदि मेरे लिये उनके मन में सद्भावना है तो मैं समझता हूँ कि वह मेरे सद्गुणों के लिये होगी, क्योंकि मैंने तो उनके लिये कभी कुछ विशेष किया ही नहीं। इस संस्था में भी उनकी आज्ञाओं के पालन में मैंने अपने कर्त्तव्य से अधिक कभी कुछ किया नहीं। संस्था के सभी अधिकारियों का मैं बराबर आदर करता हूँ। कल को यदि वैद्यराज श्री पं० रामनारायण जी शर्मा संस्था के अध्यक्ष बनते हैं तो उनके प्रति भी मेरा सहयोग, आदर तथा सम्मान श्री पं० शिवशर्मा जी से कम नहीं होगा। अस्तु, किसी भी संस्था, उसके अधिकारियों और वैतनिक कर्मचारियों के पारस्परिक सम्बन्धों के विषय पर एक पुस्तक लिखी जा सकती है, इसलिये मैं अधिक कुछ न लिखकर यही निवेदन करूंगा कि मेरे पास संस्था के बहुत से अधिकारियों के प्रमाणपत्र हैं। मेरे पास "सचित्र आयुर्वेद" के मालिक श्रीमान् पं०रामनारायण जी शर्मा का भी "योग्यता" का ही नहीं वरन् "सुयोग्यता" का प्रमाणपत्र है, कोई भ्रम में न रहे। परन्तु इन प्रमाणपत्रों के प्रकाशन और पढ़वाने में मैं आपका धन और बहुमूल्य समय नष्ट नहीं करवाना चाहता।

इस प्रकार मैंने "सचित्र आयुर्वेद" में प्रकाशित आरोपों का पूरा स्पष्टीकरण कर दिया है। इस पर भी यदि हमारे किसी सदस्य महानुभाव को कोई शंका इस विषय-विशेष पर शेष रहे तो वह मुझ से पत्र लिखकर पूछ सकते हैं, मैं प्रसन्नता से स्पष्टीकरण करूंगा।

परन्तु सम्भव है कि उपर्युक्त स्पष्टीकरण के पश्चात् आपके मन में यह जिज्ञासा उत्पन्न हो कि आखिर कुछ लोग भी मेरे विरोधी क्यों हुए ? लीजिये इसका भी उत्तर आपके हाथ दिये देता हूँ।

मेरे विरोधी कैसे बने ?

मैं एक बहुत उत्तरदायित्वपूर्ण स्थान पर कार्य करता हूँ जहाँ सैकड़ों व्यक्तियों से वास्ता पड़ता है। विकट समय है, लोगों का आचरण तीव्र गति से अधःपतन की ओर जा रहा है। भ्रष्टाचार और घूस लेने-देने का बोल-बाला है। लोग एक मात्र अपनी स्वार्थ-सिद्धि से ही अपने जीवन की सफलता को मापने लग गये हैं। नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ के कार्यनिर्वाह में किस-किस प्रकार के कार्यों के लिये किस-किस प्रकार की सिफारिशें

किस प्रकार के व्यक्ति लेकर मेरे पास आते हैं यदि उसकी कथा आपके समक्ष रक्खूं तो आप दांतों के तले उँगलियां दबाने लगेंगे। लोग इतने मदान्ध हो गये हैं कि वे अपने द्रव्यबल, बाहुबल अथवा अन्य किसी भी प्रकार के बल से "अपने साथ न मिलने वालों" को मिटा देना चाहते हैं। अस्तु, यद्यपि ऐसे प्राणियों की संख्या समय के प्रभाव से दिन प्रति दिन बढ़ रही है तो भी सन्तोष की बात है कि ऐसे लोग अभी तक अल्प सँख्या में हैं और इसी कारण यह संसार चल रहा है। परन्तु एक बात स्पष्ट है कि इस स्थिति में सज्जनों को प्रपञ्ची लोग पीड़ित कर रहे हैं। इस रोग की अधिक क्या चर्चा करूं, आप लोग विद्वान् हैं, विज्ञ हैं और एक श्रेष्ठतम विज्ञान के व्यवसायी हैं। मैं विस्तार से नहीं लिखूंगा, आपकी संस्था में ठीक ऐसे ही तत्वों का मुझे समय-समय पर विवशतया सामना करना पड़ता है। इस प्रकार थोड़े बहुत लोगों का प्रति वर्ष विरोधी बनते रहना स्वाभाविक और अनिवार्य है। फिर जैसे कि सृष्टि के प्रारम्भ से ही होता आया है, ये लोग अपने सांझे शत्रु को मारने के लिये आपस में विरोधी होते हुए भी इकट्ठे हो जाते हैं और फिर अपनी लक्ष्य-सिद्धि के लिये प्रपञ्च रचते हैं ताकि कहीं तो उनका "शत्रु" फंस जाय। अस्तु, ठीक इसी प्रकार मुझे भी इन बम्बई के अभियोगों में फंसाने का चेष्टा की गई है। श्री पं० शिवशर्मा जी के विरुद्ध कोई "सामग्री" ढूंडने के प्रयास में दो बार तो एक आधे उन्मत्त तथा-कथित स्वामी मेरे पास आ चुके हैं। मैं "उन्मत्त" शब्द का प्रयोग समझ-बूझ से कर रहा हूं क्योंकि मैं इमानदारी से उस व्यक्ति को आधा उन्मत्त समझता हूँ जो केवल अपनी सनक में अपने इतने समय, धन और शक्ति का इस प्रकार दुरुपयोग कर रहा है। दूसरी पत्रिका के एजेण्ट भी विविध प्रकार से विभिन्न अवसरों पर मेरे पीछे लगे। इन एजण्टों ने अनधिकृत ढंग से कार्यालय से रिकार्ड लेने की चेष्टा भी की। एक एक "उपयोगी" पत्र के लिये ५-५ सौ रुपया आफर किया गया। परन्तु जब मैं उनकी लक्ष्य-सिद्धि न कर सका तो मुझे इस प्रकार सर्वथा तिकड़मबाजी से इन लोगों ने बदनाम करने का प्रयास किया। आखिर, मैं पूछता हूँ, झगड़ा उनका और श्री पं०शिवशर्मा जी का था, मेरे विरुद्ध उन्होंने झूठे काण्ड क्यों रचे? यही नहीं, मुझे विविध प्रकार की धमकियां भी कुछ लोगों ने दीं। सम्भवत: वे समझते हैं कि जिनके पास दुरुपयोग करने के लिये प्रचुर धन है वे ही इस संसार में जीवित रह सकते हैं। अधिक क्या लिखूं, इतने में ही आप मेरे से विरोध के कारण समझ लीजिये।

उपसँहार—मैं यहां से किसी से भयभीत होकर नहीं जाऊँगा क्योंकि मैं इसे कायरता समझता हूं। किसी बुद्धिमान ने कहा है। "An ounce of just encouragement more than undoes a ton of criticism" अर्थात् सच्चे प्रोत्साहन का एक औंस नुक्ताचीनी के एक टन को मिटा देने से भी इससे भी अधिक कार्य करता है। ठीक इसी प्रकार बड़े भारी झूठे प्रोपेगण्डा और टीका टिप्पणी से मैं आप महानुभावों द्वारा थोड़ी सी कदर को कहीं मूल्यवान् समझता हूँ। डेमस्थनीज ने कहा है "It is not possible to found a lasting power upon injustice, perjury and treachery" अर्थात् अन्याय, झूठी गवाही और विश्वासघात के आधार पर स्थायी शक्ति

का निर्माण संभव नहीं, अतः एवं मेरा दृढ़ मत और विश्वास है कि मेरे विरुद्ध झूठे आरोपों द्वारा उत्पादित दम्भी शक्ति इस सत्य के प्रकट होते ही स्वममेव नष्ट हो जायगी।

और अन्त में

गांधी जी ने स्वतन्त्रता से पूर्व अंग्रेज़ों की न्याय मैशीन के विषय में बोलते हुए एक बार कहा था "If the salt loses its saltishness whence shall we get things salted ?" अर्थात् यदि नमक अपनी नमकीनता को गंवा बैठे तो हम पदार्थों को निमकीन कैसे बनायेंगे ? ठीक इसी स्थिति में मैं आपसे विनम्र निवेदन करूँगा कि यदि घर बैठे-बैठाये वैसे ही मुझे कोई अन्याय मिल जाय तो मैं क्या करूँ ? प्राकृतिक न्याय का त्रिकाल सिद्ध सिद्धान्त है कि यदि किसी के विरुद्ध कोई आरोप हो तो उसको अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने का पूरा अवसर दिया जाय और तदुपरान्त ही उस पर निर्णय दिया जाय। यदि बम्बई के केसों में मेरे विरुद्ध कोई आक्षेप सामने आये थे तो अदालत का कर्त्तव्य था कि मुझे सफाई पेश करने के लिये बुलाया जाता। इस प्रकार बम्बई अदालत में मेरे विरुद्ध घोर असत्य प्रतिपादित एवं स्वीकृत हुए हैं। मैं नितान्त विनम्र भाव से कहूंगा कि मैं एक छोटा सा व्यक्ति हूँ परन्तु अन्याय और असत्य के आगे झुकना मेरी प्रकृति के विरुद्ध है। या तो आप इन पत्रिकाओं वालों को मेरे से क्षमा-याचना के लिये बाध्य करें अन्यथा इन झूठे कथनों के कटवाने में मेरी सहायता करें। इसकार्य में सभी मनस्वी वैद्य महानुभावों का सहायता सहयोग परम अपेक्षित समझता हूँ। यदि सम्पूर्ण वैद्यसमाज में मुझे २५ भी सच्चे व्यक्ति साथ देने की बात लिखेंगे तो मैं बम्बई हाईकोर्ट को इस विषय में शीघ्र ही प्रार्थना-पत्र दूंगा। मुझे उच्च न्यायालयों में बराबर दृढ़ विश्वास है।

अन्त में आप से इस विस्तृत लेख के पढ़ने के लिये पुनः क्षमा याचना करता हूं। मुझे खेद है कि मुझे यह लिखना पड़ा, परन्तु "भावना से कर्त्तव्य ऊँचा है।"

आपका विनम्र सेवक
तिलकराम शर्मा
कार्यालयमन्त्री
अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन-विद्यापीठ

चैत्र पूर्णिमा, सम्वत् २०१५

"पुनश्च"

"सचित्र आयुर्वेद" और "आयुर्वेद विज्ञान" में समय समय पर और भी कई कुछ मेरे विरुद्ध प्रकाशित किया जा रहा है। मैं दो शब्दों में ही ह देना चाहता हूँ कि वह सब कुच्छ "भ्रममूलक" एवं "द्वेषमूलक है। मेरे पास इन सब भद्दे प्रकाशनों का पूरा उत्तर है, परन्तु अब मैं कोई उत्तर देने का विचार नहीं रखता। फिर भी हमारे किसी सदस्य महानुभाव को किसी तथा-कथित आरोप के विषय में कोई शंका हो तो श्रीमान् महासम्मेलनाध्यक्ष जी अथवा श्रीमान् प्रधानमन्त्री जी को लिखें, उनका आदेश होगा तो ही मैं स्पष्टीकरण प्रस्तुत करूंगा, अन्यथा नहीं।

विनीत—तिलकराम शर्मा

सत्यान्वेषण

वैद्यरत्न कविराज श्री प्रतापसिंह जी ने एक वक्तव्य वैद्यसमाज में प्रकाशित किया है जिसमें महासम्मेलन के ४२ वें अधिवेशन में स्वीकृत प्रस्ताव के आधार पर जो कार्य मैं करने जा रहा था उसके विषय में अपना मत व्यक्त किया है। मेरे जिस गश्ती पत्र का यह उत्तर बनाया गया है वह तो मैंने विषय से सम्बन्धित केवल ५३-५४ आयुर्वेदिक फार्मेसियों को ही भेजा था परन्तु श्री कविराज जी ने अपना वक्तव्य सर्वसाधारण में वितरित किया है। इस अवस्था में विवश होकर मैं भी सर्वसाधारण की जानकारी के लिये उस गश्ती पत्र को यहां प्रकाशित करता हूं, ताकि चित्र के दोनों पहलू सभी पर व्यक्त हो जायें।

जहां तक मेरे गश्ती पत्र और श्री कविराज जी के वक्तव्य की भाषा का प्रश्न है पाठकगण स्वयं निश्चय कर लें कि किस की भाषा किस स्तर की है।

श्री कविराज जी मेरे पक्ष को सिद्धान्तरूपेण ठीक समझते हैं ऐसा उनके वक्तव्य से स्पष्ट है तो भी उन्होंने दूसरा मार्ग क्यों अपनाया ? यही तो प्रश्न है जिसका सन्तोषजनक उत्तर उन्होंने नहीं दिया।

श्री कविराज जी ने अपने वक्तव्य में "एक फार्मेसी वाले बन्धु का लम्बा उत्तर" उद्धृत किया है। मेरे विचार में वह पत्र नहीं, एक वक्तव्य है और स्पष्टतया उसी वक्तव्य के लिये विशेषतया तैयार किया अथवा कराया गया है, वह भी उस पत्र की भाषा से सुस्पष्ट है। इस पर भी यदि श्री कविराज जी उस पत्र के लेखक बन्धु का नाम व्यक्त कर देते तो अच्छा होता, क्योंकि उससे स्वयमेव भण्डा फूट जाता।

मैंने जो भी कार्य इस विषय में किया है वह सर्वथा अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के प्रतिनिधि के रूप में किया है। सिद्धान्ततः उसके सम्पादन में मैं श्री कविराज जी के साथ स्वतन्त्र रूप से नहीं जुड़ सकता था।

—स्वामी चेतनानन्द चिदाकाशी

गश्ती-पत्र

दि० २० नवम्बर, १९५७

सेवा में श्रीमान् अध्यक्ष महोदय,

विषय—सम्माननीय संसद सदस्यों के निवासकक्ष में अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के तत्वावधान में आयुर्वेदिक औषधालय की स्थापना।

माननीय महानुभावाः,

निवेदन है कि ४२ वें अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन, बंगलौर, के प्रस्ताव सं० ११ को कार्यान्वित करने के ध्येय से मैंने उपर्युक्त विषय पर आपकी सेवा में विगत जुलाई मास में एक पत्र भेजा था, जिसकी यथार्थ प्रतिलिपि आपके संस्मरणार्थ पुनः प्रेषित है। श्रीमान् जी के अतिरिक्त भारत की ५४ प्रसिद्ध-प्रसिद्ध आयुर्वेदिक फार्मेसियों के संचालक महोदयों को भी उक्त पत्र भेजा गया। अन्यों की भाँति श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन को भी यही पत्र भेजा गया।

जैसा कि मैंने पहिले पत्र में निवेदन किया था भारतीय संसद में आयुर्वेद के एक दृढ़ पक्ष की स्थापना के ध्येय मात्र से यह औषधालय खोलने का प्रस्ताव किया गया था। वास्तव में एतदर्थ विगत ३-४ वर्ष से हमारे अनेक संसद सदस्य समय-समय पर प्रेरणा करते आये हैं। इसी प्रेरणा के फलस्वरूप संसदीय आयुर्वेदिक भाषणमाला का भी सूत्रपात किया गया था। इसी दिशा में उक्त आयुर्वेदिक औषधालय की स्थापना दूसरा पग था।

यद्यपि इसमें भारतगौरव राजर्षि श्री पुरुषोतम दास जी टंडन, महामना श्री पं० ठाकुर दास जी भार्गव, श्री एस० वी० कृष्णमूर्ति राव, श्री बनारसीदास जी झुंझनू वाला, श्री शिवदत्त उपाध्याय, श्री महाराज सिंह जी, श्री हनुमन्त राय जी आदि सम्माननीय संसद सदस्यों ने हमें अमूल्य सहयोग एवं परामर्श देकर कृतार्थ किया था, परन्तु इन कार्यों के हेतु विशेष प्रेरणा मध्यप्रदेश के भूतपूर्व स्वास्थ्यमंत्री श्री डा० वामन सदाशिव बार्लिंगे महोदय से हमें मिली। उन्हीं के सहयोग से हम इस कार्य के लिए उद्यत भी हुये। उन्होंने ही श्री एन० केशवायंगर, श्री एच० सी० दासप्पा तथा श्री बी० के० मुकर्जी संसद सदस्यों के सहयोग से राष्ट्रपति भवन के समीप नार्थ एवेन्यू संसद सदस्यों के क्लब भवन में औषधालय के लिए दो कमरे और कुछ फर्नीचर भी दिलवाये।

उक्त स्थान आदि लेकर ही मैंने आपकी सेवा में जुलाई का पत्र भेजा था। इस पत्र के यथा-समय उत्तर आने भी प्रारम्भ हो गये। भारत की बहुत सी बड़ी-बड़ी फार्मेसियों के संचालक महोदयों ने सराहनीय आर्थिक और औषधियों की सहायता के वचन दिये और प्रस्तावित औषधालय के लिये अपनी-अपनी वार्षिक अथवा मासिक अनुदानों की सूचनायें देकर हमें प्रोत्साहित किया। श्री रसशाला औषधाश्रम, गोण्डल वालों ने तो लगभग ११०० रुपये की औषधियां भी इस औषधालय के निमित्त भेंट कर दीं। हमारे आयुर्वेदोद्योग के अधिपतियों द्वारा इस स्तुत्य प्रोत्साहन से हमें बहुत शक्ति मिली और प्रसन्नता भी हुई। हमें विश्वास हुआ कि सभी विघ्न-बाधाओं के रहते हुये भी आयुर्वेद का भविष्य उज्ज्वल है। हम आयुर्वेद के अपने उद्योगाधिपतियों के प्रति एतदर्थ कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

उक्त स्थिति में बड़े चाव से प्रस्तावित औषधालय सम्बन्धी कार्य में हम अग्रसर होने लगे। वहां औषधियां पहुँचाई—कुछ तो उपर्युक्त ११०० रुपये की और कुछ अन्य अपने निजी "श्री सत्य धर्म मण्डल" द्वारा संचालित "श्री लक्ष्मी धर्मार्थ औषधालय" की। आयुर्वेद के उपदेशों, ऋतु-चर्या, दिन चर्या आदि के ९ बड़े-बड़े सुन्दर चार्टस् भी लगाये

के लिये वहां पहुंचाये । साइनबोर्ड भी तैयार करवाये और एक साइनबोर्ड उस स्थान पर गवा भी दिया ।

श्री डाक्टर बालिंगे जी उन दिनों नागपुर में थे क्योंकि तब संसद विश्रान्ति में थी । स्त के प्रारम्भ में ही संसद का सत्र प्रारम्भ होने वाला था । हमारा निश्चय था कि द के दोनों सदनों के मिलते ही उक्त औषधालय का उद्घाटन भारत सरकार के किसी री अथवा लोकसभा के अध्यक्ष श्री अनन्तशयनम् जी आयंगर अथवा उपराष्ट्रपति श्री ० राधाकृष्णन जी के कर-कमलों द्वारा कराया जाय । मैंने श्री डा० बालिंगे जी को पत्र खा । उन्होंने मुझे सूचना दी कि वे ८ अगस्त रात्रि अथवा ९ अगस्त को प्रातः दिल्ली हुंचेंगे और तदुपरान्त सभी कार्य करेंगे । अस्तु, हमने सभी तैयारियां प्रारम्भ कर ही खी थीं, केवल औषधालय के उद्घाटन का कार्य शेष था ।

जैसा कि तत्सम्बन्धी प्रस्ताव से आपको विदित होगा हमारे महासम्मेलन के भूतपूर्व यक्ष एवं प्रधानमन्त्री तथा वर्तमान में भारत सरकार के देशी चिकित्सा पद्धतियों के लाहकार वैद्यरत्न कविराज श्री प्रतापसिंह जी हमारी औषधालय संचालन समिति के महासम्मेलन द्वारा एक प्रमुख सदस्य निर्वाचित किये गये थे । औषधालय संचालन सम्बन्धी क्त प्रस्ताव बंगलौर महासम्मेलन पर स्वयं उनकी उपस्थिति में सर्वसम्मति से स्वीकार आ था । आपको इस कार्यालय का उपर्युक्त पत्र उनके परामर्श के बाद ही लिखा गया था । उस पत्र की कापी भी उन्हें दी गई थी और जिन फार्मेसियों को वह भेजा गया था की नामावलि भी । उनके अमूल्य सहयोग के लिये हम बड़े कृतज्ञ हैं और बहुत भरोसे से अपने लक्ष्यसिद्धि की ओर बढ़ रहे थे ।

परन्तु अपनी विविध तैयारियां करते हुये हमें क्या विदित था कि भविष्य के गर्भ में कुछ और ही है ।

ता० २८ जुलाई को प्रातःकाल मुझे वैद्यरत्न श्री कविराज प्रतापसिंह जी ने बहुत त-चीत के अनन्तर कहा कि औषधालय दो दिन के भीतर-भीतर ही प्रारम्भ किया य । उन्होंने मुझे यह भी कहा कि श्री बिरला जी इसके लिये तैयार हैं, मैंने उनसे बात-त कर ली है । मैंने उन्हें उत्तर में निवेदन किया कि श्री डा० बालिंगे जी के अमूल्य हयोग से और प्रधानतया उनकी प्रेरणा पर ही हम यह पवित्र कार्य करने जा रहे हैं, एव उन्हीं के दिल्ली में पधारने पर संसद के अधिवेशन प्रारम्भ होते ही विधिवत् उद्घा-न कराकर ही औषधालय का संचालन करना चाहिये । उत्तर में श्री कविराज जी ने मुझे हा कि उद्घाटन की कोई आवश्यकता नहीं, पहिले औषधालय का संचालन प्रारम्भ कर दो, उद्घाटन बाद में हो जायगा । मैंने निवेदन किया कि यदि श्री डा० बालिंगे जी की अनुपस्थिति में बिना किसी औपचारिक उद्घाटन और स्थापना समारोह के हम औषधालय रम्भ कर देते हैं तो यह अच्छा नहीं लगेगा, और सामान्य शिष्टाचार के विरुद्ध भी होगा । थ ही हमारा ऐसा करना श्री डा० बालिंगे जी के प्रति कृतघ्नता का भी सूचक होगा । न्तु श्री कविराज जी कहने लगे कि औषधालय का कल को संचालन कर दो । किन्तु मैंने से ८ दिन का समय माँगा । तब वे कहने लगे कि वे इस समिति से त्यागपत्र देते हैं

क्योंकि आप अर्थात् मैं विलम्ब कर रहा हूँ। मैंने बार-बार केवल ८ दिन की मोहलत के प्रार्थना की और उनसे कई प्रकार से अनुनय करता हुआ उनके अमूल्य सहयोग की अभ्यर्थना करता रहा। तब वे त्यागपत्र लिखते-लिखते हट गये और मैं अपने समीपस्थ मन्दिर में वापिस चला आया। मेरे दूसरे निवास स्थान पटेलनगर में वे मेरे पड़ौसी ही हैं।

ता० २ अगस्त को महासम्मेलन कार्यालय के खुलते ही श्री वैद्यनाथ भवन वालों का एक आदमी पत्र लेकर आया और पत्र देकर पियनबुक पर कार्यालय की रसीद ले गया। लिफाफा खोला तो उसमें से वैद्यरत्न कविराज श्री प्रतापसिंह जी का त्यागपत्र निकला जिस पर २९ जुलाई की तारीख अंकित थी। उक्त त्यागपत्र की यथार्थ प्रतिलिपि आपके अध्ययनार्थ संलग्न है। कार्यालय ने वह त्यागपत्र तुरन्त पश्चात् मेरे पास भेज दिया जिसे पढ़कर मुझे आश्चर्य एवं खेद हुआ।

उस दिन अपरान्ह में मैंने अपने एक निजी कर्मचारी को कुछ औषधियां और देकर नार्थ एवेन्यू भेजा। उसने वहां जाकर और ही दशा पाई—अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का साइनबोर्ड गायब था और ठीक उसके स्थान पर श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन का साइनबोर्ड लगा हुआ था और भीतर जाकर देखा तो औषधालय के कमरे के द्वार का ताला गायब था और कमरा अन्दर से बन्द था। इस परिस्थिति में जो औषधियां वह कर्मचारी लेकर गया था उन्हें उसे विवशतया श्री डा० बार्लिंगे जी के समीपस्थ बंगले में रखनी पड़ीं।

कर्मचारी ने लौटकर जब इस नवीन स्थिति की मुझे सूचना दी तो मैं आश्चर्य चकित रह गया। पहिले तो पुलिस में सूचना देने का विचार उठा किन्तु "आयुर्वेद" की शोभा को बनाये रखना अपना सर्वोपरि कर्त्तव्य समझ कर चुप रह गया और श्री डा० बार्लिंगे जी को शीघ्रमेव दिल्ली पधारने का एक पत्र और लिखा।

उसी रात्रि को पटेलनगर पहुँचकर मैं वैद्यरत्न कविराज श्री प्रतापसिंह जी के पास गया परन्तु वे कुछ क्रुद्ध से थे और कहने लगे कि मुझे रास्ते से हट जाना चाहिये और श्री वैद्यनाथ भवन वालों को औषधालय खोलने देना चाहिये। कहने लगे कि महासम्मेलन है ही क्या? वह क्या कर सकता है? इत्यादि-इत्यादि। मैंने महासम्मेलन के एक छोटे से सेवक के नाते उनसे बहुत विनय-पूर्वक कहा कि उन्हें जो सम्मान आयुर्वेद जगत् अथवा अन्यत्र में मिला है वह पर्याप्त सीमा तक इसी महासम्मेलन के प्रताप से ही मिला है। मैंने उन्हें यह भी कहा कि नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ के एक पुरातन स्नातक होने के निमित्त मात्र से भी उन्होंने आयुर्वेद जगत में प्रवेश पाकर आयुर्वेद के आश्रय से ही अपना अभी तक जीवन-निर्वाह किया है। विगत ४२-वें महासम्मेलन पर उन्होंने संस्था के पुराने अध्यक्ष के नाते सभामंच पर सम्मान भी प्राप्त किया है। इसलिये इस संस्था का तिरस्कार करने कराने में इस प्रकार सहयोग देना उन्हें शोभा नहीं देता। मैंने यह भी कहा कि जब से वह सरकारी सलाहकार बने हैं महासम्मेलन कार्यालय ने उन्हें सब प्रकार से पूरा सहयोग दिया है ताकि वे अपने महान् कार्य में सफल होकर आयुर्वेद की समुचित सेवा कर सकें। मैंने उनसे यह भी निवेदन किया कि महासम्मेलन को तुच्छ सिद्ध करने में आयुर्वेद

देना नहीं वरन् ऐसा करने से आयुर्वेद का अहित ही होगा। वैद्यनाथ भवन वाले अपने उनके अतिरिक्त किसी का प्रतिनिधित्व नहीं करते जबकि महासम्मेलन समस्त वैद्य समाज और आयुर्वेदीय व्यवसाय का प्रतिनिधित्व करता है। इस प्रकार संसद सदस्यों के निवास-रूप में महासम्मेलन के तत्वावधान में ही औषधालय खोलने में जो महत्व है वह अन्यथा नहीं। इसलिये महासम्मेलन को भी उनका बहुमूल्य सहयोग शुद्ध सात्विक भावना से देना चाहिये। इस प्रकार मैं उनसे विनती करता रहा परन्तु वे अपनी बात पर जोर देते रहे। अस्तु—

अगले दिन ३ अगस्त को पूर्वाह्न में ११ बजे मेरे स्थान पटेलनगर पर संसद क्लब का एक चपरासी आया और कहने लगा कि पगड़ी और अचकन पहिने एक मोटे से व्यक्ति जो सी मोटर में जो कई बार वहां आते रहते हैं अभी-अभी क्लब पर आये थे और पूछते थे कि वहां से साइनबोर्ड किसने उतारा है और अब आपका पता देकर आपके (अर्थात् मेरे) पास पूछ-ताछ के लिये भेजा है। मैंने उसे कहा कि भाई साइनबोर्ड तो हमारा उतारा गया है। उत्तर में उसने कहा कि दो साइनबोर्ड उतारे गये हैं। दूसरा साइनबोर्ड उन्हीं मोटर वालों ने लगवाया था और अब वह भी उतारा गया है। जिस व्यक्ति ने वह साइनबोर्ड उतारा है उसने उसे (उस चपरासी को) कहा था कि वह वैद्यनाथ भवन का आदमी है और उसे साइनबोर्ड को उतारने के लिये भेजा गया है क्योंकि बड़ा साइनबोर्ड लगाना है। उस चपरासी ने यह भी बताया कि वह आदमी अपने आपको कश्मीरी गेट पर रहने वाला और बंगाली बताता था। फिर मैंने उस चपरासी से पूछा कि तुम मेरे पास क्यों आये हो? उसने कहा कि उसी बंगाली का पता लगाने के लिये उस मोटर वाले व्यक्ति ने मुझे आपके (अर्थात् मेरे) पास भेजा है। मैंने उसे कहा कि मैं उसे नहीं जानता। उसने कहा कि वह तो वह भी नहीं जानता लेकिन उन मोटर वालों के भेजने पर आया है। इस प्रकार के श्री कविराज जी के उपक्रम से मैं अवाक् रह गया। अस्तु, "समरथ को नहिं दोष गुसाईं।"

ता० ९ अगस्त को श्री डा० बालिंगे जी दिल्ली पधारे। उसी सायं उन्हें मिल लेने का मुझे पत्र आया था। उपर्युक्त सम्पूर्ण कथा मैंने उन्हें कह सुनाई और वे बहुत खिन्न हुए। अन्त में उन्होंने कहा कि "प्रथम ग्रासे मक्षिका पातः।" उन्होंने कहा कि कविराज प्रतापसिंह जी उन्हें मिलने आये थे परन्तु उन्होंने यह कुछ भी नहीं बताया। तत्पश्चात् उन्होंने कहा कि ऐसा हम कदापि नहीं होने देंगे, यह सिद्धान्त के विरुद्ध है। यदि कांग्रेस से उन्होंने कुछ सीखा है तो वह यही है कि सामाजिक एवं सामूहिक हितों की रक्षा करना न कि व्यक्तियों को, और व्यक्तिवाद एवं एकाधिकार को बढ़ावा देना। उन्होंने कहा कि यदि हम इस प्रकार होने देंगे तो कल को "धूतपापेश्वर" वाले, परसों को "झण्डू वाले" और तरसों को "ऊँझा वाले" कहेंगे कि उन्हें इसका अवसर क्यों नहीं दिया जाता?" वे भी तैयार है—इत्यादि-इत्यादि। अन्त में उन्होंने कहा कि कल को प्रातःकाल कविराज श्री प्रताप सिंह जी को लेकर मेरे पास आओ, तब निश्चय करेंगे।

अगले दिन प्रातःकाल बहुत नम्रता-पूर्वक मैं कविराज श्री प्रतापसिंह जी को श्री डा० बालिंगे जी के पास ले गया। श्री डा० बालिंगे जी ने उन्हें सारी बात समझाई तो वे

मान गये कि हां यह कार्य महासम्मेलन के तत्वावधान में ही होना चाहिये और इस विषय पर बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन वालों से बातचीत करेंगे। श्री डा० बालिंगे जी ने श्री कविराज जी को यह भी कहा कि बैद्यनाथ भवन वालों को भी वे उनके पास ले आयें जो कविराज जी ने स्वीकार किया। मुझे संतोष हुआ। परन्तु श्री कविराज जी ने इस विषय में क्या किया वह हमें मालूम नहीं हो सका क्योंकि तत्पश्चात् वे मिलने और दीखने से बन्द हो गये। श्री डा० बालिंगे जी को भी वे नहीं मिले। इस प्रकार समझौते की प्रतीक्षा में ११ अगस्त भी बीती और १२ अगस्त भी। प्रातः सायं मैं इधर-उधर सहमति-सद्भावना की खोज में भटकता रहा।

१३ अगस्त को कार्यालय खुलते ही मुझे सूचना मिली कि हमारे प्रस्तावित औषधालय के लिये जहां एक ओर सहायता के सूचक पत्र मिले हैं वहां दूसरी ओर एक ऐसा पत्र भी एक फार्मेसी के संचालक महोदय की ओर से मिला कि—

"अपने इस धर्मार्थ औषधालय के लिये औषधियां मांगी हैं परंच अभी श्री प्रताप सिंह जी वैद्यरत्न के पत्र से विदित हुआ है कि इस धर्मार्थ औषधालय की पूर्ण व्यवस्था व व्यय श्री पं० रामनामायरण जी वैद्यनाथ भवन वाले करेंगे, ऐसी दशा में विभिन्न स्थानों से औषधियां प्राप्त करने की क्या आवश्यकता है जब कि एक ही व्यक्ति भार सहन कर रहा है।

"आप यह सूचित करें कि इस औषधालय के लिये व्यवस्था का कार्य क्या सम्मेलन के हाथ में रहेगा या श्री रामनारायण जी के द्वारा संचालित होगा और मैं यह भी जानना चाहता हूं कि इस समय रामनारायण जी का सहयोग क्या महासम्मेलन को मिल रहा है अथवा विचार नीति में कुछ अन्तर है—इस विषय में आप अपना विचार शीघ्र लिखें।"

इस सूचना से तो मुझे नितान्त खेद हुआ। अन्य भी कई फार्मेसियों के संचालकों को श्री कविराज प्रताप सिंह जी ने ऐसे ही निषेधात्मक पत्र लिखे। यही नहीं, १३ अगस्त को ही मध्याह्न में मुझे सूचना मिली कि १४ अगस्त को प्रातःकाल ८-३० पर संसदीय क्लब में आयुर्वेदिक औषधालय के श्री अनन्तशयनम् आयंगर द्वारा उद्घाटित होने का श्री वैद्यनाथ भवन वालों का निमंत्रण-पत्र निकला है। मैंने श्री डा० बालिंगे जी को टेलीफोन किया, उन्होंने कहा कि उन्हें तो अब तक कोई ऐसा निमन्त्रण-पत्र नहीं मिला और उन्होंने मुझे पुनः सायंकाल ५ बजे अपने निवास-स्थान पर बुलाया। मैं, यथासमय उपस्थित हुआ। उन्होंने कहा कि कविराज श्री प्रतापसिंह जी उन्हें प्रयत्न करने पर भी नहीं मिले हैं। हमने विचार-विमर्श किया कि यदि सम्पूर्ण स्थिति श्री अनन्तशयनम् जी आयंगर के समक्ष रख दी जाय तो निश्चय ही वे औषधालय के उद्घाटन से इन्कारी हो जायेंगे। परन्तु उनसे अपने व्यक्तिगत सम्बन्ध होने पर मैं उनके पास नहीं गया। पुनः आयुर्वेद के गौरव की रक्षा का प्रश्न हमारे सामने आया और हमने निश्चय किया कि इस उद्घाटन समारोह में किसी प्रकार का विघ्न न डाला जाय, प्रत्युत इसकी अधिकाधिक सफलता की ही कामना की जाय। केन्द्रीय संसद पर वैद्यसमाज का बुरा प्रभाव न पड़े इसलिये मौन धारण करना ही श्रेयस्कर समझा।

सं० २०१५

तदुपरान्त श्री डा० बालिगे जी हमें साथ लेकर संसद क्लब भवन में पहुंचे। वहां कर देखा कि वैद्यनाथ भवन वालों के लोग एक दूसरे कमरे में फिटिंग आदि पर जुटे हुये हैं। क्लब के आगे ही वहां के आफिस के एक आदमी ने हमें पूछा कि क्या यहां दो औष- य खुलेंगे ? श्री डा० बालिगे जी ने संसद क्लब के प्रधान श्री डाक्टर दासप्पा, श्री र्ती तथा श्री केशवायंगार मन्त्री जी से आवश्यक बातचीत की और विचार-विमर्श के न्तर निश्चय हुआ कि औषधालय का उद्घाटन होने दिया जाय परन्तु वैद्यनाथ भवन ओं के बोर्ड तथा साइनबोर्ड जो वहाँ रक्खे हैं उन्हें वहां न लगने दिया जाय और शेष निश्चय बाद में किये जायें।

श्री वैद्यनाथ भवन के एक कार्यकर्त्ता से वहां श्री डा० बालिगे जी ने पूछा कि क्या सम्मेलन के अधिकारी वर्ग को उद्घाटन समारोह के सूचना एवं निमंत्रण-पत्र भेजे गये हैं? उत्तर में उसने अनभिज्ञता प्रकट की। बाद में हमें पता चला कि महासम्मेलन-विद्या-पीठ के पदाधिकारियों को तथा बहुत सी फार्मेसियों के संचालकों को तत्सम्बन्धी निमंत्रण-पत्र हीं मिले। उद्घाटन समारोह के अन्त में धन्यवाद देते हुये श्री डा० बालिगे जी ने स्पष्ट या कि यह औषधालय सर्व वैद्यसमाज की ओर से माना जायगा न कि एक व्यक्ति विशेष की ओर से।

उपर्युक्त प्रकार ४२ वें अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का प्रस्ताव सं० ११ एक कार से कार्यान्वित हो गया है और हम उस औषधालय की सफलता की कामना करते हैं। रन्तु तत्सम्बन्धी घटनाओं की ओर से आंखें नहीं मूँदी जा सकतीं। वैद्यरत्न कविराज श्री तापसिंह जी तथा वैद्यनाथ भवन के मुख्य मालिक सम्मेलन के संरक्षक सदस्य हैं। प्रश्न यह है कि क्या सम्मेलन के प्रति उनका ऐसा आचरण उचित है? अथवा क्या वैद्यसमाज के इस सर्वोपरि पुरातन संगठन के प्रति उनके इस व्यवहार के प्रति अनुशासनात्मक कार्य-वाही करनी चाहिये? क्या वह औषधालय सार्वजनिक बनाना चाहिये या इस पर कुछ होना चाहिये?

यहाँ यह बता देना भी उचित होगा कि संसद क्लब के दो कमरों में से एक कमरे में हमारी औषधियाँ वैसी की वैसी अलमारियों में आज भी पड़ी हैं। हमारे ९ बड़े चार्ट्स भी वहीं पड़े हैं और ३ साइनबोर्ड भी।

यह पत्र बहुत खिन्न चित्त से आपकी सेवा में एक मात्र अपना कर्त्तव्य समझ कर लिखना पड़ा है। वह एक तो इसलिये लिखा है क्योंकि आपको मैं पहिले जुलाई में पत्र भेज चुका हूं और अब तत्सम्बन्धी वास्तविक स्थिति जानने के आप स्वाभाविक तौर पर इच्छुक होंगे। दूसरे इसलिये कि कई महानुभावों से इस विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिये पत्र भी आये हैं। तीसरे इसलिये भी लिखा है क्योंकि वैद्यरत्न कविराज श्री प्रतापसिंह जी ने मेरे जुलाई के पत्र के पीछे-पीछे न मालूम कितनी फार्मेसियों के संचालक महोदयों को विरोधात्मक पत्र लिखे। चौथे इसलिये लिखा जा रहा है कि अपनी व्यक्तिगत स्थिति आपके सामने स्पष्ट करने का पूरा उत्तरदायित्व अब मेरे पर है जिससे मैं उऋण होना चाहता हूं।

पांचवें इसलिये लिखा हैं कि इस विकट परिस्थितियों में आप अपने अमूल्य परामर्श से मुझे और इस संस्था को लाभान्वित करें और छठे इसलिये लिखा है कि आयुर्वेद क्षेत्र की स्थिति के सुधार और इस महती संस्था की मान-मर्यादा की रक्षा में आप अपना पूरा सहयोग प्रदान कर सकें।

कृपया प्रथमतः इस पत्र की पहुंच से तुरंत ही और बाद में अपने अमूल्य विस्तृत उत्तर से अवश्य ही अनुगृहीत करें।

विनीत
स्वामी चेतनानन्द चिदाकाशी
संयोजक
संसदीय आयुर्वेदिक औषधालय समिति

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन

महालक्ष्मी मार्केट, चाँदनी चौक, दिल्ली

दिनांक २७ जुलाई १९५७

निर्देशांक...............

सेवा में,

श्रीमान अध्यक्ष महोदय,

श्रीमन्तः,

निवेदन है कि भारतीय संसद में आयुर्वेद का एक दृढ़ पक्ष तैयार करने के ध्येय से ४२ वें अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन, बंगलौर, द्वारा यह निश्चय किया गया है कि संसद सदस्यों के निवास-कक्ष में नई दिल्ली में एक धर्मार्थ आयुर्वेदिक औषधालय संचालित किया जाय। तत्सम्बन्धी प्रस्ताव निम्नोद्धृत है :—

प्रस्ताव सं० ११

"अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का यह अधिवेशन निश्चय करता है कि भारतीय संसद के सम्मानित सदस्यों के निवास-कक्ष में उन्हीं के बहुमूल्य सहयोग से एक धर्मार्थ औषधालय को संचालित किया जाय और इस कार्य-निर्वाह के लिये निम्नलिखित महानुभावों की एक उपसमिति बनाई जाय :—

२०१५

१—श्री महासम्मेलनाध्यक्ष ।
२—वैद्यराज श्री वाई पार्थनारायण जी पण्डित, बंगलौर ।
३—वैद्यरत्न श्री पं० शिवशर्मा जी, बम्बई ।
४—वैद्यरत्न श्री कविराज प्रताप सिंह जी, दिल्ली ।
५—श्री वामन सदाशिव बार्लिगे, संसद सदस्य ।
६—श्री स्वामी चेतनानन्द जी चिदाकाशी, दिल्ली, संयोजक ।

इस योजना के प्रारम्भिक व्यय के लिये सम्मेलन अपने कोष से १०१ रु० धनराशि देकर इसका सूत्रपात करे ।"

इस योजना को अग्रसर करने में प्रथम पग उठाया गया है और राष्ट्रपति भवन के समीप नार्थ एवेन्यू, नई दिल्ली, जहां कि हमारे सम्माननीय संसद सदस्यों के निवास-गृह हैं, में औषधालय के लिये निःशुल्क स्थान, बिजली पानी आदि प्राप्त कर लिये गये हैं ।

अब औषधालय के लिये ठीक शास्त्रीय आयुर्वेदिक औषधियों की प्राप्ति का प्रश्न उपस्थित है । इसी प्रकार औषधालय के सुचारु रूप से संचालन के लिये एक सुयोग्य वैद्य एवं एक कम्पौण्डर (उपवैद्य) की सेवाओं का संग्रहीत करना भी विचाराधीन है । इन्हीं दो विषयों को लेकर मैं आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूं ।

आप जानते ही हैं कि अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के साधन बहुत सीमित हैं और आयुर्वेद के इस विशेष प्रचार कार्य में आयुर्वेद महासम्मेलन के लिये आप जैसे आयुर्वेदिक उद्योगपतियों के अमूल्य सहयोग के बिना अग्रसर होना कठिन है । अतएव यह निश्चय किया गया है कि उक्त औषधालय के लिये औषधियों की मांग आप तथा अन्य आयुर्वेदिक उद्योगाधिपतियों से की जाय । औषधालय में कौन-कौन सी दवाइयों का होना आवश्यक है उसकी सूची आपकी सेवा में साथ ही प्रेषित है । इन औषधियों की आवश्यक मात्रा आप प्रत्येक तीन-चार मास के बाद अथवा जब हमें आवश्यकता पड़े तब हमें निःशुल्क प्रदान कीजिये, ऐसी हमारी आपसे सानुरोध प्रार्थना है ।

उपर्युक्त औषधालय के बाहर एक सूचना-पट लगाया जायगा जिसमें उन सभी धर्मियों के नाम अंकित किये जायें जो इस औषधालय के लिये बिना मूल्य औषधियां प्रदान करेंगे ।

औषधालय के लिये आवश्यक कर्मचारी तथा तत्सम्बन्धी अन्य व्यय के लिये ३०००) (तीन सहस्र) रुपये वार्षिक का आनुमानिक व्यय-पत्र तैयार किया गया है । इस व्ययकोष में जो आपका बहुमूल्य अनुदान परमापेक्षित है । इसमें आप यथाशक्य सहायता देकर आयुर्वेद-जगत को लाभान्वित कीजिये एवं आयुर्वेद के इस प्रचार-कार्य में प्रोत्साहन देकर इस विज्ञान का मस्तिष्क ऊंचा कराइये ।

आशा है आप शीघ्र ही उत्तर देकर कृतार्थ करेंगे । इस समय लोकसभा का अधिवेशन चल रहा है । राज्य सभा का अधिवेशन अगस्त मास में प्रारम्भ होगा । हम चाहते हैं

कि ज्यों ही दोनों सदनों का अधिवेशन एक साथ चालू हो उसी समय इस औषधालय क उद्घाटन करा दिया जाय और इस कार्य को यथाशक्य शीघ्र ही किया जाय। अतएव आपक उत्तर शीघ्र ही मिलना परमापेक्षित है। इस विषय में आपकी कोई और जिज्ञासा हो तो अवश्यमेव लिखिये।

आपका सहयोगाभिलाषी
स्वामी चेतनानन्द चिदाकाशी
संयोजक—उपसमिति

संसदीय आयुर्वेद औषधालय समिति की सदस्यता से वैद्यरत्न कविरा श्री प्रतापसिंह जी के त्यागपत्र ता० २९-७-५७ की यथार्थ प्रतिलिपि

सेवा में,

श्रीमान् प्रेसीडेंट महोदय,
निखिल भारतीय आयुर्वेद महामण्डल, दिल्ली

मुझे खेद है कि एम० पी० क्वार्टर्स में औषधालय खोलने के विषय में जो कमेटी निर्माण की गई है उसमें मेरा नाम भी बिना मेरी पूर्व स्वीकृति के रख दिया गया है। मैं इस कमेटी में कार्य करने में असमर्थ हूँ अतः मेरा नाम पृथक् किया जावे। मुझे यहाँ की व्यवस्था देखने से पता चला कि यह कार्य करने में विलम्ब है। मैं इस कार्य को शीघ्राति शीघ्र करना चहता हूँ अतः व्यवस्था चलाना सम्भव नहीं है।

भवदीय
कविराज प्रतापसिंह

दिनांक २९-७-५७

दो हजार से भी अधिक शास्त्रोक्त एवं पेटेण्ट औषधियाँ बनाने वाली उत्तरीय भारत की ८८ वर्ष की प्राचीन रसायनशाला

राजवैद्य शीतल प्रसाद एण्ड सन्स

देहली : नागपुर : कानपुर : इन्दौर

राजवैद्य रसायनशाला में आयुर्वेद के गहरे अनुभवी वैद्यों एवं औषधि निर्माणकला के विशेषज्ञ कैमिस्टों की देखरेख में आयुर्वेद शास्त्रों के मूलभूत सिद्धान्तों के अनुसार औषधियां तैयार की जाती हैं।

केन्द्रीय और राजकीय मन्त्रियों, संसद सभासदों, डायरेक्टर आफ आयुर्वेद, प्रमुख डाक्टरों, वैद्यों एवं आयुर्वेदिक सम्मेलनों द्वारा हमारी औषधियों की प्रशंसा की गई है। विभिन्न प्रदर्शनियों एवं विज्ञान-परिषदों ने प्रशंसा पत्र दिए, स्वर्णपदक और रौप्यपदक भेंट किए और कहा है कि "वास्तव में राजवैद्य रसायनशाला की औषधियां बहुत गुणकारी होती हैं" इसके अतिरिक्त राज्य सरकारों, उपराजकीय संस्थाओं, म्युनिसिपल कमेटियों व जनपद सभाओं के दवाखानों में हमारी दवाएं बड़ी तादाद में प्रयोग की जाती हैं। शहरों व कस्बों में १०,००० से अधिक हमारे औषधि विक्रेता हैं।

हमारी दवाएँ न सिर्फ हिन्दुस्तान व पाकिस्तान में ही बल्कि, नेपाल, बर्मा, सीलोन, दक्षिण अफ्रीका, पर्शियनगल्फ, अदन, फिजीआईलैण्ड आदि में भी इस्तेमाल की जाती हैं।

वैद्यों एवं औषधि विक्रेताओं से

हम अपनी रसायनशाला द्वारा निर्मित आयुर्वेदिक एवं पेटन्ट औषधियों की बिक्री के लिए मुख्य-मुख्य स्थानों पर बिक्री केन्द्र खोल रहे हैं।

फरनीचर, दुकान किराया, वैद्य का वेतन आदि समस्त सुविधायें दी जायेंगी। जो वैद्य बन्धु अथवा औषध-विक्रेता हमें सहयोग देना चाहते हैं, वह अपना पूरा परिचय देते हुए हम से पत्र व्यवहार करें। बिक्री केन्द्र के लिए सहायक वैद्यों की आवश्यकता है। आवेदन पत्र भेजें—

राजवैद्य शीतलप्रसाद एण्ड सन्स
चांदनी चौक, दिल्ली

Editor-in-Chief—Swami Chetnanand.
अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के लिए कविराज स्वामी चेतनानन्द द्वारा प्रकाशित
मुद्रक—नया हिन्दुस्तान प्रेस, दिल्ली

खोज का आश्चर्यजनक

परिणाम

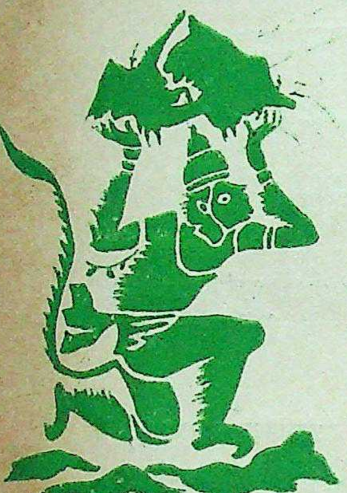

खोज का क्रम आज नया नहीं-किन्तु युग युगा चला आ रहा है। खोजके ऊपर किसी कवि के ये शब्द क्षरोंमें लिखे हुए हैं कि :- "जिन खोजा तिन पाइ पानी पैठ" त्रेतायुग में जब रावण के लड़के मेघ शक्तिबाण से श्री लक्ष्मणजी मूर्छित पड़े हुए थे औ न्द्र जी की व्याकुलता का अन्त नहीं था, उस समय गजीमें पुनः जीवन लानेके लिये हनुमान जी को स बूटी की खोज में जाना पड़ा था। हनुमान जी अपनी खोज में सफल हुए। परिणाम लङ्का के युद्धमें श्रीराम लक्ष्मण की विजय हुई।

आज का यह वैज्ञानिक युग भी मानवता और रोगों महायुद्ध में, रोग द्वारा त्रस्त मानव को मुक्त करने के लिये नयी नयी खोजमें लग है और अपनी खोज में सफल हो नये अन्वेषणों द्वारा मानवजाति की रक्षा में सफल होता जा रहा है।

डाबर कार्यालय भी गत ७२ वर्षों से सऔषध सेवारत हो लगातार खोजों द्वारा आयुर्वेदिक, पेटेण्ट दवाओं के निर्माण क्षेत्र में दूसरों का पथ प्रदर्शक बनता जा रहा है। डाबर कार्यालय की बनी हुई आयुर्वेदिक तथा पेटेण्ट दवाएं इत्यादि आज जिस प्रकार लोकप्रिय बनी हुई हैं उसका एक मात्र कारण है— डाबर कार्यालय का निरन्तर खोज का परिणाम! साथ ही स्वच्छता और सर्वाङ्ग पूर्णता से औषध निर्माण की क्रिया !! इसी खोज के परिणाम स्वरूप डाबर कार्यालय आज भारतीय जनता के सम औषध निर्माण करने वाला एक श्रेष्ठ कार्यालय बना हुआ है।

डाबर (डा. एस. के. बर्म्मन) लि० कलकत्ता-२९

अपूर्व गुणकारी आयुर्वेदिक तथा पेटेन्ट दवाओं के निर्माता

आयुर्वेद

महासम्मेलन पत्रिका

वैशाख
२०१५

प्रधान सम्पादक—कविराज स्वामी चेतनानन्द चिदाकाशी
उप सम्पादक—कविराज हरिकृष्ण सहगल
संस्कृत विभाग सम्पादक—कविराज नेत्रपाल शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य

विषय-सूची

विषय	लेखक	पृष्ठ संख्या
सम्पादकीय		२४१
स्थायी समिति का -कार्यविवरण		२४६
चरक संहिता अथवा चरकतन्त्र	—श्री सोमदेव शर्मा	२५३
आयुर्वेदे भूतैः जीवाणूनामपि ग्रहणमुचितम्	—श्री शंकरलाल शर्मा	२६१
पारद अनुसंधान में प्रगति	—श्री रामेश बेदी	२६७
आयुर्वेद में अन्तःक्षेपन पद्धति	—श्री शिवपूजनसिंह	२७०
विद्यापीठाध्यक्ष चुनाव में प्राप्त मतों की गणना का विवरण		२७७
वैद्य बन्धुओं से नम्र-निवेदन	—कविराज श्री उपेन्द्रनाथ दास	२७९
आयुर्वेद-लोक		२८१

महासम्मेलन के मान्य सदस्यों की सेवा में अत्यावश्यक सूचना

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के मान्य (वार्षिक) सदस्य महानुभावों को सूचित किया जाता है कि जिन सदस्य महानुभावों ने अपना वर्तमान वर्ष का सदस्यता शुल्क अभी तक नहीं भेजा है वे अपना-अपना सदस्यता शुल्क ५) रु० ३० जून या इससे पूर्व ही कार्यालय में अवश्य भेज देने का कष्ट करें अन्यथा महासम्मेलन विधान धारा ४-ख-६ के अनुसार वे अपने सदस्यता के अधिकारों से वंचित हो जायेंगे तथा धारा ३८-ख के अनुसार उन्हें महासम्मेलन-विद्यापीठ के सभापति-निर्वाचन में मतदान का अधिकार न रहेगा और धारा १७-२ के अनुसार वे महासम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन में प्रतिनिधि न बन सकेंगे ।

गत मास में विद्यापीठाध्यक्ष के चुनाव के अवसर पर बहुत से सदस्य महानुभावों ने मत-पत्र न मिलने की शिकायत की थी । ऐसे सदस्य महानुभावों को मतपत्र इसी लिये नहीं भेजे गये थे कि उनका सदस्यता शुल्क गत वर्ष ३० जून के पश्चात् प्राप्त हुआ था ।

अतः महासम्मेलन के सभी सदस्य महानुभावों से हमारा यह अनुरोध है कि वे प्रति वर्ष अपना सदस्यता शुल्क ३० जून तक अवश्य कार्यालय में जमा करा दिया करें । जिन सदस्यों ने इस वर्ष का सदस्यता शुल्क अभी तक नहीं भेजा वे अपना-अपना शुल्क कृपया शीघ्र भेजकर कृतार्थ करें जिससे कि उनके सदस्यता सम्बन्धी अधिकार सुरक्षित रह सकें और आगामी मतदाता सूची में उनका नाम प्रकाशित हो सके ।

भवदीय

वामनराघ दी० वैद्य

प्रधानमन्त्री

॥ धन्वन्तरयेनमः

यत्प्रभापटलोद्भासि भाषतेऽद्यापि भारतम् ।
आयुर्वेदात्मकं ज्योतिः शाश्वतं नः प्रकाशताम् ॥

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

(अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का मासिक मुख-पत्र)

प्रधान सम्पादक—कविराज स्वामी चेतनानन्द चिदाकाशी ।
उप-सम्पादक—कविराज हरिकृष्ण सहगल ।
सम्पादक संस्कृत विभाग—वैद्य श्री नेत्रपाल शर्मा शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य ।
पत्रिका कार्यालय—महालक्ष्मी मार्केट, चांदनी चौक, दिल्ली ।
ार का पता—"आयुर्वेद" दिल्ली टेलीफोन : २८६०२

र्ष ४५
ंक ५
दिल्ली, वैशाख २०१५, मई १६५८
वार्षिक ५)
एकप्रति ।।)

सम्पादकीय

ासव अरिष्टों के निर्माण के प्रतिबन्ध को वापस लिया जाये

यूं तो भारत सरकार आयुर्वेद से अपने स्नेह का पता देती ही रहती है परन्तु उसने १६५७ में आयुर्वेद को जो स्नेह भेंट दी है वह आयुर्वेद के हृदय में एक कांटे से कम नहीं, और कभी तो हम आश्चर्य से सोचते हैं कि राज्य के जिस कर्मचारी ने आयुर्वेद के आसवों के निर्माण पर प्रतिबन्ध का सुझाव दिया, उसकी खोपड़ी के अन्दर मस्तिष्क भी था कि नहीं ।

भारत सरकार ने मैडिसन एण्ड टायलेट प्रीपेयरेशन ऐक्ट द्वारा सभी आसवों को मद्य की श्रेणी में ले लिया । इससे ऐक्ट द्वारा केवल उन्हीं आसवों पर छूट रहेगी जिनमें मद्यसार केवल दो प्रतिशत होगा । इस ऐक्ट द्वारा भबके द्वारा खींचे जाने वाले आसवों पर तो ३ रु०प्रति गैलन ड्यूटी भी देनी होगी तथा कर्पूरासव, अहिफेन आसव, मृगमदासव आदि र. १०३ प्रति गैलन मद्य कर लगेगा अथवा इसे गोदाम में रखना होगा ।

ऐलोपैथी के टिंक्चर तो वास्तव में नशा कर सकते हैं । जहां-जहां मद्य का निषेध लोगों ने टिंक्चरों को पिया किन्तु आसव टिंक्चरों की तरह पिये नहीं जा सकते, एक

औंस से अधिक पीने पर जलन करते हैं, स्वास्थ्य बिगड़ सकता है। कभी भी किसी ने नशे के लिये आसव का प्रयोग नहीं किया। कभी भी किसी ने पत्रों में नहीं पढ़ा कि किसी व्यक्ति को पुलिस ने आसव के नशे में पब्लिक में दुर्व्यवहार करते हुए गिरफ्तार किया और उसे सजा हुई। तो फिर आसवों पर प्रतिबन्ध का लगाना कोई अर्थ नहीं रखता। इसीलिये तो हम कहते हैं कि जिस व्यक्ति ने आयुर्वेद के आसवों पर प्रतिबन्ध लगाने का सुझाव दिया उसकी खोपड़ी में मस्तिष्क न था।

भारत सरकार की नीति भारत में मद्य-निषेध की है। भारत के कई प्रान्तों की सरकारों ने परीक्षण के लिये शराब बन्द की है। इस दिशा में एक प्रतियोगिता सी हो रही है। मद्य-निषेध में कुछ कर्मचारी अपने अन्य साथियों को पीछे छोड़कर आगे बढ़ना चाहते हैं, और कभी-कभी उनके यह प्रयत्न पागलपन को भी छू लेते हैं। यदि ऐसा न होता तो यह कैसे सम्भव था कि राज्य कर्मचारियों को आसवों में चुसकी का आनन्द और आसव की बोतल में सुरा-सुन्दरी के दर्शन हो जाते। सच पूछिये तो इस ऐक्ट के अन्तर्गत आसवों को लाने वालों ने अमेरिका के उन राज्य कर्मचारियों को भी मात दे दी है जिन्होंने कम्यूनिज्म के भय से पागल होकर इन्सटाइन जैसे वैज्ञानिकों और चार्ली चैप्लिन जैसे फिल्म निर्माताओं पर कम्यूनिस्ट होने का संशय किया।

सन्देह को आधार मानकर सरकार ने आसवों पर प्रतिबन्ध लगा दिया। इसका उसके पास प्रमाण नहीं। परन्तु क्या हम पूछ सकते हैं कि सोने की स्मगलिंग से देश को करोड़ों रुपये की हानि हुई और यह सोना सीमाओं से और बन्दरगाहों से भारत में आ रहा है, तो क्या सरकार ने कुछ लोगों के ऐसा करने पर सभी लोगों के लिये सीमाओं के द्वार बन्द कर दिये ?

लोग आत्म-हत्या के लिये रेल की पटरियों पर लेट जाते हैं तो क्या सरकार ने इसे रोकने के लिये रेल की पटरियों को उखड़वा दिया ?

तो फिर क्या कारण है कि सन्देह को आधार मान कर भारत के करोड़ों नर-नारियों को आसवों पर प्रतिबन्ध लगाकर स्वास्थ्य प्राप्त करने से रोका जा रहा है ? आयुर्वेदिक चिकित्सा विज्ञान की एक शाखा को काटा जा रहा है ? एक ओर कहा जाता है कि आयुर्वेद विज्ञान को प्रमाणित करना चाहिये कि उसकी जनता को आवश्यकता है और दूसरी ओर उसके एक अंग को पंगु बनाया जा रहा है।

जिस मद्य-निषेध की वेदी पर आसवों को बलि चढ़ाया जा रहा है, उसके विषय में भूतपूर्व स्वास्थ्य मन्त्रिणी राजकुमारी अमृतकौर ने गत निर्वाचन के बाद पार्लियामेंट में अपने प्रथम भाषण में कहा था कि भारत में मद्य-निषेध की योजता विफल हो चुकी है।

मद्रास में भी मद्य-निषेध है वहां के इस विभाग के मन्त्री ने असेम्बली में बताया कि सरकारी आज्ञा द्वारा मद्य-निषेध का प्रयोग सर्वथा विफल हुआ है, जो लोग मद्यपायी हैं वह अब स्पिरिट पीने लगे हैं।

दिसम्बर मास में यू० पी० असेम्बली में एक प्रश्न का उत्तर देते हुए एक्साइज मंत्री श्री सीताराम ने स्वीकार किया कि जिन प्रदेशों में मद्य-निषेध किया गया है, वहां शत प्रतिशत सफलता नहीं हुई तथा आगामी वर्ष यह स्कीम कहीं न लगाई जायेगी।

मद्य-निषेध योजना की डगमग करती हुई नैया अब उस गहरे पानी के भंवर की ओर जा रही है, जहां यह शीघ्र डूब जायेगी । यदि हमारे इस कथन पर सन्देह हो तो नीचे पढ़िये—दिल्ली मद्य-निषेध समिति की मीटिंग में २४-११-५७ को भारत राज्य के होम मिनिस्टर श्री पं० गोविन्दवल्लभ पन्त ने कहा कि कानून से कुछ तो नशा बन्दी हो सकती है, परन्तु पूर्ण नहीं, क्योंकि इससे लोग स्मगलिंग शुरू करते हैं । (दिल्ली में शराब टायरों और साईकलों की ट्यूबों तक में आई है) शराब की अनुचित भट्ठियां लगाते हैं। पत्रों में प्रतिदिन छपता है कि यहाँ पर अनुचित शराब पकड़ी गई और वहां पर पुलिस ने अनुचित जलती भट्ठी पर छापा मारा । दिल्ली में पूर्ण शराबबन्दी नहीं हो सकती क्योंकि यहाँ पर विदेशी दूतावास हैं तथा विदेशी यात्रियों का आना जाना रहता है ।

कुछ वर्ष हुए मद्रास में ऊँटाकमंड में अर्थशास्त्रियों का एक सम्मेलन हुआ, मद्रास में शराब बंदी थी इस पर सरकार को एक आर्डिनैंस द्वारा ऊँटाकमण्ड में शराब की छूट देनी पड़ी। इस सम्मेलन में विदेशों से भी अर्थशास्त्री आये थे ।

पिछले दिनों दिल्ली में एक रैड क्रास कांफ्रैंस हुई थी, इसमें विदेशों से प्रतिनिधि आये और उनमें कुछ दिल्ली के अशोका .होटल में ठहरे थे । इन दिनों अशोका होटल को शराब बेचने और पिलाने की आज्ञा दी गई ।

कितनी विचित्र बात है कि एक ओर तो समस्त सरकारी प्रयत्नों के उपरान्त भी मद्य निषेध योजना विफल हो रही है, और दूसरी ओर आयुर्वेद के आसवों के निर्माण पर प्रतिबन्ध लगाया जा रहा है ! वास्तविक मद्य-निषेध करने में हमारी सरकार के समस्त प्रयत्न कुण्ठित हो गये और जिस मद्य का निषेध होना चाहिए था वह न किया जा सका। इसके विपरीत आसव-अरिष्ट जैसी निरापद एवं निर्मल औषधियों पर उसका प्रहार हुआ, यह सर्वथा अनुचित है। सरकार अगर विदेशियों के आराम के लिये अशोक होटल को शराब बेचने और पिलाने की आज्ञा दे सकती है तो उसे अवश्य ही भारत के करोड़ों लोगों की खातिर जो चिकित्सा में आसवों का प्रयोग कर स्वास्थ्य लाभ करते हैं, आसवों के प्रतिबन्ध को वापिस लेना चाहिये ।

स्विटज़रलैंड यूरोप में सभ्यता का केन्द्र है । ७-१२-५७ को पत्रों में एक सूचना इस प्रकार प्रकाशित हुई थी, "जनेवा—तेल की पाइप लाइनों और फिर दुग्ध की पाइप लाइनों के बाद, स्विस कैन्टन वेलाश के शराब के व्यापारियों ने एक ऐसी पाइप लाइन बनाई है जो ०० फुट की ऊँचाई पर बने कारखाने में शराब पहुँचा दे, जहां इसे बोतलों में बन्द किया जाता। स्विटज़रलैंड में इन जिलों में जहां शराब तैयार की जाती है, अब पाइप लाइनें बिछाई जा रही हैं ।

कहाँ तो यूरोप का स्विटज़रलैंड कि वहाँ शराब की पाइप लाइनें बिछ रहीं हैं और यहाँ भारत में आसवों पर, जिनमें सुरक्षित रखने के लिये कुछ प्रतिशत अलकोहल होती है, भी प्रतिबन्ध लग रहा है। हम मद्य की वकालत नहीं करते और नहीं कहते कि मद्य-निषेध योजना को वापिस लिया जाये । मद्य बुरी है, उसका निषेध होना ही चाहिये । परन्तु हमारा कहना तो यह है कि आसवों को व्यर्थ मद्य का नाम देकर उन पर प्रतिबन्ध लगाये रहना न चाहिये ।

—हरिकृष्ण सहगल

शुद्ध एवं शास्त्रोक्त आयुर्वेदीय

औषधियां

शुद्ध एवं उत्तम शास्त्रोक्त विधि से बनी आयुर्वेदिक औषधियां रस, भस्में, वटी, अवलेह, पाक, चूर्ण, घृत, कूपीपक्व रस तथा खनिज द्रव्य, वज्राभ्रक, मुक्ता, शंख, सीप, स्वर्ण माक्षिक, प्रवाल, शुद्ध शिलाजीत, केशर, कस्तूरी, अम्बर व दुलभ वनस्पतिवर्ग जैसे अष्ट वर्ग, प्रियंगु, सर्पगन्धा, त्रायमाण आदि खरीदते समय निम्न पते पर पत्र व्यवहार अवश्य करें।

विशेष जानकारी के लिये वृहद सूची पत्र मंगवायें।

हमारी औषधियों का व्यवहार कर आप सदैव के लिये हमारे स्थाई ग्राहक बन जायेंगे।

देशरक्षक औषधालय

कनखल (हरिद्वार)

यू० पी०

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन स्थायी समिति
एवं
कार्यकारिणी समिति का

सम्मिलिताधिवेशन

स्थान—यूनिवर्सल हैल्थ इंस्टिट्यूट, बुद्ध भवन, आउट्रम रोड, बम्बई।
समय—मंगलवार दिनांक २५-३-५८ अपरान्ह २ बजे से।

उपस्थिति—

१. श्री अनन्त त्रिपाठी शर्मा, बरहामपुर (सभापति)। २. श्री नटराज शास्त्री, तिरुचिरा-ल्ली (विद्यापीठाध्यक्ष)। सर्वश्री ३. शिवशर्मा, बम्बई। ४. बल्लभराम जी, अहमदाबाद। ५. त्रिकमलाल जे० रावल, बम्बई। ६. आर. एस. वेदपाठक, बम्बई। ७. चंचलबेन देसाई, बम्बई। ८. अलीमुहम्मद जीवाभाई, बम्बई। ९. सोमेश्वर मयाशंकर भट्ट, बम्बई। १०. धनजीभाई के० ठाकुर, बम्बई। ११. बूटी वैद्य ए० एन० उदासी, बम्बई। १२. वासुदेव मधुसूदन शास्त्री बम्बई। १३. शान्तिलाल नारायण जी बसन्त, बम्बई। १४. एम० सी० कृष्णन नम्बूदरी, बम्बई। १५. देवदत्त शर्मा, बम्बई। १६. रतीलाल हरकिशनदास गोरदिया, बम्बई। १७. प्यारेलाल शर्मा, बम्बई। १८. जयन्तीलाल एम० ठाकर, बम्बई। १९. वैद्यनाथ शर्मा, बम्बई। २०. प्रह्लाद राय वैद्य, बम्बई। २१. कैलाशचन्द्र अग्रवाल, दिल्ली। २२. कन्हैयालाल भेड़ा, बम्बई। २३. हिम्मतलाल टी० मुनि, बम्बई। २४. लक्ष्मीनारायण शर्मा, बम्बई। २५. महेन्द्रकुमार शास्त्री, बम्बई। २६. वी० जे० पण्डया, बम्बई। २७. महाशंकर बापाभाई ठाकर, बम्बई। २८. हरिदत्त शास्त्री, बम्बई। २९. अन्तु भाई वैद्य, बम्बई। ३०. कृष्ण-चन्द्र पंजाबी, बम्बई। ३१. मोतीराम शर्मा, बम्बई। ३२. आचार्य प्रभाकर मिश्र, बम्बई। ३३. महावीरप्रसाद मिश्र, बम्बई। ३४. वैद्यनाथ भेड़ा, बम्बई। ३५. ज० न० गौतम, बम्बई। ३६. चन्द्रशेखर गोपाल जी ठाकुर, बम्बई। ३७. बिन्दुमाधव पण्डित, नासिक, प्र० मन्त्री महाराष्ट्र प्रान्तीय वैद्यमण्डल। ३८. रामगोपाल शास्त्री, बम्बई। ३९. मुकुन्द रामकृष्ण पुरोहित, बम्बई। ४०. सुरेश चतुर्वेदी, बम्बई। ४१. मोहनलाल गुप्त, बम्बई। ४२. दामू भाई रामप्रसाद, बम्बई। ४३. लक्ष्मीकान्त पण्ड्या, कलकत्ता। ४४. वामनराव दीनानाथ, प्रधानमन्त्री अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन।

निम्नलिखित महानुभावों की ओर से सम्मति-पत्र प्राप्त हुये :—

सर्वश्री वैद्य नन्दकिशोर पाठक, मथुरा, सीताराम मिश्र, जयपुर, हरनाथ त्रिपाठी, कानपुर, लक्ष्मीशंकर रामकृष्ण शास्त्री, अहमदाबाद, जनार्दन शर्मा, रायगढ़, गणेशदत्त शास्त्री, मेरठ, कृष्णगोपाल, बांरा, (कोटा) [illegible] शास्त्री, कानपुर, [illegible] शर्मा, किन्हीराजा,

अकोला, विद्यानारायण शास्त्री, ईशीपुर, (भागलपुर), यू.एस.मोहन, विजयवाड़ा, किशोरीमोहन दास, प्रधानमन्त्री बंगाल प्रान्तीय आयुर्वेद महामण्डल, कलकत्ता, वैद्यनाथ मिश्र, मुजफ्फरपुर, आर० यू० उपाध्याय, मंगलौर, वाघजी के० सोलंकी, मुंद्रा, (कच्छ), लालमणि मिश्र, हमीरपुर, एम० वेंकट शास्त्री, विजयवाड़ा, गयाप्रसाद शास्त्री, हैदराबाद, हरगोपाल शास्त्री, उगोके, (पंजाब), सूर्यकान्त शर्मा, लूनवा, (फुलेरा, राज०), विरंचीलाल शर्मा, इस्लामपुर, सागरदत्त शर्मा, हरिद्वार, चुन्नीलाल रेवाशंकर, बड़ौदा, माधवगणेश जोशी, पूना, धीरजराम दयाराम शास्त्री, राजूला, जी० वी० पुराणिक, बीजापुर, ब्रह्मदत्त शर्मा, भुसावल, रमणीकलाल दवे, अहमदाबाद, सरयूकान्त झा, धरहरा, कालीदास चट्टोपाध्याय, कलकत्ता, स्वामी चेतनानन्द चिदाकाशी, दिल्ली, लक्ष्मीकान्त दामोदर पुराणिक, नागपुर, जगन्नाथप्रसाद शुक्ल प्रयाग, रक्षपाल मिश्र, इन्दौर, एन० आर० वारियर, मदुरा, एन० वी० उपाध्याय, मंगलौर।

कार्यविवरण

महासम्मेलनाध्यक्ष वैद्यराज श्री पं० अनन्त त्रिपाठी जी शर्मा के सभापतित्व में कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ।

१—स्थायी समिति के गताधिवेशन के कार्यविवरण की स्वीकृति का विषय उपस्थित हुआ और प्रकाशित कार्यविवरण का पढ़ना आरम्भ किया गया। कुछ सदस्यों ने कहा कि यह कार्यविवरण सभी की जानकारी के लिये आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका में पहिले ही छप चुका है अतएव इसका अब पढ़ा जाना अनावश्यक है। उस सभा में उपस्थित किसी सदस्य महानुभाव को प्रकाशित कार्यविवरण में कोई भूल प्रतीत पड़ती हो तो वह बता दें। इस सुझाव को सभी ने स्वीकार किया। तदुपरान्त श्री सभापति जी ने सदस्यों को सम्बोधित करके पूछा कि किसी को कार्यविवरण की स्वीकृति में कोई आपत्ति तो नहीं। सभा में से किसी के द्वारा भी कोई आपत्ति न उठाये जाने पर प्रकाशित कार्यविवरण सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया।

२—नवीन सदस्यता स्वीकृति का विषय उपस्थित हुआ और निम्नलिखित महानुभावों की सदस्यता सर्वसम्मति से स्वीकार हुई—

आश्रयदाता—

१—कविराज श्री रामस्वरूप चक्रवर्ती, दिल्ली—आजीवन सदस्यता से आश्रयदाता सदस्यता में परिवर्तित।

२—वैद्य श्री वैद्यनाथ शर्मा, बम्बई—आजीवन सदस्यता से आश्रयदाता सदस्यता में परिवर्तित।

वैद्यश्री मदनलाल शर्मा, रैन (जोधपुर)।

आजीवन—

१—वैद्य श्री चन्द्रशेखर गोपाल जी ठक्कुर, बम्बई।

२—वैद्य श्री कान्तीलाल रेवाशंकर आचार्य, बम्बई।

३—वैद्य श्री मोतीराम मथुराम शर्मा, बम्बई।

४—वैद्य श्री आचार्य प्रभाकर मिश्र, बम्बई।
५—वैद्य श्री विश्वनाथ पांडेय, वाराणसी।
६—वैद्य श्री रवीन्द्र शास्त्री, कोटपूतली।
७—वैद्य श्री मिश्रीप्रसाद शास्त्री, उदयपुर।
८—वैद्य श्री नित्यानन्द पाण्डे, दिल्ली।

ान्य सदस्य—

वे सभी मान्य सदस्य जिनका सदस्यता शुल्क २५-३-५८ तक कार्यालय में प्राप्त हो ुका है।

तदुपरान्त श्री प्रधानमन्त्री जी ने बम्बई निवासी श्री जगदीशनारायण गौतम, ्री वैद्यनाथ भेड़ा, श्री महावीरप्रसाद मिश्र तथा कृष्णदत्त जी जोशी की आजीवन सदस्यता ा विषय जो अभी तक विचाराधीन था, उपस्थित किया। श्री प्रधानमन्त्री जी ने बताया कि इन महानुभावों ने सदस्यतार्थ संशोधित आवेदन पत्र भर कर दिये हैं और यह भी िखित रूप में कहा है कि वे इस समय किसी अन्य अखिल भारतीय आयुर्वेद सभा, सम्मे-लन या संगठन के सदस्य नहीं हैं। वैद्य श्री कन्हैयालाल जी भेड़ा तथा वैद्यनाथ जी शर्मा ्वारा प्रतिज्ञात आश्वासन दिये जाने पर कि सदस्यतार्थ ये प्रार्थी कभी भी अ० भा० वैद्य ्कीम कांग्रेस अथवा ऐसे किसी अन्य संगठन के सदस्य नहीं थे और न ही वे अब हैं तथा इन प्रार्थियों द्वारा इस आश्वासन की पुष्टि किये जाने पर इन चारों महानुभावों की आजी-वन सदस्यता भी स्वीकार की गई।

३ तथा ४—अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के दिल्ली में सम्पन्न होने वाले ्१ वें वार्षिक अधिवेशन के लिये तिथियों की स्वीकृति का विषय उपस्थित हुआ। सर्वप्रथम ्१ वें अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन की स्वागतसमिति के विशेष प्रतिनिधि, कविराज श्री ैलाशचन्द्र जी अग्रवाल ने अपना विषय उपस्थित करते हुए कहा कि स्वागतसमिति ने पहले ६, ७ तथा ८ अप्रैल को यह अधिवेशन करने का प्रस्ताव किया था परन्तु बाद में श्री महा-सम्मेलनाध्यक्ष जी के इस सुझाव पर कि महासम्मेलनावसर पर होने वाली आयुर्वेदिक प्रद-र्शनी विशाल होनी चाहिए तथा एतदर्थ एक मास का समय भी बढ़ा देने की बात उन्होंने ्ही थी अतएव स्वागतसमिति ने अब अधिवेशन के लिए ४, ५ तथा ६ मई की तिथियां निश्चित की हैं। स्वागत समिति ने सभी तैयारियां कर रक्खी हैं और वह पूर्णरूपेण तैयार है और आप महानुभावों के समक्ष ये तिथियां स्वीकृत्यर्थ प्रस्तुत हैं। श्री महासम्मेलनाध्यक्ष जी ने अपनी स्वीकृति के अनुसार ४, ५, ६ मई की तिथियों में अधिवेशन करने की सिफा-रिश की।

तत्पश्चा , कुछ सदस्यों ने कहा कि उस समय दिल्ली में बड़ी गर्मी होगी और अधि-वेशन के लिए यह समय ठीक नहीं रहेगा। बहुत से अन्य सदस्यों ने भी इसी मत का समर्थन किया। दिल्ली स्वागत समिति के प्रतिनिधि कविराज श्री कैलाशचन्द्र जी अग्रवाल ने भी इसका विरोध नहीं किया प्रत्युत अपनी स्वीकृति दी। पर्याप्त विचार-विमर्श के अनन्तर ि्नलिखित प्रस्ताव स्वीकार हुआ—

क—"निश्चय हुआ कि अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के ४३ वें अधिवेशन के लिए ४, ५ तथा ६ मई की तिथियां ठीक एवं उपयुक्त नहीं हैं क्योंकि उस समय दिल्ली में अत्यधिक गर्मी होती है। अतएव यह अधिवेशन सितम्बर अथवा अक्टूबर १९५८ में स्वागतसमिति के निर्णयानुसार सम्पन्न किया जाय।"

ख—"यह भी निश्चय किया गया कि स्थायीसमिति श्री महासम्मेलनाध्यक्ष जी को अधिकार देती है कि अब वे स्थायीसमिति की औपचारिक स्वीकृति प्राप्त किए बिना स्वयं ही स्वागतसमिति द्वारा महासम्मेलन के लिये प्रस्तावित तिथियों तथा कार्यक्रम को स्वीकार कर सकेंगे।"

प्रस्तावक—कन्हैयालाल भेड़ा, बम्बई।

अनुमोदक—महेन्द्र कुमार शास्त्री, बम्बई।

यह प्रस्ताव स्वागतसमिति के विशिष्ट प्रतिनिधि की सहमति से सर्वसम्मति से स्वीकार हुआ।

जब उपर्युक्त प्रस्ताव की चर्चा चल रही थी उसी समय प्रधानमन्त्री जी ने श्री महासम्मेलनाध्यक्ष जी की अनुमति लेकर विद्यापीठाध्यक्ष के चुनाव सम्बन्धी प्रचार तथा मतपत्रकों के प्रेषण आदि के विषय पर श्री इन्द्रप्रस्थीय वैद्य सभा दिल्ली के पत्रक ता० १७-३-५८ का विषय भी स्थापित किया। इसी सम्बन्ध में श्री प्रधान जी के नाम उक्त सभा का एक पत्र ता० २१-३-५८ भी विचारार्थ प्रस्तुत हुआ। इस पत्र के कार्यालय सम्बन्धी अंशों के उत्तर में कार्यालयमन्त्री का पत्र भी पढ़ कर सुनाया गया। श्री अध्यक्ष जी ने बताया कि कविराज श्री प्रभाकर चटर्जी के समर्थन में जो हस्ताक्षर उन्होंने किये हैं वे व्यक्तिगत रूप से किये गये हैं न कि संस्था के अध्यक्ष के रूप में। दिल्ली सभा के पत्रक में श्री पं० शिवशर्मा जी के वक्तव्य के विषय में जो कुछ टीका-टिप्पणी की गई थी उसके उत्तर में श्री पं० शिवशर्मा जी ने अपना लिखित वक्तव्य पढ़कर सुनाया जो कि रिकार्ड पर ले लिया गया। चुनाव के विषय पर कविराज श्री प्रभाकर चटर्जी के विभिन्न पत्र तथा उनके जो उत्तर कार्यालय की ओर से भेजे गये थे वे सब पढ़कर सुनाये गये।

इस सम्पूर्ण स्थिति पर विस्तृत वाद-विवाद हुआ जिनमें निम्नलिखित सदस्यों ने अपने-अपने विचार और सुझाव प्रस्तुत किये—सर्वश्री शिवशर्मा, बम्बई, कैलाशचन्द्र अग्रवाल, दिल्ली, लक्ष्मीकान्त पाण्डेय, कलकत्ता, महेन्द्र कुमार शास्त्री, बम्बई, किशनचन्द्र पंजाबी, देवदत्त, प्यारेलाल शर्मा, प्रभाकर मिश्र, हिम्मतलाल त्र्यम्बकलाल मुनि, कन्हैयालाल भेड़ा, ए० एन० उदासी, महावीर प्रसाद मिश्र, लक्ष्मीनारायण शर्मा, वासुदेव मधुसूदन शास्त्री, सोमेश्वर मयाशंकर भट्ट (सभी बम्बई के)। श्री महासम्मेलनाध्यक्ष जी ने भी अपने विचार प्रकट किए। तदुपरान्त निम्नलिखित प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया—

"इस वर्ष के चुनाव में मतपत्रकों के मतदाताओं तक पहुँचने में अप्राकृतिक तथा सन्देहजनक विलम्ब होने के कारण, कई मतदाताओं तक मतपत्र न पहुँचने के कारण तथा

(शेष पृष्ठ २७४ पर)

चरक संहिता अथवा चरकतन्त्र

श्री सोमदेव शर्मा सारस्वत, साहित्यायुर्वेदाचार्य, ए०एम०एस०, डी०एस०सी० (ए),
रीडर—गवर्नमेंट आयुर्वेदिक कालेज, रायपुर (मध्य प्रदेश)

साधारणतया संहिता तथा तंत्र में भेद नहीं समझा जाता है, परन्तु प्राचीन आर्य साहित्य के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि संहिता शब्द का व्यवहार, तन्त्र शब्द के व्यवहार से पहिले प्राप्त होता है। प्राचीन आर्य युग में बने हुये ग्रन्थ 'संहिता' कहलाते थे। संहिता शब्द का अर्थ सामूहिक रूप से एकत्र किये गये हैं, इनमें जहां-तहां बिखरे हुये आर्य-प्रतिभा के ज्ञान के बल पर प्राप्त उपदेशों को सामूहिक रूप से एकत्र किया गया था। जैसे—ब्राह्म-संहिता, प्रजापति संहिता, अश्विनीकुमार संहिता, बलभृत् संहिता, भरद्वाज संहिता, आत्रेय संहिता, काश्यप संहिता तथा धन्वन्तरि संहिता आदि। इनमें आयुर्वेद के आठों अंग का वर्णन किया गया था।

आर्य युग के अन्त में संहिताओं के पश्चात् बने हुये ग्रन्थ 'तन्त्र' नाम, से प्रसिद्ध होते हैं।[1] तन्त्र शब्द का अर्थ 'नियमित ज्ञान की वृद्धि कराने वाला' है। इसमें प्रकरण[2] आदि का यथास्थान विभाग कर, सन्दर्भ बतलाते हुये विषय का प्रतिपादन किया गया है। जैसे—अग्निवेश[3] तन्त्र, भेल तन्त्र, जातूकर्ण तन्त्र, पाराशर तन्त्र, क्षीरपाणि तन्त्र, हारीत तन्त्र आदि। अग्निवेश आदि महर्षियों ने आत्रेय आदि की संहिताओं मे प्रकरण (अध्याय) आदि की यथास्थान व्यवस्था कर उनको तन्त्र का स्वरूप दे दिया था। इनमें आयुर्वेद के प्रत्येक अंग का वर्णन किया गया था।

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि सँहिताओं में प्रतिपादित विषय का संकलन, ग्रन्थकारों द्वारा स्वयं अथवा उनके शिष्यों द्वारा गुरु के नाम से किया जाता था। परन्तु तन्त्रों में ग्रन्थकार, उन मूल संहिताओं को अपने तन्त्र में समाविष्ट कर, उपोद्घात, प्रकरण,

---

[1] (अ)—तन्त्र्यते ज्ञानमनेनेति तन्त्रम्, तनोतेर्भावकर्मसाधनेषु ष्ट्रन् (तन्+ष्ट्रन्)
(आ)—निरुक्तं तन्त्रणात् तंत्रम्। (चरक. सूत्र. अ. ३०।६९)
(इ)—तन्त्रणात् व्युत्पादनात् तन्त्रम्, तन्त्र्यते व्युत्पाद्यतेऽनेनेति तन्त्रम्। (शिवदास)

[2] तन्त्रार्थः पुनः स्वलक्षणौरुपदिष्टः, स चार्थः प्रकरणैर्विभाव्यमानः·········
(चरक. सूत्र. अ. ३०।३१)

[3] (अ)—अग्निवेशकृते तंत्रे······। (चरक. सूत्र. अ. ३३।८८)
(आ)—तन्त्रप्रणेता प्रथममग्निवेशोयतोऽभवत्।
अथ भेलादयश्चक्रुः स्वं स्वं तन्त्रं···॥
(चरक. सूत्र. अ. १।३२-३३)

निर्देश तथा उपसंहार के क्रम से विभूषित कर, सब प्रकार से लोकोपयोगी बनाकर, उस तन्त्र को अपने नाम से प्रसिद्ध करता था।

संहिताओं के निर्माता संहिताकार तथा तन्त्रों के निर्माता तन्त्रकार कहलाते थे। यह दो विभाग पुराने ग्रन्थ-निर्माताओं के थे।

प्रतिसंस्कर्ता—ग्रन्थ-निर्माताओं के उक्त दो भेदों के अतिरिक्त 'प्रतिसंस्कर्ता' नाम का एक तीसरा भेद भी था। यह प्रतिसंस्कर्ता आचार्य भिन्न-भिन्न हुये तन्त्रों को, उस विषय की अन्य संहिताओं तथा तन्त्रों के आधार पर पूर्ण किया करते थे और आवश्यकता तथा उपयोगिता के अनुसार उनके विषयों को संक्षिप्त अथवा विस्तृत भी कर देते थे तथा संहिताकार आत्रेय, धन्वन्तरि आदि के वाक्यों को गुरु-सूत्र, अग्निवेश सुश्रुत आदि तन्त्रकारों के वाक्यों को शिष्य-सूत्र, अन्य मुनियों के वचनों को एकीय सूत्र और अपने वाक्यों को प्रतिसंस्कृत सूत्र के रूप में एकत्रित कर और गम्भीर अर्थ से परिपूर्ण कर उन तन्त्रों को समयोपयोगी विशाल ग्रन्थ बना देते थे। उनके द्वारा यह प्रतिसंस्कृत ग्रन्थ, संहिता और तन्त्रों के विषयों के एकत्र मिश्रण के साथ-साथ सामयिक उपयोगिता से भी युक्त होने से संहिता ग्रन्थ कहलाते हैं और यह प्रतिसंस्कर्ता के नाम से ही प्रसिद्ध होते थे।

इस विवेचन के अनुसार अग्निवेश तन्त्र के प्रतिसंस्कर्ता मुनि चरक के द्वारा प्रतिसंस्कृत ग्रन्थ भी उनके नाम से ही 'चरक संहिता' के रूप में प्रसिद्ध हो गया है।

मुनिवर चरक की प्रतिसंस्कार[1] विधि

प्रतिसंस्कर्ता के लिये निर्दिष्ट नियमों के अनुसार चरक मुनि ने आवश्यकता तथा उपयोगिता के आधार पर, अग्निवेश तन्त्र के संक्षिप्त विषयों का विस्तार और विस्तृत विषयों का संक्षेप कर प्राचीन जीर्ण-शीर्ण अग्निवेश तन्त्र को एक नवीन ग्रन्थ के रूप में 'चरक संहिता' के नाम से प्रसिद्ध किया है। जैसे—

१—मूल 'अग्निवेश तन्त्र' में आठ प्रकार का स्वेद बताया गया था, परन्तु मुनि चरक ने अपने समय में अन्य नवीन आविष्कृत पांच स्वेदों को मिलाकर तेरह प्रकार का स्वेद चरक संहिता में लिखा है। यह संक्षिप्त विषय को विस्तृत करने का उदाहरण है।

२—मूल अग्निवेश[2] तन्त्र में स्नेहों की संख्या ७ मानी गई थी, परन्तु चरक मुनि ने उसको संक्षिप्त कर ४ प्रकार का ही लिखा है।

३—अग्निवेश तन्त्र के कुछ श्लोक, गद्यभाग में गतार्थ हो जाने से चरक मुनि ने

---

[1] —विस्तारयति लेशोक्तं संक्षिपत्यति विस्तरम्।
संस्कर्ता कुरुते तन्त्रं पुराणं च पुनर्नवम् ॥
(चरक. सिद्धि. अ० १२।६१)

[2] —नवनीतं, घृतं, मस्तिष्कं, मज्जा, तैलं, फलतैलं, मेदो, वसा, शुक्रमित्येते नवस्नेह विशेषाः। तत्र शुक्रमस्तिष्कव्यप्तेता गार्ग्यः प्रोवाच, प्रयोगतः सप्ताग्निवेशः। (पालकाप्य मुनि कृत हस्त्यायुर्वेद)।

भी दिए थे क्योंकि अग्निवेश तन्त्र के नाम से चक्रपाणि तथा शिवदास आदि टीकाकारों द्वारा उद्धृत यह श्लोक वर्त्तमान चरकसंहिता में नहीं मिलते हैं।

इस प्रकार चरक मुनि ने बहुत परिश्रम से 'अग्निवेश तन्त्र' का प्रतिसंस्कार कर उसको सब से अधिक उपयोगी बनाकर 'चरक संहिता' के नाम से प्रसिद्ध किया था।

वर्त्तमान चरक संहिता

मुनिवर चरक द्वारा -प्रतिसंस्कृत उपर्युक्त चरक संहिता भी बहुत दिनों के पश्चात् छिन्न-भिन्न हो गई थी। उसमें निर्दिष्ट चिकित्सा स्थान के ३० अध्यायों में से १७ अध्याय सम्पूर्ण कल्प स्थान (१२ अध्याय) तथा सम्पूर्ण सिद्धि स्थान (१२ अध्याय) अप्राप्य हो गये थे, तब पंचनदपुर निवासी आचार्य दृढ़बल ने अन्य आयुर्वेदिक संहिताओं और तन्त्रों की सहायता से इस चरक संहिता का पुनः प्रतिसंस्कार कर लोकोपयोगी बना दिया। आचार्य दृढ़बल द्वारा प्रतिसंस्कृत यह चरक संहिता ही वर्त्तमान समय में प्रचलित है। इसकी उपयोगिता सब से अधिक वैद्य सम्प्रदाय में बहुत समय से मानी जाती है और उपयोगिता और प्रामाणिकता के आधार पर ही इसको अद्वितीय एवं सर्वोत्तम संहिता के रूप में कायचिकित्सा अंग में 'मूर्धन्य' स्थान प्राप्त हुआ है। अतएव वैद्यबन्धुओं का ध्यान चिरकाल से आयुर्वेद के कायचिकित्सा अंग के अन्य तन्त्रों से हटकर इस में ही केन्द्रीभूत रहा आया है, इस कारण ही आचार्य वाग्भट[1] के समय में इस चरक संहिता के समक्ष अन्य आर्ष भेलतन्त्र आदि भी उपेक्षित समझे जाने लगे थे और उनका पठनपाठन में प्रचार नहीं रह गया था।

संहिताओं का स्वरूप

आयुर्वेद की सब से प्राचीन ब्राह्मसंहिता[2] में एक हजार अध्याय और एक लाख श्लोक थे। इसमें आयुर्वेद के कायचिकित्सा, शल्यतन्त्र, कौमारभृत्य आदि आठ अंगों को विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया था। इसको बहुत विस्तृत और मनुष्यों की अल्प आयु समझकर, ब्रह्मा ने आठ भागों में विभक्त कर दिया था। यदि उस संहिता को समान रूप से आठ अंगों में विभक्त किया गया हो तो प्रत्येक अंग में १२५ अध्याय और १२५०० श्लोक थे ऐसा अनुमान किया जा सकता है। प्रजापति, अश्विनीकुमार तथा बलभृत् (इन्द्र) आदि की संहिताओं का स्वरूप भी इसी प्रकार का समझना चाहिये।

तन्त्रों का स्वरूप

कायचिकित्सा, शल्यतन्त्र और कौमारभृत्य आदि एक-एक अंग का प्रधानतया वर्णन

---

[1] —ऋषि प्रणीते प्रीतिश्चेन्मुक्त्वा चरकसुश्रुतौ।
भेलाद्याः किं न पठ्यन्ते तस्माद् ग्राह्यं सुभाषितम्॥
(अष्टांगहृदय उत्तर अ० ४०।८८)

[2] इह खल्वायुर्वेदो ऽष्टांगः—श्लोकशतसहस्रमध्यायसहस्रं च कृतवान्-स्वयंभूः······।
(सुश्रुत सूत्र अ० १।५)

करने वाले अग्निवेश[१] भेल तन्त्र तथा सुश्रुत[२] और कश्यप[३] आदि के तन्त्रों में से प्रत्येक के तंत्र में १२० अध्याय थे ऐसा उनके तन्त्रों के पर्यालोचन से ज्ञात होता है। इनमें से अग्निवेश,[४] भेल और कश्यप[५] के मूल तन्त्र, १—सूत्र स्थान २—निदान स्थान, ३—विमान स्थान, ४—शारीर स्थान, ५—इन्द्रिय स्थान, ६—चिकित्सा स्थान, ७—कल्प स्थान, ८—सिद्धि स्थान, इन आठ स्थानों में विभक्त थे और सुश्रुत[६] का तन्त्र १—सूत्र, २—निदान, ३—शारीर, ४—चिकित्सा, ५—कल्प स्थान इन पाँच स्थानों में विभक्त था। जैसे—

स्थान	अध्याय	अग्निवेश	भेल	कश्यप	सुश्रुत
१—सूत्र स्थान	,,	३०	३०	३०	४६
२—निदान स्थान	,,	८	८	८	१६
३—विमान स्थान	,,	८	८	८	x
४—शारीर स्थान	,,	८	८	८	१०
५—इन्द्रिय स्थान	,,	१२	१२	१२	x
६—चिकित्सा स्थान	,,	३०	३०	३०	४०
७—कल्प स्थान	,,	१२	१२	१२	८
८—सिद्धि स्थान	,,	१२	१२	१२	x
		१२०	१२०	१२०	१२०

परन्तु पीछे के प्रतिसंस्कर्ताओं ने, आयुर्वेद के एक एक अंग के ज्ञाता वैद्य को आयुर्वेद के शेष सात अंगों का भी सामान्य ज्ञान अवश्य होना चाहिये, इस विचार से उन प्राचीन मूल तन्त्रों का प्रतिसंस्कार करते समय, कश्यप के तन्त्र में 'खिलस्थान'[७] नाम से और सुश्रुत के तन्त्र में 'उत्तर तन्त्र'[८] के नाम से एक स्थान और पीछे से जोड़ दिया, जिसमें उन मूलतन्त्रों में अवर्णित परन्तु आवश्यक एवं परमोपयोगी शेष सात अंगों के विषय भी संक्षिप्त रूप से वर्णन कर दिये। काश्यप संहिता के अंतिम खिल स्थान में ८० अध्याय और सुश्रुत संहिता के उत्तर तन्त्र में ६६ अध्याय हैं। कुछ विद्वान् पुरुषों के मत में अग्निवेश तन्त्र की प्रतिसंस्कृत चरक संहिता के अन्त में भी उत्तर तन्त्र जोड़ा गया था। उनका आधार यह निम्नलिखित श्लोक है—

---

१. सविंशमध्यायशतं शृणु नाम क्रमागतम्। (चरक सूत्र अ० ३०|३४)
२. तच्च सविंशमध्यायशतं पञ्चसु स्थानेषु। (सुश्रुत अ० १।३८)
३. अध्यायानां शतं विंशं योऽधीते स तु पारगः। (काश्यप संहिता कल्प, श्लोक-६)
४. तन्त्रस्यास्याष्टौ स्थानानि——(चरकः सूत्र अ० ३०।३२)
५. अष्टौ स्थानानि वाच्यानि—(काश्यप संहिताकल्प, श्लोक ६)
६. तत्र सूत्रनिदानशारीरचिकित्सितकल्पेष्वर्थवशाद्विभज्य। (सुश्रुत सूत्र अ० १।३८)
७. खिलान्यशीतिरध्यायास्तंत्रं स खिलमुच्यते। (काश्यप सं० कल्प श्लोक-९)
८. (अ) अतः परं स्वनाम्नैव तंत्रमुत्तरमुच्यते (सुश्रुत सूत्र. अ० ३।२९)
(आ) तदुत्तरं षट्षष्टिः। (सुश्रुत सूत्र अ० [illegible])

तस्मादेताः प्रवक्ष्यन्ते विस्तरेणोत्तरे पुनः ।
तत्रज्ञानार्थमस्यैव तन्त्रस्य गुणदोषतः ।। (चरक. सिद्धि. अ० १२|७७)

चरक संहिता के टीकाकार चक्रपाणिदत्त ने इस श्लोक को अनार्ष कहकर प्रक्षिप्त माना है, परन्तु पीछे के टीकाकार शिवदास ने अष्टांग हृदय के उत्तर तन्त्र की "तत्वबोध व्याख्या" (अ० २२, श्लोक ४२) में चरकसंहिता के उत्तर तन्त्र का एक श्लोक[1] प्रमाण स्वरूप में उद्धृत किया है। यह श्लोक नाडी व्रण की चिकित्सा का है परन्तु मुद्रित चरक-संहिता में दंत नाडी व्रण की चिकित्सा कहीं भी नहीं मिलती है इसलिये प्रतिसंस्कर्त्ता ने इस न्यूनता को दूर करने के लिये अपने जोड़े हुए उत्तर तन्त्र में दंत नाडी व्रण की चिकित्सा के प्रकरण में इस श्लोक को लिखा था, इससे चरकसंहिता के अन्त में भी उत्तरतन्त्र का जोड़ा जाना सिद्ध होता है। सम्भव है चक्रपाणिदत्त को उपलब्ध हुई हस्तलिखित चरकसंहिता की प्रतियों में उत्तरतन्त्र न हो और इसीलिये उसने चरकसंहिता (सिद्धि अ० १२।७७) के 'तस्मादेताः' इस श्लोक को 'अनार्ष' और अग्निवेशतन्त्र के अन्त में उत्तरतन्त्र का अभाव स्वीकार किया हो और शिवदास को उपलब्ध हुई चरकसंहिता में उत्तरतंत्र सन्निविष्ट हो। इसी कारण शिवदास ने चरकसंहिता के उत्तरतंत्र का प्रमाण दिया हो ऐसा प्रतीत होता है।

चरक संहिता की श्लोक संख्या

चरक मुनि ने अग्निवेशतंत्र का प्रतिसंस्कार कर उस प्रतिसंस्कृत स्वरूप को चरकसंहिता के नाम से प्रसिद्ध किया और उसको आठ स्थान तथा १२० अध्यायों में विभक्त कर दिया। इन आठ स्थानों में[2] १२००० श्लोक हैं यह चरकसंहिता के अन्त में लिखा है। परन्तु इस संख्या के अधिक अथवा कम होने के विषय की ओर किसी आचार्य का ध्यान नहीं गया है। केवल चरकसंहिता के प्रसिद्ध प्रौढ़ टीकाकार आचार्य गंगाधर कविराज महोदय ने चरकसंहिता के प्रत्येक स्थान के गद्य एवं पद्य भाग की संख्या की गणना की है। जैसे—

स्थान	श्लोक संख्या
१—सूत्र स्थान	३६२५
२—निदान स्थान	५००
३—विमान स्थान	१०२३
४—शारीर स्थान	९४९
५—इन्द्रिय स्थान	४०५
६—चिकित्सा स्थान	५५९१
७—कल्प स्थान	६७५
८—सिद्धिस्थान	८९०
सर्वयोग	१३६५८

---

[1] चरकोत्तरतन्त्रेऽप्युक्तम्—

बहुवक्त्रां गतिं ज्ञात्वा प्रपूर्य गुडसिक्थकैः ।
दहेत् पूर्वविधानेन कषायैः क्षीरिवृक्षजैः ।।
गण्डूषस्तैलमेभिर्वा सिद्धं नस्यं प्रकल्पयेत् ।।

[2] यस्य द्वादशसाहस्री हृदि तिष्ठति संहिता ।
सोऽर्थज्ञः स विचारज्ञश्चिकित्साकुशलश्च सः ।। (चरक. सिद्धि. अ० १२।७९)

इस प्रकार आचार्य गंगाधर की श्लोक गणना से चरकसंहिता में १३६५८ श्लोक है जब कि चरकमुनि ने १२००० श्लोक ही बतलाये हैं। इस भाँति १३६५८—१२०००= १६५८ श्लोक अधिक होते हैं। यह अन्तर गद्य भाग की गणना के विषय में [1] अन्तर होने से हुआ है। इसका निवारण, परिश्रम पूर्वक पुनः श्लोक गणना कराने से हो सकता है।

चरक संहिता के विभाग (स्थान)

महर्षि अग्निवेश प्रणीत अग्निवेश तन्त्र ही चरक मुनि द्वारा प्रतिसंस्कृत (और आचार्य दृढ़वल द्वारा पुनः प्रतिसंस्कृत) होने पर चरक संहिता के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वह सूत्र, निदान, विमान, शारीर, इन्द्रिय, चिकित्सा, कल्प और सिद्धि स्थान नाम के आठ स्थानों या विभागों में विभक्त हुआ है—

सूत्र[2] स्थान—संहिता तथा तन्त्रों का पहिला स्थान (विभाग) सूत्र स्थान होता है इसलिये चरक संहिता के भी पहिला स्थान "सूत्र स्थान" है। यह इस संहिता का उपोद्घात स्वरूप है। इसमें इस संहिता में वर्णन किये जाने वाले सब विषयों का संक्षेप में विवेचन कर दिया गया है। इसलिये इसके पढ़ने से पाठक को इस संहिता में संगृहित सब विषयों का सूक्ष्म परिचय मिल जाता है। सूत्र स्थान का दूसरा नाम "श्लोकस्थान"[3] भी है। मानव शरीर में ज्ञान-विज्ञान का आधार स्वरूप 'शिर' जिस प्रकार सर्वोत्तम अंग होता है उसी प्रकार इस चरक सहिता में वर्णित ज्ञान का आधार स्वरूप होने से, यह सूत्र (श्लोक) स्थान भी शिर[4] के समान माना गया है।

निदान स्थान—इस स्थान में मानव शरीर में उत्पन्न होने वाले रोगों के हेतु[5] (निदान-आरम्भिक कारण), पूर्वरूप, रूप, उपशय और संप्राप्ति का सामान्य परिचय देकर संसार में सर्वप्रथम उत्पन्न हुये ज्वर, रक्त, पित्त, गुल्म, प्रमेह, कुष्ट, राजयक्ष्मा, उन्माद और अपस्मार इन आठ रोगों का हेतु पूर्वरूप-रूप-उपशय-सम्प्राप्ति विस्तार से बता कर

---

[1] —जैसे—अथातो ज्वरनिदानं व्याख्यास्यामः। इति हस्माह भगवानात्रेयः।

इस गद्य भाग को कुछ विद्वान् पुरुषों ने एक वाक्य मानकर एक संख्या और कुछ ने दो वाक्य मानकर दो संख्या गिनी है।

[2] —(अ) सूचनात्सूत्रणाच्चैव स्मरणाच्चार्थस न्नतेः।
सूत्र स्थानं प्रचक्षते ।। (सुश्रुत. सूत्र. अ. ३।१२)
(अ) सूत्रणं संक्षेपेण सर्वार्थाभिधानम् (चक्रपाणि भानुमती टीका)

[3] —श्लोकार्थः संग्रहार्थश्च श्लोकस्थान मतः स्मृतम्। (चरक. सूत्र. अ. ६०।४७)

[4] —श्लोकस्थानं समुद्दिष्टं तंत्रस्यास्य शिरः शुभम्। (चरक. सूत्र. अ. ३०।४५)

[5] —हेतुपर्यायनामानि व्याधीनां लक्षणस्य च।
निदानस्थानमेतावत्संग्रहणोपदिश्यते ।।
हेतवः पूर्वरूपाणि रूपाण्युपशयस्तथा।
सम्प्राप्तिः पूर्वमुत्पत्तिः सूत्रमात्रं चिकित्सितम् ।। (चरक. नि. अ. ८।४८, ४६)

चिकित्सा सूत्र बताया गया है इस भांति रोगों का निश्चित[1] ज्ञान इस निदान स्थान होता है।

विमान[2] स्थान—दोषों (वायु, पित्त, कफ) तथा औषधियों के प्रभाव का विशेष मान अर्थात् ज्ञान जिस स्थान के द्वारा होता है वह विमान स्थान कहलाता है।

शारीर[3] स्थान—जिस स्थान में दैवसम्पद् तथा मानुष सम्पद् अर्थात् आत्मा, पर- और मनुष्य सम्बन्धी सब उत्तम गुणों तथा भावों से सम्पूर्ण शरीर का विचार किया है वह 'शारीरस्थान' कहलाता है।

इन्द्रिय[4] स्थान—इन्द्र अर्थात् प्राण अथवा आत्मा का लिङ्ग (ज्ञापक चिन्ह) का अरिष्ट (या रिंष्ट, मृत्यु सूचक चिन्ह) उसका वर्णन जिस स्थान में किया गया वह 'इन्द्रियस्थान' कहलाता हैं।

चिकित्सा[5] स्थान—जिस स्थान में रोगों की चिकित्सा बतलाई गई हो, वह चिकित्सा स्थान कहलाता है।

कल्प[6] स्थान—वमन और विरेचन के प्रयोगों की कल्पना (रचना) जिस स्थान बतलाई गई है वह कल्पस्थान कहलाता है।

सिद्धि[7] स्थान—जिस स्थान में वमन, विरेचन तथा निरूहण वस्ति क्रियाओं ठीक प्रयोग न होने से उत्पन्न हुये रोगों का साधन (चिकित्सा, सिद्धि) बतलाया गया वह सिद्धि स्थान कहलाता है। इन स्थानों में से 'चिकित्सा[8] स्थान' सब से श्रेष्ठ है।

१—(अ) निदीयते निश्चीयते व्याधिरनेनेति निदानम्। (चरकाणि, सुश्रुत भानुमती व्याख्या)

(आ) निश्चित्य दीयते प्रतिपाद्यते व्याधिरनेनेति निदाम् (जेज्जट)

(इ) निर्दिश्यते व्याधिरनेनेति निदानम्। दृशेः पृषणोदरादित्वाद्रूपसिद्धिः। (गदाधर)

२—दोषादीनां तु भावानां सर्वेषामेव हेतुमत्।
मानात्सम्यग्विमानानि निरुक्तानि विभागशः॥ (चरक. वि. अ. ८।१६०)

३—शरीरं चिन्त्यते सर्वं दैवमानुषसम्पदा।
सर्वभावैर्यतस्तस्माच्छारीरं स्थानमुच्यते॥ (चरक. शारीर. अ. ८।७३)

४—इन्द्रः प्राणस्तस्यलिंगमितीन्द्रियं रिष्टं, अथवा इन्द्रोऽन्तरात्मा तस्य लिङ्गमितीन्द्रियं रिष्टं (रिष्टमरिष्टमित्यनर्थान्तरम्) तस्य, इन्द्रियस्य स्थानमिन्द्रियस्थानमित्यर्थः। (चरक. इन्द्रिय.अ. १।१ की चक्रपाणि दत्त की व्याख्या)

५—चिकित्सा चापि निर्दिष्टा दोषाणां गूढ़चारिणाम्। (चरक. चिकि. अ. ३०।३४१)

६—वमनविरेचनानां कल्पस्तिष्ठत्यस्मिन्निति कल्पस्थानम्।
(चरक. कल्प. अ. १।८ की चक्रपाणिदत्त कृत व्याख्या)

७—(अ) कर्मणां वमनादीनामसम्यक्करणापदाम्।
यत्रोक्तं साधनं स्थाने सिद्धिस्थानं तदुच्यते॥ (चरक. सिद्धि. अ. १२।३२)

(आ) सम्यक्प्रयोगं चौषधानां, व्यापन्नानां च व्यापत्साधनानि सिद्धिमुत्तरकालम्।
(चरक. सूत्र. अ. १५।५)

८—चरकस्तु चिकित्सिते (श्रेष्ठः)

चरक संहिता पर विदेशी विद्वान् डाक्टर क्लार्क की सम्मति

कविराज अविनाशचन्द्र कविरत्न द्वारा किये गये चरक संहिता के अंगरेजी अनुवाद को पढ़कर अमेरिका के फिलाडेलफिया के प्रसिद्ध डाक्टर क्लार्क ने अपने एक पत्र में निम्नलिखित भाव प्रकट किये हैं—

मैं आपके चरक संहिता के अंग्रेजी अनुवाद के प्रत्येक खण्ड को पढ़कर एक ही सिद्धान्त पर आता हूँ। वह सिद्धान्त यह है—

"यदि आजकल के चिकित्सक अपनी औषधियों की श्रेणी में से आजकल की (बनी हुई) सम्पूर्ण औषधियों और रासायनिक प्रयोगों को छोड़कर चरक के मतानुसार चिकित्सा करें तो 'शववाहक' का कार्य बहुत कम हो जाय और पृथ्वी में चिरकालीन रोगियों की संख्या कम हो जाय।"

If the physician of the present day would drop from the pharmacopia all the modern drugs and chemicals and treat their patients according to the methods of 'Charaka' there would be less work for the undertakers and fewer chronic invalids in the world.

इस प्रकार देशी विदेशी सभी विद्वान् चिकित्सकों की दृष्टि में चरक मुनि द्वारा प्रतिसंस्कृत यह चरक संहिता, आर्ष आयुर्वेद वाङ्मय का जाज्वल्यमान शुभ रत्न है। इसका संक्षिप्त परिचय मैंने अपने 'आयुर्वेद का इतिहास' ग्रंथ में एक पद्य में निम्नलिखित रूप में दिया है—

आयुर्वेद—जगत का गौरव
आर्ष—वाङ्मय का शुभ रत्न।
अनुपम तत्व प्रदर्शन कर्ता
'चरक' बना है वैद्यक-रत्न॥

"मार्तण्ड के चमत्कारी इन्जेक्शन्स"

मार्तण्ड फार्मेस्युटिकल्स भारत की एक मात्र सर्वसाधनसम्पन्न एवं इलेक्ट्रिक आटोमेटिक मशीनों द्वारा सुसज्जित लैबोरेट्री है, जिसमें सरकार द्वारा प्राप्त लाइसेंस के आधीन, सरकार द्वारा क्वालिफाइड कैमिस्टों की देख-रेख में इन चमत्कारी तथा फौरन असर करने वाले आयुर्वेदिक इंजेक्शनों का निर्माण पूर्ण वैज्ञानिक तरीके पर होता है। निरापद तथा स्वदेशी चिकित्सा के लिये इन अपने "मार्तण्ड" के इंजेक्शनों को उपयोग में लाइये, इनके आशुगुणकारी, निरापद और पूर्णलाभकारी होने की हम गारंटी देते हैं। अतः इस बार हमारे— चमत्कारी इंजेक्शनों की भी परीक्षा कीजिये। आपको पूर्ण संतोष एवं आयुर्वेद पर गर्व होगा। मार्तंण्ड का बड़ा सचित्र सूचीपत्र मंगाकर आर्डर दीजिये।

मार्तण्ड फार्मेस्युटिकल्स, बड़ौत, एस० एस० रेलवे, (मेरठ) यू० पी०।

आयुर्वेदे भूतैः जीवाणूनामपि ग्रहणमुचितम्

लेखकः—वैद्य शंकरलाल शर्मा, भिषगाचार्यः, फतेहपुरम् (राजस्थानम्)

१९५५ वर्षीय सितम्बरमासस्यायुर्वेद-महासम्मेलनपत्रिकायां "आयुर्वेदे भूतादिशब्दैः रोगोत्पादकसूक्ष्मजीवाणूनां ग्रहणम्" इति शीर्षकोमदीयो निबन्धः प्रकाशितोऽभूत्। अस्य निबन्धस्योपरि सम्पादकमहाभागैर्या टिप्पणी लिखिता तस्या अल्पोंशोऽत्र लिख्यते—"नवीन जीवाणुपदस्य आविष्कर्ता श्रीगणनाथसेनमहाशयेनतदनुयायिभिरन्यैश्च कैश्चिन्नव्यैः पण्डितैः भूतशब्दस्य प्राचीनसंहिताप्रयुक्तस्य जीवाणुपरत्वेन क्वचित्क्वचिदर्थो वर्णित एव। परं प्राचीनैर्यत्र-यत्र भूत-रक्षः-पिशाचग्रहाश्शब्दितास्तत्र सर्वत्रैव जीवाणुरेवाभिप्रेतोनान्य इति, न केवलं भूतादिपदस्य अपितु देवपदस्यापि जीवाणुरिति पक्षं स्वीयमुपन्यस्तवन्तोऽत्र निबन्धारः।"

अस्य पक्षस्योपरि भूयो विमर्शन विलेखनेन प्रीणयन्तु जिज्ञासून् भिषज—इति परीक्षककुशलान् भिपजः सानुनयं प्रार्थयामः।

अतएव १९५६ वर्षीयागस्तमासस्यायुर्वेदमहासम्मेलनपत्रिकायां "भूतानां कृमित्वभ्रमनिरासः" इति शीर्षकोनिबन्धः प्रकाशितोऽभूत। अस्मिन् विषये पुनः किञ्चिल्लेखनात्प्राक् लेखकमहानुभावेभ्यो धन्यवादान् समर्पयामि येऽस्मिन् शास्त्रीयविषये स्वलेखनीं व्यापारितवन्त इति।

अस्मिन् विषये पुनर्विचार्यमेतदस्ति यद्रोगाणां प्रकृतिर्द्वेधा निजागन्तुविभागात् इति चरकः, तत्र निजानां वातपित्तकफाः हेतवः, आगन्तूनाञ्च बहवो बाह्याः हेतवस्तेषामुद्देशश्चकृते—यथा "मुखानि तु खल्वागन्तोर्नखदशनपतनम्भिघाताभिचाराभिषङ्गवधबन्धनपीडनदहनमन्त्राशनिभूतोपसर्गादीनि" इति। अत्र भूतानामुपसर्ग भूतोपसर्ग इत्यत्र भूतशब्देन भूतपिशाचयक्षरक्षोगन्धर्वादीनां तथा सूक्ष्मजीवाणूनामपि ग्रहणं वर्तते यतो भूतशब्देन न केवलं भूतप्रेतपिशाचरक्षोयक्षगन्धर्वादीनामेव ग्रहणमभिष्टमपि तु सूक्ष्मजीवाणूनामपि। यद्येतेषां ग्रहणं नाभिष्टन्तदा आगन्तुरोगकारणानां सूक्ष्मजीवाणूनां कुत्रान्तर्भावो भवेत्। न च कश्चिदित्थं प्रतिपादयेत् यदायुर्वेदे रोगोत्पादकजीवाणूनां वर्णनमेव नास्ति भूतशब्दस्य रोगोत्पादकजीवाण्वर्थकल्पना नवीनभिषजामेवेति चेन्न, पूर्वाचार्याणामपि रोगोत्पादकसूक्ष्मजीवाणवोऽभिमता एव। न चात्र प्रमाणाभावः, कुष्ठादयो हि व्याधयः प्रसङ्गादिभिर्हेतुभिर्निरन्तरं संक्रामन्ति, अत्र संक्रमणे किं निदानम्? तत्र जीवाणव एव कारणानि भवितुं शक्यन्ते। न च कुष्ठादीनां संक्रमणे न जीवाणवः कारणानि अपि तु तत्र वायुरेव कारणम्, यतो वायुरेव रोगाक्रान्तशरीरात् विकृतिं प्रापयति स्वस्थशरीरमिति चेन्न, सत्यं, परं वायुस्तु तत्र प्रापणे एव हेतुर्न च विकृतौ, विकृतौ कारणन्तु वातादिदोषातिरिक्तजीवाणवोऽपि सन्त्येव यतो कृमयः स्पर्शनघ्नानाम्" तथा "षट् ते कुष्ठैककर्माणः" इति चरकवाग्भटोपदेशाभ्यां कुष्ठे जीवाणवोऽपि कारणानि सन्त्येव। तथा विषमज्वरेऽपि—

"परो हेतुः स्वभावो वा विषमेकैश्चिदीरितः
आगन्तुश्चानुबन्धो हि प्रायशो विषमज्वरे ।"

अत्रपरोभूतादिहेतुः स्वभावो वा प्रतिपादितः । अत्र "ननु न कश्चिद्रोग्येतादृग्द्यावधि दृष्टः श्रुतो वा यो ग्रह्यानागतविज्ञानाऽनवस्थासहिष्णुतेत्यादिग्रहावेशलक्षणवान् स्यादिति चेत् पृच्छ्यते किं केनापि किमुत भवता । आद्ये, प्रमाणं भवन्तएव किमुतान्यदपि किञ्चित्। द्वितीये भवतामेवाल्पश्रुतत्वाल्पदृष्टत्वाच्चेत्यत्र न च भवन्तः प्रमाणन्नचाऽहमत्र तु शास्त्रमेव प्रमाणम् । शास्त्रे विषमज्वराणान्न कुत्रापि ग्रहावेशलक्षणसाम्यताऽवलोक्यते। तथा हि विषमज्वर लक्षणानि—

"यः स्यादनियतात् कालात् शीतोष्णाभ्यां तथैव च
वेगतश्चापि विषमः स ज्वरो विषमः स्मृतः ।

तथाऽन्यदपि—त्वक्स्थौ श्लेष्मानिलौ शीतमादौ जनयतो ज्वरे । तयोः प्रशान्तयोः पित्तमन्ते दाहं करोति च ।। करोत्पादौ तथा पित्तं त्वक्स्थं दाहमतीव च । तस्मिन् प्रशान्ते त्वितरौ कुरुतः शीतमन्ततः ।। द्वावेतौ दाहशीतादिज्वरौ संसर्गजौ स्मृतौ ।" इति स्पष्टान्येव लक्षणानि प्रतिपादितानि । ग्रहावेशलक्षणसाम्यवान् विषमज्वरी भवद्भिः दृष्टश्चेदवश्यमेव सूचनीयो येन ममापि अल्पश्रुतत्वाल्पदृष्टत्वस्य महद्ज्ञानं स्यादिति प्रार्थये ।

आन्त्रिकादिसान्निपातिकज्वरेष्वपि वाह्यहेतुसूक्ष्मक्रिमीणां सत्त्वात्तत्परिचारकेषु बहुत्र दृष्टं संक्रमणम् । शोषश्च यस्मिन् गृहे स्वपदार्पणं करोति तत्र गृहे तेन बहवः प्राणिनो यमातिथेयं भजन्ते । नेत्राभिष्यन्दोपि तत्क्षणमेव संक्रामति नेत्राभिष्यन्दपीडितात् पुरुषात् पुरुषान्तरमिति दृष्टमनेकवारम् । औपसर्गिकरोगा मसूरिकारोमान्तिकादयोऽपि यत्र गृहे एकमपि बालकमाक्रामन्ति तद्गृहस्थानन्यानपि बालकान् गृह्णन्त्येव । इत्थं संक्रामकरोगाणां संक्रमणे जीवाणव एव कारणानि भवितुं शक्यन्ते ।

न चायं जीवाणुकारणवादोनाम त्रिदोषकारणेऽन्तर्भवितुं शक्नोति, वातादयो हि निजरोगाणां कारणत्वेनाभिधानात्, जीवाणवश्चागन्तुकारणान्येव । न च प्रतिश्यायादीनां जीवाणवश्शरीरे कण्ठादौनिवसन्ति, न च वाह्यतः समायान्ति, न एव यदानुकूलां स्थितिं प्राप्नुवन्ति तदा व्याधितं कुर्वन्ति मानवम्, सत्यं, परं न सर्वरोगाणामेव क्रिमयः शरीर एव निवसन्ति अपि तु आगन्तवोऽपि सन्त्येव ।

ननु "ये भूतविषवाय्वग्निसम्प्रहारादिसम्भवाः नृणामागन्तवो रोगाः प्रज्ञा तेष्वपराध्यति" इत्याप्तोक्त्या भवन्मते भूतादिभिर्जीवाणुग्रहणे सत्यपि, जीवाणूनां प्रज्ञापराधेऽन्तर्भावो भवति तस्मादायुर्वेदोक्ता असात्म्येन्द्रियार्थसंयोगः, प्रज्ञापराधः, परिणामश्चेति त्रय एव सर्वरोगाणां हेतवस्तथा च चरकः—"त्रीण्यायतनानि, अर्थानां कर्मणः कालस्य चायोगातियोगमिथ्यायोगाः" इति एवञ्चोक्तकारणत्रयेष्वेव सर्वेषामपि कारणानामन्तर्भावात् न पृथक्कारणत्वमवशिष्टं भवति कीटाणूनामिति चेदत्रोच्यते, रुक् सामान्यात् सर्वेषामेव रोगाणां रोगत्वमेकविधेऽपि पुनश्च निमित्तभेदात् रोगाणां द्वैविध्यं भवति—स्वधातुवैषम्यनिमित्तमागन्तुनिमित्तञ्चेति भगवदात्रेयोपदेशात् बाह्यागन्तुव्याधिहेतूनां ज्ञानमत्यावश्यकञ्चिकित्सा-

र्यम्। न च केवलं प्रज्ञापराधादेव क्रियासौकर्य्यं सम्भवति। अत एव श्रीमद्भिर्विजय-र्मधुकोषे बहूनां हेतूनां संग्रहः कृतः—"चत्वारो व्यभिचारिदूरिनिकटप्राधानिकत्वात् तोऽसात्म्येन्द्रियकार्थयुक् परिणतिः प्रज्ञापराधात् त्रिधा" इत्यादि। एवञ्च प्रादुर्भूते व्याधौ ह्याभ्यन्तरहेतूनां ज्ञानमत्यावश्यकमेव भवति।

न च वातादिषु रसादिधातुदूषितेषु किण्वपिष्टसमवाय इव जीवाणवः समुत्पद्यन्ते ति स्वस्थशरीरे प्रवेशिता जीवाणव अकिञ्चित्करा एव, परं नेयं स्थितिः, स्वस्थशरीरे ता जीवाणवोऽवश्यमेव व्याधितं कुर्युः। प्रायोदृष्टमेव जनसम्मेलनादौ एकस्यापि कोऽपि करोगो भवेत्स झटित्येव अपरेष्वपि प्रसरति। न चायुर्वेदे रोगोत्पादकक्रिमीणां वर्णन-स्तिः अपि तु वर्तत एव, परं हि ये शास्त्ररहस्यं सम्यक्तया न जानन्ति तेषामेव मते र्वेदे क्रिमिवर्णनाभावो विद्यते। एतदस्ति यदायुर्वेदे क्रिमीणां तादृशं महत्वं न स्वीक्रियते नमाधुनिकालोपैथीशास्त्रे परमस्य नेदं प्रयोजनं यदायुर्वेदे क्रिमिवर्णनाभाव एव। न च दा कथं ज्ञातं यदायुर्वेदेऽपि क्रिमीणां वर्णनमस्ति किं स्वकल्पनयैव उत शास्त्रप्रामाण्यम-ति, उच्यते नात्र केवलाकल्पनैव अपि तु शास्त्रप्रामाण्येनैवेदं उच्यते। शास्त्रे हि स्पष्टं दितम्—"सौक्ष्म्यात् केचिददर्शनाः" इति। यदि हि नाम महर्षीणामेतेषां ज्ञानं न दा ते कथमित्थमुचुः। अत एव "सर्वथाऽनायुर्वेदेऽपि पाश्चात्ये विचारेऽदूरदर्शितया णविसंवादिन्यापि स्वीयकल्पनयाऽऽयुर्वेदीयत्वमध्यारोप्य स्वहीनभावनां यथाकथञ्चित् हीयन्ती" त्यादि कथनमसंगतमेव। अतो ज्ञायते भूतादिभिश्शब्दैः ग्रहणां ग्रहणान्त्वस्त्येव नोद्देशप्रमाणात्। परं येऽऽयुर्वेदानभिज्ञाः सन्ति ते आयुर्वेदे जीवाणूनां वर्णनन्नास्ति, शून्य आयुर्वेद इतिस्थिताः तान्प्रत्यायुर्वेदस्य महत्वं प्रतिपादयितुं भूतादिभिर्ग्रहातिरिक्त-जीवाणूनामपि ग्रहणं यदि कुर्मस्तदा न कापि हानिः। भूतरक्षः पिशाचादिशब्दैश्चेज्जी-णूनां ग्रहणं न स्यात्तदा "विद्याधरोऽप्सरोयक्षरक्षोगन्धर्वकिन्नराः। पिशाचो गुह्यकः सिद्धो तोऽमी देवयोनयः"। इति कोषवाक्यात् यक्षरक्ष आदीनां देवयोनित्वेन भगवतोदिनमभेरपि कथं देवादेव देवयोनिनां नाशः संगतो भवेत् तथा चाथर्ववेदमन्त्रः—"उत सूर्यो दिव एति रक्षांसिनिर्जुवन्। आदित्यः पर्वतेभ्यो विश्वदृष्टा अदृष्ट हा"। अस्मिन् मन्त्रे दृश्यान-स्त रक्षः पिशाचादीन् नाशयति सूर्यः स्वतेजसा इत्युक्तम्। अत एवैतेषां निशाचरनाम अन्व-र्थमेव। निशायां चरन्तीति निशाचराः रात्रिभ्रमणशीला इत्यर्थः, दिवसे सूर्यतापमसहत्वात्। एवोक्तम्—"ये सूर्यन्न तितिक्षन्त आतपन्तममुं दिवम्। अरायान् वस्तवासिनो दुर्गन्धीन् हारायान् ममकान् नाशयामसि"। अत एव सुश्रुते "निशाचरेभ्यो रक्ष्यस्तु नित्यमेव तुरः" इत्युक्तम्। किं भवता कुत्रापि चिकित्सालये भवन्मते निशाचरशब्देन ग्रहगृहीतः पि व्रणितो दृष्टः? निशाचरशब्देन जीवाणूनां ग्रह्य तु जीवाणुभिस्तु सर्व एव व्रणिता कालवत् साम्प्रतिकैरपि रक्ष्यन्त एव। रोगोत्पादकसूक्ष्मजीवाणवो दिवसे तमसाच्छन्नगृह-दौ निवसन्ति सूर्यतापमसहत्वात्, रात्रौ चावसरं प्राप्य दशन्ति, अतो निशाचर इति नाम।

सोमसूर्यानिला मिलित्वा जगद् धारयन्ति। यदि चैतान्नासृजद् विभ्रस्तदा जगति पि प्राणिनः स्थितिरसम्भवा एव। यत्रैतेषामगतिस्तत्स्थानमस्वास्थ्यकरमेव भवति, अत

एव भगवता सुश्रुतेन व्यापन्नजलदुर्गुणेषूक्तम्—"सूर्येन्दुपवनादृष्टं त्वभिवृष्टं घनं गुरु" इति। अहम् सानुनयं पृच्छामि भवन्तं यदस्याः व्यापत्तेः को हेतुः ? किं यत्र सूर्यादीनामगतिस्तत्र जीवाणवो नोत्पद्यन्ते ? यदि जीवाणवोनोत्पद्यन्ते तदा जलव्यापत्तौ को हेतुः ? इति सर्वमुल्लिख्य सूचनीयम्। एतद्विपरीतं यत्र सूर्येन्दुवायूनां गतिस्तत्र सर्वेऽपि पदार्थाः शुद्धाः भवन्ति अत एव हंसोदकलक्षणेषु—"दिवा दिवाकरैस्तप्तं निशि शीतकरांशुभिः" इत्यादि। एवञ्च शास्त्रप्रामाण्याद्भूतादिभिर्ग्रहाणां ग्रहणन्त्वस्त्येव, परन्न केवलं ग्रहाणामेव अपि तु रोगोत्पादकसूक्ष्मक्रिमीणामपि ग्रहणं भवत्येव। अतो भूतादिभिश्चेद्रोगोत्पादकसूक्ष्मजीवाणूनामपि ग्रहणं स्यात्तदा न कापि हानिः। अत्र प्रमाणञ्च वेद एव। मया पूर्वनिवन्धे अथर्ववेदीया वहवो मन्त्रा उल्लिखिताः यै रक्ष आदिभिश्शब्दैः रोगोत्पादकजीवाणूनां ग्रहणं भवति।

रसशास्त्रस्य विशिष्टो विद्वान् घिल्डिपालोपाह्वः श्रीसदानन्दोभिषङ्चूडामणिरपि स्वरचितरसतरङ्गिणीग्रंथे भूतशब्दं जीवाण्वर्थे प्रयुक्ते तथा हि—

रसपुष्पं पित्तहरं भूत्रलं व्रणदोषहृत्।
परं विरेचनकरं तथा भूतविषापहम् ॥४१॥६॥

अस्य व्याख्यायाम् भिषग्विद्याप्रवीणः श्रीहरिदत्तशास्त्रिभिषगपि "भूतविषापहमित्यत्र भूतानि संक्रामकरोगबीजानि इति भूतशब्दस्य स्पष्टमेव जीवाण्वर्थे प्रयोगः। एवमेव रसकर्पूरगुणवर्णनेऽपि—

"रसकर्पूर कः ख्यातो बहुभूतविषापहः"।

अस्य व्याख्यायामपि बहुभूतविषापह इत्यत्र संक्रामकजीवाणुविषनाशन इति प्राह टीकाकारः। उदाहरणार्थमत्र दिगेव प्रदर्शिता। उक्त रसग्रन्थे यत्र-यत्र भूतशब्दस्य प्रयोगो वर्तते तत्र-तत्र जीवाणुरेवार्थः कृतो नान्य इति। एवमेव भूतग्रहरक्षः पिशाचादीनामुल्लेख श्रीमता भावमिश्रेणापि स्वसंग्रहित भावप्रकाश निघण्टौ कृतः।

तथा हि वचागुणेषु—

अपस्मारकफोन्मादभूतजन्त्वनिलान् हरेत्॥

धूपसरलगुणेषु—

स्निग्धोष्णः कर्णकण्ठाक्षिरोगरक्षोहरः स्मृतः॥

सरलनिर्यासगुग्गुलुगुणेषु—

रक्षोघ्नः स्वेददौर्गन्ध्यः यूकाकण्डुव्रणप्रणुत्॥

रालगुणेषु—

ग्रहभग्नाग्निदग्धा श्री शूलातिसारनाशनः॥

कुन्दुकंगुणेषु—

ज्वरखेदग्रहालक्ष्मीनुखरोगकफानिलान्॥

शिलारसगुणेषु—

वृष्यः कण्ठ्यः स्वेदकुष्ठज्वरदाहग्रहापहः॥

गोरोचना गुणेषु—विषालक्ष्मीग्रहोन्मादगर्भस्रावक्षतास्रहृत् ॥

नखद्रव्यगुणेषु—ग्रहश्लेष्मवातास्रज्वरकुष्ठहृत् ॥

मुरागुणेषु—"ज्वरासृग्भूतरक्षोघ्नी कुष्ठकासविनाशिनी ।"

गन्धपलासीगुणेषु—शोथकासव्रणश्वास शूलहिध्माग्रहापहः ।

स्थौणेयकगुणेषु—"मेधाशुक्रकरं कच्यं रक्षोघ्नं ज्वरजन्तुजित् ।"

ग्रन्थिपर्णस्यैवमेदगुणेषु—"रक्षोऽश्रीस्वेदमेदोस्रज्वरगन्धविषव्रणान् ।"

हंसपदीगुणेषु—"विसर्पदाहातीसारलूताभूताग्निरोहिणीः ।"

वन्दागुणेषु—माङ्गल्यः कफवातास्ररक्षोव्रणविषापहः ।"

शंखपुष्पीगुणेषु—"दोषापस्मारभूताश्रीकुष्ठक्रिमिविषप्रणुत् ।"

तुलस्यापर्यायेषु—"अपेतराक्षसी" इति तुलस्यानाम वर्तते ।

अस्यार्थः—अपेता दूरीभूता राक्षसा क्रिमयो यस्या सा अपेतराक्षसी । भूताभिषङ्गे विषमज्वरे चास्याः प्रयोगः—"पीतो मरिचचूर्णेन तुलसीपत्रजो रसः ।
द्रोणपुष्पी रसा वापि निहन्याद् विषमज्वरम् ।"

अरिष्टागुणेषु—"अरिष्टस्तु त्रिदोषघ्नो ग्रहभिद् गर्भपातनः" ।

इंगुदीगुणेषु—"इंगुदः कुष्ठभूतादिग्रहव्रणविषक्रिमीन् ॥"

भूर्जपत्रगुणेषु—"भूर्जो भूतग्रहश्लेष्मकर्णरुक् पित्तरक्तजित्" ।

मनःशिलागुणेषु—"तिक्ता स्निग्धा विषश्वासभूतकासकफास्रनुत् ।"

सर्षपगुणेषु—रक्षो हरो जयेत्कण्डुं कुष्ठकोठक्रिमिग्रहान् ॥"

घृतगुणेषु—स्निग्धं कफकरं रक्षो रक्तक्षयविसर्पनुत् ॥"

इत्थमुक्तद्रव्याणां गुणेषु भूतरक्षोराक्षसग्रहशब्दाः समायाताः अत्रापि भूतादिभिः ग्रहाणां सूक्ष्मक्रिमिणां चापि ग्रहणं भवति, पूर्वोक्तदिशा ।

चरकसंहितायः हिन्दीटीकाकर्त्तारः श्री जयदेवमिश्रा अपि भूतशब्दस्य जीवाण्वर्थं चक्रुः। तथाहि ओजः क्षयलक्षणेषु—"कालो भूतोपघातञ्च विज्ञेयाः क्षयहेतवः" अत्र भूतानाम्=कीटाणूनाम् =उपघात इति भूतोपघातः ।

आयुर्वेदस्य विशिष्टाः विद्वांसः श्री सोमदेवशर्मसारस्वतमहोदया अपि भूतरक्षःपिशाचादीनां रोगोत्पादकजीवाण्वर्थं कृतवन्तः । तथाहि—गुग्गुल्वादिरक्षोघ्नधूपैः सूक्ष्म क्रिमिरूपाणां रक्षसामेव नाशः संभवति, न च पौराणिकसाहित्ये वर्णितानां भीमाकृतीनां रक्षसामिति । सुश्रुतेनापि व्रणितस्य समीपे शोणितं पातुं रक्षः पिशाचादीनामागमनमुक्तम् । त एते सर्वे बहुविधाः सूक्ष्मा क्रिमय एव । एते भूत, भूतग्रह, देवयोनि, देवग्रहेत्यादिभिश्शब्दैर्व्यवह्रियन्ते । एभिरनेकाव्याधयः समुत्पद्यन्ते । यथोन्मतश्वश्रृगालादिभिर्दष्टे पुरुषे श्वश्रृगादिसदृशाश्चेष्टाः भवन्ति तथैवैभिर्भूतादिभिर्जीवाणुपरपर्यायैः शरीरप्रविष्टैरेतेषां प्रकृत्य-

नुसारं स्त्रीपुरुषेषु लक्षणानि भवन्तीति दिसम्बरमासे १९५१ वर्षीयायुर्वेदमहासम्मेलनपत्रिकायां वर्णनमकुर्वन् इति ।

न केवलं पूर्वोक्तैराधुनिकैरेव भूतशब्दस्य क्रिम्यर्थो विहितोऽपितु श्रीमद्भिश्चक्रपाणि महोदयैरपि भूतशब्दस्य क्रिम्यर्थो विहितस्तथाहि—

यो भूतविषवातानामकालेनागतश्च यः
स्नेहशीतोष्णसंस्पर्शो मिथ्यायोग स उच्यते ॥

अस्य व्याख्यायाम् भूताः सविषक्रिमिपिशाचादय इत्युक्तम् ।

(क्रमशः)

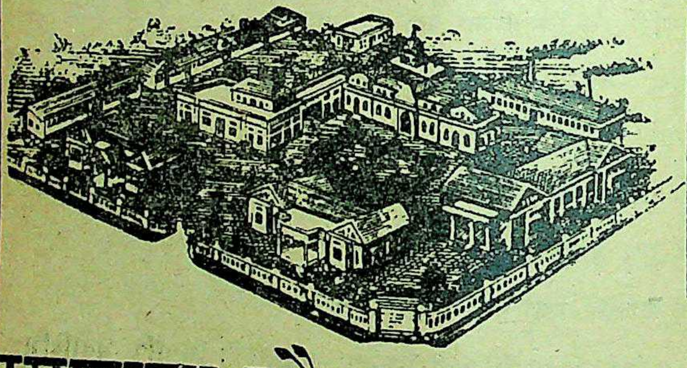

५० वर्षों से विश्व भर में प्रतिष्ठा प्राप्त भारत की प्रमुख आयुर्वेदिक औषध निर्माणशाला

रसशाला औषधाश्रम (REGD. गोंडल, सौराष्ट्र।

गोंडल रसशाला के कारखाने में विविध प्रकार की भस्में, रसरसायन, कूपिपक्व रसायन, पर्पटी, गुटिका, चूर्ण, वगैरह सैकड़ों प्रकार की हाथ से बनी औषधियाँ तैयार रहती हैं। हिन्दुस्तान के प्रत्येक प्रदेश में और चीन, फीजी, अफ्रीका, अमेरिका, युरोप में भी जाती हैं। सब भाषा के सूचीपत्र मुफ्त भेजते हैं ।

ऋद्धिखण्डः—वादिखण्डः मूल्य ३) रुपया

नित्यनाथ सिद्ध का यह धातुवाद सुवर्ण सिद्धिका अद्भुत अप्राप्य ग्रन्थ संवत १७८५ साल की हस्त लिखित प्रति के आधार से प्रसिद्ध किया है । पत्र २०० पक्का जिल्द २० उपदेश हैं । धातुवाद में रस लेने वालों के लिए संग्राह्य है । मूल श्लोक मात्र है ।

बम्बई शाखाः—गोंडल रसशाला औषधाश्रम
वसंत वाडी के सामने, ४१६ कालबा देवी रोड, मुम्बई २ ।

पारद अनुसन्धान में प्रगति

लेखक—श्री रामेश बेदी, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार

गत नवम्बर मास में देवप्रयाग की पारद अनुसंधानशाला के श्री नारायण स्वामी जी ने कनखल में अपंना अन्वेषण कार्य आरम्भ किया है। सितम्बर में मुझे देवप्रयाग में ही स्वामी जी के दर्शन करने का सुअवसर हुआ था। पिछले महीनों में स्वामी जी न अपने अन्वेषण कार्य में जो प्रगति की है उसका संक्षिप्त परिचय रसशास्त्र के जिज्ञासुओं के लिये यहाँ दे रहा हूँ।

आचार्य श्री नित्यानन्द जी पिलानी का कुछ समय पूर्व सचित्र आयुर्वेद में एक लेख प्रकट हुआ था। उसका शीर्षक था···"क्या हम सोना बनायेंगे ?" इस लेख के अन्दर गुरु गोरक्षनाथ जी की एक साखी थी जो इस प्रकार है—

गीध हँस सुआ एक संग,
खटाई त्रिफला अष्टंग,
कन्या रजनी गैल किराना
अगनि पुटते दारिद जावा ॥

इस लेख में आचार्य जी ने इस साखी की व्याख्या करते हुए अपने तथा अन्य विद्वानों के मन्तव्यों को दर्शाया था। उस पर जब श्री नारायण स्वामी जी का ध्यान गया तो उन्होंने इन व्याख्याओं और मन्तव्यों को स्पष्ट किया। अमृतनाथ योगी के मत का उल्लेख करते हुए श्री नित्यानन्द जी ने दर्शाया है कि इस प्रयोग में एक तोला उपर्युक्त पारद एक तोला कलई का रजत में रूपान्तर होने की सम्भावना है। इस पर श्री स्वामी जी का कथन है कि इतना श्रम करने के उपरान्त यदि यह परिणाम प्राप्त होता है तो यह कहावत चरितार्थ होती है कि खोदा पहाड़ निकला चूहा।

गुरु गोरक्षनाथ जी ने साखी के अन्त में दारिद जावा जो लिखा है ये शब्द स्वामी जी की सम्मति में स्पष्ट रूप से यह ध्वनि दे रहे हैं कि इस विधि से बना हुआ पारद या तो ताम्रजारित पारद होते हुए दशवेध करेगा अथवा इस प्रयोग में जितना पारद लेंगे उसका डेढ़ गुना स्वर्ण बनेगा। इस विचार को लेकर स्वामी जी ने अपनी प्रयोगशाला में विस्तृत पैमाने पर प्रयोग आरम्भ किया। स्वामी जी इस साखी की व्याख्या इस प्रकार करते हैं—गीध सर्वभक्षक प्राणी है इसलिए इस प्रयोग में पारद को सर्वभक्षक बनाने वाले गीध (बीड़) के रूप में नरमूत्रक्षार लेना चाहिये। हंस से शुद्ध पारद का ग्रहण होना चाहिये। सुआ से शुद्ध नीला थोथा। साथ ही, यह तुत्थ रसरत्न समुच्चय के पाठानुसार रक्त वर्ग के द्रव्यों से भावना देकर शुद्ध किया हुआ होना चाहिये। अपनी प्रयोगशाला में चालू किये गये परीक्षणों में स्वामी जी ने उपर्युक्त द्रव्य ही लिए हैं। साखी के अनुसार स्वामी जी ने बीड़ (गीध) के रूप में नरमूत्रक्षार लिया है। हंस—शुद्ध पारद, सुवा=शुद्ध तुत्थ, किराना=अग्निस्थायी सुहागा ये चारों द्रव्य एक समान लिए। इन्हें पत्थर के खरल में निम्बू स्वरस (खटाई), त्रिफला का

अष्टमांश क्वाथ, घृतकुमारी का गूदा (कन्या), हल्दी और दारू हल्दी के स्वरस तथा आमा हल्दी का अष्टमांश क्वाथ—इनमें से प्रत्येक से अलग-अलग सात-सात भावनाएं दीं। इस सारी प्रक्रिया में एक श्रमिक को पूरे दस मास लगे, जबकि वह प्रतिदिन आठ-नौ घण्टे कार्य करता था। छाया में शुष्क करने में इसे दो मास लगे थे। तब इसे डमरू यन्त्र में बारह घण्टे मृदु, मध्यम और तीव्र आंच दी। इसमें ऊपर पौने ग्यारह तोले पारद पूर्ण रंजित, पीताभ प्राप्त हुआ। यह पारद अग्नि-स्थायी नहीं हैं। शेष द्रव्यों को भिन्न पाचक देकर स्वामी जी इस समय उन्हें कुसिबल (आधुनिक वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में काम आने वाले) में बन्द करके सम्पुट को छाया में सुखा कर अब अग्नि देना आरम्भ कर रहे हैं। स्वामी जी की प्रयोगशाला में यही परीक्षण अभी चालू है और निश्चित परिणाम प्राप्त होने पर हम पुनः रसशास्त्र के प्रेमियों को सूचित करेंगे।

पारद के अन्य दो प्रकार

पिछले लेख में मैंने पारद के जिन प्रयोगों के विषय में लिखा था उनके अतिरिक्त दो अन्य प्रकार भी स्वामी जी ने तैयार किये हैं। रसशास्त्र में पारद जब रंजित हो जाता है तब अग्नि स्थायी, बुभुक्षित और बेधक होता है। शास्त्रकारों ने रंजन की परिभाषा में भली प्रकार बीज आदि के जारण से पारद में रक्तपीत वर्ण के प्रादुर्भाव को रंजन कहा है। पारद रंजित होने से लाक्षा के सदृश रंग का (लाक्षाभिजायते), उगते हुए सूर्य की प्रभा जैसा (बालार्क सदृश) और गलाये हुए स्वर्ण जैसा हो जाता है। रसशास्त्र में दिव्यौषधियों में रक्त, पीत, श्वेत और कृष्ण वर्ण की औषधियां बताई हैं। उनमें से रक्तपीत वर्ण की औषधियों लेकर कुछ औषधियों का स्वरस, कुछ क्वाथ और कुछ का चूर्ण लेकर स्वामी ने अलग-अलग औषधियों में शुद्ध पारद पत्थर के खरल में भावित किया। परिणाम-स्वरूप पारद सुवर्ण सदृश वर्ण का स्थायी प्राप्त हुआ। इस पारद में आपने बीज जारण आरम्भ कर दिया।

पारद का दूसरा प्रकार—धरणीधर संहिता में कुछ तैलों के योग से पारद भवेत् ऐसा संकेत मिलता है। इसके अनुसन्धान में स्वामी जी ने अपनी प्रयोगशाला कुछ परीक्षण किये हैं। इसी ऋतु में हुई पर्वतीय भांग के बीजों से स्वामी जी पाताल यन्त्र द्वारा तैल प्राप्त किया और समान भाग शुद्ध पारद के साथ सिलिका बेसिन में रखा। इसे बालुका यन्त्र के अन्दर प्रतिदिन बारह घण्टे लकड़ी के कोयले की अंगीठी पर पकाया गया। मध्यम अग्नि पर मृदु तथा सम तापमान पर लगभग दो मास पकाया गया। तेल के शुष्क होने पर पारद और तेल के शुष्कांश को डमरू यन्त्र में रख कर तीन घण्टे मृदु, मध्यम और तीव्र अग्नि दी गई जिससे पारद पूर्ण अग्निस्थायी और रक्ताभ पाया गया। इसमें भी अब स्वामी जी ने बीज जारण करना शुरू कर दिया है।

तप्त खल्व में बीज जारण

१७ जून १९५७ को उत्तर प्रदेश के आयुर्वेद के उप संचालक श्री दत्तात्रेय अनन्त कुलकर्णी जी एम० एस० सी०, आयुर्वेदाचार्य देवप्रयाग में पारद अनुसन्धान कार्य की प्रगति को देखने आये थे। विविध प्रयोगों, प्रक्रियाओं तथा उपलब्धियों को समझने और प्रत्यक्ष करने में आपने अपने अमूल्य समय

ने तीन दिन निकाल कर प्रयोगशाला में ही निवास करने की कृपा की थी। श्री कुलकर्णी जी की पारद अनुसन्धान में वस्तुतः गहरी अभिरुचि है। प्राचीन आयुर्वेद के साथ-साथ उन्होंने नवीन विज्ञानों का तथा नव्य रसायन शास्त्र का उच्च अध्ययन किया है। इसलिये, वे आयुर्वेद के रसशास्त्र के विलुप्त प्रकरणों तथा प्रक्रियाओं को सुलझाने के लिये योग्य व्यक्ति हो सकते हैं। उनके यहाँ पधारने पर श्री स्वामी जी की प्रार्थना पर उन्होंने सुवर्ण जारण का शुभ कार्य आरंभ किया था। पारद सत्व के अन्दर बीज जारण करने के लिये प्रयोगशाला में विशेष प्रकार की भट्टी बनाई गई है जिसमें सुविधापूर्वक बैठकर नियत तापमान पर घण्टों सतत कार्य किया जा सकता है। देवप्रयाग में स्वामी जी ने इसे इस प्रकार बनाया था। ईटों की चिनाई से लगभग एक हाथ ऊँची और लगभग एक फुट व्यास की इस भट्टी में चार इंच की गहराई में जाली लगाई थी जिसमें कोयले भरे जाते थे। उस पर जलेबी तलने वाली चपटी पेंदी की कड़ाही टिकाते थे जिस पर बालू बिछी रहती थी। चपटी पेंदी की कड़ाही में यह लाभ है कि तापमान सर्वत्र एक समान फैलता है। बालुका के ऊपर पोर्सेलीन का खरल रख कर सुगमता से जारण का कार्य सम्पन्न होता है। इस अंगीठी के पीछे उतनी ही ऊँचाई का चबूतरा बनाया था जिस पर कार्यकर्ता आसानी से बैठकर बिना कष्ट के और बिना थकान के निरन्तर प्रयोग जारी रख सकता था। इस समय अनुसन्धान शाला में सुवर्ण, ताम्र, नाग, यशद और रस बीज (माया बीज) का जारण चल रहा है। अपने कनखल के नये स्थान पर स्वामी जी ने विद्युत शक्ति का लाभ उठा लिया है। अभ्रक सत्व के जारण का कार्य विद्युत भट्टियों पर किया जा रहा है। अपने अनुसन्धान कार्य को अधिक सूक्ष्मतया चलाने के निमित्त स्वामी जी ने हाल ही में बारह सौ डिग्री तक ताप को मापने के लिये कैमिकल थर्मामीटर भी मंगा लिया है।

स्फटिका सत्व

एक मन श्वेत स्फटिका तथा एक मन सैन्धव लवण को कूट पीस कर रसशास्त्र के अनुसार अग्नि के संयोग से स्वामी जी ने फिटकरी का स्वत्व निकाल लिया है। यह सत्व पारद में क्रामण के रूप में काम देगा। इस सत्व के साथ श्वेत मल्ल के संयोग से दोनों चीजें तल स्थायी होने के बाद इस योग से पारद को बद्ध तथा अग्निस्थायी करके पतरा बनाने की क्षमता आ जायगी। मल्ल और स्फटिका सत्व दोनों को तल स्थायी करने का यह कार्य इस समय रसायनशाला में चल रहा है।

——

हर प्रकार के शरीर-रचना ज्ञान सम्बन्धी आयुर्वेदिक साधन प्रतिमा (Model) चित्र (Chart) कंकाल (Skeleten) आदि और औषधि निर्माण (फार्मेसी) सम्बन्धी यंत्र, मशीन से चलनेवाले खरल, टिकियां व गोलियाँ बनाने की मशीनें, लोहे व पत्थर के खरल, सर्जीकल इन्स्ट्रूमेंट, सिद्धौषधियां, वनौषधियां खनिज द्रव्य आदि के मिलने का पताः—

दयाल आयुर्वेदिक प्रोडक्ट्स कं०

दयालबाग (आगरा)

आयुर्वेद में अन्तःक्षेपण पद्धति (इञ्जेक्शन)

ले०—श्री शिवपूजन सिंह कुशवाहा 'पथिक' बी० ए०, आयुर्वेद विशारद,
एच० एम० डी० एस०, कानपुर

पाश्चात्यचिकित्सक तथा सर्वसाधारण में यह धारणा है कि अन्तःक्षेपण (इंजेक्शन) का आविष्कार सर्वप्रथम यूरोप के विद्वानों ने किया है। यह धारणा सर्वथा भ्रमपूर्ण है। वेदादि ग्रन्थों में इस पद्धति की चर्चा है।

"यस्याञ्जन प्रसर्पस्यङ्गमङ्गं परुष्परु।
ततो यक्ष्मं विबाधस उग्रो मध्यमशीरिव॥"

[ऋग्वेद १०।९७।१२: यजु०१२।८६ व अथर्व०४।९।४]

मंत्र में प्रसर्पसि [प्रविष्य अन्तः शिरा-मुखे व्याप्नोषि] का शिरा के मुख में प्रविष्ट होकर अञ्जन गतिशील [अञ्जू व्यक्ति भक्षणाकान्तिगतिषु] औषधि की शारीरिक व्याधि के अभिप्राय से उपर्युक्त चिकित्सा प्रकार सिद्ध होता है।[1]

"गायत्री त्रिष्टुप् जगत्य-
नुष्टुप् पंक्त्या सह।
वृहत्युष्णिहा ककुप् सूचीभिः-
शम्यन्तु त्वा॥
(यजु० २३।३५)

अर्थ—"गायत्री संख्या (गायत्री के चारों पद मिलाकर) २४ अक्षर होते हैं। २४ गुने जल में निर्मित औषध की सूचियों से हे रोग विद्वान् वैद्य तेरा शमन करे। त्रिष्टुप्—के एक पाद में ११ अक्षर होते हैं चारों पादों में ४४ अक्षर होने से औषधि से ४४ गुने जल में निर्मित औषधि की सूचियों से तेरा शमन करें।

जगत्—यह छन्द १२ अक्षर का है, चारों पद ४८ अक्षर के होते हैं इसलिए ४८ गुने जल की मात्रा के साथ बनी हुई ककुप् सूचियों से वैद्य तेरा शमन करें।

अनुष्टुप्—छन्द ८ अक्षर का, चारों पादों को मिलाकर ३२ अक्षर का हो जाता है। इसलिए ३२ गुने जल के साथ बनी हुई ककुप् सूचियों से हे रोग! वैद्य तेरा शमन करें।

इसी प्रकार पंक्ति से ४० गुणा एवं वृहती से ३६ गुणा और उष्णिक् से २८ गुणा जल लेकर बनाई हुई औषधियों की सूचियों से वैद्य तेरा शमन करें। इससे आयुर्वेद को कितना व्यापक-सहारा प्राप्त होता है।[1]

"क्षिप्त्वा सीसककूपिके
रसवत् सूचीमुखनामतः।
ब्रह्मद्वारि विकीर्ण लोहित-
लवे गुञ्जैकमात्रं ददेत्॥
दत्वा सम्पुटवद्धतान्द्रिक-
धनुर्वाते सशाखाहिमे।

---

[1] साप्ताहिक "दिवाकर" आगरा का "वेदाङ्क" २६-१०-३५ ई० अंक २८-२९ पृष्ठ १५८ तथा मासिक "वेदवाणी" का "वेदाङ्क" वर्ष १० सं० २०१४ वि०, अंक पृष्ठ ९६।

[1] मासिक "धन्वन्तरि" विजयगढ़ वर्ष २७ सितम्बर १९५३ ई० अंक ९ पृष्ठ ८३२ ८३३।

कासं श्वासमरोचकं प्रलपनं-
कम्पं च हिक्कातुरं ॥
मूकत्वं बधिरत्वमुन्मादम-
पस्मारं जयेत्तत्क्षणात् ॥"
(रसरत्न समुच्चय)

अर्थात्—इसमें ब्रह्मद्वार को विकीर्ण करके रक्त में औषध को मिलाने की क्रिया है त्वचाध: अन्तःक्षेप (Sub Cutaneous Injection) का प्रयोग किया है। इसी प्रकार शिरागत (Intravenous) अन्तःक्षेपों का वर्णन भी बहुत से स्थलों में आया है।[1]

श्री बल्लाल पण्डित अपने "भोज प्रबन्ध" में लिखते हैं:—

"ततस्तामपि राजानं मोहचूर्णेन मोहयित्वा शिरःकपालमादाय तत्करोटिकापुटे स्थितं शफरकुलं गृहीत्वा कस्मिश्चिद्भाजने निक्षिप्य संधानकरण्या कपालं यथावदारचय्य संजीविन्या च तं जीवयित्वा तस्मै तद्दर्शयत्।"

अर्थात्—"उन्होंने भी मोहन चूर्ण से राजा को बेहोश किया व कपाल को काट कर उसकी हड्डियों के बीच विद्यमान (मृत) मछली को निकालकर किसी पात्र में डाल दिया तथा जोड़ने वाले यन्त्र से कपाल को पहले जैसा ही बनाकर संजीवनी द्वारा उसे जीवित कर दिया। तदनतर वह मछली राजा को दिखाई।"

सूची भेद पद्धति भी शल्यकर्म के अन्तर्गत एक कर्म है। जब हमारे प्राचीन भिषक् कपाल का आपरेशन कर सकते हैं तो उनके लिए इंजेक्शन लगाना क्या कठिन है जब कि वेदों में इस विद्या का संकेत है।

बौद्धकाल में चिकित्सक सूचीवेध का प्रयोग करते थे। बौद्धकालीन प्राचीन ग्रंथ "मालिन्द प्रश्न सद्धर्म पुण्डरीक सूत्र औषधि परिवर्तन" के पञ्चम अध्याय से स्पष्ट प्रकट होता है कि शिरा को बींध कर सुई के अग्रभाग से औषधि प्रविष्ट की जाती थी-यथा—

"……कांचिच्छलाकया सिरास्थानं विद्ध्वादद्यात् कांचिदग्निना परिदाह्यदद्यात्।"……पुन:—

"दन्तैः संचूर्ण्य काञ्चित्,
पिष्ट्वा चान्यां तथापराम्।
सूच्यग्रेण प्रवेश्यांगे
जात्यन्धाय प्रयोजयेत्॥"

अर्थात्—'कुछ औषधियों को सिरा को बींधकर शलाका (सुई) द्वारा रोगी के शरीर में डाले, कुछ को अग्नि से जलाकर दे।

किन्हीं औषधियों को दाँतों से चबाकर, किन्हीं को पीसकर, किन्हीं को सुई की नोक से जन्मान्ध के अंग में प्रवेश कराकर नेत्रदान करे।"[1]

पाश्चात्य विद्वानों ने भी इसकी पुष्टि की है यथा—

"भूतपूर्व मद्रास के गवर्नर लार्ड एम्पथिल ने सन् १९०५ ई० में व्याख्यान देते हुए कहा था कि कर्नल किंग ने जेनर (Jenner) के आविष्कार से पूर्व भारत में टीके और इंजेक्शन की क्रिया का प्रचलित होना सिद्ध कर दिया है।"[2]

---

१. आचार्य श्री रवीन्द्र चन्द्र 'शिकारी' ० एम० एस० कृत "अभिनव सूचीवेध-चिकित्सा" प्रथम संस्करण, पृष्ठ [illegible]

१. डा० प्रभाकर मिश्र एम०एस० सी०, डी० आई० एम० एस० कृत "विवेचनात्मक सूचीवेध पद्धति" प्रथम संस्करण, भूमिका पृष्ठ १४ तथा पं० ठाकुरदत्त जी शर्मा वैद्य अभिनन्दन ग्रन्थ," पृष्ठ ६६

२. श्री हरविलास शारदाकृत "हिन्दू सुपरीओरीटी पृष्ठ २६७, २६८, २६९ तथा "महान् भारत" प्रथम संस्करण, पृष्ठ ३१६

"रेवरेण्ड पीटर पर्सिवल बतलाते हैं कि वे खनिज द्रव्य (भस्म और रस) का प्रयोग आन्तरिक रूप में करते थे। आयुर्वेद में 'सूचिका वेध रस' आज भी मिलता है जिसका नाम ही इस बात का द्योतक है कि यह इंजेक्शन के लिए पेटेन्ट था। [1]

सूचिका भेदन एक प्रकार का शल्य कर्म है और शल्य कर्म में भारतीय प्रवीण थे। इस से सिद्ध होता है कि वे सूचिका भेदन कर्म में भी दक्ष थे।

बेवर लिखते हैं—"आज भी पाश्चात्य विद्वान् भारतीय शल्य चिकित्सा से बहुत कुछ सीख सकते हैं। जैसे कि उन्होंने कटी हुई नाक के जोड़ने की विधि भारतीयों से सीखी थी।"

एलोपैथी में सभी रोगों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के इंजेक्शन भिन्न-भिन्न कम्पनियों द्वारा निर्माण किए गए हैं। आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति में अब कई कम्पनियों ने आयुर्वेदिक इंजेक्शनों का निर्माण किया है।

कहा जाता है कि झाँसी के सुप्रसिद्ध व्यक्ति श्री राधागोविन्द मिश्र ने इन आयुर्वेदिक इंजेक्शनों का आविष्कार किया। उन का कार्यालय १८९३ ई० से स्थापित है। इनके बाद धीरे धीरे कई सज्जन इस क्षेत्र में आए।

इस समय भारतवर्ष में निम्नांकित इंजेक्शन निर्माणकर्त्ता हैं :—

(१) जी० ए० मिश्रा आयुर्वेदिक फ़ार्मेसी, श्री भैरवनिकुन्ज, झाँसी।

(२) झण्डा आयुर्वेदिक फार्मेस्युटिकल रिसर्च लेबोरेटरी, रेलवे रोड, हापुड़।

(३) प्रताप आयुर्वेदिक फार्मेसी लिमिटेड इंजेक्शन विभाग, १६७ राजपुर-देहरादून।

(४) बुन्देलखंड आयुर्वेदिक यूनानी फार्मेस्युटिकल वर्क्स, मानिक चौक, झाँसी।

(५) मार्तण्ड फार्मेस्युटिकल्स रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बड़ौत।

(६) प्राणाचार्य भवन प्रायवेट लि०, विजयगढ़ (अलीगढ़)।

(७) हिन्द रिसर्च लेबोरेटरी, झाँसी।

(८) सिद्धि फार्मेसी, ललितपुर।

(९) अपोलो फार्मेसी, झरिया, बड़ौदा।

(१०) दी आयुर्वेदिक इंजेक्शन सप्लाई एजेन्सी, मंगलगढ़ (दरभंगा) बिहार।

(११) विश्वस्त आयुर्वेदिक फार्मेसी, महेन्द्रगढ़ (पंजाब)।

(१२) नेशनल आयुर्वेदिक इंजेक्शन कम्पनी, समस्तीपुर (दरभंगा)।

(१३) आर० एच० मेडिकल हाल, घोष स्टीट, कलकत्ता।

(१४) अवध आयुर्वेदिक इन्जेक्शन कम्पनी, हैदराबाद।

(१५) अवध आयुर्वेदिक इन्जेक्शन, बलरामपुर।

इन पन्द्रह कम्पनियों के अतिरिक्त और भी कम्पनियाँ होंगी जो आयुर्वेदिक इंजेक्शन बनाती होंगी पर मुझे ज्ञात नहीं। इन उपर्युक्त कम्पनियों में भी शायद कई कम्पनियां बन्द हो चुकी हैं, क्योंकि पत्र लिखने पर कोई उत्तर नहीं मिलता है।

इनके द्वारा निर्मित इंजेक्शन कैसे हैं और इनमें क्या त्रुटियाँ हैं इसकी जाँच पड़ताल करनी चाहिए। मैंने स्वयं कुछ कम्पनियों के इंजेक्शनों की परीक्षा की है, उनमें निम्नलिखित त्रुटियाँ हैं —

शीघ्र खराब हो जाना, एम्पुलों का कांच कमजोर होना, मात्रा निर्देशन ठीक न होना

---

[1] "महान् भारत" पृष्ठ २१६

के बजाय कुछ भेज देना, ऊपर निर्माण और समाप्ति की तिथि न होने से पुराने सार-ये निकम्मे एम्पुल भेजना।

झण्डा आयुर्वेदिक फार्मेस्युटिकल वर्क्स, के कुछ इंजेक्शनों की मैंने स्वयं परीक्षा है जिनमें विषम ज्वरारि (मलेरिया पर), ज्वरारि (पुराने बुखार पर), नाय साधारण ज्वर पर) शत प्रतिशत लाभप्रद है।

वातारि, श्वासामृत, पूयमेयहारि, क्ष्मान्तक, कासान्तक, प्रतिश्यायान्तक अतिसा-न, गन्धक, लहसुन, साधारण कोटि के हैं।

अन्य कम्पनियों के इंजेक्शनों का परीक्षण हो रहा है।

मुझे किसी कम्पनी से मोह व द्वेष नहीं है अतः अपनी परीक्षा की बातें लिख दी हैं।

आशा है भारतीय सरकार भी इन इंजेक्शनों की उन्नति पर ध्यान देगी।

औषधियाँ
और
मशीनें

हर प्रकार की विधिपूर्वक विनिर्मित रस, रसायन, आसव, अरिष्ट भस्म, अवलेह आदि औषधियां और औषधि निर्माण संबंधी कुटाई, पिसाई, घुटाई व गोलियाँ आदि बनाने की बिजली तथा हाथ दोनों प्रकार से चलने वाली मशीनें आदि मिलने का एक मात्र विश्वसनीय स्थान—

दयालु फार्मास्युटिकल वर्क्स
बीकानेर

नवरत्न रस

स्त्री, पुरुष और बालकों के लिये महौषधि

यह नवरत्न रस हीरा, पन्ना, मोती, माणिक आदि नौ रत्नों की भस्म और सुवर्ण आदि के संयोग से तैयार किया जाता है। शरीर में स्थित रस, रक्त आदि धातुओं की उत्तरोत्तर वृद्धि और पोषण तथा वीर्यधातु की शुद्धि और पुष्टि करना इसका विशिष्ट कार्य है। शुक्र स्थान को पुष्टि मिलने से वीर्य में स्थित निर्बलता दूर होकर नपुंसकता, क्लैव्य, ध्वजभंग, वीर्यपात, स्वप्नदोष आदि नष्ट होते हैं और शरीर नवयौवन प्राप्त करता है।

यह गर्भावस्था में पांडु, रक्त की कमी, हाथ और पैरों में शोथ तथा श्वास आदि रोगों की उत्पत्ति को रोकता है। अल्पसत्वयुक्त प्रजा होती हो या बालक जन्मते ही मर जाता हो तो नवरत्न रस प्रथम मास से प्रसव काल तक सेवन कराने से प्रसव सुखपूर्वक होता है। बालक भी तन्दुरुस्त जन्मता है। इसके सेवन से अकाल प्रसूति और रक्तस्राव नहीं होता।

इसके उपरांत किसी भी कारण से पांडु, क्षय, जीर्णज्वर, कास, श्वास, वातव्याधि, मधुमेह, रक्तस्राव, मगज की निर्बलता, वीर्यविकार आदि में बाल, वृद्ध, युवा, स्त्री, पुरुष सबको नवरत्न रस देने से शक्ति प्राप्त होती है। निरोगी शरीर के लिये यह रसायन है रोगी शरीर के लिये औषध।

मूल्य २८ गोली का रु. ५), तोला १०)

ऊंझा फार्मेसी ऊंझा
ऊंझा (उ० गुज०).

(पृष्ठ २५२ का शेष)

दिल्ली जनरल पोस्ट आफिस में मतपत्रों के वापिसी लिफाफों को पहले पकड़ने के प्रयास से उत्पन्न सन्देह के कारण एवं श्री प्रभाकर चटर्जी के पत्रों तथा श्री प्रधानमन्त्री श्री इन्द्रप्रस्थीय वैद्य सभा दिल्ली के ता० १७-३-५८ के पत्र : और ता० २१-३-५८ के पत्र में प्रदर्शित असन्तोष के कारण यह सभा निश्चय करती है कि जो मतपत्र कार्यालय में पहुँचे हैं उन्हें बिना खोले स्थगित किया जाय और गिन कर सुरक्षित कर लिया जावे।

क्योंकि चुनाव सम्बन्धी कोई पक्के नियम विद्यमान नहीं हैं और अभी तक प्रचलित पद्धति और परम्परा का ही इस बार भी अनुसरण किया गया है तथा क्योंकि इस चुनाव से एक उम्मीदवार तथा एक प्रादेशिक संस्था सन्तुष्ट नहीं है अतएव स्थायी समिति का यह अधिवेशन निश्चय करता है कि चुनाव के लिये नवीन नियमों का निर्माण करके तदनुसार पुनः निर्वाचन कराया जाय। इस विषय में निम्नलिखित नियमों का निर्माण किया जाय—

(क) मतपत्र पर केवल उम्मीदवारों के नाम दिये जांय।

(ख) मतपत्र पर यह निर्देश दिया जाय कि उसपर कोई अपने हस्ताक्षर न करे तथा ऐसे चिह्न न लगाये जिससे कि उसकी गोपनीयता भंग हो जाय।

(ग) मतपत्र गुप्त रहे।

(घ) मतपत्र पर प्रत्येक उम्मीदवार के नाम के आगे × क्रास का मार्क लगाने के लिये ठीक और पर्याप्त स्थान की व्यवस्था रहे।

(ङ) मतपत्र के पीछे प्रधानमन्त्री के छोटे हस्ताक्षर अंकित किये जाँय।

(च) मतदाताओं को दो लिफाफे भेजे जायें—एक छोटा और एक बड़ा। मतपत्र छोटे लिफाफे में रखा जाय अर्थात् छोटा लिफाफा केवल मतपत्र के लिये प्रयोग में लाया जाय, जिसमें मतपत्र बन्द किया जाय। बड़ा लिफाफा प्रधानमन्त्री के पता वाला डाक के लिये जवाबी लिफाफा होगा जिस पर कोई डाक टिकट लगाने की आवश्यकता न होगी।

(छ) प्रत्येक मतदाता से पृथक्-पृथक् एक घोषणा-पत्र भी लिया जाय जिसमें यह उल्लेख होगा कि वह एक यथार्थ मतदाता है तथा उसने उस एक घोषणापत्र के अतिरिक्त चुनाव के और किसी कागज़ पर हस्ताक्षर नहीं किये हैं।

(ज) मतपत्र-युक्त छोटा लिफाफा तथा घोषणापत्र बड़े लिफाफा में रखकर प्रधानमन्त्री के पास मतदाता द्वारा ऐसे भेजे जायें कि वह निश्चित अवधि के भीतर भीतर प्रधानमन्त्री जी को मिल सके।

(झ) केवल वही मतपत्र प्रयोग में आ सकेंगे जो कि प्रधानमन्त्री जी द्वारा भेजे जायेंगे। यदि कोई विभिन्न मतपत्र प्रयोग में लाया जायेगा तो वह मान्य न होगा।

(ञ) निश्चित समय के पश्चात् प्राप्त मतपत्र गणना में नहीं लिया जायगा।

(ट) मतपत्र सम्बन्धी सामग्री बन्द लिफाफे में भेजी जाय।

उपर्युक्त नियमों के अनुसार प्रधानमन्त्री को चुनाव के लिये निम्नलिखित तिथियों के पालन करने का अनुरोध किया जाता है—

(अ) चुनाव सम्बन्धी सामग्री का पोस्टिंग—८ अप्रैल १९५८

(आ) मतपत्र की वापिस प्राप्ति के लिये अन्तिम तिथि—२३ अप्रैल १९५८ सायं ५ बजे।

(इ) मतपत्रों की गणना—२३ अप्रैल १९५८, सायं ५ बजे से।

प्रस्तावक—लक्ष्मीनारायण शर्मा, बम्बई।

अनुमोदक—हिम्मतलाल त्र्यम्बकलाल मुनि, बम्बई।

यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार हुआ।

५—अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन एवं नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ के सन् १९५६-५७ वर्षीय आय-व्यय एवं सन्तुलन पत्रों पर आडिटर महोदय की रिपोर्ट सहित विचार हुआ और ये सर्वसम्मति से स्वीकार किये गये।

विशेष—उक्त सन्तुलन एवं आय-व्यय पत्र तथा आडीटर महोदय की रिपोर्ट आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका के मार्च १९५८ के अंक में प्रकाशित किये जा चुके हैं।

६—स्थायीसमिति के गताधिवेशन के प्रस्ताव सं० ३ (१) तथा ३ (२) द्वारा निर्मित उपसमितियों की सिफारिशों पर विचार उपस्थित हुआ और उन्हें सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया।

विशेष—उक्त सिफारिशें आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका के मार्च १९५८ के अंक के पृष्ठ १२६ तथा १२७ पर प्रकाशित हो चुकी हैं।

७—दिल्ली में स्थापित किये जाने वाले प्रस्तावित आयुर्वेद विद्यालय के प्रबन्ध का विषय उपस्थित हुआ। निश्चय हुआ कि इस विषय में भी तदर्थ समिति अपनी सिफारिशें प्रस्तुत करे।

८—निश्चय हुआ कि अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन की नियमावली में अपेक्षित संशोधनों की सिफारिशें करने के लिये निम्नलिखित महानुभावों की एक उप-समिति का निर्माण किया जाय—

१. श्री महासम्मेलनाध्यक्ष।
२. श्री शिवशर्मा, बम्बई।
३. श्री वी० वी० नटराज शास्त्री, तिरुचिरापल्ली।
४. श्री बदरी विशाल त्रिपाठी, कानपुर।
५. श्री जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल, प्रयाग।
६. श्री वैद्यनाथ सरकार, दिल्ली।
७. श्री महासम्मेलन प्रधानमन्त्री जी (संयोजक)

प्रस्तावक—प्रह्लादराय एम० त्रिवेदी, बम्बई।

अनुमोदक—प्यारेलाल शर्मा, बम्बई।

सर्वसम्मति से स्वीकृत।

९—मिश्रित विषय—"आयुर्वेद सन्देश" लखनऊ, १५ मार्च १९५८, में प्रकाशित तथाकथित अखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ सम्बन्धी सूचना पढ़ी गई तथा निश्चय हुआ कि उक्त विद्यापीठ के प्रधान, कविराज विद्यानारायण शास्त्री, जो अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के एक आजीवन सदस्य भी हैं, की सदस्यता तत्काल स्थगित की जाय और इस विषय में आगे जाँच की जाय।

यह भी निश्चय हुआ कि यह विषय पूरी जाँच के लिये महासम्मेलन की बिहार प्रादेशिक शाखा बिहार प्रांतीय वैद्य सम्मेलन, मुजफ्फरपुर, के अध्यक्ष को सौंपा जाय ताकि वे इस नवनिर्मित संस्था के विषय में पूर्ण खोज करें और इसमें महासम्मेलन के अन्य सदस्यों के सम्बन्ध एवं क्रियाकलाप की भी जाँच करें।

प्रस्तावक—ए० एन० उदासी, बम्बई।
अनुमोदक—देवदत्त शर्मा, बम्बई।

सर्वसम्मति से स्वीकृत।

सभापति महोदय एवं समागत वैद्यबन्धुओं के धन्यवाद के अनन्तर सायंकाल ७ बजे बहुत सौहार्द्यपूर्ण वातावरण में सभा का कार्यक्रम विसर्जित हुआ।

वामनराव दी० वैद्य
प्रधानमन्त्री
अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन

महर्षि चरक का अपूर्व योग
* ब्राह्म-रसायन *
मानसिक शक्ति, स्फूर्ति, उत्साह, बुद्धि, स्मृति, ओज एवं दीर्घायुष्य प्राप्ति के लिए
अत्युत्तम कल्प है।
नवशक्ति आयुर्वेदालय (प्रा०) लि०
भुसावल - जबलपुर - नागपुर

विद्यापीठाध्यक्ष-चुनाव में प्राप्त मतों की गणना का कार्यविवरण

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन की स्थायी समिति के ता० २५-३-५८ के बम्बई अधिवेशन के प्रस्तावानुसार आगामी शिक्षासम्मेलन के सभापति निर्वाचनार्थ महासम्मेलन विद्यापीठ के सभी मतदाताओं को उभय प्रत्याशियों के प्रतिनिधियों के समक्ष मतपत्र पुनः दिनांक ८-४-५८ को भेजे गये और मतपत्रों की वापिस आने की निश्चित तिथि ता० २३-४-५८ तक प्राप्त मतपत्रों की गणना मेरे आदेशानुसार, मेरे द्वारा तदर्थ नियोजित अधिकारी वैद्य श्री पं० मोहनलाल जी शास्त्री, संयुक्तमन्त्री अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन, द्वारा महासम्मेलनोपाध्यक्ष वैद्यरत्न श्री पं० परमानन्द जी, सहायकमन्त्री श्री शान्तिप्रसाद जी जैन एवं कविराज श्री प्रभाकर चटर्जी के अधिकृत प्रतिनिधि कविराज श्री सूरमचन्द जी बी० ए० तथा कविराज श्री उपेन्द्रनाथ दास जी के अधिकृत प्रतिनिधि कविराज श्री कैलाशचन्द्र जी अग्रवाल के समक्ष नियमानुसार की गई जिसका विस्तृत विवरण सदस्य महानुभावों की सूचनार्थ नीचे प्रकाशित है।

वामनराव दी० वैद्य
प्रधानमन्त्री

स्थान—अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन कार्यालय, महालक्ष्मी मार्केट, चांदनी चौक, दिल्ली-६।

समय—ता० २३-४-५८ बुधवार, सायंकाल ५ बजे से।

उपस्थिति—वैद्यरत्न श्री पं० परमानन्द जी, उपाध्यक्ष, अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन।
वैद्य श्री मोहनलाल शास्त्री, संयुक्त मन्त्री, अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन।
कविराज श्री शान्तिप्रसाद जैन, सहायकमन्त्री, अ०भा० आयुर्वेद महासम्मेलन।
कविराज श्री कैलाशचन्द्र अग्रवाल, प्रतिनिधि कविराज श्री उपेन्द्रनाथ दास।
कविराज श्री सूरमचन्द जी, प्रतिनिधि कविराज श्री प्रभाकर चटर्जी।

वैद्यरत्न श्री पं० परमानन्द जी की अध्यक्षता में कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। जो लिफाफे Undelivered प्राप्त हुये उनका क्रमशः क्रमांक १९४, ४०४, ७४८, ७६८, १३७३, १३९९ अर्थात् ६ लिफाफे नोट किये। वैद्य श्री सत्यनारायण जी, दामाखेड़ा, १२८४ का मतपत्रक अमान्य किया गया क्योंकि वह मतपत्रक साधारण लिफाफे में प्राप्त हुआ था।

डिब्बों से निकले मतपत्रकों की संख्या—

दिनांक १०-४-५८ से १४-४-५८	दो डिब्बे	२१९
१५-४-५८		१००
१६-४-५८	दो डिब्बे	२२६
१७-४-५८		१२४

	१८-४-५८	१६७
	२२-४-५८	१८२
	२३-४-५८	१४८
बड़े लिफाफों में से प्राप्त मतपत्रकों की संख्या	२३-४-५८	६
	योग	११७२

३२ मतपत्रक खुले मिलने के कारण गणना में नहीं लिये गये।

एक लिफाफ़ा मेसर्स नारायण दास भगवानदास का निकला जो पृथक् किया निश्चय हुआ कि यह उनका है उन्हें ही दे दिया जाय।

१४३ ऐसे लिफाफे प्राप्त हुये जिनमें घोषणा-पत्र यथास्थान नहीं मिला और छोटे लिफाफे मिले। अतएव वे अमान्य किये गये।

कविराज श्री कैलाशचन्द्र अग्रवाल, प्रतिनिधि श्री उपेन्द्रनाथ दास जी, ने इस न्यता पर आपत्ति उठाई। उन्होंने कहा—"मतपत्रक के साथ जाने वाले निर्देशपत्र अनुसार वही मतपत्र अमान्य हो सकते हैं जिनपर किसी प्रकार का चिह्न या हस्ताक्षर हो इसके अतिरिक्त मतपत्रक अमान्य करना उचित नहीं है। यह सम्भव हो सकता है कि मतपत्रक के लिफाफों में घोषणा-पत्र साथ में हो अतएव उनको खोले बिना १४३ मतप को अमान्य करना मैं उचित नहीं मानता और मैं इसका विरोध करता हूँ।"

इस पर कविराज श्री मोहनलाल जी शास्त्री, संयुक्तमन्त्री तथा उपाध्यक्ष वैद्य परमानन्द जी ने कहा कि निर्देश-पत्र में यह स्पष्ट है कि मतपत्रक ही छोटे लिफाफे में हो चाहिये तथा घोषणा-पत्र बाहर होना चाहिये। इसलिये उन्हें अमान्य किया जा सकता तथा दूसरे यदि मतपत्रक के साथ ही घोषणापत्र निकले तो मतपत्रक की गोपनीयता हो जायगी।

तदुपरांत मतपत्रों की गणना की गई। परिणाम निम्न प्रकार रहा—

कविराज श्री उपेन्द्रनाथ दास जी को ५७३ तथा कविराज श्री प्रभाकर चटर्जी ४२३ मत मिले। इस प्रकार १५० मत के बहुमत से कविराज श्री उपेन्द्रनाथ दास आगामी शिक्षासम्मेलन के सभापति निर्वाचित हुये।

श्री सभापति महोदय तथा समागत सज्जनों को धन्यवाद करके रात्रि को ११ सभा विसर्जित हुई। कार्यालय को आदेश दिया जाय कि उभय उम्मीदवारों को परि की सूचना दे दी जाय।

ह० वैद्य श्री परमानन्द ह० श्री मोहनलाल ह० श्री शांतिप्रसाद जैन
ह० श्री कैलाशचन्द्र अग्रवाल ह० श्री सूरमचन्द
दिनांक, २३-४-५८
दिल्ली।

वैद्य बन्धुओं से नम्र निवेदन

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के शिक्षासम्मेलनाध्यक्ष के निर्वाचनोपलक्ष में मेरा जिस प्रकार आप लोगों ने किया है तथा बहुमत से मुझे निर्वाचित करके मेरा जो सम्मान आप लोगों ने बढ़ाया है उसके लिए मैं आप लोगों को हार्दिक धन्यवाद अर्पण करता हूँ।

आप ध्यान देने की कृपा करें कि केवल श्रीमान् अनन्त त्रिपाठी शर्मा जी महोदय को रीय महासम्मेलन का अध्यक्ष बनाकर और बहुमत से मुझे शिक्षासम्मेलनाध्यक्ष निर्वाचित करके आप लोग दोनों अध्यक्षों से आयुर्वेद की जितनी उन्नति और प्रगति की आशा करते हैं, विशेष करके एक आदर्श आयुर्वेद महाविद्यालय की स्थापना की आशा करते वह आशा तभी सफल होने की सम्भावना हो सकती है जबकि सारे भारतवर्ष के वैद्य बन्धु भी तन-मन-धन से सहयोग देने को तत्पर हों। समग्र भारत में २०-२२ लाख हैं और सब वैद्य बन्धु ८० प्रतिशत भारतीयों की सेवा करते हैं, इस तथ्य का श्रीमान् कविराज श्री प्रतापसिंह जी से हुआ है। किन्तु इन वैद्यों की एकमात्र प्रतिनिधि संस्था अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन की सदस्य संख्या दो हजार से भी कम है। क्या यह हमारी उदासीनता का परिचायक नहीं है?

इस गणतन्त्र के युग में यदि एक प्रतिशत वैद्य भी संस्था के सदस्य न बनें तो उस संस्था का प्रभाव सरकार के ऊपर क्या पड़ सकता है? इसलिए सब वैद्य बन्धुओं से मेरी नम्र प्रार्थना है कि यदि आप लोग अध्यक्षों से कुछ रचनात्मक कार्य कराना चाहते हैं तो महासम्मेलनाधिवेशन से पहिले ही इस संस्था की सदस्य संख्या इतनी बढ़ा देने के प्रयत्न में लग जावें कि दिल्ली का अधिवेशन अभूतपूर्व हो जावे जिससे न केवल जनता की अपितु राष्ट्रीय सरकार की भी दृष्टि इस पर आकर्षित हो सके।

केवल दिल्ली में एक आयुर्वेद महाविद्यालय स्थापित होने से ही आयुर्वेद महासम्मेलन का ध्येय पूरा नहीं होगा। जिस समय नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ की स्थापना हुई थी उस समय से अब तक चिकित्सा जगत में बहुत कुछ परिवर्तन व परिवर्धन हुआ है। सारी दुनिया में नित नूतन आविष्कार हो रहे हैं। यद्यपि उन चमत्कारिक औषधों में अवगुण भी बहुत हैं तथापि उनकी लोकप्रियता को केवल उनके अवगुणों का वर्णन करके कोई भी कम नहीं कर सकता है। यदि हम उनकी प्रतियोगिता में ऐसी ही लाभदायी निर्बाध औषध आविष्कार कर सकें तो उसका आदर अवश्य होगा। यदि हम आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति के रूप में प्रतिष्ठित देखना चाहते हैं तो केवल काय-चिकित्सा से सम्बन्ध रखने वाले २-३ ग्रन्थ पढ़कर शिक्षित वैद्य बनने का अभिमानी होकर कभी कृतकार्य नहीं हो सकेंगे हमें आयुर्वेद को आठों अंगों से सम्पूर्णांग बनाना पड़ेगा। आठों अंगों की शास्त्रीय और क्रियात्मक शिक्षा देकर ऐसे योग्य वैद्य बनाने पड़ेंगे जो चिकित्सा सम्बन्धी प्रत्येक प्रकार का

दायित्व सम्भाल लें। जब तक ऐसे योग्य वैद्य पर्याप्त संख्या में उपलब्ध न हों तब तक आयुर्वेद राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति नहीं बन सकेगा।

ईस परिस्थिति में आवश्यक यह है कि वैद्य बन्धु पारस्परिक भेदभाव को भूलकर अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन-विद्यापीठ की छत्रछाया में अधिक से अधिक संख्या में सम्मिलित हो जावें। प्रथम दिल्ली में एक आयुर्वेद महाविद्यालय बने उसके बाद जितने सम्बद्ध विद्यालय हैं उनको भी उस स्तर में लाया जावे। आगे सभी प्रदेशों में ऐसे विद्यालय बनते रहें तो आज का विद्यापीठ ही क्रमशः विश्वविद्यालय बन सकेगा। यदि सरकार की दृष्टि आयुर्वेदोन्नति पर पड़े तो इसमें अधिक समय भी नहीं लगेगा।

वार्षिक ५ रुपया शुल्क देकर मान्य सदस्य और पत्रिका ग्राहक बनने के लिए सहमत होने वालों की संख्या कम नहीं है। कुछ उत्साही और कर्मठ सदस्य प्रयत्न करें तो शीघ्र ही सदस्य संख्या आशानुरूप बढ़ जावेगी।

दिल्ली १५-५-५८

कविराज श्री उपेन्द्रनाथ दास

मेरा विनम्र निवेदन

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका के गतांक (अप्रैल) में मैंने सदस्य महानुभावों को यह सूचित किया था कि 'आयुर्वेद संदेश' एवं 'आयुर्वेद-विज्ञान' आदि कतिपय पत्रों में समय-समय पर मेरे कार्य के सम्बन्ध में किये गये आरोपों पर अपना उत्तर मैं पत्रिका में प्रकाशित कराऊंगा। यह आरोप इतने सारहीन और तथ्य से परे हैं कि इनका उत्तर देने की स्वयं ही मेरी इच्छा नहीं थी, किन्तु यह सोचकर कि इस भ्रामक प्रचार द्वारा सदस्य महानुभाव दिग्भ्रष्ट हो सकते हैं और अन्ततोगत्वा संस्था के लिये भी ये हानिकर सिद्ध हो सकते हैं, इच्छा न होते हुए भी, मैंने उत्तर देने का विचार किया था। परन्तु उपर्युक्त सूचना के प्रकाशन के पश्चात् संस्था के कुछ सम्माननीय सदस्यों की ओर से मुझे निर्देश मिले हैं जिनमें उन्होंने मुझसे आग्रह किया है कि इस प्रचार को अधिक महत्व देना उचित नहीं और मैं इनका उत्तर देने का विचार त्याग दूं। अपने माननीय सदस्यों के इस सुझाव को विनम्र भाव से स्वीकार करते हुए मैंने फिलहाल अपना उत्तर देने का विचार स्थगित कर दिया है। मुझे आशा है कि हमारे विवेकशील सदस्य महानुभाव सत्यासत्य का निर्णय स्वयं कर सकेंगे और किसी भी असत्य प्रचार से विचलित न होंगे। फिर भी जिन सदस्य महानुभावों की कुछ शंकायें हों वे मुझे पत्र लिखकर उनका समाधान करा सकते हैं। आक्षेपकों से मैं यह निवेदन करूँगा कि यदि उनमें कुछ वास्तविकता है, सत्य है और नैतिक बल है तो वे अपने आरोपों को स्पष्टतया लिखकर कार्यालय में भेजें, मैं उन पर पूर्ण कार्यवाही करूँगा।

वामनराव दी० वैद्य
प्रधानमन्त्री
अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन

आयुर्वेद लोक

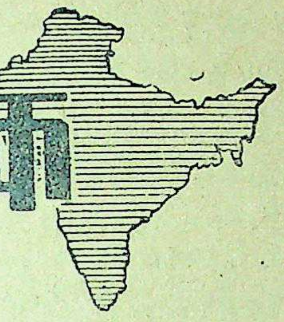

स्थान सरकार की आयुर्वेद के प्रति भारी उपेक्षा

राज माधवप्रसाद शास्त्री का भाषण

धपुर राजस्थान प्रदेश वैद्य सम्मेलन क्ष कविराज श्री माधवप्रसाद शास्त्री ने एक स्वागत समारोह में अपने विचार करते हुए कहा कि इस जनतन्त्र के युग में अपने अपने संगठन को बलशाली बना- आगे चलना है। युग की इस दौड़ में वैद्य पीछे रह गया तो आयुर्वेद का सर्वनाश है क्योंकि इसके विकास का कार्य ऐसे अधिकारियों के हाथों में पहुँचता जा है जो स्वार्थों से ऊपर उठकर काम नहीं सकते।

उन्होंने आगे कहा कि राजस्थान सरकार वेद के नाम पर अनुसंधान के लिए जो खर्च कर रही है उसे, उपयुक्त दिशा नहीं जा रही है। अनुसंधान जैसी महत्वपूर्ण योजनाओं को क्रियान्वित करने से पूर्व प्रदेश के चिकित्सकों से सलाह लेना आवश्यक और वैद्य समाज में भी इस कार्य के प्रति पैदा करने की आवश्यकता थी ताकि चिकित्सक क्षेत्र में उतर कर यहाँ के को अक्षुण्ण बनाते।

कविराज जी ने इस बात पर खेद प्रकट कि हाल ही में उदयपुर में होने वाले अनुसंधानशाला के उद्घाटन समारोह वैद्यों के अतिरिक्त प्रदेश के वैद्यों ने भाग नहीं लिया। उन्होंने कहा कि हमारे योग्य अधिकारियों को इन बातों से सबक लेकर आगे चलना चाहिए क्योंकि अनुसंधान जैसे महत्वपूर्ण कार्य को केवल आयुर्वेद विभाग की योग्यता के भरोसे पर ही सफल नहीं बनाया जा सकेगा।

आयुर्वेदाध्यक्ष ने इस बात पर पुनः बल दिया कि यह आयुर्वेद के नाम पर अनुसंधान का नाटक कर केवल वैद्य समाज से मखौल किया जा रहा है। उन्होंने इस रहस्य का उद्घाटन करते हुए बताया कि प्रदेश वैद्य सम्मेलन ने ७ लाख रुपये की एक स्नायुक-शोध योजना राजस्थान व भारत सरकार के समक्ष उपस्थित की थी। यदि राजस्थान सरकार चाहती तो वह योजना पास हो सकती थी किन्तु आयुर्वेद विभाग के अध्यक्ष ने अपनी चतुराई समझी कि दो रोगों के अनुसंधान के लिए ४० हजार की योजना स्वीकार करा कर संतोष की सांस ले। भला इस वैज्ञानिक युग में जहाँ साधन और सुविधाओं के बिना किसी भी वस्तु का प्रकाश में लाना कठिन है, हमारे योग्य अधिकारी किस प्रकार इस अल्प राशि में योजना को सफल बना पा सकेंगे।

कविराज जी ने यह साफ कहा कि एक ओर तो केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री, लोकसभा में यह कहते हैं कि आयुर्वेद के विकास के लिए अन्य योजनाएं हमारे पास पहुँची ही नहीं, और दूसरी ओर हमारी राज्य सरकार आयु-

र्वेद विकास का दम भरते हुए भी उन योजनाओं को पहुँचाने के रास्ते ही बन्द कर देती है। फलतः प्रतिवर्ष आयुर्वेद के मद का रुपया निरस्त हो जाता है जिससे आयुर्वेद की प्रगति नहीं हो सकती।

कविराज जी ने सरकार की इस भेद-भरी नीति की भी आलोचना की कि वह आयुर्वेद की तारीफ करते हुए भी उसे मानवीय अधिकार नहीं देती। उन्होंने इस बात को हास्यास्पद बताया कि आज भी राजस्थान में एक वैद्य को ६० रुपए मासिक वेतन मिल रहा है जब कि एलोपैथी के कम्पाउण्डर को ७५ से कम नहीं मिलता। उन्होंने यह भी कहा कि एलोपैथिक चिकित्सा कराने पर तो राजकीय व्यक्तियों को दवाइयों का पैसा मिल जाता है किन्तु आयुर्वेद से चिकित्सा कराने पर नहीं, क्या यह स्पष्ट रूप से एलोपैथी को प्रोत्साहन नहीं?

आयुर्वेद फार्मेसियों के एकीकरण पर विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा कि सरकार इस प्रश्न पर विचार कर रही है, यह प्रसन्नता की बात है, किन्तु किसी क्षेत्र विशेष के लिए ही योजनाएं स्वीकृत करना शोभाजनक नहीं कहा जा सकता। राज्य की स्थिति को सुधारने के लिए यह अपेक्षित है कि आयुर्वेद के अधिकारी गण क्षेत्रीय भावनाओं से ऊपर उठकर सोचें-विचारें और प्रमुख नगरों की महत्ता को मिट्टी में मिलाने की साजिशें न खेलें।

प्रदेश वैद्य सम्मेलन के कोटा अधिवेशन में स्वीकृत प्रस्तावों का स्मरण दिलाते हुए श्री शास्त्री जी ने सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित किया कि वह शीघ्र ही आयुर्वेद को उत्कर्ष देने हेतु प्रान्त के सफल व सिद्ध चिकित्सकों का सहयोग प्राप्त करे। उन्होंने कहा कि आज भी ऐसे सफल व सिद्ध चिकित्सक प्रान्त में सैकड़ों की संख्या में विद्यमान हैं जो अर्शमस्सा, भगन्दर, नासूर, मोतियाबिन्द, संग्रहणी व स्नायुक रोगों की चिकित्सा में दक्षता प्राप्त हैं। थोड़े से प्रोत्साहन व सहयोग से उनसे वह विद्या हासिल की जा सकती है और अन्य वैद्य तैयार कर परम्परा को जीवित रखा जा सकता है। अनेकों बार सरकार को सुझाने पर भी सदैव इस ओर उपेक्षा ही बरती गई है। जिस सरकार के आयुर्वेद अधिकारी केवल अपने स्वार्थ साधन में रत हों उस विभाग से तरक्की की कोई आशा नहीं की जा सकती।

अन्त में कविराज जी ने आयुर्वेद की घोर उपेक्षा का जिक्र करते हुए बताया कि राजस्थान में राजकीय औषधालयों की स्थिति अत्यन्त खराब है। न भवन हैं, न सामान है और न पूरी औषधियाँ ही हैं। बेचारे वैद्यों की दशा गांवों में और भी खराब होती है जो कुछ अर्से बाद आयुर्वेद का ज्ञान भी सरकारी सेवा

प्रताप आयुर्वेदिक फार्मेसी प्रा० लि० के
आशुफलप्रद आयुर्वेदीय इन्जैक्शन

हिमाचल के अंचल देहरादून में सरकार द्वारा लायसैन्स प्राप्त लेबोरेटरी में आयुर्वेदीय औषधों के मूलतत्वों का पूर्ण अनुसन्धान करने के उपरान्त प्राचीन और आधुनिक विज्ञानवेत्ता, सिद्धहस्त वैज्ञानिकों की देखरेख में इन्जैक्शन तैयार किये जाते हैं जो पूर्णतया निरापद विशुद्ध प्रामाणिक हो चुके हैं। प्रत्येक वैद्य का कर्त्तव्य है कि इन आशुफलप्रद पूर्णतया विशुद्ध एवं चमत्कारिक गुणकारी इन्जैक्शनों को प्रयोग में लाकर लाभ उठावें।

प्रताप आयुर्वेदिक फार्मेसी लि०
इन्जैक्शन ब्रांच
१६७ राजपुर रोड, देहरादून (यू० पी०)

समर्पित कर देते हैं। कहा तो यह जाता है कि इस वर्ष ६०० औषधालय हो जाएंगे, किन्तु स्थिति यह है कि एक भी ग्रामीण औषधालय आयुर्वेद की महत्ता प्रकट नहीं करता।

अन्त में कविराज जी ने वैद्य समाज से अपील की कि वह अब आपसी राग द्वेष से ऊपर उठकर आयुर्वेद की नैया को संभाले। इस पर आज जो काले बादल मंडरा रहे हैं उन्हें यदि शीघ्र ही हटाने की दिशा में यत्न नहीं किया तो आयुर्वेद का अस्तित्व खतरे से खाली नहीं है।

असम राज्य आयुर्वेद महासभा का चतुर्थ अधिवेशन सम्पन्न

असम राज्य आयुर्वेद महासभा का चतुर्थ वार्षिक अधिवेशन कविराज श्री रसमय तर्कतीर्थ के सभापतित्व में ९ तथा १० मार्च को सिलचर नगरी में धूम धाम से सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर प्रान्त के ५०० वैद्यों ने भाग लिया तथा आयुर्वेद प्रेमी जनता ने भी बड़ी संख्या में भाग लेकर अपने आयुर्वेद प्रेम को सिद्ध किया।

इस अधिवेशन में आयुर्वेद की उन्नति के लिए कई एक प्रस्ताव पास किये गये। श्री कामिनी कुमार, श्री नगेन्द्र चन्द्र, महासभा के प्रधानमन्त्री श्री भवकान्त शर्मा आदि ने आयुर्वेद की महत्ता बताकर इसे राष्ट्रीय चिकित्सा घोषित किये जाने पर बल दिया।

इस अधिवेशन का उद्घाटन जिलाधीश श्री आर० एस० परमसिवन, आई० ए० एस० द्वारा सम्पन्न हुआ।

आयुर्वेदिक औषधालय का उद्घाटन

भारतीय जनस्वास्थ्य रक्षक संघ की ओर से आयुर्वेदिक औषधालय का उद्घाटन बस्ती कोटला मुबारकपुर, दिल्ली में संसद सदस्य श्री के० सी० नायर द्वारा सम्पन्न हुआ।

इस अवसर पर इलाके के गणमान्य व्यक्ति उपस्थित थे जिनमें डा० एम० सी० डाबर, भूतपूर्व सभापति, नई दिल्ली कांग्रेस कमेटी तथा सन्त श्री निहालसिंह, संसद सदस्य आदियों के नाम उल्लेखनीय हैं।

उद्घाटन भाषण में श्री नायर जी ने आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति के लाभों पर प्रकाश डाला और आशा प्रकट की कि दल आदि का भेदभाव न रखकर हर व्यक्ति उसमें सहयोग प्रदान करेगा।

औषधालय को सुचारु रूप से चलाने के लिये, धर्मार्थ आयुर्वेदिक औषधालय कोटला मुबारिकपुर समिति के नाम से एक समिति बनाई गई है।

मराठवाडा शुद्ध आयुर्वेद महाविद्यालय जालना स्नेहसम्मेलन

जालना में शुद्ध आयुर्वेद महाविद्यालय का स्नेहसम्मेलन १५ तथा १६ मार्च के द्वीदिवसीय कार्यक्रम के साथ सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। विद्यालय के छात्रगणों के शारीरिक एवं बौद्धिक विविध कार्यक्रम बड़े रोचक थे। छात्रों ने जनसाधारण के मनोरंजनार्थ 'अम्मलदार' नामक नाटक बड़े ही अच्छे ढंग से खेला। इस नाट्यप्रयोग का उद्घाटन बम्बई के सुप्रसिद्ध वैद्य श्री ना० ह० जोशी जी ने किया तथा स्थानीय लोकप्रिय नेता श्री सिंधजी ने अध्यक्षता की।

इसी अवसर पर उक्त आयुर्वेद महाविद्यालय का निरीक्षण करने के लिए बम्बई राज्य सरकार के आदेशानुसार शुद्ध आयुर्वेद समिति के अध्यक्ष वैद्यराज श्री वामनराव दीनानाथजी, मन्त्री वैद्य ना० ह० जोशी और सदस्य वैद्य दत्तात्रेयशास्त्री जलूकर।रेपध

विशेष निमंत्रण पर नासिक से वैद्य बिन्दु माधव पण्डित जी भी उपस्थित हुये थे।

मराठवाडा शुद्ध आयुर्वेद महाविद्यालय का निरीक्षण कार्य समाप्त होने पर विद्यालय की ओर से समिति के सदस्यों का सत्कार समारोह सम्पन्न हुआ, विद्यालय के छात्रवर्ग एवं अध्यापक वर्ग, नगरस्थ नागरिक सज्जन और विद्यालय के सहायक कार्यकारी मण्डल के सदस्य उपस्थित थे।

सत्कार समारोह के प्रत्युत्तरात्मक वैद्य जलूकर शास्त्री तथा वैद्य बिन्दुमाधव शास्त्री पंडित ने छात्रगणों एवं अध्यापक तथा सहायक सज्जनों के प्रति प्रोत्साहन जनक भाषण किये। अन्त में अध्यक्ष श्री वामनराव जी का भाषण हुआ।

अपने समारोपात्मक भाषण में वैद्य वामनराव जी ने शुद्ध आयुर्वेद पाठ्यक्रम का
महत्व तथा उससे प्राप्त होने वाली
सुविधाओं का अच्छा दिग्दर्शन किया।
आयुर्वेद के प्रयोग की यशस्विता का
करते हुये भारत सरकार द्वारा नियु
समिति की निर्धारित नीति पर अध्यक्ष
दव श्री वामनराव जी ने अच्छा
डाला। आयुर्वेद की पढ़ाई के लिए छात्रों
प्रवेश पात्रता इन्टर साइन्स उत्तीर्ण रखने
दवे समिति की नीति की अनावश्यकता
संस्कृत की पढ़ाई की अधिक आवश्यक
विचार अध्यक्ष महोदय ने अत्यावश्यक
कर दवे समिति की आयुर्वेद पर कुठारा
करने वाली इस नीति के प्रति विरोध
किया और उन्होंने अ० भा० आयुर्वेद
सम्मेलन के मन्त्री के नाते भारत सरका
तार देकर दवे समिति के इस निर्णय
अन्य अनुचित गतिविधियों को रोकने
किस प्रकार प्रयत्न किया और भारत स
द्वारा इस निवेदन को स्वीकार करने का
हास भी बतलाया। आपने आगे कहा कि
इस कार्यवाही पर टीकाटिप्पणी कर
आयुर्वेद हितैषियों (??) ने दोषारोपण
है। ये महानुभाव दवे समिति की रिपोर्ट
"आशीर्वाद" समझते हैं। यद्यपि हमें
नहीं लगा। इन्टर साइन्स बी ग्रुप वाले
को ही प्रवेश देने की नीति को हम आ
की मृत्यु ही मानते थे और मानते हैं
इसलिए हमारे तार का परिणाम दवे
की रिपोर्ट स्थगित होने में हुआ यह आ
का सौभाग्य है और हमारी इस नीति
हमें पश्चाताप न होकर आनन्द ही होता है
जो जो निर्णय दवे समिति में आयुर्वेद
हित के हैं वे हमें स्वीकार हैं और
लिए हम उनको धन्यवाद देते हैं।

दवे समिति के निर्णयों में अच्छे
अवश्य थे जैसे कि "आयुर्वेद मे

शीघ्रता करें अवसर न चूकें

केवल कुछ समय के लिए

भस्में, पाक, अवलेह, आसव-अरिष्ट, चूर्ण आदि पर ३१ %प्रतिशत कमीशन।

५०) नेट के आर्डर पर मालगाड़ी का रेल किराया फ्री।

कुमारी आसव, लोहासव, अशोकारिष्ट १ पौंड पैकिंग १४) प्रति दर्जन नेट।

इसके अतिरिक्त हर प्रकार की जड़ी-बूटी मंगवाने के लिए आज ही लिखें। सूचीपत्र मुफ्त

चावला आयुर्वेदिक फार्मेसी
कुब्बी बेरी, किला भंगिया, अमृतसर

कौंसिल" का स्थापना का, ठीक वैसी ही जैसी कि पाश्चात्य चिकित्सा पद्धति के चिकित्सकों की मेडिकल कौंसिल स्थापित है। आयुर्वेद को निखिल भारत के स्तर पर रखना, सारे भारत में एक ही पाठ्यक्रम रखना, एलोपैथिक ग्रेजुयेटों के साथ समान अधिकार पाना आदि। दवे समिति रिपोर्ट स्थगित होने से इस लाभ से हम आयुर्वेदीय लोग वंचित रह गये हैं यह बात सत्य है, किन्तु इस लाभ की प्राप्ति का साधन केवल वही एक रिपोर्ट थी ऐसा हम लोग नहीं मानते। हमें पूर्ण विश्वास है कि "आयुर्वेद मेडिकल कौंसिल" आदि की स्थापना तथा और भी जो कुछ हितप्रद बातें आयुर्वेद के लिये दवे समिति की रिपोर्ट की स्वीकृति से सम्भवनीय थीं वे सब हम अपने प्रयत्नों से थोड़े ही समय में प्राप्त कर सकेंगे।

आयुर्वेद का भविष्य उज्जवल है। छात्रो! आयुर्वेद पर पूर्ण श्रद्धा रखो, मन लगाकर अभ्यास करो, तुम्हारा उज्जवल भविष्य तुम्हारे हाथ में ही है, जय आयुर्वेद।

इस तरह अध्यक्षीय भाषण होने के उपरान्त आभार प्रदर्शनान्तर यह समारोह भगवान् धन्वन्तरि के जयघोष के मध्य समाप्त हुआ।

देशी चिकित्सा प्रणालियों को केन्द्र की सहायता

देशी चिकित्सा प्रणालियों, आयुर्वेद (सिद्ध सहित) यूनानी, होम्योपैथी तथा प्राकृतिक चिकित्सा को केन्द्रीय सरकार सहायता देती है और दूसरी पंचवर्षीय आयोजना में भी इसकी एक योजना को स्थान दिया गया है। यह सहायता इन आधारों पर दी जाती है:—

(१) अनुसंधान की स्वीकृत योजनाओं के अन्तर्गत चुने हुए कुछ चिकित्सालयों में मरीजों के लिए कुछ पलंग रखने के लिए प्रति पलंग २ हजार रु० के हिसाब से।

(२) अनुसंधान की योजनाओं के लिए तदर्थ सहायता।

(३) राज्यों में देसी चिकित्सा के वर्तमान विद्यालयों को सुधारने और नये विद्यालय खोलने के लिये, नियत राशि के अन्दर, अनावर्तक व्यय की ७५ प्रतिशत (जिसमें कालेज की इमारत बढ़ाने का खर्च भी शामिल है) और विद्यालय (न कि अस्पताल) के आवर्तक व्यय को ५० प्रतिशत सहायता जो फिलहाल दूसरी पंचवर्षीय आयोजना की अवधि के लिए है।

यूनानी, आयुर्वेदीय वनौषधि और खनिज द्रव्य सस्ते मूल्य पर शुद्ध व उत्तम

हमारी दुकान से दुर्लभ केसर, कस्तूरी,
विविध प्रकार की काष्ठौषधि, मुक्ता,
सीप, शंख, शुद्ध शिलाजीत, सुवर्ण-
माक्षिक, प्रवाल, पारद, गंधक
आदि सब प्रकार के खनिज
तथा वनौषधि द्रव्य थोक
व परचून भाव पर प्राप्य

हमारी विशेषता-वास्तविक और शुद्ध सामान

विस्तृत विवरण के लिए पत्रव्यवहार करें और बड़ा सूचीपत्र मंगवायें।

तार का पता : आयुर्वेद फोन : ३१७९६
पता : शा० जादवजी लालूभाई एण्ड को०
२४५, कालबादेवी रोड़, बम्बई।

यह सूचना स्वास्थ्य मन्त्री श्री करमरकर ने श्री तंगमीए के एक प्रश्न के उत्तर में शनिवार ६ अप्रैल को लोकसभा में दी।

उन्होंने बताया कि मद्रास के आयुर्वेद, सिद्ध और यूनानी कालेज के लिए मद्रास सरकार को १९५७-५८ के लिए २० हजार रु० अनुदान देना स्वीकार किया गया। यह अनुदान अनुसंधान कार्य के लिए प्रति पलंग २ हजार रु० वार्षिक के हिसाब से दिया गया। इन में से कुछ पलंग सिद्ध प्रणाली के अनुसार श्वास आदि पांच प्रकार के रोगों के रोगियों की चिकित्सा के लिए हैं।

क्या आप जानते हैं ?

भारत सरकार की दूसरी पंचवर्षीय आयोजना में चिकित्सा की देशी प्रणालियों (इनमें होमियोपैथी भी शामिल है) के विकास के लिए १ करोड़ रुपये रखे गये हैं।

इस कार्य के लिए राज्यों की आयोजनाओं में ५ करोड़, २१ लाख ४९ हजार रुपये वर्त्तमान कालेजों की तरक्की और नये कालेज खोलने के लिए खर्च किये जाएंगे।

दूसरी आयोजना में केन्द्रीय सरकार राज्यों को निम्नलिखित सहायता देगी (१) चुनी हुई संस्थाओं को अनुसंधान के लिये रखे रोगियों की देखभाल का आवर्तक खर्च, प्रति पलंग प्रति साल २००० रु० की दर से; (२) अनुसंधान की विशेष योजनाओं के लिए तथा (३) राज्यों की शिक्षा-संस्थाओं की तरक्की के लिए धन।

आयुर्वेदिक, यूनानी और होमियोपैथी की सलाहकार समितियों की सिफारिशों पर, सरकार ने विभिन्न राज्यों की देशी चिकित्सा संस्थाओं को, १९५७-५८ में २,८३,५०० रु० के अनुदान दिये हैं। इन संस्थाओं में होमियोपैथी की संस्थाएं भी शामिल हैं।

आयोजना आयोग के तत्वावधान में बंबई में २१ और २२ जून १९५७ को आयुर्वेदज्ञों की बैठक हुई थी। बैठक ने सिफारिश की थी कि आयुर्वेदिक अनुसंधान के लिए केन्द्रीय परिषद् स्थापित की जाय। इस सम्बन्ध में राज्य सरकारों से राय मांगी गई है।

ALL KERALA AYURVEDIC DELEGATION MEETS THE UNION HEALTH MINISTER

Memorandum presented to remove the restrictions placed on Aswas and Arishtas.

A Delegation of the All Kerala Ayurvedic Congress consisting of its president, Shri P.V. Iswara Varrier and its Secretary, Shri P. Pappu Vaidyar, made a representation to the Union Health Minister, Shri D.P. Karmarkar, on 7-3-58 for the exemption of the Aswas and Arishtas from the purview of the Medicinal and Toilet Preparation Act 1955 and presented a Memorandum of grievances in this regard.

The Delegation also met all the M.Ps representing Kerala State on 5-3-1958 and acquainted them with their grievances and demands. They all agreed with the view that Aswas and Arishtas be excluded from the purview of the Medicinal and Toilet Preparations Act 1955. The M.Ps were also present at the time of the interview with the Health Minister. The matter was discussed freely for a pretty long time and the Minister took a quite sympathetic view of the situation as explained to him by the delegation. Later on the delegation, on the advice of the Health Minister, contacted the Drug Controller and the Advisor of Ayurveda, Government of India, to discuss the concerned sections of the Act. With appropriate illustrations, they were able to explain to these officers that the Act did not serve the purpose for which it was framed and that on the contrary it was creating untold hardships to the Ayurvedic system of treatment. The Drug Controller was much impressed with the demands and the Minister also promised to do the needful in the matter after the receipt of proper recommendations from the State Government in this behalf.

It is understood that the Kerala Government is taking a favourable attitude in the matter.

हरिनगर सुगर मिल्स क्लब में श्री पं० सीताराम मिश्र का भाषण

हरिनगर सुगर मिल्स क्लब का २२ वां वार्षिक अधिवेशन गत १३ अप्रैल १९५८ को सायंकाल श्री वैद्य सीताराम जी मिश्र, आयुर्वेदाचार्य, मन्त्री निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठ, दिल्ली, की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ।

अध्यक्ष पद से भाषण करते हुए श्री वैद्य जी ने मानव स्वास्थ्य की प्रधानता एवं उसके सम्बन्ध में अपनी सरकार की तत्परता की विवेचना करते हुए, कहा कि प्रत्येक व्यक्ति यदि आयुर्वेद के सिद्धान्तों के अनुसार आहार-विहार करे तो उनके स्वास्थ्य की रक्षा भलीभांति हो जायेगी।

क्लब की उपादेयता पर प्रकाश डालते हुए आपने कहा कि मजदूर भाइयों के लिये ८ घंटे कठिन परिश्रम के बाद मानसिक थकावट दूर करने का एकमात्र स्थान क्लब ही है जहां मनोरंजन के हर साधन उपलब्ध हैं।

इस अवसर पर क्लब के अध्यक्ष श्री आर० वी० पन्त जी ने श्री वैद्य जी तथा आगत महानुभावों का हृदय से आभार प्रदर्शित किया। इस प्रकार बैठक का कार्यक्रम समाप्त किया गया।

साथ ही साथ मनोरंजन के लिए रात्रि को "पाप परिणाम" नामक नाटक के (१३ अप्रैल १९५८) प्रदर्शन की सुव्यवस्था थी और १४ अप्रैल को "जयद्रथ वध" नाटक खेला गया। इसमें भाग लेने वाले पात्रों ने बड़े ही कलात्मक ढंग से इसका प्रदर्शन कर दर्शकों की प्रशंसा प्राप्त की। कुछ प्रमुख पात्रों के अभिनय पर मुग्ध होकर क्लब तथा दर्शकों ने कई रजत एवं स्वर्ण-पदक भी प्रदान किये। दर्शकों की खासी भीड़ थी। इस प्रकार अच्छे समारोह के साथ यह वार्षिकोत्सव सम्पन्न हुआ।

कन्याओं को आयुर्वेद

कन्या गुरुकुल हरिद्वार के स्वस्थ पवित्र वातावरण में हिन्दी संस्कृत तथा वैदिक वाङ्मय की परमोच्च परीक्षाओं की व्यवस्था के साथ अष्टांग आयुर्वेद की आचाय श्रेणी पर्यन्त कन्याओं को शिक्षा दिलाने के निमित्त प्रवेशार्थ नियम विवरण जानने के लिये आवेदन कीजिये।

आचार्या चन्द्रादेवी शास्त्री
कन्या गुरुकुल, हरद्वार, कनखल।

वाराणसी में अभिनन्दन

निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठ के मंत्री आयुर्वेद मार्तण्ड पं० सीताराम मिश्र आयुर्वेद प्रचारार्थ भ्रमण में काशी पहुँचे। आपने वहाँ की विभिन्न संस्थाओं का जिसमें अर्जुन दर्शनानन्द विद्यालय, सन्यासी विद्यालय, अर्जुन विद्यालय, धर्मसंघ महाविद्यालय, हिन्दू विश्वविद्यालय आयुर्वेद विभाग तथा राजस्थान विद्यालय आदि उल्लेखनीय हैं, का निरीक्षण किया। इस अवसर पर आपका विद्यालय तथा काशी की कई संस्थाओं की ओर से स्वागत किया गया और मानपत्र भेंट किये गये।

बड़ागांव में बलदेव आयुर्वेद विद्यालय में आपके स्वागतार्थ एक सभा हुई जिसमें वैद्य श्री बलदेव जी ने आपके कार्यों की सराहना करते हुए अभिनन्दन-पत्र भेंट किया।

वाराणस्येय परिषद् तथा वाराणसी वैद्य पमण्डल की ओर से महामहोपाध्याय श्री गिरधर शर्मा चतुर्वेदी की अध्यक्षता में स्वागत सभा का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। काशी विश्वविद्यालय के प्राध्यापक श्री दामोदर शर्मा गौड़ ने श्री सीताराम मिश्र का परिचय देते हुए विद्यापीठ के कार्यों पर प्रकाश डाला। इस अवसर पर श्री त्र्यम्बक शर्मा, श्री आद्याशंकर त्रिवेदी, आयुर्वेदाचार्य, अध्यापक अर्जुन दर्शनानन्द आयुर्वेद महाविद्यालय, श्री दयाशंकर पाण्डेय, प्राध्यापक काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, श्री रामगोविन्द शुक्ल, प्राध्यापक सन्यासी संस्कृत कालेज, ने भाषणों द्वारा श्री मिश्र जी के कार्यों की प्रशंसा की।

काशी पंडित महापरिषद् की ओर से धर्मसंघ शिक्षा मंडल दुर्गाकुण्ड में विद्यापीठ मन्त्री श्री सीताराम मिश्र का सम्मान किया गया। उपस्थित विद्वानों ने आयुर्वेद के प्रति अपनी शुभकामनायें प्रकट कीं। इस समारोह की अध्यक्षता श्री पं० पूर्णचन्द्र आचार्य ने की। श्री पं० रामानुज ओझा, प्राध्यापक बिरला संस्कृत विद्यालय ने श्री मिश्र जी के सम्मान में अभिनन्दन-पत्र पढ़ा। श्री सीताराम मिश्र ने अपने भाषण में विद्वानों के प्रति कृतज्ञता प्रकट की और उनका पूजन कर अपनी श्रद्धा दिखायी।

राजवैद्य शीतलप्रसाद एण्ड सन्स औषधि सम्बन्धी प्रतिष्ठान चौमुखी का वार्षिक अधिवेशन बड़े धूमधाम से मनाया गया। इस समारोह का उद्घाटन श्री सीताराम मिश्र, मन्त्री नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ ने किया। आपने निर्माण कार्य का निरीक्षण किया और कहा कि शुद्ध औषधियों के निर्माण से ही आयुर्वेद की प्रतिष्ठा बढ़ेगी। प्रतिष्ठान की ओर से श्री मिश्र जी का सम्मान किया गया।

वाराणसी स्थित आयुर्वेदिक मेडिकल कालेज छात्र संघ का वार्षिक उत्सव धूमधाम से मनाया गया। इस उत्सव में श्री सीताराम मिश्र को सम्मान के साथ आमन्त्रित किया गया। प्रो० दामोदर गौड़ ने अतिथि महोदय का परिचय कराया तथा श्री त्र्यम्बक जी शास्त्री ने संस्कृत पद्यों द्वारा श्री मिश्र जी का अभिनन्दन किया। इस अवसर पर श्री मिश्र जी ने पुरस्कार वितरण करने के उपरान्त कहा कि हिन्दू विश्वविद्यालय में आयुर्वेद विभाग की स्थापना स्वर्गीय पं० मदनमोहन मालवीय जी के प्रयत्नों से हुई थी। भारतवर्ष का वैद्य समाज मालवीय जी का ऋणी रहेगा। उन्होंने आयुर्वेद के उत्थान में सक्रिय सहयोग दिया।

अपने भाषण में श्री मिश्र जी ने आयुर्वेद की स्थिति और सरकार के रुख का भली

प्रकार विवेचन करते हुए कहा कि घबराने की आवश्यकता नहीं है अपितु दृढ़ता से काम करने का समय है। भारतवर्ष के समस्त वैद्यों को अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के सूत्र में अपने आपको बांध कर सुदृढ़ संगठन स्थापित करना चाहिए।

समारोह के अध्यक्ष श्री राजेश्वरप्रसाद ने श्री मिश्र जी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा कि यह हमारा सौभाग्य है कि विद्यापीठ के मन्त्री महोदय हमारे बीच विद्यमान हैं। इस अवसर पर मिश्र जी के सम्मान में एक जल-पान का कार्यक्रम भी सम्पन्न हुआ।

श्री दयानन्द महिला आयुर्वेद महाविद्यालय

नये वर्ष का प्रवेश आरम्भ

विद्यालय में नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ के पाठ्यक्रम के अनुसार नियमपूर्वक शिक्षा दी जाती है। प्रवेश के लिए प्रार्थना-पत्र शीघ्र ही भेजें, इस वर्ष लड़कों के लिए भी शिक्षा का प्रवन्ध करने का विचार है पर्याप्त संख्या होने पर प्रारम्भ कर दिया जायगा। इच्छुक शिक्षार्थी शीघ्र प्रार्थना पत्र भेजें।

गत वर्ष का परीक्षण शत प्रतिशत रहा है। नियमावली सवा रुपये में विद्यालय से प्राप्त की जा सकती है—डाक व्यय पृथक्। मिलने का समय: प्रातः ९-३० से १०-३० सायं ४-३० से ५-३०।

श्री दयानन्द महिला आयुर्वेद महाविद्यालय
श्री दयानन्द वाटिका, रामबाग, सब्जीमण्डी,
दिल्ली।

तहसील आयुर्वेद सम्मेलन हाथरस

तहसील आयुर्वेद सम्मेलन हाथरस का वार्षिकोत्सव श्री जगन्नाथ प्रसाद जी आयुर्वेद पंचानन के सभापतित्व में २८

यह तथ्य है

औषधि तभी गुणकारी व प्रभावशाली हो सकती है जब उसमें पड़ने वाला कच्चा द्रव्य असली व उत्तम हो।

प्रामाणिक द्रव्यों के लिए

नेपाली भंडार

२१२, बड़गादी, बम्बई-३

- नेपाली कस्तुरी
- जंगबारी अम्बर
- बसरा मोती
- स्पेन केशर
- सूर्यतापी शिलाजीत
- विशुद्ध गोरोचन

के अतिरिक्त

प्रवाल शाख, प्रवाल मूल, गोदन्ती, बंसलोचन, भीमसेनी कपूर, जहरमोरा खताई, केहरुवा, जुन्द वेदस्तर, हरडें, अकीक, सीप, कौड़ी, शंख, शिंगरफ, वर्की हड़ताल तथा सब प्रकारकी खड़ें (जवाहिरात) आदि।

विशेष विवरण के लिये सूचीपत्र मंगाएँ।

फरवरी १६५८ ई० को मध्याह्नोत्तर ४ बजे इलायची वाली धर्मशाला में सानन्द सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर आयुर्वेद के सम्बन्ध में चर्चा हुई और अपने प्रस्ताव में राष्ट्र की स्वास्थ्य और चिकित्सा की व्यवस्था के लिए सरकार से मांग की गई कि आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा विज्ञान घोषित कर उसके शिक्षण और प्रचार की ऐसी व्यवस्था करे जिससे शीघ्र ही आयुर्वेद के शिक्षित चिकित्सक स्वास्थ्य और चिकित्सा विभाग का संचालन करने में समर्थ हों, यह कार्य केन्द्र और राज्यों में आयुर्वेद के स्वतन्त्र मंत्रालय और डायरेक्टरेट स्थापित करने से सुलभ और सम्भव हो सकेगा।

एक अन्य प्रस्ताव द्वारा मांग की गई कि आयुर्वेद की उन्नति और विकास के लिये प्रत्येक राज्य में जन-संख्या के अनुपात से एक या अधिक सर्वसाधन सम्पन्न आयुर्वेद महाविद्यालय तथा सर्वोच्च शिक्षा के लिये आयुर्वेद विश्वविद्यालय की स्थापना की जाय।

अन्य प्रस्ताव

१. सम्मेलन यह भी आवश्यक समझता है कि प्रत्येक राज्य में आयुर्वेद पुस्तकालय, प्रयोगशाला सहित अनुसंधानशाला, सेनेटोरियम, स्त्री, पुरुष, बच्चों के आतुरालय खोलने की व्यवस्था की जाय।

२. आयुर्वेद के विशाल स्वरूप निर्देशन लिए आवश्यक है कि चिकित्सा के अष्टांगों सहित स्वास्थ्य विज्ञान, शरीर विज्ञान, द्रव्य गुण विज्ञान रस तन्त्र विज्ञानादि अंगों को मिलाकर षोडशांग आयुर्वेद की घोषणा जाय जिससे आयुर्वेद के समस्त विज्ञान स्वास्थ्य तथा चिकित्सा के अंगों का बोध ना के साथ ही हो सके।

३. मद्य निषेध कानून के अन्तर्गत सरका द्वारा उपस्थित बाधाओं को शीघ्र हटाया जा क्योंकि आसवारिष्ट शुद्ध औषधि हैं, जिन किसी भी प्रकार की हानि नहीं होती, न म के समान नशा ही होता है।

४. केन्द्रीय सरकार के ड्रग्स ऐक्ट से आयुर्वेदिक असंख्य द्रव्यों की प्राप्ति और व्य हार में बाधा उपस्थित हो रही है जिन व्यवहार सनातन काल से होता चला आ है। अतः सरकार से प्रार्थना है कि ड्रग्स का संशोधन कर ऐसी बाधाओं को दूर करे

५. दवे कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार रा सरकारों ने आयुर्वेद कालेजों की प्रवेश योग्य इन्टर साइन्स रखी है, परन्तु आयुर्वेद अध्ययन संस्कृत की योग्यता के बिना असम्भ है। अतः यह सभा सरकार से अनुरोध कर है कि प्रवेश योग्यता प्रधानतः संस्कृत मध्य एवं साधारण अंग्रेजी और विज्ञान के सा

मलेरिया शत्रु सिर्फ एक मात्रा में ही मलेरिया नष्ट करने में ब्रह्मास्त्र है। आधा पौंड ६) रुपया।

सफेद कोढ़ की पेटेन्ट दवा ५) रुपया।
दोनों दवाओं पर वैद्य डाक्टर हकीम धन मान कमा रहे हैं।

विवरण पत्र मुफ्त मंगाइये।

वैद्य बी० आर० बोरकर आयुर्वेद भवन, (आ) मु. पो. मंगरूलपीर जि. अकोला (विदर्भ)

जाय, ऐसा होने से आयुर्वेदिक कालेजों से आयुर्वेदज्ञ विद्वान निकल सकेंगे।

आगामी वर्ष के लिए निम्नलिखित पदाधिकारी चुने गये।

सभापति—श्री पं० हीरालाल दीक्षित आयुर्वेद शास्त्री, उपसभापति—(१) श्री पं० ...नलाचार्य एवं (२) श्री शिवदत्त, प्रधान मन्त्री—पं० राधा वल्लभ वैद्य शास्त्री, उपमन्त्री—श्री वैद्य ओम प्रकाश, कोषाध्यक्ष—श्री वैद्य शिवदत्त, पुस्तकाध्यक्ष—श्री वैद्य ...दयाल, आय-व्यय निरीक्षक—श्री योगेन्द्र ...नारायण वैद्य, प्रचार मन्त्री—श्री वैद्य नेत्र...न, संगठन मन्त्री—श्री वैद्य रामजीलाल।

पिलानी में आयुर्वेद शिक्षण की मनोवैज्ञानिक व्यवस्था

पिलानी में राजस्थान सरकार के पाठ्य...क्रम और नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ के पाठ्यक्रम के अनुसार आयुर्वेद शिक्षण की व्यवस्था मनोवैज्ञानिक ढंग से की गई है। इस व्यवस्था में छात्र को रटने की आवश्यकता नहीं रहती। हजारों चार्ट, मौडल्स, यन्त्र, ...न के द्वारा नवीन विषयों की जानकारी ...ने आसानी से हो जाती है। यही कारण है कि पिछले वर्षों में अनेक बार हमारे यहाँ का परीक्षा-फल शतप्रतिशत रहा है। फिर भी कोई परीक्षार्थी तृतीय श्रेणी में उत्तीर्ण नहीं हुआ है। आयुर्वेदीय छात्रों को वनौषधि-परिचय अनिवार्य है। इस वर्ष लोहागर, हरिद्वार, ...केश, और देहरादून की वनस्पति यात्राएं छात्रों ने कीं। अगले वर्ष राँची (बिहार) ...में वनौषधि-परिचय की व्यवस्था की ...है। औषधि निर्माण शास्त्र में कूपीपक्व ...नों तक को सिखाने की व्यवस्था है। ...की औषधियाँ बनाते हैं, उनका दैनिक

नेत्रों की अनेक व्याधियों और नेत्रों को सुरक्षित रखने के लिये

श्री हरि
जीवदया
नेत्रप्रभा
रजिस्टर्ड

अत्यंत लाभदायक है

नेत्रप्रभा—नेत्रकण्डु, कुकरे, धुन्ध, जाला, फूली, नेत्रस्राव, लाली रतोंधी, नेत्रों का दुखना, कम दिखाई देना, आदि के लिए अनुपम है।

जीवदया नेत्रप्रभा—अधिक परिश्रम, वेल्डिंग, गाड़ी चलाना, धुआँ, सिनेमा, लिखना-पढ़ना, धूप, टाइफाइड, सूर्यावर्त और जागरण के कारण होने वाले सिर दर्द और आँखों के दर्द में लाभदायक है। सोते समय अंजन करने से बढ़िया नींद आती है। दिमाग स्फूर्ति पाता है।

नेत्रप्रभा—की बड़े-बड़े वैद्य डाक्टर, विख्यात संस्थाओं, संत महात्माओं तथा समाचार पत्रों ने प्रशंसा की है। जैसे:—श्री बंबई आयुर्वेद चिकित्सक मंडल, सूरत वैद्य सभा, श्री राजकुमार सिंह आयुर्वेद कालेज इन्दौर। राजकोट के ग्रामों में आयुर्वेदिक बक्स में इसे स्थान प्राप्त हुआ है।

Jivadaya
Netraprabha

नेत्रप्रभा—नित्य व्यवहार से कोई हानि नहीं होगी—बालक तथा वयस्क दोनों ही दिन में एक से तीन बार दर्द के अनुसार इसे लगा सकते हैं। अधिक विवरणके लिये लिखिये—

जीवदया नेत्रप्रभा कार्यालय
(निर्माताः—आर. एम. शाह)
जूनी विक्टोरिया मिल्स कम्पाउण्ड,
ग्रामदेवी रोड, बंबई ७

विवरण रखना आवश्यक है। औषधियों का विवरण एवं मात्रा आदि का ज्ञान भी कराया जाता है। इसके साथ ही आयुर्वेदीय अनुसंधान का कार्य भी चालू है। वैदिक कालीन आयुर्वेद पर जो विचार यहां किया है, उसका अखिल भारतीय महत्व है।

इस प्रकार प्राचीन आयुर्वेदीय प्रणाली की छाप डालने के साथ ही छात्रों को नव्य विज्ञान से भी परिचित रखने की व्यवस्था है। विज्ञान की प्रारम्भिक शिक्षा के साथ ही मल, मूत्र, रक्त आदि की नवीन प्रणाली से परीक्षा भी सिखाई जाती है। आयुर्वेद साहित्य समिति और उसकी पत्रिका के द्वारा छात्रों में लेखन कला को प्रोत्साहन दिया जाता है। आयुर्वेद सम्भाषा परिषद् छात्रों में वक्तृत्व कला का विकास करती है। छात्रों के लिए आवश्यकतानुसार हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी और संगीत की भी व्यवस्था है। इस प्रकार यहाँ भार संस्कृति के पोषक और सद्गुणसम्पन्न तैयार करने की पूरी चेष्टा की जाती है।

कुछ सुयोग्य छात्रों को भोजन आदि पूरा खर्च और कुछ को छात्रवृत्ति दी जा है। इस वर्ष कई नई छात्रवृत्तियाँ भी दी रहीं हैं। शेष के लिए नल, बिजली, निवास और अध्ययन व्यवस्था निःशुल्क है।

——

आयुर्वेद महासम्मेलन
पत्रिका में विज्ञापन
देकर लाभ उठाइये

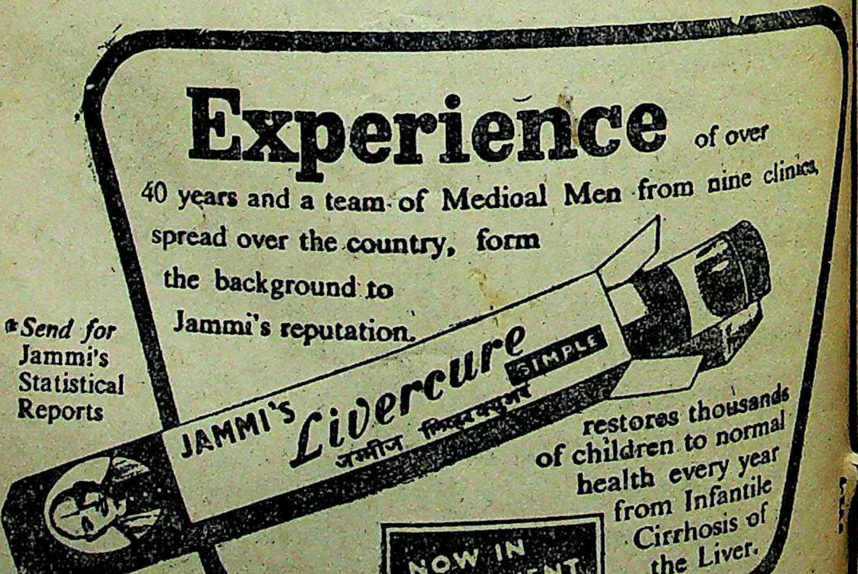

Experience of over 40 years and a team of Medical Men from nine clinics spread over the country, form the background to Jammi's reputation.

*Send for Jammi's Statistical Reports

JAMMI'S Livercure SIMPLE
जम्मीज लिवरक्युअर

restores thousands of children to normal health every year from Infantile Cirrhosis of the Liver.

NOW IN CONVENIENT TABLET FORM

JAMMI VENKATARAMANAYYA & SONS. 'Jammi Building', Mylapore, Madras

दो हजार से भी अधिक शास्त्रोक्त एवं पेटेएट औषधियाँ बनाने वाली उत्तरीय भारत की ८८ वर्ष की प्राचीन रसायनशाला

राजवैद्य शीतल प्रसाद एराड सन्स

देहली : नागपुर : कानपुर : इन्दौर

राजवैद्य रसायनशाला में आयुर्वेद के गहरे अनुभवी वैद्यों एवं औषधि निर्माणकला के विशेषज्ञ कैमिस्टों की देखरेख में आयुर्वेद शास्त्रों के मूलभूत सिद्धान्तोंके अनुसार औषधियां तैयार की जाती हैं।

केन्द्रीय और राजकीय मन्त्रियों, संसद सभासदों, डायरेक्टर आफ आयुर्वेद, अतुल डाक्टरों, वैद्यों एवं आयुर्वेदिक सम्मेलनों द्वारा हमारी औषधियों की प्रशंसा की गई है। विभिन्न प्रदशनियों एवं विज्ञान परिषदों ने प्रशंसा पत्र दिए, स्वर्णपदक और रौप्यपदक भेंट किए और कहा है कि "वास्तव में राजवैद्य रसायनशाला की औषधियां बहुत गुणकारी होती हैं" इसके अतिरिक्त राज्य सरकारों, उपराजकीय संस्थाओं, म्युनिसिपल कमेटियों व जनपद सभाओं के दवाखानों में हमारी दवाएं बड़ी तादाद में प्रयोग की जाती हैं। शहरों व कस्बों में १०,००० से अधिक हमारे औषधि विक्रेता हैं।

हमारी दवाएँ न सिर्फ हिन्दुस्तान व पाकिस्तान में ही बल्कि, नेपाल, बर्मा, सीलोन, दक्षिण अफ्रीका, पर्शियनगल्फ, अदन, फिजीआईलैण्ड आदि में भी इस्तेमाल की जाती हैं।

वैद्यों एवं औषधि विक्रेताओं से

हम अपनी रसायनशाला द्वारा निर्मित आयुर्वेदिक एवं पेटन्ट औषधियों की बिक्री के लिए, मुख्य-मुख्य स्थानों पर बिक्री केन्द्र खोल रहे हैं।

फरनीचर, दुकान किराया, वैद्य का वेतन आदि समस्त सुविधायें दी जायेंगी। जो वैद्य बन्धु अथवा औषध-विक्रेता हमें सहयोग देना चाहते हैं, वह अपना पूरा परिचय देते हुए हम से पत्र व्यवहार करें। बिक्री केन्द्र के लिए सहायक वैद्यों की आवश्यकता है। आवेदन पत्र भेजें—

राजवैद्य शीतलप्रसाद एराड सन्स
चांदनी चौक, दिल्ली

Editor-in-Chief—Swami Chetnanand.
अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के लिए कविराज स्वामी चेतनानन्द द्वारा प्रकाशित
मुद्रक—नया हिन्दुस्तान प्रेस, दिल्ली

खोज का आश्चर्यजनक
परिणाम

खोज का क्रम आज नया नहीं-किन्तु युग युगा
चला आ रहा है। खोजके ऊपर किसी कवि के ये
शब्दोंमें लिखे हुए हैं कि :- "जिन खोजा तिन पा
पानी पैट" त्रेतायुग में जब रावण के लड़के मे
शक्तिबाण से श्री लक्ष्मणजी मूर्छित पड़े हुए थे और
चन्द्र जी की व्याकुलता का अन्त नहीं था, उस समय
णजी में पुनः जीवन लानेके लिये हनुमान जी को म
बूटी की खोज में जाना पड़ा था। हनुमान जी अपनी खोज में सफल हुए। परिणाम
लङ्का के युद्धमें श्रीराम लक्ष्मण की विजय हुई।

आज का यह वैज्ञानिक युग भी मानवता और रोगों
महायुद्ध में, रोग द्वारा त्रस्त मानव को मुक्त करने के लिये नयी नयी खोजमें लगा
है और अपनी खोज में सफल हो नये अन्वेषणों द्वारा मानवजाति की रक्षा में सफल होता जा रहा है।

डाबर कार्यालय भी गत ७२ वर्षों से सऔषध सेवारत हो लगातार खोजों द्वारा आयुर्वेदिक, पेटेण्ट दवाओं के निर्माण क्षेत्र में दूसरों का पथ प्रदर्शक बनता जा रहा है। डाबर कार्यालय की बनी हुई आयुर्वेदिक तथा पेटेण्ट दवाएं इत्यादि आज जिस प्रकार लोकप्रिय बनी हुई हैं उसका एक मात्र कारण है-- डाबर कार्यालयका निरन्तर खोजका परिणाम। साथ ही स्वच्छता और सर्वाङ्ग पूर्णता से औषध निर्माण की किया !! इसी खोज के परिणाम स्वरूप डाबर कार्यालय आज भारतीय जनता के म
औषध निर्माण करने वाला एक श्रेष्ठ कार्यालय बना हुआ है।

डाबर (डा·एस·के·बर्म्मन) लि॰ कलकत्ता-२९

अपूर्व गुणकारी आयुर्वेदिक तथा पेटेन्ट दवाओं के निर्मात

आयुर्वेद

महासम्मेलन पत्रिका

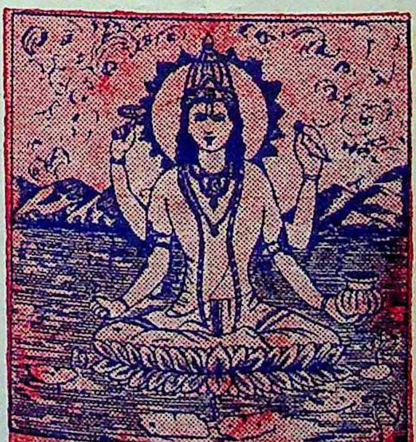

आषाढ़
२०१५

प्रधान सम्पादक—कविराज स्वामी चेतनानन्द चिदाकाशी
उप सम्पादक—कविराज हरिकृष्ण सहगल
संस्कृत विभाग सम्पादक—कविराज नेत्रपाल शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य

विषय-सूची

विषय	लेखक	पृष्ठ संख्या
सम्पादकीय	—श्री चेतनानन्द चिदाकाशी	३४५
एशिया में आयुर्वेद	—श्री हरिकृष्ण सहगल	
आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम	—श्री भा० वि० गोखले	३५३
पथ्यापथ्य-विमर्श	—श्री सोमदेव शर्मा	३६२
पञ्चविधकषायकल्पनम्	—वागीश्वर शुक्ल	३६७
वेदों में आयुर्वेद का वर्णन	—श्री वेदपति शास्त्री	३७४
आयुर्वेद-लोक		३८३
विद्यापीठ केन्द्रीय प्रवन्धक समिति के अधिवेशन का कार्य-विवरण		३९३
परीक्षा फल शुद्धि-पत्र		३९५

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन, कलकत्ता स्थायी समिति सम्बन्धी सूचना

निवेदन है कि अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन की स्थायी समिति का जो अधिवेशन आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका के जून मासीय अंक के पृष्ठ ३४१-३४२ पर प्रकाशित एजण्डा के अनुसार २ जुलाई १९५८, को कलकत्ता में होना निश्चित हुआ था, वह अधिवेशन आवश्यक उपस्थिति (कोरम) के अभाव में सम्पन्न नहीं हो सका। अतः महासम्मेलन विधान की धारा १४-ङ के अनुसार अब यह स्थगित अधिवेशन श्री यामिनि भूषण अष्टाँग आयुर्वेद महाविद्यालय, १७०, राज दिनेन्द्र स्ट्रीट, कलकत्ता-४ में ही दिनांक १७ जुलाई १९५८ को अपरान्ह में २ बजे से किया जाना निश्चित हुआ है।

स्थायी समिति के अधिवेशन का सम्पूर्ण कार्य विवरण तथा तत्सम्बन्धी अन्य सूचनायें आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका के आगामी अंक में प्रकाशित होंगे।

वामनराव दी० वैद्य
प्रधानमन्त्री
अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन

Editor-in-Chief—Swami Chetnanand.
अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के लिए कविराज स्वामी चेतनानन्द द्वारा प्रकाशित
मुद्रक—नया हिन्दुस्तान प्रेस, दिल्ली

॥ धन्वन्तरयेनमः ॥

यत्प्रभापटलोद्भासि भाषतेऽद्यापि भारतम् ।
आयुर्वेदात्मकं ज्योतिः शाश्वतं नः प्रकाशताम् ॥

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

(अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का मासिक मुख-पत्र)

प्रधान सम्पादक—कविराज स्वामी चेतनानन्द चिदाकाशी ।
उप-सम्पादक—कविराज हरिकृष्ण सहगल ।
सम्पादक संस्कृत विभाग—वैद्य श्री नेत्रपाल शर्मा शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य ।
पत्रिका कार्यालय—महालक्ष्मी मार्केट, चाँदनी चौक, दिल्ली ।
ार का पता—"आयुर्वेद" दिल्ली टेलीफोन : २८९०२

र्ष ४५
अंक ७
दिल्ली, श्रावण २०१५, जुलाई १९५८
वार्षिक ५)
एकप्रति ॥)

सम्पादकीय

आयुर्वेद का उज्ज्वल भविष्य

चिरकाल से आयुर्वेदीय शिक्षा के पाठ्यक्रम का विषय वैद्य समाज एवं सरकार के लिए एक जटिल समस्या का रूप धारण किए हुए है। विभिन्न प्रदेशों में इसके समाधान के लिए समय-समय पर विभिन्न प्रयत्न किए गये हैं जिसके परिणाम स्वरूप प्रत्येक राज्य में भिन्न-भिन्न प्रकार के आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम प्रचलित हुए जो प्रायः सभी एलोपैथी-प्रधान हैं। आयुर्वेद और एलोपैथी के मिश्रण से बनाये गये इन पाठ्यक्रमों का उद्देश्य एलोपैथी और आयुर्वेद का समन्वय कर ऐसी नवीन चिकित्सा पद्धति को जन्म देना था जिसका आधार आधुनिक चिकित्सा पद्धति अर्थात् एलोपैथी हो और आयुर्वेद का नाम शनैः शनैः समाप्त हो जाय। इन मिश्रित पाठ्यक्रमों के निर्माण में अधिकांश हाथ एलोपैथिक डाक्टरों या एलोपैथी के भक्तों का था जिनका ज्ञान आयुर्वेद में बहुत अल्प था अथवा जो उससे घृणा करते थे तथा उसकी समाप्ति के लिए प्रयत्नशील थे।

उपर्युक्त मिश्र शिक्षा-प्रणाली का उद्दिष्ट परिणाम जो होना था वही हुआ। इस पद्धति से शिक्षित व्यक्ति वैद्य नहीं बने, वैद्य के स्थान पर वह डाक्टर लिखना अधिक पसन्द करने लगे और चिकित्सा भी अधिकांश एलोपैथिक करने लगे। आयुर्वेद पर उनकी श्रद्धा न रही और वे एलोपैथी के भक्त बन गये।

आयुर्वेद के इतिहास में यह एक ऐसी दुर्घटना थी कि जिसने इसके अस्तित्व को ही खतरे में डाल दिया। इसकी विभीषिका को आयुर्वेद प्रेमियों ने तब समझा जबकि महासम्मेलन के भूतपूर्व अध्यक्ष वैद्यरत्न श्री पं० शिवशर्मा जी ने महासम्मेलन के मंच से प्रभावशाली वक्तृता तथा स्वतन्त्र लेखों द्वारा इसके विरुद्ध आवाज उठाई और आन्दोलन का सूत्रपात किया। महासम्मेलन के इस आन्दोलन एवं पं० शिवशर्मा जी के व्यक्तिगत प्रयत्नों के फलस्वरूप सर्वप्रथम बम्बई राज्य के तत्कालीन मुख्यमन्त्री स्वनामधन्य श्री मुरार जी देसाई एवं स्वास्थ्य मन्त्री श्री शान्तीलाल शाह ने आयुर्वेद के प्रति किये जा रहे इस अन्याय को समझा और इसके प्रतिकार के लिए राज्य में एक नवीन आयुर्वेदिक पाठ्यक्रम का श्रीगणेश किया। क्योंकि राज्य में एक मिश्र शिक्षा का पाठ्यक्रम पहिले ही प्रचलित था अतः उसने इस नवीन पाठ्यक्रम का पृथक् बोध कराने के उद्देश्य से इसे "शुद्ध आयुर्वेदिक पाठ्यक्रम" की संज्ञा दी गई। इस शुद्ध आयुर्वेदिक पाठ्यक्रम से तात्पर्य श्री मुरार जी देसाई के शब्दों में एक ऐसे पाठ्यक्रम से था "जो कि केवल आयुर्वेद पर श्रद्धा रखने वाले व्यक्तियों द्वारा आयुर्वेदीय ढंग से ही पढ़ाया जाय न कि किसी ऐसे ढंग से जो कि उस पर ऊपर से लादा गया हो।"

मिश्रित पाठ्यक्रम की शिक्षा के सम्वन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए श्री मुरार जी देसाई ने कहा था कि "इन कालेजों से निकले हुए स्नातक यदि एलोपैथिक चिकित्सा और निदान को अपनाएं तो जिस शिक्षा ने उन्हें जन्म दिया है उसे आयुर्वेदिक शिक्षा किस प्रकार कहा जा सकता है ?" (उद्घाटन भाषण, त्रिवेन्द्रम् अधिवेशन)

अतः वास्तविक आयुर्वेदिक शिक्षा देने के उद्देश्य से उन्होंने शुद्ध आयुर्वेदिक पाठ्यक्रम का सूत्रपात किया जो अब सफलतापूर्वक चल रहा है और जिसके स्नातक आयुर्वेद के विद्वान् होकर उसकी गौरव वृद्धि कर रहे हैं।

प्रसन्नता का विषय है कि मिश्र शिक्षा प्रणाली के दुर्गुणों की ओर अब उत्तर प्रदेश के मुख्य मन्त्री माननीय श्री डा० सम्पूर्णानन्द जी का ध्यान भी गया है और आयुर्वेदिक शिक्षा के पुनरुद्धार के लिए गत २४ मई को उन्होंने एक उच्चस्तरीय आयुर्वेदिक शिक्षा समिति का निर्माण किया है। इस समिति के अध्यक्ष स्वयं मुख्यमन्त्री डा० सम्पूर्णानन्द तथा सदस्य ठा० हुकुमसिंह, स्वास्थ्यमन्त्री उ० प्र०, आचार्य डी० ए० कुलकर्णी, उपसंचालक (आयुर्वेद) उ० प्र०, डा० पी० डी० श्रीवास्तव एडीशनल डाइरेक्टर मैडिकल एण्ड हैल्थ, उ० प्र०, डा० वी० मुकर्जी, डायरेक्टर केन्द्रीय अनुसंधानशाला, लखनऊ, वैद्य दरबारीलाल शर्मा, प्रेसीडेंट आयुर्वेदिक एण्ड यूनानी चिकित्सा बोर्ड, उ० प्र०, आयुर्वेद शास्त्राचार्य पं० राजेश्वरदत्त जी शास्त्री, प्रिन्सीपल आयुर्वेदिक कालेज हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, वैद्यरत्न आयुर्वेदाचार्य हरिहरदत्त जोशी, प्रिन्सीपल ऋषिकुल आयुर्वेदिक कालेज, हरिद्वार,

श्री पं० शिवशर्मा, चेयरमैन आयुर्वेदिक एण्ड यूनानी चिकित्सा बोर्ड, बम्बई, तथा श्री के० सुब्रमण्यम् ऐय्यर, वाइस चांसलर लखनऊ विश्वविद्यालय, हैं।

उक्त समिति के निर्माण से पूर्व ता० २४-४-५८ को उत्तरप्रदेशीय बोर्ड का उद्घाटन करते हुए डाक्टर महोदय ने आयुर्वेद के सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किये हैं वह अत्यन्त सराहनीय हैं और आयुर्वेद के प्रति उनकी वास्तविक श्रद्धा और विश्वास के द्योतक हैं। आपने कहा है कि "मैं उन व्यक्तियों में हूँ जो आयुर्वेद को वैज्ञानिक मानते हैं परन्तु इसकी वैज्ञानिकता कुछ काल से छिपी हुई है—अभी हाल में लखनऊ आयुर्वेद कालेज के हड़ताली लड़कों की ओर से एक विज्ञप्ति निकली थी जिसमें लिखा था कि हम लोगों ने जो विज्ञान पढ़ा है उसके सामने आयुर्वेद के सिद्धान्त थोथे और अवैज्ञानिक प्रतीत होते हैं। यह लड़के बेचारे क्या जानें। अच्छे-अच्छे विज्ञानवेत्ताओं को आयुर्वेद में निहित वैज्ञानिक सिद्धान्तों के सामने सिर झुकाना होगा पर यह सिद्धान्त कहीं प्रतिपादित होकर लोगों के सामने आयें तो। जबतक वैद्य अपने शास्त्र के सिद्धान्तों को स्वयं नहीं समझता और उन सिद्धान्तों को विज्ञान-सुगम भाषा में जनता के सामने नहीं रखता तब तक आयुर्वेद की जड़ कटाता जायगा।

आपने आयुर्वेदिक कालेजों के शिक्षाक्रम में मार्डन मेडिसिन नाम की कोई चीज रखना भारी भूल बताया और कहा कि उससे एक ओर तो छात्रों में आयुर्वेद के प्रति अश्रद्धा बढ़ती है दूसरी ओर सस्ते डाक्टर बनने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिलता है। शरीर विज्ञान किसी एक शैली की सम्पत्ति नहीं है। छात्रों को एनाटामी और फिजियालाजी जरूर पढ़ाना चाहिये—आधुनिक साइकोलोजी की शिक्षा देनी चाहिये परन्तु एलोपैथी पढ़ाना सर्वथा गलत है। जिसको वैद्यक पढ़नी हो वह आँख खोलकर आये। शल्य चिकित्सा का एलोपैथी से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। वह आयुर्वेद का अंग है और उसकी शिक्षा देनी चाहिये।

आपने कहा कि आयुर्वेद पढ़ने वालों में डाक्टर कहलाने की प्रवृत्ति को दृढ़ता के साथ रोकना होगा—यदि आयुर्वेद की उन्नति होनी है तो अच्छे वैद्य चाहियें—ऐसे वैद्य जिनकी आयुर्वेद पर निष्ठा हो और जो वैद्य कहलाने को गौरव की बात समझते हों। डाक्टर साहब ने आशा व्यक्त की अनतिदूर भविष्य में हमारे प्रदेश (उत्तर प्रदेश) में वैद्यक, की शिक्षा फिर अपनी पुरानी मर्यादा तक पहुँच जायगी।"

अपने उपर्युक्त भाषण में व्यक्त किये गए विश्वास को क्रियान्वित करने के उद्देश्य से मुख्य मन्त्री ने पूर्व परम्परा को तोड़कर अपनी अध्यक्षता में उक्त उच्चस्तरीय आयुर्वेद शिक्षा समिति का निर्माण किया है। इस समिति की बैठक २४ जून से २८ जूनतक नैनीताल में सम्पन्न हुई। इस समितिके सदस्योंके समक्ष अपने विचार व्यक्त करते हुए सम्पूर्णानन्द जी ने कहा कि आयुर्वेद को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करना प्रत्येक वैद्य का कर्त्तव्य है। यदि ऐसा उपाय नहीं किया गया कि जिससे आयुर्वेद की प्रतिष्ठा बढ़ सके तो आयुर्वेद विज्ञान नष्ट हो जायेगा और वैद्यों की वर्तमान पीढ़ी जिसने वर्षों के कठिन परिश्रम और कष्टों में सह कर यह विद्या प्राप्त की है और उसकी रक्षा की है समाप्त हो जावेगी। अन्त में ऐसे ही शेष रह जावेंगे जो नाम मात्र के वैद्य होंगे। आपने उन लोगों का उपहास किया जो यह कहते हैं कि आयुर्वेद चिकित्सा सस्ती है। आपने कहा कि सस्तापन होना उसकी कोई प्रशंसा

नहीं है वल्कि आयुर्वेद का इसलिये विकास और अध्ययन आवश्यक है कि उससे देश और मानव का वास्तविक कल्याण होता है। अन्तिम दिन की वैठक में मुख्य मन्त्री से कहा कि आयुर्वेदिक संस्थाओं में अध्यापकों की भर्ती तथा वैद्यों के रजिस्ट्रेशन के बारे में वर्तमान नियमों में सरकार निकट भविष्य में ही परिवर्तन करेगी। आपने कहा कि इन नियमों में इस प्रकार का संशोधन किया जाना चाहिये कि उन सभी लोगों को आमन्त्रित किया जा सके जो आयुर्वेद का वास्तविक ज्ञान रखते हों और उसकी शिक्षा के लिये सर्वथा योग्य हों।

मुख्य मन्त्री के उपर्युक्त विचारों से स्पष्ट है कि उन्होंने आयुर्वेद की वर्तमान अवस्था का बहुत निकट से अध्ययन किया है और उसपर गम्भीरतापूर्वक विचार किया है। हमें पूर्ण विश्वास है कि उनकी अध्यक्षता में यह समिति राज्य में आयुर्वेद की स्थिति में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर सकेगी और जैसा कि मुख्य मन्त्री ने आशा व्यक्त की है प्रदेश में आयुर्वेद अपने पूर्व गौरव को प्राप्त करके रहेगा।

अपने ५ दिन के विचार-विमर्श के पश्चात् समिति जिस निश्चय पर पहुँची है वह अत्यन्त ही महत्वपूर्ण हैं। समिति ने निर्णय किया है कि आयुर्वेद एलोपैथी की संयुक्त शिक्षा प्रणाली समाप्त कर दी जावे। आधुनिक विज्ञान के जिन विषयों की शिक्षा दी जावे वह आयुर्वेद के विषयों में आत्मसात् करके दी जावे। पांच वर्ष के शिक्षाकाल में छात्रों को शल्य चिकित्सा और शलाका, दोनों की, जो क्रमशः चरक और सुश्रुत द्वारा प्रतिपादित हैं, क्रियात्मक और वैज्ञानिक शिक्षा दी जाय, इन कालेजों में शिक्षा प्राप्त करने वाले सफल छात्रों को 'आयुर्वेदाचार्य' की उपाधि दी जाय चाहे वे किसी भी कालेज के हों।

प्रवेश योग्यता के सम्बन्ध में समिति ने सिफारिश की है कि सिर्फ वही छात्र आयुर्वेदिक कालेजों में लिये जायें, जिन्होंने पूर्ण मध्यमा परीक्षा पास कर ली हो और जिन्हें अंग्रेजी क़ा काम चलाने लायक ज्ञान हो या वे जिन्होंने संस्कृत विषय सहित इन्टरमीडियेट परीक्षा पास की हो।

मुख्य मन्त्री ने समिति की उपरोक्त सिफारिशों को कार्यान्वित करने का आश्वासन दिया है। समिति अपनी रिपोर्ट १५ जुलाई को सरकार के विचारार्थ प्रस्तुत करेगी।

मुख्य मन्त्री माननीय श्री सम्पूर्णानन्द जी, जो एक उच्च कोटि के विद्वान, शास्त्रज्ञ एवं दार्शनिक है तथा प्राचीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति के पोषक हैं, की कृपादृष्टि जब आयुर्वेद पर पड़ी है तब उसका उद्धार निश्चित ही है। मुख्य मन्त्री महोदय के इस सराहनीय कार्य के लिये वैद्यसमाज की ओर से हम उनका आभार व्यक्त करते हैं—आयुर्वेद के विकास में उनका चिर वांच्छित सहयोग प्राप्त कर वैद्यसमाज कृतकृत्य हो गया है।

हम तो मिश्रित शिक्षा प्रणाली के सदा ही विरोधी रहे हैं. और अपने लेखों में यह मांग करते रहे हैं कि इस शिक्षा पद्धति को समाप्त कर आयुर्वेदिक शिक्षा एवं अन्य विकास कार्यों पर विचार करने के लिए आयुर्वेद-विद्वानों की समिति नियुक्त की जावे। अब जब कि राज्य के मुख्य मंत्री जैसे अधिकार-सम्पन्न व्यक्ति ने इसको भारतीय जलवायु के अनुकूल एवं जनस्वास्थ्य-रक्षण में समर्थ कह कर उसको वास्तविक स्वरूप में लाने की घोषणा

हीं है तो इसकी उपेक्षा करने का साहस करना आयुर्वेद विरोधियों के लिए सम्भव नहीं होगा। अभी तक अधिकारी वर्ग आयुर्वेद के प्रति उदासीन रहा है अतः आयुर्वेद विरोधी इसे अवैज्ञानिक और अनुपयुक्त कह कर तिरस्कृत करते रहे हैं।

कुछ समय पूर्व यही अवस्था भूतपूर्व हैदराबाद राज्य में भी विद्यमान थी। वहाँ आयुर्वेद के विकासार्थ उन दिनों मैं स्वयं स्वास्थ्य विभाग के डायरेक्टर तथा अन्य अधिकारियों से मिला था और आयुर्वेद का पृथक डायरेक्टोरेट स्थापित करने के विषय पर बात-चीत की थी। डायरेक्टर महोदय ने, डाक्टर होने के कारण, इसका कई प्रकार से विरोध किया परन्तु जब हम श्री रामानुज स्वामी, प्रधान हैदराबाद राज्य आयुर्वेद सम्मेलन के साथ तत्कालीन स्वास्थ्य मंत्री महोदय से मिले तो उन्होंने हमें विश्वास दिलाया और अधिकार उसके लिए प्रयत्न किया जिसके परिणाम स्वरूप अब वहाँ आयुर्वेद का पृथक् डायरेक्टोरेट स्थापित होकर आयुर्वेद सवेग उन्नति के मार्ग पर अग्रसर है। हैदराबाद में लगभग १०० शैयाओं से युक्त सर्वसाधन-सम्पन्न आयुर्वेदीय आतुरालय तथा एक महाविद्यालय भी चल रहे हैं जिनको देखकर कोई भी व्यक्ति सराहना किये बिना न रहेगा। अन्य राज्यों के मुख्य मंत्री भी यदि इसी प्रकार आयुर्वेदोद्धार का निश्चय कर लें और उसके लिए अधिकार प्रयत्न करें तो निस्सन्देह अदूर भविष्य में ही आयुर्वेद अपने लुप्त गौरव को पुनः प्राप्त करने में सफल हो सकेगा।

—स्वामी चेतनानन्द चिदाकाशी

एशिया में आयुर्वेद

संसार इस समय दो विचार-धाराओं में विभक्त है, एक पूंजीवाद और दूसरी साम्यवाद। अमेरिका और ब्रिटेन आदि पाश्चात्य देश पूंजीवाद के समर्थक हैं और रूस, चीन आदि देश साम्यवाद के उपासक हैं।

भारत किसी भी ब्लाक में नहीं, वह तटस्थ है। परन्तु यह देश हज़ारों वर्षों से साम्यवाद के निकट रहा है। हिन्दुओं के ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम इसके प्रमाण हैं। पूंजीवाद का इनमें कहां समावेश है ?

भारत कृषि-प्रधान देश रहा है। यद्यपि भारत में बिरला, टाटा, सिंहानिया जैसे उद्योगपति भी हैं परन्तु यह देश किसानों और मजदूरों का देश है। भारत साम्यवाद के अधिक निकट है और रूस के भी यह अधिक निकट है और आयुर्वेदिक दृष्टिकोण से रूस आयुर्वेदिक साम्राज्य का एक अंग है। आयुर्वेद केवल भारत की ही चिकित्सा प्रणाली नहीं, यह एशियां की, जिसमें पाकिस्तान, अफ़गानिस्तान, रूस, तिब्बत, चीन, ब्रह्मा, मलाया, स्याम आदि देश सम्मिलित हैं, चिकित्सा प्रणाली है।

आज से २००० वर्ष पूर्व तक एशिया में एक शक्तिशाली कुशान राज्य रहा है, यह उत्तर भारत में गंगा तट से लेकर, मध्य एशिया में रूस की रियासतों और आपु नदी तक फैला हुआ था। इस राज्य में ताजक, अज़बेक और भारतीय थे।

यह काल आयुर्वेद का स्वर्ण युग था। आयुर्वेद अपने आठो अंगों सहित उन्नति के शिखर पर था। मि० ए० आर० ह्यार्नोल के कथनानुसार सुश्रुत और कश्यप संहितायें मसीह से ६०० वर्ष पूर्व लिखी गई थीं। चरक आज से ३००० वर्ष पूर्व लिखा गया था।

प्राचीन काल में भारत को तक्षशिला, वाराणसी और नालन्दा यूनिवर्सिटियां एशिया की यूनिवर्सिटियां थीं। एशिया के सभी देशों से छात्र प्रत्येक प्रकार की विद्या और विज्ञान को पढ़ने के लिए इन यूनिवर्सिटियों में आते थे और अपने-अपने देशों में लौट कर ज्ञान-विज्ञान का प्रचार करते थे।

भारत में रूसी दूतावास के कलचरल एटेची श्री वारान्निकोव ने १४ जूनको सोनीपत हिन्दू कालेज में भाषण देते हुए कहा कि रूस और भारत के प्राचीन सम्बन्ध के कारण इन भाषा और संस्कृत में कोई भेद नहीं और दोनों के शब्द एक दूसरे से काफी मिलते-जुलते हैं। रूसी भाषा और संस्कृत में मेल-जोल तक्षशिला और नालन्दा आदि यूनिवर्सिटियों में ताजक और अज़बेक युवकों के शिक्षा ग्रहणार्थ आने का परिणाम है।

पंजाब, राजस्थान, दिल्ली और उत्तर प्रदेश आदि में शिर पर बालों में साबुन नहीं दधि डाल कर नहाने का रिवाज है। सिक्खों में दधि स्नान एक दैनिक कार्य है। इससे बालों की सफाई होती है, रूक्षता मिटती है और बाल लम्बे होते हैं।

२६ जनवरी को गणराज्य दिवस पर जो पार्टी अज़बक्स्तान से दिल्ली आई थी उनमें सम्मिलित नृतकियां, साबुन का प्रयोग न कर दधि से शिर स्नान करती थीं, उनका कहना था कि दधि स्नान के कारण उनके बाल लम्बे और घने हैं। यह ताजक, अज़बेक और भारतीयों के कुशान राज्य में एक झण्डे तले एकत्र होने का परिणाम है।

रूस और भारत के रीति रिवाजों और ज्ञान-विज्ञान को एक दूसरे से मिलाने में बौद्ध मत का भी बहुत हाथ था। रूसी सूचना एजेंसी तास की सूचना है कि अजबकस्तान में खुदाई करते समय सातवीं शताब्दी का एक बौद्ध मन्दिर भूमि के अन्दर से प्राप्त हुआ है। मध्य एशिया के विजय काल में अरबों ने जला डाला था। इस मन्दिर से जो मूर्तियां निकली हैं वह मूर्ति कला के अमूल्य नमूने हैं।

रूस राज्य में ही तरन्द के स्थान पर, एक गुफा खुदाई से एक बौद्ध मन्दिर मिला है यह मन्दिर आज से २१०० वर्ष पूर्व राजा कनिष्क के काल में बना था, चीनी यात्री ह्यून सांग ने, सत्रहवीं शताब्दी में अपनी यात्रा में तरन्द के इन बौद्ध मन्दिरों का वर्णन किया है। आयुर्वेद के स्वस्थ वृत्त, चिकित्सा और औषधियों को बौद्ध भिक्षु रूस ले गये। आयुर्वेद की औषधियां रूसी प्राचीन चिकित्सा का एक अंग बन गईं और अब भी उस चिकित्सा का एक भाग है।

रूस के प्रसिद्ध लेखक श्री बोगो स्लावसकी ने हाल ही में एक पुस्तक रूसी भाषा में इण्डिस्काजा मैडिसिना ड्रेवने रस्कम वैरेचेवेनाई Indian medicine in ancient Russian medical treatment लिखी है। इस पुस्तक में भारतीय औषधियों का

जो रूसी प्राचीन चिकित्सा में सम्मिलित हैं, परिचय दिया गया है। आयुर्वेद के प्रति रूस का पूरा झुकाव है।

१५ फरवरी को रूसी वैज्ञानिकों के एक प्रतिनिधि मण्डल ने जो भारत भ्रमण कर रहा था, कलकत्ता के साधना औषधालय के कारखाने का निरीक्षण किया। आयुर्वेदिक औषधियों और उनके निर्माण को भली प्रकार समझने का यत्न किया और निरीक्षण के बाद प्रतिनिधि मण्डल के नेता डा० ईटस्कोव ने बताया कि सोवियत संघ में आयुर्वेदिक औषधियों के प्रति झुकाव बढ़ रहा है, और जांच के बाद रूस में आयुर्वेदिक औषधियों को प्रयोग में लाया जा रहा है।

आयुर्वेद के प्रति रूसियों का झुकाव होना एक आवश्यक बात है। आयुर्वेद रूस की प्राचीन चिकित्सा का एक भाग है। यह एशिया का चिकित्सा विज्ञान है। यह एशिया के किसानों और मज़दूरों की चिकित्सा प्रणाली है। आयुर्वेद की उन्नति से पूंजीपतियों के लाभ पर चोट पड़ती है।

भगवान पुनर्वसु आत्रेय ने कहा है कि जो चिकित्सा द्वारा धन कमाना चाहता है, वह कहीं नहीं धूल कमाता है। क्या यह साम्यवाद (कम्यूनिज्म) का सिद्धान्त नहीं। आयुर्वेदिक चिकित्सा द्वारा उपार्जित धन फिर दोबार किसानों और मजदूरों के पास लौट जाता है।

किन्तु ऐलोपैथिक औषधियों पर व्यय किया हुआ धन पूंजीपतियों की तिजोरियों में जाता है। अठारहवीं शताब्दी के बाद से विज्ञान का उपयोग सर्वथा व्यापारिक शक्ति के रूप में होने लगा है। पूंजीपतियों के रिसर्च केन्द्रों में कुछ वेतन लेकर वैज्ञानिक खोज करते हैं। पूंजीपति इन्हें पेटैन्ट करा कर, विज्ञान के नामपर लूट-खसोट करते हैं, यह पूंजीवाद है।

रूस इस पूंजीवाद का विरोधी है। श्री खुरश्चोव और बुलगानिन ने भारत भ्रमण काल में कहा था कि भारत एक बहुत उच्च प्राचीन सभ्यता का उत्तराधिकारी है। रूस के निकट भारत की प्राचीन सभ्यता एशिया की सभ्यता है। चीन के प्रधानमंत्री श्री चाऊ-एन-लाई ने भी अपनी भारत यात्रा में इन्हीं शब्दों के साथ भारतीय सभ्यता को याद किया था तथा भारतीय सभ्यता के विषय में श्री दलाई लामा ने भी यही शब्द कहे थे और भारत की प्राचीन सभ्यता को याद दिलाने के लिए, श्री चाऊ-एन-लाई ने नालन्दा में उसके भग्नावशेषों को देखा था और श्री दलाई लामा ने नालन्दा में, भारत के प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू को, प्रसिद्ध यात्री ह्यू न सांग की अस्थियां भेंट की थीं।

आयुर्वेद भारतीय सभ्यता का एक अंग है। यह चिकित्सा भारत के किसानों और मजदूरों की चिकित्सा प्रणाली है। यदि देश को सोशलिज़्म के ढांचे में ढालना है तो अवश्य आयुर्वेदिक चिकित्सा को उसका उचित स्थान देना होगा। शीघ्र या देरी में एशिया की इस चिकित्सा प्रणाली को फलने-फूलने का अवसर प्राप्त होगा। कोई भी शक्ति इसके विकास में बाधा उपस्थिति नहीं कर सकती।

—हरिकृष्ण सहगल

'डालडा' और आहार में इस का स्थान.

"विटामिन (खाद्यौज) विज्ञान की मूलभूत समस्याएं" इस विषय पर इन्हीं दिनों भाषण देते हुए म्यूनिख मैडिकल क्लिनिक के एमेरिटस डाइरैक्टर प्रोफ़ेसर विलियम स्टैप ने कहा, "कई अधिकारी लेखकों का भी यह मत है कि इस युग में, जब कि खाद्य वस्तुएं प्रभूत मात्रा में मिलती हैं, विटामिन-न्यूनता दृष्टिगोचर होनी बंद हो गई है; एक मौलिक भूल है।"

प्रोफ़ेसर स्टैप ने अमरीका का ही उदाहरण दिया जो संसार का सर्वश्रेष्ठ आहार-पुष्ट राष्ट्र है। "अमरीका में रोटी के आटे में विटामिन मिलाने की प्रचलित प्रथा यह स्पष्ट करती है कि अपर्य्याप्त विटामिन एक बड़ा भारी ख़तरा है जिस से किसी मूल्य पर भी बचना आवश्यक है। वास्तव में अमरीका में ऐसा आटा ख़रीद सकना ही संभव नहीं जो विटामिन तथा मिनरल (पार्थिव द्रव्य) मिला कर सशक्त न बनाया गया हो।

यदि अमरीका का यह हाल है तो भारत जैसे देश का हाल इस से कहीं अधिक बुरा होगा जहां दूध, दूध के बने खाद्य द्रव्य, तथा अन्य प्राणिज आहार बहुत कम मात्रा में खाए जाते हैं। इण्डियन कौंसिल ऑफ़ मैडिकल रिसर्च के विशेष विवरण नं० २७ में कहा गया है, "न्युट्रीशन रिसर्च लैबॉरट्रीज़, कुनूर के हैल्थ बुलेटिन नं० २३ (१९५१) के अनुसार आहार-दोषजन्य अधिकांश व्याधियों में विटामिन ए की न्यूनता ही मुख्य एकाकी कारण है। एक मनुष्य के दैनिक आहार में विटामिन ए की आवश्यक मात्रा ३००० से ४००० अन्तरराष्ट्रीय इकाइयों के लगभग होनी चाहिये। परन्तु प्राणिज खाद्य, जिन में विटामिन ए अधिक होता है कई गुने मैंहगे होते हैं। अत एव विटामिन ए का यह सुपूर्ण स्रोत प्रयोग में नहीं लाया जा सकता।

इस देश में विटामिन ए की कमी की एक बड़े अंश में पूर्ति करने के लिये इण्डियन कौंसिल ऑफ़ मैडिकल रिसर्च की आहारपुष्टिकरण उपसमिति ने यह सिफ़ारिश की थी कि वनस्पति में विटामिन ए की मात्रा ७०० अन्तरराष्ट्रीय इकाइयाँ प्रति औंस (२॥ तोला) के हिसाब से बढ़ा दी जाए जिस से जनता को सस्ते दामों पर अच्छा और पौष्टिक स्नेह प्राप्त हो सके। 'डालडा' में ऐसा कर दिया गया है।

'डालडा' एक शुद्ध पाकीय स्नेह है जो वानस्पतिक तेलों से ठीक सर्कारी विशेषाभिधानों के अनुसार बनाया जाता है। दैनिक प्रयोग में आने वाले साधारण तैलों को शुद्ध कर के उन्हें उदजनित (हाइड्रोजनेट) किया जाता है और उस में प्रति औंस विटामिन ए की ७०० और विटामिन डी की ५६ अन्तरराष्ट्रीय इकाइयाँ मिला दी जाती हैं। इस पुष्टिकरण से 'डालडा' में विटामिन की मात्रा अब उतनी ही हो जाती है जितनी कि उत्तम कोटि के घी में।

'डालडा' घी का स्थानपन्न पदार्थ नहीं किन्तु उस का पूर्ण विकल्प है। मक्खन अथवा घी जैसे स्नेह गुणकारी हैं किन्तु एक तो आवश्यकता के अनुसार उन की उपज ही नहीं, दूसरे वे इतने मैंहगे होते हैं कि अधिकांश व्यक्तियों के दैनिक प्रयोग में आ नहीं सकते। इस के अतिरिक्त दूध पीना घी खाने की अपेक्षा (और घी दूध से ही बनता है) कहीं अधिक गुणकारी है क्योंकि दूध में विटामिन के अतिरिक्त कैल्शियम और प्रोटीन भी पीने वाले को प्राप्त हो जाते हैं। पश्चिम के देशों में लोग अधिकाधिक संख्या में दूध को दूध के रूप में ही प्रयुक्त कर रहे हैं। भारत का आदर्श भी यही प्रवृत्ति होनी चाहिये।

एक ऐसा स्नेह होने के अतिरिक्त जो दो आवश्यक विटामिनों को मिला कर पुष्ट किया गया है 'डालडा' में यह गुण भी है कि द्रवांक निम्न होने के कारण यह सुपाच्य है और शीघ्र ही शरीर में प्रयुक्त हो जाता है। इस की निर्माण-विधि का आदर्श इतना ऊंचा है कि 'डालडा' अपनी श्रेणी की अमरीका, इंग्लैण्ड और अन्य युरोपियन देशों की तत्सम कृतियों "शॉर्टनिंग" तथा "मार्गरीन" आदि की तुलना में उत्कृष्ट सिद्ध होता है। 'डालडा' के प्रत्येक औंस में २५० उष (कैलॉरी) हैं जो बढ़िया घी की १ औंस मात्रा में अथवा इस से दुगने गेहूं या चावल में इस से अधिक नहीं होते।

अत एव औसत दर्जे के भारतीय आहार के लिये जो आवश्यक पौष्टिक तत्वों, विशेषतया विटामिनों और स्नेहों, में प्रायः हीन रहता है, 'डालडा' एक परम लाभप्रद वृद्धि है।

हिंदुस्तान लीवर लिमिटेड, बम्बई

HVM. 295-25 [illegible]

आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम

लेखक—वैद्य० भा० वि० गोखले आयुर्वेद पारंगत, प्राचार्य—आयुर्वेदीय
स्नातकोत्तर शिक्षण केन्द्र, जामनगर

आयुर्वेद का पाठ्यक्रम कैसा हो, इस विषय में बहुत चर्चा हो चुकी है परन्तु यह विवाद का विषय मुख्यतः पाठ्यक्रम शुद्ध हो अथवा मिश्र हो, इसी पर केन्द्रित रहता है। इसके आगे इस विषय में कोई उन्नति नहीं हो सकी है। शुद्ध पाठ्यक्रम के आयुर्वेदीय तथा उनके अध्यापन की पद्धति में मिश्र प्रणाली से वस्तुतः कोई अन्तर नहीं है। प्रणाली में अन्तर्भूत सभी आयुर्वेदीय विषयों के अध्ययन की पृथक् व्यवस्था रखकर इसे "शुद्धायुर्वेद" ऐसी संज्ञा दी गई है। मिश्र प्रणाली के बारे में जब कोई विचार किया है तो अर्वाचीन वैद्यक तथा आयुर्वेद में पाठन के लिये दोनों वैद्यक के लिये अलग-अलग में व्याख्यान और प्रश्नपत्रों की संख्या कितनी हो, इसी विषय पर अधिकतः निरर्थक विवाद होता चला आ रहा है। शुद्ध हो अथवा मिश्र, दोनों प्रकार के विद्यालयों से वाले स्नातकों का आयुर्वेदीय ज्ञान प्रायः समान ही होता है। मिश्र प्रणाली के को अर्वाचीन वैद्यक का भी ज्ञान होता है अतः वह इस वैद्यक का उपयोग समझदारी सकता है यही दोनों में अन्तर है।

वैद्यों को किन-किन औषधियों का प्रयोग करना चाहिए इस विषय में—शुद्धायुर्वेदियों को केवल आयुर्वेदीय औषधियों का ही उपयोग करना चाहिए और अन्य औषधियों के प्रयोग की उनके लिए आवश्यकता नहीं है, ऐसा ठोस प्रतिपादन कोई नहीं करता है। यह अव्यवहार्य मालूम होगा, औषधियाँ आयुर्वेदीय कौनसी तथा अनायुर्वेदीय कौनसी इसका निश्चय करना अत्यन्त कठिन है। "नास्ति मूलमनौषधम्।' "जगत्येवमनौषधम्।" "तदेवयुक्तं भैषज्यं यदारोग्याय कल्पते" इत्यादि सूत्रों का आधार लेकर इस के उत्तरदायित्व को टाला जाता है। यह किसी व्यक्ति विशेष अथवा दल विशेष का न होकर काल-महिमा का ही परिणाम है ऐसी मेरी मान्यता है। आयुर्वेद को जो दशा हो गई है तथा वर्तमान में वह जिस परिस्थिति में है उसमें से अगर युक्तिपूर्वक मार्ग निकाला जाय तो इस दुर्बलता का अवश्य नाश हो सकेगा। परन्तु इसके लिए आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम के विषय में अत्यन्त सूक्ष्मता से, व्यवहारिक दृष्टि से तथा अनुभव के आधार पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने की आवश्यकता है ऐसा मैं सोचता हूं। शुद्ध या मिश्र प्रकार की संस्था के लिए आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम का प्रश्न एक समान ही है। आयुर्वेद पर श्रद्धा रखने वाला स्नातक ही आयुर्वेदीय व्यवसाय करेगा और आयुर्वेदीय शास्त्र तथा को जानने वाला स्नातक कैसा निर्माण किया जाय इस विषय की चिन्ता प्रायः की है। इस दृष्टिकोण से मैंने खूब मनन किया है अतः अनुभव के आधार पर कुछ

सूचनाएं उपस्थित कर रहा हूं। स्वानुभव का उल्लेख मैंने यहाँ पर इसलिए किया है कि मेरे वैयक्तिक जीवन में एक संस्था में किए गए तीन प्रयोगों को मैंने नजदीक से देखा है। चौथा प्रयोग अभी चल रहा है। वर्तमान में जो कुछ वहाँ हो रहा है उसे भी मैं गौर से देख रहा हूं। बम्बई राज्य तथा इतर अन्य राज्यों में इस विषय की जो प्रतिक्रिया हो रही है उनको दृष्टिगत रखकर ही मैं लिख रहा हूं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व पूना के आयुर्वेद महाविद्यालय में "आयुर्विद्या-विशारद—डी. ए. एस. एफ." का पाठ्यक्रम था। तदनन्तर "जी. एफ ए. एम." और अब "बी. ए. एम. एस." के पाठ्यक्रम के अध्यापन तथा संचालन के अनुभव का सुयोग मुझे अनायास मिला। उसमें से जो कुछ भी फल निष्पन्न हुआ है वह मेरी दृष्टि के सन्मुख है। एक निजी विद्यापीठ से सरकारमान्य फेकल्टी में और तदनन्तर सरकारमान्य विश्वविद्यालय में इस संस्था के प्रवेश को देखने का सुअवसर मुझे मिला है। प्रारम्भिक अवस्था से अब एक कार्यक्षम तथा नित्य उन्नतिशील संस्था के रूप में हो रहे उसके उत्कर्ष को मैं देख रहा हूँ, जिसके ६ आयुर्वेदीय शय्या वाले रुग्णालय से प्रारम्भ होकर आज आयुर्वेदीय चिकित्सालय के कायविभाग में ५२, शल्यविभाग में ८, तथा स्त्री विभाग में २६ शय्या आयुर्वेदीय उपचारार्थ तथा बाह्योपचारविभाग व प्रसूति विभाग में पूर्णतया आयुर्वेदीय उपचार, साथ ही बाह्योपचार भी प्राय: आयुर्वेदीय इस तरह के विस्तृत वृक्ष का दृश्य मैं आज देख रहा हूँ; परन्तु इस विषय में अभी भी कहाँ पर त्रुटि हो रही है इसका अहर्निश विचार कार्यकर्ता लोग वहाँ पर करते देखे जाते हैं। मैं भी इस विषय में सचिन्त हूँ तथा देश के प्रत्येक शास्त्रीय-विचार प्रणाली का अनुसरण करने वाले वैद्य महानुभावों को सचिन्त होना आवश्यक है। यह समय की पुकार है। मेरे सतत मनन के फलस्वरूप कर्तव्य बुद्धि से प्रेरित होकर मैं कुछ विचार प्रस्तुत कर रहा हूँ।

वैद्यक शास्त्र प्रत्यक्ष पर आधारित शास्त्र है और आयुर्वेद तो स्वभावतः ही अधिक प्रत्यक्ष प्रधान है। सृष्टि में विघ्नोत्पन्न करने वाली व्याधियों का प्रादुर्भाव हुआ और उनके अध्ययन से ही आयुर्वेद का जन्म हुआ है। वैद्यकशास्त्र का निर्माण जिस तरह हुआ है उसी दृष्टिकोण से अगर उसका अध्ययन और अनुशीलन करने का प्रयत्न किया जाय तो ही उसका ज्ञान सुलभ होगा। आयुर्वेद का शास्त्र शुद्ध अध्ययत्त करने वाले विद्वानों का यही मत होगा कि आयुर्वेद की सफलता उसके अनुभव पर ही है। मुझे स्नातक उपाधि प्राप्त करने के पश्चात् अपनी निष्ठा तथा आत्मविश्वास का स्मरण जब होता है तब आधुनिक आयुर्वेदीय स्नातकों की अपेक्षा इन सब विषयों में मेरी अधिक पात्रता थी ऐसा दावा मैं नहीं कर सकता। "गतानुगति को लोक: न लोक: पारमार्थिक:" इस उक्ति के अनुसार विशेष अवसर नहीं मिलता तो मैं भी अन्य व्यवसायिकों के समान निश्चय से प्रवाहपतित हुआ होता। लेकिन आयुर्वेद के क्षेत्र में कार्य करने का अवसर स्नातक को किस तरह प्राप्त हो सकता है ? इसलिए ४½—५ वर्ष के पाठ्यक्रम के अन्तर्गत ही मूलत: ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि तदनुसार उपरोक्त अनुभव तथा निष्ठा प्राप्त हो सके।

इस तरह की व्यवस्था करने के लिए प्रवेश के बाद प्रथम वर्ष से लेकर अन्तिम वर्ष तक आयुर्वेद के विषयों का अध्ययन प्रत्यक्ष पर होना चाहिए। इस प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्ति के

शिक्षा संस्था के पास पर्याप्त साधन होना आवश्यक है। ये साधन कौन से हों यह प्रश्न महत्व का है। अर्वाचीन वैद्यक में प्रत्येक विषय के लिए प्रात्यक्षिक, तथा उनके लिए होते हैं। उदाहरणार्थ एनोटोमी के लिए शवच्छेद गृह, फिजिओलोजी के लिए टरी, मटेरियामेडिका के लिए फार्मेसी, सर्जरी के लिए शस्त्रकर्म आदि प्रत्येक विषय विस्तृत रूप से प्रात्यक्षिक और तद्विषयक साधन सामग्री उपलब्ध है और विषय स्त्रीय निरूपण की अपेक्षा प्रात्यक्षिक क्षेत्र में विद्यार्थी का अधिक समय व्यतीत होता -किरण, पेथोलोजीकल लेबोरेटरी, आपरेशन थिएटर, बायोकेमेस्ट्री-फिजिओलोजीकल रेटरी, डिसेक्शन हाल इत्यादि की व्यवस्था के अभाव में अर्वाचीन वैद्यक का अध्ययन समझा जाता है। परन्तु आयुर्वेद के पदार्थविज्ञान, दोष-धातु-मल विज्ञान, द्रव्यगुण इत्यादि विषयों के प्रत्यक्ष ज्ञान के लिए किस तरह की व्यवस्था और विधि हो इस का हल सदैव टाला जाता है। इस विषय का ज्ञान विद्यार्थी को खूब कराया जाता है प्रत्यक्ष ज्ञान के अभाव में वह केवल पुस्तकी ज्ञान है और केवल परीक्षा उत्तीर्ण करने होना आवश्यक है और बाद में उसका व्यवहार में कोई उपयोग नहीं है ऐसी की धारणा हो जाती है। निदान तथा चिकित्सा विषयक ज्ञान भी विधिवत नहीं जाता है। अर्वाचीन वैद्यक के 'मेडीसिन' विषय का अध्यापन कराते समय प्रत्येक के मल-मूल-रक्त आदि की परीक्षा तथा रोगी परीक्षा पत्रक आदि को यथाविधि भर जाता है। परन्तु आयुर्वेद के अध्यापक को आयुर्वेदानुसार रोगी परीक्षा पत्रक बनवाकर विद्यार्थी द्वारा पूरा करा लेना चाहिए और मल-मूत्रादि परीक्षा भी आयुर्वेदीय हो सकती कल्पना भी उसे नहीं होती। अतः पाश्चात्य निदान पद्धति का हिन्दी अथवा संस्कृत नुवाद करना मात्र ही आयुर्वेद है, ऐसी अधिकांश विद्यार्थियों की धारणा हो जाती है। रक्त परीक्षा विधि से 'एनीमिया' निश्चित हुआ तो उसे पाण्डु, तथा एसायटिस र रोग, हृदयोदर, वृक्कोदर आदि पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया जाता है। विज्ञान से डरकर शल्यशास्त्र सम्बन्धी आयुर्वेदीय प्रभावी उपचारों की प्रगति हो चुकी है। यही स्थिति प्रसूति तन्त्र की भी है। तद्विषयक आत्मविश्वास तथा के अभाव में प्रायः सर्जरी एवं मिडवाइफरी को तो अंग्रेजी वैद्यक की ही बपौती जाता है।

अतः इस विषम स्थिति से हमें कुछ मार्ग निकालना होगा। आयुर्वेद में प्रत्यक्ष ज्ञान कौन-कौन से साधन तथा पद्धति होना चाहिए, इसका विचार प्रथम होगा।

उपरोक्त "विघ्नभूता यदा रोगाः प्रादुर्भूताः-शरीरिणाम्" इस परिस्थिति में आयु- जन्म हुआ होने से सर्वप्रथम आयुर्वेद के ज्ञानार्थ चिकित्सालय का होना परमावश्यक उपयोग किस तरह होगा, यह देखेंगे।

विविध प्रकार के रोगियों के लिए चिकित्सालय होता है। अनेक प्रकार की व्याधियों अध्ययन करते हुए ही आयुर्वेद के सिद्धान्तों का जन्म हुआ है, इस विषय पर ध्यान देना होगा। रक्त का निर्माण यकृत में, अन्न का शोषण ग्रहणी द्वारा तथा फुफ्फुसों से

प्राणवायु का ग्रहण इत्यादि विषयों का ज्ञान प्राचीनों को कैसे हुआ इस विषय में आश्चर्य व्यक्त किया जाता है। प्राचीन आचार्य अतीन्द्रिय दृष्टि थे, ऐसा निष्कर्ष निकालकर आज वैद्य लोग चुप बैठते हैं। इन सब प्रश्नों का हल उपरोक्त विचारों में निहित है ऐसा स्पष्ट मालूम होगा। विकृति का ज्ञान होने पर प्रकृति का आकलन होता ही है। अतएव इस विषय पर सर्वप्रथम ध्यान देना चाहिए।

आयुर्वेदीय पञ्चमहाभूत सिद्धान्त, रसवीर्य-विपाक सिद्धान्त तथा दोष-धातु-मल सिद्धांत ये तीनों सिद्धान्त सजीव शरीर पर सापेक्ष होने के विषय में कोई विवाद नहीं है। प्रयोगशाला की कांच की नलिका में इनका दर्शन होना असम्भव है। अतः आयुर्वेद के अध्ययन के ३/४ भाग का साक्षात सम्बन्ध चिकित्सालय से ही होता है। शरीर सम्बन्धी प्रत्यक्ष ज्ञान भी सजीव शरीर की अपेक्षा रखता है। "शोधयित्वा मृतं सम्यक् ज्ञातव्योंऽऽग विनिश्चयः" इस सूत्र में शव विच्छेदन की मर्यादा केवल अङ्ग विनिश्चय तक ही सीमित है। मर्म, सिरावर्णं विभक्ति तथा सिराव्यध विधि गर्भ व्याकरणादि के अध्ययन के लिए सर्वप्रथम चिकित्सालय की आवश्यकता तो सर्वसम्मत मालूम होती है। परन्तु इस विषय में कोई क्रियात्मक कदम नहीं उठाया जाता है।

जब आयुर्वेदीय अध्यापक को त्रिदोष, रसवीर्य विपाक, मर्मादि के सामान्य-विशेष, छात्रों को स्पष्ट कराने का प्रसङ्ग आता है तो वह विचारा भ्रांति में पड़ जाता है। वह इधर उधर देखता है तथा सदृश विषयों के बारे में अर्वाचीन वैद्यक में क्या व्यवस्था है इसको ढूंढ़ता है। आयुर्वेदीय अध्यापक के लिए यह स्पष्ट होना चाहिए कि प्रत्यक्ष ज्ञान का क्षेत्र उसके लिए कांच की परीक्षा-नलिका न होकर जीवित शरीर मात्र है तथा विकृति के अध्ययन से ही प्रकृति का ज्ञान शीघ्र होता है अतः प्रत्यक्ष ज्ञान का क्षेत्र चिकित्सालय ही होगा।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होगा कि केवल रोग निदान—चिकित्सा तथा शल्य प्रसूति के अतिरिक्त अन्य आयुर्वेदीय विषयों के लिए भी चिकित्सालय का होना आवश्यक है। इस दृष्टिकोण को स्वीकार करना चाहिए। अतः शरीर, दोषधातुमल विज्ञान तथा द्रव्यगुण आदि के अध्यापक का प्रारम्भ से ही चिकित्सालय से सम्बन्ध होना चाहिए। अध्यापन के अवसर पर कक्षा में वात प्रकृति, पित्त प्रकृति सम्बन्धी विवेचन तो होता है परन्तु प्रत्यक्ष ज्ञान रुग्णों पर नहीं कराया जाता है। वनस्पति के विषय में उसके एकांकी वनस्पति का रसभरा वर्णन तो किया जाता है परन्तु रुग्णों पर उसका प्रत्यक्ष कराकर नहीं दिखाया जाता। इन त्रुटियों के कारण आयुर्वेदीय विज्ञान के बारे में विद्यार्थी के मन में दृढ़ विश्वास उत्पन्न नहीं हो पाता।

तदनुसार आयुर्वेदीय शिक्षण के लिए एक विशाल साधन-सम्पन्न चिकित्सालय का होना नितान्त आवश्यक है जिसमें कम से कम ७५-१०० आयुर्वेदीय रुग्ण शय्याओं की व्यवस्था हो अन्यथा आयुर्वेद विद्यालयों को मान्यता नहीं मिलनी चाहिए, ऐसी मेरी धारणा है। साधारणतया जिस विद्यालय में ६० विद्यार्थी प्रतिवर्ष प्रवेश पाते हों उसमें कम से कम

के लिए ६-१०, दोष-धातु-मलविज्ञान के लिए ६-१०, द्रव्यगुणविज्ञान के लिए ६-१०, के लिए ८-१०; सौतिक, स्त्री तथा बाल-रोगों के लिए १६-२४ तथा काय- के लिए ४०-५० रुग्णशय्याओं की व्यवस्था हो। चिकित्सा का एक बाह्य-विभाग चाहिए जिसमें कम से कम २०० तक रुग्णों की उपस्थिति प्रतिदिन हो। बाह्यशल्यकर्म में भी पूर्वकर्म, तथा पश्चात् कर्म के लिए पूर्णतः आयुर्वेदीय उपचार की व्यवस्था विभाग भी पूर्णतः आयुर्वेदीय होना आवश्यक है।

आयुर्वेद तथा अर्वाचीन शय्या एकत्र अथवा पृथक्-पृथक् विभागों में हों—इस विषय अभी निश्चित मन नहीं बना पाया हूँ। परन्तु नूतन रूप से प्रारम्भ की जाने वाली में आयुर्वेदीय काय शल्य सौतिकादि विभाग एक साथ होने पर व्यवस्था, शिक्षण, विचार-विनिमय आदि अनेक दृष्टि से लाभ होना सम्भव है।

आयुर्वेदीय विभागों में काम करने वाले वैद्यों को अपने अपने विभागों के लिए चिकित्सा विषयक समान नीति का अवलम्बन करना चाहिए।

प्रत्येक विभाग के लिए अध्यापन के अनुसार साधन-सामग्री तथा विशेष पत्रकों की व्यवस्था होनी चाहिए।

इन सभी की सुविधा के लिए पञ्चकर्म का एक विभाग रखा जावे। चिकित्सालय अन्तर्गत सम्पन्न एवं सुसज्जित आयुर्वेदीय विभाग—यही एक मात्र आयुर्वेदीय पाठ्य- आधार होगा। इन विभागों की कार्यक्षमता पर ही आयुर्वेद की सफलता निर्भर इन विभागों का उपयोग किस तरह कर लेना चाहिए इसके लिए भी एक तन्त्र का किया जाय। प्रत्येक विभाग में छात्रों को काम करने के लिए अवसर दिया जाय। को भी स्वतः रुग्णपरीक्षा पत्रक को भरना चाहिए तथा छात्रों द्वारा भरे हुए पत्रकों निरीक्षण आदि की तपश्चर्या करनी होगी।

आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम पञ्चवार्षिक रहना आवश्यक है तथा उपरोक्त मतानुसार वर्ष से ही अन्तिम वर्ष तक छात्रों का सम्बन्ध चिकित्सालय से होना चाहिए। परन्तु क्रम की व्यवस्था इस कुशलता की हो कि उपरोक्त व्यवस्था के परिणाम स्वरूप छात्र स्नातक बनकर विद्यालय से बाहर निकलें तो वह आयुर्वेद का व्यवहार करने वाला विद्यालय से बाहर निकलने वाले स्नातक को आयुर्वेद का ही अनुसरण करना चाहिए क्या ? आयुर्वेदीय औषधियों का ही प्रयोग जो करता है वह आयुर्वेद को लेकर बाहर ऐसा माना जाता है जो एक दृष्टि से ठीक भी है। आयुर्वेदीय तथा अनायुर्वेदीय कौन सी हैं, यह एक प्रश्न है। इस प्रश्न का एक ही उत्तर मेरे पास है कि रस शास्त्रतः परीक्षित और मूलद्रव्यों से युक्त तथा आयुर्वेदीय भैषज्यकल्पनाओं के अनुसार कोई भी औषधि आयुर्वेदीय होगी। इस विचार धारा के अनुसार अगर मैं क्वीनीन आयुर्वेदीय कहूँ तो मेरे मित्र मुझे क्षमा करेंगे। क्वीनीन यह आयुर्वेदीय औषधि नहीं क्योंकि यह आयुर्वेदीय के भैषज्यकल्पना अनुसार तैयार नहीं की जाती। यह औषधि है आयुर्वेदीय औषधि नहीं है। इसके दृष्टिकोण से पेनीसिलीन तथा स्ट्रेप्टोमाइसीन

इत्यादि औषधियां भी आयुर्वेदीय नहीं हो सकतीं। भिन्न-भिन्न वनस्पतियों के टिंक्चर्स तथा एक्सट्रेक्ट्स का भी आयुर्वेदीय औषधियों में समावेश नहीं किया जा सकता है। सल्फाड्रग्ज तथा इन्जेक्शन्स के विषय में भी यही विचार रहेगा। आयुर्वेद और एलोपैथी इन दो पद्धतियों में अन्तर न मानने वाले तथा इन दोनों का मधुर सम्मिलन की कल्पना करने वालों की दृष्टि में इस प्रकार की औषधियों में कोई भेद प्रतीत नहीं होता। परन्तु मेरे विचार में इन दोनों प्रणालियों का आधार मूलतः भिन्न है तथा दोनों का अध्ययन भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से हुआ है। कला के क्षेत्र में दोनों में बहुत साम्य मिलेगा परन्तु तत्वतः दोनों में मौलिक भेद है। अतएव जब महाविद्यालयों से आयुर्वेदीय स्नातक बनकर बाहर निकलें तब उन्हें इस भिन्न दृष्टिकोण का सम्यक् ज्ञान होना आवश्यक है। इस प्रकार की निष्ठा का निर्माण तो केवल अनुभव प्राप्त करने पर ही होगा जिसका उल्लेख मैंने ऊपर किया है। अतएव प्रचलित पाठ्यक्रम में प्रथमतः शास्त्र तथा तदनन्तर प्रत्यक्ष ज्ञान की व्यवस्था, इस क्रम को बदलकर एकदम विपरीत मार्ग का अनुसरण किया जाय तो अच्छा है। प्रथम निदान पञ्चक के सिद्धान्त, तदनन्तर रोगनिदान व अन्तिम वर्ष में औषधि आदि योजना अब जारी है। मैंने प्रथम ही प्रतिपादन किया है कि आयुर्वेद की उत्पत्ति तो मुख्यतः प्रत्यक्ष से ही हुई है अतएव प्रथम उपचार और तदनन्तर निदान विषयक सिद्धान्त ऐसा क्रांतिकारी परिवर्तन पाठ्यक्रम में होना मैं आवश्यक मानता हूँ।

पाठकों को सम्भवतः यह विचार आश्चर्यकारक लगेगा परन्तु थोड़ा विचार करने पर विदित होगा कि ऐसे क्रांतिकारी परिवर्तन के सिवाय अन्य कोई मार्ग नहीं है। इस योजना को क्रियान्वित करने पर स्नातक के लिए शीघ्र औषधोपचार लिखना तथा औषधियों के गुणों का सम्यक् ज्ञान होने से उसकी सफलता होगी और वह सदैव आयुर्वेद का ही अवलम्बन करेगा। यह योजना अत्यन्त सरल तथा परिणामकारी सिद्ध होगी। पाठ्यक्रम के प्रथम १॥ से २ वर्षों में दोष-धातु-मलों की विकृति का परिचय, प्रकृति विनिश्चय का ज्ञान होने के पश्चात् निदान चिकित्सा आदि अन्य विषयों में प्रवेश सरलता से होगा—कारण कि वह उस अवस्था में बिल्कुल अपरिचित नहीं रहेगा। विकृति परीक्षा की उसे कल्पना होगी। ऐसे छात्रों के लिए नित्यप्राप्त आशुकारी व्याधियों के रुग्णों की व्यवस्था रुग्णालय में सदैव हो जहां पर रोग की सामान्य चिकित्सा अर्थात् व्याधिप्रत्यनीक चिकित्सा एक फार्मेकोपिया के रूप में तैयार रहना आवश्यक है। सर्व प्रथम १—१॥ वर्ष में निदान तथा सामान्य चिकित्सा तथा उसके अध्ययन की सीमा हो। उसके लिए एक छोटा सा रुग्ण परीक्षा पत्रक होना चाहिए। द्रव्यगुण विज्ञान के विभाग में वह द्रव्यों के गुणों का परिचय प्रदान करेगा। इस १—१॥ वर्ष के अध्ययनकाल में उसे नित्य की व्याधियों में प्रयुक्त औषधयोजना, सामान्य निदान तथा रसवीर्य विपाक आदि का प्रत्यक्ष ज्ञान होगा। पश्चात् के एक वर्ष में उसे विशेषतः विशेष चिकित्सा तथा अंशांश कल्पना प्रदर्शित करने वाले पत्रकों के द्वारा जीर्ण व्याधि के उपचार में लगाना चाहिए तथा अन्तिम वर्ष में तो उसे गृहवैद्य का कार्यभार सौंपा जाय तथा बारी-बारी से उसे शल्य-शालाक्य तथा सौतिकादि अन्य आयुर्वेदीय विभागों

करने का अवसर दिया जाय। निदान, चिकित्सा, शल्य-शालाक्य अथवा सौतिकादि भी विषय हो, आयुर्वेद का ज्ञान सर्वत्र समान रहता है।

रुग्णालयीन पाठ्यक्रम के विषय में यह मेरी योजना है। किस पद्धति से कौन से का अध्ययन तथा किन-किन रुग्णों अथवा व्याधियों के लिए किन-किन औषधियों का कराया जाय इस विषय में मैं एक विस्तृत योजना बना रहा हूँ। पाश्चात्य वैद्यक का पूर्णरूपेण तज्ञ होता है ऐसा ग्रह होने की कोई आवश्यकता नहीं है परन्तु यह है कि वह कर्मकुशल अवश्य होता है जिसमें कोई शंका नहीं। यही नीति हमें होगी। मेरी इस योजना में आयुर्वेदीय चिकित्सा को मैं आयुर्वेद का महा वैभव हूं।

आयुर्वेद का दूसरा वैभव अर्थात् औषधियों को निर्माण करने वाली निर्माणशाला आयुर्वेदीय स्नातक से जो अपेक्षा की जाती है (जिसका मैंने ऊपर निर्देश किया है) पूर्ति के लिये इस दूसरे विभाग की आयुर्वेदीय संस्था के लिये अनिवार्यता है। इस शाला का स्वरूप भी विशाल तथा साधन-सम्पन्न होना चाहिए। निर्माणकार भी कुशल, प्रत्यक्षकर्मी तथा अनुभवी हो तथा निर्माणशाला में वानस्पतिक तथा अन्य खनिज के विविध कल्पों का निर्माण होना आवश्यक है। पारद के अष्टविध-संस्कार, सत्वपातन कूपीपक्वरसायन, जारण आदि का वर्णन ग्रंथों में ही पड़ा न रहकर उनको प्रत्यक्ष में होगा। उत्कृष्ठ औषधियों का निर्माण भी चिकित्सा के लिए अत्यंत अनिवार्य है। ने वनस्पतियों की अनेक प्रक्रिया निर्माण कर दी, तदन्तर सिद्धौषधियों का व्यवहार होकर चिकित्सा में एक महान क्रांति हुई और चिकित्सा में प्रयुक्त औषधियों में शीघ्रगुणकारित्व तथा उनकी अल्पमात्रा आदि का व्यवहार रूढ़ हुआ। आज के युग औषधियों के इन गुणों की आवश्यकता अधिक ही प्रतीत होती है। अध्यापक चिकित्सालय में औषधियों के शीघ्र तथा निश्चित गुणों का परिचय नहीं करा सका तो उसके आयुर्वेद का उपासक होने पर भी उसका प्रचार नहीं हो सकता। अतएव औषधि-शाला प्रभावी औषधियों के निर्माण में सदैव व्यस्त हो। स्थगित हुए प्रयोगों को जीवित किया जाय। शास्त्र के आधार पर नूतन प्रक्रियाओं का भी निर्माण किया। विद्यमान परिस्थिति में यदि प्रतिस्पर्धा में सफल होना हो तो इन्जेक्शन से उत्पन्न वाले तात्कालिक तथा शीघ्रकारी गुणों के समक्ष आयुर्वेदीय औषधियों का निर्माण करने महत्वाकांक्षा सन्मुख होना आवश्यक है। इस विषय को दृष्टि से दूर नहीं किया जा है। अतएव आयुर्वेदीय-निर्माणशाला अथवा फार्मेसी यह आयुर्वेद का द्वितीय वैभव मैं मानता हूं। विविध प्रकार की प्रक्रिया सम्बन्धी विभाग उसमें अध्ययन की योग्य हो तथा साधन-सामग्री से सम्पन्न यह विभाग होना चाहिए। आयुर्वेद को प्रत्यक्ष पर करने के लिये उपरोक्त विशाल समुचित. चिकित्सालय तथा विशाल फार्मेसी से युक्त होने पर ही इस प्रकार का पाठ्यक्रम सफल होगा। फार्मेसी से सम्बद्ध एक वनस्पति होना चाहिये। वनस्पति उद्यान स्वतन्त्र न हो तो भी चल सकेगा लेकिन एक विशाल

वस्तु-संग्रहालय होना चाहिये जिसमें वनस्पति तथा खनिज द्रव्यों के नमूने, वर्गीकरण दर्शक चित्रादि का समावेश हो।

आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम को सफल बनाने के लिए अन्तिम तथा अत्यन्त महत्व के वैभव का अब मैं विवेचन करूँगा। यह वैभव सब से प्रथम होता है। गृह निर्माण की योजना तो बनाई परन्तु इन्जीनियर न हो, 'घट' का निर्माण करना हो किन्तु कुम्भकार न हो तद्वत् आयुर्वेदीय महाविद्यालय में रुग्णालय, फार्मेसी, उद्यान तथा इतर अन्य आवश्यक साधन-सामग्री होने पर भी उनमें चैतन्य को देने वाला आत्मा, दृष्टकर्मा, शास्त्रनिपुण अध्यापक न हो तो सब व्यर्थ सिद्ध होता है। जिस प्रकार आयुर्वेद के यशापयश के लिये उपरोक्त साधन-सामग्री की आवश्यकता होती है उसी तरह योग्य अध्यापक वर्ग पर भी यह निर्भर करता है। इस उत्तरदायित्व को अध्यापक टाल नहीं सकता। पाश्चात्य विज्ञान के समान अन्य कितने भी विज्ञान प्रतिस्पर्धा में हों परन्तु अध्यापक को अपने स्वशास्त्र सम्बन्धी दृढ़ आत्मविश्वास होना चाहिये। प्रायः आयुर्वेदीय अध्यापक में इस प्रकार के आत्मविश्वास का अभाव होता है। उसे पाश्चात्य वैद्यक ही आदर्श एवं प्रमाण प्रतीत होता है। आयुर्वेद की उस विज्ञान के साथ तुलना की जाती है। अध्यापक स्वतः दुर्बल तथा परावलम्बी होता है। उसकी स्वशास्त्र में निष्ठा तथा विश्वास न होने से वह स्वयं अपने व्यवसाय में तथा प्रसंग आने पर अपने घर में भी पाश्चात्य औषधि आदि का प्रयोग करता है। अध्यापन के समय तो कक्षा में आयुर्वेद की स्तुति पर गीत गाकर के 'परोपदेशे पांडित्य' का आचरण किया जाता है। अतः आयुर्वेद के अध्यापक के गुणों पर ही स्नातकों का निर्माण निर्भर करता है। जैसा अध्यापक होगा उसी तरह के स्नातक होंगे। अतएव अध्यापक को पूर्णतः आयुर्वेदीय बनाना होगा। इसके लिये स्नातकोत्तर शिक्षण क्रम की व्यवस्था होनी चाहिये। वर्तमान में पूना के तिलक विद्यापीठ द्वारा तथा जामनगर में केन्द्रीय शासन के द्वारा इस तरह की व्यवस्था है। यह व्यवस्था अभी पूर्ण है ऐसा नहीं लगता क्योंकि इस विषय में आवश्यक प्रवृत्ति अध्यापकों में अभीतक उपलब्ध नहीं होती। आयुर्वेदीय शिक्षा के लिये स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम की व्यवस्था होने पर ही आयुर्वेदीय संस्थाओं का गौरव होगा। स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम में ऐलोपैथी का समावेश करने से 'मूले कुठारः' वाला हाल होगा ऐसा मेरा स्पष्ट मत है।

अध्यापक की आयु योग्यता तथा अनुभव के विषय में विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध संस्थाओं में तो कुछ एक्यता है, परन्तु देश के विभिन्न राज्यों में आयुर्वेदीय शिक्षाक्रम के लिये विभिन्न प्रवेशयोग्यता होने से यह एक जटिल समस्या हो गई है। पूना, त्रिवेन्द्रम तथा गुजरात विद्यापीठ वालों ने B. A. M. S, की उपाधि रखी है। बनारस, लखनऊ तथा सागर विश्वविद्यालय की उपाधियाँ भिन्न-भिन्न हैं परन्तु प्रवेश योग्यता सर्वत्र एक समान है यह एक समाधान का विषय है। विक्रम विश्वविद्यालय तथा मराठवाड़ा विश्वविद्यालय में आयुर्वेद के शिक्षा की विद्याशाखा (Faculty) के निर्माण होने की सम्भावना है। उचित स्नातकोत्तर शिक्षित अध्यापक ही सर्वत्र हो ऐसा नियम विश्वविद्यालयों में होना होगा।

आयुर्वेदीय संस्था में कार्य करने वाला अध्यापक उसकी आत्मा होता है और संस्था का उत्तरदायित्व बहुधा उसी के कौशल्य पर निर्भर है। यह मेरा मत सर्वमान्य है उसकी उपादेयता समझी जा सकती है।

आयुर्वेदीय शिक्षाक्रम के लिये प्रस्तुत सूचना का सारांश इस प्रकार है।

(१) कम से कम ७५-१०० आयुर्वेदीय रुग्णशय्या वाले चिकित्सालय के अभाव में दीय संस्था का प्रारम्भ न किया जाय।

(२) प्रथम वर्ष से लेकर अन्तिम वर्ष तक छात्रों का सम्बन्ध चिकित्सालय से चाहिये।

(३) शरीर दोष-धातु-मल विज्ञान तथा द्रव्यगुण विज्ञान के अध्यापकों का प्रत्यक्ष कार्यक्षेत्र चिकित्सालय ही होना चाहिये।

(४) प्रत्यक्ष क्षेत्र में अधिक समय व्यतीत करने के बिना छात्र आयुर्वेद का व्यवहार कर सकेगा।

(५) निदान-चिकित्सा सम्बन्धी प्रत्यक्षज्ञान एक विशिष्ट पद्धति से सम्पूर्णतः दीय विभागों से ही कराया जाय तथा उसकी व्यवहारिकता पर भी विशेष भार जाय।

(६) सर्व प्रक्रियाओं के लिये अलग-अलग विभागों में विभक्त तथा शिक्षा देने की से युक्त निर्माणशाला (फार्मेसी) का आयुर्वेदीय शिक्षा संस्था से सम्बन्ध होना । संस्था के पास इसी फार्मेसी से सम्बन्धित वनस्पति उद्यान, वस्तु-संग्रहालय आदि हों।

(७) आयुर्वेदीय अध्यापक एक विशिष्ट योग्यता का तथा विशिष्ट आचार एवं का अनुसरण करने वाला हो।

दीर्घ मनन के पश्चात् मैंने उपरोक्त विचार प्रस्तुत किये हैं जिनके व्यवहार्य होने के में मुझे पूर्ण विश्वास है। अध्यापक तथा संस्था दोनों को इसमें अधिक परिश्रम करना लेकिन अब दूसरा कोई मार्ग नहीं है।

लेरिया शत्रु सिर्फ एक मात्रा में ही मलेरिया नष्ट करने में ब्रह्मास्त्र है।
आधा पौंड ६) रुपया।
दे कोढ़ की पेटेन्ट दवा ५) रुपया।
दोनों दवाओं पर वैद्य डाक्टर हकीम धन मान कमा रहे हैं।
पत्र मुफ्त मंगाइये।
आर० वोरकर आयुर्वेद भवन, (आ) मु. पो. मंगरूलपीर जि. अकोला
(विदभ)

पथ्यापथ्य-विमर्श

लेखक—श्री सोमदेव शर्मा सारस्वत, साहित्यायुर्वेदाचार्य बी० ए० एम० एस०,
रीडर—गवर्नमेण्ट आयुर्वेदिक कालिज, रायपुर (मध्यप्रदेश)

रोगियों के रोगों को दूर करके स्वस्थ बनाने के लिए की जाने वाली चिकित्सा में पथ्यापथ्य का प्रमुख स्थान है। पथ्य-का दूसरा नाम हित[1] और अपथ्य का दूसरा नाम 'अहित' भी है। पथ्य[2]—शरीर और मन के लिए अनुकूल पदार्थ ही हितकर होने से 'पथ्य' कहलाते हैं।

अपथ्य[3]—पथ्य के विपरीत अर्थात् शरीर और मन को अप्रिय पदार्थ अहितकर होने से अपथ्य कहलाते हैं क्योंकि वह क्षुब्ध दोषों को बाहर नहीं निकालते हैं।

उद्देश्य—शरीर[4] के लिए पथ्य रूप हितकर आहार के पदार्थों के सेवन करने का उद्देश्य, शरीर में समावस्था में विद्यमान धातुओं को प्रकृतिस्थ रखना, और विषम (विकृत) हुए धातुओं को समावस्था (प्राकृतिक-अविकृत अवस्था) में लाना है।

मन के लिए पथ्य रूप हितकर पदार्थों के सेवन करने का उद्देश्य, भविष्य में होने वाले मानसिक रोगों को रोक कर और विद्यमान रोगों को दूर कर मन को स्वस्थ रखना है।

उपर्युक्त सिद्धान्त के विपरीत अपथ्य रूप अहित[5] कर पदार्थों के सेवन करने से शरीर की धातुयें विषम होकर अनेक प्रकार के रोगों की उत्पत्ति हुआ करती है।

पथ्य और अपथ्य द्रव्यों के भेद

यह पथ्य रूप हितकर पदार्थ तथा अपथ्य रूप अहितकर पदार्थ आहार रूप और औषधि रूप द्रव्यों के भेद से दो प्रकार के हुआ करते हैं।

---

[1] १—सम्प्रत्युक्तस्य पथ्यस्य हितापरनाम्नो लक्षणमाह। (चरक सूत्र० अ० २५।४५ की चक्रपाणि की व्याख्या)

[2] २—पथ्यं पथोऽनपेतं यद्यच्चोक्तं मनसः प्रियम्।

[3] ३—यच्चाप्रियमपथ्यं च…(चरक सूत्र० अ० २५।४५)

[4] ४—यदाहारजातमग्निवेश! समाँश्चैव शरीरधातून् प्रकृतौ स्थापयति विषमाँश्च समीकरोतीत्येतद्धितं विद्धि, अहितं विपरीतमित्येतद्धिताहितलक्षणमनपवादं भवति।
(चरक० सूत्र० अ० २५।३३)

[5] ५—यत्किञ्चिद्दोषमुत्क्लेश्य न निर्हरति कायतः।
आहारजातं तत्सर्वमहितायोपपद्यते॥
यच्चापि देशकालाग्निमात्रासात्म्यानिलादिभिः।
संस्कारतो वीर्यतश्च कोष्ठावस्था क्रमैरपि॥
परिहारोपचाराभ्यां पाकात्संयोगतोऽपि च।
विरुद्धं तच्च न हितं हृत्सम्पद्विधिश्चयत्॥
(चरक० सूत्र० अ० २६।८१-८६)

२०१५

१—पथ्य आहार द्रव्य—वह है जो हार द्रव्य नित्य प्रति सेवन करने पर को स्वस्थ बनाए रखते हैं। जैसे रक्त, षष्टिक (साठी चावल), गोघृत-आदि। ऐसे पदार्थ चरक मुनि के मत स्वस्थ[1] वृत्तिमत्, कहलाते हैं यह शरीर वृद्धि करते हैं। जैसे—हिताहारोपयोग एव पुरुषवृद्धि करो भवति।

(चरक० सू० २५।३१)

२—पथ्य औषधि द्रव्य—वह हैं जो र में कुपित हुए दोषों को शान्त कर के को दूर करते हैं। जैसे—निशोथ, । चरक मुनि के मत में ऐसे पदार्थ [2] प्रशमन' कहलाते हैं।

अपथ्य आहार और औषधि द्रव्य वह समावस्था में शरीर को धारण करने वायु, पित्त, कफ और रस रक्त आदि को दूषित कर देते हैं जैसे मन्दक दही, दूध के रूप को छोड़कर तरह दही न बना हुआ पदार्थ) और आदि। चरक के मत में ऐसे पदार्थ [3] प्रदूषण' द्रव्य कहलाते हैं।

पथ्य रूप आहार पदार्थ भी विषम मात्रा[4], काल[5], क्रिया[6], भूमि[7], देह[8], दोष[9], तथा पुरुषों की भिन्न[10] अवस्थाओं में अपथ्य हो सकते हैं।

पथ्यतम (हिततम) द्रव्य

पथ्य रूप आहारद्रव्यों और औषधि-द्रव्यों की संख्या बहुत है और स्वस्थ वृत्त के प्रकरण और प्रत्येक रोग की चिकित्सा के अन्त में उसका निर्देश शास्त्रकारों ने कर दिया है। उनमें से जो सर्वश्रेष्ठ होते हैं वह पथ्यतम (हिततम) द्रव्य कहलाते हैं।

पथ्यतम आहार[11] द्रव्य

१—साठी चावल, २—रक्तशालि, ३—मूँग की दाल, ४—आकाश जल, ५—सैंधानमक, ६—जीवन्तीशाक, ७—गोघृत, ८—गोदुग्ध, ९—तिल का तेल, १०—अदरक, ११—अंगूर, १२—आमला, १३—

---

[1] —स्वस्थवृत्तौ मतं किञ्चित्।

[2] —किञ्चिद्दोषप्रशमनम्।

[3] —किञ्चिद्धातुप्रदूषणम्। जैसे—किञ्चिद्दोषप्रशमनं किञ्चिद् धातु—षणम्।

स्वस्थवृत्तौ मतं किञ्चित् त्रिविधं द्रव्य-॥

(चरक सू० अ० १।६७)

[4] —जैसे रक्त शालि और गोघृत पथ्य हुए भी विषम (अधिक अथवा हीन) में अपथ्य हो जाते हैं।

[5] —रक्तशालि लघु होने के कारण हेमन्त ऋतु में प्रबल जठरामग्नि वाले पुरुषों के लिए अपथ्य हो जाते हैं।

[6] —रक्तशालि को भली भांति पकाकर मांड न निकालें तो उसका यह भाव अपथ्य हो जाता है।

[7] —आनूप देश की भूमि में उत्पन्न हुए रक्तशालि अपथ्य होते हैं।

[8] —रक्तशालि लघु (हलके) होने के कारण मेदस्वी पुरुषों के लिए अपथ्य होतेहैं।

[9] —रक्तशालि-वायु दोष की वृद्धि करने से बातज रोगों में अपथ्य होते हैं।

[10] —तिक्त पदार्थ, कफ प्रधान बाल्यावस्था में पथ्य होते हुए भी बात प्रधान वृद्धावस्था में अपथ्य हो जाते हैं।

[11] —षष्टिकाञ् छालिमुद्गांश्च सैन्धवामलके यवान्।
आन्तरिक्षं पयः सर्पिजांगलं मधु चाभ्यसेत्॥ (चरक० सूत्र० अ० ५-१२)

सर्करा (मिश्री, चीनी), १४—जौ, १५—शहद, १६—तक्र।

पथ्यतम औषधि द्रव्य

१—मैनफल (वामक), २—निशोथ (सुखविरेचक), ३—अम्लतास (मृदुरेचक), ४—अपामार्ग (शिरो विरेचक), ५—वायविडंग (कृमिघ्न), ६—सिरस (विषघ्न), ७—खैर (कुष्ठघ्न), ८—रास्ना (वातघ्न), ९—आमला (वयः स्थापक), १०—हरड़ (पथ्य), ११—एरण्ड की जड़ (वृष्य, वातहर), १२—थूहर का दूध (तीक्ष्ण विरेचक), १३—पीपरामूल (दीपनीय, पाचनीय, आनाहहर), १४—चित्रकमूल (दीपनीय, पाचनीय, गुद शोफ अर्शहर, शूलहर), १५—पुष्करमूल (पोहकर मूल—हिचकी, श्वास, खांसी और पार्श्वशूल नाशक), १६—नागरमोथा (संग्राही, दीपनीय, पाचनीय), १७—सुगन्ध बाला (नेत्रबाला-दाहशामक, दीपनीय, पाचनीय, वमन और अतिसारहर), १८—सोनापाठा (संग्राही, पाचनीय, दीपनीय), १९—अनन्ता (संग्राही और रक्तपित्त शामक), २०—गिलोय (संग्राही, वातहर, दीपनीय, कफ, रक्त विबन्ध शामक), २१—बेलगिरी (संग्राही-दीपनीय, वात कफ शामक), २२—अतीस (दीपनीय, पाचनीय, संग्राही और सर्वदोषहर), २३—पद्मकेशर (संग्राही, रक्त पित्त शामक), २४—जवासा (पित्त कफ शामक), २५—प्रियंगु (रक्त और पित्त वृद्धि शामक), २६—कुड़ा की छाल (कफ पित्त रक्त संग्राही और शोषक), २७—खम्भारी का फल (रक्त संग्राही, रक्त पित्त शामक), २८—पृश्निपर्णी (संग्राही, वातहर, दीपनीय, वृष्य), २९—विदारीकन्द (वृष्य और सर्वदोषहर), ३०—खरेंटी (संग्राही-वातहर, बलवर्द्धक), ३१—गोखरू (मूत्रकृच्छ्र और वातहर), ३२—हींग (छेदनीय, दीपनीय, अनुलोमक, वात कफ शामक), ३३—अम्लवेत (भेदनीय, दीपनीय, अनुलोमक, वात कफ शामक), ३४—यवक्षार (मूत्रल, पाचनीय और अर्शनाशक), ३५—तक्र (ग्रहणी दोष, सूजन, अर्श, घृतव्यापद नाशक), ३६—चन्दन (दुर्गन्धहर और दाहशामक प्रलेप), ३७—रास्ना और अगुरु (शीतापनयन प्रलेप), ३८—खस (दाह, त्वग्दोष और स्वेदापनयन प्रलेप)। ३९—कूठ (वातहर अभ्यङ्ग और उपनाह (पुल्टिस,) के उपयोगी), ४०—महुआ (चक्षुष्य, वृष्य, केश, कण्ठ और वर्ण (रंग) के लिए हितकर), ४१—भैंस का दूध (निद्राकर), ४२—ऊंटनी का दूध (उदर रोग और शोथ नाशक), ४३—खील (वमन नाशक), ४४—भिलावा और चित्रक मूल (शुष्कार्श शामक), ४५—लहसुन (गुल्म और वातहर), ४६—लोह भस्म (पाण्डुनाशक), ४७—गूगल (वायु, मेद (चर्बी) वृद्धि और व्रणनाशक), ४८—त्रिफला (तिमिर नाशक), ४९—ईख (मूत्रजनक) यह सब पथ्यतम औषधिद्रव्य हैं।

अपथ्यतम द्रव्य

पथ्य द्रव्यों की भांति अपथ्य द्रव्यों का वर्णन अधिक संख्या में शास्त्रों में मिलता है, उनमें से सबसे अधिक अहितकर द्रव्य अपथ्यतम कहलाते हैं।

अपथ्यतम आहार द्रव्य

१—उड़द, २—जई, ३—वर्षा का जल, ४—सरसों का शाक, ५—सूखे शाक, ६—भेड़ का दूध, ७—भेड़ का घृत, ८—कसूम का तेल, ९—बड़हर का फल, १०—

११—दही, १२—राब, १३—
१४—ऊसर नमक (रेह), दूध या खटाई आदि।

अपथ्यतम[1] आहार द्रव्यों के सेवन शरीर में अनेक प्रकार की व्याधियां हुआ करती है। विरुद्धाहार के अन्धापन आदि अनेक व्याधियां हो जाया करती हैं।

द्धाहार से उत्पन्न व्याधियां

विरुद्धाहार को साधारणतया मनुष्य, वस्था में शक्तिशाली होने के कारण—नहीं समझते हैं वह विरुद्धाहार रूपी के सेवन के निषेध की हंसी उड़ाया हैं और उनका सेवन दुराग्रह पूर्वक करते हैं। जैसे—समान मात्रा में घृत शहद का सेवन करना, अथवा गर्म में शहद डालकर पीना, यद्यपि इस हार रूप अपथ्य से तत्काल मृत्यु भयंकर व्याधि नहीं उत्पन्न हुआ है, तथापि वह यह नहीं समझते हैं, इस प्रकार के विरुद्धाहार रूप अपथ्य को सेवन करके वे अपने शरीर की धातुओं दूषित कर नपुंसकता[2] अन्धापन, विसर्प, दर, विस्फोट, उन्माद, भगन्दर, मूर्च्छा, मद, आध्मान, गले के रोग, पाण्डु, आमविष, किलास; कुष्ठ, ग्रहणी, राजयक्ष्मा, रक्त पित्त, ज्वर, पीनस, सन्तानदोष, और मृत्यु का बीज अपने शरीर में बो रहे हैं। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि वह आगे लिखे हुए विरुद्धाहार का सेवन न करे।

१—दूध के साथ, नीबू, आमड़ा, बड़हल, करोंदा, केला, जंबीरी नीबू; बेर, कच्चे आम, कैथ, डांसरिया, अखरोट, कटहल, नारियल, अनार, आमला और काँजी आदि अन्य खट्टे पदार्थ, परस्पर विरुद्ध रस के होने के कारण नहीं खाने चाहिए।

२—दूध के साथ मालकांगनी, मोंठ, कुलथी, उड़द और सेम न खावें।

३—मूली, लहसन, काला संहजना, छोटी तुलसी, बन तुलसी और तुलसी खाकर दूध न पीवें क्योंकि इससे कुष्ठ रोग उत्पन्न होने का भय रहता है।

४—मांसाहारी व्यक्ति दूध के साथ मछली और सरसों के तेल में भुना हुआ कबूतर का मांस न खावें, क्योंकि इससे धमनी में ग्रन्थि, रक्तवाही स्रोतों में रुकावट, अपस्मार (मृगी), शंखक, गलगण्ड और रोहिणी रोग की उत्पत्ति तथा मृत्यु भी हो सकती है।

५—मुर्गा, बकरी आदि नगर में रहने वाले तथा जल और तराई प्रदेश में रहने वाले जानवरों का माँस, शहद, गुड़, तिल, दूध, उड़द, मूली, भिस, अंकुर उत्पन्न हुए अन्न के साथ न खावे क्योंकि इनसे बहिरापन, अन्धापन, काँपना, जड़ता, अस्पष्ट बोलना, भिन-भिनाना, और मृत्यु भी हो सकती है।

६—मकोय और शहद मिला कर खाना, शहद को गर्म करके खाना, अथवा धूप में

---

[1] —अहिताहारोपयोगः पुनर्व्याधि-) निमित्तमिति।
(चरक सूत्र० अ० २५।३१)

[2] —पाण्ढ्यान्ववीसर्पदकोदराणां विस्फो-न्मादभगन्दराणाम्। मूर्च्छामदाध्मान-नां पाण्ड्वामयस्यामविषस्य चैव॥
कुष्ठग्रहणीगदानां शोषास्रपित्तज्वर-नाम्। सन्तानदोषस्य तथैव मृत्योर्विरुद्ध-वदन्ति हेतुम्॥
(चरक० सूत्र० अ० २६।१०८-१०९)

चलकर गर्मी से व्याकुल पुरुष का शहद खाना, समान मात्रा में शहद और घृत मिला कर खाना, या शहद और आकाशजल अथवा शहद और कमलगट्टा खाना अथवा शहद या भिलावा खाकर गर्म जल का खाना और बासी मकोय का शाक खाना परस्पर विरुद्ध आहार होने के कारण निषिद्ध है, इसलिए इनका उपयोग न करना चाहिए।

अपथ्यतम औषधिद्रव्य

१. तेंदू—अरुचिकर, २. क्षार—नपुंसकता, ३. कच्चा कैथ—कण्ठ के लिये अहितकर, ४. मन्दक (बिना जमा दही)—अभिष्यन्दकर, ५. जामुन—वातजनक, ६. कुलथी अम्लपित्त जनक, ७. उड़द—पित्त जनक।

यह औषधिद्रव्य नित्य सेवन करने से शरीर के लिये अहितकर होने से अपथ्यतम होते हैं इसलिये इनको निरन्तर अधिक मात्रा में सेवन नहीं करना चाहिये।

पारद सेवन में पथ्यापथ्य

पारद घटित प्रयोगों के सेवन करने के समय निम्नलिखित पथ्यापथ्य का पालन करना परमावश्यक है :—

पथ्य—घृत, सैन्धव नमक, धनिया जीरा और अदरक से बघारा (छौंका) गया परवल, चौलाई और लौकी का शाक, गेंहू, जौ, पुराने चावल, गाय का दूध, मस्तु, दही, घृत, मूंग और अरहर की दाल और हंसोदक, कपूर, चम्पा, पाटला, इलायची, के फूल दालचीनी और धनिया से सुगन्धित किया जल का पीना और चातुर्जात (दालचीनी, तेजपत्र, इलायची, नागकेसर,) और कपूर के प्रयोग से मुख को सुगन्धित करना पारद के प्रयोग सेवन करने वाले के लिये पथ्य है।

अपथ्य—कटेहली, बेल, पेठा, करेला, बेंत के आगे का भाग, उड़द, मसूर, लोबिया, कुलथी, सरसों, तिल यह वस्तुयें पारद के प्रयोग सेवन करने वाले के लिये अपथ्य हैं।

चिकित्सक को पारद घटित औषधि देते समय रोगी के लिये इस पथ्यापथ्य के पालन करने का निर्देश करदेना चाहिये, क्योंकि साधारण तया रोगी पथ्य पालन करने पर बिना औषधि खाये भी अच्छे हो जाते हैं और बिना पथ्य पालन किये अर्थात् अपथ्य वस्तुओं का उपभोग करने पर औषधियों के सेवन करने से भी कोई लाभ नहीं होता है और औषधि खाना व्यर्थ हो जाता है। इस से पथ्य और अपथ्य सेवन का महत्व ज्ञात हो जाता है इसलिये रोगी की चिकित्सा करते समय उसके पथ्य और अपथ्य पालन पर विशेष ध्यान देना चाहिये।

पथ्ये सति गदार्त्तस्य किमौषधिनिषेवणैः।
पथ्येऽसति गदार्त्तस्य किमौषधिनिषेवणैः॥
(वैद्यजीवन)

औषधियाँ
और
मशीनें
हर प्रकार की विधिपूर्वक विनिर्मित रस, रसायन, आसव, अरिष्ट भस्म, अवलेह आदि औषधियां और औषधि निर्माण संबंधी कुटाई, पिसाई, घुटाई व गोलियाँ आदि बनाने की बिजली तथा हाथ दोनों प्रकार से चलने वाली मशीनें आदि मिलने का एक मात्र विश्वसनीय स्थान—
दयालु फार्मास्युटिकल वर्क्स
बीकानेर

पञ्चविधकषायकल्पनम्

आयुर्वेदाचार्य वागीश्वर शुक्ल, ए० एम० एस० सैंट्रल रिसर्च इंस्टिटयूट, जामनगर

चरकोक्तोऽयमग्रिमः श्लोकः पाण्डुरोगेऽपि पित्तस्यैव प्राधान्यमिति द्योतयति । यथा—

दोषाः पित्तप्रधानास्तु यस्य कुप्यन्ति धातुषु ।
शैथिल्यं तस्य धातूनां गौरवञ्चोपजायते ॥ च० चि० १६ अ० । ४ श्लो
तथैव वाग्भटेनाप्युक्तम्—

पित्तप्रधानाः कुपिता यथोक्तैः कोपनैर्मलाः । अ० हृ० नि० १३ अ । १ श्लो० । आचार्यचक्रपाणिदत्तेन पित्तस्य पाण्डुरोगकरणं प्रति मुख्यं कर्तृत्वञ्चाङ्गीकृतम् अत एव रक्तपित्तचिकित्सानन्तरं पित्तप्रधानपाण्डुरोगचिकित्सितमुच्यते ।

अत्रेदमवधेयं यन्नायं पाण्डुरोग एकविध एवापि तु कामलाहलीमकादीनां पर्यायाणां अनेकविधो वर्तते । यतस्तेऽपि पित्तप्रधाना एव अतश्चक्रपाणिनोच्यते पाण्डुरोगाध्यायव्याख्यानावतरणिकायाम्—

"पाण्डुना वक्ष्यमाणहरितादिवर्णेभ्यः प्रधानेन वर्णेनोपलक्षितश्चिकित्सितो वा रोगः पाण्डुरोगः । कामला हलीमकादि चिकित्सा च पाण्डुरोगभेदत्वादेव तेषामिह वक्तव्या, किंवा पाण्डुरोगादीनां चिकित्सितं पाण्डुरोगचिकित्सितमिति परिग्रहात् कामलादि चिकित्सितमपि ज्ञातमेव ।" इति ।

निबन्धसङ्ग्रहकारेण डल्लनेनाप्युच्यते, "अत्रादिशब्दद्वयं लुप्तं द्रष्टव्यम् तेन पाण्ड्वामयप्रतिषेधमिति । तत्र प्रथमेनादिशब्देन कृष्णपीतमिश्रा वर्णा ग्राह्याः, कामलादयो द्वितीयेन । अपरं तु पाण्डुवर्णाधिक्यात् सर्वे एव पाण्डुरोगाः प्रोच्यन्त इति मत्वा एकमेवादिशब्दं लुप्तं वर्णयन्ति, ते च आदिशब्दात् कामलादीन् गृह्णन्ति । अपरे त्वादिशब्दं विनापि कामलादीन् पठन्ति, पाण्डुरोगान्तर्भावात्तेषामिति" ।

अथ कामलादीनां पाण्डुरोगेऽन्तर्भूतत्वमवधार्य पाण्डुरोगे प्रयोज्य स्वरसानां सङ्ग्रहे ग्रन्थे यथाहुरात्रेय धन्वन्तरिप्रभृतयो महर्षयस्तदुत्तरकालिकाऽऽचार्याश्च—

तत्रादौ पाण्डुरोगे शोधनस्य प्राधान्यम्, यदुक्तं चरके सुश्रुतेऽपि चा—

साध्यानामितरेषान्तु प्रवक्ष्यामि चिकित्सितम् ।
तत्र पाण्ड्वामयी स्निग्धस्तीक्ष्णैरूर्ध्वानुलोमिकैः ॥
संशोध्यो मृदुभिस्तिक्तैः कामली तु विरेचनैः । च० चि० १६ अ । ३९-४०—

तथा

साध्यन्तु पाण्ड्वामयिनं समीक्ष्य स्निग्धं घृतेनोर्ध्वमधश्च शुद्धम्, सम्पादयेत् ।
सु० उ० ४४ अ० । १४

यद्यपि पाण्डुरोगे ऊर्ध्वशोधनं निषिद्धं, तथापि ऋतु-देश-प्रकृति-काल शरीरापेक्षया मृदु वमनं देयम् । उक्तं हि तन्त्रान्तरे—

"कालञ्च देश प्रकृती शरीरं समीक्ष्य दद्याद् वमनं विधिज्ञः ।
वान्तस्य तीक्ष्णान्यनुलोमनानि कल्पोपदिष्टानि भिषग्विदध्यात् ॥ इति"

किन्तु दोषाणामल्पमात्रमेव निर्हरणं श्रेयष्करं भवति, उक्तं हि—

"हरेच्च दोषान् बहुशोऽल्पमात्रान् श्वयेद्धि दोषेष्वतिनिर्हृतेषु ।

शोधनार्थक स्वरसयोगाः कुत्रापि न दृश्यन्ते, अत एव संशननमधिकृत्यैव तान् प्रवक्ष्यामः—तत्र प्रथमतः सामान्यपाण्डुरोगे—

(१) धात्रीफलानां रसमिक्षुजञ्च मन्थं पिबेत् क्षौद्रयुतं हिताशी । (सु० उ० ४४ अ । १५, १६)

(१-क) आमलकफलानां स्वरसं क्षौद्रयुतं पिबेदित्येको योगः ।

(१-ख) इक्षुजं रसं क्षौद्रयुतमिति द्वितीयः ।

तन्त्रान्तरेप्युक्तम्—

"पिबेत् सुशीतलान् मन्थान् घृताक्तान् मधुसंयुतान् ।
सक्षौद्रं वा रसं धात्र्या इक्षोर्वापि हिताशनः ॥" इति

(२) कनीयः पञ्चमूलाम्बु शस्यते पानभोजने ।
पाण्डूनां कामलार्तानां मृद्वीकामलकाद् रसः ॥ अ०हृ०चि० १६ अ० ३२ श्लो०

पाण्डुरोगिणां कामलार्तानाञ्च पानभोजने ह्रस्वपञ्चमूलजलं पथ्यरूपेण, तथा चिकित्सायां मृद्वीकारस आमलकरसश्च शस्यते ।

वातजे पित्तजे च पाण्डुरोगे स्वरसप्रयोगो न दृश्यते । कफजे तु—

कफ पाण्डुस्तु गोमूत्रक्लिन्नयुक्तां हरीतकीम् ।
आरग्वधं रसेनेक्षोर्विदार्यामलकस्य वा ॥ च० चि० १६ अ० । ५८
सत्र्यूषणं बिल्वपत्रं पिबेन्ना कामलापहम् ॥

अत्र व्याजहार चक्रपाणिः—"गोमूत्र क्लिन्नयुक्तामिति गोमूत्रेण क्लिन्नां कल्कीकृतां तथा गोमूत्रेण युक्तामालोडितां पिबेत् । इति ।

अन्ये तु आरग्वधरसेन हरीतकीं पिबेदिति योजयन्ति । आरग्वधं सत्रिकटुकं विदार्या आमलकस्य च रसेन पिबेदित्यपरोर्थः ।"

अयमेव योगः अष्टाङ्गसङ्ग्रहे चिकि० १८ अध्याये पाण्डुरोगचिकित्सिते इत्थं दृश्यते—

आरग्वधं रसेनेक्षोर्विदार्यामलकस्य वा ।
सत्र्यूषणं बिल्वपत्रं पाययेत् कामिलापहम् ॥ इति

अत्र व्याख्यायतेन्दुना—इक्ष्वादीनामन्यतमस्य रसोनारग्वधं समेन त्र्यूषणेन युक्तं कामिलापहं भिषगातुरं पाययेत्, बिल्वमात्रं मरिचादियुक्तं इति । मात्रशब्देनाचार्यः पलस्य दोषाद्यपेक्षया ऊनस्याधिकस्य वा प्रयोगमुपदिशति ।

अष्टाङ्गहृदयेऽरुणदत्तेन व्याख्यातम्—"इक्षोरसेन विदार्या रसेनामलकरसेन वा सह पत्रप्रमाणमारग्वधं च कामलापहं पाययेदिति" (अ० हृ० चि० १६ अ० । ४१)

उपर्युक्तव्याख्यानत्रयेण स्पष्टं भवति यदातुरावस्थां वीक्ष्यैतेषां स्वरसानां प्रयोगः डुरोगे कामलायां वा कार्यः ।

अथ कामलायां प्रोक्ताः स्वरसयोगा निबध्यंते—

(१) त्रिफलाया गुडूच्या वा दार्व्या निम्बस्य वा रसम् ।
शीतं मधुयुतं प्रातः कामलार्तः पिबेन्नरः ।। च० चि० १६ अ० । ६३

अयमेव श्लोकः अष्टाङ्गसंग्रह, हृदय, भैषज्यरत्नावल्यादिग्रन्थेषु पदपरिवर्तनेन ते, तत्र क्वाथस्य स्वरसस्य वा ग्रहणनिर्देशो विधीयते यथेन्दुः, "त्रिफलादीनामन्यतमस्य क्वथितगृहीतं कषायं माक्षिकेण युक्तं कामिलार्ताय प्रातःप्रातर्योजयेदिति सामान्येन कामिलारिचिकित्सा"। अन्ये ऽरुणदत्तादयस्तु रसेन स्वरसमेवगृह्णन्ति । व्याध्यातुरबलमवेक्ष्यो- नि साधुइत्यस्माकं मतम् ।

(२) कामलार्तानां मृद्वीकाऽऽमलकी रसः पानाहारे प्रशस्यते, यदुक्तम्—

स्थिरादिभिः शृतं तोयं पानाहारे प्रशस्यते ।
पाण्डूनां कामलार्तानां मृद्वीकाऽऽमलकीरसः ।। च० चि० १६ अ० । ११४

शाखाश्रयदोषस्य कोष्ठानयनार्थम्—

मातुलुङ्गरसं क्षौद्रपिप्पलीमरिचान्वितम्, सनागरं पिबेत् । इति (च० चि० १६) कुर्वतोऽस्य पित्तं स्वमाशयमेति, यदुक्तम्—

वृद्ध्याभिष्यन्दनात् पाकात् स्रोतोमुखविशोधनात् ।
शाखां मुक्त्वा मलाः कोष्ठं यान्ति वायोश्च निग्रहात् ।। च० सू० २८ अ०

कामलायां किञ्चित्तैल लवणयुक्तो द्रोणपुष्पीरसस्ताम्रपात्रे विघृष्टोऽञ्जनार्थे प्रयोज्यः। हि—"अञ्जनं कामलार्तस्य द्रोणपुष्पीरसः स्मृतः" (भै० र० पाण्डुरोगाधिकारे) ।

अथ हलीमकचिकित्सा

गुडूचीस्वरसक्षीरसाधितं माहिषं घृतम् ।
स पिबेत् त्रिवृतां स्निग्धो रसेनामलकस्य तु ।। च० चि० १६ । १३४

अष्टाङ्गसङ्ग्रहे हृदये च—

गुडूचीस्वरसक्षीरसाधितेन हलीमकी ।
महिषी हविषा स्निग्धः पिबेद्धात्रीरसेन तु ।
त्रिवृतामिति ।। चि० १६ अ०

हलीमकवान् गुडूचीस्वरसक्षीरपक्वेन महिषीघृतेन स्निग्धः सन् त्रिवृतां धात्रीरसेन ति । गुडूचीस्वरसोऽत्र घृताच्चतुर्गुणः, क्षीरं घृतसममिति पाकक्रमः ।

पाण्डुचिकित्सायां स्वरसार्थमुपयुज्यमानद्रव्याणां परिचय-पूर्वकमकाराधनुक्रमणिका

आयुर्वेदशास्त्रीयनाम	वनस्पतिशास्त्रीय नाम	द्रष्टु:नाम	भाषायां नाम	विशेष
१. आमलकी	Phylanthus Emblica	L	आँवला	फलम्
२. आरग्वधः	Casia Fistula	,,	अमलतास	मज्जा
३. इक्षुः	Sacearam officinarum	,,	ऊख	रसः
४. गुडूची	Timisfora corbifolia	—	गुरुच	काण्डम्
५. त्रिवृता	Ipomea (opercalira) terpithum	Br.	निशोत	मूलम्
६. दार्वी	Berberis aristata	D. c.	दारुहल्दी	त्वक्
७. द्रोणपुष्पी	Leucus cephalotes	—	गुम्म	पञ्चाङ्ग
८. निम्ब	Azadirachta (Indica) melia	L	नीम	अन्तस्त्वक्
९. पिप्पली	Piperlongum	,,	पीपर	फलम्
१०. मधु	—	—	शहद	—
११. मातुलुङ्ग	Citrusde-cumena	Murr	बड़ा नीबू बिजौरानीबू	फलम्
१२. मृद्वीका	Vitis Vinifera	L	मुनक्का	,,
१३. विदारी	Ipomocadigitata	,,	विदारीकन्द	कन्दम्
१४. विभीतक	Terminaliabeleric	Rose	बहेड़ा	फलम्
१५. शुण्ठी	Zinziber officinalis	,,	सोंठ	कन्दम्

पित्तचिकित्सायांस्वरसार्थमुपयुज्यमानद्रव्याणां परिचयपूर्वकमकाराद्यनुक्रमणिका

शास्त्रीयनाम	बनस्पतिशास्त्रीय नाम	द्रष्टु नाम author name	राष्ट्र (हिन्दी) भाषायां नाम	विशेष प्रयोज्याङ्गम्
अभया	Terminalia chebula	Retz	हरड़	फलम्
अश्वत्थ	Ficusreligiosa	L	पीपल	त्वक्-वल्कल
आमलक	Phyllanthusemblica	,,	आंवला	फलम्
आरग्वध	Casiafistula	,,	अमलतास	मज्जा
इक्षुरस	Saccharum officinarum	,,	ईख	काण्डरसः
इन्द्रयव	Holurohena antidysenterica	wall	इन्द्रजौ	फलानि
उदुम्बर फल	Ficus glomerata	Roxbe	गूलर	फलम्
उत्पल	Nymphae stellata	willd	नीलाकमल	पुष्प केशरौ (पंचाङ्गम्)
अडूसा	Adhatodavasia	nees	अरुण	पत्रं, पंचाङ्गम्
कटुका	Hibiscus abelmoschu	L	कुटकी	फलम्
कृष्णा	Piperlongum	,,	पीपर	,,
गवाक्षी	—	—	—	मूलम्
गांगेयी	Cyperus Rotundus	L	मोथा	,,
तालीशपत्र	Abieswebbiana	windl	स्वनामख्यातम्	पत्रम्
त्रायमाणा	Delphinium zalil	Aitch	,,	मूलम्
त्रिवृता	Ipomeaturpethum	Roxb	निशोथ	,,
दाडिम	Punicagranatum	L	अनार	बीजम्
दूर्वा	Cynodon dactylon	Pers	दूब	पंचाङ्गरसम्

१९. द्राक्षा	Vitis vinifera	L	मुनक्का	फलम्
२०. नागकेशर	Ochro carpus longifolius	Benth zhon	स्वनामख्यातम्	पुष्पकेशरम्
२१. पद्मकम्	Prunus puddum	Roxb	पदम या पद्मकाष्ठ	—
२२. पद्मकेशर	—	—	कमल की केसर	केशर
२३. पलाण्डु	Allium cepa	L	प्याज	कन्दम्
२४. प्रपौन्डरीक				
२५. फलिनी				
२६. बोल				
२७. भूनिम्ब	Severtia chirata (E-chiretea)	Ham	चिरायता	पंचाङ्गम्
२८. भृङ्गराजमूल	Eclipta alba	Hassk	भंगरैया	मूलम्
२९. मदनफल	Randiadumetorum	Lam	मैनफल	फलम्
३०. यस्टी	Glycerizaglabra	L	मुलेठी	काण्डम्
३१. यवासमूल	Alhagimauronem	Desv	जवासा	मूलम्
३२. लोध्र	Symplocosracemosa	Roxb	लोध, पठानी	
३३. वास्तूक	Chenopodium Album	L	बथुआ	शाकम्
३४. वानीर	Calamus rotarg (Eng-Cane)	L	जलवेत	पंचाङ्गम्
३५. शाड्वल	Cynodon dactylon	Pers	दूब	"
३६. सिता	—	—	चीनी	
जातवद्रव्याणि		—	लाक्षा	
३७. अलक्तकः				
३८. शंखः				
३९. क्षीरम्				

महर्षि चरक का अपूर्व योग

* ब्राह्म-रसायन *

मानसिक शक्ति, स्फूर्ति, उत्साह, बुद्धि, स्मृति, ओज
एवं दीर्घायुष्य प्राप्ति के लिए

अत्युत्तम कल्प है।

नवशक्ति आयुर्वेदालय (प्रा॰) लि॰
भुसावल - जबलपुर - नागपुर

वेदों में आयुर्वेद का वर्णन

लेखक—श्री वेदपति शास्त्री व्याकरणाचार्य, मैनपुरी

भारतीय संस्कृति, सभ्यता, विद्या एवं सदाचारका आदिस्रोत वेद है। इस सत्य को प्राचीनकाल से आजतक सभी मनीषी विद्वानों—चाहे वे भारतीय हों वा युरोपीय—ने मुक्तकण्ठसे स्वीकार किया है। इस की साक्षीमें भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों के विचार संक्षेप से दिये जारहे हैं—

देखिये सत्यमित्र सामश्रमी—जो कि वेदों के अच्छे विचारक थे—क्या लिखते हैं:—

जिस समय तक फोटोग्राफी, फोनोग्राफी, गैस-प्रकाश, तार, टेलीफोन, रेल, विमान इस देश में लाये न गये थे, तब तक इन पदार्थों का वर्णन करने वाले मन्त्रों को कौन समझता था? यदि वैज्ञानिक उन्नति के ये साधन नष्ट हो जाते तो हो सकता है कि वेद के किसी मन्त्र का सत्यार्थ कोई भी कर न पाता। हमारी सम्मति है कि वैदिक काल में हमारे देश ने बहुत उन्नति की थी। उस समय भूगर्भविद्या, ज्योतिष विद्या और रसायन विद्या का नाम आधिदैविक विद्या था। शरीर विद्या, मनोविज्ञान एवं धर्मशास्त्र को आध्यात्मिक विद्या कहते थे। इस देश में वैज्ञानिक खोज इस सीमा तक की गई थी कि आविष्कारों के वर्तमान केन्द्र-स्थल—युरोप के देशों एवं अमेरिका ने भी अभीतक नहीं की।

बहुत से भारतीय विद्वानों ने वेदों के महत्व को समझा है। कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने भी वेदों के वास्तविक मर्म का स्पर्श किया है, जिसका प्रमाण निम्नलिखित है—

(१) नोबल पुरस्कार का विजेता मेटरलिंक—जो कि संसारप्रसिद्ध दार्शनिक माना गया है—इस प्रकार लिखता है—

"वेद ही एकमात्र विश्व-ज्ञान के भण्डार हैं, जिनकी तुलना हो ही नहीं सकती। वेदों में गुप्त रूप से अर्थात् मन्त्र रूप से सर्वविद्याओं का उपदेश उपलब्ध है।"

(२) अमेरिका के सुप्रसिद्ध विचारक मिस्टर थौरो निरन्तर वेदों का स्वाध्याय करने के उपरान्त इस तथ्य पर पहुँचे हैं—

"वेदों की विचारधारा पवित्रतम है। वेदों में प्रकाश, ज्ञान एवं विज्ञान है। वेद सार्वजनिक, सार्वकालिक एवं सार्वदेशिक हैं। वेद परमात्मा के पवित्रतम प्रकाश से परिपूर्ण हैं।

प्राचीन ग्रन्थ तो सभी इस बात को स्वीकार करते हैं। यहां केवल तैत्तिरीय ब्राह्मण का प्रमाण उद्धृत करते हैं। उसका भावार्थ यह है—परमेश्वर ने सब पदार्थों को देखा। उसने सब पदार्थों को त्रयी विद्या में पाया। इसी में सब छन्द, स्तुति, प्राण और ज्ञान का बीज है। यही अमृत है। जो अमृत है, वही एकमात्र ज्ञान है। यही मर्त्य (जीवनकाल) के लिये उपयोगी है।

मनुस्मृति में भी इसी बात की पुष्टि की गई है।

अस्तु, यह बात प्रमाणित है कि पुरातनकाल में यावत् विद्यायें प्रचलित

२०१५

उन सबका समावेश वेदों के चार (आयुर्वेद अर्थात् चिकित्सा शास्त्र, अर्थात् शिल्प शास्त्र, गान्धर्व वेद वाद्य शास्त्र और धनुर्वेद अर्थात् विद्या) में होता है। इसके अतिरिक्त (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त ज्योतिष), और वेदों के ६ उपांग—योग, वैशेषिक, न्याय, पूर्वमीमाँसा, —जिनमें तर्क-विज्ञान, मनोविज्ञान, विज्ञान, और पदार्थ-विज्ञान हैं—वेदों अन्तर्गत विद्यमान हैं।

इससे स्पष्ट है कि सकल विद्याएं एवं वेदों के अन्तर्गत पाई जाती हैं।

सकल विद्याएं वेदों में स्थान-स्थान पर उपलब्ध होती हैं। फिर भी, इस द्वारा केवल चिकित्सा शास्त्र-विषयक दिग्दर्शन प्रयोजन है।

प्राचीन भारतीय स्वर्णयुग का विज्ञान है। इसका आज-कल भी प्रचार विद्यमान है, परन्तु आंशिक रूप में मैं ऊपर चुका हूँ कि सब विद्याओं का आविर्भाव वेदों से माना जाता है। फिर भी, विद्वान् मैक्समूलर साहब आदि की कितनी भ्रमपूर्ण तथा अशुद्ध है!—मैं आपको पुनः स्मरण कराता हूँ कि अधिकांश बातें बालकों तथा मूर्खों हैं जो दुराचार के प्रतिपादक हैं। बहुत सर्वथा निरर्थक तथा फीके हैं।"

इस बात के खण्डनार्थ आयुर्वेदविषयक पाठकों के सम्मुख रखे जायेंगे, जिससे जाना जा सकता है कि मैक्समूलर वेदार्थ को कहांतक समझ सके हैं।

पाठको! चार वेदों के चार उपवेद हैं, जिनमें से आज कोई भी उपलब्ध नहीं है। फिर भी, आयुर्वेद के कुछ ग्रन्थ चरक, सुश्रुतादि अवश्य उपलब्ध होते हैं। आयुर्वेद अथर्व वेद का उपवेद माना जाता है। चरकमें लिखा है :—

तत्र भिषजा पृष्ट्वैवम् चतुर्णाम् ऋग्-यजु-सामाथर्ववेदानाम् आत्मनोऽथर्ववेदे भक्तिरादेश्या।

अर्थात् प्रश्न किये जाने पर वैद्य को कहना उचित है कि ऋग्, साम, यजु तथा अथर्व वेदों में से अथर्ववेद में आयुर्वेद का उपदेश है। सुश्रुत में लिखा है :—

"आयुर्वेदो नाम अथर्ववेदस्य" अर्थात् आयुर्वेद अथर्व वेद का उपाँग है। परन्तु चरणव्यूह में लिखा है—"ऋग्वेदस्यायुर्वेद :" अर्थात् ऋग्वेद का उपाँग आयुर्वेद है। यह परस्पर विरोध कैसा? कुछ लोगों की सम्मति में विरोध नहीं। कारण दोनों में आयुर्वेद का वर्णन है। औषध भाग ऋग्वेद में तथा शल्य-भाग अथर्ववेद में है। परन्तु मेरी सम्मति में अथर्ववेद में शल्य-भाग ही नहीं अपितु विस्तृत औषध-भाग भी है, जिसे आगे प्रमाणों सहित प्रतिपादित किया जायेगा।

आयुर्वेद का स्वरूप बताते हुए श्री चरककार ने कहा है—

हेतुलिंगौषधज्ञानं
स्वस्थातुरपरायणम्।
त्रिसूत्रं शाश्वतं पुण्यं
बुबुधे यं पितामहः॥
सूत्र० १—२४

अर्थात् जिस शास्त्र में हेतु अर्थात् रोग उत्पन्न होने का कारण लिंग अर्थात् रोग-बोधक चिह्न तथा औषध-ज्ञान का भली प्रकार वर्णन है, वह स्वस्थ एवं रोगियों के लिये परमोपयोगी है। जिसमें हेतु, लिंग एवं औषध ज्ञान—यह प्रधान सूत्र हैं; ऐसे सनातन पवित्र आयुर्वेदशास्त्र को पहले पितामह

ने अवगत किया अर्थात् आयुर्वेद का आविर्भाव परमेश्वर द्वारा हुआ।

सुश्रुत में आयुर्वेद की उत्पत्ति एवं उसके भेदों को बतलाते हुए धन्वन्तरि महाराज ने कहा है :—

इह खलु आयुर्वेदो नाम यदुपाँग अथर्ववेदस्यानुत्पाद्यैव प्रजा: श्लोक शतसहस्रं अध्याय सहस्र च कृतवान् स्वयंभू:। ततोऽल्पायुमल्पमेधास्त्वं चावलोक्य नराणां भूयोष्टधा प्रणीतवान् तद्यथा—शल्यं, शालाक्यं, कायचिकित्सा, भूत-विद्या, कौमारभृत्यं, अगदतन्त्रं, रसायनतन्त्रं, बाजीकरणतन्त्रमिति। सूत्र० १—३

अर्थात् यह आयुर्वेद रूप उपांग अथर्व वेद का है, जिसका परिमाण १ लक्ष श्लोक एवं १ सहस्र अध्याय है। इसका निर्माण स्वयंभू ब्रह्मा ने किया है। यहां ब्रह्मा द्वारा आयुर्वेद की उत्पत्ति बतलाई गई है तथा इसको अथर्ववेद का उपांग भी बतलाया गया है। ये दोनों बातें कहाँ तक उपयुक्त हैं? अथवा हो सकता है कि स्वयंभू नामक किसी ऋषि ने इसका निर्माण किया हो। फिर आगे लिखते हैं कि मनुष्यों की अल्पायु एवं अल्पमेधा को देखकर आयुर्वेद को आठ विभागों में विभक्त किया गया। वे विभाग निम्न हैं—

शल्य, शालक्य, कायचिकित्सा, भूत-विद्या, भृत्य, अगदतन्त्र, बाजीकरणतन्त्र।

इस प्रकार चरकोक्त तीन स्कन्धों—औषध ज्ञान, हेतु, लिंग तथा सुश्रुतोक्त आठ अंगों का वर्णन करना इस लेखका ध्येय है। हम प्रत्येक का पृथक्-पृथक् मन्त्रों द्वारा प्रतिपादन करेंगे।

सर्वप्रथम औषध-ज्ञान के विषय में वेदोक्त औषधियों का आयुर्वेदोक्त गुणों के साथ तुलनात्मक विवेचन करेंगे।

वेदों में निम्नलिखित औषधियां पाई जाती हैं—शतावर, जंगिड, गुगुल, कुष्ठ, पिप्पली, नितली, पृष्निपर्णी, अक्री, ब्राह्मण, हरिष्ठ, सिलाची आदि।

सर्वप्रथम शतवार को लीजिये। इसके सम्बन्ध में अथर्ववेद काण्ड १९, सूक्त ३६ में लिखा है—ओं शतवारो अनीनशत् यक्ष्मान् रक्षांसि तेजसा आरोहन् वचसा सह मणि: दुर्णाम चातन: ।१

अर्थात् "शतवार" नामक औषधविशेष (जिसको आज-कल शतावरी, शतमूली आदि नामों से पुकारते हैं) के द्वारा दुर्णाम चातन: अर्थात् ख्यातिप्राप्त बवासीर आदि रोगों को 'दुर्णामोऽर्श इति शब्द कल्पद्रुम:। तेजसा सह आरोहन् यक्ष्मान् अर्थात् अपने तेज से उन्नति को प्राप्त हुए और जीवन को दुःखदायी बनाने वाले यक्ष्मा रोग एवं रोगजन्तुओं को—जो शरीर में प्रविष्ट होकर दाद, खुजली आदि रक्तविकार पैदा करते हैं—को नष्ट कर दे। और देखिये—

ये यक्ष्मा सो अर्भका
महान्तो ये च शद्विन:।
सर्वा दुर्णामहा मणि:
शतवारो अनीनशत् ॥३॥

जो यक्ष्मा आदि दुःखदायी रोग छोटे हों या बड़े हों तथा जिनके रक्त में चटचट शब्द होता हो, उन सब को यह औषध (शतावरी) नष्ट कर देती है।

५ वे मन्त्र में इसको 'ऋषभ' बतलाया गया है :—हिरण्य श्रृङ्गो ऋषभ:"। शतावरी को ऋषभ अर्थात् निर्बलता को दूर करने वाला रसायन बताया गया है।

यह शतवार नामक औषध के संक्षेप में वेदोक्त गुण है। इसके गुण भावप्रकाश में इस प्रकार लिखे हैं—

वरी गुरुश्शीता
तिक्ता स्वाद्वी रसायनी ।
निपुष्टिदा स्निग्धा
नेत्र्यातिसारजित् ॥
त्यकरी बल्या
वातपित्तास्रजित् ।
तावरी मेध्या
हृद्या वृष्या रसायनी ॥
र्या निहन्त्यर्शो-
ग्रहणी नयना मयान् ॥

र्थात् शतावर नामक औषध गुरु, , तिक्त, मधुर रसयुक्त, रसायन, मेधा अग्नि को बढ़ाने वाली है। गुल्म, अति- , वात-पित्त, रक्तविकार एवं शोथनाशक । बड़ी शतावर मेधा को बढ़ाने वाली, ग्राहक वीर्यवर्धक और रसायन है तथा (बवासीर) एवं ग्रहणी रोगनाशक है। नी को भी शतवार कहते हैं। इसके के सम्बन्ध में आयुर्वेद-चिन्तामणि में है—'कृमिशोथ क्षयापहा।' अर्थात् वार रोग-जन्तुओं, सूजन तथा क्षय दिक) का नाश करता है।

इस विवेचन से सिद्ध हो गया कि शता- के वेदोक्त गुणों और आयुर्वेदोक्त गुणों धिक समानता है। परन्तु जो कुछ रूप से नहीं मिलते, उसके विषय में ही लिखना पर्याप्त है कि आयुर्वेद के में भी आपस में औषधियों के गुण में विभिन्नता है।

वेद के १९ वें कांड के ३४ वें सूक्त ' नामक औषधि (जिसको आधु- ग्रन्थ 'पाठा' नामसे पुकारते हैं) है। इसका पहला मन्त्र लीजिये—

पञ्चाशी शतं-
कृत्या कृतश्च ये ।
सर्वान् विनक्तु तेजसो-
रसां जंगिडस्करत् ॥

अर्थात् इस जंगिड औषध का सब प्रकार के भयंकर पीड़ा पहुँचाने वाले व्रणों पर लेप करने से उन सब का प्रभाव नष्ट कर यह उन्हें ठीक कर देती है। तीसरे मन्त्र में लिखा है—

अरसं कृत्तिमं नादं
अरसाः सप्तविस्रसः ।
अपेतो जंगिडामितिमिषु-
मस्तेव शातय ॥

अर्थात् रोगी के स्वर-भंग तथा सप्त विस्रस (सातों धातुओं) अथवा दो कान, दो नाक, मुख, जिह्वा आदि की निर्बलताओं को, शिकारी के बाण की तरह जंगिड औषधि दूर भगा देती है। जंगिड के विषय में ५ वें तथा ६ वें मन्त्र में लिखा है—

विष्कम्भं येन सासह
सं स्कन्धमोज ओजसा ।५।
अमीवा सर्वाश्चातप
जहि रक्षांस्योषधे ॥६॥

सूखा रोग एवं महावात रोग—जिसमें कन्धों आदि में हड़फूटन पड़े—एवं सब प्रकार की पीड़ाओं तथा रोगोत्पत्ति के कारणों को नष्ट कर देती है। फिर आगे चलकर लिखा है—

अशरीकं विशरीकं
बलासं पृष्ठयामयम् ।
तक्मानं विश्वशारद-
मरसां जंगिडस्करत् ॥

अर्थात् जंगिड अशरीकं अर्थात् शरीर को कुचलने वाले रोगों में; विशरीकं अर्थात् शरीर को तोड़ने वाले बुखारों में, बलासम् सन्निपात आदि रोग में, पृष्टयामयम् अर्थात् छाती, पीठ आदि के दर्द में तथा विश्वशारदं

तक्मानं अर्थात् जीवन भर साथ लगे रहने वाले श्वेतकुष्ठ आदि रोगों को नष्ट कर देती है।

जंगिड अर्थात् पाठा के गुणों का वर्णन करते हुए भावप्रकाश में इसको गरम, कटु, तीखा, हलका तथा पीड़ा, ज्वर, वमन, कुष्ठ, अतिसार, हृदयरोग, दाद, खाज, विष, दमा, कृमि, गुल्म एवं व्रणनाशक लिखा गया है। वर्ग प्रकरण के श्लोक निम्नलिखित हैं:—

पाठोष्णा कटुका तीक्ष्णा
वातश्लेष्महरी लघु।
हन्ति शूलज्वरच्छर्दि
कुष्ठातिसार हृद्रुज।
दादकण्डूविषश्वास
कृमिगुल्मगरव्रणान् ॥

अथर्ववेद के १९ वें काण्ड के ३८ वें सूक्त में राजयक्ष्मा नाशक 'गूगल' औषधि वर्णन है। मन्त्र नीचे देखिये:—

न तं यक्ष्मा अरुन्धते
नैनं शपथो अश्नुते।
यं भैषजस्य गुग्गुलो:
सुरभिर्गन्धो अश्नुते।
विष्वञ्चस्तस्माद् यक्ष्मा
मृगा अश्वा इवेरते ॥

जिस मनुष्य के शरीर में व्याधिनिवारक गूगल की श्रेष्ठ सुगन्धि व्याप्त हो जाती है, उसको राजयक्ष्मा रोग नहीं घेरते। क्योंकि फेफड़ों में शुद्ध वायु के न मिलने के कारण अधिकतर ऐसी व्याधियां जन्म लेती हैं। आगे लिखा है—प्रसन्न लोगों को दूसरों के द्वारा कहे गये निन्दा-वचन भी अधिक कष्ट नहीं देते, क्योंकि सदा स्वस्थ प्रसन्न रहने से दूसरे के कहे गये वचनों को वह बुरा नहीं मानते। यदि किसी को राजयक्ष्मा रोग हो भी जाये, तो उसको भी यह औषधि समूल नष्ट कर देती है।

इस गूगल की उत्पत्ति दो स्थानों पर है:—एक नदी-तट पर और दूसरा समुद्र-तट पर; इसीलिये इसको अगले मन्त्र में 'सैन्धवं' तथा "समुद्रियं"—इन दो नामों से अभिहित किया गया है।

भावप्रकाश में इसको सर्वदोषहा लिखा है:—

माधुर्यच्छमयेद्वात
कषायत्वाच्च पित्तहा।
तिक्तत्वात्कफजित्तेन
गुग्गुलुः सर्वदोषहा ॥

वात, पित्त, कफनाशक गुण गूगल के हैं।

अथर्व वेद के १९ वें काण्ड के ३९ वें सूक्त में कुष्ट—जिसको आजकल कूठ नाम से पुकारते हैं और जो ज्वर, शिरोरोग, कोढ़ आदि—पर विशेष लाभदायक है—का वर्णन किया गया है। पहिला एवं दसवां मन्त्र क्रम से नीचे दिये जायेंगे, जिनमें औषधि के गुणों का वर्णन है:—

एतु देवास्त्रायमाणः
कुष्ठो हिम वतस्परि।
तक्मानं सर्वं नाशय
सर्वाश्च यातुधान्यः ॥१॥
शीर्षलोकं तृतीयकं
सदान्दिर्यश्च हायनः।
तक्मानं विश्वाधावी—
र्याया राज्यं परासुव ॥१०॥

शीर्षलोक अर्थात् शिरोरोग, लत्वं कर्तं छान्दसम् अर्थात् सिर के रोग को तृतीयकम् अर्थात् तीसरे दिन आने वाले तिजारी ज्वर को तथा तक्मानं अर्थात् तक्म कहते हैं कठिन भयंकर रोग कोढ़ आदि को सर्वसामर्थ्य युक्त कुष्ठ नामक औषधि कम करती है—सर्व

कर देती है। पहिले मन्त्र में लिखा है रक्षा करने वाले दिव्य गुणवान हर्षोत्पदक तय से उत्पन्न होनेवाली औषधि पीड़ा वाले ज्वरों तथा सब प्रकार के कृमियों को नष्ट कर देती है।

रसचिन्तामणि में इसके गुण निम्न-लिखित हैं :—

हन्ति वातास्र वीसर्प
कासकुष्ठ महत् कफान् ।

५ वें मन्त्र में 'शाम्बुभ्य:' लिखा है। 'शाम्बु' अर्थात् जल सहित नदी, समुद्र और है। इधर भावप्रकाश में कूठ का भेद "पौष्कर" कहा है। पुष्कर शब्द जलवाची, अन्तरिक्षवाची निरुक्त में है।

उस पौष्कर के गुण भावप्रकाश में इस प्रकार लिखे हैं :—

पौष्करं कटुकं उष्ण,
हन्ति वातकफज्वरान् ।
हन्ति शोथारुचिश्वासान्,
विशेषात् पार्श्वशूलनुत् ।

वात-कफज्वर, शोथ, अरुचि, दमा एवं पसलियों की पीड़ाओं को नष्ट करता है। इसका उत्पत्तिस्थान १९।३९।८। में लिखा है; अत. यहां भावार्थ देना ही उपयुक्त होगा। लिखते हैं :—

जहां वरफ नीचे पिघलती तथा फिसलती नहीं, जहां सूर्य का प्रकाश अति न्यून होता है, जहां हिमवाले हिमालय के शिखर का भाग है, जहां पानी के झरने हैं; वहां पर कुष्ठ पैदा होती है।

अथर्व वेद के ६ ठें काण्ड के १०९ वें सूक्त का प्रयोग 'पिप्पली' भेषज देवताविषयक है। यहां पहिला मन्त्र इस प्रकार है :—

पिप्पली क्षिप्त भेषज्यु-
तानि विद्धभेषजी ।
तां देवा: समकल्पयन्
इयं जीवित वा अलम् ॥

पिप्पली नामक औषधि, सायणाचार्य के मत से गजपिप्पली आदि सोंठ, मिरच, पीपल औषधि का ग्रहण है। संस्कृत-कालेज बनारस के पण्डित ग्रिफिथ के अनुसार पीपल वृक्ष का फल उचित है। यह पिप्पली क्षिप्त अर्थात् पीड़ा के कारण हाथ-पैर पटकने के रोग की उत्तम दवा है एवं जानु की गहरी वेदना की भी उत्तम औषधि है। इससे देवता लोग जीवन के लिये पर्याप्त सामर्थ्य प्राप्त करते हैं।

राजनिघण्टु में अश्वत्था पिप्पलि का लिखा है, जिसके गुण भावप्रकाश में लिखे हैं :—

पिप्पलो दुर्जर: शीत:
पित्तश्लेष्मव्रणास्रजित् ।
गुरुस्तुवरको रुक्षो
वर्ण्यो योनिविशोधन: ॥

पीपल दुर्जर, शीत, कफ-पित्तनाशक, भारी, रूक्ष, वर्ण्य और योनिविशोधन है। पिप्पली गजपिप्पली भी कहलाती है। वेद में पीपर का गुण आया है। निघण्टु में "हन्ति प्लीहा शूलान् मारुतान्" लिखा है। यहां पीपर को तिल्ली, भयंकर पीड़ा एवं वायु को नष्ट करनेवाला बतलाया गया है।

मन्त्र में लिखा है कि 'यं अश्नवा महे सनरिष्यति" अर्थात् जो इसका सेवन करता है, उसको वातादि रोग पीड़ित नहीं करते। भावप्रकाश में पिप्पली को रसायन बतलाया गया है।

अथर्ववेद के ६ ठें काण्ड सूक्त १३६ एवं १३७ का प्रयोग केशरोगनाशक एवं केशों की पुष्टि के निमित्त नितली औषधि के वर्णन में किया गया है। क्रमश: मन्त्रों को देखिये—

देवी देव्यामधिजाता–
पृथिव्यामस्योषधे ।
तं त्वा नितली केशेभ्यो
बृंहणाय खनामसि ॥
दृंह प्रलान् जनया जातान्
जातानु वर्षीयसस्कृधि ॥
यस्ते केशोवपद्यते
समूलो यश्च वृश्चते ।
इदं तं विश्व भेषज्या-
भिषिञ्चामि वीरुधा ॥

इन मन्त्रों में लिखा है कि दिव्य गुणवाली यह 'नितली' औषधि पृथिवी के ऊपर फैलती है। इसके द्वारा केशों की अत्यन्त वृद्धि होती है। इस औषधि के द्वारा पुराने सफेद बाल काले होकर दृढ़ हो जाते हैं तथा जिस स्थान पर केश उत्पन्न नहीं होते, वहाँ भी पैदा हो जाते हैं। जो बाल उत्पन्न हो जाते हैं, उनको यह लम्बा, दृढ़ एवं चिरस्थायी बना देती है। जिस मनुष्य के केश कृशता के कारण झड़ जाते हैं अथवा गंज हो जाता है, वे सब केशरोग केशरोग-नाशक 'नितली' लता के रसमें केशों को भिगोने से नष्ट हो जाते हैं।

इन मन्त्रों में केशवर्धन के निमित्त नितली नामक औषधिका वर्णन है। उसको पृथिवी पर फैलने वाली लता बताया गया है एवं उसके रसका उपयोग करना लिखा है। परन्तु नितली नामक औषध का नाम आधुनिक आयुर्वेदिक ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं होता। सायण एवं कौशिक ने काकमाची, भृङ्गार एवं 'जीवन्ती का विधान लिखा है। मेरे विचार में नितली भृंगराज भी पृथिवी के ऊपर फैलता एवं लता के रूप में होता है। इसके रसका उपयोग ही प्रायः देखा जाता है। भावप्रकाश में केवल भृङ्गराज को 'केश्या' लिखा है तथा इसी काण्ड के २८ वें सूक्त के दूसरे मन्त्र में "केश दृंहषी रथोह केशवर्धिनी' केशों को पुष्ट करने वाली केशवर्धिनी औषध का वर्णन है। इधर राजनिघण्टु में भृङ्गराज को 'कुन्तलवर्धन' लिखा है। भावप्रकाश में भांगरे का गुण इस प्रकार है—

केश्यस्त्वच्यः कृमिश्वास-
कासशोथामपाण्डुनुत् ।

पृश्निपर्णी—जिसका आधुनिक लौकिक नाम 'पिठवन' है—का वर्णन अथर्व वेद के २ रे काण्ड के २५ वें सूक्त में इस प्रकार है—

उग्राहि कण्व जम्भिनी
तामभाक्षि सहस्वतीम् ।
तयाहं दुर्णाम्नां शिरो
वृश्चामि शकुनेरिव ॥
अरण्यस मसक्यावानं
पश्च स्फाति जिहीर्षति ।
गर्भाद कण्वं नाशय
पृश्निपर्णी सहस्व च
गिरि मेनां आ वेगय कण्वान्-
जीवितपयोपनानान् ॥

इन मन्त्रों में वेद ने पृश्निपर्णी नामक औषधि का वर्णन किया है। सायणाचार्य ने पृश्निपर्णी का अर्थ चित्रपर्णी किया है। माषपर्णी कात्यायन श्रौतसूत्र के भाष्यकारों ने अर्थ किया है। कोई-कोई लक्ष्मणा लिखते हैं। परन्तु अधिक उपयुक्त अर्थ इनमें से कोई भी नहीं है। क्योंकि चित्रपर्णी, माषपर्णी एवं लक्ष्मणा आयुर्वेदिक ग्रन्थों में पृथक्-पृथक् औषधियां हैं तथा पृश्निपर्णी भी पृथक् औषध है। जब एक औषध पृथक् विद्यमान है तब उसका ही ग्रहण क्यों न किया जाये। इसलिये यहां पृश्निपर्णी—जिसको लोक में पिठवन कहते हैं—का ग्रहण है।

त् पिठवन नामक औषध बहुत तीव्र
को कण्वजम्मनी लिखा है। कण्व
पाप को पाप से उत्पन्न होनेवाले
रोगों का नाश करनेवाली है।
तिरिक्त जिस तरह पक्षी का शिर
र दिया जाता है उसी तरह बवासीर
औषधि से नष्ट होती है। आगे के
में लिखा कि पिठवन औषध उस रोग
नष्ट करती है, जिससे रक्त नष्ट
मनुष्य क्षीण हो जाता है। इसके
पापरोग एवं जिसमें जीते हुए भी
मोहमें पड़ जायें, उन सब रोगों को
कर देती है।

हैं इसके वैदिक गुण। इनका मिलान
के आधुनिक ग्रन्थों से करें तो पता
कि कहांतक मिल पाता है। भाव-
में लिखा है—

पर्णी त्रिदोषघ्नी
वृष्योष्णा मधुरा सरा।
दाहज्वरश्वास-
रक्तातिसारतृड् वयी॥

अर्थात् पिठवन वात-पित्त-कफनाशक
मधुर, गरम, सर तथा दाह, ज्वर,
रक्तातिसार, तृषा एवं दाह व्रण को
करती है।

ब्राह्मणकन्द जिसको आज 'गृष्ठी' के
पुकारते हैं। और भार्गी भी कहते हैं।
औषधि प्रक्री भी है। राजनि-
प्रकीर्ण नाम से विख्यात इन दोनों
के विषय में अथर्व वेद के काण्ड
६-७ में वर्णन है। वहां के दो मन्त्र
है—

ब्राह्मणो जज्ञे प्रथमो
दश शीर्षो दशास्यः।
प्रथमः पपौ
स चकारसं विषम्॥

प्रक्री के विषय में एक मन्त्र लीजिये—

प्रक्री रसित्वमोषधे
भिखाते न रूरुषः। ४-७-६

अर्थात् ब्राह्मण नामक औषधि सब औषधियों में श्रेष्ठ, सब रोगों का नाश करने वाली और विष को निर्बल कर देती है। इसी प्रकार प्रक्री भी विष नाशक है। रोगी को मूर्छित नहीं होने देती।

राजनिघण्टु में इन दोनों को विषनाशक लिखा है। विस्तार भयसे इसके विषय में हम अधिक नहीं लिखते।

अथर्व वेद काण्ड ५, सूक्त ५ का प्रयोग सिलाची—जिसको आजकल लाक्षा कहते हैं के निमित्त किया गया है। वहां का गुण वर्णनपरक एक मन्त्र लीजिये—

यद् दण्डेन यदिष्वा
यद् वारूर्हरसा कृनम्।
तस्य त्वमसि निष्कृतिः
सेम निष्कृति पूरुषम्।५-५-४

जो व्रण डण्डे की चोट से और जो घाव बाण के लगने से और जो घाव किसी रगड़ से या वेगवान् पदार्थ से हो गया है, उसको बिलकुल नष्ट कर देने वाली हे अचूक औषध! तू इस रोगी पुरुष को चंगा कर। भावप्रकाश में इसके गुण निम्नांकित हैं:—

लक्षा वर्ण्या हिमा वल्या
स्निग्धा च तुवरा लघुः।
अनुष्णा कफपित्तास्र
हिक्का कास ज्वर प्रणुत्।
व्रणोरः क्षत वीसर्प
कृमि कुष्ठ गदापहा॥

इसमें लाक्षा (लाही) को व्रणनाशक बताया गया है। इसी प्रकार वेदों में हरिष्ठ को विषनाशक, विषाणकाको वातनाशक कुसिम्भ और लोध्र को विषनाशक कहा है। अन्य विविध औषधों के गुण वेदों में वर्णित हैं। परन्तु लेख के विस्तार भय से उन सब औषधियों का वर्णन नहीं किया गया। मनीषी पाठक खुद खोज कर लेंगे; ऐसा विश्वास है।

शुद्ध एवं शास्त्रोक्त आयुर्वेदीय

औषधियां

शुद्ध एवं उत्तम शास्त्रोक्त विधि से बनी आयुर्वेदिक औषधियां रस, भस्में, वटी, अवलेह, पाक, चूर्ण, घृत, कूपीपक्व रस तथा खनिज द्रव्य, वज्राभ्रक, मुक्ता, शंख, सीप, स्वर्ण माक्षिक, प्रवाल, शुद्ध शिलाजीत, केशर, कस्तूरी, अम्बर व दुर्लभ वनस्पतिवर्ग जैसे अष्ट वर्ग, प्रियंगु, सर्पगन्धा, त्रायमाण आदि खरीदते समय निम्न पते पर पत्र व्यवहार अवश्य करें ।

विशेष जानकारी के लिये वृहद सूचीपत्र मंगवायें ।

हमारी औषधियों का व्यवहार कर आप सदैव के लिये हमारे स्थाई ग्राहक बन जायेंगे ।

देशरक्षक औषधालय

कनखल (हरिद्वार)

यू० पी०

आयुर्वेद लोक

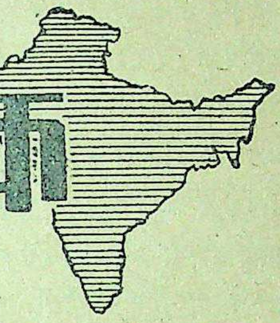

जनता के लिए लाभप्रद चिकित्सा को प्रोत्साहन जरूरी

राष्ट्रपति का भाषण

राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद ने २६ मई को मुजफ्फरपुर में रायबहादुर तुनकी शाह होम्योपैथिक कालेज एवं हस्पताल का शिलान्यास करते हुए इस बात पर जोर दिया कि जिस चिकित्सा पद्धति से देश की गरीब जनता को लाभ पहुंच रहा है उसे अवश्य प्रोत्साहन मिलना चाहिए।

राष्ट्रपति ने देश में विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों की चर्चा करते हुए कहा कि देश की प्राचीन चिकित्सापद्धतियों का पुनरुद्धार होना चाहिए। उन्होंने कहा कि आयुर्वेद और युनानी पद्धतियों ने एक जमाने में बहुत उन्नति की। आज भी उनसे जन-साधारण को बहुत लाभ पहुँच सकता है। उसके पतन का कारण यह है कि एक दो पुस्तकें पढ़ कर लोग वैद्य, हकीम और डाक्टर बनने लगते हैं। इससे उस चिकित्सा की प्रतिष्ठा जाती रही है जिसके द्वारा वे जनता की सेवा करना चाहते हैं।

नाहरू चिकित्सा शिविर का उद्घाटन

मुख्य मंत्री श्री मोहनलाल सुखाड़िया द्वारा सम्पन्न

डूंगरपुर (डाक से)—नाहरू चिकित्सा शिविर का उद्घाटन समारोह कमिश्नरी वैद्य सभा के अध्यक्ष श्री भवानी शंकर की अध्यक्षता में आरम्भ हुआ। राजस्थान के मुख्य मंत्री श्री मोहन लाल सुखाड़िया ने अपने उद्घाटन भाषण में आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली पर प्रकाश डालते हुए इस बात पर जोर दिया कि यह प्रणाली हमारे देश के लिए ज्यादा उपयोगी सिद्ध हो सकती है। वैद्य लोग अपने व्यवहार कुशलता से आज राजस्थान में जनता की पूरी सेवा कर रहे हैं और जनता की मांग भी आयुर्वेद के लिए प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। जयपुर तथा अजमेर में आयुर्वेद विभाग द्वारा खुले हुए आयुर्वेदिक चिकित्सालयों की अत्यन्त प्रशंसा करते हुए आपने कहा कि इन शहरों में एलोपैथिक चिकित्सा की सभी सुविधाएँ होते हुए भी आयुर्वेद चिकित्सा से प्रतिदिन हजारों की संख्या में लोग आकर्षित हो रहे हैं। पहले जहाँ इसका बजट १८ लाख था वहां आज ४० लाख का हो गया है और इन दो तीन वर्षों में ६० लाख तक पहुँच जायगा। मुख्य मंत्री ने नाहरू रोग की समाप्ति के लिए विशेष ध्यान देने की ओर वैद्य सभा तथा विभाग का ध्यान आकर्षित किया और कहा जिस प्रकार मलेरिया तथा क्षय रोग को नष्ट करने के लिए आन्दोलन के रूप में काम हो रहा है उसी प्रकार इस रोग की समाप्ति के लिए भी आन्दोलन करने होंगे।

श्री सुखाड़िया ने अपने व्यक्तिगत अनु-

भव के आधार पर कहा कि मैं विश्वास रखता हूँ कि यदि आयुर्वेद के द्वारा चिकित्सा करवाया जाय तो हो सकता है कुछ समय भले ही लगे किन्तु इससे स्थायी लाभ होता है। विभाग के संचालक श्री प्रेमशंकर शर्मा ने राज्य सरकार की आयुर्वेद विकास नीति पर प्रकाश डालते हुए कहा कि सरकार आयुर्वेद विज्ञान को पूर्ण विकसित करना चाहती है। इस बात का प्रबल प्रमाण यह है कि राजस्थान बनने के पूर्व करीब २०० आयुर्वेदिक औषधालय थे जहाँ आज ६५० औषधालय हैं और द्वितीय पंचवर्षीय योजना तक ९०० हो जायेंगे। नाहरू रोग के अनुसंधान हेतु भी भारत सरकार के सहयोग से कार्य आरम्भ हो चुका है। उसमें ८० हजार रुपया प्रति वर्ष खर्च होगा। विभाग जनता और वैद्यों के सहयोग से निरन्तर प्रगति कर रहा है।

इस अवसर पर राजस्थान के उप स्वास्थ्य मंत्री श्री भीखाभाई ने वैद्यों को विश्वास दिलाया कि आयुर्वेद में अनुसंधान कार्य के लिए सरकार प्रत्येक प्रकार का सहयोग देगी।

कन्याओं को आयुर्वेद

कन्या गुरुकुल हरिद्वार के स्वस्थ पवित्र वातावरण में हिन्दी संस्कृत तथा वैदिक वाङ्मय की परमोच्च परीक्षाओं की व्यवस्था के साथ अष्टांग आयुर्वेद की आचार्य श्रेणी पर्यन्त कन्याओं को शिक्षा दिलाने के निमित्त प्रवेशार्थ नियम विवरण जानने के लिये आवेदन कीजिये।

आचार्या चन्द्रादेवी शास्त्री
कन्या गुरुकुल, हरद्वार, कनखल।

गुरुकुल कांगड़ी में सभा

आयुर्वेद सम्बन्धी सिफारिशें

गुरुकुल कांगड़ी आयुर्वेद महाविद्यालय में वैद्यों की एक सभा श्री पं० जगन्नाथ प्रसाद जी शुक्ल आयुर्वेदपंचानन, प्रयाग के सभापतित्व में हुई जिसमें माननीय मुख्यमंत्री महोदय की अध्यक्षता में होने वाली आयुर्वेद समिति के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए सर्व सम्मति से निम्न प्रस्ताव स्वीकृत हुए:—

यह सभा सर्व प्रथम उत्तर प्रदेश के यशस्वी मुख्यमंत्री श्री डा० सम्पूर्णानन्द जी को उनके आयुर्वेद विषयक विचारों के लिए धन्यवाद देती है और आयुर्वेद के उत्थान के लिए उनके द्वारा उठाए गए पग को आशापूर्ण दृष्टि से देखती है।

२—आयुर्वेद महाविद्यालयों में प्रविष्ट होने वाले छात्रों की आयु १६ वर्ष निश्चित की गई।

३—आयुर्वेद के स्वरूप के सम्बन्ध में विचार होकर निश्चित हुआ कि त्रिदोष सिद्धान्त के आधार पर जिस चिकित्सा पद्धति द्वारा वैयक्तिक एवं सामूहिक स्वास्थ्य रक्षा तथा चिकित्सा की जा सके वह स्वरूप इस समिति को मान्य है। आयुर्वेद का अध्ययनाध्यापन वर्तमान समय में निम्नलिखित षोडशांगों द्वारा होना चाहिए।

१—आयुर्वेद के आधारभूत सिद्धान्त। २—त्रिदोष विज्ञान। ३—शरीर शास्त्र। ४—शरीर क्रिया विज्ञान। ५—विकृति विज्ञान। ६—निदान तथा चिकित्सा। ७—द्रव्यगुण शास्त्र। ८—रस तन्त्र। ९—प्रसूति तन्त्र। १०—कौमारभृत्य। ११—अगदतन्त्र व्यवहारायुर्वेद। १२—स्वास्थ्य रक्षा। १३—आयुर्वेद का इतिहास। १४—शल्य-

न्त्र। १५—शालाक्य तन्त्र। १६—रसायन वाजीकरण।

इनमें से प्रत्येक अंग का स्वतन्त्र विषय के रूप में अध्ययन कराना उचित है और प्रत्येक विषय को आयुर्वेद के प्रामाणिक ग्रन्थों तथा नवीन ज्ञान-विज्ञान के द्वारा समृद्ध तथा विकसित करके इन पर पाठ्य ग्रन्थों का निर्माण कराया जाना चाहिए।

४—समिति की दृष्टि में सर्वोत्तम यह होगा कि पूर्व आयुर्वेदिक पाठ्यक्रम (Pre-Ayurvedic Course) के रूप में प्रवेशार्थी छात्रों को मैट्रिक के दो वर्षों में अथवा मैट्रिक के पश्चात् २ वर्ष इण्टर में संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, विज्ञान विषयों का वर्ग बनाकर विशेष पाठविधि के अनुसार शिक्षा दी जानी चाहिए। इस "आयुर्वेद प्रवेशिका" को उत्तीर्ण कर लेने के उपरान्त ही किसी छात्र का आयुर्वेद महाविद्यालय में प्रवेश होना चाहिए।

जब तक उपर्युक्त सुझाव कार्यान्वित हो तब तक प्रवेश योग्यता निम्न प्रकार हो :—

(क) संस्कृत तथा हिन्दी मध्यमा उत्तीर्ण "इन छात्रों को एक वर्ष अंग्रेजी तथा विज्ञान की विशेष शिक्षा दी जाए।"

(ख) इण्टर आर्ट्स उत्तीर्ण "इन छात्रों को दो वर्ष तक संस्कृत तथा एक वर्ष विज्ञान की विशेष शिक्षा दी जाये"

(ग) इण्टर साइंस उत्तीर्ण "इन छात्रों को दो वर्ष संस्कृत की विशेष शिक्षा दी जाए।"

रिवीज़न कमेटी की बैठक

उ० प्र० आयुर्वेदिक एण्ड यूनानी चिकित्सा बोर्ड द्वारा स्थापित रिवीज़न कमेटी की प्रथम बैठक मोतीमहल लखनऊ में ता० १७ व १८ मई को वैद्य धर्मदत्त शर्मा की अध्यक्षता में हुई।

इस बैठक में वैद्य मधुसूदन जी दीक्षित सीतापुर और हकीम नाजिरहसन शमीम को छोड़कर रजिस्टर्ड वैद्य-हकीमों के क्षेत्र से निर्वाचित सभी वैद्य-हकीमों ने भाग लिया तथा वैद्य रामगोपाल शास्त्री और हकीम हाफ़िज़ साहब इटावा भी पधारे।

काफी वाद-विवाद के बाद निर्णय हुआ कि इस वर्ष समस्त रजिस्टर्ड वैद्य हकीमों का रिवीज़न करने के लिये २) प्रत्येक वैद्य-हकीम से अनिवार्य रूप में लिया जाय।

साथ ही एक फार्म भी बनाया गया जो कि प्रत्येक हकीम-वैद्य के पास भेजा जायगा इसे भरकर प्रत्येक वैद्य-हकीम को अण्डर पोस्टल सर्टीफिकेट भेजना होगा। साथ ही २) रिवीज़न फीस भी भेजनी होगी।

प्रताप आयुर्वेदिक फार्मेसी प्रा० लि० के

आशुफलप्रदआयुर्वेदीय इन्जैक्शन

हिमाचल के अंचल देहरादून में सरकार द्वारा लायसैन्स प्राप्त लेबोरेटरी में आयुर्वेदीय औषधों के मूलतत्वों का पूर्ण अनुसन्धान करने के उपरान्त प्राचीन और आधुनिक विज्ञानवेत्ता, सिद्धहस्त वैज्ञानिकों की देखरेख में इन्जैक्शन तैयार किये जाते हैं जो पूर्णतया निरापद विशुद्ध प्रामाणिक हो चुके हैं। प्रत्येक वैद्य का कर्त्तव्य है कि इन आशुफलप्रद पूर्णतया विशुद्ध एवं चमत्कारिक गुणकारी इन्जैक्शनों को प्रयोग में लाकर लाभ उठावें।

प्रताप आयुर्वेदिक फार्मेसी लि०

इन्जैक्शन ब्रांच
१६७ राजपुर रोड, देहरादून (यू० पी०)

जिनका उत्तर दी गयी अवधि के अन्दर नहीं आवेगा उन्हें एक रजिस्टर्ड पत्र भी भेजा जायेगा इतने पर भी जिनका उत्तर प्राप्त न होगा उनका रजिस्ट्रेशन काट दिया जावेगा।

किन्तु ऐसे वैद्य-हकीम पुनः आवेदन-पत्र तथा अपील फीस ५) देकर बोर्ड से निवेदन कर सकेंगे।

आयुर्वेदोद्धार के लिये कमेटी

विश्वस्त सूत्रों से पता चला है कि आयुर्वेद यूनानी के पाठ्यक्रम, स्टेट आयुर्वेदिक कालेज की हड़ताल से उत्पन्न परिस्थिति तथा वैद्य-हकीमों के अधिकार और उनके वेतन-क्रम आदि तमाम बातों पर विचार करने के लिये सरकार ने उ० प्र० के मुख्य मन्त्री की अध्यक्षता में एक कमेटी बनायी है जिसके सदस्य उ. प्र. के स्वास्थ्य मन्त्री ठा० हुकुमसिंह जी, उ. प्र. के उप-संचालक श्री डी. ए. कुलकर्णी, उ. प्र. मेडिकल विभाग के अडिश्नल डाइरेक्टर श्री पी. डी. श्रीवास्तव उ. प्र. इंडियन मेडिसिन बोर्ड के प्रेसीडेंट वैद्य दरबारीलाल शर्मा, आयुर्वेदिक कालेज हिन्दू विश्वविद्यालय'के प्रिंसिपल वैद्य राजेश्वर दत्त शास्त्री वाराणसी, लखनऊ विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्री के० ए० एस० ऐय्यर तथा बोर्ड आफ़ इण्डियन मेडिसिन के प्रेसीडेन्ट वैद्यरत्न शिवशर्मा जी, बम्बई, एवं डा० बी० मुखर्जी, लखनऊ, होंगे।

इस कमेटी की बैठक दिनांक २४ जून से नैनीताल में हो रही है। यह समिति १५ जुलाई तक अपना प्रतिवेदन सरकार को सौंप देगी।

आयुर्वेद प्रशिक्षण के लिए छात्रवृत्तियां

वैद्यों की शल्य-शालाक्य एवं प्रत्यक्ष कर्माभ्यास की कमी को पूरा करने के लिए सरकारी मान्यता प्राप्त एक वर्षीय आयुर्वेद विशेष योग्यता पाठ्यक्रम का तृतीय नवीन सत्र १ जुलाई १९५८ से आयुर्वेद विश्वभारती सरदारशहर: राजस्थान में प्रारम्भ हो रहा है। परीक्षा सरकार द्वारा ली जाती है और उत्तीर्ण होने के द्वारा प्रवीण वैद्य की उपाधि दी जाती है। मान्य संस्थाओं से उत्तीर्ण या रजिस्टर्ड चिकित्सक इसमें प्रवेश पा सकेंगे। इसके अतिरिक्त राजस्थान सरकार का भिषग्वर पाठ्यक्रम भी चलता है। इसमें प्रवेश पाने के लिए कम से कम संस्कृत प्रथमा, प्रवेशिका, अथवा संस्कृत के साथ मैट्रिक उत्तीर्ण होना अनिवार्य है। अभावग्रस्त एवं सुयोग्य छात्रों को दोनों पाठ्यक्रमों में कुल ४० छात्रवृत्तियां २० प्रतिमास प्रतिछात्र दी जावेगी। २१ जून तक आवेदन पत्र भेजकर स्थान सुरक्षित करा लेना चाहिए। क्रियात्मक शिक्षा के लिए आतुरालय, शव-

शीघ्रता करें अवसर न चूकें

केवल कुछ समय के लिए

भस्में, पाक, अवलेह, आसव-अरिष्ट, चूर्ण आदि पर ३१ % प्रतिशत कमीशन।

५०) नेट के आर्डर पर मालगाड़ी का रेल किराया फ्री।

कुमारी आसव, लोहासव, अशोकारिष्ट १ पौंड पैकिंग १४) प्रति दर्जन नेट।

इसके अतिरिक्त हर प्रकार की जड़ी-बूटी मंगवाने के लिए आज ही लिखें। सूचीपत्र मुफ्त

चावला आयुर्वेदिक फार्मेसी
कुब्वी बेरी, किला भंगिया, अमृतसर

ालय, रसायनशाला, वनस्पति वाटिका, ालय, वाचनालय और छात्रावास की चित व्यवस्था है। इस सम्बन्ध में प्रिन्सी- ल आयुर्वेद विश्वभारती, सरदारशहर से व्यवहार किया जा सकता है।

आयुर्वेद विश्व भारती में आयुर्वेद विद्वानों का सम्मान

सरदार शहर—आयुर्वेद के पुनरुद्धार विकास में यथाशक्य सहयोग देने के लिए ग्राम ज्योतिः केन्द्र के तत्वावधान में चालित आयुर्वेद विश्व भारती में गत सप्ताह भारत विख्यात आयुर्वेदज्ञों का शुभागमन हुआ जिनमें से उत्तर प्रदेश से भारतीय संसद के एक मात्र आयुर्वेद विद्वान सदस्य भगवानदीन जी मिश्र एवं सचित्र आयुर्वेद संचालक श्री रामनारायण जी शर्मा का आगमन उल्लेखनीय है।

संस्था द्वारा श्री मिश्रजी के सम्मान में स्वागत समारोह का आयोजन किया जिसमें संस्था के कार्यकर्ताओं एवं छात्रों के अतिरिक्त समस्त स्थानीय वैद्य भी सम्मिलित थे। इस अवसर पर बोलते हुए मिश्र जी ने राजस्थान में आयुर्वेद के उज्ज्वल भविष्य पर प्रकाश डाला एवं आयुर्वेद के उत्थान के लिए संस्था द्वारा किए जाने वाले कार्य की प्रसन्नतापूर्वक सराहना की और इसकी प्रगति के लिए पूर्ण सहयोग का आश्वासन दिया।

श्री शर्मा जी ने भी संस्था के कार्य को देखकर अत्यन्त संतोष प्रकट किया एवं प्रसन्न होकर उन्होंने अपने वहाँ से प्रकाशित आयुर्वेद साहित्य का एक सैट भी संस्था को पुरस्कार स्वरूप भेंट किया।

दोनों विद्वानों का स्थानीय तथा जिला वैद्य सभाओं द्वारा भी समारोह पूर्वक स्वागत किया गया।

परशुराम पुरिया आयुर्वेदिक कालेज का नवीन सत्र जुलाई से प्रारम्भ

सीकर—सीकर स्थित श्री परशुराम पुरिया राजस्थान आयुर्वेद कालेज से प्राप्त सूचना के अनुसार कालेज का नवीन 'सत्र ७ जुलाई ५८ से प्रारम्भ हो रहा है। कालेज में आयुर्वेदिक शिक्षा के साथ रसायन शाला, प्रयोग शाला, आतुरालय आदि का अच्छा प्रबन्ध है। छात्रावास, पानी तथा प्रकाश आदि की व्यवस्था निःशुल्क है। योग्य छात्रों को छात्रवृत्तियां भी दी जाती हैं।

यूनानी, आयुर्वेदीय वनौषधि और खनिज द्रव्य सस्ते मूल्य पर शुद्ध व उत्तम

हमारी दुकान से दुर्लभ केसर, कस्तूरी,
विविध प्रकार की काष्ठौषधि, मुक्ता,
सीप, शंख, शुद्ध शिलाजीत, सुवर्ण-
माक्षिक, प्रवाल, पारद, गंधक
आदि सब प्रकार के खनिज
तथा वनौषधि द्रव्य थोक
व परचून भाव पर प्राप्य

हमारी विशेषता-वास्तविक और शुद्ध सामान

विस्तृत विवरण के लिए पत्रव्यवहार करें और बड़ा सूचीपत्र मंगवायें।
तार का पता : आयुर्वेद फोन : ३१७९६
पता : शा० जादवजी लालूभाई एण्ड को०
२४५, कालबादेवी रोड़, बम्बई।

शुद्ध आयुर्वेद पाठ्यक्रम समिति बम्बई राज्य के पदाधिकारी

बम्बई राज्य सरकार ने २०-५-५८ को शुद्ध आयुर्वेद पाठ्यक्रम समिति, बम्बई, का पुनर्गठन किया है जिसमें निम्न पदाधिकारी तथा सदस्य नियुक्त किये गये हैं :—

अध्यक्ष—श्री वैद्य वामनराव दीनानाथ, बम्बई। मन्त्री—श्री वैद्य नारायणहरि जोशी, बम्बई।

सदस्य श्री वैद्य गणेश शास्त्री जोशी, पूना। श्री वैद्य लक्ष्मीशंकर रामकृष्ण शास्त्री, अहमदाबाद। श्री वैद्य दत्तात्रेय शास्त्री, जलूकर, नसीराबाद, पूर्व खानदेश। श्री वैद्य त्र्यम्बकलाल देवशंकर जोशी, भरुच। श्री वैद्य गंगाधर वैद्य, नागपुर। श्री वैद्य नागेश शास्त्री, जालना। श्री प्रिन्सीपल, जे० पी०, आयुर्वेद विद्यालय, भावनगर।

इस समिति का क्षेत्र कच्छ, सौराष्ट्र, विदर्भ, मराठवाड़ा सह सर्व बम्बई राज्य होगा।

उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा

आयुर्वेदिक एवं तिब्बी पुस्तकों पर पुरस्कार

लखनऊ—आयुर्वेदिक एवं तिब्बी एकेडमी, उत्तरप्रदेश चालू वित्तीय वर्ष में हिन्दी, उर्दू, संस्कृत तथा अंग्रेजी भाषाओं के उत्तम आयुर्वेदिक एवं तिब्बी ग्रन्थों के लेखकों को २,३०० रु० के पुरस्कार वितरित करेगी।

पुस्तकों के प्राप्त करने की अन्तिम तिथि १५ सितम्बर १९५८ है। उक्त विभाग ने लेखकों से अनुरोध किया है कि समय के अन्दर ही आयुर्वेदिक एवं यूनानी चिकित्सा पद्धति की ऐसी पुस्तकें जो जनवरी १९५७ के पश्चात् प्रकाशित हुई हों, को क्रमशः ७

नवरत्न रस

स्त्री, पुरुष और बालकों के लिये महौषधि

यह नवरत्न रस हीरा, पन्ना, मोती, माणिक आदि नौ रत्नों की भस्म और सुवर्ण आदि के संयोग से तैयार किया जाता है। शरीर में स्थित रस, रक्त आदि धातुओं की उत्तरोत्तर वृद्धि और पोषण तथा वीर्यधातु की शुद्धि और पुष्टि करना इसका विशिष्ट कार्य है। शुक्र स्थान को पुष्टि मिलने से वीर्य में स्थित निर्बलता दूर होकर नपुंसकता, क्लैव्य, ध्वजभंग, वीर्यपात, स्वप्नदोष आदि नष्ट होते हैं और शरीर नवयौवन प्राप्त करता है।

यह गर्भावस्था में पांडु, रक्त की कमी, हाथ और पैरों में शोथ तथा श्वास आदि रोगों की उत्पत्ति को रोकता है। अल्पसत्वयुक्त प्रजा होती हो या बालक जन्मते ही मर जाता हो तो नवरत्न रस प्रथम मास से प्रसव काल तक सेवन कराने से प्रसव सुखपूर्वक होता है। बालक भी तन्दुरूस्त जन्मता है। इसके सेवन से अकाल प्रसूति और रक्तस्राव नहीं होता।

इसके उपरांत किसी भी कारण से पांडु, क्षय, जीर्णज्वर, कास, श्वास, वातव्याधि, मधुमेह, रक्तस्राव, मगज की निबलता, वीर्यविकार आदि में बाल, वृद्ध, युवा, स्त्री, पुरुष सबको नवरत्न रस देने से शक्ति प्राप्त होती है। निरोगी शरीर के लिये यह रसायन है रोगी शरीर के लिये औषध।

मूल्य २८ गोली का रु. ५), तोला १०)

ऊंझा फार्मेसी ऊंझा

ऊंझा (उ० गु०).

निशुल्क प्रतियों में अध्यक्ष—आयुर्वे- वं तिब्बी एकेडमी उत्तर प्रदेश, तुलसी- र्ग, लखनऊ के पते पर प्रेषित करने ष्ट करें। लेलकों को पुरस्कार सम्बन्धी मों का पालन करना होगा।

स्कार के लिए प्राप्त पुस्तकों में से की एक एक प्रति चाहे वह पुरस्कृत ता न हो एकेडमी के पुस्तकालय में जायेंगी।

ाड़ आयुर्वेद प्रचारिणी सभा का निर्वाचन

ारवाड़ आयुर्वेद प्रचारिणी सभा र के आगामी वर्ष के पदाधिकारियों चुनाव प्रतिद्वन्दितापूर्ण वातावरण में हुआ जिसमें राजवैद्य श्री सत्यदेव जी र्मा, भगन्दर विशेषज्ञ भारी बहुमत से ति निर्वाचित हुए।

इसके अतिरिक्त कोषाध्यक्ष के लिए शीतलदास, आय-व्यय निरीक्षक श्री ोंगमल, धन्वन्तरि भवन के संयोजक ाम शास्त्री तथा राजस्थान प्रदेश वैद्य न के प्रतिनिधि राजवैद्य श्री सत्यदेव चुने गये। शेष स्थानों का चुनाव स्वयं द्वारा किया जायगा।

ाम आरोग्य शिविर सम्पन्न

दयपुर कमिश्नरी वैद्य सभा के तत्वा- न में जिला वैद्य सभा भीलवाड़ा का १५ का आरोग्य शिविर लगाया गया जिस- माप्ति समारोह की अध्यक्षता करते राजस्थान के उप-स्वास्थ्य मंत्री श्री भाई ने कहा कि यह आरोग्य शिविर देश में अपने ढंग का पहला प्रयोग है। स्वयं गांव के घरों में जाकर देखा कि

यह तथ्य है

औषधि तभी गुणकारी व प्रभावशाली
हो सकती है जब उसमें पड़ने
वाला कच्चा द्रव्य असली
व उत्तम हो।
प्रामाणिक द्रव्यों के लिए

नेपाली ब्रदर्स

२१२, बड़गादी, बम्बई-३

- नेपाली कस्तुरी
- जंगबारी अम्बर
- बसरा मोती
- स्पेन केशर
- सूर्यतापी शिलाजीत
- विशुद्ध गोरोचन

के अतिरिक्त

प्रवाल शाख, प्रवाल मूल, गोदन्ती,
बंसलोचन, भीमसेनी कपूर, जहर-
मोरा खताई, केहरुवा, जुन्द
वेदस्तर, हरडें, अकीक, सीप,
कौड़ी, शंख, शिंगरफ,
वर्की हड़ताल तथा
सब प्रकारकी खड़ें
(जवाहिरात)
आदि।

विशेष विवरण के लिये सूचीपत्र
मंगाएँ।

ग्रामवासियों ने अपने घरों में केवल सफाई ही नहीं रोगों से बचने के लिए जितने भी उपाय हैं उनके पालने के भी नियम ले लिए हैं। इन पन्द्रह दिनों में आयुर्वेदिक पद्धति के सद्वृत्त, स्वस्थ्यवृत्त पाठ्यक्रम से जनता में आश्चर्यजनक प्रगति की है। आपने आयुर्वेद के विकास के बारे में चर्चा करते हुए कहा कि आयुर्वेद निकट-भविष्य में देश की एक मात्र चिकित्सा पद्धति बन सकेगा।

आपने कहा कि देश में मौबाइल सर्जिकल कैम्पों की भांति आयुर्वेदिक शिविरों का आयोजन भी लाभप्रद होगा।

इसी अवसर पर राजस्थान आयुर्वेद विभाग के संचालक श्री प्रेमशंकर जी ने कहा कि दो हजार वर्षों से रुका हुआ स्वास्थस्य रक्षणम् वाला रोगानुपादनीय अध्याय आज फिर आरम्भ हो रहा है। देश की स्वास्थ्य समस्या पर चिन्ता व्यक्त करते हुए श्री संचालक जी ने कहा हमें बीमारियों को ठीक करने के साथ-साथ इस प्रकार का यत्न करना चाहिए कि रोग पैदा ही न हों।

जिला वैद्य सभा के अध्यक्ष श्री रामचन्द्र वैद्य ने इस अवसर पर मंत्री जी को एक अभिनन्दन पत्र समर्पित किया जिसमें वैद्यों की वेतन वृद्धि की मांग की गई। इसी अवसर पर उदयपुर कमिश्नरी वैद्य सभा के महामंत्री श्री मिश्रीप्रसाद जी शास्त्री ने इस बात पर खेद प्रकट किया कि देश में आयुर्वेद के विकास की बात जहां हमारी सरकार करती है वहां साधनों की दिशा में कोई प्रगति नहीं है। यदि आयुर्वेद वालों को अच्छे साधन दिए जाएँ तो कोई कारण नहीं है कि आयुर्वेद वाले कोई प्रगति न करें। बिना साधनों के आयुर्वेद विकास की बात कहां तक न्याय-संगत है। आपने इसी अवसर पर राज्य के वैद्यों का वेतन स्तर बढ़ाने पर काफी जोर दिया।

आयुर्वेद महाविद्यालय कानपुर का नवीन सत्र जुलाई में

कानपुर—आयुर्वेद महाविद्यालय कानपुर का नवीन सत्र ८ जुलाई १९५८ को प्रारम्भ हो रहा है। आयुर्वेद की शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्र इस अवसर से लाभ उठा सकते हैं। विद्यालय में प्रवेश पाने वाले छात्रों की योग्यता व्याकरण प्रथमा-मध्यमा, हाई स्कूल-इण्टर, साहित्यरत्न आदि होनी चाहिए।

इस विद्यालय से नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, गुरुकुल महाविद्यालय, तथा ज्वालापुर-हरिद्वार की परीक्षायें दिलाई जाती हैं। विशेष विवरण विद्यालय से प्राप्त किया जा सकता है।

श्री शंकरदाजी शास्त्री पदे पुरस्कार

प्रयाग—अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन द्वारा स्थापित श्री शंकरदा जी शास्त्री पदे स्मारक समिति ने इस वर्ष सर्वोत्तम आयुर्वेदिक ग्रन्थ लेखक को पांच सौ रुपया पुरस्कार से पुरस्कृत करने का निश्चय किया है। सन् १९५७ से इधर जो आयुर्वेद के किसी भी विषय पर स्वतन्त्र या व्याख्या ग्रन्थ प्रकाशित हुआ हो उसकी पांच प्रतियां १५ जुलाई १९५८ तक समिति के कार्यालय, ३ सम्मेलन मार्ग, प्रयाग में आना आवश्यक है।

समिति के निर्णय पर आगामी आयुर्वेद महासम्मेलन के अधिवेशन के अवसर पर यह पुरस्कार प्रदान किया जायगा।

२०१५

म्मेलनाध्यक्ष श्री अनन्त त्रिपाठी र्मा का बम्बई वैद्यसमाज द्वारा अभिनन्दन

बम्बई वैद्य समाज की ओर से दिनांक ५८ को वैद्यरत्न श्री पण्डित शिवशर्मा अध्यक्षता में अखिल भारतीय आयु-म्मेलन के सभापति श्री पं० अनन्त शर्मा, एम० ए०, पी० ओ० एल०, चार्य का, यूनिवर्सल हैल्थ इंस्टीट्यूट के वृद्ध भवन में अभिनन्दन समारोह न हुआ। इस अवसर पर बम्बई की न आयुर्वेदीय संस्थाओं की ओर से को अभिनन्दन-पत्र एवं पुष्पहार भेंट ये। सभा भवन बम्बई के वैद्य समाज चाखच भरा हुआ था। यूनिवर्सल हैल्थ ट्यूट की ओर से चाय का प्रबन्ध था।

गलाचरण के पश्चात् वैद्यरत्न श्री पं० र्मा जी ने उपस्थित महानुभावों को त्रिपाठी जी का परिचय दिया। तदुप-न्त श्री पं० रामगोपाल जी, श्री हिम्मत-त्र्यम्बकलाल जी मुनि, श्री नाना साहेब के, श्री वासुदेव शास्त्री, श्री नारायण जोशी, श्री सोमेश्वर मयाशंकर भट्ट, वेद प्रकाश, श्री देवदत्त, श्री बल्लभ राम आदि महानुभावों ने अपने संक्षिप्त णों में श्री त्रिपाठी जी को अपनी अपनी जलियाँ समर्पित कीं। वैद्य श्री घासीराम ने आपके स्वागत में कविता पढ़ी तथा श्री शंकर जी मिश्र ने स्वरचित नौ श्लोकों पाठ किया।

समारोह में भाग लेने वाली संस्थाओं में बम्बई वैद्य सभा, बंबई राज्य वैद्य सम्मेलन, र वैद्य सम्मेलन, पुनर्वसु आयुर्वेदिक न, आयुर्वेद धर्मार्थ दवाखाना मण्डल, नगर जिला वैद्य सम्मेलन, इण्डियन फार्मेसिस्ट एसोशियेशन, धूत पापेश्वर फार्मेसी, आयुर्वेद प्रचारक मण्डल, यूनिवर्सल हैल्थ इंस्टिट्यूट, महागुजरात वैद्य मण्डल, बम्बई आयुर्वेदिक सोसायटी तथा प्रगतिशील आयुर्वेद मण्डल के नाम विशेषतया उल्लेखनीय हैं।

सभाध्यक्ष श्री पं० शिवशर्मा जी ने अपने भाषण में श्री त्रिपाठी जी का अभिनन्दन करते हुये आयुर्वेद की वर्तमान स्थिति पर प्रकाश डाला। तदुपरान्त श्री पण्डित अनन्त त्रिपाठी जी शर्मा ने अपना भाषण दिया जिसमें आपने इस सम्मान समारोह के लिये बम्बई वैद्य समाज का धन्यवाद किया।

दिनांक २६-३-५८ को ही मध्यान्ह में स्व० हरिप्रपन्न जी आयुर्वेद विद्यालय, भास्कर भवन, में राजवैद्य श्री दामू भाई की अध्यक्षता में भी श्री त्रिपाठी जी का सम्मान किया गया। इस सम्मान समारोह में भाग लेने वालों में श्री पं० कन्हैयालाल भेड़ा, श्री हिम्मतलाल त्र्यम्बक लाल मुनि, श्री महाबीर प्रसाद मिश्र, श्री प्यारेलाल शर्मा, श्री गजानन शर्मा तथा श्री वासुदेव व्यास के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

दोनों स्थानों में अपने भाषण में श्री अनन्त त्रिपाठी जी शर्मा ने कहा कि भारत की जनता विशेषतया ग्रामों में बसती हैं जहाँ एलोपैथी वाले चिकित्सा करने में अपनी कठिनाई महसूस करते हैं। हमारी सरकार जितना रुपया एलोपैथी के लिये व्यय करती है उसकी अपेक्षा आयुर्वेद के लिये कहीं कम व्यय करती है जबकि आयुर्वेद चिकित्सा से अब भी अस्सी प्रतिशत रोगियों को लाभ मिलता है। बीस प्रतिशत रोगियों की चिकित्सा करने वाली एलोपैथी के लिये जब इतना अपार अर्थ व्यय किया जाता है तो उसकी तुलना में अस्सी प्रतिशत की चिकित्सा करने वाली आयुर्वेद चिकित्सा के लिए जो

धनराशि निकाली जाती है वह नगण्य है। ऐसी स्थिति में हमारा कर्त्तव्य हो जाता है कि सर्व प्रथम हम सरकार पर दबाव डालें कि वह अब आयुर्वेद से न्याय करे।

वर्तमान में विभिन्न प्रान्तों में विभिन्न प्रकार के पाठ्यक्रम प्रचलित हैं। सर्व प्रथम इस शिक्षा के पाठ्यक्रम का एक ही डिग्री कोर्स बनाने का प्रयत्न करना चाहिये। यह कार्य महासम्मेलन के द्वारा ही सम्पन्न हो सकता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जब आप सब वैद्यों की शक्ति का पुञ्ज मेरे सभापतित्व में सहायक होगा तो मैं इस कार्य को सम्पादन करने में समर्थ हो सकता हूँ क्योंकि सभापति में कोई निजी शक्ति काम नहीं करती है। इससे हम सरकार को यह भी बता सकते हैं कि हमारी शिक्षा का स्तर एक है। उधर वे शिक्षित वैद्य जब ग्रामों में चिकित्सा करके जन साधारण को अपनी तरफ आकृष्ट कर लेंगे तब इसमें कोई सन्देह नहीं सरकार भी हमारी ओर आकृष्ट होगी।

आयुर्वेदिक ग्रन्थों पर पुरस्कार

उत्तर प्रदेशीय आयुर्वेदिक एण्ड तिब्बी एकेडमी, लखनऊ द्वारा वैद्य महेन्द्र कुमार शास्त्री को उनके द्वारा लिखित "सचित्र लघु द्रव्य गुणादर्श" नामक पुस्तक पर तथा वैद्य रामगोपाल शास्त्री, दिल्ली, को उनके आयुर्वेदिक ग्रन्थ "वेदों में आयुर्वेद" पर ३५० रु० का पुरस्कार प्रदान किया गया है।

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका में विज्ञापन देकर लाभ उठाइये

नेत्रों की अनेक व्याधियों और नेत्रों को सुरक्षित रखने के लिये

श्री हरि
जीवदया
नेत्रप्रभा
रजिस्टर्ड

अत्यंत लाभदायक है

नेत्रप्रभा—नेत्रकण्डु, कुकरे, धुन्ध, जाला, फूली, नेत्रस्राव, लाली रतोंधी, नेत्रों का दुखना, कम दिखाई देना, आदि के लिए अनुपम है।

जीवदया नेत्रप्रभा—अधिक परिश्रम, वेल्डिग, गाड़ी चलाना, धुआँ, सिनेमा, लिखना-पढ़ना, धूप, टाइफाइड, सूर्यावर्त और जागरण के कारण होने वाले सिर दर्द और आँखों के दर्द में लाभदायक है। सोते समय अंजन करने से बढ़िया नींद आती है। दिमाग स्फूर्ति पाता है।

नेत्रप्रभा—की बड़े-बड़े वैद्य डाक्टर, विख्यात संस्थाओं, संत महात्माओं तथा समा-प्रचार पत्रों ने प्रशंसा की है। जैसे:—श्री बंबई आयुर्वेद चिकित्सक मंडल, सूरत वैद्य सभा, श्री राजकुमार सिंह आयुर्वेद कालेज इन्दौर। राजकोट के ग्रामों में आयुर्वेदिक बक्स में इसे स्थान प्राप्त हुआ है।

नेत्रप्रभा—नित्य व्यवहार से कोई हानि नहीं होगी—बालक तथा वयस्क दोनों ही दिन में एक से तीन बार दर्द के अनुसार इसे लगा सकते हैं। अधिक विवरणके लिये लिखिये—

जीवदया नेत्रप्रभा कार्यालय
(निर्माताः—आर. एम. शाह)
जूनी विक्टोरिया मिल्स कम्पाउण्ड,
गांमदेवी रोड, बंबई ७

ति० भा० आयुर्वेदविद्यापीठकेन्द्रीयप्रबन्धकसमितेः द्वितीयमधिवेशनम्

स्थानम् :—अ० भा० आयुर्वेदमहासम्मेलनविद्यापीठ कार्यालयः।

समयः—भौमवारे १०-६-५८ दिनांके मध्याह्नोत्तरं त्रिवादनसमये।

उपस्थितिः :—

१—वैद्य श्री उपन्द्रनाथ दासः विद्यापीठोपाध्यक्षः दिल्ली।
२—वैद्य श्री घनानन्द पन्तः दिल्ली।
३—वैद्य श्री शिवनाथ शर्मा, दिल्ली।
४—वैद्य श्री आचार्य नित्यानन्दः पिलानी।
५—वैद्य श्री जयभगवान शर्मा, खुर्जा।
६—वैद्य श्री भुवनचन्द्र जोशी, दिल्ली।
७—वैद्य श्री गणेशदत्त शास्त्री, मेरठ।
८—वैद्य श्री रामस्वरूप चक्रवर्ती, दिल्ली।
९—वैद्य श्री केशवप्रसाद आत्रेयः, दिल्ली।
१०—वैद्य श्री कैलाशचन्द्र अग्रवालः, दिल्ली।
११—वैद्य श्री नानकचन्द्रः शास्त्री, दिल्ली।
१२—कविराज श्री स्वामी चेतनानन्दः, दिल्ली।
१३—वैद्यरत्न श्री परमानन्दः, दिल्ली।
१४—वैद्य श्री मदनलाल शर्मा, जोधपुर।
१५—वैद्य श्री सीताराम मिश्रः, विद्यापीठ मन्त्री।

निम्नलिखितमहानुभावानां सम्मतिपत्राणि प्राप्तानि—

श्री वैद्य चरणतीर्थ जी, गोंडल, ब्रह्मदत्त शर्मा, भुसावल, अम्बालाल, जोधपुर, ह० भारद्वाज, बंगलौर, जनार्दन शर्मा, रायगढ़, कविराज प्रतापसिंह, लक्ष्मीकान्त पुराणिक, नागपुर, चन्द्रावतीदेवी, हरिद्वार, वामनराव दी० वैद्य, बम्बई, नारायणदत्त ौर, श्रीधर मायाधारी शास्त्री, अमृतसर, रक्षपाल मिश्र, इन्दौर, वैद्यनाथ मिश्र, विजयकाली भट्टाचार्य, कलकत्ता, एम० वेंकट शास्त्री, विजयवाड़ा, श्रीराम ब्रजमोहन, बरेली, कृष्णगोपाल, बारां, रामस्वरूप कौशिक, जीरा।

श्री अध्यक्षमहोदयः आवश्यककार्यवशात्समितावुपस्थातुं नैव प्राभवत्। स हि लिखित-विकारान् श्री उपाध्यक्षमहोदयाय न्यवेदयत्। अतः क० श्री उपेन्द्रनाथदास-विद्यापीठोपाध्यक्षाणामध्यक्षतायां समितेः कार्यवाही समारब्धा।

—गताधिवेशनस्य कार्यविवरणं पठित्वा श्रावितम्।

वैद्यरत्न श्री परमानन्द महोदयैरापत्तिः कृता यत् सत्यामप्युपस्थितौ मदीयं गताधिवेशनस्य कार्यविवरणे समुपस्थितसदस्येषु नैवाङ्कितम् । आपत्तिर्लिखिता। निश्चितञ्च यत्तेषां नामोपस्थितसदस्येषु लेखनीयम् ।

कविराज श्री केशवप्रसादात्रेयैरापत्तिः कृता यत् समितेः कार्यवाही तत्सम्बन्धि पुस्तके हस्तेन लिखिता स्यात् । पत्रिकायां मुद्रिता कार्यवाही तत उच्छिद्य समितेः कार्यवाही पुस्तके निवेशिता नैव स्यात् । एतादृशी कार्यवाही प्रामाण्यं नैव प्राप्स्यति कार्यवाहीपुस्तके कस्मिश्चिदपि कार्यविवरणे अध्यक्षमहोदयानां हस्ताक्षराणि नैव विद्यन्ते अध्यक्षहस्ताक्षरविप्रयुक्ता कार्यवाही नैव मान्या भवति । सर्वैरप्युपस्थितसदस्यैः श्री केशवप्रसादात्रेयस्यापत्तिर्युक्तेति मनसानुमोदितम् । निश्चितम् च यत् भविष्यति का सर्वा अपि कार्यवाही तत्सम्बन्धिनि पुस्तके हस्तेन लिखिता भवेत्। स्वीकृत्यनन्तरं अध्यक्षमहोदयस्य हस्ताक्षराणि नूनम् अंकितानि भवेयुरिति । तदनन्तरं गताधिवेशनस्य कार्यवाही सर्वसम्मत्या स्वीकृता ।

२—नूतनविद्यालयानां स्वीकृतिविषयः उपस्थापितः ।

धन्वन्तरिआयुर्वेदपरिषद् विद्यापीठं 'धर्मावरम्' इत्येतस्य सम्बद्धताविषये निश्च कृतः यदेतद्विषये तत्प्रादेशिकवैद्यसम्मेलनाध्यक्षात् पत्र द्वारा विद्यालयपरिस्थितिविषयकम् वश्यकं ज्ञानं प्राप्तव्यं भवेत् । सम्मेलनाध्यक्षस्य सन्तोषजनके उत्तरे समुपलब्धे विद्या सम्बद्धो भवेत् ।

३—सन् १९५८ वर्षीय परीक्षाफलं पठित्वा श्रावितम् । सर्वसम्मत्या निश्चितम् परीक्षाफलं प्रकाशितं भवेत् ।

४—परिशिष्टपरीक्षार्थं केन्द्रनिर्धारणविषयः उपस्थितः निश्चितम् च यत्—गत इवास्मिन्नपि वर्षे परिशिष्टपरीक्षाकेन्द्राणां स्थापनं भवेत् ।

५—"पंजाब बोर्ड आफ आयुर्वेदिक एण्ड यूनानी सिस्टम्स आफ मेडिशन" इत्येत रजिस्ट्रारमहोदयस्य अमृतसरो जालन्धर केन्द्रसम्बन्धि रिपोर्टे विचारः उपस्थितः। कविरा श्री केशवप्रसादात्रेयस्य सम्मत्या श्री क० कैलाशचन्द्र अग्रवालस्य समर्थनेन चैतन्निश्चितम् यदयं विषयः पूर्णविचारार्थं विद्यापीठमन्त्रिणे श्री सीतारामंमिश्राय तथा विद्यापीठो कविराज श्री उपेन्द्रनाथदासमहोदयायार्पितो भवेत् तत्र विचारानन्तरं यदि किंचिदाव मतं स्यात्तदायं विषयः नियमावलीसंशोधनसमित्यै प्रेषयितुं शक्यते ।

६—श्री प्रेमनिधि शास्त्री विद्यापीठविभागप्रधानलेखकस्य स्थायीकरणवि उपस्थितः निश्चयश्च कृतः यत् सः वर्तमानवेतनक्रमे दिनांक १-६-५८ तः स्थायी कृतो भवे

७—श्री कृष्णचन्द्र मल्होत्रा तथा श्री हरिहरस्वरूपस्य विद्यापीठविभागलेख अस्थायिनियुक्तिविषय उपस्थितः । अनयोरस्थायिनी नियुक्तिः सर्वसम्मत्या पुष्टिं नीता।

अनन्तरं सभापतिमहोदयानामन्येषां च सदस्यानां धन्यवादानन्तरं समितिविस गता ।

ह० श्री उपेन्द्रनाथदासः
सभापतिः

वै० सीताराम मिश्रः
मन्त्री

जून मासीय पत्रिका में प्रकाशित परीक्षाफल का शुद्धिपत्र

वैद्याचार्य

अशुद्ध	शुद्ध
दीनदयाल शर्मा, तृ०	१२१ दीनदयाल शर्मा, द्वि०।

आयुर्वेद विशारद

रामेश्वर पारीक, प्र०।	१२२ रामेश्वर पारिक द्वि०।
जगदीशचन्द्र शर्मा, प्र०।	१६६ जगदीशचन्द्र शर्मा, द्वि०।
नरसिंह गायत्री, प्र०।	२६१ नरसिंह गायत्री, द्वि०।

४४ श्यामसुन्दर परि० रोग०।

वैद्य विशारद

७९ छदामीदास, परि० शारीर०।

आयुर्वेद भिषक्

खेमराज जैन, द्वि०।	१८६ खेमराज जैन, द्वि०।
बीरसैन मलिक, द्वि०।	४८१ बीरसैन मलिक, तृ०।
लोकनाथ आर्य, द्वि०।	५९२ लोकनाथ आर्य, द्वि०।
दत्तात्रय जवरे।	७३३ दत्तात्रय जवरे।
दयालजी नरसिंह खाचेला	८७३ दयालजी नरसिंह साचेला।
दुलीचन्द वर्मा।	८९१ दुलीचन्द वर्मा।
वलसमल्लय्य, तृ०।	९२९ वलसमल्लय्य, द्वि०।

४० ज्ञानचन्द शर्मा उत्तीर्ण प्रथम खण्ड।

कु० प्रेमलता वर्मा।	१५५ प्रेमकान्ता वर्मा।
बृजमोहन झालासी परि० रोग०।	१९६ वृजमोहन झालानी उत्तीर्ण प्र० खण्ड।
प्रमाल कानजी।	३८३ जमाल कानजी।
प्रेमलाल शर्मा।	७८८ प्रेमपाल शर्मा।
रतिराम।	८५६ रतिलाल।
भुलऊप्रसाद वर्मा।	८९० भुलऊप्रसाद शर्मा
देवदत्त शर्मा।	१०१७ देवदत्त वर्मा।

वैद्य सीताराम मिश्र
विद्यापीठमन्त्री

'आयुर्वेद-भास्कर' की विद्यापीठ द्वारा मान्यता

४२ वें अखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद महासम्मेलन बंगलौर के प्रस्ताव संख्या ३२ द्वारा प्रदत्त अधिकार का उपयोग करते हुए विद्यापीठाध्यक्ष वैद्यराज श्री वी० बी० नटराज शास्त्री ने आयुर्वेद महाविद्यालय, ज्वालापुर, की "आयुर्वेद भास्कर" परीक्षा की विद्यापीठ द्वारा मान्यता पर जो सन् १९५५ तक का प्रतिबन्ध लगा हुआ था, उसे हटा दिया है। अब किसी भी वर्ष में "आयुर्वेद भास्कर" परीक्षोत्तीर्ण व्यक्ति नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ की आयुर्वेदाचार्य तथा वैद्याचार्य परीक्षा में सीधे सम्मिलित हो सकता है।

वै० सीताराम मिश्र
विद्यापीठ मन्त्री

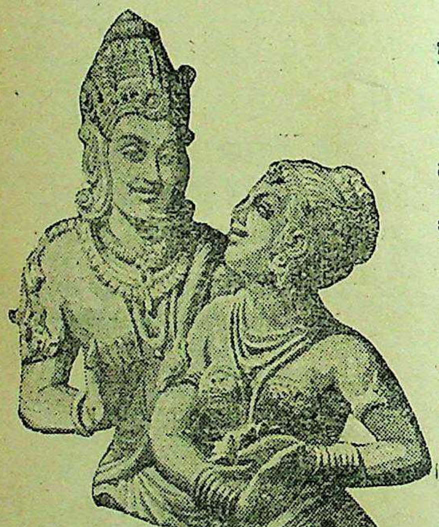

* भारतीय प्राचीन शास्त्र और कला *

भारतीय शिल्पकला का नमूना
प्राचीन शिल्प गुफाओं में मिलता है।
भारतीय प्राचीन औषधि विद्या
का उपकारक अनुभव धूतपापेश्वर
औषधियों में प्रतीत होता है।

धूतपापेश्वर
"कर्पूर अर्क"
दंतशूल, उदरशूल, अतिसार
इत्यादि पर गुणकारक।

बोध चिन्ह

धूतपापेश्वर इण्डस्ट्रीज लि०
भारत का आद्य आर्यौषधि कारखाना
[स्थापना सन् १८७२]
पनवेल—बम्बई
देहली:—वेदप्रकाश, धूतपापेश्वर आयुर्वेदिक औषधालय, ३६ ई, कमलानगर,
गोल चौक, देहली

संसदीय आयुर्वेदिक औषधालय

४२ वें अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन, बंगलौर, द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव के र पर संसद सदस्य क्लब भवन, नार्थ एवेन्यू, नई दिल्ली, में जो औषधालय हम अखिल य आयुर्वेद महासम्मेलन के तत्वावधान में खोलने जा रहे थे तत्सम्बन्धी विषय आपने "सत्यान्वेषण" जो अप्रैल १९५८ के पत्रिकाँक के पृष्ठ २३५ से २४४ तक प्रकाशित जाना होगा। अब मैं अपने सम्माननीय सदस्यों की विशेष सूचनार्थ पुनः निवेदन किया हूं कि उस लेख में वर्णित हमारी सभी औषधियां और अन्य उपकरण आज भी क्लब भवन के एक कमरे में वैसे के वैसे पड़े हैं। किसी को देखना अभीष्ट हो ख सकते हैं। उक्त सामग्री को शीघ्र ही वहां से उठाने की व्यवस्थ: कर रहा हूं।

स्वामी चेतनानन्द
संयोजक
संसदीय आयुर्वेदिक औषधालय समिति

ली, ता० १५-७-५८

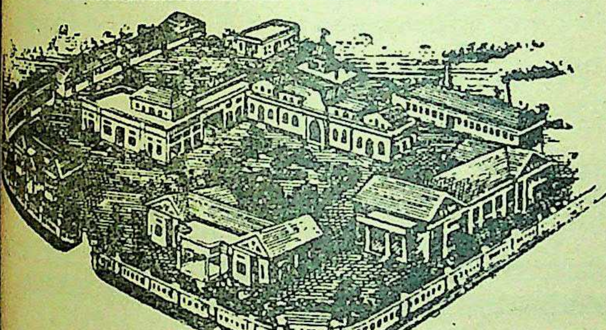

५० वर्षों से विश्व भर में प्रतिष्ठा प्राप्त भारत की प्रमुख आयुर्वेदिक औषध निर्माणशाला

सशाला औषधाश्रम (REGD. गोंडल, सौराष्ट्र।

गोंडल रसशाला के कारखाने में विविध प्रकार की भस्में, रसरसायन, कूपिपक्व रसा-, वटी, गुटिका, चूर्ण, वगैरह सैकड़ों प्रकार की हाथ से बनी औषधियाँ तैयार रहती हैं। स्तान के प्रत्येक प्रदेश में और चीन, फीजी, अफ्रीका, अमेरिका, युरोप में भी जाती हैं। भाषा के सूचीपत्र मुफ्त भेजते हैं।

ऋद्धिखंड:—वादिखंड: मूल्य ३) रुपया

नित्यनाथ सिद्ध का यह धातुवाद सुवर्ण सिद्धिका अद्भुत अप्राप्य ग्रन्थ संवत १७८५ की हस्त लिखित प्रति के आधार से प्रसिद्ध किया है। पत्र २०० पक्का जिल्द २० है। धातुवाद में रस लेने वालों के लिए संग्राह्य है। मूल श्लोक मात्र है।

बम्बई शाखा:—गोंडल रसशाला औषधाश्रम
वसंत वाडी के सामने, ४१६ कालबा देवी रोड, मुम्बई २।

यह अवसर न चूकिए। शीघ्रता कीजिए ॥

भस्में, रस आश्चर्यजनक कम मूल्यों पर

वैद्यों, औषध विक्रेताओं और धर्मार्थ औषधालयों के लिए अपूर्व अवसर।

हमारे डायरेक्ट्रों ने अधिक स्टाक शीघ्र बिक्री करने का निश्चय किया है। इस विचार से इसे निम्नांकित आश्चर्यजनक कम भावों पर जो हमारी लागत मात्र हैं, दे रहे हैं।

नोटः—(१) स्टाक कम होते ही इन भावों पर बिक्री बन्द कर दी जावेगी। (२) २० तोलासे कम कोई भी भस्म इन भावों पर न भेजी जावेगी।

शुद्ध शिलाजीत सूर्यतापी	गौदन्ती भस्म ४) सेर	यशद भस्म २८) सेर
३२) सेर	चन्द्रप्रभावटी २८) "	योगराजगुग्गुललघु १५) "
अभ्रक वज्र भस्म	जहरमौहरा भस्म १८) "	रस सिन्दूर ८०) "
" ३० पुटी ४६) "	त्रिवंग भस्म ४८) "	लोह भस्म २४) "
" ६० पुटी ६०) "	नाग भस्म पीत २४) "	शंख भस्म ७) "
अकीक भस्म ५०) "	प्रवाल " ३२) "	शृंगराज भस्म १४) "
कपर्दिका भस्म ८) "	प्रवाल चन्द्र पुटी ३२) "	स्वर्णमाक्षिकभस्म २८) "
कुक्कुटांडत्वकभस्म १८) "	बंग भस्म श्वेत ३६) "	स्वर्ण बंग नं.१, ८८) "
कांत लोह भस्म २८) "	मण्डूर भस्म २०) "	स्वर्ण सिन्दूर (चन्द्रोदय)
कसीस भस्म १०) "	मुक्ता शुक्ति भस्म १२) "	३) तोला

च्यवनप्राश,(नया)पाव के पैकिंग १५) दरजन, खुला ५ सेर का २१), १० सेर का ३८)
सुपारी पाक " " " " १८) " ५ सेर का २६), १० सेर का ४६)
द्राक्षासव, लोहासव, अशोकारिष्ट के १ पौंड पैकिंग १४) दर्जन।

काश्मीर आयुर्वेदिक वर्क्स, जी० टी० रोड, अमृतसर।

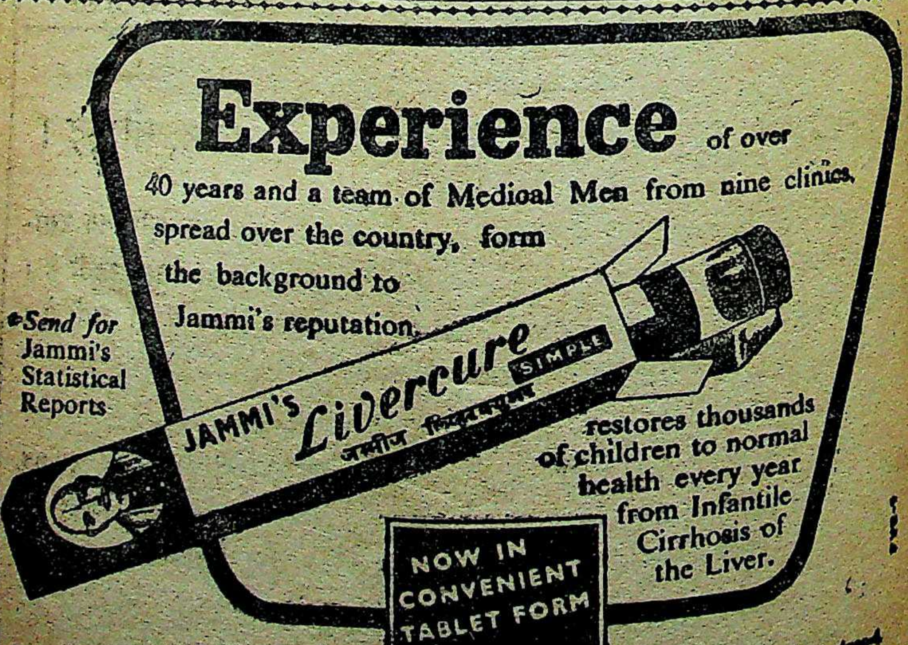

Experience of over 40 years and a team of Medical Men from nine clinics spread over the country, form the background to Jammi's reputation.

•Send for Jammi's Statistical Reports

restores thousands of children to normal health every year from Infantile Cirrhosis of the Liver.

NOW IN CONVENIENT TABLET FORM

JAMMI VENKATARAMANAYYA & SONS, •Jammi Building•, Mylapore, Madras

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन, विधान संशोधन समिति के अधिवेशन का कार्यविवरण

स्थान:—श्री यामिनी भूषण अष्टांग आयुर्वेद महाविद्यालय, १७०-१७२ राजा दिनेन्द्र स्ट्रीट, कलकत्ता-४

समय:—ता० १ जुलाई १९५८ मध्यान्ह २ बजे से ।

स्थिति:—

१—वैद्यराज श्री पं० अनन्त त्रिपाठी शर्मा, महासम्मेलनाध्यक्ष ।
२—आयुर्वेद पंचानन श्री पं० जगन्नाथ प्रसाद जी शुक्ल, प्रयाग ।
३—श्री वामनराव दीनानाथ वैद्य, प्रधानमन्त्री ।

कार्यविवरण:—श्री महासम्मेलनाध्यक्षजी ने प्रस्ताव किया कि इस सभा की अध्य- ता आयुर्वेद पंचानन श्री पं० जगन्नाथ प्रसाद जी शुक्ल करें और कार्य प्रारम्भ किया या। श्री शुक्ल जी ने कहा कि स्वयं अध्यक्ष जी की उपस्थिति में दूसरा व्यक्ति नियमा- सार अध्यक्षता ग्रहण नहीं कर सकता अतएव श्री अध्यक्ष जी ही सभा की अध्यक्षता करें। रान्त. महासम्मेलन नियमावलि में विभिन्न संशोधनों पर विचार-विमर्श प्रारम्भ हुआ। विषय पर विभिन्न सभाओं और सदस्य महानुभावों की ओर से प्राप्त सुझावों पर रणतया तथा नियमावलि संशोधन समिति के एक सदस्य कविराज श्री वैद्यनाथ सरकार, के सुझावों पर विशेषतया विचार-विमर्श किया गया। वैद्यराज श्री पं० जगन्नाथ द जी शुक्ल ने जो-जो सुझाव उपस्थित किए उन सभी को रिकार्ड पर लिया गया और सभी संशोधनों पर एक-एक करके विचार भी किया गया।

समिति ने प्रचलित नियमावलि में यत्र-तत्र कुछ संशोधन स्वीकार किए। मुख्य चय यह हुआ कि निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठ का नाम परिवर्तन करके खिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विश्व विद्यापीठ कर दिया जाय और आँगल भाषा में इसका All India Ayurvedic University रक्खा जाय।

निश्चय हुआ कि नियमावलि में स्वीकृत सभी परिवर्तनों, परिवर्धनों एव परिवर्जनों को लेकर संशोधित नियमावलि तैयार की जाय और उसी में प्रस्तावित नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ All India Ayurvedic University का परिपूर्ण विधान भी जाय। इस संशाधित नियमावलि का मसवदा बनाने का कार्य श्री महासम्मेलनाध्यक्ष प्रधानमन्त्री को सौंपा गया।

यह भी निश्चय हुआ कि इस संशोधित विधान की पूरी पाण्डुलिपि तैयार करके मावलि संशोधन समिति के सभी सदस्यों के पास अन्तिम विचारार्थ एवं स्वीकृत्यर्थ भेजी य।

वामनराव दी० वैद्य
प्रधानमंत्री
अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन

खोज का आश्चर्यजनक परिणाम

खोज का क्रम आज नया नहीं-किन्तु युग युगान्त चला आ रहा है। खोजके ऊपर किसी कवि के ये शब्द क्षरोंमें लिखे हुए हैं कि :-"जिन खोजा तिन पाइयां पानी पैठ" त्रेतायुग में जब रावण के लड़के मेघनाद शक्तिबाण से श्री लक्ष्मणजी मूर्च्छित पड़े हुए थे और चन्द्र जी की व्याकुलता का अन्त नहीं था, उस समय णजीमें पुनः जीवन लानेके लिये हनुमान जी को सजीव बूटी की खोज में जाना पड़ा था। हनुमान जी अपनी खोज में सफल हुए। परिणाम लङ्का के युद्धमें श्रीराम लक्ष्मण की विजय हुई।

आज का यह वैज्ञानिक युग भी मानवता और रोगों के महायुद्ध में, रोग द्वारा त्रस्त मानव को मुक्त करने के लिये नयी नयी खोज में लगा है और अपनी खोज में सफल हो नये अन्वेषणों द्वारा मानवजाति की रक्षा में सफल होता जा रहा है।

डाबर कार्यालय भी गत ७२ वर्षों से सऔषध सेवारत हो लगातार खोजों द्वारा आयुर्वेदिक, पेटेण्ट दवाओं के निर्माण क्षेत्र में दूसरों का पथ प्रदर्शक बनता जा रहा है। डाबर कार्यालय की बनी हुई आयुर्वेदिक तथा पेटेण्ट दवाएं इत्यादि आज जिस प्रकार लोकप्रिय बनी हुई हैं उसका एक मात्र कारण है— डाबर कार्यालयका निरन्तर खोजका परिणाम! साथ ही स्वच्छता और सर्वाङ्ग पूर्णता से औषध निर्माण की क्रिया !! इसी खोज के परिणाम स्वरूप डाबर कार्यालय आज भारतीय जनता के सम औषध निर्माण करने वाला एक श्रेष्ठ कार्यालय बना हुआ है।

डाबर (डा॰ एस॰ के॰ बर्म्मन) लि॰ कलकत्ता-२९

अपूर्व गुणकारी आयुर्वेदिक तथा पेटेन्ट दवाओं के निर्माता

रजिस्टर्ड नं०
जनक
युग युगान्त
व के ये शब्द
तिन पाइयां
लड़के मेघनाद
हुए थे और
, उस समय
जी को सजीव
। परिणाम स्व
और रोगों के
ीज में लगा

जनता के सम
निर्माता

आयुर्वेद

महासम्मेलन पत्रिका

श्रावण
२०११

प्रधान सम्पादक—कविराज स्वामी चेतनानन्द चिदाकाशी
उप सम्पादक - कविराज हरिकृष्ण सहगल
संस्कृत विभाग सम्पादक—कविराज नेत्रपाल शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य

विषय-सूची

विषय	लेखक	पृष्ठ संख्या
सम्पादकीय		३९९
श्री डाक्टर सम्पूर्णानन्द का ओजस्वी भाषण		४०९
Interim Report of the Ayurvedic Education Committee, Uttar Pradesh		४१७
हरीतकी	—श्री बागीश्वर शुक्लः	४२१
Problem of Mental Disease in India	—Kj. A.B. Dutt	४३१
कल्पवृक्ष	—श्री उदयलाल महात्मा	४३५
जलोदर की सफल चिकित्सा	—श्री व्रजनन्दन मिश्र	४३९
यकृद्दाल्युदर में आयुर्वेद चिकित्सा	—श्री राधाकृष्ण उपाध्याय	४४०
आयुर्वेद अनुसंधान	—श्री पं० ठाकुरदत्त शर्मा	४४४
अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन स्थायीसमिति का कार्यविवरण		४४७
आयुर्वेद-लोक		४५५

आयुर्वेद महासम्मेलन
पत्रिका में विज्ञापन
देकर लाभ उठाइये

ष्ठ संख्या
३९९
४०१
४१७
४२१
४३१
४३५
४३६
४४०
४४४
४४७
४५५

॥ धन्वन्तरयेनमः ॥

यत्प्रभापटलोद्भासि भाषतेऽद्यापि भारतम् ।
आयुर्वेदात्मकं ज्योतिः शाश्वतं नः प्रकाशताम् ॥

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

(अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का मासिक मुख-पत्र)

प्रधान सम्पादक—कविराज स्वामी चेतनानन्द चिदाकाशी ।
उप-सम्पादक—कविराज हरिकृष्ण सहगल ।
सम्पादक संस्कृत विभाग—वैद्य श्री नेत्रपाल शर्मा शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य ।
पत्रिका कार्यालय—महालक्ष्मी मार्केट, चाँदनी चौक, दिल्ली ।
का पता—"आयुर्वेद" दिल्ली टेलीफोन : २८९०२

दिल्ली, श्रावण २०१५, अगस्त १९५८

वार्षिक ५)
एकप्रति ॥)

सम्पादकीय

आयुर्वेद शिक्षा की समस्या और उसका समाधान

किसी भी ज्ञान-विज्ञान अथवा शास्त्र की वास्तविक उन्नति उसके सिद्धान्तों के समुचित अध्ययन और उनके अनुकूल शिक्षा की समीचीन व्यवस्था पर आधा- हुआ करती है। व्यवस्थित शिक्षा के अभाव में कालान्तर में कोई भी विज्ञान प्रगतिहीन अन्त में मृत हो जाता है। यही कारण है कि पराधीनता काल में हमारे देश की उन्नत विद्यायें, जो सुदूर अतीत में उसके गौरव और सम्मान का कारण बनी हुई अध्ययन-अध्यापन और अभ्यास की सुविधा न पाकर आज या तो नष्ट हो चुकी हैं या काय ग्रन्थों के पृष्ठों में बन्द रहकर इतनी दुरूह और जटिल हो गई हैं कि उनको समझना-समझाना ही कठिन हो गया है। हमारे देश की अनेक प्राचीन विद्याओं का इसीलिए कपोल-कल्पना कह कर उपहास किया जाता है कि उनकी शिक्षा के अभाव उनके अभ्यासी एवं प्रत्यक्ष कर दिखाने वाले उपलब्ध नहीं हैं।

अतीत काल में जिन अनेक विद्याओं के कारण आर्यावर्त को भूमण्डल का शिरोमणि समझा जाता था और जिसे कवियों ने "पृथ्वी का शीशफूल" कह कर पुकारा है, उनमें आयुर्वेद विज्ञान को प्रथम श्रेणी में रखा जा सकता है। आदि ज्ञान वेदों से, जिन्हें ईश्वरीय ज्ञान भी कहा जाता है, इसका उद्गम हुआ, इन्द्र, ब्रह्मा अश्विनी कुमार, धन्वन्तरि, चरक, सुश्रुत, वाग्भट, नागार्जुन आदि देवताओं, ऋषि मुनियों तथा विद्वानों ने इसका उपदेश, संस्कार, प्रतिसंस्कार एवं संवर्धन किया और इस प्रकार युगानुयुगों से परम्परा-पोषित यह विज्ञान आज पर्यन्त जीवित रहता आया है। उस काल में आयुर्वेद राज-मान्य चिकित्सा पद्धति थी और वैद्यों को राज्य तथा समाज में उच्च एवं सम्मानित स्थान प्राप्त था।

कालान्तर में राजनैतिक परिवर्तनों के साथ-साथ आयुर्वेद के भाग्य ने भी पलटा खाया और ज्यूं-ज्यूं देश पराधीनता की शृङ्खलाओं में आबद्ध होता गया त्यूं-त्यूं देश की अन्य विद्याओं एवं कलाओं के साथ-साथ आयुर्वेद विज्ञान का भी, ज्ञानार्जन की सुविधाओं एवं राजकीय प्रोत्साहन के अभाव में ह्रास होता चला गया और उसकी प्रगति अवरुद्ध हो गई। फिर भी अपने शाश्वत सिद्धान्तों एवं महान् गुणों के कारण तथा गुरु-शिष्य परम्परा के आधार पर इसके ज्ञान का आदान-प्रदान होता रहने के कारण आयुर्वेद का समूल नाश नहीं हुआ और इसके द्वारा जनता के स्वास्थ्य की रक्षा होती रही।

आयुर्वेद को सबसे बड़ा आघात अंग्रेजी शासन-काल में पहुँचाया गया जबकि अपने व्यवसायिक उद्देश्यों की पूर्ति के निमित्त अंग्रेज शासकों ने एलोपैथी को देश में प्रविष्ट कराया। जिस प्रकार अंग्रेजी शासनकालीन शिक्षा का उद्देश्य भारत की सभ्यता और संस्कृति का विनाश करके केवल शासन-भक्त क्लर्कों का उत्पादन करना था उसी प्रकार एलोपैथी के देश में प्रचलन का उद्देश्य देश की धन-सम्पत्ति के अपहरण के साथ चिकित्सा के क्षेत्र में अपनी श्रेष्ठता और प्रभुत्व को स्थापित करना था जिससे कि देश पूर्णतया उनका परावलम्बी बना रहे और उनके आर्थिक स्वार्थों की पूर्ति करता रहे।

एलोपैथी के देश में प्रवेश के पश्चात् आयुर्वेद पर किए गए अत्याचार, अन्याय एवं उसे नष्ट करने के लिए किए गए विभिन्न प्रच्छन्न प्रयत्नों से वैद्य समाज सुपरिचित है। उस समय देश में वैद्य समाज का कोई ऐसा संगठन विद्यमान नहीं था जो आयुर्वेद के प्रति किए जा रहे अन्याय के विरोध में आवाज उठाता और उसके प्रतिकार का प्रयत्न करता। अतः सन् १९०७ में इस त्रुटि को अनुभव करते हुए पुण्यकर्मा श्री शंकर दा जी शास्त्री पदे ने वैद्य समाज के संगठन का निश्चय किया जिसके परिणाम स्वरूप "अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन" का जन्म हुआ। जैसा कि हमने ऊपर लिखा है कि प्रत्येक ज्ञान-विज्ञान की वास्तविक उन्नति उसकी सुगठित शिक्षा व्यवस्था पर निर्भर है—अतः अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन ने अपने आधीन "निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठ" नाम की एक शिक्षा संस्था की स्थापना कर उसके द्वारा आयुर्वेद की देशव्यापी शिक्षा की व्यवस्था की। इसके सद् प्रयत्नों से देश में अनेक आयुर्वेद विद्यालयों की स्थापना हुई जो विद्यापीठ

होकर विद्यापीठ द्वारा निर्धारित विशुद्ध अष्टांग आयुर्वेद के पाठ्यक्रम के अध्यापन करने लगे जिसके परिणाम स्वरूप देश भर में विद्यापीठ द्वारा शिक्षित आयुर्वेद और श्रद्धालु वैद्यों का प्रसार हुआ। विद्यापीठ के यह स्नातक ही आज देश में के नाम और विशुद्ध स्वरूप को जीवित रखे हुए हैं।

स्तु, राजनैतिक क्षेत्र में अ० भा आयुर्वेद महासम्मेलन के अविराम संघर्ष और क्षेत्र में नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ के महान् प्रयत्नों ने देश में एक ऐसी आयु- चेतना और जागृति को जन्म दिया जिसने तत्कालीन शासकों को अपनी आयुर्वेद नीति विचार करने के लिए विवश कर दिया और वे ऐसे उपाय सोचने लगे कि जिनसे क्षेत्र में इस नवोद्भूत क्रान्ति को इस प्रकार दबाया जा सके कि देश में असन्तोष भी न हो और आयुर्वेद को विनष्ट करने के उनके उद्देश्य की पूर्ति भी होती रहे। सन् से लेकर आज पर्यन्त प्रान्तीय और केन्द्रीय स्तर पर अनेक ऐसी समितियों का निर्माण या जिनका लक्ष्य आयुर्वेद की शिक्षा और व्यवसाय को नियमबद्ध करना एवं समान जाना तथा उसका विकास करना था। इन सभी समितियों ने अपनी रिपोर्टों में एक स्वर से आयुर्वेद को ज्ञान का भण्डार और पूर्ण वैज्ञानिक शास्त्र बताया है उसके विकास के जो ढंग उन्होंने सुझाये वह आयुर्वेद के हितसाधक नहीं थे और उसका विनाश करने वाले ही थे। इन समितियों में जैसा कि उत्तर प्रदेश के मुख्य- श्री डा० सम्पूर्णानन्द जी ने भी स्वीकार किया है, **"दो बड़े दोष थे। या तो उनमें ों का बाहुल्य था या एलोपैथी के डाक्टरों का उनमें प्राधान्य था।"** इसका कि परिणाम यह हुआ कि उन्होंने प्रायः ऐसी सिफारिशें की जो आयुर्वेद के नाम पैथी का ही प्रसार करने वाली थीं। इनमें एक मुख्य सिफारिश आयुर्वेद और के इन्टेग्रेटिड (एकीकृत) पाठ्यक्रम द्वारा आयुर्वेद की शिक्षा दिए जाने की थी कि अन्ततोगत्वा आयुर्वेद एलोपैथी में विलीन हो जाये और आयुर्वेद के नाम पर करने वाले समुदाय का शनैः शनैः अन्त हो जाय। चौपड़ा समिति की सिफारिशों उद्देश्य भी यही था यद्यपि रिपोर्ट में इसे "देशी और पाश्चात्य चिकित्सा प्रणालियों सेण समन्वय" बताया गया है। सम्भव है कि समितियों ने ऐसी सिफारिशें अपनी एवं अनभिज्ञता के कारण ही की हों और उनकी मनोगत भावना आयुर्वेद की न रही हो। अस्तु।

इस समीकृत शिक्षा प्रणाली का जिसका अर्थ श्री सम्पूर्णानन्द जी के शब्दों में **निक चिकित्सा प्रणाली की एक झीनी चादर को आयुर्वेद की एक पतली पर्त मात्र ही था"** अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन द्वारा कड़ा विरोध किया न्तु प्रत्येक समाज में प्रायः ऐसे व्यक्ति मिल ही जाते हैं जो अपने समाज के सामूहिक अपेक्षा अपने वैयक्तिक हितों को अधिक महत्व देते हैं। वैद्यसमाज में भी ऐसे का अभाव नहीं है जो निजी स्वार्थवश आयुर्वेद विरोधी कार्यों को भी अपना सम- करने में नहीं हिचकिचाते। अतः महासम्मेलन के विरोध के बाद भी उनकी ओर

से एकीकृत शिक्षा प्रणाली का समर्थन किया गया और उनकी विनाशकारी सम्भावनाओं की ओर दृष्टिपात किये बिना ही इसे आयुर्वेद के कालेजों एवं स्कूलों में प्रचलित कर दिया गया।

अब अधिकांश राज्यों में राजकीय अथवा राज्य सहायता प्राप्त आयुर्वेद विद्यालयों में इस एकीकृत शिक्षा प्रणाली द्वारा ही आयुर्वेद की शिक्षा दी जा रही है। प्रत्येक राज्य में भिन्न-भिन्न प्रकार का पाठ्यक्रम प्रचलित है और उनकी उपाधियां भी पृथक्-पृथक् हैं। अतः समस्त देश में एक ही प्रकार के पाठ्यक्रम एवं एक ही उपाधि दिये जाने के उद्देश्य की पूर्ति तो हुई ही नहीं साथ ही आयुर्वेद की वास्तविक शिक्षा का कार्य भी सम्पन्न न हो सका। इन मिले-जुले पाठ्यक्रमों में ६० प्रतिशत से भी अधिक अंश एलोपैथी का है और उनमें आयुर्वेद को गौण स्थान दिया गया है। इन पाठ्यक्रमों से शिक्षित वैद्य नामधारी व्यक्तियों पर स्पष्टतः एलोपैथी का प्रभाव है क्योंकि वे अपने नाम के आगे डाक्टर शब्द का प्रयोग करते हैं और अपनी चिकित्सा में वे ९० प्रतिशत और कोई कोई तो शत प्रतिशत ही एलोपैथिक औषधियों का प्रयोग करते हैं। ये न तो पूरे डाक्टर ही बन सके हैं और न पूरे वैद्य ही बल्कि श्री सम्पूर्णानन्द जी के कथनानुसार "नीम हकीमों की एक नई जाति पैदा हो गई है।" इन "नीम हकीमों" का श्री डाक्टर सम्पूर्णानन्द जी ने वास्तविक चित्र खींचा है जो इस प्रकार है :—

"पिछले कतिपय वर्षों में आयुर्वेदिक कालेजों से जो वैद्य बनकर निकले हैं उनको नीम हकीम (क्वेक) कहना शायद श्रुतिकटु और अतिशयोक्ति हो किन्तु उन्हें और क्या उपयुक्त नाम दिया जाय यह मेरी समझ में नहीं आता। ये लोग वैद्य नहीं माने जा सकते। इन्हें आयुर्वेद में किसी प्रकार की आस्था नहीं है और वे स्पष्ट रूप से उसकी अवैज्ञानिकता की निन्दा करते हैं। विज्ञान की उनकी जानकारी बहुत ही थोड़ी है इसलिये अहमन्यता और वैज्ञानिक होने का गर्व जताने में उन्हें सङ्कोच भी नहीं होता। अल्पज्ञान खतरनाक होता है क्योंकि अन्य बुराइयों के अतिरिक्त उससे झूठा अभिमान उत्पन्न होता है। आयुर्वेदाचार्य कहलाने में वे अपना अपमान समझते हैं और उनकी अभिलाषा यह रहती है कि उन्हें ऐसी उपाधियां दी जायें जो बोलने में एलोपैथिक कालेज के स्नातकों की उपाधियों से मिलती जुलती हों किन्तु वे एलोपैथ भी नहीं हैं और उनके प्रशिक्षण का स्तर एम० बी० बी० एस० उपाधि प्राप्त स्नातकों के प्रशिक्षण से कहीं नीचा है। वे अपने आपको नैराश्य के गर्त में पाते हैं क्योंकि समाज ने उन्हें एलोपैथिक डाक्टरों के समकक्ष समझने की गलती नहीं की। क्योंकि ये उन लोगों की विचारहीनता के शिकार हुये हैं जिनका यह कर्त्तव्य था कि उनके प्रशिक्षण के लिये उपयुक्त पाठ्यक्रम बनाते, इन लोगों के साथ हमारी सहानुभूति तो होनी चाहिये किन्तु यह गलत बात होगी कि हम यह आशा करें कि ये समाज के स्वास्थ्य और चिकित्सा सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकेंगे। मेरी राय में जिस नयी प्रणाली ने इनका सर्वनाश किया है उसे चालू रखना बड़ा भारी अपराध होगा।"

एकीकृत शिक्षा से शिक्षित स्नातकों के सम्बन्धमें व्यक्त किये गये श्री डा० सम्पूर्णानन्द जी के उपर्युक्त विचार हमारे उन विचारों के पूर्णतया समर्थक हैं जो कि हम समय-समय पर अपने सम्पादकीय लेखों में व्यक्त करते रहे हैं। ये स्नातक आयुर्वेद के नाम पर एलोपैथी का ही प्रचार कर रहे हैं और इस प्रकार उस योजना के एक सक्रिय अंग बन गये हैं जो कि आयुर्वेद का विनाश करने वाली है। हम मानते हैं कि इस दुःखद परिस्थिति को उत्पन्न करने का दोष इन बेचारे स्नातकों का नहीं है—बल्कि उन लोगों का है जिन्होंने कि इस एकीकृत शिक्षा प्रणाली को अपनाने का सुझाव दिया। जिस शिक्षा-प्रणाली में ६० प्रतिशत से भी अधिक अंश एलोपैथी का हो उसके स्नातकों से वैद्य बनने की आशा की भी किस प्रकार जा सकती है। उनके लिये तो वैद्य के स्थान पर डाक्टर बनने और एलोपैथिक चिकित्सा करने का दम्भ करना अधिक स्वाभाविक है।

उत्तरप्रदेश उन कतिपय राज्यों में से हैं जिन्होंने कि सर्वप्रथम एकीकृत शिक्षा प्रणाली को अपनाया। इसके प्रचलित किये जाने से लेकर अब तक अनेक ऐसे अवसर आये जब कि इस प्रणाली के छात्रों ने आयुर्वेद के पढ़ने से इन्कार करके एलोपैथी पढ़ाये जाने का आग्रह किया और अपनी मांगों को मनवाने के लिये हड़तालें तक कीं। लखनऊ के राजकीय आयुर्वेदिक कालेज के छात्र अब भी गत फरवरी मास से हड़ताल किये हुए हैं और कालेज बन्द पड़ा है। छात्रों की मांग है कि उन्हें आयुर्वेद की बजाय एलोपैथी की शिक्षा दी जाय और पाठ्यक्रम में आयुर्वेद के वे ही विषय रखें जायं जो कि वे पढ़ना चाहें अन्यथा विद्यालय को समाप्त करके उसे कानपुर अथवा लखनऊ के मेडिकल कालेज में मिला दिया जाय।

स्पष्ट है कि आयुर्वेद कालेज में पढ़ने वाले छात्रों की उपर्युक्त मांगें नितान्त अविचारपूर्ण और आयुर्वेद का ह्रास करने वाली है किन्तु यह उस परिस्थिति का ही परिणाम है जो कि एलोपैथी—प्रधान एकीकृत पाठ्यक्रम के पढ़ाने से उत्पन्न हुई। आरम्भ के तीन वर्षों में एलोपैथी पढ़ने वाले छात्र यदि अन्त के दो वर्षों में भी आयुर्वेद न पढ़कर एलोपैथी पढ़ना चाहें तो यह अधिक स्वाभाविक है।

आयुर्वेद कालेज की इस हड़ताल ने आयुर्वेद के शुभचिन्तकों के सामने एक गम्भीर प्रश्न उपस्थित कर दिया। इस विषम परिस्थिति की ओर राज्य के स्वास्थ्य मन्त्री श्री हुकुमसिंह जी व मुख्य मन्त्री श्री डा० सम्पूर्णानन्द जी का भी ध्यान गया और राज्य में आयुर्वेद की शिक्षा के प्रश्न पर उन्हें नये सिरे से विचार करना पड़ा। आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति के विकासार्थ राज्य में प्रचलित विभिन्न पाठ्यक्रमों की जांच करके उसके पुनर्गठन के सम्बन्ध में सिफारिशें करने तथा ऐसे पाठ्यक्रम के लिए, न्यूनतम प्रवेश-योग्यता एवं प्री आयुर्वेदिक टैस्ट के विषय निर्धारित करने के लिए एक उच्चस्तरीय आयुर्वेद शिक्षा समिति का निर्माण किया गया। इस समिति के अध्यक्ष स्वयं श्री डा० सम्पूर्णानन्द जी बने। इस समिति के १० सदस्यों में ५ आयुर्वेद के विद्वान्, मुख्यमन्त्री, स्वास्थ्यमन्त्री, एक डाक्टर, लखनऊ विश्वविद्यालय के उपकुलपति तथा उत्तर प्रदेशीय स्वास्थ्य सेवाओं के अतिरिक्त

संचालक सम्मिलित थे। इनके अतिरिक्त केन्द्रीय सरकार के आयुर्वेदिक परामर्शदाता तथा उत्तर प्रदेशीय मैडिकल एण्ड पब्लिक हैल्थ विभाग के मंत्री एवं अतिरिक्त मंत्री विशेषतया आमन्त्रित किये गये थे। इस समिति की बैठकें २४ से २७ जून तक नैनीताल में सम्पन्न हुई। इस अवसर पर समिति के सदस्यों के समक्ष माननीय मुख्यमंत्री ने जो महत्वपूर्ण विचार व्यक्त किए उन्हें इसी अंक में आगे प्रकाशित किया जा रहा है। पाठक देखेंगे कि उन्होंने इण्टेग्रेटिड कोर्स तथा उसके निर्माताओं की जी खोलकर भर्त्सना की है और आयुर्वेद की वास्तविक शिक्षा दिये जाने पर बल दिया है। पत्रिका के गतांक में हम इनके सम्बन्ध में पर्याप्त चर्चा कर चुके हैं और यहां विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं समझते।

दीर्घ और गम्भीर विचार-विनिमय के पश्चात् समिति ने अपनी अन्तरिम रिपोर्ट गत १४ जुलाई को प्रस्तुत कर दी है जो इसी अंक में आगे प्रकाशित है। इसमें की गई सिफारिशें आयुर्वेद का उत्कर्ष करने वाली हैं और उनको क्रियान्वित करने से उस धनराशि का आयुर्वेदोन्नायक कार्यों में लाभ उठाया जा सकेगा जो कि अब तक आयुर्वेद शिक्षा के बहाने एलोपैथी पर व्यय की जा रही थी और एकीकृत शिक्षा के कारण जो आयुर्वेद उपेक्षित हो गया था वह पुनः प्रकाश में आ सकेगा।

आयुर्वेद की शिक्षा के लिए समिति ने एक सुगठित एवं उपयोगी पाठ्यक्रम का निर्माण किया है जिसे राज्य सरकार ने अपनी स्वीकृति भी प्रदान कर दी है। नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ के पाठ्यक्रम के समान यह पाठ्यक्रम भी एक विषय-प्रधान पाठ्यक्रम है और इसमें भौतिकी, रसायन एवं प्राणीशास्त्र आदि आधुनिक विषयों के उन आवश्यक अंशों को भी समाविष्ट किया गया है जो कि आयुर्वेद की युगानुरूप शिक्षा के लिए अनिवार्य समझे जाते हैं। विषय प्रधान पाठ्यक्रम के लिए प्रत्येक विषय के पृथक्-पृथक् पाठ्यग्रन्थों की आवश्यकता रहती है जिनका आज देश में अभाव सा है। इस अभाव की पूर्ति के लिए एक सम्पादक मण्डल की स्थापना की समिति ने सिफारिश की है जो ऐसे पाठ्यग्रन्थों का निर्माण करेगा जिनमें आयुर्वेद पर बल दिया गया हो और जिनमें आधुनिक चिकित्सा ग्रन्थों में से लेकर उन आवश्यक विषयों का भी समावेश किया गया हो जो कि आयुर्वेद के ग्रन्थों में या तो अधूरे हैं या उनमें उनका सर्वथा अभाव है। पाठ्यक्रम में पंचकर्म सहित आयुर्वेद के सभी अंगों की शिक्षा की व्यवस्था की गई है और इसके द्वारा पठित वैद्य आयुर्वेद की सभी शाखा प्रशाखाओं के ज्ञाता होंगे और आवश्यक आधुनिक विषयों का भी उन्हें ज्ञान रहेगा।

वर्तमान में प्रचलित मिश्रित पाठ्यक्रम में एक बड़ा दोष यह भी रहा है कि इसमें आधुनिक चिकित्सा के विषयों की शिक्षा उन उन विषयों के पृथक् एलोपैथिक डाक्टरों द्वारा दी जाती रही है। इन विषयों की शिक्षा प्रत्यक्ष कर्माभ्यास पर आधारित रहने के कारण इसका अनिवार्य परिणाम यह होता है कि छात्रों का झुकाव एलोपैथी की ओर अधिक

हो जाता है और वे आयुर्वेद को अवैज्ञानिक समझने लगते हैं। इस स्थिति के निराकरण के लिए समिति ने यह सिफारिश की है कि आयुर्वेदिक पाठ्यक्रम में समाविष्ट आधुनिक विषयों की शिक्षा भी आयुर्वेद के शिक्षकों द्वारा ही दी जाय और आयुर्वेद प्रशिक्षणार्थ प्रत्यक्ष कर्माभ्यास के लिए कालेजों से सम्बद्ध प्रयोगशालाओं एवं आतुरालयों को पूर्ण साधन-सम्पन्न एवं साज-सज्जायुक्त रखा जाय तथा उनमें उपयुक्त संख्या में शैयाओं की व्यवस्था हो।

समिति ने सम्पूर्ण पाठ्यक्रम को चार परीक्षाओं में विभक्त किया है १—प्रथम वार्षिक परीक्षा या प्रारम्भिक परीक्षा। २—द्वितीय वार्षिक परीक्षा (प्रथम परीक्षा) ३—तृतीय वार्षिक परीक्षा (द्वितीय परीक्षा) तथा ४—उपाधि परीक्षा।

प्रथम वार्षिक परीक्षा के परीक्ष्य विषय हैं पदार्थ विज्ञान, आयुर्वेद का इतिहास, भौतिकी (फिजिक्स), रसायन विज्ञान (कैमिस्ट्री) तथा प्राणी विज्ञान।

द्वितीय वार्षिक परीक्षा में केवल शरीर विषय अर्थात् शरीर रचना विज्ञान व शरीर क्रिया विज्ञान की परीक्षा ली जायेगी।

तृतीय वार्षिक परीक्षा में द्रव्यगुण, रसशास्त्र व भैषज्य कल्पना तथा अगद तन्त्र-व्यवहारायुर्वेद परीक्ष्य विषय निर्धारित किये गये हैं।

अन्तिम उपाधि परीक्षा को दो भागों में विभाजित किया गया है—प्रथम खण्ड और द्वितीय खण्ड। प्रथम खण्ड की परीक्षा चतुर्थ वर्ष के अन्त में चरक पूर्वार्ध, स्वस्थवृत्त, निदान और प्रसूति तन्त्र, कौमार भृत्य, स्त्री रोग निदान विषयों में होगी। द्वितीय खण्ड की परीक्षा चरक उत्तरार्ध, शल्य तन्त्र, शालाक्य तन्त्र तथा कायचिकित्सा के विषयों में ली जायेगी। सभी वर्षों की परीक्षाओं में सम्मिलित होने के लिए निर्धारित क्रियात्मक शिक्षा का प्राप्त करना आवश्यक होगा।

पाठक देखेंगे कि उपर्युक्त पांचों वर्षों की परीक्षाओं में निर्धारित विषयों में आयुर्वेद के प्रायः सभी विषय आ गये हैं और यह एक सर्वांगपूर्ण पाठ्यक्रम बन गया है। प्रत्येक राज्य में इस पाठ्यक्रम को आवश्यकतानुसार थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ प्रचलित किया जा सकता है। विद्वान् वैद्यों का यह कर्तव्य है कि इस पाठ्यक्रम का सूक्ष्म अध्ययन करें और अपने-अपने राज्य द्वारा इसे अपनाये जाने पर बल दें जिससे कि समस्त देश में आयुर्वेद का एक ही पाठ्यक्रम एवं एक ही उपाधि चलित हो जाय और आयुर्वेद के पूर्ण विद्वान् जिन्हें अपने शास्त्र पर गर्व (अभिमान) हो और जो वैद्य कहलाना गौरव की बात समझें, तैयार हो सकें।

आयुर्वेद के विकास में एक मुख्य बाधा यह भी रही है कि वैद्यों को राज्य द्वारा वह सम्मान व सुविधाएं नहीं दी जातीं जो डाक्टरों को उपलब्ध हैं। आयुर्वेदिक चिकित्सकों का वेतन-मान डाक्टरों के वेतन-मान से बहुत न्यून रखा गया है। यही कारण है कि आई० एस० सी० पढ़े हुए छात्रों में आयुर्वेद का अध्ययन करने की रुचि नहीं रहती और

उनमें एलोपैथी के प्रति मोह उत्पन्न हो जाता है। अतः समिति ने आयुर्वेदाचार्यों एवं एलोपैथिक स्नातकों के वेतनक्रम को समान स्तर में रखने की सिफारिश की है जिससे उपर्युक्त बाधा का सम्यक् निराकरण होगा और छात्रों में आयुर्वेदाध्ययन के प्रति आवश्यक रुचि उत्पन्न होगी।

श्री डा० सम्पूर्णानन्द जी ने अपने भाषण में आयुर्वेद शिक्षा के लिये संस्कृत के ज्ञान की अनिवार्यता को स्वीकार किया है। डाक्टर साहब के इस मत से हम सर्वथा सहमत हैं। स्वास्थ्य मन्त्री श्री हुकुम सिंह जी ने भी अपने भाषण में स्वीकार किया है कि—'संस्कृत के ज्ञान के बिना आयुर्वेद के अध्ययन की कल्पना भी नहीं की जा सकती क्योंकि आयुर्वेद के समस्त मूल ग्रन्थ संस्कृत में हैं और इनके अनुवाद चाहे जितने भी प्रामाणिक और सटीक क्यों न हो छात्रों को विषय में पूर्णरूप से पारंगत करने के लिये अपर्याप्त हैं।" हमें प्रसन्नता है कि समिति द्वारा निर्धारित प्रवेशयोग्यता भी इन्टर साइन्स के स्थान पर संस्कृत सहित इन्टरमीडिएट इन आर्टस या अंग्रेजी में मैट्रिक सहित मध्यमा (बनारस) या राज्य द्वारा स्वीकृत अन्य तत्सम परीक्षा निर्धारित की गई है।

पाठकों को यह भली प्रकार विदित ही है कि अ०भा० आयुर्वेद महासम्मेलन विद्यापीठ द्वारा एलोपैथी प्रधान मिश्रित शिक्षा का सदा ही प्रबल विरोध और अष्टांग आयुर्वेद की शिक्षा का जिसे हम शुद्धायुर्वेद भी कहते हैं, सदा समर्थन किया जाता रहा है। शुद्ध आयुर्वेद से हमारा तात्पर्य सदा उस अष्टांग आयुर्वेद से रहा है जिसमें वह अपेक्षित आधुनिक ज्ञान भी सम्मिलित होगा जो कि वस्तुतः आयुर्वेद विकास में सहायक है। शुद्ध आयुर्वेद से हमारा तात्पर्य कदापि यह नहीं रहा कि आयुर्वेद को केवल वर्तमान आयुर्वेदिक संहिता ग्रन्थों तक ही सीमित रखा जाय। जो व्यक्ति इस तरह का आक्षेप कर वैद्य समाज में भ्रम फैलाने का प्रयत्न कर रहे हैं वे आयुर्वेद की कुसेवा ही करते हैं।

हर्ष का विषय है कि जिस अष्टांग आयुर्वेद को अपनाने पर हम विगत अनेक वर्षों से बल देते आये हैं उसके औचित्य को आज स्वीकार किया जाने लगा है। यदि हमारे सुझावों पर पहिले से ही ध्यान दिया जाता तो एलोपैथी और आयुर्वेद की मिली जुली शिक्षा से जो समय और द्रव्य की अपार हानि हुई है वह बच जाती। फिर भी हमें प्रसन्नता ही है 'सुबह का भूला शाम को भी घर आजाय तो भूला नहीं कहलाता।' अतीत की विफलताओं का अनुभव भावी सफलताओं के लिये मार्मदर्शक बन जाता है, यदि हम शुद्ध अन्तःकरण से अपने ध्येय को प्राप्त करने का प्रयत्न करें। उत्तर प्रदेश के मुख्यमन्त्री श्री डा० सम्पूर्णानन्द जी एवं स्वास्थ्य मन्त्री श्री हुकुमसिंह जी ने आयुर्वेद अभ्युन्नत्यर्थ जो साहस पूर्ण पग उठाया है उसके लिये वैद्यसमाज उनका सदा कृतज्ञ रहेगा। आयुर्वेदीय शिक्षा समिति के माननीय सदस्यों का भी हम धन्यवाद करते हैं जिन्होंने आयुर्वेद की वास्तविक शिक्षा सम्बन्धी सिफारिशें करके प्रदेश में आयुर्वेद की प्रगति के मार्ग को प्रशस्त किया है। हमें विश्वास है कि राज्य सरकार समिति की सभी सिफारिशों को पूर्णतया क्रियान्वित करेगी और किसी भी प्रकार के विरोधी आन्दोलन से विचलित नहीं होगी।

अन्य राज्य सरकारों एवं केन्द्रीय सरकारों से भी हमारा विनम्र निवेदन है कि वे भी प्रदेश में उद्भूत इस आयुर्वेदिक क्रान्ति का अनुसरण करें और अपने अपने प्रदेश में विघातक एकीकृत शिक्षा का शीघ्र अन्त कर अष्टांग आयुर्वेद की क्रमबद्ध एवं व्यव- शिक्षा का प्रबन्ध करें। उत्तरप्रदेशीय समिति द्वारा प्रस्तुत पाठ्यक्रम इस दिशा में माना जा सकता है और उसे अथवा वैसे ही पाठ्यक्रम को अन्य राज्यों में सुविधापूर्वक किया जा सकता है।

—स्वामी चेतनानन्द चिदाकाशी

त्रिका पर अदालत की मानहानि के अभियोग का निर्णय

बम्बई हाईकोर्ट में श्री रामनारायण शर्मा ने पण्डित शिवशर्मा तथा पत्रिका म्पादक के विरुद्ध अदालत की मानहानि की कार्यवाही चलाने के लिये जो ना पत्र दिया था उस पर कोर्ट आर्डर हमने अन्यत्र प्रकाशित किया है।

हमें ज्ञात हुआ है पं० शिवशर्मा के वकील ने यह स्पष्ट कर दिया था कि अपमान अभिप्रेत नहीं था और यदि माननीय कोर्ट वक्तव्य में से कोई ऐसा निकाल देने की कृपा करें जो अदालत के लिये अपमानजनक हो तो शिवशर्मा बिना शर्त माफी मांगने के लिये तय्यार हैं अन्यथा वह यह स्वीकार करते कि मानहानि हुई है और क्षमा मांगने के बजाय वह यह पक्ष लेकर आरम्भ करने को तय्यार हैं कि मानहानि न तो अभिप्रेत थी, न की गई।

प्रारम्भिक चर्चा के दौरान में पं० शिवशर्मा ने अपने वकील द्वारा अदालत आश्वासन दिया कि मानहानि अभिप्रेत नहीं थी परन्तु यदि कोई ऐसे वक्तव्य में आन पड़े हों जिनका अर्थ कोर्ट के लिये अपमानजनक हो सकता वह कोर्ट के समक्ष खेद प्रकट कर देंगे। पं० रामनारायण शर्मा के वकील ऑफर के विरुद्ध प्रोटेस्ट किया कि यह न तो मानहानि की स्वीकृति ही है बिना शर्त क्षमा ही; और उसने आग्रह किया कि माननीय कोर्ट बिना शर्त क्षमा की मांग करे। परन्तु माननीय कोर्ट ने यही निर्णय किया कि परिस्थिति देखते हुए पं० शिवशर्मा के वक्तव्य से (कोर्ट का) अभिप्राय पूरा हो जाता है कोर्ट ने यह रिमार्क भी किया "तुम उसका जजमैन्ट की समालोचना करने अधिकार नहीं छीन सकते।"

पं० शिवशर्मा ने योग्य मेजिस्ट्रेट (जिन्होंने निर्णय दिया) पर पक्षपात का कभी नहीं लगाया। इस प्रकार कोर्ट के आगे यह कह कर कि उन्हें अपमान कभी अभीष्ट नहीं था, पं० शिवशर्मा ने उसी की पुनरुक्ति की जो वह में भी कह चुके थे। पाठक यह अनुभव करेंगे कि यदि यह केस चल कर

पूरी बहस हो जाती और अभियोग की वास्तविकता पर अदालत निर्णय दे देती तो अदालत की मानहानि के प्रश्न पर उन्हें अधिक प्रकाश मिलता।

वर्त्तमान परिस्थिति में तो ऐसा एक भी निश्चयात्मक कथन उपलब्ध नहीं जो यह स्पष्ट कर दे कि पं० शिवशर्मा के वक्तव्य का कोई वाक्य मानहानिजनक है भी या नहीं।

We have published elsewhere the Court Order on the application of Shri Ram Narayan Sharma to the High Court of Judicature at Bombay to start contempt of Court proceedings against Pt. Shiv Sharma and the Editor of the Vaidya Sammelan Patrika.

We learn that Pt. Shiv Sharma's Counsel made it clear that no contempt was intended and that he was willing to tender an unqualified apology for any passage that the Hon'ble Court would be pleased to point out from the statements as constituting Contempt of Court. Otherwise he did not admit that any contempt of Court had been committed and instead of tendering an apology was willing to argue his case that the contempt was neither intended nor committed.

In the course of the preliminary discussion Pt. Shiv Sharma offered, through his Counsel, an assurance to the Court that no Contempt of Court was intended by him but that if any passages had crept in which could amount to Contempt of Court he would express before the Court his regret for it. Pandit Ram Narayan Sharma's Counsel protested against this offer as neither an admission of Contempt nor an unqualified apology and insisted on the Hon'ble Court to ask for an unconditional apology. The Hon'ble Court, however, maintained that under the circumstances the statement given by Pt. Shiv Sharma served the purpose. The Court also remarked, "You cannot take away his right to criticise the judgment."

Pt. Shiv Sharma had never attributed any motives to the learned magistrate who delivered the judgment. Thus, in stating before the Court that he did not intend to commit any contempt, Pt. Shiv Sharma has repeated what he had said in his statements. Readers may feel that they would have been better enlightened on the question of the Contempt of Court if the case had been argued out fully and a judgement delivered on the merits of the case. As it is there is no definite pronouncement whether any passage in Pt. Shiv Sharma's statement constitutes contempt or not.

Swami Chetnanand Chidakashi

उच्चस्तरीय आयुर्वेद शिक्षा समिति उत्तर प्रदेश के अध्यक्ष

श्री डा० सम्पूर्णानन्द का ओजस्वी भाषण

मैं अपने मित्र ठाकुर हुकुम सिंह जी का निश्चय ही कृतज्ञ हूं कि उन्होंने मुझे आप लोगों से मिलने का अवसर दिया। परन्तु मैं इस बात का निश्चय नहीं कर पाता कि मुझको इस समिति का अध्यक्ष चुनकर वे धन्यवाद के पात्र हैं या नहीं। जिन प्रश्नों पर आप यहां विचार करेंगे वे बड़े महत्वपूर्ण हैं। उनके उचित समाधान से हम केवल यह ही निश्चय न कर सकेंगे कि उत्तर प्रदेश में आयुर्वेद के अध्यापन का स्वरूप क्या हो, यह भी स्पष्ट हो जायगा कि स्वतंत्र अध्येय विषय के रूप में आयुर्वेद का भविष्य क्या होगा। यह सत्य है कि इस सम्मेलन के निर्णय उत्तर प्रदेश में ही व्यवहार्य होंगे किन्तु उनका प्रभाव उन सभी क्षेत्रों में पड़े बिना न रहेगा जहां आयुर्वेद का पठन-पाठन और इस चिकित्सा प्रणाली का प्रचार है।

इस समिति को जो काम सुपुर्द किया गया है उस पर पहिले भी भारत सरकार और उत्तर प्रदेश तथा अन्य प्रदेशीय सरकारों की समितियां विचार करके अपनी रिपोर्ट दे चुकी हैं। उनसे आप अनभिज्ञ नहीं हैं। इन समितियों ने बहुत परिश्रम के बाद अपने महत्वपूर्ण सुझाव दिये जिनमें से बहुतों को अब भी व्यावहारिक रूप देना सम्भव नहीं हुआ है। किन्तु मेरे विचार से इन समितियों में दो बड़े दोष थे। या तो उनमें मुझ जैसे अल्पज्ञों का बाहुल्य था या एलोपैथी के डाक्टरों का उनमें प्राधान्य था। इन डाक्टरों की इच्छा चाहे कितनी ही निरपेक्ष तथा निष्पक्ष रहने की रही हो परन्तु उनसे यह आशा नहीं की जा सकती थी कि अपनी प्रणाली से भिन्न किसी अन्य प्रणाली के सम्बन्ध में ऐसा मान सकते कि वह किसी सार्थक अध्ययन का विषय बन सकती है। किन्तु इस सब के पीछे यह धारणा रहती है कि आयुर्वेद, हिकमत और होमियोपैथी को, विशेषकर आयुर्वेद और हिकमत को अन्य कारणों से नहीं राजनैतिक कारणों से ही सही एक दम छोड़ना सम्भव नहीं है, यद्यपि ये इतनी सम्माननीय नहीं है कि विज्ञानविद् उनका अनुशीलन और अध्ययन करें। परिणाम स्वरूप निश्चय ही आयुर्वेद को कुछ समय से सहारा मिला है और कुछ वैद्य सरकारी नौकरी में छोटे मोटे स्थान पा गये हैं। किन्तु इसके अतिरिक्त एक बात और हुई है जिसका भविष्य में भयंकर परिणाम हो सकता है। चाहे यह अभीष्ट न रहा हो परन्तु जो शिक्षा आयुर्वेदिक कालेजों और स्कूलों में दी जाने लगी है उसका यह परिणाम अवश्यम्भावी है कि सुशिक्षित वैद्य ही चिकित्सा कर सकें इस विषय में सरकार की सतर्कता भारतीय परम्परा के अनुकूल ही है। सुश्रुत के कथनानुसार वैद्य को 'अधिगत तंत्र, और उपासित तंत्रार्थ, दृष्टकर्मा होना चाहिये किन्तु ऐसा व्यक्ति भी राजाज्ञा के बिना चिकित्सा का कार्य नहीं कर सकता। चरक ने तो यहां तक कहा है कि यदि किसी राज्य में नीम हकीमों को

अपना व्यवसाय करने की छूट हो तो राज्य की कर्तव्यविमुखता को ही इसका कारण कह सकते हैं। ऐसे लोग समाज के कंटक हैं और इन्हें कांटे के समान ही निकाल कर फेंक देना चाहिये। जैसा मैंने अभी कहा है यह ठीक ही हुआ कि उचित प्रशिक्षण की अनिवार्यता पर इतना जोर दिया गया किन्तु उस प्रशिक्षण का रूप क्या हो इस ओर उतना ध्यान नहीं गया जितना आवश्यक था।

इन सब बातों का परिणाम बड़ा भयंकर हुआ है। नीम हकीमों की एक नई जाति पैदा हो गई है। पिछले कतिपय वर्षों में आयुर्वेदिक कालेजों से जो वैद्य पढ़कर निकले हैं उनको नीम हकीम (क्वैक) कहना शायद श्रुतिकटु और अतिशयोक्ति हो किन्तु उन्हें और क्या उपयुक्त नाम दिया जाय यह मेरी समझ में नहीं आता। ये लोग वैद्य नहीं माने जा सकते। उन्हें आयुर्वेद में किसी प्रकार की आस्था नहीं है और वे स्पष्ट रूप से उसकी अवैज्ञानिकता की निन्दा करते हैं। विज्ञान की उनकी जानकारी बहुत ही थोड़ी है इसलिये अहमन्यता और वैज्ञानिक होने का गर्व जताने में उन्हें संकोच भी नहीं होता। अल्पज्ञान खतरनाक होता है क्योंकि अन्य बुराइयों के अतिरिक्त उससे झूठा अभिमान उत्पन्न होता है। आयुर्वेदाचार्य कहलाने में वे अपना अपमान समझते हैं और उनकी अभिलाषा यह रहती है कि उन्हें ऐसी उपाधियां दी जांय जो बोलने में एलोपैथिक कालेजों के स्नातकों की उपाधियों से मिलती-जुलती हों। किंतु वे एलोपैथ भी नहीं है और उनके प्रशिक्षण का स्तर एम० बी० बी० एस० उपाधि प्राप्त स्नातकों के प्रशिक्षण से कहीं नीचा है। वे अपने आप को नैराश्य के गर्त में पाते हैं क्योंकि समाज ने उन्हें एलोपैथिक डाक्टरों के समकक्ष समझने की गलती नहीं की। क्योंकि ये उन लोगों की विचारहीनता के शिकार हुये हैं जिनका यह कर्तव्य था कि उनके प्रशिक्षण के लिये उपयुक्त पाठ्यक्रम बनाते, इन अभागों के साथ हमारी सहानुभूति तो होनी चाहिये किंतु यह गलत बात होगी कि हम यह आशा करें कि ये समाज के स्वास्थ्य और चिकित्सा सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकेंगे। मेरी राय में जिस नयी प्रणाली ने इनका सर्वनाश किया है उसे चालू रखना बड़ा भारी अपराध होगा।

जिस परिस्थिति में आज हम अपने को पाते हैं उसका उत्तरदायित्व उन लोगों पर है जिन्होंने यह निर्णय किया कि आयुर्वेद के विद्यार्थियों को इंटेग्रेटेड (एकीकृत) प्रणाली की शिक्षा दी जाय। चिकित्सा के विषय में मैं स्वयं एकीकरण में विश्वास करता हूं क्योंकि मानव शरीर और मस्तिष्क इतनी महान वस्तुयें हैं कि उनको विभिन्न चिकित्सा प्रणालियों का अखाड़ा नहीं बनाया जा सकता। मेरी दृष्टि में एक ही चिकित्सा प्रणाली वैज्ञानिक हो सकती है। इस प्रणाली की औषधि सूची में सैकड़ों प्रणालियों से औषधियां ली जा सकती हैं। किसी औषधि विशेष का प्रयोग किसी रोग-विशेष की चिकित्सा के लिये कुछ-हद तक प्रयोगात्मक हो सकता है किन्तु वैज्ञानिक बनने के लिये किसी भी प्रणाली को निश्चित नियमों से बद्ध होना चाहिये। विज्ञान और प्रयोगसंभूत ज्ञान में यही अंतर है। केवल अनुभव पर आधारित ज्ञान से विज्ञान इसीलिये विशिष्ट है कि उसमें प्राकृतिक नियमों का

रहता है। जब अनेक में अनुस्यूत प्राकृतिक नियम पहिचान लिया जाता है तो हम तो ऐसे विषयों की भी जानकारी हो सकती है जो अभी प्रत्यक्ष अनुभव में नहीं आये हैं। चाहें तो इसे भविष्यकथन कह सकते हैं। इस दृष्टि से आयुर्वेद और एलोपैथी का एकीकरण वास्तविक एकीकरण होता। किंतु इस प्रकार का कोई प्रयत्न न तो राज्य की ओर से किसी केन्द्रीय या देशीय सरकारी कमेटी ने किया और न किसी एलोपैथी या आयुर्वेद के कालेज में किया गया। वास्तव में एकीकरण का अर्थ आधुनिक चिकित्सा प्रणाली की एक मोटी चादर को आयुर्वेद की एक पतली पर्त पर उढ़ाना मात्र ही था। पतली या मोटी, बात तो यह है कि यह मान लिया गया है कि आयुर्वेद स्वयं अवैज्ञानिक और अपूर्ण है और उसमें जान डालने के लिये एलोपैथी का एक तीव्र पुट देना होगा। एलोपैथी ने इस एकीकरण में आयुर्वेद की ओर एक कदम भी आगे नहीं बढ़ाया बल्कि आयुर्वेद ही का रूपान्तर किया जा रहा है। इसको एकीकरण नहीं कहा जा सकता। यदि यही क्रम रहा तो थोड़े ही समय में आयुर्वेद का नाम निशान मिट जायगा। केवल कुछ औषधियों का प्रयोग ही रहेगा। हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि पश्चिम में सर्पगंधा आदि कुछ आयुर्वेद की औषधियों के प्रयोग का यह अर्थ नहीं है कि एलोपैथी का आयुर्वेद के साथ एकीकरण हो रहा है। यह दु:ख की बात है कि कुछ ऊंचे वैद्यों ने भी समय रहते इस भयंकर संभावना को नहीं पहिचाना और वे अनजाने इस एकीकरण के समर्थक बन बैठे।

मेरी अपनी राय इस विषय में यह है: आयुर्वेद पूर्णतया वैज्ञानिक है किन्तु यह गतिहीन विज्ञान नहीं है। एक समय था जब वैद्य काष्ठ औषधियों पर ही बहुत कुछ निर्भर रहते थे। बाद में नागार्जुन जैसे लोगों ने रस औषधियों का प्रयोग चलाया। इनके प्रयोग को यदि रसायन शास्त्र का आयुर्वेद से एकीकरण कहें तो ठीक न होगा। केवल यही कह सकते हैं कि वैद्य ने रासायनिक क्रिया का उपयोग किया। इसलिये मेरी धारणा यह है कि आयुर्वेद में सैकड़ों ऐसी 'औषधियों का प्रयोग होने पर भी पूर्वकाल में जिनसे वैद्य अनभिज्ञ थे, आयुर्वेद अपना स्वत्व नहीं खो सकता। चरक और सुश्रुत जैसे आयुर्वेद के प्रतिपादकों ने तो यही कहा है कि वैद्य को निरन्तर नई औषधियों का अन्वेषण करना चाहिये और इस अन्वेषण के लिये जंगली और असभ्य लोगों के व्यवहार का अध्ययन करना भी वांछनीय हो सकता है, केवल शर्त यह है कि वैद्य प्रत्येक औषधि को आयुर्वेद की कसौटी पर कसे। पेनिसिलीन या क्लोरोमाइसेटीन का प्रयोग इसलिये ही न किया जाय कि कुछ रोगों में ये उपयुक्त सिद्ध हुई हैं। आयुर्वेदिक औषधि इन्हें तभी कह सकते हैं और वैद्य उन्हें बिना संकोच के तभी प्रयोग कर सकता है जब ये त्रिदोष सिद्धान्त की कसौटी पर खरी सिद्ध हो जायें।

आयुर्वेद में अविश्वास पैदा करने में सबसे अधिक उसके भक्तों अर्थात् वैद्यों का ही दोष है जो उसकी गलत व्याख्या किया करते हैं। वे जिन शब्दों का प्रयोग करते हैं उनके वास्तविक अर्थ को समझने का कष्ट उठाना नहीं चाहते। बात, पित्त तथा कफ को यदि कोई वैद्य हवा, पीले रंग का रस जो उदरविकार में कभी-कभी बाहर आ जाता है और

बलग़म समझे तो वह अपने को ही नीचे गिराता है। उसी प्रकार यदि कोई यह समझता है कि क्षित, अप, तेज, वायु और आकाश, मिट्टी, पानी, आग, हवा और आसमान के नाम हैं और फिर लोग उस पर हँसें और आयुर्वेद से घृणा करने लगें तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है। तीन धातुयें क्या हैं? यह समझने के लिये भारतीय दर्शन का थोड़ा सा ज्ञान आवश्यक है। इसीलिये वैद्यों के पाठ्यक्रम में दर्शन का अध्ययन भी रखा जाता है। जैसा हम सब जानते हैं, परमात्मा की पराशक्ति के तीन रूप हैं—ज्ञान, इच्छा और क्रिया। जैसे-जैसे सृष्टिक्रम आगे बढ़ता है पराशक्ति प्रधान या मूल प्रकृति के रूप में प्रकट होती है जिसके तीन भेद—सत्व, रज और तम व्यक्त होते हैं। ये तीनों गुण सृष्टि के प्रत्येक चेतन अचेतन पदार्थ में वर्तमान रहते हैं। मनोविज्ञान के क्षेत्र में ये काग्निशन, अफैक्शन और कोनेशन (संवेदन, भावना और क्रिया प्रवृत्ति) के रूप में प्रकट होते हैं। जड़ात्मक सृष्टि के प्रत्येक छोटे-बड़े पदार्थ में ये तीनों गुण पाये जाते हैं। शरीर में ये तीन शक्तियों के रूप में रहते हैं जिन्हें वात, पित्त और कफ कहते हैं। ये तीन शक्तियां शरीर की प्रत्येक क्रिया का प्रवर्तन और नियंत्रण करती हैं, चाहे उसका सम्बन्ध मांस पेशियों से हो, चाहे पाचनादि में रासायनिक परिवर्तनों से, चाहे नाड़िजाल से। जिन्हें हम साधारण बोलचाल में वात, पित्त और कफ कहते हैं वे शरीर से सम्बद्ध वह तीन स्थूल पदार्थ हैं जिनमें यह धातु अभिव्यक्त हो रहे हैं। कोई धातु एक पदार्थ में अधिक उद्भूत है, कोई दूसरे में। पंचमहाभूत का सिद्धान्त पूर्णरूपेण वैज्ञानिक है। इसके समर्थन में कई लोगों ने अध्ययन किया है। उदाहरण के लिये बड़ी विनम्रता से मैं आपका ध्यान इस विषय के उस विवेचन की ओर दिलाता हूं जिसे मैंने अपनी पुस्तक 'चिद्विलास' में किया है। जो वैद्य महाभूतों की उस व्याख्या से चिपटा रहना चाहता है जिसे मध्यकाल के लेखकों ने किया था जब कि राजनीतिक परतंत्रता थी और अन्वेषण तथा नये प्रयोगों की सुविधायें न थी, वह अपनी विद्या की कुसेवा करता है। दोष प्राचीन ऋषियों के लेखों का नहीं परन्तु आधुनिक टीकाकारों का है। मैं विज्ञान का विनम्र विद्यार्थी हूं और अपनी पूरी शक्ति से कह सकता हूँ कि त्रिदोष सिद्धान्त की नींव उतनी ही दृढ़ है जितनी कि किसी चिकित्सा सम्बन्धी सिद्धान्त की हो सकती है। यह उन परिस्थितियों को बतलाता है जिनमें स्वास्थ्य की रक्षा हो सकती है और जिनमें स्वास्थ्य को हानि पहुंच सकती है। इसकी सहायता से वैद्य लक्षणों को जानकर यह समझ सकता है कि शरीर के भीतर की अव्यवस्था क्या है जिससे वे लक्षण प्रकट हुये हैं और शरीर को जिस उपचार की आवश्यकता है यह भी पूरी तरह समझ में आ जाता है। निदान के आधुनिक वैज्ञानिक तरीकों को यदि वैद्य अपनायें तो यह बिलकुल उचित ही है। परन्तु कीटाणु और रासायनिक कमियां उसके दृष्टिकोण से बाहरी लक्षणों के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं। वे केवल इस बात की ओर संकेत करते हैं कि शरीर के भीतर धातुओं में विषमावस्था और अव्यवस्था उत्पन्न हो गई है। आयुर्वेद के आधुनिक अध्यापन में यह प्रयत्न होना चाहिये कि वैद्य का आयुर्वेद में खोया हुआ विश्वास लौट आवे और यह दृढ़ विश्वास स्थापित हो जाय कि आयर्वेद पूर्णरूपेण वैज्ञानिक है। आधुनिक विज्ञान

तथ्य ढूंढ़ निकाले हैं उनको न मानने से वैद्य अपने या अपनी विद्या के गौरव को बढ़ाता। जो सत्य है वह सत्य रहेगा और जो व्यक्ति उससे मुंह मोड़ता है उसे अपने व्यवहार की भारी कीमत चुकानी होगी।

रसायन, शरीर रचना, जीवशास्त्र, मनोविज्ञान, कीटाणु विज्ञान जैसे शास्त्रों का चिकित्सा प्रणाली से विशेष सम्बन्ध नहीं होता। वैद्य उन्हें साधिकार उसी प्रकार प्रयोग है जैसे एलोपैथ। किन्तु उसे अपने मूलाश्रय को न भूलना चाहिये और इन शास्त्रों दृष्टिकोण से प्रयोग करना चाहिये। शल्य चिकित्सा के बारे में भी यही बात सही समय था जब वैद्य की चिकित्सा में शल्य को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। सुश्रुत के हुये आदेश आज भी आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं। कुछ कारणों से जिनका मैं यहां नहीं करूंगा शल्य चिकित्सा का प्रयोग बन्द हो गया, यद्यपि वैद्य अब भी शल्य का अध्ययन करते हैं। यह विभाजन अब न रहना चाहिये और शल्य चिकित्सा दिक प्रशिक्षण का अनिवार्य अंग होना चाहिये। इस विषय में भी मैं एक बात और फिर ध्यान दिलाना चाहता हूं और वह यह है कि शताब्दियों पूर्व लिखी पुस्तकों शल्य के उपकरणों को आज यदि कोई प्रयोग करने को कहे तो इससे बढ़कर की कोई बात न होगी। यदि आज का एलोपैथ ५० वर्ष पहिले प्रयोग किये जाने उपकरणों और विधियों को छोड़ने में स्वतंत्र है और ऐसा करने से उसकी विद्या एकता तथा क्रमिकता में कोई ह्रास नहीं होता तो कोई कारण नहीं कि वैद्य को वर्ष पूर्व निर्मित साधनों और उपकरणों का उपयोग करने के लिये विवश किया । शल्य क्रिया के क्षेत्र में जो आधुनिकतम अन्वेषण हुये हैं उनका उपयोग वैद्य को चाहिये। वे आयुर्वेद के अंग ही माने जायेंगे। आयुर्वेद और आधुनिक शल्य चिकित्सा कोई विरोध नहीं हो सकता क्योंकि अवयवी में कोई विरोध नहीं होता। किन्तु मेरी निश्चित धारणा है कि जिसे मैं फिर दुहराता हूं और वह यह है कि आधुनिक औष- के प्रयोग की शिक्षा आयुर्वेदिक प्रशिक्षण का अंग नहीं होना चाहिये जब तक कि इन यों की उपयोगिता आयुर्वेदिक सिद्धान्तों से परीक्षित न हो और आयुर्वेद में उनका न हो गया हो, ठीक उसी प्रकार जैसे सुपचित भोजन अपना स्वतंत्र अस्तित्व खोकर के साथ एकरस हो जाता है। जो अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाये रखना चाहे और यता को विज्ञापित करता रहे वह पराया तत्व है और आयुर्वेदिक प्रणाली से बहि- करने योग्य है।

ये विचार एक अल्पज्ञ के हैं और उनका उतना ही सम्मान होना चाहिये जो विशे- के क्षेत्र में हुये अल्पज्ञ के विचारों का होता है। किन्तु मैं आशा करता हूं कि आप उन पूरी तरह चिन्तन करेंगे। मेरी यह धारणा है कि हमारे इन प्रश्नों को महत्व न देने कारण ही वर्तमान परिस्थिति उत्पन्न हो गई है। उनकी महत्ता इसलिये नहीं है कि उन्हें व्यक्त किया है किन्तु मेरी जानकारी में ये विचार बहुत से वैद्यों और आयुर्वेद प्रेमियों के मन में उठ कर उन्हें चिन्तित कर रहे हैं। थोड़े ही समय में वैद्यों की वर्तमान

पीढ़ी, वे वैद्य जिन्होंने आयुर्वेद का ज्ञान ऐसे गुरुओं के चरणों में बैठकर प्राप्त किया है जो शताब्दियों से परम्परा प्राप्त ज्ञान के भण्डार थे, समाप्त हो जायगी और हमारे बीच में वे लोग रह जायेंगे जो नाम के ही वैद्य होंगे क्योंकि आयुर्वेदिक नुसखों की छोटी-मोटी जानकारी मात्र उन्हें होगी। यदि आयुर्वेद की आधारशिला ही टूट जायेगी तो आयुर्वेद का विनाश हो जायगा। मानवीय ज्ञान में योग देने के लिये उसके पास कुछ न बचेगा और वह चिकित्सा शास्त्र के इतिहास के विद्यार्थियों के सिवाय और किसी के लिये प्रयोजन की वस्तु न रह जावेगा। हम में से बहुतों का यह विश्वास है कि आयुर्वेद मानव ज्ञान और सुख में इससे अधिक योग दे सकता है। यही कारण है कि मैं उसके पाठ्यक्रम को सुधारने का अनुरोध कर रहा हूं। जिन शास्त्रों का मैंने ऊपर वर्णन किया है उनमें जो सहायता प्रदान करने वाले उत्तम तत्व हैं उन्हें हम ग्रहण करलें किन्तु आयुर्वेद अपने सत्य को न छोड़े और अपने मौलिक सिद्धान्तों पर अडिग रहे तभी वह सच्चे अर्थ में आयुर्वेद कहलायेगा।

किस पाठ्यक्रम को हमें अपनाना चाहिये और उसमें क्या-क्या हो यह सुझाव देना मेरे अधिकार की बात नहीं है। आप में से जो विशेषज्ञ हैं वे मुझ से कहीं अधिक अच्छी तरह से यह काम कर सकते हैं। जिसे हम आधुनिक चिकित्सा कहते हैं उसके बोझ से हलके होने के पश्चात् भी आयुर्वेद के विद्यार्थी के लिये अध्ययन की पर्याप्त सामग्री रहेगी और कालेज में पांच या अधिक वर्ष जो उसे व्यतीत करने होंगे, वे पूरी तरह से व्यस्त रहेंगे। आपको यह ही निश्चय नहीं करना होगा कि कौन विषय पाठ्यक्रम में रखे जांय प्रत्युत यह भी सोचना होगा कि आधुनिक चिकित्सा के अतिरिक्त कौन से विषय निकाल दिये जांय। उदाहरण के लिये पुरानी पुस्तकों में बतायी हुई शरीर रचना प्रणाली का अध्ययन अनावश्यक है। यदि आधुनिक विज्ञान ने असंदिग्ध साधनों से यह निश्चिय कर दिया है कि शरीर के अंग विशेष में १०० नाड़ियां हैं तो इसमें कौन सी बुद्धिमत्ता है कि विद्यार्थी का समय ऐसी पुस्तक या उसके किसी ऐसे भाग के अध्ययन में नष्ट कराया जाय जिसमें यह लिखा है कि नाड़ियों की संख्या ७० है। यह उदाहरण मात्र है। यदि प्राचीन ज्ञान के इस प्रकार के स्मारकों का कोई स्थान है तो वह आयुर्वेद के इतिहास में ही हो सकता है यदि इस विषय का पाठन करना वांछनीय ही हो। आपको यह भी निश्चय करना है कि जो कुछ पढ़ना है वह किस ढंग से पढ़ाया जाय कि उसे ऐसा विद्यार्थी जो सतर्क बुद्धि है और जिसे आधुनिक विज्ञान की प्रगति में आस्था है, हृदयंगम कर सके। आप में से कुछ को आधुनिक विज्ञान को दृष्टि में रखते हुये अपने शास्त्र के सिद्धान्तों की पुनः मीमांसा करनी होगी। मैं आपसे यह नहीं कहता कि आप अपनी बातों को छोड़ दें, केवल इसलिये कि जो समय की दृष्टि से नवीन है उससे आपकी बातों का समर्थन नहीं होता। मेरा तो केवल आपसे इतना ही कहना है कि आप अपनी शास्त्रीय स्थिति की पुनः समीक्षा करें और यह देखें कि क्या यह सम्भव नहीं है कि आप अपने सिद्धान्तों को आधुनिक विज्ञान की भाषा में समझा सकें। ज्ञान गत्यात्मक होता है, वह निरन्तर आगे बढ़ता रहता है। न आयुर्वेद में न अन्य किसी विज्ञान में दुराग्रही होने की आवश्यकता है।

एक बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न और भी है जिस पर आपको विचार करना है। वह यह आयुर्वेदिक कालेजों में किस प्रकार का विद्यार्थी प्रवेश पावे। इस विषय में बहुत कुछ है। विज्ञान और संस्कृत दोनों का ज्ञान साथ-साथ हो तब तो सब से अच्छा हो। अभी इस तरह के पाठ्यक्रम की सुविधा शिक्षा संस्थाओं में उपलब्ध नहीं है। मैं करता हूँ कि शिक्षा संस्थायें निकट भविष्य में ऐसा करेंगी। जब तक ऐसा न हो तक के लिये यह कहा जाता है कि क्योंकि जिन विद्यार्थियों ने इन्टरमिडियेट परीक्षा के साथ पास की है साधारणतः उनको आयुर्वेद के वैज्ञानिक होने में शंका रहती है अच्छा यह हो कि जिन्होंने संस्कृत में मध्यमा परीक्षा पास की हो उन्हें ही लिया। भैषज्य विज्ञान का किसी भाषा विशेष से कोई सरोकार नहीं होता। संसार की भी भाषा के माध्यम से यह विद्या पढ़ायी जा सकती है। किन्तु कई कारणों से आयु- के विद्यार्थियों के लिये संस्कृत ज्ञान की अभी कुछ दिनों तक अनिवार्यता माननी होगी। आवश्यक नहीं है कि वे संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान हों। हां, थोड़ा ज्ञान कार्य सुगमता लिये अवश्य होना चाहिये। यदि हम ६ वर्ष का पाठ्यक्रम रखें जिसमें पहिले वर्ष में क अध्ययन हो तो ऐसी व्यवस्था शायद सब तरह से आदर्श व्यवस्था होगी। लेकिन बात से सहमत हूँ कि पांच वर्ष से अधिक के पाठ्यक्रम के लिये विद्यार्थी कठिनाई विशेषकर जब कि एम० बी० बी० एस० के लिये ५ वर्ष का पाठ्यक्रम है। इसमेरा सुझाव "यह है कि आप उन विद्यार्थियों को ही लें जिनकी वैज्ञानिक योग्यता वही जो एलोपैथिक कालेजों में प्रवेश पाने के लिये स्थिर की गई है, अर्थात् विज्ञान विषय के इन्टरमीडिएट परीक्षा पास विद्यार्थी ही लिए जायें। इसके साथ संस्कृत का एक क्रम निश्चित करदें जिसे प्रत्येक विद्यार्थी को अध्ययन करना होगा। इस पाठ्यक्रम में रण संस्कृत, गद्य और पद्य का अर्थ समझना और साधारण संस्कृत में लिखना होना। इसमें तर्क शास्त्र का प्राथमिक ज्ञान भी रखा जाय, कुछ-कुछ तर्क संग्रह के समान, नवीन, आधुनिक ढंग पर। इसमें संशय नहीं कि प्रतिदिन दो घण्टों के अध्ययन से विद्यार्थी संस्कृत के इतने ज्ञान का तीन या चार महीने में अर्जन कर सकता है। के स्नातक भी एलोपैथिक मैडिकल कालेजों की प्रवेश परीक्षा प्रशिक्षण के हेतु तीन मास का समय व्यय करते हैं। आयुर्वेदिक कालेज में प्रवेश पाने के इच्छुक भी इसी के प्रशिक्षण पाने के पश्चात् ही प्रवेश पाने योग्य समझे जाने चाहियें। आप देखें कि मध्यमा परीक्षा को इसमें कोई स्थान नहीं दिया है। मैं इसका समर्थक नहीं हो सकता इन्टरमीडिएट परीक्षा वाली विज्ञान की योग्यता उसके साथ-साथ न हो।

मेरे विचार से आयुर्वेद को पुनः प्रतिष्ठित करना हमारा कर्त्तव्य है। इस दिशा में अविलम्ब प्रयास न किया गया तो यह शास्त्र समाप्त हो जायगा। मैं आयुर्वेद का इसलिये नहीं हूँ कि इसमें सस्ती दवायें प्राप्त हैं। कुछ आयुर्वेदिक औषधियां बड़ी होती है। सस्तापन इसकी सिफारिश नहीं हो सकती। मैं आयुर्वेद के पक्ष में इसलिये यह मानता हूँ कि यह मानव समाज के लिये उपयोगी है। आप से अधिक और

कोई इस स्थिति में नहीं है जो इस तथ्य की जाँच कर सके। यदि आप मुझ से सहमत हों तो आपको चाहिये कि भविष्य में होने वाले वैद्यों के लिये एक उपयुक्त प्रशिक्षण प्रणाली प्रस्तुत कर उत्तर प्रदेश की सहायता करें। उसके पश्चात् अगला कदम सरकार को उठाना होगा। इसे आपकी सिफारिशें केवल कार्यान्वित ही न करनी होंगी किन्तु यह भी स्मरण रखना होगा कि किसी भी विद्या से तब तक अध्येता न मिलेंगे जब तक कि वह अर्थंकरी न हो। यदि हमें अच्छे वैद्य चाहियें तो हमें यह भी देखना होगा कि उन्हें समाज में वह सम्मान प्राप्त हो और वह आर्थिक निश्चिन्तता रहे जो उन लोगों को मिलनी ही चाहिये जिन्होंने रोग और मृत्यु से लड़कर मानवता की सेवा करने का व्रत लिया है। सच्चे वैद्य जिसने अपने शास्त्र के आचार्यों की शिक्षा हृदयंगम की है केवल धन के लिये अपना कार्य नहीं करता। किन्तु समाज को चाहिये कि ऐसे व्यक्तियों के प्रति जो उसका कर्तव्य है उसका पालन करे।

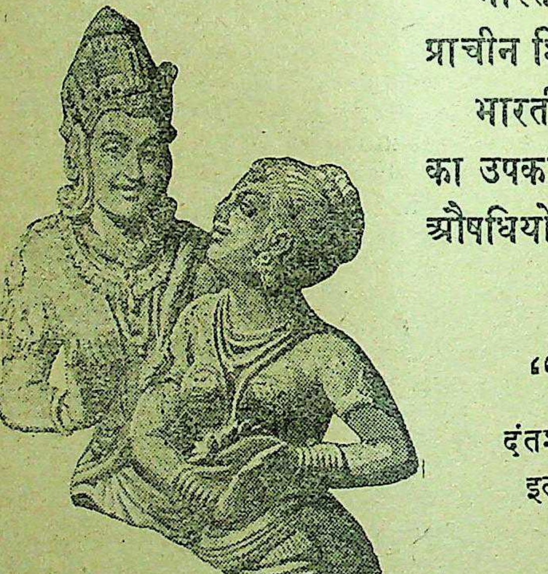

* भारतीय प्राचीन शास्त्र और कला *

भारतीय शिल्पकला का नमूना
प्राचीन शिल्प गुफाओं में मिलता है।
भारतीय प्राचीन औषधि विद्या
का उपकारक अनुभव धूतपापेश्वर
औषधियों में प्रतीत होता है।

धूतपापेश्वर
"कपूर अर्क"
दंतशूल, उदरशूल, अतिसार
इत्यादि पर गुणकारक।

बोध चिन्ह

धूतपापेश्वर इण्डस्ट्रीज लि०
भारत का आद्य आर्योषधि कारखाना
[स्थापना सन् १८७२]
पनवेल–बम्बई
देहली:—वेदप्रकाश, धूतपापेश्वर आयुर्वेदिक औषधालय, ३६ ई, कमलानगर,
गोल चौक, देहली

INTERIM REPORT OF THE COMMITTEE APPOINTED BY THE GOVERNMENT OF UTTAR PRADESH TO STUDY THE QUESTION OF AYURVEDIC EDUCATION IN THE STATE AND TO MAKE RECOMMENDATIONS FOR THE REORIENTATION OF THE COURSES OF STUDIES WITH A VIEW TO PROMOTE THE AYURVEDIC SYSTEM OF MEDICINE.

Introduction

A succession of Committees, with distinguished personnel, appointed by the Central and State Governments have sought since 1924 to systematise courses of studies and to bring about uniform standards of regulation and practice affecting Vaidyas and Hakims with a view to promote the Ayurvedic and Unani Tib systems of medicine.

The Committees have made many valuable suggestions—some of which have not yet been carried out—in regard to regulation of practice in these systems of medicine. As far as the question of education is concerned, the Committees were largely influenced by the consideration that in order to ensure the progress of the Ayurvedic and Unani Tib systems of medicine, it was necessary to correlate courses with the fundamental aspects of Modern Medicine. The Committees set up earlier had also expressed themselves in favour of "an integrated course" in which teaching in Ayurveda was to be supplemented with instructions in essential subjects of Modern Medical Science. The Chopra Committee indeed envisaged "integration of Indian and Western Systems of Medicine leading to their ultimate synthesis".

The proposal regarding "integrated courses" found ready acceptance in many quarters. Some eminent Vaidyas also subscribed to the suggestion without realising its "sinister possibilities".

The working of the integrated courses has failed to evolve any synthesis between the Modern and Ancient Systems of Medicine. In fact it has turned out to be "the imposition of a thin vaneer of Modern Medicine on an equally thin substratum of Ayurveda". In this one way traffic, Ayurveda is expected to move the whole way towards integration with the Modern System of Medicine. The authors of the recommendations had clearly not intended the developments to take this wayward course—the hard fact, however, is that directly as a result of the introduction of integrated courses Ayurveda has been relegated, though imperceptibly, to an inconspicuous back place. Instead of a revival, Ayurveda has suffered a set back.

2. Uttar Pradesh was, one of the first few States to adopt the 'integrated course' with varying emphasis in the syllabus on the teaching of the essential subjects of Modern Medicine at different places. The experience gained in the working of the integrated courses over a period of a quarter of a century has been far from happy. The Inter. Science students are, by and large, more interested in Modern Medicine than

Ayurveda. In their ignorance they consider Ayurveda as unscientific and out-dated and indeed many of them suffer from an inferiority complex to the extent that they would not like to be known as 'Vaidyas' or 'Hakims'.

The integrated system of medicine has thus become the thin end of the wedge and it is clear that unless the course of events is changed, the very existence of Ayurveda may be endangered. The Srate Government accordingly appointed a Committee vide Office Memorandum No. 3415 BI/V-, dated May 26, 1958 to study the question of Ayurvedic Education in the State and to make recommendations for the reorientation of the courses of studies with a view to promote Ayurvedic system of medicine.

The personnel of the Committee was as follows :—

1.	Dr. Sampurnanand, Chief Minister, U.P.	— Chairman
2.	Thakur Hukum Singh Visen, Minister for Health & Power, U.P.	— Member
3.	Pandit Shiv Sharma, President, Board of Indian Medicine, Bombay.	— ,,
4.	Pandit Rajeshwar Dutt Shastri, Principal, Ayurvedic College, Banaras Hindu Universtty, Varanasi.	— ,,
5.	Prof. K.A.S. Iyer, Vice-Chancellor, Lucknow University.	— ,,
6.	Dr. B. Mukerji, Director of Central Drug Research Institute, Lucknow.	— ,,
7.	Sri Darbari Lal Sharma, President, Board of Indian Medicine, U.P., Lucknow	— ,,
8.	Pandit Hari Har Dutt Joshi, Principal, Rishikul Ayurvedic College, Hardwar.	— ,,
9.	Dr. P.D. Srivastava, Additional Director of Medical & Health Services, U.P.	— ,,
10.	Sri D.A. Kulkarni, Deputy Director of Medical & Health Services (Ayurveda), U.P.	— — Secretary & Member.

Thakur Hukum Singh Visen, Minister for Health and Power, U,P. and Dr. B. Mukerji, Director, Central Drug Research Institute, Lucknow could not attend the meetings due to unavoidable circumstances. The latter has, however, submitted a memorandum on "Ayurvedic Education in India, specially in the State of Uttar Pradesh." (Appendix I) for the consideration of the Committee.

Kaviraj Pratap Simha, Ayurvedic Adviser to the Government of India, New Delhi, was specially permitted by the Government of India to assist the Committee in its deliberations.

Sri L. M. Bhatia, I.A.S., Secretary to Goverment, U.P., Medical & Public Health Departments and Sri G.P. Pandey, I.A.S., Additional

Secretary to Government. U.P., Medical & Public Health Departments ttended the meetings by invitation.

Terms of Reference

The terms of reference of the Committee are reproduced below :—

(i) To examine the courses of studies in Ayurveda prescribed by various authorities in the State and to make recommendations for the reorientation of the same with a view to promote the Ayurvedic System of Mecicine.

(ii) To make auggestions regarding (a) the minimum qualifications for admission to the various degree courses in Ayurveda and (b) the subjects which should be included in the Pre-Ayurvedic test.

Meetings

The first meeting of the Committee was held at Nainital on ne 24, 1958. In his inaugural address (Appendix II). the Chairman mphasised the need to restore Ayurveda to its proper place and vited the help of the Committee to work out a suitable scheme for e training of the future Vaidyas.

In the second meeting held on the following day after general scussions, the Committee set up a Sub-Committee consisting of the der-mentioned persons to prepare a suitable syllabus for the degree urse.

1. Pandit Shiv Sharma, President, Board of Indian Medicine, Bombay.
2. Prof. K.A.S. Iyer. Vice-Choncellor, Lucknow University, Lucknow.
3. Pandit Rajeshwar Datt Shastri, Principal, Ayurvedic College, Banaras Hindu University, Varanasi.
4. Pandit Hari Har Datt Joshi, Principal, Ayurvedic College, Rishikul, Hardwar.
5. Sri D. A. Kulkarni, Deputy Director (Ayurveda) Convener.

The final meeting of the Committee, which was held on June 27, 58, approved the courses of studies prepared by the Sub-Committee ppendix III)

The syllabus covers all the important branches of Ayurveda in their ntial details and further envisages that instructions relating to the pics of Modern Medicine which are considered essential for supplemeng training in Ayurveda will be given by Ayurvedic teachers themselves.

ommendations of the Committee

The other relevant recommendations of the Committee are given low.

(I) The duration of degree course should be 5 years and the basic ission qualification for the students should be Intermediate in Arts h Sanskrit as one of the optional subjects or Madhyma Sampurna of e Government Sanskrit College, Varanasi with English of High School dard.

The other equivalent qualifications, duly approved by the Board of High School and Intermediate Examination, U. P. and by the Sanskrit University of Varanasi respectively, were also to be recognised for the purpose.

(2) Since the number of students seeking admission was not expected to be large enough to begin with, it was decided that the system of Pre-Ayurvedic test may be dispensed with for the first three years.

The Principals of the institutions may be empowered during this interim period, to admit the quota of students assigned for their institutions from amongst the available candidates on the basis of merit and physical fitness certificate.

(3) The degree course approved by the Committee should be commended for adoption by all the colleges of State, including those under the Board of Indian Medicine, U. P. and the Universities of Lucknow and Varanasi.

(4) The degree of "Ayurvedacharya" should be granted to or conferred on all the graduates coming out of the various institutions in the State.

(5) A Board of Editors may be set up for editing suitable Ayurvedic text books for the use of the students. The text books should be got written with emphasis on Ayurveda with suitable additions of important topics which may be found either wanting or incomplete in the available Ayurvedic texts, from the text books of Modern Medicine.

(6) A Seminar of teachers of the Ayurvedic colleges in the State may be called in September or October, 1958 to discuss the methods for teaching Ayurvedic subjects efficiently after due assimilation of knowledge relating to recent advances in Modern Medicine.

(7) Laboratories and hospitals attached to the institutions should be properly equipped and further there should be a suitable number of hospital beds for the purpose of giving instructions in Ayurveda.

(8) While recruiting teachers for the Ayurvedic Colleges, selection should not be restricted to only those who have obtained degrees or diplomas—effort should be made to select candidates who are well-versed in the subjects and are learned scholars of Ayurveda.

(9) The pay scale of Ayurvedacharya graduates should in no way be inferior to that of the graduates of the regular medical colleges.

(10) The State Board of Indian Medicine should re-examine the regulations regarding registration of Vaidyas and Hakims and further it should take suitable steps to require the Vaidyas and Hakims to observe the rules of medical ethics.

हरीतकी

लेखक—वागीश्वर शुक्लः, A. M. S. सेन्ट्रल रिसर्च इंस्टीट्यूट—जामनगर

…ङ्गिरन्ते हि प्रतिवादिनो यदाऽऽयुर्वेदशास्त्रे आधुनिकचिकित्साविज्ञानवदोषधीनामङ्गप्रत्यङ्गोपरि कृतक्रियायाः वर्णनं नास्त्येव। वैज्ञानिकपद्धतौ अयमेव विशेषोऽस्ति …प्रत्येकस्मिन् पदार्थे सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरमन्वेषणं कार्यम्। प्रत्येकस्य प्रयोगस्य यावच्छक्यं …विस्तरं वर्णनं कर्तव्यम्। किन्तु प्राचीनानां शैली त्वल्पाक्षरैरेव महदेव वर्णयितुमुन्मुखी …ति अतस्तैः (प्राचीनैः) प्रतिपादितवर्णने कस्याऽपि जिज्ञासोस्तृप्ति र्न भवति। यतो …तत्र त्वोषधीनां 'फार्माकोलाजिकल क्रियेति' नाम्न्या आधुनिकशास्त्रप्रचलितसंज्ञायाः …संज्ञाऽभावो दृश्यते।

किन्तु सूक्ष्मपर्यालोचनया तेषामेतत्सर्वं मृगमरीचिकावद् भ्रममात्रमेवावभासते। ते (प्रतिवादिनः) तु सर्वथा प्राचीनशास्त्राणामपर्यालोचने परगुणासहिष्णुतापण्डिता दृश्यन्ते। …ः किमप्युत्तरदानात् पूर्वमेवोहनीयं यत् केयं 'फार्माकोलाजिकल' क्रिया? सा त्वधस्तन …र्तैः स्पष्टा भविष्यति—

'फार्माकोलॉजी'[1] चिकित्साशास्त्रस्य तदङ्गं वर्तते येन स्वस्थावस्थायामोषधी…नामङ्गप्रत्यङ्गोपरि कृतप्रभावस्य विवेचनं क्रियते।

'थेराप्यूटिक्स'[2] तु तदङ्गं यदातुरावस्थायामोषधीनामङ्गप्रत्यङ्गोपरि कृतक्रियाया …विवेचनं करोति।

तदेकस्या हरीतक्या एवोदाहरणेन स्पष्टं भवति यदुभयोरपि वर्णनमस्माकं शास्त्रे …वत एव।

पूर्वमेवोक्तं यत्प्राचीनानां वर्णनशैली सूत्रात्मिकाऽस्ति। सूत्रस्य लक्षणन्त्वित्थं वर्तते—

"अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद् विश्वतो मुखम्।
अस्तोभमनवद्यञ्च सूत्रं सूत्रकृतो विदुः॥ इति"

कतिपयैरेव वर्णैर्निश्चयपूर्वकमासामस्त्येन सकलविषयस्य मृदुपदक्रमैर्वर्णनमेव प्राचा…नां ध्येयमस्ति। एतत् सर्वमधस्तनैर्निबन्धैः स्पष्टं भविष्यति। अत्रैकस्यैवौषधिद्रव्यस्य शरीर…महास्रोतमर्माद्यङ्गप्रत्यङ्गानामुपरि कीदृक् प्रभावो भवतीति महर्षिभिःकृतं वर्णनमवलोक्य …न्येषामपीदृग्वर्णनान्वेषणप्रवृत्तिर्भविष्यति तदा मम मनीषा सफलेत्यहम्मन्ये।

---

[1] Pharmacology is that branch of medicine which explains action of drugs in normal states.

[2] Therapeutics is that branch of medicine which deals with action of drugs in diseased conditions.

तद्धरीतक्या वर्णनमित्थं वर्तते

पर्यायाः—

हरीतक्यभया पथ्या कायस्था पूतनाऽमृता ।
हैमवत्यव्यथा चापि चेतकी श्रेयसी शिवा ।
वयस्था विजया चापि जीवन्ती रोहिणीति च ॥ भावप्रकाशे

पथ्यायाः सप्तजातयः—

विजया रोहिणी चैव पूतना चामृताऽभया ।
जीवन्ती चेतकी चेति पथ्यायाः सप्त जातयः ॥ भावप्रकाशे

तेषामुत्पत्तिस्थानानिः—

विन्ध्याद्रौ विजया, हिमाचलभवा स्याच्चेतकी, पूतना ।
सिन्धौ, स्यादथ रोहिणी निगदिता जाता प्रतिष्ठानके ॥
चम्पायाममृताऽभया च जनिता, देशे सुराष्ट्राह्वये ।
जीवन्तीति हरीतकी निगदिता सप्तप्रभेदा बुधैः ॥ भावप्रकाशे

आकृतय.—

अलाबुवृत्ता विजया वृत्ता सा रोहिणी स्मृता ।
पूतनाख्यि सूक्ष्मा कथिता मोतलामृता ॥
पञ्चरेखाऽभया प्रोक्ता जीवन्ती स्वर्णवर्णिनी ।
त्रिरेखा चेतकी ज्ञेया सप्तानामियमाकृतिः ॥ भावप्रकाशे

प्रयोगाः—

विजया सर्वरोगेषु······················ ।
सप्तानामपि जातीनां प्रधाना विजया स्मृता ॥
सुखप्रयोगा सुलभा सर्वरोगेषु शस्यते । १
···················रोहिणी व्रणरोहिणी ॥ २
प्रलेपे पूतना योज्या····················· । ३
····················शोधनार्थेऽमृता हिता ॥ ४
अक्षिरोगे ऽभया शस्ता···················· । ५
·····················जीवन्ती सर्वरोगहृत् ॥ ६
चूर्णार्थे चेतकी शस्ता यथायुक्तं प्रयोजयेत् । ७
चेतकी द्विविधा प्रोक्ता श्वेता कृष्णा च वर्णतः ।
षडङ्गुलायता शुक्ला कृष्णा त्वेकाङ्गुला स्मृता ॥
नृपाणां सुकुमाराणां कृशानां भेषजद्विषाम् ।
चेतकी परमा शस्ता हिता सुखविरेचनी ॥

२०१५

पथ्यायाः लक्षणानि—

सूक्ष्मास्थि मांसला पथ्या सर्वकर्मणि पूजिता । भा. प्र. पूर्वखण्ड ५ अ.
नवा स्निग्धा घना वृत्ता गुर्वी क्षिप्ता च याम्भसि ॥
निमज्जेत् सा प्रशस्ता च कथिताऽतिगुणप्रदा ।
नवादि गुणयुक्तत्वं तथैकत्र द्विकर्षता ॥
हरीतक्याः फले यत्र द्वयं तच्छ्रेष्ठमुच्यते । हरीतक्यादिवर्गे

हरीतकीनां शस्यानि (ग्राह्याणि) च० चि० १ अ० । १-३७
शस्यानीति···अस्थिरहितानि फलानि । चक्रः

दीनामधिकृत्य वर्णनम्—

१. रसाः—हरीतकीं पञ्चरसां···अलवणाम्···(च० चि० १ अ०।१-२५)

हरीतक्यादिषु पञ्चरसत्वाद्युत्पादोऽदृष्टवशाद् भूतसन्निवेशविशेषप्रभावाच्च ज्ञेयम्, नात्रोपपत्तयः क्रमन्त इति चक्रः ।

अलवणां लवणरसरहिताम्, अत एव पञ्चरसामिति जज्जटः ।
हरीतकी पञ्चरसाऽलवणा तुवरा परम् । भा० प्र०

भेदेन दोषाणां शमनत्वन्त्विवत्थं ज्ञेयम्—

स्वादु तिक्तकषायत्वात् पित्तहृत्, कफहृत्तु सा ।
कटुतिक्तकषायत्वाद्, अम्लत्वाद् वातहृच्छिवा ॥ भा० प्र०

भेदेन रसविभक्तिमाह—

पथ्याया मज्जनि स्वादुः, स्नाय्वामम्लो व्यवस्थितः ।
वृन्ते तिक्तस्त्वचि कटुरस्थिन स्यात्तुवरो रसः ॥ भा० प्र०

२. गुणः—हरीतकीं············उष्णाम्············(च० चि० १ अ०।१-२५)
············रूक्षोष्णा··········· भा० प्र०

३. वीर्यम्—हरीतकीं··········उष्णां वीर्यतः—जज्जटः (च० चि० १।१-२५)

४. विपाकः—स्वादुपाका—भा० प्र०।हरीतक्यादि वर्गे ।
लघ्वीं पाकत इति जज्जटः ।

५. प्रभावः—प्रभावाद्दोषहन्तृत्वं सिद्धं यत्तत् प्रकाश्यते ।
पित्तकृत् कटुकाम्लत्वाद् वातकृन्न कथं शिवा ॥
प्रभावात्······························ ।
चर्विता वर्धयत्यग्निं पेषिता मलशोधिनी ।
स्विन्ना संग्राहिणी पथ्या भृष्टा प्रोक्ता त्रिदोषनुत् ॥ भा० प्र०

……………………………शिवाम्[1] ।
दोषानुलोमिनलीं[2] लघ्वीं विद्याद्दीपन[3] पाचनीम् ॥
आयुष्यां[4] पौष्टिकीं धन्यां[5] वयसः स्थापनीं[6] पराम् ।
सर्वरोगप्रशमनीं[7] बुद्धीन्द्रिबलप्रदाम्[8] ॥
कुष्ठगुल्ममुदावर्तं शोषं पाण्ड्वामयं मदम् ।
अर्शांसि ग्रहणीदोषं पुराणं[9] विषमज्वरम् ॥
हृद्रोगं सशिरोरोगमतिसार[10] मरोचकम् ।
कासं प्रमेहमानाहं प्लीहानमुदरं नवम् ॥
कफप्रसेकं वैस्वर्यं वैवर्ण्यं कामलां क्रिमीन् ।
श्वयथुं तमकं छर्दिं क्लैव्यमङ्गावसादनम् ॥
स्रोतोविबन्धान् विविधान् प्रलेपं हृदयोरसोः ।
स्मृतिबुद्धिप्रमोहं[11] च जयेच्छीघ्रं हरीतकी ॥ च. चि. १ अ. १ पा. २९-३४

हरीतक्यामलके एव रोगहरत्वायुष्करत्वरूपोभयधर्मयोगात्…रोगहरत्वे हरीतकी प्रकर्षवती । इति चक्रः

……………दीपनी मेध्या……रसायनी ।
चक्षुष्या लघुरायुष्या बृंहणी चानुलोमिनी ॥
श्वास-कास-प्रमेहार्शः कुष्ठशोथोदरक्रिमीन् ।
वैस्वर्य – ग्रहणीरोग – विबन्धविषमज्वरान् ॥

---

(१) शिवामिति कल्याणकारिणीम् (चक्र-जज्जटौ)

उच्यते—कदाचित् कुप्यते माता नोदरस्था हरीतकी, इति जज्जटस्य सम्मतिः ।

(२) दोषाः वातादयः तेषामनुलोमिनीं समतानुकूलप्रवर्तिकाम् । (जज्जटः)

(३) दीपनीमुदराग्नेः, पाचनीमपक्वरसस्य; विद्यात् रसायनप्रोक्तेति शेषः (जज्जटः)

(४) आयुष्यां रसायनत्वात्,

(५) धन्यां स्वस्थतासम्पादनात्,

(६) वयसः स्थापनीं जरानिरोधादिति जज्जटः ।

(७) सर्वरोगहरत्वमभिधायापि कुष्ठादिहन्तृत्वाभिधानं विशेषेण कुष्ठादि हन्तृत्वोपदर्शनार्थमिति चक्र-जज्जटौ ।

(८) सर्वरोगप्रशमनीं सामान्यतः, विशेषतस्तु बुद्धीन्द्रियबलप्रदाम्बुद्धीन्द्रियाणि ज्ञानेन्द्रियाणि चक्षुरादीनि, तेषां बलं स्वविषयग्रहणपाटवम् (ज०)

(९) पुराणं विषमज्वरमित्यन्वयः, नवज्वरस्तु न तथेति भावः (ज०)

(१०) प्रवर्तकत्वेऽप्यतीसारग्रहणीहरत्वं विबद्धदोषप्रवर्तकतया ज्ञेयम्, यदुक्तम्—
"स्तोकं स्तोकं विबद्धं वा सशूलं योतिसार्यते ।
अभयापिप्पलीकल्कैः सुखोष्णैस्तं विरेचयेत् ॥" (सु. उ. ४० अ. इति च.)
नव्यास्तु "भृष्टा संग्राहिणी पथ्या" इति जज्जटः ।

(११) बुद्धिस्मृतिप्रदत्वमभिधायापि स्मृतिबुद्धिप्रमोहहरत्वाभिधानं तत्र विवेषशक्त्युपदर्शनार्थमुक्तम् (च०)

२०१५

गुल्माध्मानतृषाच्छर्दि हिक्का-कण्डू-हृदामयान् ।
कामलां शूलमानाहं प्लीहानञ्च यकृत्तथा ॥
अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रं च मूत्राघातञ्च नाशयेत् । (भावप्रकाशः)

कल्पनाभेदेन गुणानाह

चर्विता वर्धयत्यग्निं पेषिता मलशोधिनी ।
स्विन्ना संग्राहिणी पथ्या भृष्टा प्रोक्ता त्रिदोषनुत् ॥

भेषजसहकृतप्रभावमाह

उन्मीलिनी बुद्धिबलेन्द्रियाणां,
निर्मूलिनी पित्तकफानिलानाम् ।
विस्रंसिनी मूत्रशकृन्मलानां,
हरीतकी स्यात् सहभोजनेन ॥ भावप्र०
अन्नपानकृतान् दोषान् वातपित्तकफोद्भवान् ।
हरीतकी हरत्याशु भुक्तस्योपरि योजिता ॥ „

अधुना योगमधिकृत्य पथ्यायां प्रयोगः विशदीक्रियते...

(१) फलिनी विरेचने (च० सू० १ अ० ८२ श्लो०)

(२) अर्शोघ्न, कुष्ठघ्न, विरेचनोपग, हिक्कानिग्रहण, कासहर, ज्वरहर, वयःस्थापन दशकेषु । (च० सू० ४ अ०)

अभया (कदली-गुडूची-हरीतकी वेति चक्रः) प्रजास्थापने गणे । च. सू. ४ अ.
शिवा „ „ „

(३) पेया...अभया पिप्पलीमूलविश्वैर्वातानुलोमिनी । च. सू. २ अ. २९ श्लो०

(४) क—स्थावरतैलयोनिः । च० सू० १३ अ—१०

ख—ग्राम्यानूपौदकं मांसं गुडं दधि पयस्तिलान् ।
कुष्ठी शोथी प्रमेही च स्नेहने न प्रयोजयेत् ॥
स्नेहैर्यथास्वं तान् सिद्धैः स्नेहयेदविकारिभिः ।
पिप्पलीभिर्हरीतक्या :सिद्धैस्त्रिफलयाऽपि वा ॥ „ „ १३ अ. ९२

यथास्वमिति यो यत्र स्नेहो युज्यते सर्पिरादिः ।
सिद्धैरिति पिप्लीभिस्तथा हरीतक्या तथा त्रिफलया चेति पृथग् योजनीयम् । पिप्प-
स्नेहश्च कुष्ठादिषु यथासंख्यमिति केचित् (अनेन न्यायेन हरीतकीघृतं शोथे योजनी-
इति चक्रपाणिः ।

(५) आनुलोमिकद्रव्ये । च० सू० १५ अ—७

(६) क—कण्डू-कोठविनाशिनी (हरीतकी)
सक्षौद्रश्चाभयाप्राशः प्रायो रूक्षान्नसेवनम् ।
चूर्णप्रदेहा ये चोक्ता कण्डूकोठविनाशनाः ॥ च. सू. २३ अ—९

सक्षौद्रश्चाभयाप्राशः—इति क्षौद्रेण सह हरीतकी प्राशः,
किं वा अगस्त्यहरीतकीप्राशः।

ये चोक्ता—इत्यारग्वधीये (इति चक्रः)

(ख) प्रमेहे—

तक्राभयाप्रयोगैश्च त्रिफलायास्तथैव च।
अरिष्टानां प्रयोगैश्च यान्ति मेहादयः शमम्॥ च. सू. २३ अ. १७

(७) (क) हरीतकी पथ्यानाम्। च० सू० २५ अ—४०

(ख) मृद्वीकादि षड्विंशति फलासवानां प्रकरणे (एकः) च. सू. २५ अ—४९

(८) कषायः स्तम्भनः शीतः सोऽभयायामतोऽन्यथा। च. सू. २६ अ—५६

अभयायामतोन्यथेति—अभयायां कषायो रसो भेदनश्चोष्णश्चेत्यर्थः (चक्रः)

(९) हरीतकीकषायः विरेचनद्रव्येसु पठितः। च० वि० ८ अ—१४०

(१०) चिकित्सायां रसायनाधिकारे—

(क) स्नेहस्वेदोपपादितस्य रसायनकामस्य हरीतकीनां चूर्णेत्यादिना शोधनः कर्तव्यः। १—२५

(ख) ब्राह्मरसायने, आमलकचतुर्थे रसायने, च्यवनप्राशेऽप्यभयायाः प्रयोगः दृश्यते १ अ० १ पा०

(ग) पञ्चमो हरीतकीयोगः (इति १ अ०—१ पा० ७६ श्लो०)

(घ) हरीतक्यादि रसायने

(ङ) करप्रचितीयरसायनपादे अभयायाः प्रयोगः (च. चि. १ अ. ।१-७७)

(च) त्रिफलारसायने—'जरणान्ते मधुसर्पिर्भ्यामिकामभयां योजयेदि-त्यादिना। ३-४१

(११) ज्वरचिकित्सायाम्—ज्वराद्विमुच्यते पीत्वा मृद्वीकाभिः सहाभयाम्।
पयोनुपानमुष्णं········(च. चि. ३-२३ अ)

(१२) ऊर्ध्वगरक्तपित्ते—प्रतिमार्गहरणसाध्यव्याधित्वात् "त्रिवृतामभयामित्यादिना" विरेचनं प्रोक्तम्। च. चि. ४ अ.।५७

(१३) गुल्मचिकित्सायाम्—

(क) हिंग्वादि चूर्णे अभयायाः प्रयोगः (च. चि. ५ अ. ७९)

(ख) नीलिनी त्रिफला दन्ती पथ्या काम्पिल्लकैः सह। १०५
शोधनार्थं घृतं देयं सविडक्षारनागरम्॥ "

(ग) रसेनामलकेक्षूणां घृतप्रस्थं विपाचयेत्। १२२
पथ्यापादं पिबेत् सर्पिस्तत् सिद्धं पित्तगुल्मनुत्॥ " चि. ५—१३०

(घ) द्राक्षाभयारसं गुल्मे पैत्तिके सगुडं पिबेत्—विरेकार्थम्। चि. ५—१५४

(ङ) दन्तीहरीतक्याम्

२०१५

(१४) मेहचिकित्सायाम्—कफजमेहे कशायौ—
(क) यवान्युशीराण्यभया गुडूची च. चि. ६ अ. २९ श्लो.
(ख) चव्याभयाचित्रक-सप्तपर्णीः " "
(ग) पैत्तिकमेहे-उशीरमुस्तामलकाभयानाम् (कषायः) " ३०

(१५) कुष्ठरोगे—
(क) अभया प्रयोजिता वा मासं सव्योषगुडतैला । च. चि. ७ अ. ६१

अभयाप्रयोगे गुडतैलयोः कुष्ठनिदानत्वेनोक्तयोरपि संयोगमहिम्ना हरीतक्या समं प्रयोगः कुष्ठघ्नो भवतीति चक्रः ।

(ख) एला कुष्ठं दार्वी शतपुष्पा चित्रको विडङ्गश्च ।
कुष्ठालेपनमिष्टं रसाञ्जनं चाभया चैव ॥ चि. ७ अ. ८४

(१६) राजयक्ष्मचिकित्सायाम्—
खर्जूरं पिप्पली द्राक्षा पथ्या शृङ्गी दुरालभा ।
..........एतांल्लिह्यान्ना मधुसर्पिषा ।
कासश्वासापहान् स्वर्यान् पार्श्वशूलापहांस्तथा ॥ च. चि. ८ अ./१००-१०२

(१७) अपस्मारचिकित्सायाम्—
लशुनाद्ये घृते अभयायाः प्रयोगः दृश्यते । च. चि. ९ अ. / ५६

(१८) श्वयथुचिकित्सिते—
(क) पीतं कफोत्थं शमयेत्तु शोफं गव्येन मूत्रेण च हरीतकी च ।
च. चि. १२ अ. १२ / २१

हरीतकी नागरदेवदारू सुखाम्बुयुक्तम्.......... ।
च. चि. १२ अ. / २२

हरीतक्यादीनां कल्कः कफजे शोफे सुखाम्बुना पेय इति चक्रः ।

(ख) तक्रेण गुडाभयां सदोषभिन्नामविबद्धवर्चाः पिबेत् । च. चि. १२अ. / २७
(ग) अष्टशतेऽरिष्टे—अभयाप्रयोगः " / ३२
(घ) कंसहरीतक्याम् " / ५०-५२
(ङ) पटोलमूलादिकषाये " / ५४

(१९) प्लीहोदरचिकित्सायाम्—
(क) सगुडामभयां वापि च. चि. १३ अ. / ७८
(ख) संशमनार्थम्—
पिप्पली नागरं दन्ती चित्रकद्विगुणाभयाम् ।
विडङ्गांशयुतं चूर्णमेतदुष्णाम्बुना पिबेत् ॥ " / ७९
द्विगुणामभयामिति द्विभागामभयाम् (चक्रः)
(ग) रोहतकलतानान्तु काण्डकानभयाजले ।

मूत्रे वाऽऽसुनुयात्तच्च सप्तरात्रिस्थितं पिबेत् ॥ च. चि. १३ / ८१

आसुनुयादिति द्रवे मग्नाः कृत्वा सन्धानार्थं स्थापयेदिति चक्रपाणिः

(घ) उदरे शेषदोषनिर्हरणार्थम्—
क्षीरानुपानं गोमूत्रेणाभयां वा प्रयोजयेत् । " / १५१

(ङ) …………पयश्छागः त्रीन् मासान् व्योषसंयुतम् ।
हरीतकीसहस्रं वा……… ॥ "/१५२

(२०) अर्शचिकित्सायाम्—

(क) पाचनं पाययेद् वा तद् यदुक्तं ह्यातिसारिके ।
सगुडामभयां वापि प्राशयेत् पौर्वभक्तिकीम् ॥ च. चि. १४ अ. / ६५

(ख) गोमूत्राध्युषितां दद्यात् सगुडां वा हरीतकीम् ।
हरीतकीं तक्रयुतां………………………॥ " / ६७

(ग) चव्याद्ये घृतेऽप्यभयाप्रयोगः " / १०८

(घ) सगुडां पिप्पलियुतां घृतभृष्टां हरीतकीम् ।
त्रिवृद्दन्तीयुतां वाऽपि भक्षयेदानुलोमिकीम् ॥
विड्वातकफपित्तानामानुलोम्येऽथ निर्वृते ।
गुदेऽर्शांसि प्रशाम्यन्ति पावकश्चाभिवर्द्धते ॥ " /११९-१२०

(ङ) हरीतिकीनामित्यादिना अभयारिष्टादयश्चतुररिष्टा
उच्यन्ते येषु हरीतकीप्रयोगः दृश्यते ॥ " /१३५-५७

(२१) ग्रहणीचिकित्सायाम्—

(क) पञ्चमूल्यादि घृते, तैले, चूर्णे च, अभयाप्रयोगः दृश्यते ।
च. चि. १५ अ. / ८८

(ख) आमपाचनार्थम्— " / ९८
मुस्तान्तकल्कः पथ्या वा नागरं चोष्णवारिणा ।

(ग) देवदारुवचामुस्तनागरातिविषाभयाः ।
वारुण्यामासुतास्तोये कोष्णे वाऽलवणाः पिबेत् ॥ "/ ९९

(घ) सामे वा सकफे वाते कोष्ठशूलकरे पिबेत् । " / १०१
कलिंगहिङ्ग्वतिविषा वचा सौवर्चलाभयाः ॥

(ङ) छर्द्यर्शोग्रन्थिशूलेषु पिबेदुष्णेन वारिणा । " / १०२
पथ्या सौवर्चलाजाजीचूर्णं मरिचसंयुतम् ॥

(च) अभयां पिप्पलीमूलामित्यादि पित्तश्लेष्माभिभूतग्रहण्यां " / १०३
निष्क्वाथ्य चूर्णं कृत्वा वा पिबेत् । " / १२१

(छ) तक्रारिष्टे पथ्याप्रयोगः " / १५३

(ज) दुरालभासवे " " १६२

(झ) श्लेष्मग्रहण्यामग्निदीप नार्थप्रयोगः

(ञ) श्लेष्मग्रहण्यामग्निदीपनार्थं समूलपिप्पलीमूलामित्यादिना
चूर्णे घृते च प्रयोगः च. चि. १५ / १६६

(२२) पाण्डुरोगाधिकारे—
(क) पथ्याघृतम् च. चि. १६ अ. / ५०
(ख) कफपाण्डुस्तु गोमूत्रक्लिन्नां युक्तां हरीतकीम्। स्निग्धः सन् विरेचनार्थं
पिबेत् " / ५८
गोमूत्रक्लिन्नयुक्तामिति गोमूत्रेण क्लिन्नां कल्कीकृतां तथा गोमूत्रेण युक्तामालोडितां पिबेत्। अन्ये तु आरग्वधरसेन हरीतकीं पिबेदिति योजयन्ति; इति चक्रः।
(ग) हरीतकीं प्रयोगेण गोमूत्रेणाथवा पिबेत्।
जीर्णे क्षीरेण भुञ्जीत रसेन मधुरेण वा॥ च. चि. १६ अ. / ६८
(घ) तुल्या अयोरजः पथ्या हरिद्राक्षौद्रसर्पिषा।
चूर्णिताः कामली लिह्याद् गुडक्षौद्रेण वाभयाः॥ " / ९८

(२३) हिक्काश्वासचिकित्सिते—
तेजोवत्यादिघृते अभयाप्रयोगः दृश्यते। च. चि. १७ अ. / १४१

(२४) कासचिकित्सायाम्—
(क) अगस्त्यहरीतकी—लिह्याद्द्वे चाभये नित्यमतः खादेद् रसायनात्।
च. चि. १८ अ. / ६०
(ख) वातकफात्मके कासे—कट्फलं ··वचाभये···शृतं जलेन पेयम्। "/११२
(ग) सौवर्चलाभया धात्री पिप्पलीक्षारनागरम्।
चूर्णितं सर्पिषा वातकफकासहरं पिबेत्। " / १२२
(घ) कासमर्दाभयादि घृतम् " / १६३
(ङ) कासचिकित्सितेऽपरेऽपि योगा हरीतकीवन्तो दृश्यन्ते, त इमे; यथाः—
(i) हरीतकीं शटीं चैव तेनैव विधिना पिबेत्। च. चि. १८ अ. / ११५
तेनैव विधिनेति—उष्णोदकेन हिङ्गु सैन्धवोपेतं पिबेदित्यर्थः।
(ii) पिप्पली नागरं मुस्तं पथ्याधात्रीसितोपलाः।
मधुतैलयुता लेह्याः कासे वातानुगे कफे॥ " / ११८
(iii) पथ्या तामलकी धात्री भद्रमुस्ता च पिप्पली।
देवदार्वभयामुस्तं पिप्पली विश्वभेषजम्॥
कफकासहरावेतौ मधुना लेहयेद् भिषक्॥ " / १२०
(iv) कण्टकारी घृते पथ्या वर्तते। " / १२६
कण्टकारीघृतं ह्येतत् सर्वव्याधिनिषूदनम्।
···सर्वकासेषु हिक्काश्वासेषु शस्यते॥

(२५) अतिसारचिकित्सिते—

(क) बहुदोषे प्रवर्तनम्—तस्मादुपेक्षेतोत्क्लिष्टान् वर्तमानान् स्वयं मलान्।
कृच्छ्रं वावहतां दद्यादभयां संप्रवर्तिनीम्॥
तया प्रवाहिते दोषे प्रशाम्यत्युदरामयः॥
च. चि. १९ अ. /२१

(ख) बिल्वं कर्कटिकामुस्तमभया विश्वभेषजम्।
शृतं श्लेष्मातिसारेषु कायाग्निबलवर्धनम्॥ " /१०८

(२६) छर्दिचिकित्सिते—

आमाशयोत्क्लेशभवा हि सर्वाश्छर्द्यो मतालङ्घनमेव तस्मात्।
प्राक्कारयेन्मारुतजां विमुच्य संशोधनं वा कफपित्तहारि॥
चूर्णानि लिह्यान्मधुनाभयानां हृद्यानि वा यानि विरेचनानि।
मद्यैः पयोभिश्च युतानि युक्त्वा नयन्त्यधो दोषमुदीर्णवेगम्॥
च. चि. २० अ. /२१

(२७) विसर्पचिकित्सिताध्याये—

अन्तः शरीरे संशुद्धे दोषे त्वङ्मांससंश्रिते।
आदितो वाल्पदोषाणां क्रिया बाह्या प्रवक्ष्यते॥
सारिवापद्मकिञ्जल्कमुशीरं नीलमुत्पलम्।
मञ्जिष्ठा चन्दनं लोध्रमभया च प्रलेपनम्॥ च. चि. २१ अ./७६

(ख) ऊर्ध्वं चाधश्च शुद्धाय रक्ते चाप्यवसेचिते।
वातश्लेष्महरं कर्म ग्रन्थिवीसर्पिणे हितम्॥
बलानागबलां पथ्यां भूर्जग्रन्थिविभीतकम्।
वंशपत्राण्यग्निमन्थं कुर्याद् ग्रन्थिप्रलेपनम्॥ " /१२५

(क्रमशः)

मलेरिया शत्रु सिर्फ एक मात्रा में ही मलेरिया नष्ट करने में ब्रह्मास्त्र है
आधा पौंड ६) रुपया।

सफेद कोढ़ की पेटेन्ट दवा ५) रुपया।
दोनों दवाओं पर वैद्य डाक्टर हकीम धन मान कमा रहे हैं।

विवरण पत्र मुफ्त मंगाइयें।

वैद्य बी० आर० बोरकर आयुर्वेद भवन, (आ) मु. पो. मंगरूलपीर जि. अकोला (विदर्भ)

Problem of Mental Disease in India

Kaviraj Atul Behari Dutt, *Bangiya Unmad Ashram, Calcutta.*

(Summary of an essay read by the author at Chikitsa Sambhasha Parishad held under the auspices of the 42nd All India Ayurvedic Congress, Bangalore in June, 1957).

It is one of the great problems of India and the world at persent the care, treatment and hospitalisation of mental patients. Inspite of efforts taken in this field mental diseases are found to be gradually creasing everywhere. The western countries are taking very keen erest to meet this problem. In England there are 153,000 hospital ds for mental patients for her 5 crores of civil population. France has 106,000 beds for 43,000,000 people and Switzerland 17,600 beds for ,000 people. U. S. A. has got 640,000 beds for 16 crores of people w York 105,000 beds for 15,000,000 people) and Cannda 57,000 beds. stralia 31,000 beds for 8,800,000 people and Austria 11,060 beds for ,000 people.

spital Beds for Mental Patients per 1000 of Civil Population in ferent Countries

Considering the mental patients in hospitals per 1000 of civil popution in different countries England has got 3, France 2.4, Switzerland U. S. A. 4 (New York 6.2), Canada 4, Australia 3.5. For want of essary preventive and curative measures taken for mental patients in a and also for her poor socio-economical conditions mental patients be more in India than in any other countries. But taking 4 beds 1000 of populatlon India will require at least 1,500,000 beds for her crores of people.

But the actual number of patients everywhere are about 1.5 to 2 es more than the number of beds in hospitals. So, roughly the ber of mental patients will be about 2,500,000. But India had only beds in mental hospitals of different states in 1955 and during the one and a half year time the number of beds has been increased to e extent. The population in India is increasing at the rate of 1.3 ent per year. So, if the rate of increase continues in this way unked, then we shall see that within next 50 years the number of people be double to the present and the number of mental patients will also creased accordingly.

ibution of Hospital Beds for Mental Patients

Hospital beds for mental patients in western countries are far er than the beds for any other disease. About 25 to 30 percent of spital beds are meant for mental disease. But in India beds for al patients are too poor in consideration to beds for other diseases.

In western countries more than half of the total admission to mental hospitals occur between the ages of 25 and 55 and one tenth under 25. A little more than one third occuring in persons over 55 years of age. In Europe and America females are more affected by mental illness than the males and their proportion is about males to females 2 : 3. In some hospitals in Germany the rates for male to female mental patients is 1 : 2, But in India it is rather opposite. Here males are more affected by mental illness than the females and the hospital beds for males to females are in ratio of 3:1. Prof. Hans Bussow an internationally famous psychiatrist of Hamburg told me that after the second world war this change had occured as the females were subjected to great stress and strain in life due to loss of their supporting members. In all European countries more depressive patients are seen in mental hospitals than the excited patients, but in Indian mental hospitals more excited patients are admitted than the depressed. The maximum number of mental patients in India are between the age of 25 to 40 among males and 20 to 35 among females.

Mental Deficiency or "Jadabudhi"

Besides mental patients there are good number of mental defectives all over the world. They require care and attention not during any particular part of life but from the time of birth to the time of death. They are great burdens to the family, to the society and to the country. The exact number of beds for mental defectives in India is not known, but the number will not exceed in any way more than 300. It is for the Government and public to see how best these unfortunate individuals can be kept, treated and tought to earn a living.

Senile Dementia or Jadasosha.

The problem of Senile dementia is also very alarming everywhere. The average longevity of the people of England, France, Switzerland, Germany and America are between the ages of 70 and 72. But the average longevity of the people of India is 31. So, with the advance of age many people are affected with degeneration of brain cells and thus they suffer from loss of memory and mental disorder. In western countries senile dementia first appear in the fifties and increase rapidly with the advancing age thereafter. Their rate in the seventies and beyond is far higher than that recorded for any other diagnostic class at any other age. Females have the higher rate than the males. About onethird to half of the total mental hospital beds are occupied by the senile demented patients. There is no effective treatment for these patients. They are kept engaged by some sort of occupations and they are well cared of. Most of them become permanent members of the hospitals.

Treatment of Mental Patients in India

India has got 28 mental hospitals with 80 psychiatrists and there is only one teaching institution at Bangalore where medical graduates are given post-graduate training in mental disease. The total expenditure for mental patients annually is about rupees one crore in our country and all are aware of the difficulty one feels for admitting a mental patient in a hospital. Here a mental patient is treated as a criminal. The guardian of the patient is to take police help to approach a local magistrate who deals with criminal cases only. The magistrate after receiving medical opinion certifies the patient as lunatic and recomends for admission in a mental hospital. But for want of beds in hospitals very often the patient is either sent back to his home or sent to a jail where he is kept for unlimited period. Think over the miserable condition of mental patients in India. While in western countries the hospital doors are always kept open for mental patients.

In any case, the existing number of mental hospital beds in India is less than 1% of the need. The Government at the centre and in the province should be alert to look into this matter. Health services to the people is a prime duty of the Government of the country, more particularly so when the Government claims to be a national one.

Now I give below the measures to be adopted at an early date to ameliorate the sufferings of mental patients in India. These are: (1) Curative measures, (2) Preventive measures, (3) Education (4) Socio-economic measures and (5) Research.

I. Curative measures

I. First of all an early census of mental patients and defectives to be taken.

2. More hospital facilities with indoor and outdoor departments. At least one mental hospital of 200 beds for every district in India.

3. More out-door clinics for mental patients, one for one lac of people.

4. Facilities for free treatment to poor mental patients.

5. Rehabilitation of mental patients after treatment.

6. After-care societies which will always keep close touch with the patients and help them after they leave the hospital.

II. Preventive measures

1. Those who suffer from chronic or periodical mental disease, hereditary transmissible disease or who are defectives should not marry and if married should cease producing children by adopting the following methods—

(a) Celebacy or sexual abstinence, (b) Segregation, (c) Contraception (d) Sterilization.

U.S.A., Canada, Switzerland and Denmark adopted sterilization laws and Germany adopted compulsory sterilization laws.

(2) Child guidance clinics help teachers and parents to guide their children properly. Early detection and proper guidance in childhood may check about 50% of mental disorder in advanced age.

3. Adult vocational guidance, industrial guidance and marriage guidance are also necessary.

III. Education

For educational facilities we require—

1. Post-graduate college for training in mental disease and training centres for mental nursing, attendents, and psychiatric social workers.

2. More stress for imparting education about mental disease among medical students of different schools and colleges.

3. Educating the people to bear the stress and strain in life.

IV. Socio-economic Measures

Improvement of socio-economic factors are of vital importance in improving the mental as well as the physical condition of a person. Mental health of a man depends largely on his ideas of security at home and in society. He should get proper care and affection from his parents and near and dear ones, necessary nourishing diet to maintain his health, proper education, employment and treatment facilities.

V. Research in Mental Disease

Research institutions for finding out etiology of mental disease and some more effective medicines for treatment of mental patients are necessary. At present Sarpagandha in one form or other is used in all mental hospitals of Europe, America, Australia and India. It is an Ayurvedic medicine. Its use in mental disease was mentioned in Susruta Samhita 3000 years ago. There are many other effective Ayurvedic herbal, and metalic medicines, oil and ghee for the treatment of mental disease. We have got vast field for work in this line. So, I request the Ayurvedic physicians of India to take more interest in research and treatment of mental patients in India.

Conclusion

Here I would like to inform you that I am running a mental hospital at Calcutta with 90 beds at present where during the period 1935 to 1955, 1978 patients were admitted and 1930 patients were discharged of which the number of cured patients was 1521 i.e. about 77%. These patients were all treated according to Ayurvedic method. From the actual figures, I put before you I hope you will have no doubt about the success of this system with such high percentage of cure in mental disorder. We should be proud to think that there is a system of medical science which we call Ayurveda and which had its origin in India many thousand years ago and which we call as the father of medical science is still as effective as any other modern system of treatment.

If proper and timely help from the Government and the public be given to this system it can do a great help in the restoration of health to the suffering people.

कल्पवृक्ष

लेखक—वैद्याचाय उदयलाल महात्मा, केन्द्रीय आयुर्वेद अनुसंधान-शाला, उदयपुर (राजस्थान)

परम श्रद्धय कविराज प्रतापसिंह जी रसायनाचार्य, भूतपूर्व संचालक आयु- द विभाग, राजस्थान, ने जो इस समय भारत कार के आयुर्वेद विषयक सलाहकार हैं, स समय पूर्व पत्रिका में मांगलियावास ावर) के पास जो दो वृक्ष कल्पवृक्ष के हैं नका वर्णन किया था और इन पर विशेष काश डालने के लिए संकेत किया था। जमेर में वर्त्तमान संचालक महोदय, आयु- द विभाग राजस्थान, से इस विषय पर तचीत हुई तो उन्होंने इस प्रकार का एक उदयपुर के जनरल अस्पताल में भी ता वतलाया और देखने को कहा। जब से ननीय कविराज जी का लेख पढ़ा था तब ही मैं इसकी विशेष खोज में था। ० २८-३-५८ को अजमेर से १६ मील ब्यावर आते हुए मार्ग में मांगलियावास से पिसांगन रोड के पास ही एक पोखर पाल पर उन दो अति ही प्राचीन वृक्षों देखा जो लगभग ३८ फीट की गोलाई में और ऊंचाई ५७ फीट से भी अधिक है। की वाहरी त्वचा गुलाबी मायल है। ने से ऐसा प्रतीत होता है कि चोपचीनी समान इसका काठ चिकना है। उस समय झड़ी ऋतु होने से एक वृक्ष पत्र से बिल्कुल था। दूसरे पर कुछ शाखाओं में पत्ते । लोगों ने इसके डोडे आना और सफेद- खिलना वतलाया। छाल का स्वाद साधा- है। छाल अधिक चिकनी नहीं है। इन वृक्षों की छाल पर सेमल के कांटों के उभारों के समान उभार हैं परन्तु बहुत मामूली। इन वृक्षों पर कांटे कहीं पर नहीं है। पत्ते एक शलाका में ५. ६. ७ तक होते हैं। यह सेमल वर्ग का वृक्ष है।

दिनांक १४ जुलाई ५८ को अभिनव बूटी दर्पण के पृष्ठ १४२ पर दृष्टि गई तो उसमें पं० प्रयाग नारायण जी तिवारी, मु० सुसरौली, माननीय स्वर्गीय रूपलाल जी वैश्य और परम श्रद्धेय जयकृष्ण इन्द्रजी ठाकुर, भाटिया बोर्डिङ्ग, कच्छ मांडवी, ने पृष्ठ १४४ तक इसके बारे में प्रकाश डाला है। उसे विद्वान् वैद्यों की सेवा में वहां से उद्धृत कर रहा हूँ जिससे इसके अन्य भाषाओं के नाम व गुणावगुण पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। आशा है कि आयुर्वेद विभाग इस ओर ध्यान देकर इसकी छाल व फल के गूदे का परीक्षण करा उसका परिणाम प्रकाशित करायेगा जिससे इसकी उपयोगिता के बारे में शीघ्र निर्णय होकर यह वृक्ष भविष्य में बनने वाले निघण्टु में स्थान पा सके।

वर्णन निम्न प्रकार है:—

प्रजावैद्य श्री पं० प्रयागनारायण तिवारी, मु० सुसरौली वाले पूछते हैं:—

अद्भुत वृक्ष

मेरे ग्राम में दो विलक्षण विशाल वृक्ष 'गुजराती इमली' नाम के हैं जो एक दूसरे से २० गज के अन्तर पर हैं, एक वृक्ष दूसरे

से आकार व डील डौल में कुछ बड़ा है। इससे ग्रामवासी एक को नर और दूसरे को मादा कहते हैं। बड़े पेड़ का घेरा ४१ फीट ३ इञ्च और ऊंचाई ६४ फीट है और छोटे पेड़ का घेरा ३६ फीट ऊंचाई ६० फीट है। तना लगभग बारह २ फीट के लम्बे हैं जिन में घेरेदार झुर्रियां पड़ी हुई हैं। जैसे-जैसे पेड़ पुराने होते जाते हैं वैसे-वैसे अन्दर से पोले होते जा रहे हैं। इनके विषय में यह ठीक २ नहीं कहा जा सकता कि कितने प्राचीन हैं। हां, अंदाज़ से कई सौ वर्ष के पुराने प्रतीत होते हैं क्योंकि इनका तना इतना पोला है कि एक पूरी कोठरी कही जा सकती है। छाल का रंग भूरापन लिये श्वेत वट वृक्ष के रंग का किन्तु चिकना है। परन्तु चोट देने से दूध नहीं निकलता, लकड़ी बहुत रूखी व हलकी है। सूखी लकड़ी भी जलाने से नहीं जलती, केवल धुंआ देकर रह जाती है। पतली डालियों का छिलका सन की भांति रेशेदार और मजबूत है। पत्तियां सींकों के सिरों पर फूल की आकार की प्राय: पांच २ होती हैं। किसी २ सींक में तीन व चार पत्तियां भी होती हैं। पत्तियों का गुच्छा सेमल की पत्तियों के गुच्छे की भांति और पत्ती जामुन की पत्ती की भांति है। बड़ी पत्ती की लम्बाई ४$\frac{२}{५}$ इंच और चौड़ाई १$\frac{९}{१०}$ इञ्च है और छोटी से छोटी पत्ती की लम्बाई २$\frac{१}{१०}$ इञ्च चौड़ाई $\frac{४}{५}$ इञ्च है। पत्तियों का किनारा सादा व अनीदार होता है। हरी पत्ती दांत से कुचलने पर बेद की पत्ती की भांति मालूम होती है। फूल में पांच श्वेत रंग की पंखुड़ियां होती हैं। गर्भ केसर व पराग केसर दोनों एक ही पुष्प में होते हैं। फूल सूँघने में अरुचिकर जान पड़ता है। फूल आने का समय वैशाख ज्येष्ठ है।

फल—राम-सारस पक्षी के अण्डे के आकार का होता है और ऊपर का छिलका कैथा के फल के खोपड़े की भांति कड़ा और मजबूत होता है और उसके ऊपर हरे मखमल की भांति मुलायम रोयें होते हैं। पके हुए फल की लम्बाई नौ इंच के लगभग और घेरा १३ इञ्च के लगभग होता है। फल का डण्ठल ५ इञ्च के लगभग लम्बा होता है। मुलायम (कच्चे) फलों को चिड़ियां प्राय: काटकर गिरा देती हैं पर खाती नहीं हैं क्योंकि इनमें कोई मज़ा या लस नहीं होता। वृक्ष भर में कठिनाई से २५ या ३० फल पकने तक रहते हैं। फल को फोड़ने पर खीरे की सी पांच फाकों के अन्दर बेसन के बारीक सने हुए आटे के रंग का कुछ सुर्खी लिये लसदार गूदा होता है, जो कुछ खट्टा होता है कदाचित इसी आधार पर इसे यहां के लोग गुजराती इमली कहते हैं। पर यहां पर इसके किसी भी भाग का उपयोग किसी को ज्ञात नहीं है जिससे वृक्ष व्यर्थ समझे जा रहे हैं। गूदे के बीच २ में मनुष्य के सिर की बनावट के घेरों में आध इञ्च लम्बे कमल के बीज की भांति बहुत ही कड़े बीज होते हैं जिनके भीतर बिनौले की सी गिरी निकलती है।

उत्तर—गोरख इमली

अनेक भाषाओं के नाम—

सं०—गोरक्षी, महावृक्ष, कल्पवृक्ष, पञ्चपर्णी, सर्पदण्डी, दीर्घदण्डी, सुदण्डिका। हिंदी—गोरख इमली, विलायती इमली, गोरख अमली। मराठी—गोरख चिञ्च। गु०—गोरख आंवली, चोर आंवली, रुखडानुझाड़, रुखड़ो, रुगड़ो, चोर आमली। अजमेर—कल्पवृक्ष। वं०—गोरक्ष चाकुले। मा०—कलबिरछ। द०—हथिकटवां। मु०—गोरखचिंटज, गोपड़ा चिंच। ता०—मरजठ अनई, पुलियरो

ते०—सिर्मचिटा। पुरबन्दर—गोरख ली। सिंह०—कटु इम्बुल। अ०— हुजेद, हमाबु। अं०–The Baobab Monkey Bread Tree of frica. दिवाओबब या मांकीब्रेड ट्री अफ्रीका। Sour gaurd Tree सोर ट्री। ले०–Adansonia Digitata सोनिया डिजिटाटा।

गोरख इमली के वृक्ष की आदि जन्म- अफ्रीका है। अब इस देश के मालवा दि कई प्रान्तों में तथा सिलोन में पाया ता है।

इसका वृक्ष देखने में बहुत सुन्दर और कार में बहुत बड़ा होता है। इसकी ऊंचाई -३० फुट से कम नहीं होती। जिस प्रकार वृक्ष विशाल होता है वैसे ही इसकी आयु सबसे अधिक होती है। इसका स्तम्भ देखने छोटा किन्तु बहुत मोटा होता है। इसका ४० फुट तक होता है। जड़ की मोटाई अपेक्षा स्तम्भ के अंत का हिस्सा कुछ अर्थात् स्तम्भ गावदुम दीख पड़ता है। लम्बी, सघन और खूब फैली हुई होती है। इसकी छाल मोटी और चिकनी होती है। प्रकार सेमर और सप्तपर्णा के पत्ते पर ५-७ इकट्ठे रहते हैं उसी तरह पत्ते भी प्रत्येक सींक के अन्त में ५-७ साथ लगते हैं। पत्ते-लम्बे अण्डाकार और नुकीले होते हैं। प्रायः बसन्त ऋतु में पुराने पत्ते गिर जाते हैं और बरसात नवीन पत्ते निकल आते हैं। वैशाख-जैष्ठ यह वृक्ष फूलता-फलता है। फूल सफेद रंग आते हैं। फल कठोर छिलका वाला सेमर की तरह परन्तु उससे बड़ा और मोटा ता है। फल के भीतर गूदी होती है और गूदी से लिपटे हुए बीज होते हैं। स्वाद कुछ खट्टा होता है।

प्रयोग—

(१) छाल कुनैन के समान गुणकारी होती है।

(२) आधी छटांक छाल को यवकूट कर १५ छटांक जल में पकावें जब १० छटांक शेष रहे तब उतार मल छानकर थोड़ी-थोड़ी मात्रा में घण्टे-घण्टे पर सेवन करने से पसीना आकर ज्वर उतर जाता है।

(३) अतिसार और आमातिसार में बलानुसार आधी रत्ती से १० रत्ती की मात्रा में माठे के साथ सेवन कराने से लाभ होता है।

श्री जय कृष्ण इन्द्र जी ठाकर भाटिया बोर्डिंग कच्छ मांड़वी लिखते हैं:—

नैसर्गिक— शाल्मल्यादि—Natural order Malvacedil.

गुण दोष—ग्राही, पित्तहर, उपलेपक।

उपयोग—इसके फल में जो मावा (Pulp) होता है उसका उपयोग संग्रहणी, दस्त और पित्त विकार पर किया जाता है। मात्रा १ से २० ग्रेन तक।

"Useful astringent in diarrhoea and dysentery, dose 1 to 20 grans' (Surgeon W. Berren, Bhuj Cutch).

उल्लेख—Dymock's Materia Medica Western India' page 88, "वनस्पति शास्त्र" (गुजराती) पत्र

८७ नम्बर ६८ 'कच्छस्वस्थान की वनस्पति, (गुजराती) पत्र ३८ संख्यांक ५९। इस वृक्ष की आयु १००० से ५००० वर्ष की मालूम होती है।

श्री द्वारिका में इस वृक्ष को 'कल्पवृक्ष' कहते हैं और पवित्र व पूजनीय गिना जाता है। अवश्य यह "अदभुत" वृक्ष ही है।

उक्त वर्णन अभिनव बूटी दर्पण से दिया है। गोरख इमली नाम से यहां गुलाब बाग में एक साधारण वृक्ष है जिसकी लम्बाई १० फीट व तना का घेरा अभी छः इञ्च से अधिक नहीं है। पत्ते एक सींक में ३-३ आते हैं। कल्पवृक्ष के वर्णन में जो नाम गोरख इमली के दिये गये वो तो सार्थक हैं। किन्तु कल्पवृक्ष को गोरख इमली माना जावे तो इस दूसरे वृक्ष को जिसके पत्र बेल पत्र के समान किसी सींक में ३ किसी में ४ और किसी में ५ हैं, किसी में १ और किसी में २ भी हैं, इसको क्या माना जावे ? दूसरे गोरख इमली के गुण जो शास्त्र में वर्णित हैं वो किस वृक्ष में हैं इसकी परीक्षा होनी चाहिए।

वनस्पति सम्बन्धी ग्रंथ इस समय उपलब्ध नहीं है। उपलब्ध होते ही इस सम्बन्ध में प्रकाश डाला जायगा। जो गुण ज्वर और अतिसार के वास्ते वर्णित हैं वैद्य बन्धु उनकी परीक्षा करावें।

यह अवसर न चूकिए। शीघ्रता कीजिए॥

भस्में, रस आश्चर्यजनक कम मूल्यों पर

वैद्यों, औषध विक्रेताओं और धर्मार्थ औषधालयों के लिए अपूर्व अवसर।

हमारे डायरेक्ट्रों ने अधिक स्टाक शीघ्र बिक्री करने का निश्चय किया है। इस विचार से इसे निम्नांकित आश्चर्यजनक कम भावों पर जो हमारी लागत मात्र हैं, दे रहे हैं।

नोटः—(१) स्टाक कम होते ही इन भावों पर बिक्री बन्द कर दी जावेगी। (२) २० तोलासे कम कोई भी भस्म इन भावों पर न भेजी जावेगी।

शुद्ध शिलाजीत सूर्यतापी	३६) सेर	गौदन्ती भस्म	४॥) सेर	यशद भस्म	२८) सेर
अभ्रक वज्र भस्म		चन्द्रप्रभावटी	२८) "	योगराजगुग्गुललघु	१५) "
" ३० पुटी	४६) "	जहरमौहरा भस्म	१८) "	रस सिन्दूर	१२५) "
" ६० पुटी	९०) "	त्रिवंग भस्म	४८) "	लोह भस्म	२४) "
अकीक भस्म	५०) "	नाग भस्म पीत	२४) "	शंख भस्म	७) "
कपर्दिका भस्म	८) "	प्रवाल "	३६) "	शृंगराज भस्म	१४) "
कुक्कुटांडत्वकभस्म	१८) "	प्रवाल चन्द्र पुटी	३६) "	स्वर्णमाक्षिकभस्म	२८) "
कांत लोह भस्म	२८) "	बंग भस्म श्वेत	३६) "	स्वर्णबंग नं. १,	११०) "
कसीस भस्म	१०) "	मण्डूर भस्म	२०) "	स्वर्ण सिन्दूर (चन्द्रोदय)	४) तोला
		मुक्ता शुक्ति भस्म	१४) "		

च्यवनप्राश, (नया) पाव के पैंकिग १५) दरजन, खुला ५ सेर का २१), १० सेर का ३८)
सुपारी पाक " " " " १८) " ५ सेर का २६), १० सेर का ४६)
द्राक्षासव, लोहासव, अशोकारिष्ट के १ पौंड पैंकिग १५) दर्जन।

काश्मीर आयुर्वेदिक वर्क्स, जी० टी० रोड, अमृतसर।

जलोदर की सफल चिकित्सा

लेखक—आयुर्वेदाचार्य श्री ब्रजनन्दन मिश्र, पानापुर, रसौली

बात लगभग चार वर्ष पूर्व की है। हमारे ग्राम रसौली में ग्राम के सरकारी वारी श्री रघुनन्दन सिंह जी के सहयोग से के ग्राम वेगरा (थाना मशरक, पो० डमर-बाजार, जि० सारन) में अयोध्या सिंह नामक एक जलोदर के असाध्य रोगी की चिकित्सा करने का अवसर मिला। उप-रोक्त सज्जन के साथ मैं १९-२-५४ को रोगी को देखने उसके गांव में पहुँचा। रोगी की अवस्था चिन्ताजनक थी और वह एलोपैथिक, होमियोपैथिक तथा कुछ आयुर्वेदिक चिकित्सा कराकर हताश हो अपने अन्तिम समय की प्रतीक्षा कर रहा था। भली प्रकार परीक्षा करने पर मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि इस रोगी के बचने की आशा कम है और ही मैंने इसके घर वालों को कह भी दिया फिर भी उसकी प्राणरक्षा का पूरा प्रयत्न करना हमारा कर्त्तव्य है यह विचार कर तथा उसके घर वालों की सम्मति से मैंने उसकी चिकित्सा ता० १९-२-५४ से ही आरम्भ कर दी।

रोगी की अवस्था—उदर बिल्कुल जल ों, पेडू (बस्ती) से पाद तक पूर्ण शोथ, प्लीहा बहुत बढ़ी हुई, अति दौर्बल्य, आहार वा अरुचि, श्वास फूला हुआ।

औषध व्यवस्था—विशुद्ध पुराना भस्म, त्रिफला, शरपुंखा चूर्ण-मधु और के रस में प्रातः सायं।

शतपुटित लौह भस्म २ तोला पुनर्नवा रस में थोड़ा पुराना मधु मिलाकर मध्याह्न व रात्रि में।

जल के स्थान में पुनर्नवार्क थोड़ा-थोड़ा। पथ्य बकरी का दुग्ध।

चिकित्सा क्रम—दिनांक १९-२-५४ से २५-२-५४ तक उपरोक्त औषधें दी गईं जिसके परिणामस्वरूप शोथ बिल्कुल समाप्त हो गया तथा जल भी १० आना भर रह गया। पुनः एक सप्ताह तक उपरोक्त औषधें दी गईं। जल पूर्णतया समाप्त हो गया किन्तु प्लीहा ज्यों की त्यों बनी रही। रोगी ने अपने आपको स्वस्थ समझ कर चिकित्सा बन्द कर दी।

पुनः ता० १८-४-५७ को रोगी प्लीहा ज्वर से ग्रस्त होकर मिला। प्राचीन रोग में केवल प्लीहा ही शेष थी जिसके कारण उसे थोड़ा-थोड़ा ज्वर हो जाया करता था। इसकी चिकित्सा के लिये लोहासव १ तो०, अमृतारिष्ट १ तोला, कुमार्यासव १ तो०, २।। तोला जल में भोजन के पश्चात् देना आरम्भ किया। भोजन पूर्व सुदर्शन अर्क २ तोला प्रातः सायं और मिश्रा आयुर्वेदिक फार्मेसी झांसी का शरपुंखा सूचीवेध दो दिन के पश्चात् १ देना प्रारम्भ किया—इस प्रकार १८ सूचीवेध लगाये गये। रोगी पूर्ण स्वस्थ हो गया।

——

यकृद्दाल्युदर (Cirrhosis Liver) में आयुर्वेद चिकित्सा

ले०—कविराज पं० राधाकृष्ण उपाध्याय, सुपरवाइजर—आयुर्वेदिक एण्ड यूनानी विभाग—म्युनिसिपल कारपोरेशन, दिल्ली

पिछले मार्च मास की पत्रिका में मैंने जलोदर पर उपर्युक्त नाम से एक लेख लिखा था जिसमें एक जलोदर के रोगी ने एलोपैथी के बड़े अस्पताल में रह कर तथा आयुर्वेदीय आतुरालय में भी रहकर चिकित्सा कराई, उससे जो फलाफल उसे हुआ उसका संक्षेप में कुछ विवरण दिया था। उस अस्पताल के मेडिकल सुपरिन्टेन्डेन्ट की इस विषय में क्या सम्मति थी यह भी मैंने उसी के साथ प्रकाशित की थी। उस रोगी की क्या अवस्था थी, उसकी क्या चिकित्सा हुई तथा उसे कितना लाभ हुआ और उससे जो अनुभव हुआ यह मैं इस लेख में देता हूँ। इस रोगी की चिकित्सा में विशेष बात यह है कि एलोपैथी की चिकित्सा में जहां टेंपिंग द्वारा पानी पेट से निकाला जाता था तो वह पुनः भर जाता था और रोगी निर्बल होता जा रहा था, वहां आयुर्वेदीय चिकित्सा में बिना टेंपिंग के पानी निकल गया और फिर दो वर्ष व्यतीत होने पर भी पेट में पानी नहीं भरा और रोगी स्वस्थ है।

सन् १९५६ में जब मैं दिल्ली म्युनिसिपल आयुर्वेदीय आतुरालय बल्लीमारान का अध्यक्ष था तब एक सज्जन ने जो उस समय म्युनि०कमिश्नर भी थे, एक जलोदर रोगी को आतुरालय में दाखिल करने को भेजा। उस समय इस रोगीके पास इर्विन अस्पताल दिल्ली का एक डिस्चार्ज स्लिप (Discharge slip) था जिसमें रोगी का नाम बुलाकीदास, आयु तीस वर्ष, सीरियल नम्बर ८८२४, वार्ड एम, एच, चार, रोग का नाम सिरोसिस लीवर, परिणाम Same (पूर्ववत्) तथा उसके चिकित्सक महोदय का नाम भी लिखा था।

इस बुलाकीदास रोगी को उपर्युक्त आयुर्वेदीय आतुरालय में ता० ३०।६।५६ को बेड नं० १२ पर दाखिल किया गया। रोगी के इतिहास से पता लगा कि वह अजीर्ण अग्निमांद्य आदि उपद्रवों से बहुत दिनों से पीड़ित था। जब उसके पेट में पानी भर गया तब वो इरविन अस्पताल दिल्ली में ता० ११।५।५६ को दाखिल हुआ और वहां ता: २९।५।५६ तक रहा। इसके बीच में औषधियों के अतिरिक्त उसके पेट से दो बार टेंपिंग द्वारा पानी निकाला गया किन्तु क्रमशः फिर उसके पेट में पानी भरने लगा। जब ता: ३०।६।५६ को यह रोगी बल्लीमारान आतुरालय में दाखिल किया गया उस समय भी रोगी के पेट में काफी पानी भरा हुआ था जिससे उसके यकृत् और प्लीहा को पेट तनाव के कारण देखा नहीं जा सकता था। रोगी के पेट का नाप उस समय तीस इंच से कुछ ऊपर था। रोगी निर्बलता के कारण उठने बैठने, चलने फिरने में काफी कमजोरी अनुभव करता था। शरीर का मांस सूखने से अस्थि चर्मावशेष रह गया था और पानी के कारण पेट ही पेट खूब बढ़ा हुआ दीखता

था। पेट में दर्द, पैरों पर हल्का सा शोथ, हृदय में घबराहट होती थी। लेटने में श्वास कष्ट होता था, नींद नहीं आती थी। खांसी बहुत थी। इसके कारण वार्ड के अन्य रोगी भी सो नहीं सकते थे। ज्वर भी थोड़ा थोड़ा होता था। आखों में हल्का पीलापन था। मूत्र कम उतरता था, मलोत्सर्जन भी ठीक नहीं था। आगे जाकर जब पेट में पानी बढ़ता रहा तब यकृत और प्लीहा करीब तीन इंच बढ़े हुए देखे गए। परीक्षा करने पर ये काफी कठोर मालूम होते थे। पेट पर शिराएं भी दिखती थीं और भूख नहीं लगती थी।

रोगी को आतुरालय में दाखिल करने के बाद प्रथम सप्ताह में निम्न चिकित्सा और भोजन दिया गया। चूंकि रोगी थोड़ा भोजन करता था इसलिए आरम्भ में अन्न बन्द नहीं किया गया, उसे दोनों बार थोड़ा दलिया, दूध और बिना नमक की सब्जी दी गई। औषधि में उसे प्रातः सायं पुनर्नवा मंडूर २ रती, प्रवालपिष्टी एक रती और नागार्जुनाभ्र १ रती मिलाकर देते थे। भोजन के बाद पुनर्नवारिष्ट १¼ तोला दोनों समय दिया जाता था। रात को एक विरेचक ३ माशे जिसमें हरड़जुलाफा और बराबर की चीनी थी देते थे। इस सप्ताह में रोगी की अवस्था पूर्ववत् रही, दूसरे सप्ताह में पेट का तनाव और बढ़ गया। उदरका नाप तीस से बत्तीस इंच होगया। दूसरे सप्ताह के अन्त में रोगी का भोजन (अन्न) बन्द कर दिया। प्रातः सायं की उपर्युक्त औषधियों का अनुपान एक तोले अद्रक का रस और गुड़ कर दिया गया। भोजन में उसे सिर्फ दूध दिया जाता था। अरिष्ट भी बन्द हो गया। क्षीरपिप्पली वर्धमान् का प्रयोग करने के विचार से तीन पिप्पली दूध में पीस कर दी गई। प्रति दिन २ पिप्पली बढ़ाते जाते थे और रात को जुलाफा हरड़ वाला उपर्युक्त विरेचन भी देते थे, इससे रोगी को ३,४ दस्त होते थे। चार दिन में बारह पिप्पली बढ़ी किन्तु बाद में घबराहट होने से रोगी ने पिप्पली लेने से इन्कार कर दिया। इस तरह तीसरा सप्ताह भी समाप्त हो गया। इकीसवें दिन रोगी के पेट का तनाव काफी बढ़ा हुआ था, दुर्बलता और घबराहट के कारण बेचैनी बहुत थी। पेट में तनाव के कारण श्वास लेने में भी कष्ट होता था। अब सब औषधियां और पिप्पली बन्द कर दी गई। भोजन में फटे हुए दूध का पानी और मौसमी का रस देने लगे। औषधि में सिर्फ स्नुही क्षीर, भावित क्षीर, पिप्पली एक माशा प्रातःकाल दिन में एक बार देने लगे। इससे रोगी को १० से १५ बार दस्त आते थे। रोगी के पेट का तनाव तो कम होता था किन्तु दस्तों के कारण दुर्बलता से रोगी घबरा जाता था। इस चौथे सप्ताह में रोगी को बिस्तरे पर ही बेडपेन में टट्टी कराई जाती थी। अधिक दुर्बलता होने पर उस दिन क्षीर पिप्पली नहीं देते थे। इस तरह दो सप्ताह क्षीर पिप्पली का एकमात्र प्रयोग चलता रहा। रोगी के ये १५ दिन बड़ी चिन्ता से व्यतीत हुए, किन्तु इस चिकित्सा से रोगी को क्रमशः पेट में लाभ मालूम होने लगा। जहां दस्तों से भयंकर दुर्बलता बढ़ती जा रही थी वहां पेट का तनाव कम होने लगा। मूत्र भी पहले से अधिक उतरने लगा। क्षीर पिप्पली अब देर २ से तीसरे दिन देने लगे। फटे दूध के पानी के बजाय skimmed milk (मक्खन निकला दूध) भोजन के स्थान पर दिया जाता था। रोगी की भूख भी बढ़ने लगी। मक्खन निकला दूध रोगी एक सेर से क्रमशः तीन सेर तक पीने

लगा। अब क्षीर पिप्पली सप्ताह में दो बार कर दी गई। मूत्र बार २ और अधिक मात्रा में आने लगा। शौच भी कम जाने लगा सिर्फ क्षीर पिप्पली वाले दिन उसे अधिक बार जाना पड़ता था।

यों समझिये कि आतुरालय में दाखिल होने के पांचवें सप्ताह के पश्चात् रोगी को वास्तविक लाभ प्रतीत होने लगा। उसकी अवस्था अब प्रति दिन सुधरती जा रही थी। दूसरे मास के अन्त में उदर का नाप ३२ इंच से २४ इंच रह गया। पेट में अब पानी मालूम नहीं होता था। भूख बढ़ने से सपरेटा दूध (मक्खन निकला) ज्यादे लेने लगा, संयोग से कभी सपरेटा दूध नहीं मिलता तो अब वो साधारण दूध ले लेता था। ढाई मास के बाद रोगी के जिद करने पर सपरेटा दूध के साथ थोड़ा २ दलिया और नमक रहित साग भी देने लगे। बल बढ़ने पर मल मूत्र त्याग करने को शौचालय जाने लगा। बीच २ में थकान से उसे कभी २ ज्वर और कास भी हो जाती थी। जब थोड़ा भोजन (दलिया) देने लगे तब फिर आरंभ का औषधि का योग अद्रक के रस और गुड़ से देने लगे। भोजन के पश्चात् पुनर्नवारिष्ट १½ तोला दोनों समय चालू कर दिया। बीच में कुछ दिन पुनर्नवाष्टक क्वाथ भी देते थे। अब क्षीर पिप्पली आवश्यकतानुसार दी जाती थी। यह रोगी आतुरालय में ता: ३०।६।५६ को प्रविष्ट हुआ और ता: १३।१०।५६ को साढ़े तीन मास पश्चात् स्वास्थ्य लाभ करके अवकाश लेकर गया। इसके बाद एक वर्ष तक सन् १९५७ के दिसम्बर तक इसकी वैज्ञानिक जाँच होती रही तब भी पानी पीछा पेट में नहीं भरा। यह रोगी दिल्ली का रहने वाला है अब भी अपने परिवार की चिकित्सा के लिए आता रहता है। पूर्ण स्वस्थ और अपना सब काम काज करता है।

रोगी के पेट का पानी जब बहुत कम हो गया तो उसके बढ़े हुए-यकृत और प्लीहा की परीक्षा की गई थी। वे करीब तीन २ इंच से भी अधिक बढ़े हुए थे, छूने पर कठोर मालूम होते थे। जब ता: १३।१०।५६ को रोगी को छुट्टी दी गई तब भी अपेक्षाकृत यकृत प्लीहा कम तो थे फिर भी साधारण अवस्था से बढ़े हुए थे। यकृत प्लीहा के बढ़े होने पर भी रोगी का बल और वजन बढ़ गया था। सूखे शरीर पर अब मांस आ गया था। रोगी अब अपने आप को स्वस्थ समझने लगा। बाद में तो उसने औषधि लेने में भी लापरवाही शुरू करदी।

इसी रोगी को जब वह जलोदर के कारण चिन्ताजनक स्थिति में था तब आतुरालय में तत्कालीन दिल्ली के स्वास्थ्य मंत्री श्री डाक्टर युद्धवीर सिंह जी ने ता:२६।७।५६ को डायरेक्टर हेल्थ सर्विसेज के साथ, बाद में ता: १।८।५६ को पुनः सेन्ट्रल गवर्नमेन्ट से नियुक्त दवे कमेटी के सदस्यों के साथ देखा था। रोगी को स्वास्थ्य लाभ होने पर इन्हीं मंत्री महोदय की आज्ञा से डायरेक्टर हेल्थ सर्विसेज ने रोगी की विशेष अनुसन्धान की इच्छा से मेडिकल सुपरिन्टेन्डेन्ट इरविन हास्पिटल के पास भेजा। वहां रोगी दिसम्बर १९५६ से नवम्बर १९५७ तक मेडिकल सुपरिन्टेन्डेन्ट डाक्टर आर०एल मेहरा एफ. आर. सी. एस. के निरीक्षण में जाँच-पड़ताल करवाता रहा। इस जांच का निष्कर्ष उन्होंने अपने पत्र ता: १५।११।५७ में देकर डायरेक्टर हेल्थ सर्विसेज दिल्ली को और मेरे पास भी भेजा जो पत्रिका के मार्च मास के अंक में प्रकाशित हुआ था।

इस cirrhosis liver के विषय में प्राचीन और आधुनिक चिकित्सकों का क्या मत है यह मैं अगले लेख में निवेदन करूंगा।

'डालडा' और पोषण में इस का कार्य्य

मैक् कैरिसन ने अपने एक भाषण में कहा है "आहार में प्रधान भूल आहार की मात्रा से नहीं, वरन् उस के गुणों से संबंधित है।" इस में संदेह नहीं कि इस देश में दोषपूर्ण आहार सर्वसाधारण में प्रचलित है। परन्तु यह दोष इतना आहार की कमी का नहीं जितना कि ठीक प्रकार के आहार के अभाव का है, विशेषतया विटामिनों (खाद्यौजों) तथा घृत तैलादि स्नेहों के अभाव का।

एक संख्यावलोकन में स्वस्थ दृष्टि उपयोजन के आधार पर निर्णय करते हुये, हैरिस और अब्बासी ने १९३९ में इंग्लैण्ड में कामगारों के घरों में बच्चों को, आधी से अधिक संख्या में, ए विटामिन में हीन पाया। अफ्रीका और भारत में विटामिन ए की कमी से बच्चों के समूह में ५०% बच्चों में त्वचा में विकृति पाई गई (एल. निकल्स-इंडियन मैडिकल गज़ट, १९३३) यही बात आहार अन्वेषण प्रयोगशाला, कून्नूर के हैल्थ बुलेटिन नं. २३ (१९५६) में भी पुष्ट की गई है। आहार-न्यूनताजन्य अधिक संख्याक व्याधियों में विटामिन ए की न्यूनता ही मुख्य एकाकी कारण है। एक मनुष्य के लिये विटामिन ए की दैनिक आवश्यकता ३००० से ४००० अंतरराष्ट्रीय इकाइयों के लगभग होती है।

विटामिन ए बहुत कम खाद्यों में मिलता है। इन में सर्वाधिक प्रचलित अण्डे, दूध और मक्खन हैं। इसी लिये यह जान लेना अत्यावश्यक है कि इन में विटामिन ए का प्रमाण निश्चित नहीं है। क्योंकि इस की मात्रा मुर्गियों और गायों के आहार पर निर्भर रहती है। इस के अतिरिक्त यह प्राणिज पदार्थ मैंहगे होते हैं और बहुतों की पहुंच से बाहर हैं। अतएव फ़िट्ज़ जीरल्ड मोर इस संपूर्ण समस्या पर विचार करने के अनंतर इस आशय पर पहुंचा है कि इस समस्या की पूर्ति की एक मात्र आशा यही है कि स्थानीय वानस्पतिक तेलों तथा स्नेहों को ही अतिरिक्त विटामिन ए से भर दिया जाये। जैसा कि विदित है भारतीय अन्वेषण समिति की आहार पोषण उपसमिति का विचार भी यही रहा है और उसने यह सिफ़ारिश की कि वनस्पति के प्रत्येक १ औंस (२॥ तोला) में विटामिन ए की ७०० अंतरराष्ट्रीय इकाइयाँ मिलाई जाएं। सर्कार ने यह सिफ़ारिश स्वीकार की। हम 'डालडा' में विटामिन ए की ७०० अंतरराष्ट्रीय इकाइयां मिलाते हैं और इस के अतिरिक्त ५६ अंतरराष्ट्रीय इकाइयां विटामिन डी की भी मिलाते हैं।

साधारण आहार में चिकनाई का होना अत्यावश्यक है क्योंकि इस में एक तो उष (कॅलॉरी) अधिक संख्या में होते हैं, दूसरे प्रोटीन की बचत भी होती है। परन्तु हमें अभी तक यह सर्वथा निश्चित ज्ञान नहीं कि शरीर को इस की ठीक ठीक कितनी आवश्यकता है। प्रायः यह उचित होगा कि दैनिक आहार में चिकनाई की मात्रा ४५-६० ग्राम (१.१/२-२ औंस) से कम न हो। भारत में अधिकांश आहारों में चिकनाई (स्नेहों) की मात्रा अति न्यून रहती है।

'डालडा' एक पाकीय स्नेह है जो शुद्ध वानस्पतिक तेलों से, ठीक सर्कारी नियतियों के अनुसार बनाया जाता है। यह उन साधारण खाद्य तेलों का शोधन तथा उदजनन (हाइड्रोजनेशन) कर के तैयार किया जाता है जो यहां प्रति दिन प्रयोग में लाए जाते हैं। इस के प्रत्येक औंस में विटामिन ए की ७०० और विटामिन डी की ५६ अंतरराष्ट्रीय इकाइयाँ मिलाई जाती हैं – जो कि इसी मात्रा में अच्छी श्रेणी के घी में होती हैं। 'डालडा' का द्रवांक निम्न होने के कारण यह शीघ्र पच जाता है। निर्माण का आदर्श इतना ऊंचा रखा जाता है कि 'डालडा' अपने जोड़ की अमरीका, इंग्लैण्ड तथा अन्य युरोपियन देशों की बनी हुई तत्सम कृतियों "शॉर्टनिंग" तथा "मार्गरीन" आदि की तुलना में अच्छा उतरता है। 'डालडा' के प्रत्येक औंस में २५० उष (कॅलॉरी) हैं जो बढ़िया एक औंस घी में और २ औंस गेहूं या चावल में इस से अधिक नहीं पाए जाते। अतएव 'डालडा' सामान्य आहार में अत्यंत बहुमूल्य पौष्टिक वृद्धि करता है।

DL. 311-25 HI

हिंदुस्तान लीवर लिमिटेड, बम्बई

ठाकुरदत्त शर्मा धर्मार्थ ट्रस्ट

आयुर्वेद अनुसन्धान

इस से पहले पारद पर जितना कार्य हुआ वह लिख चुके हैं। उसके पीछे बुभूक्षित करने के यत्न हुए हैं परन्तु अभी तक कृतकार्य नहीं हुए हैं। और जो भस्में बनाई गई थीं वह भी लिखी जा चुकी हैं। उनके अतिरिक्त और जो भस्में बनी हैं उनको भी लिखा जावेगा। इस समय हम कुछ औषधियां जिन का अनुभव किया गया है उन को वैद्यबन्धुओं की जानकारी के वास्ते लिख रहे हैं। कुछ भस्में भी हैं जो कि विशेष रोगों के वास्ते बनाई गईं।

ठाकुरदत्त शर्मा वैद्य

१—रोगनाशक भस्म

फिटकड़ी ३० तो०, संखिया सफेद २ तो० दोनों को खरल में बारीक करके ४ दिन तक आक के पत्तों के रस से और तीन दिन धतूरे के पत्तों के रस से भावना देकर टिकिया बनाई गईं। सूखने पर मिट्टी की हंडिया में भरकर कपड़मिट्टी करके २० सेर उपलों की अग्नि दी गई। सफेद रंग की भस्म तैयार हुई। इसे बारीक पीस लिया गया।

यह भस्म नये पुराने मलेरिया ज्वर में २-२ रत्ती दिन में ३ बार देने से लाभ करती है। अनुपान अर्क गुलाब या अर्क गाजवान बहुत उपयोगी है।

रक्तार्श और वातार्श में तीन तीन रत्ती भस्म प्रातः सायं दही की मलाई से दी गई।

शुक्रमेह, स्वप्नदोष व सोमरोग में ३ रत्ती औषधि रात्रि को मलाई या मक्खन से खिलाई गई।

कासश्वास में तथा बालकों की खांसी व ज्वर में शहद के साथ चटाई गई।

वृक्कशूल तथा आमवात व कफवात जनित शूलों में त्रिफला के पानी से देने पर लाभ करती है।

उक्त विधियों से सैकड़ों रोगियों को देकर लाभकारी अनुभव किया है।

२—मथुरामोती अंजन

जस्तफूल १ पाव मोती छिलका ६ माशा, काली चम्पा २॥ तो०, पीपल १ तो०, काली मिर्च १ तो०, चीनी पत्थर शुद्ध (नये बर्तन का टूटा हुआ टुकड़ा) १ तो०, रेठे के फल का छिलका ६ माशा, खांड़ २॥ माशा, समुद्र झाग २॥ तो०, नोशादर १ तो०, कलमी शोरा १ तो०, शाखमूंगा १ माशा।

पहिले मोती को खरल करके बारीक किया फिर दूसरी सब औषधियां अलग-अलग कूट कर कपड़छान करके जस्त फूल के सिवाय मिला दी गईं और आधी बोतल (६ छटांक) रस नींबू डाल कर दो दिन तक घोटते रहे। बाद में जस्त फूल मिला कर हाथों से भली प्रकार एक जात कर दिया और सूखने को रख दिया गया। सूख जाने पर पीस कर बारीक मलमल से छान कर सुर्मा तैयार किया गया।

इसे आंख की सब प्रकार की बीमारियों में बर्ता गया। मोतिया को भी काटता है ऐसा प्रतीत हुआ। जिन्हें कम दिखता था उन्हें इससे अधिक दिखने लगा। बहुत लाभकारी सिद्ध हुआ है।

२०१५

३—नागभस्म

आधा सेर नाग को कड़ाही में डालकर लाया गया, फिर उसमें कलमी शोरा -चुटकी डालते गये और पीपल के डंडे ते रहे। पीपल का डंडा जितना- जलता गया उसे बाहर झाड़ते रहे। के समान बन जाने पर उतार लिया फिर घीकुमार के रस से घोट कर बनाई और ५ सेर उपलों का अग्नि गई। इस प्रकार ७ बार अग्नि दी गई। में बबूल के पत्तों के रस से ३बार पुट कर पीस कर रख लिया गया।

यह भस्म शीतवीर्य है, पुरुषों के प्रमेह वीर्य विकारों में तथा स्त्रियों के प्रदर व की अधिकता में लाभकारी है। धातु में मक्खन मलाई से, हृदय और की निर्बलता में आँवले के मुरब्बे बहुमूत्र और मधुमेह में शिलाजीत या की गुठली के चूर्ण से, श्वेतप्रदर में के पानी से और रक्त प्रदर में प्रवाल- से रोगियों को दे देकर अनुभव किया और बहुत अधिक लाभकारी पाया है।

४—शिंगरफ भस्म

बीज सत्यानासी सवा सेर में से आधे ५ पौंड वाले डालडा के खाली डब्बे में गये। उनके ऊपर शिंगरफ की ५ तोला डलियां रखी गईं और बाकी बीज ऊपर कर डब्बे को चूल्हे पर चढ़ाया गया और मन्द अग्नि देते रहे। इस प्रकार ७ दिन अग्नि देने पर बीजों का तेल जलता रहा बीज सब कोयला बन गये। बाद में की डलियों को निकाल कर पीस गया।

इस भस्म का कई रोगियों पर अनुभव किया गया। ज्वर की तथा अन्य रोगों की बनी कमजोरी को शीघ्र दूर करती है व शक्तिवर्धक है। ज्वर को भी तोड़ती है ऐसा कुछ रोगियों पर अनुभव हुआ।

५—चर्मरोग नाशक अर्क

कली चूना १० तो०, गंधक डंडा १० तो०, दोनों को अलग अलग कूट कर ४ सेर पानी में मिलाकर औंटाया गया। उबलते उबलते पानी का रंग नारंजी हो गया। ठंडा होने पर शीशी में भरकर रख दिया गया।

इस अर्क को दाद, खुजली, छोटी छोटी फुंसियों व दानों पर रुई से लगाया गया तो अति लाभकारी पाया। अनुभव से यह अर्क भी चर्म रोगों के वास्ते उत्तम कहा जा सकता है। पुराना होकर इसका रंग बदल जाता है।

६—बहुगुणी वटी

रीठे के १ पाव छिलके को कूट कर बारीक किया और इस में २ तोला गेरू भी पीस कर मिला दिया फिर पानी से खरल करके एक एक रत्ती की गोली बनाई गई। यह गोलियां उचित अनुपान से बवासीर, मूत्र-दाह कफ श्वास में लाभ करती है। उपदंश में भी गुणकारी है। प्रातः सायं १-१ गोली खिलाई गई। रोग की अधिकता में ४ गोली भी एक दिन में खिलाई गईं।

७—एकादश चूर्ण

सोंठ-काली मिरच, पीपल, अजमोद, सैंधा नमक, सफेद जीरा, काला जीरा, हींग, हरड़ का छिलका, हल्दी व सोडा बाईकार्ब (खाने का सोडा), हरड़ व हल्दी ४०-४० तो० शेष सब २०-२० तोला। हींग को अलग भून लिया गया, शेष सब औष-धियां कूट कपड़छन करके मिलादी गईं और हींग भी बारीक पीस कर मिलाया गया।

इस प्रकार यह चूर्ण तैयार किया गया। पेट दर्द व वायु की अधिकता, अफारा आदि उदर रोग के रोगियों को प्रातः सायं भोजन के प्रथम ग्रासों के साथ यह चूर्ण २-३ माशा साथ में ४-५ बूंद घी मिलाकर सेवन कराया गया तो बहुत ही लाभकारी पाया है।

८—तूतिया आदि भस्म

नीलाथोथा ५ तोला, पीली कौड़ी १२ तोला, माजूफल मोटे मोटे २ अदद, रीठा २ अदद, सुपारी तेलिया २ अदद, हजारदानी बूटी ताजा १ तोला। सब को मिलाकर मिट्टी की हंडिया में कपड़ मिट्टी करके १० सेर कंडों की अग्नि दी गई। भस्म को पीस कर रख लिया गया।

निमूनिया, पुराना बुखार व अन्य बुखार के रोगियों को वह भस्म १/८ रत्ती से १ रत्ती तक की मात्रा में औषधि के साथ थोड़ी चीनी मिला कर खिलाई, ऊपर से गर्म दूध पिलाया तो बहुत गुणकारी सिद्ध हुई। गम्भीर नासूर व गण्डमाला के रोगियों को मक्खन के साथ खिलाई गई। इस भस्म को खाने वाले रोगी को सारे शरीर पर तेल की मालिश करने का आदेश दिया गया क्योंकि ऐसी विधि से इस औषधि के सेवन में अधिक गुणकारिता देखी गई है।

९—हड़ताल की गोली

शिगरफ रूमी, हड़ताल वर्की, गंधक आंवला सार, संखिया सफेद, मीठा तेलिया' हर्ड का छिलका, बहेड़े का छिलका, आंवला, काली मिरच, सोंठ, पीपल। इन १० औषधियों को १-१ तोला लेकर कूटने योग्य को कूट कर खरल में डाला और अदरक के रस से ३ दिन तक घोट कर १/२ रत्ती के प्रमाण से गोली बना ली गई। यह गोलियां वात रोगों व कफ रोगों में लाभ करती हैं। नपुंसक, कमजोर वृद्ध पुरुषों को भी शक्तिदायक हैं। अनुभव से यह गोलियां पूर्वोक्त रोगों में सन्तोषजनक गुण दिखाती पाई गई हैं।

१०—शीतली

गेरू की डलियां १ सेर को पीस कर पत्थर के बड़े बर्तन में रखा गया और १ पाव आंवले को लगभग २ पाव पानी में रात्री भर भिगो, सुबह पानी को निथार कर गेरू में मिला दिया गया, प्रथम पानी के सूखने पर पुनः इसी प्रकार १ पाव आंवले से पानी तैयार कर डाल दिया गया। इस रीति से २१ बार पानी डाला गया। बाद में सूखने पर औषध को पीस कर रख लिया।

सुजाक, अर्श, रक्तपित्त, नेत्र की लाली, अग्निदाह, मूत्रदाह. हाथ पांव का पसीना व जलन, सिर का घूमना, पीलिया आदि पित्त विकार के रोगियों को यह औषधि २ रत्ती से चार रत्ती तक की मात्रा में ताजा जल के साथ दी गई और अत्यन्त गुणकारी पाया है।

११—नाग भस्म

१ सेर सीसा को कूट कर बारीक बारीक टुकड़े किये गये और घीकुमार के रस से लथपथ करके मिट्टी के बर्तन में सम्पुट बना २ सेर कंडों की अग्नि दी गई। इस प्रकार ६ पुट के बाद जब नाग चूरा होने लगा तो घीकुमार के रस से टिकिया बना बना कर पुट देते रहे। इस प्रकार कुल १०१ पुट दिये गये और भस्म को पीस कर शीशी में रख लिया गया।

पुरुषों के वीर्य विकारों में तथा स्त्रियों के सभी प्रकार के प्रदरों में यह भस्म १-१ रत्ती मात्रा से मक्खन या मलाई के साथ प्रयोग कराया गया और अत्यन्त लाभकारी प्रतीत हुआ।

१०१ पुट इस वास्ते दिये गये कि एक रस ग्रन्थ में लिखा है कि १०१ पुट देकर इसको ताम्र पर डालने से ताम्र रंगा जाता है परन्तु यह ठीक नहीं सिद्ध हुआ।

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन की स्थायीसमिति के अधिवेशन का कार्यविवरण

विशेष—स्थायी समिति का यह अधिवेशन आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका के जून तीय अंक के पृष्ठ ३४१-३४३ पर प्रकाशित एजण्डा के अनुसार २ जुलाई १९५८ को कत्ता में सम्पन्न होना निश्चित हुआ था किन्तु आवश्यक कार्यनिर्वाहक उपस्थिति (कोरम) अभाव में उस दिन सम्पन्न नहीं हो सका। अतः महासम्मेलन विधान की धारा १४—ङ अनुसार वह अधिवेशन स्थगित किया गया और पुनः श्री यामिनि भूषण अष्टांग आयुर्वेद विद्यालय, १७०, राजा दिनेन्द्र स्ट्रीट, कलकत्ता-४, में ही १७ जुलाई १९५८ को राह्न में २ बजे से किया जाना निश्चित हुआ और तदुपरान्त तदनुसार सम्पन्न भी हुआ। उक्त स्थगित अधिवेशन का कार्यविवरण है।

न—श्री यामिनि भूषण अष्टांग आयुर्वेद महाविद्यालय, १७०, राजा दिनेन्द्र स्ट्रीट, कलकत्ता-४।

य—ता० १७ जुलाई १९५८, बृहस्पतिवार, अपराह्न २ बजे से।

स्थिति—

१—वैद्य श्री अनन्त त्रिपाठी शर्मा, महासम्मेलनाध्यक्ष, २—सर्वश्री कविराज चन्द्र मलिक, कलकत्ता, ३—सुखरामप्रसाद, पटना, ४—हरिवक्ष जोशी, कलकत्ता, —बी० डी० सुगन्ध, कलकत्ता, ६—आशुतोष मजूमदार, दिल्ली, ७—प्यारेलाल शर्मा, कत्ता, ८—कैलाशचन्द्र अग्रवाल, दिल्ली, ९—त्रिपाठी कमलाप्रसाद मणि, पटना, १०—यालु तिवारी, नागपुर, ११—शिवकरण शर्मा छांगाणी, नागपुर, १२—कालीदास ध्याय, कलकत्ता, १३—शैलेन्द्रचन्द्र चौधरी, कलकत्ता, १४—रवीन्द्रदेव भट्टाचार्य कत्ता, १५—प्रभाकर चटर्जी, कलकत्ता, १६—लक्ष्मीकान्त पाण्डे, कलकत्ता, १७—गोपाल गोस्वामी, कलकत्ता, १८—विजयकाली भट्टाचार्य, कलकत्ता, १९—मणीन्द्रलाल गुप्ता, कलकत्ता, २०—अतुलबिहारी दत्त, कलकत्ता, २१—किशोरीमोहनदास, कलकत्ता, —जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल, प्रयाग, २३—सीताराम मिश्र, जयपुर, २४—वामनराव नाथ, बम्बई।

तिपत्र प्रेषक—

निम्नलिखित महानुभावों की ओर से सम्मतिपत्र प्राप्त हुए—

सर्वश्री वी० बी० नटराज शास्त्री—विद्यापीठाध्यक्ष, तिरुचिरापल्ली। गयाप्रसाद शास्त्री, बाद। एन० वी० उपाध्याय, मंगलौर। सीताराम शास्त्री, हेलंगादी। मोहनलाल शास्त्री, ी। स्वामी चेतनानन्द चिदाकाशी, दिल्ली। वैद्यनाथ मिश्र, मुजफ्फरपुर। महावीरप्रसाद बम्बई। रामदुलारे त्रिपाठी, हरदा। ब्रह्मदत्त शास्त्री, भुसावल। हरदयाल, अमृतसर। प्रसाद शर्मा, नागपुर। रामस्वरूप कौशिक, जीरा फिरोजपुर। नानकचन्द शास्त्री,

दिल्ली । विरंचिलाल, इस्लामपुर । लालमणि मिश्र शास्त्री, मोदहा । नटवरप्रसाद नारायण शंकर, अहमदाबाद । आई० वी० शर्मा, विजयवाड़ा । नारायणदत्त शास्त्री, इन्दौर । धर्मदत्त चौधरी, खन्ना । आचार्य नित्यानन्द, पिलानी । दत्तात्रेय शास्त्री जलूकर, नसीराबाद । ठाकुरदत्त शर्मा, देहरादून । गोस्वामी पुरुषोत्तमलाल, जबलपुर । जनार्दन शर्मा, रायगढ़ । केसरीलाल व्यास, उज्जैन । त्रिकमलाल जे० रावल, बम्बई । शम्भूनाथ पाण्डेय शास्त्री, कानपुर । सरयूकान्त झा शास्त्री, धरहरा, मुजफ्फरपुर । पूर्णानन्द शास्त्री, श्री माधोपुर । एम० वेंकट शास्त्री, विजयवाड़ा । ओंकारनाथ लाटा, सरदार शहर । शिवशंकर उपाध्याय, लहरिया सराय ।

कार्यविवरण

महासम्मेलनाध्यक्ष श्री पं० अनन्त त्रिपाठी शर्मा जी के सभापतित्व में कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ—

१—स्थायी-समिति के गताधिवेशन का कार्य विवरण, जो आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका के मई मासीय अंक में प्रकाशित हो चुका है, पढ़कर सुनाया गया और कुछ चर्चा के अनन्तर सर्वसम्मति से स्वीकार हुआ ।

२—नवीन सदस्यता स्वीकृति का विषय उपस्थित हुआ और निम्नलिखित महानुभावों की सदस्यता सर्वसम्मति से स्वीकार हुई—

(क) आश्रयदाता सदस्यता—

१—वैद्य श्री भंवरलाल दूंगड़, सरदार शहर ।
२—वैद्य श्री अनन्तराज, उज्जैन ।

(ख) आजीवन सदस्यता—

१—श्री तुलजाराम शास्त्री, हैदराबाद ।
२—श्री जयभगवान शर्मा, खुरजा ।
३—श्री लज्जाराम शर्मा, दिल्ली ।
४—श्री जयदेव जैन, हिसार ।
५—श्री शिवकुमार जीवराम व्यास, गोंडल ।
६—सुश्री मोहनकौर सरीन, श्री गंगानगर ।
७—श्री शंकरलाल भेड़ा, बम्बई ।
८—श्री रामभूषण शर्मा, आगरा ।
९—श्री शिवरंजन सेन, कलकत्ता ।
१०—श्री वेणीप्रसाद, कलकत्ता ।

(ग) मान्य सदस्यता—उन सभी महानुभावों, जिनका कि सदस्यता शुल्क ५ रु० तथा विधिवत् पूरित सदस्यता आवेदन पत्र कार्यालय में ता० १७-७-५८ तक प्राप्त हो चुका है, की मान्य सदस्यता स्वीकार हुई ।

कविराज श्री आशुतोष मजुमदार तथा कविराज श्री कैलाशचन्द्र अग्रवाल दिल्ली ने प्रधान जी से स्पष्टीकरण के रूप में पूछा कि जो मान्य सदस्य अपना शुल्क ३० जून १९५८ तक दे चुके हैं उनकी सदस्यता कब से स्वीकृत मानी जायेगी, ३० जून से अथवा से क्योंकि नियम इस विषय में स्पष्ट नहीं है। कुछ विचार विमर्श के अनन्तर निश्चय कि जिन मान्य सदस्यताभिलाषियों की ओर से निश्चित शुल्क और ठीक प्रकार पूरित स्यता आवेदनपत्र ३० जून १९५८ तक कार्यालय में पहुँच चुके हैं उन्हें ३० जून १९५८ ही मान्य सदस्य समझा जाय।

१—दिल्ली में विद्यापीठ के प्रस्तावित आयुर्वेद महाविद्यालय की स्थापना के विषय पर तदर्थ समिति के ता० ११-६-५८ के अधिवेशन की सिफारिशों पर विचार का विषय उपस्थित हुआ और उन्हें निम्नलिखित रूप में सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया—

१—संस्था का नाम 'आयुर्वेद विद्यापीठ महाविद्यालय' रक्खा जाय और नाम के नीचे कोष्ठ में 'अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन द्वारा संस्थापित एवं संचालित' ऐसा होना लिखा जाय।

२—इस संस्था पर महासम्मेलन का सीधा अधिकार होगा।

३—महासम्मेलन (महासम्मेलन की स्थायी समिति एवं विद्यापीठ की केन्द्रीय प्रबन्धक समिति) इस संस्था के संचालनार्थ एक गवर्निंग बाडी का निर्माण करेगा जिनमें अधिकांशतः स्थानीय वैद्य तथा कुछ बाहर के सदस्य होंगे।

४—यह संस्था जाति तथा धर्म का विचार किये बिना भारत के प्रत्येक नागरिक के लिए तथा अन्य देश वालों के लिए भी (यदि कोई हों) खुली रहेगी।

५—प्रारम्भ में विद्यापीठ के प्रचलित पाठ्यक्रम का अनुसरण किया जायगा।

६—विद्यापीठ के प्रचलित पाठ्यक्रम के अतिरिक्त शरीर रचना, शरीर-क्रिया विज्ञान, प्रसूति-तन्त्र और शल्यतन्त्र की सैद्धांतिक और क्रियात्मक शिक्षा के लिए नवीन चिकित्सा-तन्त्र से आयुर्वेद सिद्धांतानुसार आवश्यक सहायता ली जावेगी।

७—इस संस्था में प्रारम्भ में विशारद और आचार्य की संस्कृत और हिन्दी भाषा में शिक्षा दी जायगी।

८—इस संस्था के लिए निम्नलिखित कर्मचारियों की आवश्यकता होगी—

—आयुर्वेद महाविद्यालय

पद	संख्या	वेतन प्रतिमास प्रति व्यक्ति
प्रिंसिपल	१	३००—००
अध्यापक (लेक्चरर)	५	१५०—००
डिमान्सट्रेटर	५	१००—००

२—कार्यालय

क्लर्क-कम-टाइपिस्ट	१	१५०—००
कैशियर-कम-अकाउण्टेण्ट	१	१५०—००

३—अस्पताल अन्तर्द्वारिक

जिसमें स्त्री रोगियों सहित २४ शैयायें होंगी।

सुपरिण्टेण्डेण्ट	१	सुपरिंटेंडेण्ट प्रिंसिपल ही होगा जिसके लिए उसे ५० रु० मासिक भत्ता दिया जायगा।
डिप्टी सुपरिंटेंडेण्ट	१	२५०.००
बार्ड बायेज	५	६०.००
नर्सें	३	१००.००
कम्पाउन्डर्ज	२	७५.००
स्वीपर	२	५०.००
चपड़ासी	१	५०.००
रसोइया	१	६०.००
सेवक	१	३०.००
माली	१	५०.००
लेखक	१	१२५.००

४—अस्पताल बहिर्द्वारिक

अन्तर्द्वारिक अस्पताल का डिप्टी सुपरिंटेंडेन्ट ही बहिर्द्वारिक अस्पताल का इन्चार्ज होगा।

५—आयुर्वेदिक फार्मेसी

औषध-निर्माता	१	७५.००
औषध कूटने वाले	२	५०.००

९. उपर्युक्त योजना को क्रियान्वित करने के लिए निम्नलिखित सदस्यों की एक प्रबन्धक समिति बनाई जायगी—

१—कविराज श्री उपेन्द्रनाथ जी दास, दिल्ली।
२—कविराज श्री वैद्यनाथ सरकार, दिल्ली।
३—वैद्य श्री ओंकार प्रसाद शर्मा, दिल्ली।
४—कविराज श्री कैलाशचन्द्र अग्रवाल, दिल्ली।
५—वैद्य श्री शिवनाथ शर्मा, दिल्ली।
६—कविराज श्री आशुतोष मजुमदार, दिल्ली।
७—कविराज श्री शान्ति प्रसाद जैन, दिल्ली।
८—वैद्य श्री जयराम दास स्वामी, जयपुर।
९—वैद्य श्री रामनारायण शर्मा, झाँसी।

१०—श्री महासम्मेलनाध्यक्ष, पदेन ।
११—श्री विद्यापीठाध्यक्ष, पदेन ।
१२—श्री महासम्मेलन प्रधानमन्त्री, पदेन ।
१३—प्रस्तावित महाविद्यालय के प्रिन्सिपल, पदेन ।
१४—श्री विद्यापीठ मन्त्री, पदेन ।

१०. इस प्रबन्धक समिति के निम्नलिखित कार्य होंगे :—

(१) इस समिति का कार्यकाल कम से कम ५ वर्ष का होगा ।

(२) यह समिति अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन द्वारा निर्धारित नीति के अनुसार विद्यालय की दैनिक प्रबन्ध-व्यवस्था के लिए उत्तरदायी होंगी ।

(३) यह समिति महासम्मेलन की ओर से इस संस्था के लिए जनता से और महासम्मेलन द्वारा संस्था के लिए स्वीकृत धनराशि को, महासम्मेलन से प्राप्त करेगी । यह समिति महासम्मेलन की ओर से संस्था के बैंक खाते का संचालन भी करेगी ।

(४) इस समिति की सिफारिशों पर संस्था के कर्मचारियों की नियुक्ति अथवा वियुक्ति महासम्मेलन करेगा ।

(५) यदि आवश्यक होगा तो ५ वर्ष के पश्चात् जब कभी भी महासम्मेलन द्वारा गर्वनिंग बाड़ी का निर्माण किया जायगा तो इस समिति के सदस्यों को उस गर्वनिंग बाड़ी में सम्मिलित कर लिया जायगा ।

(६) इस समिति के संयोजक विद्यापीठ-मन्त्री होंगे ।

११. संस्था के कार्यारम्भ के लिए ५००० रुपया स्वीकार किए जायें । संस्था के नार्थ १५००० रुपया की स्वीकृति का विषय आगामी महासम्मेलन के खुले अधिवेशन पा जाय ।

१२. यह समिति महासम्मेलनाध्यक्ष से सिफारिश करती है कि यदि एक या दो के अन्दर कार्य प्रारम्भ करने का उन्हें आश्वासन दिया जाय तो संस्था को आरम्भ के लिए ५००० रु० प्रदान करें ।

विशेष—विद्यालय स्थापना उपसमिति की १२ प्रस्तावित सिफारिशों पर क्रमशः विचार । विचार-विमर्श के अनन्तर वे सिफारिशें कुछ परिवर्तनों के साथ उपर्युक्त रूप में सर्व ति से स्वीकार हुईं । विचार-विमर्श के समय धारा ९ में प्रबन्धक समिति का संगठन भारत ी प्रदेशों से लिए गए २५ सदस्यों द्वारा निश्चित करने के लिए एक प्रस्ताव आयुर्वेद पंचा- श्री पं० जगन्नाथ प्रसाद जी शुक्ल, प्रयाग, ने प्रस्तुत किया जिसका अनुमोदन श्री शिवकरण ोंगाणी, नागपुर, तथा समर्थन श्री दीनदयालु जी तिवारी, नागपुर, ने किया । बाद में ने अपना प्रस्ताव स्वयं वापिस ले लिया । धारा सं० १०-४ में "महासम्मेलन" शब्द के पूर्व पीठ के परामर्श से" तथा धारा सं० १०-५ में "महासम्मेलन" शब्द के पश्चात् "महासम्मे- ायी समिति एवं विद्यापीठ की केन्द्रीय प्रबन्धक समिति" इन शब्दों को कोष्ठ में रक्खे

जाने के संशोधन कविराज श्री आशुतोष मजुमदार, दिल्ली, ने प्रस्तुत किए, परन्तु कुछ सदस्यों के कहने पर बाद में इन्हें वापिस ले लिया। धारा १२ पर विचार के समय कविराज श्री प्रभाकर चटर्जी, कलकत्ता, ने कहा कि प्रस्तावित ५००० रु० महाविद्यालय के निर्माण के लिए भूमि के महासम्मेलन के नाम में रजिस्टर्ड हो जाने के उपरान्त दिये जायं। कुछ अन्य सदस्यों ने इस विचार का समर्थन किया। तदुपरान्त कविराज श्री कैलाशचन्द्र अग्रवाल, दिल्ली, ने सभा को विश्वास रखने के लिए कहा और बताया कि कोई ऐसा प्रतिबन्ध कार्य में बाधक होगा। तदुपरान्त उनके और कुछ अन्य सदस्यों के आग्रह पर कविराज श्री प्रभाकर चटर्जी, कलकत्ता, ने अपना प्रस्तावित संशोधन वापिस ले लिया। विद्यालय-स्थापना उपसमिति की सिफारिशों पर विचार के समय विद्यापीठमन्त्री श्री सीताराम मिश्र जी ने प्रसंगवशात् "आज भी श्री रामनारायण शर्मा जी के बहुत लोग उपस्थित रहे हैं" यह वाक्य प्रयुक्त किया किन्तु श्री महासम्मेलनाध्यक्ष जी के निर्देश पर उन्होंने इसका प्रत्याहार कर लिया।

मिश्रित विषय—(क) महासम्मेलन कार्यालय के लिए एक स्टैण्डर्ड हिन्दी टाइपराइटर की आवश्यकता और उसके खरीदे जाने की स्वीकृति का विषय कार्यालय की ओर से विचारार्थ उपस्थित किया गया। निश्चय हुआ कि यह टाइप राइटर खरीद लिया जाय और एतदर्थ आवश्यक धन के व्यय की स्वीकृति का अधिकार श्री महासम्मेलनाध्यक्ष जी को दिया जाय।

(ख) श्री इन्द्रप्रस्थीय वैद्य सभा, दिल्ली, के पत्र ता० १५-७-५८ में स्थायी-समिति की सभाओं के आयोजन के सम्बन्ध में दिए गए सुझावों पर विचार हुआ तथा निश्चय हुआ कि इन सुझावों को नियमावलि संशोधन समिति के पास विचारार्थ भेज दिया जाय।

(ग) निश्चय हुआ कि नियमावलि संशोधन समिति में दो और सदस्यों—वैद्य श्री गुरुदत्त तथा श्री आशुतोष मजुमदार, नई दिल्ली, को समाविष्ट किया जाय।

(घ) वैद्य श्री लक्ष्मीकान्त पाण्डेय, कलकत्ता, के विगत विद्यापीठ सभापति-चुनाव के विषय पर आवेदन-पत्र ता० १७-७-५८ पर विचार हुआ। निश्चय हुआ कि यह चुनाव निरर्थक और शून्य घोषित नहीं किया जा सकता क्योंकि कोई हेतु विद्यमान नहीं तथा आवेदक को न्यायालय में न जाने का अनुरोध किया जाता है।

(ङ) बंगाल प्रान्तीय आयुर्वेद महामण्डल के विषय पर कविराज श्री विजयकाली भट्टाचार्य, कलकत्ता, तथा अन्यों के पत्र ता० १७-७-५८ पर विचार हुआ तथा निश्चय हुआ कि श्री महासम्मेलनाध्यक्ष जी को विषय में पूर्ण जांच करने तथा इसे तय करने का अधिकार दिया जाय।

(च) उपर्युक्त प्रस्ताव (ङ) की स्वीकृति के तुरन्त पश्चात् कविराज श्री सुखराम प्रसाद जी, पटना, ने बिहार प्रान्त में भी दो वैद्य सम्मेलनों के चलने और उससे वैद्यों में वैमनस्य बढ़ जाने, एवं इस झगड़े को निपटाने के विषय पर श्री सभापति जी को पत्र दिया।

भी निश्चय हुआ कि श्री महासम्मेलनाध्यक्ष जी को विषय पर विचार करने और करने का अधिकार दिया जाय।

(छ) अन्त में श्री सभापति जी द्वारा निम्नलिखित प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया जो म्मति से स्वीकार हुआ।

"बंगीय संयुक्त आयुर्वेद उत्थान समिति, आयुर्वेद को बंगाल में मान्यता प्रदान के लिए बंगीय प्रादेशिक सरकार के प्रति जो आन्दोलन कर रही है, अखिल भारतीय वेंद महासम्मेलन की स्थायी समिति की यह बैठक सर्वान्तःकरण से इसका समर्थन है और साथ ही यह आश्वासन दिलाती है कि यदि सरकार द्वारा अनुकूल परिस्थिति तो महासम्मेलन संयुक्त आयुर्वेद उत्थान समिति के इस आन्दोलन को और भी करने के लिए सदैव सहयोग प्रदान करता रहेगा।"

(ज) श्री शिवकरण छांगाणी तथा श्री दीनदयालु तिवारी, नागपुर, ने स्थायी-ति का आगामी अधिवेशन नागपुर में रखने का आमंत्रण दिया जिसे श्री अध्यक्ष महोदय न्यवाद पूर्वक स्वीकार किया।

समागत वैद्य बन्धुओं एवं श्री यामिनी भूषण अष्टांग आयुर्वेद महाविद्यालय के ट्रस्टियों, पल' महोदय एवं स्टाफ तथा श्री अध्यक्ष जी का धन्यवाद करके अत्यन्त सद्भावना वातावरण में सायं ७ बजे सभा विसर्जित हुई।

वामनराव दीनानाथ वैद्य
प्रधानमन्त्री

महर्षि चरक का अपूर्व योग
* ब्राह्म-रसायन *
मानसिक शक्ति, स्फूर्ति, उत्साह, बुद्धि, स्मृति, ओज
एवं दीर्घायुष्य प्राप्ति के लिए
अत्युत्तम कल्प है।
नवशक्ति आयुर्वेदालय (प्रा॰) लि॰
भुसावल - जबलपुर - नागपुर

शुद्ध एवं शास्त्रोक्त आयुर्वेदीय
औषधियां

शुद्ध एवं उत्तम शास्त्रोक्त विधि से बनी आयुर्वेदिक औषधियां रस, भस्में, वटी, अवलेह, पाक, चूर्ण, घृत, कूपीपक्व रस तथा खनिज द्रव्य, वज्राभ्रक, मुक्ता, शंख, सीप, स्वर्ण माक्षिक, प्रवाल, शुद्ध शिलाजीत, केशर, कस्तूरी, अम्बर व दुर्लभ वनस्पतिवर्ग जैसे अष्ट वर्ग, प्रियंगु, सर्पगन्धा, त्रायमाण आदि खरीदते समय निम्न पते पर पत्र व्यवहार अवश्य करें।

विशेष जानकारी के लिये वृहद सूचीपत्र मंगवायें।

हमारी औषधियों का व्यवहार कर आप सदैव के लिये हमारे स्थाई ग्राहक बन जायेंगे।

देशरक्षक औषधालय

कनखल (हरिद्वार)

यू० पी०

आयुर्वेद लोक

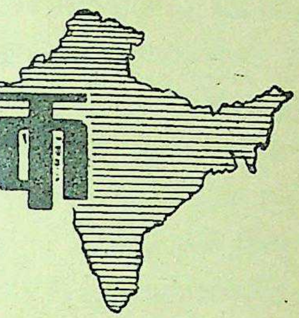

हिमाचल आयुर्वेद सम्मेलन का अधिवेशन सम्पन्न

अनेक महत्वपूर्ण प्रस्ताव पारित

हिमाचल आयुर्वेद सम्मेलन के पंचम क अधिवेशन का समारोह आर्य समाज र शिमला में दिनांक ५ व ६ जुलाई ५८ आयुर्वेद पंचानन पं० जगन्नाथप्रसाद शुक्ल, प्रयाग, की अध्यक्षता में सम्पन्न । लोक सभा के माननीय अध्यक्ष श्री न्तशयनम् आयंगर ने अधिवेशन का उद्- न किया। इन के अतिरिक्त सुदूरपूर्व आये हुये माननीय अतिथियों में श्री एस० बोस, आचार्य, डी० ए० वी० आयुर्वेदिक , जालन्धर, श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र, र्य आयुर्वेदिक कालेज, मेरठ, श्री ठाकुर- शर्मा, अमृतधारा देहरादून, श्री धर्म- स्तूरी, देहरादून, स्वामी श्री संतोषा- , पंजाब, कण्डाघाट वैद्य मण्डल के सदस्य हिमाचल के चम्बा, मण्डी, सिरमौर, और शिमला के स्थानीय विद्वत गण शन में भारी संख्या में उपस्थित थे।

अधिवेशन का प्रारम्भ राष्ट्रीय गीत हुआ। तत्पश्चात् सम्मेलन मन्त्री श्री ने लोकसभा के अध्यक्ष महोदय को न पत्र भेंट किया। श्री पद्मदेव पी० स्वागताध्यक्ष ने उपस्थित प्रति- ों का स्वागत करते हुए कहा कि हम यहाँ पर एक महान् उद्देश्य के लिये इकट्ठा हुये हैं। हमारा उद्देश्य संसार में जन-स्वास्थ्य की उन्नति करना है। आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति का विकास जनहित के हेतु आवश्यक है परन्तु जो राजकीय प्रोत्साहन इस पद्धति को मिलना चाहिये था वह प्राप्त नहीं।

श्री अनन्तशयनम् आयंगर अध्यक्ष लोक सभा ने अपने प्रारम्भिक उद्घाटन भाषण में कहा कि रामायण काल में जब श्री हनुमान जी मूर्छित लक्ष्मण जी के लिये संजीवनी बूटी लाये थे तो वह बूटी इसी उत्तराखण्ड से गई थी। अब भी यह प्रदेश दिव्य औषधियों का भारी कोष है। उसमें उनके अन्वेषण तथा प्रयोग की आवश्यकता है। जो भी औषध हमारे सामने अच्छे-अच्छे पैकटों में आती हैं वह सब वनस्पति व खनिज द्रव्यों से ही बनती हैं। उन्होंने अन्वेषण की ओर विशेष बल दिया और कहा कि जामनगर जैसी अन्वेषण शालाओं की स्थापना कई प्रान्तों में होनी चाहिये। इतने बड़े देश के लिये एक ही प्रयोगशाला अपर्याप्त है। मैं यह मानता हूँ कि आयुर्वेद के विकास के लिये जो सहायता सरकार से मिल रही है वह बड़ी कम है तथा यह भी परमावश्यक है कि केन्द्र में एक आयु-

वेंद परिषद बननी चाहिये जिससे कि सरकार को समुचित परामर्श प्राप्त हो। मैं यह भी मानता हूँ कि आयुर्वेद विभाग स्वतन्त्र आयुर्वेद के विद्वानों की ही अध्यक्षता में संचालित होना चाहिये। उन्होंने कहा चरक जैसे प्राचीन ग्रन्थों में हजारों वर्ष की अनुभूत और प्रशस्त औषधियों का पूर्ण उल्लेख मिलता है जिसका आधुनिक नवीन चिकित्सक तय कर पाये हैं। अन्त में उन्होंने कहा कि मैं देश में आयुर्वेद की उन्नति व प्रगति देखना चाहता हूँ इसके लिये जो भी आवश्यक सहयोग मुझ से अपेक्षित है पूर्णतया आप लोगों के सर्वदा साथ है। आप मिलकर गम्भीरता से विचार के पश्चात् प्रस्ताव द्वारा सरकार से मांग करें। मैं उसका यथासम्भव लोक सभा में समर्थन कराऊँगा। मेरी शुभ कामनाएँ इस अधिवेशन के साथ हैं और मैं सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष श्री पण्डित पद्मदेव जी का व स्वागतमन्त्री श्री भीमदत्त जी तथा कार्यकारिणी के सदस्य महानुभावों का हार्दिक धन्यवाद करता हूँ कि उन्होंने मुझे इस अवसर पर आमन्त्रित करके उद्घाटन का मान दिया है। आयुर्वेद अवश्य एक दिन राष्ट्र चिकित्सा पद्धति बन कर रहेगा यही मेरी कामना है।

सभापति श्री जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल जी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि आयुर्वेद एक बड़ा गूढ़ विज्ञान है। इसके आठ अंग हैं जो सोलह उपांगों में विभक्त हैं। इसके अन्तर्गत संसार का समस्त चिकित्सा विज्ञान निहित है। कोई भी जो आधुनिक नवीन चिकित्सा प्रणाली प्रचलित है षोडश उपांगों से पृथक् नहीं है। उसको ठीक तरह समझना क्रियान्वित करना हमारा कर्तव्य है। अपने ज्ञान की न्यूनता से हम अपने शास्त्रों को अधूरा समझते हैं।

भेषज निर्माण सम्मेलन श्री एस० एन० बोस आचार्य डी० ए०वी० कालिज जालन्धर की अध्यक्षता में समारम्भ हुआ।

आचार्य जी ने अपने भाषण में औषधिय के निर्माण का उल्लेख करते हुये कहा कि हमारा चिकित्सा संसार में औषध ही हथियार है। इसलिये उसका विशुद्ध तथा शास्त्रोक्त निर्माण ही चिकित्सा को सफल बना सकता है। उन्होंने वनस्पतियों की चर्चा करते हुये कहा कि वह पूर्ण रसवीर्य सम्पन्न होनी चाहिये। उसके बाद दिनांक रविवार ६ जुलाई को प्रातः ९ बजे से एक बजे तक दूर-दूर से आये हुये लगभग ३५ रोगियों का

यूनानी, आयुर्वेदीय वनौषधि और खनिज द्रव्य सस्ते मूल्य पर शुद्ध व उत्तम

हमारी दुकान से दुर्लभ केसर, कस्तूरी, विविध प्रकार की काष्ठौषधि, मुक्ता, सीप, शंख, शुद्ध शिलाजीत, सुवर्ण-माक्षिक, प्रवाल, पारद, गंधक आदि सब प्रकार के खनिज तथा वनौषधि द्रव्य थोक व परचून भाव पर प्राप्य

हमारी विशेषता-वास्तविक और शुद्ध सामान

विस्तृत विवरण के लिए पत्रव्यवहार करें और बड़ा सूचीपत्र मंगवायें।

तार का पता : आयुर्वेद फोन : ३१७६६

पता : शा० जादवजी लालूभाई एण्ड को०
२४५, कालबादेवी रोड़, बम्बई।

षण किया गया जो क्लिष्टतम रोगों से थे। दिन के खुले अधिवेशन में शुक्ल जी ध्यक्षता में निम्न प्रस्तावों द्वारा सरकार मांग की गई।

श्री ठाकुरदत्त जी अमृतधारा वालों ने णा की कि कैंसर रोग पर अगले वर्ष लिए लेख मंगवाने चाहिएं। जो लोग इस समुचित लेख लिखें उनको इस संस्था प्रथम लेख पर पारितोषिक देना चाहिए। ने यह घोषणा अपने चिकित्सा सम्मेलन अध्यक्षीय भाषण में की। आपने कहा कि है एक कछुआ की भाँति फैलने वाला रोग । इस पर अभी तक ठीक-ठीक अन्वेषण नहीं हुआ फिर भी हीरा भस्म वा भिलावा का प्रयोग ठीक समझा जाता है।

इस सम्मेलन में कई एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुए। एक प्रस्ताव द्वारा सरकार से अनुरोध किया गया कि आयुर्वेद की उन्नति के लिए केन्द्र में आयुर्वेद परिषद् की शीघ्रातिशीघ्र स्थापना की जाय। इसके साथ ही केन्द्र में औषध-निर्माण समिति स्थापित करने की मांग की गई।

एक अन्य प्रस्ताव द्वारा राज्य तथा केन्द्रीय सरकार से अनुरोध किया गया कि सरकारी कर्मचारियों को आयुर्वेदिक औषधियों का व्यय वैसे ही मिलना चाहिए जैसे एलोपैथिक औषधालयों को मिलता है। अन्य महत्वपूर्ण प्रस्ताव जो इस सम्मेलन बहुमत से पास किये गये वे निम्न हैं—

हिमाचल प्रदेश आयुर्वेद सम्मेलन का यह अधिवेशन भारतीय सरकार से आग्रह-पूर्ण प्रार्थना करता है कि केन्द्रीय तथा प्रान्तीय राज्यों में स्वतन्त्र रूप से आयुर्वेदिक संचालकों की नियुक्ति की जावे ताकि आयुर्वेद की उन्नति में नित्यप्रति आने वाली बाधाओं तथा कठिनाइयों को यथोचित तथा सुचारु रूप से दूर किया जावे।

हिमाचल आयुर्वेद सम्मेलन का यह अधिवेशन केन्द्र तथा हिमाचल सरकार से सानुरोध मांग करता है कि आयुर्वेद विभाग स्वतन्त्र आयुर्वेद के ही संचालकों की अध्यक्षता में चालू हो जैसा कि पंजाब आदि राज्यों में है। इससे यह विभाग समुचित रूप से प्रगति कर सकेगा और सर्व प्रकार की विकास योजनाएं कार्यान्वित होंगी।

हिमाचल आयुर्वेद सम्मेलन का यह अधिवेशन हिमाचल सरकार से सानुरोध प्रार्थना करता है कि हिमाचल आयुर्वेदिक चिकित्सालयों में रोगी निवास (Indoor Ward) का तथा कर्मचारियों के निवास (Staff Quarters) का शीघ्रातिशीघ्र प्रवन्ध किया जावे तथा प्रत्येक जिला स्तर (District Level) पर अन्तरङ्ग चिकित्सालयां (Indoor Ayurvedic Hospitals) की स्थापना की जाए।

हिमाचल आ० सम्मेलन का यह अधिवेशन भारतीय सरकार के उस विलम्ब पर

कन्याओं को आयुर्वेद

कन्या गुरुकुल हरिद्वार के स्वस्थ पवित्र वातावरण में हिन्दी संस्कृत तथा वैदिक वाङ्मय की परमोच्च परीक्षाओं की व्यवस्था के साथ अष्टांग आयुर्वेद की आचार्य श्रेणी पर्यन्त कन्याओं को शिक्षा दिलाने के निमित्त प्रवेशार्थ नियम विवरण जानने के लिये आवेदन कीजिये।

आचार्या चन्द्रादेवी शास्त्री
कन्या गुरुकुल, हरद्वार, कनखल।

खेद प्रकट करता है कि जहां हिमाचल के अन्य सभी विभागों के केडर की स्वीकृति आज से १० वर्ष पूर्व हो चुकी है Ayurvedic Cadre की नहीं हुई जिस कारण आयुर्वेद स्टाफ की Confirmation तथा पेन्शन बाकी है। अतः सानुरोध मांग है कि with retrospective effect आयुर्वेद Cadre की स्वीकृति हो जावे जिससे कर्मचारियों की नौकरियां सुरक्षित हो सकें।

आयुर्वेद का विश्वव्यापी प्रभाव और विषद रूप प्रदर्शित करने के लिए यह आवश्यक है कि आयुर्वेद चिकित्सा के अष्टाङ्गों के सहित उसके विज्ञान और कला से सम्बन्धित आठो अंगों को अङ्ग रूप में स्वीकार कर उसके षोडशाङ्ग की घोषणा की जाय अर्थात् शिक्षण-क्रम के विषय १. स्वास्थ्य विभाग २. शरीर विभाग ३. द्रव्यगुण विज्ञान ४. आयुर्वेद के आधारभूत सिद्धान्त ५. शरीर शोधन शास्त्र ६. औषध निर्माण शास्त्र ७. रस विज्ञान ८. आयुर्वेद के क्रम-विकास का इतिहास विषयों को अंगरूप में स्वीकार कर षोडशाङ्ग आयुर्वेद की घोषणा हो।

हिमाचल प्रदेशीय वैद्यसम्मेलन का यह अधिवेशन पंजाब सरकार से अनुरोध करता है कि आयुर्वेद के विकास की दृष्टि से यह आवश्यक है कि कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय तथा पंजाब विश्वविद्यालय के अन्तर्गत आयुर्वेद फैकल्टी का निर्माण किया जावे जिसके आधीन प्रदेश के समस्त आयुर्वेद कालिज हों। वहां पर समान प्रवेश योग्यता, समान उपाधि तथा समान पाठ्यक्रम निश्चित किया जावे। इसी दृष्टिकोण को सन्मुख रखते हुए सरकार से यह भी अनुरोध है कि प्रदेश में एक ही एक आयुर्वेद फार्माकोपिया लागू किया जावे।

नवरत्न रस

स्त्री, पुरुष और बालकों के लिये महौषधि

यह नवरत्न रस हीरा, पन्ना, मोती, माणिक आदि नौ रत्नों की भस्म और सुवर्ण आदि के संयोग से तैयार किया जाता है। शरीर में स्थित रस, रक्त आदि धातुओं की उत्तरोत्तर वृद्धि और पोषण तथा वीर्यधातु की शुद्धि और पुष्टि करना इसका विशिष्ट कार्य है। शुक्र स्थान को पुष्टि मिलने से वीर्य में स्थित निर्बलता दूर होकर नपुंसकता, क्लैव्य, ध्वजभंग, वीर्यपात, स्वप्नदोष आदि नष्ट होते हैं और शरीर नवयौवन प्राप्त करता है।

यह गर्भावस्था में पांडु, रक्त की कमी, हाथ और पैरों में शोथ तथा श्वास आदि रोगों की उत्पत्ति को रोकता है। अल्पसत्वयुक्त प्रजा होती हो या बालक जन्मते ही मर जाता हो तो नवरत्न रस प्रथम मास से प्रसव काल तक सेवन कराने से प्रसव सुखपूर्वक होता है। बालक भी तन्दुरुस्त जन्मता है। इसके सेवन से अकाल प्रसूति और रक्तस्राव नहीं होता।

इसके उपरांत किसी भी कारण से पांडु, क्षय, जीर्णज्वर, कास, श्वास, वातव्याधि, मधुमेह, रक्तस्राव, मगज की निर्बलता, वीर्यविकार आदि में बाल, वृद्ध, युवा, स्त्री, पुरुष सबको नवरत्न रस देने से शक्ति प्राप्त होती है। निरोगी शरीर के लिये यह रसायन है रोगी शरीर के लिये औषध।

मूल्य २८ गोली का रु. ५), तोला १०)

ऊंझा फार्मेसी ऊंझा

(उ० गु०).

आयुर्वेद विश्व का सबसे पुरातन चिकित्सा विज्ञान

राजस्थान के वित्तमंत्री श्री हरिभाऊ उपाध्याय का भाषण

जयपुर, राजस्थान के वित्त मन्त्री, श्री हरिभाऊ उपाध्याय ने अपने भाषण में कहा कि इसमें दो मत नहीं हैं कि आयुर्वेद चिकित्सा विज्ञान भारत का ही नहीं बल्कि विश्व का पुरातन चिकित्सा विज्ञान है। इस देश में आयुर्वेद चिकित्सकों का एक गौरवपूर्ण इतिहास है जिस पर सिंहावलोकन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि यहां के मनीषियों ने जंगलों और कंदराओं में रह कर, कंदमूल फल खाकर, भोजपत्र पहन कर उपलब्ध सीमित साधनों के रहते हुए भी जिस त्याग व निष्ठा से इस चिकित्सा विज्ञान की सेवा की है वह अद्वितीय है। श्री उपाध्याय ने उक्त शब्द आयुर्वेद परामर्शदात्री परिषद् के प्रथम सम्मेलन का उदघाटन करते हुये कहे।

वित्त मंत्री ने आयुर्त्रेद चिकित्सा के अविकसित होने के कारणों पर प्रकाश डालते हुए कहा कि जब हमारा देश परतंत्र था तब आयुर्वेद के विकास पर अधिक महत्व नहीं दिया गया जिसके परिणामस्वरूप हमारे देश में आयुर्वेद के विशेषज्ञ निर्बल होते गए और चिकित्सा विज्ञान के सम्बन्ध में कोई नवीन खोज या शोध का कार्य नहीं कर सके।

वित्त मंत्री ने आयुर्वेद चिकित्सा विज्ञान में खोज एवं शोध की आवश्यकता पर बल दिया और कहा कि यूनानी और आयुर्वेद चिकित्सकों को एक होकर इस विज्ञान के विकास के सम्बन्ध में विचार-विमर्श करना चाहिए। आपने कहा यदि शोध का कार्य नहीं किया गया तो आयुर्वेद चिकित्सा विज्ञान को पूर्ण रूप से विकसित नहीं किया जा सकेगा।

राज्य के आयुर्वेद विभाग के संचालक श्री प्रेमशंकर शर्मा ने राज्य में आयुर्वेद चिकित्सा के विकास के बारे में बोलते हुए कहा कि चिकित्सा विस्तार के लिए राज्य सरकार की ओर से इस समय ६४५ चिकित्सालय चालू हैं और द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्त तक २००चिकित्सालय और आरम्भ किये जायेंगे। चिकित्सालयों का स्तर धीरे २ उन्नत किया जा रहा है। आयुर्वेद के महाविद्यालयों में अष्टांग आयुर्वेद चिकित्सा के सभी अंगों के लिए उपयुक्त साधन व कर्मचारी जुटाने की व्यवस्था की जा रही है।

इसके अतिरिक्त पंचवर्षीय पाठ्यक्रम भी तैयार किया जा रहा है। अनुसंधान का श्रीगणेश किया जा चुका है और उत्तरोत्तर सर्वांगीण रूप से उसे विकसित करने में जो भी साधन आवश्यक होंगे, जुटाने का प्रयत्न आर्थिक सुविधानुसार किया जायगा।

औषधियाँ
और
मशीनें

हर प्रकार की विधिपूर्वक विनिर्मित रस, रसायन, आसव, अरिष्ट भस्म, अवलेह आदि औषधियां और औषधि निर्माण संबंधी कुटाई, पिसाइ, घुटाइ व गोलियाँ आदि बनाने की बिजली तथा हाथ दोनों प्रकार से चलने वाली मशीनें आदि मिलने का एक मात्र विश्वसनीय स्थान—

दयालु फार्मास्युटिकल वर्क्स
बीकानेर

वैद्यों की वेतन-वृद्धि आवश्यक

उदयपुर, अभी हाल ही में डूँगरपुर में हुए स्नायुक्त शिविर समाप्ति समारोह के अवसर पर राजस्थान के स्वास्थ्य मन्त्री श्री गुप्ता द्वारा दिए गये भाषण की आलोचना करते हुए वैद्य श्री भागीरथ जोशी ने कहा है कि मन्त्री महोदय द्वारा एक ओर आयुर्वेद की प्रशंसा करना दूसरी ओर इस प्रकार कहना कि हमें तो गाँवों में भेजने के लिए डाक्टर नहीं मिलते अतः वैद्यों एवं आयुर्वेदीय औषधालयों की आवश्यकता है, गांव वाले एलोपैथिक औषधालयों की मांग करते हैं, वैद्य व वैद्यों के औषधालय लोगों को प्रभावित नहीं कर पाते, नितान्त अशोभनीय है।

वैद्यों के वेतन की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए आपने कहा कि कठिन परिस्थितियों के बावजूद भी आज आयुर्वेदाचार्य परीक्षोत्तीर्ण वैद्यों को ६० रु० मासिक वेतन दिया जाता है जब कि डाक्टरों को २५० रु० मासिक तथा गांव में जाने के लिए ७५ रु० और अधिक भत्ता दिया जाता है। आपने इस विषय पर खेद प्रकट करते हुए कहा कि अनेक बार कहने पर भी इस स्थिति में आज तक कोई सुधार नहीं हुआ है।

सूचना

असली केसर, कस्तूरी, शिलाजीत, सच्चे मोती, गोरोचन, अम्बर व अष्टवर्ग, अशोक छाल, सर्पगन्धा, आदि जड़ी-बूटियां शुद्ध और सस्ती खरीदने के लिए

कालिया ब्रदर्स रजिस्टर्ड,
जालन्धर शहर (पंजाब)
से पत्र व्यवहार करें।

श्री वामनराव जी की केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री से भेंट

धन्वन्तरि भवन के लिये भूमि शीघ्र प्रदान करने का अनुरोध

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के प्रधान मंत्री श्री वामनराव दीनानाथ जी ता० ९-८-५८ को केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री श्री करमरकर से मिले और उनसे महासम्मेलन के प्रस्तावित धन्वन्तरि भवन के निर्माणार्थ भूमि शीघ्र दिलाने का अनुरोध किया। श्री स्वास्थ्य मंत्री महोदय ने बताया कि महासम्मेलन के लिये इन्द्रप्रस्थ एस्टेट में १७व१८ नम्बर के दो प्लाट नियत किये गये थे किन्तु बाद में मिनिस्ट्री आफ वर्क्स, हाउसिंग व सप्लाई से ज्ञात हुआ कि उसके द्वारा उक्त दोनों प्लाट इस ही बीच में वर्ल्ड हैल्थ आर्गेनाइजेशन को दिये जा चुके हैं और अब महासम्मेलन को अन्यत्र स्थान दिये जाने की व्यवस्था की जा रही है। स्वास्थ्य मंत्री ने इस विषय पर विषय से सम्बन्धित मंत्री से भी मिलने को कहा। तदनन्तर श्री वामनराव जी स्वास्थ्य मंत्रालय के सम्बन्धित उप मंत्री महोदय से मिले। उन्होंने बताया कि झंडेवाला एस्टेट में महासम्मेलन को शीघ्र भूमि दिये जाने का प्रयास किया जा रहा है।

स्वास्थ्य मंत्री से भेंट के समय श्री वामनराव जी ने महासम्मेलन की प्रादेशिक शाखाओं को भी रेलवे कन्सेशन की सुविधा प्रदान किये जाने का अनुरोध किया।

वित्त मंत्री से भी मिले

स्वास्थ्य मंत्री से भेंट के उपरान्त ही प्रधान मंत्री जी वित्त मंत्री श्री मोरार जी

…ाई से भी मिले और आयुर्वेदिक औषधियों में प्रयुक्त होने वाली कतिपय आवश्यक औषधियों जो विदेशों से आयात की जाती …ं पर से आयात कर हटाने या कम करने का अनुरोध किया। वित्त मंत्री महोदय ने इस विषय पर सहानुभूति पूर्ण विचार करने का आश्वासन दिया है।

बुरहानपुर में आयुर्वेद विद्यालय की स्थापना

बुरहानपुर के सुप्रसिद्ध वैद्य प० शिवनाथ जी शास्त्री के शुभ प्रयत्नों से बुरहानपुर में एक आयुर्वेद विद्यालय की स्थापना हुई है जो मध्यप्रदेश बोर्ड से सम्बद्ध रहकर बोर्ड की परीक्षायें दिलायेगा। इस विद्यालय के आचार्य श्री शिवनाथ जी शास्त्री ही नियुक्त हुए हैं।

'नागार्जुन' सम्पादक मण्डल द्वारा श्री अनन्त त्रिपाठी शर्मा को अभिनन्दन पत्र भेंट

गत १७ जुलाई १९५८ को अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के अध्यक्ष श्री अनन्त त्रिपाठी शर्मा द्वारा 'नागार्जुन' मासिक आयुर्वेद पत्र कार्यालय का निरीक्षण किए जाने पर पत्र के सम्पादक मण्डल द्वारा उन्हें अभिनन्दन-पत्र भेंट किया गया।

श्री त्रिपाठी जी अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन स्थायी समिति के अधिवेशन में भाग लेने के लिए कलकत्ते पधारे थे।

अभिनन्दन पत्र में श्री त्रिपाठी जी को विभिन्न भाषाओं के उच्च ज्ञान, साहित्यिक क्षमता एवं वाग्मिता, संस्थाओं के संचालन व्यवस्था एवं संगठन शक्ति आदि गुणों की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई।

केन्द्रीय आयुर्वेद अनुसंधान मूल्यांकन समिति की स्थापना

केन्द्रीय सरकार ने हाल ही में एक केन्द्रीय आयुर्वेद अनुसंधान मूल्यांकन समिति की श्री डा० के० एन० उडूपा की अध्यक्षता में स्थापना की है। इस समिति के सदस्य श्री वैद्य के, परमेश्वरम पिल्लई, त्रिवेन्द्रम तथा स्वास्थ्य मंत्रालय के एक अन्डर सैक्रेट्री हैं।

डा० उडूपा बनारस आयुर्वेदिक कालेज के स्नातक हैं तथा पोद्दार आयुर्वेदिक कालेज बम्बई में प्रोफैसर हैं। आप हिमाचल प्रदेश सरकार के सर्जन के पद पर भी नियुक्त है। सुना है कि डा० उडूपा शुद्ध आयुर्वेद में विश्वास रखने वाले हैं। आशा है उनकी अध्यक्षता में समिति आयुर्वेदिक अनुसंधान का वास्तविक मूल्यांकन कर इसे नई दिशा प्रदान करगी।

प्रताप आयुर्वेदिक फार्मेसी प्रा० लि० के

आशुफलप्रद आयुर्वेदीय इन्जैक्शन

हिमाचल के अंचल देहरादून में सरकार द्वारा लायसैन्स प्राप्त लेबोरेटरी में आयुर्वेदीय औषधों के मूलतत्वों का पूर्ण अनुसंधान करने के उपरान्त प्राचीन और आधुनिक विज्ञानवेत्ता, सिद्धहस्त वैज्ञानिकों की देखरेख में इन्जैक्शन तैयार किए जाते हैं जो पूर्णतया निरापद विशुद्ध प्रामाणिक हो चुके हैं। प्रत्येक वैद्य का कर्त्तव्य है कि इन आशुफलप्रद पूर्णतया विशुद्ध एवं चमत्कारिक गुणकारी इन्जैक्शनों को प्रयोग में लाकर लाभ उठावें।

प्रताप आयुर्वेदिक फार्मेसी लि०
इन्जैक्शन ब्रांच
१६७ राजपुर रोड़, देहरादून (यू० पी०)

आयुर्वेद पंचानन पं० जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल का अभिनन्दन समारोह सम्पन्न

२१०० रु० की थैली भेंट

कलकत्ता के वैद्य समाज एवं सम्भ्रान्त नागरिकों की ओर से आयुर्वेद के विख्यात् विद्वान एवं पत्रकार ब्रह्मर्षि आयुर्वेद पंचानन पं० जगन्नाथ प्रसाद जी शुक्ल का अभिनन्दन समारोह विगत १८ जुलाई १९५८ को धूम-धाम से सम्पन्न हुआ। समारोह की अध्यक्षता कलकत्ता के हिन्दी प्रेमी श्री सीताराम सेकसरिया ने की और इसमें भारत के विभिन्न प्रान्तों के वैद्य तथा गण्यमान्य व्यक्ति उपस्थित थे।

इस अवसर पर दैनिक लोकमान्य के संचालक पं० रामशंकर जी त्रिपाठी ने श्री शुक्ल जी के जीवन पर प्रकाश डालते हुए उनके आदर्श पत्रकारिता एवं सेवा का उल्लेख किया। आपने अभिनन्दन समारोह के आयोजकों को बधाई देते हुए कहा कि शुक्ल जी ने आयुर्वेद की महान् सेवा की है तथा हिन्दी और पत्रकारित के क्षेत्र में भी इनकी सेवायें महान् हैं।

श्री शुक्ल जी ने आयोजकों के प्रति आभार प्रकट करते हुए आयुर्वेद की सेवा करने पर आगन्तुक वैद्यों से अनुरोध करते हुए कहा कि मैंने या मेरे जैसे वृद्धों ने अब तक जो कार्य किया उसको सुमति से आगे बढ़ाना तरुण वैद्यों का काम है। श्री शुक्ल जी ने संगठन को व्यापक एवं बलशाली बनाने तथा आयुर्वेद के शिक्षण-प्रशिक्षण के लिए शिक्षणालय स्थापित करने पर बल दिया।

नेत्रों की अनेक व्याधियों और नेत्रों को सुरक्षित रखने के लिये

श्री हरि
जीवदया
नेत्र प्रभा
रजिस्टर्ड

अत्यंत लाभदायक है

नेत्रप्रभा—नेत्रकण्डु, कुकरे, धुन्ध, जाला, फूली, नेत्रस्राव, लाली रतोंधी, नेत्रों का दुखना, कम दिखाई देना, आदि के लिए अनुपम है।

जीवदया नेत्रप्रभा—अधिक परिश्रम, वेल्डिंग, गाड़ी चलाना, धुआँ, सिनेमा, लिखना-पढ़ना, धूप, टाइफाइड, सूर्यावर्त और जागरण के कारण होने वाले सिर दर्द और आँखों के दर्द में लाभदायक है। सोते समय अंजन करने से बढ़िया नींद आती है। दिमाग स्फूर्ति पाता है।

नेत्रप्रभा—की बड़े-बड़े वैद्य डाक्टर, विख्यात संस्थाओं, संत महात्माओं तथा समाप्रचार पत्रों ने प्रशंसा की है। जैसेः—श्री बंबई आयुर्वेद चिकित्सक मंडल, सूरत वैद्य सभा, श्री राजकुमार सिंह आयुर्वेद कालेज इन्दौर। राजकोट के ग्रामों में आयुर्वेदिक बक्स में इसे स्थान प्राप्त हुआ है।

नेत्रप्रभा—नित्य व्यवहार से कोई हानि नहीं होगी—बालक तथा वयस्क दोनों ही दिन में एक से तीन बार दर्द के अनुसार इसे लगा सकते हैं। अधिक विवरणके लिये लिखिये—

जीवदया नेत्रप्रभा कार्यालय
(निर्माताः—आर. एम. शाह)
जूनी विक्टोरिया मिल्स कम्पाउण्ड,
गांमदेवी रोड, बंबई ७

इस अवसर पर श्री शुक्ल अभिनन्दन समिति की ओर से २१००) रु० की थैली दी गई और अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन, नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ, ान प्रान्तीय आयुर्वेद सम्मेलन, श्री धन्वरि परिषद, श्री धन्वन्तरि विज्ञान परिषद, युक्त आयुर्वेद सम्मेलन, संयुक्त आयुर्वेद ान समिति, श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन, र एस० के वर्मन, श्री विश्वनाथ आयुर्वेद न, श्री यामिनी भूषण अष्टांग आयुर्वेद विद्यालय श्री श्यामादास वैद्यक शास्त्रपीठ, िक सचित्र आयुर्वेद, मासिक नागार्जुन, स्थीय वैद्य सभा आदि संस्थाओं की ओर श्री शुक्ल जी को मालायें भेंट की गई आयुर्वेद महासम्मेलन के महामन्त्री श्री वामन राव दीनानाथ, बम्बई, भा० आयुर्वेद विद्यापीठ के मंत्री श्री राम मिश्र, जयपुर, श्री दीनदयालु ारी, नागपुर, श्री कैलाशचन्द्र अग्रवाल, ी, श्री हरिवक्ष जोशी, कलकत्ता, श्री चन्द्र मल्लिक, कलकत्ता तथा श्री नारा- शर्मा आदि वैद्य महानुभावों ने श्री जी के जीवन वृत्त पर प्रकाश डाला दीर्घ जीवन की मंगल कामना की।

सावल के सुप्रसिद्ध वैद्य श्री ब्रह्मदत्त शर्मा सम्मानित

भुसावल के सुप्रसिद्ध वैद्य तथा अ० आयुर्वेद महासम्मेलन के आश्रयदाता श्री ब्रह्मदत्त शर्मा, मैनेजिंग डायरेक्टर आयुर्वेदालय लि०, भुसावल नगर- के अध्यक्ष निर्वाचित हुए हैं। वैद्य इस सम्मान पूर्ण पद पर निर्वाचन पर ओर से अनेक बधाइयाँ।

यह तथ्य है
औषधि तभी गुणकारी व प्रभावशाली
हो सकती है जब उसमें पड़ने
वाला कच्चा द्रव्य असली
व उत्तम हो।
प्रामाणिक द्रव्यों के लिए
नेपाली ब्रदर्स
२१२, बड़गादी, बम्बई-३
● नेपाली कस्तुरी
● जंगबारी अम्बर
● बसरा मोती
● स्पेन केशर
● सूर्यतापी शिलाजीत
● विशुद्ध गोरोचन
के अतिरिक्त
प्रवाल शाख, प्रवाल मूल, गोदन्ती, बंसलोचन, भीमसेनी कपूर, जहर-मोरा खताई, केहरुवा, जुन्द वेदस्तर, हरडें, अकीक, सीप, कौड़ी, शंख, शिंगरफ, वर्की हड़ताल तथा सब प्रकारकी खड़ें (जवाहिरात) आदि।
विशेष विवरण के लिये सूचीपत्र मंगाएँ।

Governing Council Members Felicitated

A warm reception was given to the members of the Governing council of All India Ayurvedic Congress on behalf of Bengal Provincial Ayurveda Mahamandal at Bangiya Unmad Asram, Dattanagar Calcutta 30, on the 3rd. July, 1958. When members of the Governing Council assembled at Calcutta on the occasion of the council meeting.

In offering felitation to the members of the Governing Council Kaviraj Atul Behari Dutt, President of Bengal Provincial Ayurveda Mahamandal, said that during the last 53 years only once in 1914 the annual meeting of All India Ayurvedic Congress was held in Calcutta, the first and foremost city in the whole of India. After that there was no such occasion for the members to meet together in this great city. Kaviraj Dutt said "In India science of medicine made a great progress in early days and many original works were done in this field. There were great contributions in Botany, anatomy, physiology, surgery and medicine. Due to political reasons the progress was impeded to a great deal. But during this period the people of other parts of the world were marching in rapid progress in different spheres of life. Kaviraj Dutt said : let us march on with the advancement of time being always anxious to increase our wealth of knowledge from whatever sources we can.

As regards the activities of the Central and State Governments regarding Ayurveda, Kaviraj Dutt remarked that they were simply deplorable. Chopra, Pandit and Dave Committees were formed one after another but their recommendations had not yet been translated into action. He said "Long 11 years have passed after Indian independence from foreign yoke but very little attention has been given for the development of Ayurveda."

In reply to the felicitations Vaidyaraj Shri Vamanrao Dinanath, General Secretary of the All India Ayurvedic Congress, said that it was a matter of great regret that formerly the Ayurvedic Committees did not consist of Vaidyas, specially the Chopra Committee, which had not a single Ayurvedic Physician on it, but Shri Jadavji Maharaj's name was included after vocies were raised in this regard from various quarters. He, however, expressed his satisfaction upon the recent change in the attitude of some State Governments like Bombay and Uttar Pradesh in the matter of formation of such committees on which Vaidyas were now being adequately represented. Criticising the present integrated courses run in the various States, Pt. Vamanraoji said that it would be only through the Sudh Ayurvedic education that the real progress in the field of Aurvedic medicine could be attained. He strongly advocated the adoption of Sudh Ayurvedic Courses for at least 10 to 25 years as an experiment and later on to assimilate modern medicine wherever feasible if it was found indispensible to prove the worth of Ayurveda. Kaviraj Sitaram Misra, General Secretary, All India Ayurveda Vidyapith, recalled the great contributions made in advancement of Ayurveda by the Kavirajas of Bengal and expressed his hope that this dignity would be maintained in future too. He gave a graphic description of the present condition of Ayurveda in India and asked the Ayurvedic physicians to work unitedly for the advancement of the science. Kaviraj Prabhakar Chatterjee, president of Bengal Provincial Ayurveda Vidyapith, Kaviraj Kishorimohan Das, General Secretary, Bengal Provincial Ayurveda Mahamandal, Kaviraj Indubhushan Sen also spoke on the occasion.

The meeting was largely attended and the guests were entertained with tea and light refreshment. A variety performance was arranged on the occasion.

Earlier on the previous day the President of All India Ayurvedic Congress accompanied by other members of the Governing Council visited the Bangiya Unmad Asram. They were received by the Founder-Superintendent of the Asram Kaviraj Atul Behari Dutt and were shown round the mental hospital, the only Ayurvedic mental hospital in India.

Demands of Bangiya Sanjukta Ayurved Uthan Samiti

The Bangiya Sanjukta Ayurved Uthan Samiti which claims itself to be the only United Association of the Kavirajas of all shades of opinion in West Bengal has placed the following demands before the State Government for obtaining legal rights and privilleges for the Kavirajas of the State :—

1. Passing of the "Ayurveda Bill" during the current Session of the Legislative Assembly, a draft of which has already been submitted to the medical branch, West Bengal, by the body formed by the Government for the purpose on [illegible] May, 1957, under the Presidentship of the Secretary Medical Branch, West Bengal.

2. Establishment of a State Ayurvedic College and three Ayurvedic colleges and a Research Institute in the State for which the three Ayurvedic Colleges of Calcutta have offered to be taken over by the Government.

3. Opening of charitable Ayurvedic dispensaries in all the districts of West Bengal.

4. Establishment of a Pharmacy for preparing Ayurvedic medicines under the direct control and administration of the West Bengal Government where different Ayurvedic medicines will be manufactured and standarised and sold to the Kavirajas for meeting their demands of genuine Ayurvedic medicines.

5. Establishment of a herbarium by the Government where all sorts of rare medicinal plants will be grown.

It is reliably learnt that the State Government has so for been delaying the fullfillment of the above legitimate demands of the Samiti under one pretext or the other. The matter was, therefore, placed in the meeting of the Governing Council of the All India Ayurvedic Congress held at Calcutta on 17th July, 1958, which adopted a resolution fully supporting the demands of the Samiti and assuring its cooperation in the realisation of the same.

श्री बनवारी लाल आयुर्वेद कॉलेज, दिल्ली का १९४८ वार्षिक परीक्षा फल

आयुर्वेदाचार्य

१. वेदव्रत ४३४ सर्व प्रथम । २. मिट्ठन लाल शर्मा ४२६ प्रथम । ५. सत्यप्रकाश मिश्र २८९ तृतीय । ६. पुष्पराज जैन ३४६ द्वि० ।

भिषगाचार्य

३. लेखराम गुप्त । ३७१ प्रथम । ४. स्वर्णकुमार सचदेव ३४९ द्वितीय । ७. ओंम प्रकाश अग्रवाल ३१९ द्वितीय । ८. सन्तोषसिंह ३६७ द्वितीय । ९. मूलचन्द पटोलिया २९४ द्वितीय । १०. हीरालाल वासिष्ठ २९५ द्वितीय । ११. श्यामलाल शर्मा २६० द्वितीय । १२. रामदयाल शर्मा ३०६ द्वितीय ।

हर प्रकार के शरीर-रचना ज्ञान सम्बन्धी आयुर्वेदिक साधन प्रतिमा (Model) चित्र (Chart) कंकाल (Skeleten) आदि और औषधि निर्माण (फार्मेसी) सम्बन्धी यंत्र, मशीन से चलने वाले खरल, टिकियां व गोलियाँ बनाने की मशीनें, लोहे व पत्थर के खरल, सर्जीकल इन्स्ट्रूमेंट, सिद्धौषधियाँ, वनौषधियां खनिज द्रव्य आदि के मिलने का पताः—

दयाल आयुर्वेदिक प्रोडक्ट्स कं०
दयालबाग (आगरा)

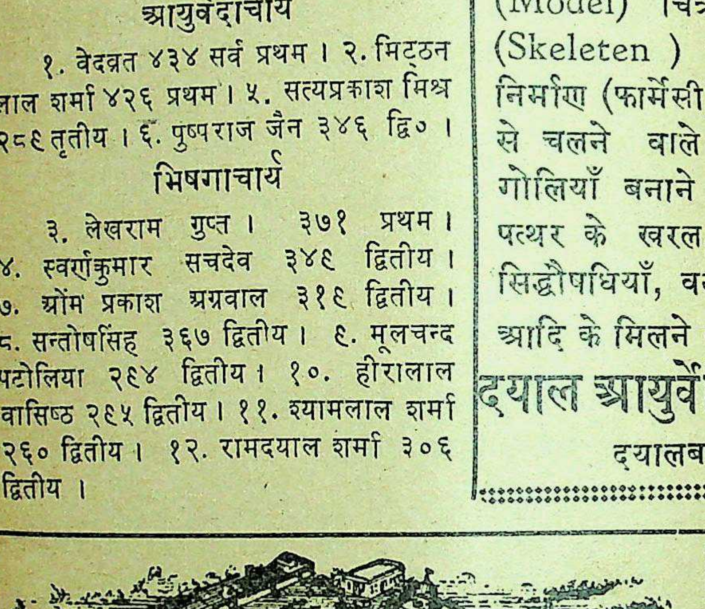

५० वर्षों से विश्व भर में प्रतिष्ठा प्राप्त भारत की प्रमुख आयुर्वेदिक औषध निर्माणशाला

रसशाला औषधाश्रम (REGD. गोंडल, सौराष्ट्र।

गोंडल रसशाला की इस फार्मसी में विविध प्रकार की भस्में, रसरसायन, कूपिपक्व रसायन, पर्पटी, गुटिका, चूर्ण, वगैरह सैकड़ों प्रकार की हाथ से बनी औषधियाँ तैयार रहती हैं। हिन्दुस्तान के प्रत्येक प्रदेश में और चीन, फीजी, अफ्रीका, अमेरिका, युरोप में भी जाती हैं। सब भाषा के सूचीपत्र बिना मूल्य भेजा जाता है ।

सिद्ध रसायन कल्प (बृहत् और लघु)

इस संस्था का एक और नया शोध । इसके सेवन से शरीर नीरोगी रह कर आयुष्य बढ़ता है । हृदय फुफ्फुस दिमाग आंते लीवर मूत्राशय आदि अवयव बलवान होते हैं । मात्रा ३ रत्ती अष्टवर्ग चूर्ण ४ मासा के साथ दूध से लिया जाता है । बृहत् तोला १ का रु० २५ । लघु तोला १ का रु० १० दस ।

बम्बई शाखाः—गोंडल रसशाला औषधाश्रम
वसंत वाडी के सामने, ४१६ कालबा देवी रोड, मुम्बई २ ।

न्यायालय की मानहानि के अभियोग का निर्णय

पं० शिवशर्मा और स्वामी चेतनानन्द के विरुद्ध १९५८ के फौजदारी प्रार्थना पत्र नं० पर अदालत की मानहानि की कार्यवाही ८ जुलाई १९५८ को बम्बई के सम्माननीय कोर्ट में विचार के लिए आया जबकि माननीय अदालत ने निम्नलिखित निर्णय दिया :—

"दोनों उत्तरवादियों का कथन है कि—उनकी कोई इच्छा किसी प्रकार भी योग्य स्ट्रेट पर, जिसके फैसला कि लेखों का विषय है और साधारणतया अदालतों पर निन्दा- आक्षेप करने की नहीं थी। लेखों के ऐसे वाक्यों के लिए जो बिना इच्छा के लेखों में पड़े हों और जो अदालत का अपमान करने वाले हो सकते हों, उत्तरवादी हार्दिक खेद करते हैं। दोनों उत्तरवादियों की ओर से इस क्षमा को स्वीकार करते हुए हम रूल डिस्चार्ज करते हैं (अर्थात् हाईकोर्ट की ओर से चलाया हुआ मामला समाप्त ते हैं)।"

मौलिक वक्तव्य जो उत्तरवादी नं० १ ने माननीय कोर्ट को दिया वह निम्न- र्णित है :—

"मेरी कोई इच्छा योग्य मैजिस्ट्रेट पर जिसका निर्णय मेरे लेखों का विषय है अथवा रणतया अदालतों पर निंदात्मक आक्षेप करने की नहीं थी। ऐसे वाक्यों के लिए जो लेखों में अनभिप्रेत आन पड़े हों जिनका अर्थ अदालत के लिए अपमानजनक लग सकता नके लिए मैं माननीय हाईकोर्ट आफ ूडीकेचर, बम्बई, के समक्ष हार्दिक खेद प्रकट ता हूं।"

—शिवशर्मा

The Contempt of Court Proceedings against Pandit Shiv Sharma d Swami Chetnanand in Criminal Application No. 524 of 1958 came for hearing before the Hon'ble High Court of Bombay on July 8, , when the Hon'ble Court was pleased to make the following der :—

"The respondents have stated that they had no intention to reflect ersely in any manner on the learned Magistrate, who had delivered Judgment, which is the subject matter of the articles or the Courts Law in general. They have expressed sincere regret for such sages in the articles, which might have unintentionally crept into articles and which might amount to Contempt of Court. We accept apology tendered on behalf of both the respondents and accordingly harge the Rule".

The actual statement handed over by respondent No. 1 to the 'ble Court is as under :—

"I had no intention to reflect adversely in any manner on the ned Magistrate who delivered the Judgment which is the subject ter of my articles nor the Courts of Law in general. I express my ere regret to the Hon'ble the High Court of Judicature at Bombay for passages that may have unintentionally crept into my articles which amount to contempt of court".

Shiv Sharma.

भूल सुधार

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका के गतांक के पृष्ठ ३९१ पर प्रकाशित "महासम्मेलनाध्यक्ष श्री अनन्त त्रिपाठी शर्मा का बम्बई वैद्य समाज द्वारा अभिनन्दन" शीर्षक समाचार में कुछ प्रकाशन की अशुद्धियां रह गई हैं जिन्हें पाठक निम्न प्रकार शुद्ध करने का कष्ट करें :—

१—ऊपर से आठवीं पंक्ति में "बम्बई की विभिन्न आयुर्वेदिक संस्थाओं" के स्थान में "बम्बई वैद्य सभा और बम्बई राज्य वैद्य मण्डल" रखें।

२—११ वीं पंक्ति में "किए गए" के पश्चात् यह वाक्य जोड़ें "और लगभग १२ संस्थाओं की ओर से तथा व्यक्तिगत रूप से भी पुष्पहार भेंट किए गए।"

३—१२ वीं व १३ वीं पंक्ति में "यूनिवर्सल हैल्थ इन्स्टीट्यूट के स्थान में "बम्बई वैद्य सभा तथा बम्बई राज्य वैद्य मण्डल" शब्द जोड़ें क्योंकि चाय आदि का प्रबन्ध बम्बई वैद्य सभा और बम्बई राज्य वैद्य मण्डल की ओर से 'यूनिवर्सल हैल्थ इन्स्टीट्यूट में किया गया था।

४—तीसरे पैरा में उल्लिखित समारोह में भाग लेने वाली संस्थाओं में झण्डू फार्मेसी का नाम सम्मिलित कर लें।

—सम्पादक

!! केवल कुछ समय के लिए खास रियायत !!

रस भस्में आदि कम मूल्यों पर

अभ्रक वज्र भस्म ४५) रु० सेर, प्रवालपिष्टी व भस्म ३०) सेर, अकीकचन्द्र पिष्टी ५०) सेर, वंग भस्म श्वेत ३०) सेर, कौड़ी भस्म ७) सेर, मुक्ता शुक्ति भस्म १०) सेर, कांतलौहभस्म २५) सेर, मण्डूर भस्म १८) सेर, गोदन्ती भस्म ४) सेर, चन्द्रप्रभा वटी २८) सेर, योगराज गुगुलू १५) सेर, त्रिवंग भस्म ४५) सेर, शंख भस्म ७) सेर, कसीस भस्म १०) सेर, शृंगराज भस्म १२) सेर, नाग भस्म पीत २५) सेर, स्वर्ण वंग नं०१ ६०) सेर, कुक्कुटांडत्वक् भस्म १८) सेर, च्यवन प्राशावलेह १२५) मन, सुपारी पाक १६०) मन, स्वर्ण माक्षिक भस्म २८) सेर।

नोटः—इन भावों पर रस भस्में २० तोला व पाक ५ सेर से कम नहीं भेजा जा सकेगा।

चावला आयुर्वेदिक फार्मेसी

पताः—किला भगियां, कुब्बी बेरी, अमृतसर।

शक्तिशाली संगठन की आवश्यकता

आज हमारा देश स्वाधीन है, सभी प्रकार की विद्याओं एवं ज्ञान-विज्ञान का विकास है किन्तु आयुर्वेद विज्ञान की प्रगति के मार्ग में अनेक बाधायें आ रही हैं और इसे चिकित्सा पद्धति के पद पर आसीन कराने के हमारे ध्येय की सिद्धि में अवांछनीय हो रहा है। इस सबका प्रमुख कारण है—हमारे संगठन की अशक्तता। यह एक तथ्य है कि आज के प्रचार और आन्दोलन के युग में कोई भी कार्य बिना शक्ति- संगठन के सम्पन्न नहीं हो सकता। अतः अपने समाज को सुसंगठित बनाना हमारी की सर्वप्रथम आवश्यकता है।

कर्त्तव्य—

आयुर्वेद चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन वैद्य का सबसे प्राचीन एवं एकमात्र प्रतिनिधि अखिल भारतीय संगठन है जिसे सर्वप्रकार बनाना वैद्य मात्र का पुनीत कर्त्तव्य है। यदि आप चाहते हैं कि 'आयुर्वेद' शीघ्र चिकित्सा पद्धति बने, उसका समुचित विकास और अभिवृद्धि हो और आपके अधिकारों की सुरक्षा हो सके तो आप महासम्मेलन की सदस्य संख्यावृद्धि में सहयोगी। यदि आप पुराने सदस्य हैं और अभी तक आपने अपना वर्तमान वर्ष का सदस्यता नहीं भेजा है तो उसे अविलम्ब भेजिये। इसके साथ ही प्रत्येक सदस्य का यह कर्त्तव्य अपनी ओर से कम से कम ५ नवीन सदस्य अवश्य बनाकर अपने संगठन को सबल सामर्थ्यशाली बनावें। महासम्मेलन की प्रान्तीय सम्बद्ध शाखाओं के अधिकारियों को अपने-अपने प्रान्त में महासम्मेलन के अधिक से अधिक सदस्य बनाने का प्रयत्न करना है।

लेखकों से—

भी निवेदन है कि आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका के द्वारा आयुर्वद-विज्ञान को दें। अपने खोज और विद्वत्तापूर्ण मौलिक लेख इसमें प्रकाशनार्थ भेजकर इस के विकास के साथ-साथ वैद्यसमाज को भी लाभान्वित करें। लेख हिन्दी, संस्कृत अंग्रेजी किसी भाषा में भेज सकते हैं। लेख सुस्पष्ट और पत्र के एक ओर स्याही में होने चाहियें।

Editor-in-Chief—Swami Chetnanand.
भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के लिए कविराज स्वामी चेतनानन्द द्वारा प्रकाशित
मुद्रक—नया हिन्दुस्तान प्रेस, दिल्ली

खोज का आश्चर्यजनक
परिणाम

खोज का क्रम आज नया नहीं-किन्तु युग युगान्त चला आ रहा है। खोजके ऊपर किसी कवि के ये शब्द क्षरोंमें लिखे हुए हैं कि :- "जिन खोजा तिन पाइय पानी पैठ" त्रेतायुग में जब रावण के लड़के मेघना शक्तिबाण से श्री लक्ष्मणजी मूर्छित पड़े हुए थे औ चन्द्र जी की व्याकुलता का अन्त नहीं था, उस समय णजी में पुनः जीवन लानेके लिये हनुमान जी को स बूटी की खोज में जाना पड़ा था। हनुमान जी अपनी खोज में सफल हुए। परिणाम लङ्का के युद्धमें श्रीराम लक्ष्मण की विजय हुई।

आज का यह वैज्ञानिक युग भी मानवता और रोगों के महायुद्ध में, रोग द्वारा त्रस्त मानव को मुक्त करने के लिये नयी नयी खोज में लगा है और अपनी खोज में सफल हो नये अन्वेषणों द्वारा मानवजाति की रक्षा में सफल होता जा रहा है।

डाबर कार्यालय भी गत ७२ वर्षों से सऔषध सेवारत हो लगातार खोजों द्वारा आयुर्वेदिक, पेटेण्ट दवाओं के निर्माण क्षेत्र में दूसरों का पथ प्रदर्शक बनता जा रहा है। डाबर कार्यालय की बनी हुई आयुर्वेदिक तथा पेटेण्ट दवाएं इत्यादि आज जिस प्रकार लोकप्रिय बनी हुई हैं उसका एक मात्र कारण है— डाबर कार्यालय का निरन्तर खोज का परिणाम! साथ ही स्वच्छता और सर्वाङ्ग पूर्णता से औषध निर्माण की क्रिया!! इसी खोज के परिणाम स्वरूप डाबर कार्यालय आज भारतीय जनता के औषध निर्माण करने वाला एक श्रेष्ठ कार्यालय बना हुआ है।

डाबर (डा॰ एस॰ के॰ बर्म्मन) लि॰ कलकत्ता-२९
अपूर्व गुणकारी आयुर्वैदिक तथा पेटेन्ट दवाओं के निर्माता

आयुर्वेद

महासम्मेलन पत्रिका

भाद्रपद
२०१५

प्रधान सम्पादक—कविराज स्वामी चेतनानन्द चिदाकाशी
उप-सम्पादक—कविराज हरिकृष्ण सहगल
संस्कृत विभाग सम्पादक—कविराज नेत्रपाल शास्त्री आयुर्वेदाचार्य

विषयानुक्रमणिका

विषय	लेखक	पृष्ठ संख्या
१. सम्पादकीय		४६९
२. सम्मेलन सम्बन्धी सूचनायें		४७५
३. पञ्चविधकषायकल्पनम्	—श्री वागीश्वर शुक्ल	४७७
४. अपस्मार (मिर्गी)	—श्री नानकचन्द्र शास्त्री	४८४
५. चरक, सुश्रुत और वाग्भट	—डा० रमाशंकर राय	४८७
६. रोगीवृत	—श्री ब्रजनन्दन मिश्र	४९३
७. आयुर्वेदीय भोजन विधान	—श्री त्रिपाठी नारायण शर्मा	४९६
८. द्रव्ये रसवर्णनम्	—श्री नेत्रपाल शास्त्री	५०५
९. रसोन (लहसुन)	—श्री मोहनलाल शास्त्री	५०७
१०. हरीतकी	—श्री वागीश्वर शुक्ल	५०९
११. आयुर्वेद-लोक		५२०

आयुर्वेद महासम्मेलन
पत्रिका में
विज्ञापन देकर
लाभ उठाइये !

॥ धन्वन्तरयेनमः ॥

यत्प्रभापटलोद्भासि भाषतेऽद्यापि भारतम् ।
आयुर्वेदात्मकं ज्योतिः शाश्वतं नः प्रकाशताम् ॥

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

(अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का मासिक मुख-पत्र)
प्रधान सम्पादक—**कविराज स्वामी चेतनानन्द चिदाकाशी ।**
उप-सम्पादक—कविराज हरिकृष्ण सहगल ।
सम्पादक संस्कृत विभाग—वैद्य श्री नेत्रपाल शर्मा शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य ।
पत्रिका कार्यालय—महालक्ष्मी मार्केट, चांदनी चौक, दिल्ली ।
ार का पता : "**आयुर्वेद**" **दिल्ली** टेलीफोन : २८९०२

र्ष : ४५
ंक : ९
दिल्ली; भाद्रपद २०१५, सितम्बर १९५८
वार्षिक ५)
एकप्रति ।।)

सम्पादकीय

आयुर्वेदिक अनुसंधान मूल्यांकन समिति

भारत सरकार ने अभी हाल ही में एक समिति नियुक्त की है जो राज्य सहायता प्राप्त आयुर्वेदिक संस्थाओं में अभी तक किये गये कार्य का मूल्यांकन और समीक्षा करेगी । इस मिति को निम्नलिखित कार्य सौंपे गये हैं—

(१) केन्द्रीय और राज्य सरकारों द्वारा दी गई सहायता के परिणाम स्वरूप आयुर्वेदिक संस्थाओं के स्तर को उन्नत करने एवं आयुर्वेदिक अनुसंधान के क्षेत्र में किये गये कार्यों का मूल्यांकन एवं समीक्षा करना ।

(२) आयुर्वेदिक अनुसंधान और प्रशिक्षण को वर्तमान सुविधाओं की समीक्षा करना ।

(३) आयुर्वेदिक निर्माणशालाओं द्वारा प्रस्तुत औषधियों के स्तर, प्रकार और राशि का अंकन करना ।

(४) आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति के प्रचलन और उसकी मान्यता सम्बन्धी वास्तविक स्थिति को ज्ञात करना।

इस समिति के अध्यक्ष डा० के. एन. उडूपा हैं तथा सदस्य श्री के. परमेश्वरम् पिल्लई, त्रिवेन्द्रम, और स्वास्थ्य मत्रालय के एक अंडर सेक्रेटरी श्रीं नरसिंहम् हैं। समिति के कार्यक्षेत्र एवं उद्देश्यों का जहां तक संबंध है उनसे तो थोड़े-बहुत लोग सहमत हो सकते हैं, यह सब कार्य चिरकालापेक्षित है—किन्तु यह समिति किस सीमा तक इस कार्य को उचित रूप से सम्पन्न कर सकेगी यह अभी सन्देहास्पद ही है। प्रथम तो समिति का संगठन ही सन्तोषजनक नहीं है। इसका निर्माण करते समय स्वास्थ्य मंत्रालय ने वैद्य समाज की इस चिरकालीन मांग का, कि आयुर्वेद के वास्तविक एवं योग्य विद्वानों की समितियां ही नियुक्त की जानी चाहियें, की फिर उपेक्षा की है। इसमें त्रिवेन्द्रम के श्री के. परमेश्वरम् पिल्लई ही ऐसे सदस्य हैं जिन्हें वस्तुतः आयुर्वेदज्ञ कहा जा सकता है। अतः हमें भय है कि अन्य समितियों के समान यह समिति भी आयुर्वेद की वास्तविक उन्नति में विशेष सहायक सिद्ध न होगी। फिर भी सुना है कि उडूपा शुद्ध आयुर्वेद के पक्षपाती और समर्थक हैं। यदि ऐसा है और वे वास्तव में ही अष्टांग आयुर्वेद की उन्नति के इच्छुक हैं तो हम उनकी हृदय से सफलता चाहते हैं।

इस समिति ने आयुर्वेदिक चिकित्सकों के लिये एक प्रश्नावली प्रसारित की है। अनुसंधान संस्थाओं, आतुरालयों एवं निर्माणशालाओं आदि के लिये भी भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रश्नावलियां प्रसारित की गई हैं। यह दुःख की बात है कि आयुर्वेद से सम्बन्धित यह प्रश्नावलियां हिन्दी में न होकर अंग्रेजी भाषा में हैं जिन्हें अधिकांश वैद्यबन्धु समझने में असमर्थ होंगे। बहुत से वैद्यबन्धु या तो उनका उत्तर ही न देंगे या देंगे भी तो अंग्रेजी की सम्यक् जानकारी के अभाव में वह गलत हो सकता है। ऐसी स्थिति में समिति द्वारा संकलित आंकड़े एवं प्रतिपादित सम्मति कहां तक प्रामाणिक होंगे यह एक विचार का विषय है।

आयुर्वेद क्षेत्र में वर्तमान में जो अनुसन्धान कार्य हो रहे हैं वह सन्तोषजनक नहीं हैं यह हम इन पंक्तियों में पहले भी कई बार लिख चुके हैं, अतः उनसे कोई अच्छा परिणाम निकलेगा इसकी आशा कम ही है। सरकार ने स्वयं कई अनुसन्धानशालायें खोली होतीं जिनमें सर्वथा आयुर्वेद शास्त्र के अनुसार एवं आयुर्वेदार्थ ही शोध का कार्य योग्यतम आयुर्वेद विद्वानों द्वारा किया जाता तो वास्तविक अनुसन्धान होता और उसका परिणाम भी सन्तोषजनक निकलता। बम्बई में यूनिवर्सल हैल्थ इंस्टिट्यूट में इसी प्रकार का अनुसन्धान कार्य किया जा रहा है। वहां अष्टांग आयुर्वेदानुसार तीन विशेष रोगों शोथ, वातव्याधि एवं श्वास पर सफल परीक्षण किये जा रहे हैं। आयुर्वेद शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान और चिकित्सक श्री पं० हरिदत्त जी शास्त्री एवम् वैद्यरत्न श्री पं० शिवशर्मा द्वारा इन रोगों में विलक्षण सफलता प्राप्त की जा रही है। गत मास में मैंने स्वयं वहां के कार्य को देखा और मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूं कि आयुर्वेदिक संस्थाओं में इसी प्रकार के अनुसंधान कार्य से आयुर्वेद का

वास्तविक स्वरूप सामने आ सकता है। वहां अब पंचकर्म का विभाग भी खोल दिया गया है जिसमें आयुर्वेद की इस विशिष्ट चिकित्सा पद्धति पर भी अनुभव प्राप्त किये जायेंगे। जामनगर जैसी अनुसंधानशालाओं से आयुर्वेद का कोई वास्तविक हित सिद्ध नहीं हो सकता जहां अनुसंधान का कार्य इस दृष्टि से किया जा रहा है कि उसमें सफल कतिपय प्रयोगों को एलोपैथी में समाविष्ट कर लिया जाय।

इसी प्रकार सरकार यदि व्यक्तिगत रूप से भी विशिष्ट वैद्य विद्वानों को शोध के लिये सहायता दे, डाक्टरों के समान उनका सम्मान करे और उन्हें सुविधायें प्रदान करे तो आयुर्वेदाभ्युन्नति का मार्ग प्रशस्त हो सकता है अन्यथा वर्तमान युग की विषम परिस्थितियों में वैद्यों से व्यक्तिश: शोध कार्य की आशा रखना एक दुराशा मात्र ही है। आयुर्वेद का क्षेत्र बहुत विशाल है और उसमें अनुसंधान के लिये करोड़ों रुपये की धनराशि की आवश्यकता है। अभी २ श्री पं० ठाकुरदत्त जी शर्मा अमृतधारा देहरादून, ने वैद्यराज श्री महादेव नारायण भिडे, बंगलौर, द्वारा किये गये अनुसन्धान कार्य का विवरण भेजा है जिसमें उन्होंने बताया है कि वे २५ वर्ष का दीर्घकाल और [illegible] लाख की अतुल धनराशि व्यय करने के पश्चात् पारद की मारन क्रिया तक पहुंचे हैं। किन्तु इस प्रकार समय और धनराशि व्यय करने की क्षमता वैद्य समाज में बहुत कम लोगों में है—इस प्रकार के कार्य बिना सरकारी सहायता के सम्पन्न नहीं किये जा सकते। एलोपैथी का जो कुछ उत्कर्ष दृष्टिगोचर हो रहा है वह केवल सरकार की अतुल आर्थिक सहायता के कारण ही है। यदि सरकार इस पर से अपना वरद हाथ उठा ले तो उसकी वास्तविकता तुरन्त ही प्रत्यक्ष हो जायेगी। हमें आशा है कि समिति अपनी रिपोर्ट देते समय इन सब परिस्थितियों को भी विचार में रखेगी और तदनुसार ही अपने सुझाव प्रस्तुत करेगी।

स्वास्थ्य मंत्रालय की गति विधि—

गत दिनों दिल्ली में हैजे का भयंकर प्रकोप हुआ जिस पर दिल्ली निगम एवं लोक-सभा में भी पर्याप्त चर्चा और वाद-विवाद हुआ। गत २८ अगस्त को ऐसे ही अवसर पर लोक-सभा में केन्द्रीय स्वास्थ्य-मंत्री श्री करमरकर ने बताया कि राजधानी में हैजा फैलने का कोई भय नहीं है, जो रोग वर्तमान में फैला हुआ है वह केवल पाकाशय शोथ है जो गन्दे पानी के परिणाम स्वरूप फैला है। श्री करमरकर की इस घोषणा के दो-तीन घण्टे पश्चात् ही उसी दिन दिल्ली निगम के अधिकारियों की यह घोषणा पढ़ कर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ा कि यह बीमारी पाकाशय शोथ न होकर हैजा है। कुछ ही समय के अन्दर इस प्रकार की दो परस्पर विरोधी घोषणायें सुन कर मंत्री महोदय की अनभिज्ञता पर प्रत्येक व्यक्ति को दुःख होगा। मंत्री महोदय को अपने विभाग की पूर्ण जानकारी प्रतीत नहीं पड़ती और उनके विभागाधिकारी ही सब कुछ करते रहते होंगे। एक ऐसे उत्तरदायित्वपूर्ण मंत्रालय जिसका कि सम्बन्ध जनता के स्वास्थ्य और जीवन से है के लिये इस प्रकार की अज्ञानता।

एवं खिलवाड़ अशोभनीय है। मन्त्री महोदय को पूर्ण जानकारी प्राप्त करके ही कुछ घोषणा करनी चाहिये थी अन्यथा स्वास्थ्य मन्त्रालय के वक्तव्यों पर जनता को विश्वास ही न रहेगा।

दिल्ली में जलसंकट और हैजे का प्रकोप——

इसके अतिरिक्त हैजे की रोकथाम के विषय पर भी यहां विचार करना उचित होगा। नगर में हैजे के प्रसार का निश्चय होते ही सरकार की टीके लगाने की मशीन का चक्र घूम गया, सड़कों के किनारे, पटरियों पर, गली-कूचों में, स्कूलों एवं अन्य सार्वजनिक स्थानों में सर्वत्र टीके लगाने वाले कर्मचारियों ने हैजे के विरुद्ध मोर्चा लगा दिया। स्कूलों में बच्चों की अवस्था का ख्याल किये बिना ही बलपूर्वक टीके लगाये गये, एक ही सुई बिना उबाले प्रत्येक व्यक्ति की बांह में घुसेड़ी जाने लगी जिसका परिणाम यह हुआ कि बहुत से लोग ज्वर, शोथ व सैप्टिक आदि कई प्रकार के रोगों से ग्रस्त होकर कराहने लगे। हम नहीं समझते सरकार जनता के जीवन से इस प्रकार का खिलवाड़ कब तक करती रहेगी। उसे रोग के मौलिक कारणों की रोकथाम करनी चाहिये। टीकों से कुछ लाभ न होगा।

पानी के शुद्धिकरणार्थ उसमें अधिक क्लोरीन का संमिश्रण भी रोगोत्पादक सिद्ध हो रहा है। क्लोरीन एक प्रकार का विष है जिसका अधिक प्रयोग घातक है। इसका एक विशेष उदाहरण श्री डा० वामन सदाशिव बारलिंगे संसद सदस्य हैं, जिनके पैर और टांगें १५ प्रतिशत क्लोरीन मिले पानी को पीकर सूज गए। इसी प्रकार और भी बहुत से लोग पीड़ित हुए जो हमारे देखने में आये। यदि स्वास्थ्याधिकारी इस प्रकार के मौलिक कारणों को आयुर्वेद सिद्धान्तानुसार पकड़ें तभी देश के स्वास्थ्य की रक्षा सम्भव है अन्यथा नहीं। इन डाक्टरी ढंगों से तो इस प्रकार के रोगोत्पादक कारण खड़े ही होते रहेंगे।

—स्वामी चेतनानन्द चिदाकाशी

आयुर्वेदिक पेटेन्ट औषधियां

आज भारत राज्य विदेशी मुद्रा (करेंसी) की कमी के कारण द्वितीय प्लान में कटौती करने पर विवश हो गया है। विदेशी करेंसी की कमी के कारण, जहां उसने द्वितीय पंचवर्षीय योजना में कटौती की है, वहां उसने विदेशों से आने वाली बहुत सी वस्तुओं पर भी रोक लगा दी है। उन वस्तुओं में, जिनका आयात कम कर दिया गया है, ऐलोपैथिक औषधियां भी सम्मिलित हैं। विदेशी ऐलोपैथिक औषधियों के दाम इतने बढ़ गये हैं कि वह मध्यम श्रेणी के लोगों की खरीद से बाहर हो गई हैं। यह वह स्वर्ण अवसर है जब आयुर्वेदिक औषधियां पूरी तरह पांव फैला सकती हैं और अपना खोया हुआ स्थान पुनः प्राप्त कर सकती हैं।

Digitized by Ārya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाकिस्तान हमारा पड़ोसी देश है। भारत में जो दशा आयुर्वेद की है, वही दशा पाकिस्तान में यूनानी चिकित्सा की है। वहां भी विदेशी मुद्रा में कमी हो गई है और ऐलोपैथिक औषधियों के आयात पर रोक लगी है और पाकिस्तान का हकीम समाज जाग खड़ा हुआ है। आज तक ऐलोपैथी, यूनानी चिकित्सा पर आघात करती चली आ रही थी, परन्तु आज यूनानी चिकित्सक इस अवसर से लाभ उठा कर ऐलोपैथी का सामुख्य करने के लिये सन्नद्ध हो रहे हैं।

रावलपिण्डी (पाकिस्तान) से एक पत्र 'तन्दुरुस्ती' श्री हकीम सैयद असगर अली शाह प्रकाशित करते हैं। उसके जुलाई के अंक में तिब्बी कांफ्रेंस में पढ़े गये एक लेख 'अंग्रेजी अदवियात से अफजल यूनानी अदवियात' को हकीम साहब ने लाहौर के यूनानी चिकित्सा के पत्र 'मशीर-उल-सेहत' से उद्धृत किया है।

इस लेख में कुनीन, यूकुनीन, सल्फा ट्राइडायारीन, पोटास साइट्रास, स्टोर सोल गोलियां, सल्फा गायनाडाइन, ग्रीमाल्ट सीरप, सेरालीन, स्टामन टेबलेट, कैल्सियम ओस्टोलीन, सल्फोनोमाइड टेबलेट, वैरेमन टेबलेट, मल्टो पिल्ज, बीकाडिक्स कन्सट्रेटिड की प्रतिनिधि यूनानी औषधियों के योग दिये गये हैं।

आप प्रश्न कर सकते हैं कि इससे यूनानी चिकित्सा का क्या हित होगा? इसका उत्तर यह है कि ऐलोपैथिक औषध-निर्माताओं ने तथा डाक्टरों ने जनता में यह धारणा उत्पन्न कर दी है कि ऐलोपैथिक पेटेंटों का आविष्कार साइन्स द्वारा हुआ है। देशी चिकित्सा अवैज्ञानिक है तथा वह ऐलोपैथिक पेटेन्टों के समतुल्य औषधियां निर्माण करने के अयोग्य हैं।

ऐलोपैथिक पेटेन्टों की प्रतिनिधि देशी औषधियों के क्षेत्र में आने से जनता का भ्रम दूर होगा। जनता देशी पेटेन्टों का परीक्षण करेगी और इस प्रकार देशी चिकित्सा को भविष्य में उन्नति करने का अवसर मिलेगा तथा जनता अंग्रेजी पेटेन्टों के प्रचार के माया-जाल से निकल आयेगी।

ऐलोपैथिक पेटेन्टों के समान व उनसे भी बढ़िया गुणों की औषधियों के आविष्कार के लिये भारत में भी व्यक्तिगत प्रयत्न हुआ है। अभी हाल ही में प्रकाशित धन्वन्तरि के गुप्त सिद्ध प्रयोगाङ्क में कुछ ऐसे ही योग छपे हैं।

इस अंक में पेनसलीन, कुनीन, सिरोडीन, टिंक्चर आयोडीन, कैल्शियम ओस्टोलीन, एण्टी फ्लोजैस्टीन, एम० वी० ६९३, सिवाजोल, कफ सीरप, ऐलकलाइन मिक्सचर, बैलाडोना की प्रतिनिधि देशी औषधियों के योगों के दर्शन होते हैं। आयुर्वेद के भण्डार में सब कुछ है। हम ऐण्टी बायोटिक्स, सल्फा ड्रग्ज और विविध रोगों की पेटेन्ट ऐलोपैथिक पेटेन्टों के समान

आयुर्वेदिक पेटेन्टों को जनता के सामने ला सकते हैं और ऐलोपैथिक औषध निर्माताओं को उचित उत्तर दे सकते हैं, परन्तु आवश्यकता है कि इस काम को देश की धन-सम्पन्न संस्थायें अपने हाथ में लें।

यूरोप में यह अनुसंधान कार्य मैडीकल ऐसोसियेशनों और औषध-निर्माताओं के सहयोग से होता है और व्यक्तिगत अनुसन्धान करने वालों को पुरस्कृत किया जाता है। १४-११-५७ को बम्बई के डाक्टर रुस्तम जाल वकील को हृदय रोग की एक उत्तम औषध के आविष्कार करने पर ओहियो, अमेरिका द्वारा एक सोने की मूर्ति और २५०० डालर दिये गये।

भारत में आयुर्वेदिक संस्थाओं और आयुर्वेदिक औषध-निर्माताओं के सहयोग से एक कोओपरेटिव सोसायटी बननी चाहिये। यह सोसायटी जनता में प्रचलित प्रसिद्ध ऐलोपैथिक पेटेन्टों की एक सूची बनाये। इन पेटेन्टों की प्रतिनिधि आयुर्वेदिक औषधियां खोज करें, इन औषधियों का आयुर्वेदिक हस्पतालों में निरीक्षण हो। व्यक्तिगत खोज करने वालों को पुरस्कृत किया जाय। इन औषधियों का जनता में भरपूर प्रचार हो।

इस प्रकार आयुर्वेद की जड़ प्रगति में चेतनता आ सकती है। यह वास्तविक आयुर्वेद रिसर्च होगी। जामनगर व अन्य स्थानों पर आयुर्वेद के नाम पर जो अनुसन्धान हो रहा है वह आयुर्वेदिक न होकर ऐलोपैथिक रिसर्च ही है।

यदि भारत का हैल्थ विभाग इस ढङ्ग पर रिसर्च आरम्भ करे तो यह काम शीघ्र हो सकता है। अन्य एशियाई देशों में जहां प्राचीन चिकित्सा पर रिसर्च हो रही हैं वहां इस ढङ्ग को अपनाया गया है।

भारत के औषध-निर्माताओं को इस ओर अग्रसर होने की आवश्यकता है। जिस ढङ्ग पर भारत के औषध-निर्माता चल रहे हैं, उसमें भारी परिवर्तन की आवश्यकता है। उन्हें यूरोप के ऐलोपैथिक पेटेन्ट औषधों के निर्माताओं की नीति का अनुकरण करके अपने आपको आयुर्वेद का एक अङ्ग प्रमाणित करना चाहिये।

—हरिकृष्ण सहगल

४३ वां अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन दिल्ली

६, ७ व ८ दिसम्बर की तिथियां निश्चित

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के सब सदस्य महानुभावों को सूचित किया जाता है महासम्मेलन-विद्यापीठ के दिल्ली में सम्पन्न होने वाले ४३वें वार्षिक अधिवेशन के लिये त-समिति ने ६, ७ व ८ दिसम्बर १९५८ की तिथियां निश्चित की हैं जिन्हें श्रीमान् म्मेलनाध्यक्ष जी ने स्वीकार कर लिया है, अतएव अधिवेशन अब इन तिथियों में धूमधाम दिल्ली में सम्पन्न होगा।

वार्षिक अधिवेशन में प्रस्ताव

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन-विद्यापीठ के वार्षिक अधिवेशन में जो महानुभाव ताव उपस्थित करना चाहें, उन्हें अपने-अपने प्रस्ताव सुस्पष्ट लिखकर कार्यालय में अधिक से क २० अक्तूबर १९५८ तक अवश्य भेज देना चाहिये। महासम्मेलन नियमावली धारा ८—१ के अनुसार वार्षिक अधिवेशन में उपस्थित करने के लिये प्रस्ताव, अधिवेशन से से कम १॥ मास पूर्व कार्यालय में आने चाहिये जिससे सभी प्राप्त प्रस्तावों को संकलित के प्रकाशित किया जा सके तथा स्थायी समिति एवं विषय निर्धारिणी समिति के समक्ष र्ती कर्तव्य के लिये प्रस्तुत किया जा सके।

वामनराव दी०, वैद्य
प्रधानमन्त्री
अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन

ANNOUNCEMENT

All India Ayurvedic Vidyapeeth, Delhi has recognised "Ayurved-ravin" (D. S. A. C.) Examination of the Shuddha Ayurvedic ourse Committee, Bombay State, Bombay for direct admission at "Ayurvedacharya" Examination of the said Vidyapeeth.

भूल-सुधार

अगस्त मासीय आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका पृष्ठ ४३९ पर 'जलोदर की सफल चिकित्सा' शीर्षक लेख में दी गई औषध व्यवस्था में "शतपुटित लौह भस्म २ तोला पुनर्नवा रस दें……" २ तोला मात्र पुनर्नवा रस की है शतपुटित लौह की नहीं। शतपुटित लौह की मात्रा १ रत्ती थी जिसे लेखक महोदय लिखना भूल गए थे। इसी पत्रिका के पृष्ठ ४४६ पर तूतिया आदि भस्म में पीली कौड़ी १२ तोला लिखा है, यह अशुद्ध है। लेखक की सूचना के अनुसार यह २॥ तोला होना चाहिये। पाठक उपरोक्त दोनों अशुद्धियों का संशोधन कर लें। —सम्पादक

यह अवसर न चूकिए ! शीघ्रता कीजिए !!

भस्में, रस आश्चर्यजनक कम मूल्यों पर

वैद्यों, औषध विक्रेताओं और धर्मार्थ औषधालयों के लिए अपूर्व अवसर !

हमारे डायरेक्टरों ने अधिक स्टाक शीघ्र बिक्री करने का निश्चय किया है इस विचार से इसे निम्नांकित आश्चर्यजनक कम भावों पर जो हमारी लागत मात्र हैं, दे रहे हैं।

नोट—(१) स्टाक कम होते ही इन भावों पर बिक्री बन्द कर दी जावेगी।
(२) २० तोला से कम कोई भी भस्म इन भावों पर न भेजी जावेगी।

शुद्ध शिलाजीत सूर्यतापी	३६) सेर	गौदन्ती भस्म	४॥) सेर	यशद भस्म	२८) सेर
अभ्रक वज् भस्म		चन्द्रप्रभावटी	२८) "	योगराजगुग्गुललघु	१५) "
" ३० पुटी	४६) "	जहरमौहरा भस्म	१८) "	रस सिन्दूर	१२५) "
" ६० पुटी	६०) "	त्रिवङ्ग भस्म	४८) "	लोह भस्म	२४) "
अर्कीक भस्म	५०) "	नाग भस्म पीत	२४) "	शङ्ख भस्म	७) "
कर्पादिका भस्म	८) "	प्रवाल भस्म	३६) "	भृङ्गराज भस्म	१४) "
कुक्कुटांडत्वक भस्म	१८) "	प्रवाल चन्द्र पुटी	३६) "	स्वर्णमाक्षिकभस्म	२८) "
कांत लोह भस्म	२८) "	बङ्ग भस्म श्वेत	३६) "	स्वर्णबङ्ग नं. १,	११०) "
कसीस भस्म	१०) "	मण्डूर भस्म	२०) "	स्वर्ण सिन्दूर (चन्द्रोदय)	४) तोला
		मुक्ता शुक्ति भस्म	१४) "		

च्यवनप्राश, (नया) पाव के पैंकिंग में १५) दरजन, खुला ५ सेर का २१), १० सेर का ३८)
सुपारी पाक " " " " १८) " " ५ " २६), १० " " ४६)

द्राक्षासव, लोहासव, अशोकारिष्ट के १ पौंड पैंकिंग १५) दर्जन।

काश्मीर आयुर्वेदिक वर्क्स, जी० टी० रोड, अमृतसर।

प्रताप आयुर्वेदिक फार्मेसी प्रा० लि० के

आशुफलप्रदआयुर्वेदीय इन्जैक्शन

हिमालय के अंचल देहरादून में सरकार द्वारा लायसैन्स प्राप्त लेबोरेटरी में आयुर्वेदीय औषधों के मूलतत्वों का पूर्ण अनुसन्धान करने के उपरान्त प्राचीन और आधुनिक विज्ञानवेत्ता, सिद्धहस्त वैज्ञानिकों की देख-रेख में इन्जैक्शन तैयार किये जाते हैं जो पूर्णतया निरापद विशुद्ध प्रामाणिक हो चुके हैं। प्रत्येक वैद्य का कर्त्तव्य है कि इन आशुफलप्रद पूर्णतया विशुद्ध एवं चमत्कारिक गुणकारी इन्जैक्शनों को प्रयोग में लाकर लाभ उठावें।

प्रताप आयुर्वेदिक फार्मेसी लि०
इन्जैक्शन ब्रांच
१६७-राजपुर रोड, देहरादून (उ. प्र.)

सूचना

असली केसर, कस्तूरी, शिलाजीत, सच्चे मोती, गोरोचन, अम्बर व अष्टवर्ग, अशोक छाल, सर्पगन्धा आदि जड़ी-बूटियां शुद्ध और सस्ती खरीदने के लिए

कालिया ब्रदर्स रजिस्टर्ड,
जालन्धर शहर (पंजाब)
से
पत्र व्यवहार करें।

❀ पञ्चविधकषायकल्पनम् ❀

आयुर्वेदाचार्य श्री वागीश्वर शुक्ल, ए० एम० एस० (काशी)

सेन्ट्रल रिसर्च इंस्टीट्यूट, जामनगर

(गतांकादूर्ध्वम्)

पाण्ड्वामयानन्तरमम्लपित्तरोगस्य चिकित्सार्थमुपयुज्यमानस्वरसानां संग्रहे प्रवर्तिष्ये । माधवनिदानोक्तोयं श्लोकः स्पष्टं द्योतयति यदस्मिन्नपि रोगे पित्तस्यैव प्राधान्यं वर्तते । उक्तं हि तत्र निदानप्रतिपादनावसरे—

"विरुद्ध दुष्टाम्ल विदाहि पित्तप्रकोपि पानान्नभुजो विदग्धम् ।
पित्तं स्वहेतूपचितं पुरा यत्तदम्लपित्तं प्रवदन्ति सन्तः ॥" इति

यद्यप्यत्र श्रीकण्ठदत्तेनोक्तं "पित्तश्लेष्ममिलितरूपस्याम्लपित्तस्य निदान" मिति, किन्तु मूलकृतपाठेनानादृतत्त्वात्तन्नातिशोभनं प्रतिभाति । यतस्तेनैवोक्तमग्रे "यदेवंविधपानान्ने भुञ्जानस्य विदग्धं = कुपितम्, स्वहेतूपचित पुरा यदिति वर्षासु जलौषधिगत विदाहादिभिः स्वहेतुभिरुपचितं = सञ्चयमापन्नमित्यादि ।"

ननु यदा पूर्वसञ्चितं पित्तं स्वप्रकोपकनिदानविदाह्यम्लगुणादिभिरुद्रिक्तं भवति, तत्कथमुक्तं पित्तश्लेष्ममिलितरूपस्याम्लपित्तस्येति ? चेदुच्यते, तत् स्खलनमेव टीकाकृताम् ।

अस्माकं शास्त्रे परम्परा विद्यते यत् परं प्रति प्राचामाचार्याणां मतं प्रमाणम् । यद्यपि युक्तियुक्तं वचनं सर्वस्यैव ग्राह्यम्, किन्तु लोको निरंकुशः । अत एव माधवकरस्य मतमभिनवमिति कस्यापि यदि विचिकित्सा स्यादम्लपित्तस्य पित्तारब्धत्वं प्रति तदा प्राचीनानां मतं परिज्ञातुमीहा क्रियते ।

चरकसंहितायां ग्रहणीचिकित्सितप्रतिपादनावसरे चिकित्सापञ्चदशाध्याये एतावन्मात्रमेवोक्तम्—

"............................घोरमन्नविषञ्च तत् ।
संसृज्यमानं पित्तेन दाहं तृष्णां मुखामयान् ।
जनयत्यम्लपित्तञ्च पित्तजांश्चापरान् गदान् ॥" इति

अत्रोच्यते चक्रपाणिना—"घोरमन्नविषं च तत् पित्तेन संसृज्यमानमित्यादिना पित्तादिदुष्टस्याजीर्णस्य लक्षणमाह । अम्लपित्तञ्चेति अम्लगुणोद्रिक्तं पित्तम्" । इति किन्तु जनयत्यम्लपित्तञ्च पित्तजांश्चापरान् गदानिति वाक्यं स्पष्टमेव द्योतयति यदम्लपित्तं पित्तजमेव वर्तते । अत एवास्य तन्त्रान्तरोक्तमिदं लक्षणं तेन स्वीकृतम्—

"अविपाकक्लमोत्क्लेदतिक्ताम्लोद्गारगौरवैः ।
हृत्कण्ठदाहारुचिभिश्चाम्लपित्तं वदेद्भिषक् ॥" इति

लक्षण—निदानादिकं दृष्ट्वा स्पष्टं भवति यद् व्याधिरयं पित्तप्रधान एव । सुश्रुत-भेलयोरप्युभयोः संहितयोरस्य रोगस्य वर्णनं न दृश्यते । काश्यपसंहितायां तु खिलस्थाने षोडशाध्यायेऽस्य रोगत्वेन वर्णनं लभ्यते । तदप्यस्य पित्तारब्धत्वमेव प्रमाणयति । तत्रोक्त विरुद्धाध्यशनादिसेवनात् कुपिता वातादयः पूर्वं मन्दाग्नि जनयन्ति, पश्चात्तैरेव निदानैंपित्तप्रकोपपूर्वकमम्लपित्तस्योत्पत्तिर्जायते । उक्तं हि तत्र—

"वातादयः प्रकुप्यन्ति तेषामन्यतमो यदि ।
मन्दीकरोति कायग्निमग्नौ मार्दवमागते ॥
एतान्येव तथा भूयः सेवमानस्य दुर्मतेः ।
यत्किञ्चिदशितं पीतं देहिनस्तद्धि दह्यति ॥
विदग्धं शुक्ततां याति शुक्तमामाशये स्थितम् ।
तदम्लपित्तमित्याहुर्भूयिष्ठं पित्तदूषणात् ॥" इति (का. खि. १६ अ.)

चरकोक्तेन "संसृज्यमानं पित्तेनेति" वचनेन तथा काश्यपोक्तेन "तदम्लपित्तमित्याहुर्भूयिष्ठं पित्तदूषणादि" ति वचनाभ्यामस्य पित्तप्राधान्यं स्पष्टं भवति । अतः पित्तप्रधानाम्लपित्तरोगे प्रयोज्यस्वरसानां संग्रहे प्रवर्तिष्ये यथाहुरात्रेयधन्वन्तरिप्रभृतयो महर्षयस्तदुत्तरकालिकाऽऽचार्यश्च—

दृश्यते ह्यम्लपित्तचिकित्सासूत्रं चक्रदत्त—भावप्रकाश—बंगसेनप्रभृतिषु ग्रन्थेषु । उक्तं हि तत्र

"ऊर्ध्वगं (अम्लपित्तं) वमनैर्विद्वानधोगं रेचनैर्जयेत्" इति । अतः पूर्वमधोगस्य चिकित्सितमुच्यते, विरेकस्य सुखोपायत्वात्—

(१) विरेचनं त्रिवृच्चूर्णं मधुधात्रीफलद्रवैः । भा० प्र० म० १० अ०, भैं० र० चक्रदत्त बंगसेनयोरपि

(२) छिन्नोद्भवा निम्बपटोलपत्रं क्षौद्रान्वितं पीतमनेकरूपम् ।
सुदारुणं हन्ति तदम्लपित्तं यथाशनिस्तालतरुं प्रवृद्धम् ॥ उपर्युक्त ग्रन्थेष्वेव

(३) एलापटोलघनचन्दनधान्यधात्री वांशीवरांगदलनागकरणाऽभयाभिः ।
लेहः सिताज्यमधुभिः सितया च पिण्डी सम्यक् कृता शुभदिनेन सुमन्त्रपूता ।।
बंगसेने इत्येतदधिकं पठ्यते । शेषं समम्—
हन्त्यम्लपित्तवमनारुचिदाहमोहखालित्यमेहशिशिरव्रणशुक्रदोषान् ।
भुक्त्वा नरः सततमामलकीरसेन वृद्धोप्यनेन हि भवेत्तरुणो रिरंसुः ।।
भा० प्र० म० १० ग्र०

(४) जम्बीरस्वरसः पीतः सायं हन्त्यम्लपित्तकम् । चक्र० ग्रम्लपित्त चि० योगरत्नाकरेऽपि च

पित्तारब्धव्याधीनां कथनावसरे पारिशेष्यात् ये पित्तनानात्मजविकाराः ग्रायुर्वेदिकवाङ्मये[1] लभ्यन्ते, तेषामपि परिगणनमिहावश्यकं प्रतिभाति । यद्यपि तेऽणवः स्थूलाश्चोभयविधाः सन्ति, केषाञ्चिद्वर्णनमपि यत्र तत्र विस्तरेण दृश्यते किन्तु बाहुल्येन तेषां व्यक्तरूपेण निदान-सम्प्राप्ति-पूर्वरूप-रूपोपशयचिकित्सादिक्रमेण विवरणं कुत्रापि नोपलभ्यते, ग्रतस्तेषां नामसंकीर्तनमेव क्रियते । यद्यपि ते विकाराः संहिताग्रन्थेषु चत्वारिंशत्संख्याका एव व्याख्याताः किन्तु विभिन्नशास्त्रेषु गवेषणया ते पञ्चचत्वारिंशत् परिमिता लभ्यन्ते । तद्यथा—

---

[1] —चरक सूत्रस्थाने महारोगाध्याये—

पित्तविकारांश्चत्वारिंशत्तमत ऊर्ध्वं व्याख्यास्यामः, तद्यथा—
ग्रोषश्च (ग्रोषः = पार्श्वस्थितेनेव वह्निना पीडेति चक्रः), प्लोषश्च (प्लोषः = किञ्चिद्दहनमिवेति चक्रः), दाहश्च (दाहः = सर्वांगदहनमिवेति चक्रः); दवथुश्च (दवथुः = धगधगिकेति लोके ख्यातेति चक्रः), धूमकश्च (धूमकः = धूमोद्गमनमिवेति चक्रः) ग्रम्लकश्च, विदाहश्च, ग्रन्तर्दाहश्च, ग्रंसदाहश्च, ऊष्माधिक्यं च, ग्रंग-(स्वेदः) गन्धश्च, ग्रंगावदरणं (ग्रवयवसदनमिति वृद्धवाग्भटः) च, शोणितक्लेदश्च, मांसक्लेदश्च, त्वग् (मांस) दाहश्च, त्वगवदरणं च (त्वगवदरणम् = बाह्यत्वङ्मात्रावदरणम्, चर्मावदरणं तु षण्णामपि त्वचां दरणम्) चर्मदलनञ्च, रक्तकोठश्च, रक्तविस्फोटश्च, रक्तपित्तञ्च (दोषान्तरासंपृक्तं रक्तपैत्तिकं ज्ञेयम्), रक्तमण्डलानि च, हरितत्वं च हारिद्रत्वञ्च, नीलिका च, कक्ष्या (क्षा) च (कक्षदेशगतमांसदरणमिति चक्रः) कामला च, तिक्तास्यता च, लोहितगन्धास्यता च, पूतिमुखता च, तृष्णाधिक्यं च (तृष्णामात्रमिति चक्रः), ग्रतृप्तिश्च, ग्रास्यविपाकश्च, गलपाकश्च, ग्रक्षिपाकश्च, गुदपाकश्च, मेढ्रपाकश्च, जीवादानं च (ग्रतितीक्ष्णं मृदौ कोष्ठे लघुदोषस्य भेषजम्) दोषान् हृत्वा विनिर्मथ्य जीवं हरति शोणितम् ।। इति ज्ञेयम् च० सि० ग्र० ६।७३) तमःप्रवेशश्च, हरित-हारिद्रनेत्रमूत्रवर्चस्त्वञ्चेति चत्वारिंशत् पित्तविकाराः पित्तविकाराणामपरिसंख्येयानामाविष्कृततमा व्याख्याताः ।। च० सू० २० ग्र० १६

(१) अक्षिपाकः
(२) हरितनेत्रत्वम्
(३) हारिद्रनेत्रत्वम्
(४) तमः प्रवेशः
(५) आस्यपाकः
(६) तिक्तास्यत्वम्
(७) लोहितगन्धास्यत्वम्
(८) पूतिमुखत्वम्
(९) तृष्णाधिक्यम्
(१०) गलपाकः
(११) अंसदाहः
(१२) कक्षा
(१३) धूमकः
(१४) अम्लकः
(१५) विदाहः
(१६) अतृप्तिः
(१७) मेढ्रपाकः
(१८) गुदपाकः
(१९) रक्तपित्तम्
(२०) कामला
(२१) हरितत्वम्
(२१) हारिद्रत्वम्
(२३) नीलिका
(२४) अंगावदरणम्
(२५) त्वगवदरणम्
(२६) चर्मदलनम्
(२७) रक्तकोठः
(२८) रक्तविस्फोटः
(२९) रक्तमण्डलम्
(३०) त्वग्दाहः
(३१) दाहः
(३२) दवथुः
(३३) ओषः
(३४) प्लोषः
(३५) ऊष्माधिक्यम्
(३६) अन्तर्दाहः
(३७) अतिस्वेदः
(३८) अंगगन्धः
(३९) जीवादानम्
(४०) शोणितक्लेदः
(४१) मांसक्लेदः
(४२) हरितमूत्रत्वम्
(४३) हारिद्रमूत्रत्वम्
(४४) हरितवर्चस्त्वम्
(४५) हारिद्रवर्चस्त्वम् ।

(२) पित्तविकाराः पुनः ओषः प्लोषो दवोदववथुर्बिदाहोऽन्तर्दाहस्त्वग्दाहोंऽसदाहो धूमकोऽम्लक ऊष्माधिक्यमतिस्वेदोऽङ्गगन्धोऽवयवसदना शोणितक्लेदो मांसक्लेदस्त्वग्मांसदरणं चर्मदरणं रक्तकोठो रक्तविस्फोटो रक्तमण्डलानि रक्तपित्तं हरितत्वं नीलिका कक्ष्या कामला तिक्तास्यता लोहितगन्धास्यता पूतिमुखत्वं तृष्णाधिक्यमतृप्तिरास्यपाको गलपाकोऽक्षिपाकः पायुपाको जीवादानं तमःप्रवेशो हरितहारिद्रनेत्रमूत्रशकृत्त्वं च । (अ० सं० सू० २० अ०)

ओषादयः पीतशकृत्वान्ताश्चत्वारिंशत् पित्तविकाराः अत्र प्राधान्येन पित्तम्—

(३). ओषः प्लोषो भ्रमो दाहो वमथुर्धूमकाम्लकौ ।
अन्तर्दाहो ज्वरोत्यौष्ण्यमतिस्वेदोऽङ्गदाहकः ॥
त्वग्दाहशोणितक्लेदो मांसक्लेदोऽङ्गशीरणम् ।
मांसपाकश्चर्मदलो रक्तविस्फोट मण्डले ॥
रक्तपित्तं च कोठांश्च कक्ष्या हारिद्रनीलिके ।
कामला तिक्तवक्त्रत्वं रक्तगन्धास्यता तथा ॥
अतृप्तिः पूतिवक्त्रत्व जीवदानं तमः तृषा ।
मेढ्र पायुगलाक्ष्यास्य पाको हारिद्रमूत्रविट ॥ इति (का० संहिता)

(४) धूमोद्गारो विदाहः स्यादुष्णांगत्वं मतिभ्रमः ।
कान्तिहानिः कण्ठशोषो मुखशोषोऽल्पशुक्रता ॥
तिक्तास्यताम्लवक्त्रत्वं स्वेदोस्रावोऽङ्गपाकता ।
क्लमो हरितवर्णत्वमतृप्तिः पीतगात्रता ॥
रक्तस्रावोऽङ्गदरणं लोहगन्धास्यता तथा ।
दौर्गन्ध्यं पीतवक्त्रत्वमरतिः पीतविट्कता ॥
पीतावलोकनं पीतवक्त्रता पीतदन्तता ।
शीतेच्छा पीतनखता तेजोद्वेषोऽल्पनिद्रता ॥
कोथश्च गात्रसादश्च भिन्नविट्कत्वमन्धता ।
उष्णोच्छ्वासत्वमुष्णत्वं मूत्रस्य च मलस्य च ॥
तमसो दर्शनं पीतमण्डलानां च दर्शनम् ।
निःसरत्वं च पितस्य चत्वारिंशद् रुजः स्मृताः ॥ (शा० प्र० ७ अ० ११५-१२१)

पित्तभवा रोगा इति "स्वहेतुदुष्टेन स्वतन्त्रेण पित्तेन जनिता" इत्यर्थः ।

तत्र "धूमोद्गारो" धूमायनं 'ध्वाँइधीति' शब्दवाच्यः, मुखाद्धूमोद्गिरणमिव भवति । शिरो ग्रीवा मुखतालुभ्यः धूमस्य उद्गिरणं = निःसरणम् ।

विदाहो—विशेषोदुषो दाहः । अत्र विदाहशब्देन उषादिदाहः, तेषां षण्णां ग्रहणं कार्यं पित्तजन्यत्वात् । उषादिलक्षणं च—

"दाहः सर्वाङ्गसन्ताप उषः सस्वेदताऽरतिः ।
यः क्वापि देहावयवे चोषः स्यादग्निनैव सः ॥
पाणि पादांशमूलेषु विदाहो विविधो मतः ।
दाहस्तु मुखताल्वोष्ठे दवथुश्चक्षुरादिषु ॥
कोष्ठदाहोऽन्त्रदाहः स्याद्देहदाह उषो मतः ।"

एते सर्वेऽपि पित्तोष्मजाः । उक्तं च—

"ऊष्मापित्ताद्दते नास्ति ज्वरो नास्त्यूष्मतां विना ।
तस्मात् पित्तविरुद्धानि त्यजेत् पित्ताधिकेऽधिकम् ॥" इति

अत एव उष्णांगत्वं पित्तजमेव । अनेनैव कारणेनाऽपि संग्रहे पित्तविकारेषु "पित्तविकाराः पुनः ओष-चोष-दाह-दवथु-विदाह-सदाहाः त्वग्दाहोऽन्तर्दाह" इत्युक्तम् ।

तथा च मतिभ्रमोऽत्र पित्तभव एव न तु वातमद्यादिजो बुद्धिनाशः । ननु पित्तस्य "पक्त्यूष्मदर्शनैः, क्षुत्तृट्रुचिप्रभामेधाधीशौर्यतनुमार्दवै" रित्यादिना शरीरोपाकरणःदाधिक्यं स्यादिति चेन्न—

"ऊष्मणो जन्मनो यस्य तत एव स सीदति ।
उपघातस्तु तेनैव तथा नेत्रस्य तेजसः ॥"

इति न्यायात् पित्ताधिक्याद् बुद्धिनाश इतिस्थितम् ।

कान्तिहानिः पित्तदग्धशरीरत्वात् न तु वातादिवत् कार्श्यादि । कण्ठशोषे मुखशोषश्च तयोः शुष्कत्वं तदूष्मणः शुष्कद्रवत्वम् । अल्पशुक्रता पित्तादेव । तिक्तास्यता = तिक्तो निम्बादिस्तद्वदास्यं । अम्लास्यता = अम्लमुखता ननु, वाग्भटे—

"कटुकाम्लौ रसौ वर्णः पाण्डुरारुणवर्जितः ।" इत्युक्तं, इह तु तिक्त इति विरोधः । मैवम्—वाग्भटोक्तस्य "कटुः स्यात् कटुतिक्तयोः" इति वचनात् तिक्त एवार्थः, "कषायतिक्तमधुरं वातादिषु मुखक्रमाद्" इत्यादि वचनाच्च ।

स्वेदो घर्मस्तस्य स्रावः स्रुतिः ।

अंगपाकता = अंगपाकत्वम् ।

क्लम इति—"योऽनायासः श्रमो देहे प्रवृद्धः श्वासवर्जितः ।
विज्ञेयः स क्लम इति इंद्रियार्थ प्रबाधकः ॥" इति सु० शा० ४ अ०

हरितवर्णत्वम् = हरितवर्णता आधुनिकैः "CHLOROSIS" इतिख्यातः, "देहो हरितहारिद्र" इत्यादि वचनदर्शनाच्च ज्ञेयम् ।

अतृप्तिः = तृप्तिर्न भवति । पीतगात्रता = पीतशरीरत्वम् । रक्तस्रावः = रक्तस्य स्रवणम् । अंगस्य दरणं = विदरणम् ।

लोहगन्धास्यता—लोहं कालायसं तद्वन्मुखगन्धो भवति । दौर्गन्ध्यं—अंगानाम् । पीतमूत्रत्वम् = हरिद्रा (जल) क्वाथवत् पीतमूत्रत्वम् । अरतिः = सर्वत्राप्रीतिः । पीतविट्कता = पीतपुरीषिता । पीतावलोकनम् = वस्तुषु पीततादर्शनं, नेत्रादिषु पीतता च । पीतदन्तता = दन्तेषु पीतत्वम् । शीतेच्छा = शीतवस्तुनोऽभिलाषः । पीतनखता = पीतनखत्वम् । तेजोद्वेषः = तैजसवस्तुद्वेषः । अल्पनिद्रता = अल्पनिद्रत्वम् ।

कोपश्च पित्तस्यैव, रक्तकोपता तु रक्तजेषूक्तत्वात् । किंत्वत्रेदमवधेयं यत् कोपशब्दः क्रोधवाची विद्यते न तु पित्तदोषकोपवाची अतः टीकाकृतां मतं विपश्चितैश्चिन्तनीयम् ।

गात्रसादो = गात्रसदनम् । भिन्नविट्कत्वम् = भिन्नपुरीषिता । अन्धता नेत्रस्यैव । उष्णत्वं मलस्य च मूत्रस्य चेति द्वयोरप्यौष्ण्यं पित्तभवत्वात् । अम्लपित्तरोगे इमौ लक्षणौ प्रायेण दृश्येते इति प्रत्यक्षीकृतमस्माभिः ।

तमोदर्शनं = अन्धकारदर्शनम् । पीतमण्डलानां दर्शनम् = पीतानि यानि मण्डलानि तेषां दृष्टिः (दृष्टि पथ्यागमनम्) ।

निस्सहत्वमिति निःसहता इति चत्वारिंद्रुजः पित्तजनिताः ॥

(इत्याढमल्लप्रणीतायां दीपकायाम्)

अथाम्लपित्तचिकित्सायां स्वरसार्थमुपयुज्यमानद्रव्याणां परिचयपूर्वकमकाराद्यनुक्रमणिका

आयुर्वेदशास्त्रीयनाम	वनस्पतिशास्त्रीयनाम	द्रष्टुः नाम AUTHOR'S NAME	जाति NATURAL ORDER	राष्ट्र (हिन्दी) भाषायां नाम	विशेषः (प्रयोज्यांगम्)
(१) अभया	TERMINALIA CHEBULA	Retz	Combretacal	हरड़	फलम्
(२) एला	ELETTARIA CARDAMOMUM	—	Scitaminacal	इलायची	,,
(३) चन्दन	——	—	—	चन्दन	काष्ठम्
(४) धात्रीफल	PHYLLANTHUS EMBLICA	L	Euphorbiacal	आँवला	फलम्
(५) धान्य	CORIANDRUM SATIVUM	—	Umbeliferal	धनियाँ	,,
(६) नागकरणा	PIPER LONGUM	L	Piperaceal	पीपर	,,
(७) निम्बः	AZARDIARCHTA INDICA	L	Meliacal	नीम	पञ्चाङ्गम्
(८) पटोल	TRICHOSANTHOSDIOICA	—	Cucurbitacal	परवल	पत्रम्
(९) वराङ्गदल	CINNAMOMUM ZEYLANICUM	—	Lauracal	दालचीनी	त्वक्
(१०) वांशी	BAMBUSA-AURANDINACAE	—	Gramineol	वंशलोचन	वंशमध्यस्थठोस पदार्थम्
(१२) घन	CYPER SCARIOSUR OR ROTUNDUS	—	Cyperaceal	मोथा, मुस्ता	पञ्चाङ्गम्
(१२) छिन्नोद्भवा	TINOSPORACORDIFOLIA	—	Menspermacal	गुडूची	काष्ठम्
(१३) जम्बीरः	CITROUS LIMONUM	—	Rutaceal	कागजी नीबू	फलम्

अपस्मार — मिर्गी

लेखकः—आयुर्वेदाचार्य श्री पं० नानकचन्द्र वैद्य शास्त्री, १८ ए, प्रताप बाग, दिल्ली।

यह रोग अत्यन्त भयंकर होता है। जिस व्यक्ति को यह व्याधि हो जाती है उसे सदा शंका बनी रहती है कि न जाने किस समय वेग आजाये। इस व्यक्ति की बुद्धि में सदा भ्रम होने से यह शंका रहती है।

इस रोग में स्मृति का नाश हो जाता है तथा अन्धकार का होना, भयानक चेष्टा होने लगती है अतः इसे अपस्मार संज्ञा दी गई है।

चरके यथा—'-स्मृतेरपगमं प्राहुरपस्मारं भिषग्विदः।
तमः प्रवेशं वीभत्सचेष्टं धीसत्वसंप्लवात् ॥१॥

हेतूनाह—विभ्रान्तबहुदोषाणामहिताशुचिभोजनात्।
रजस्तमोभ्यां विहते सत्वे दोषावृते हृदि ॥२॥

चिन्ताकामभयक्रोधशोकोद्वेगादिभिस्तथा।
मनस्यभिहते नृणामपस्मारः प्रवर्तते ॥३॥

अर्थात् जिन व्यक्तियों के उन्मार्गगत बहुत दोष हो जाते हैं और उनका सत्वगुण नष्टप्राय हो जाता है तथा हृदय के दोषावृत्त होने से, चिन्ता कामादि से तथा उद्वेग होने से मन के अभिहत होने पर मनुष्य को अपस्मार होता है।

पूर्वरूपमह—हृत्कम्पः शून्यता स्वेदो ध्यानं मूर्छा प्रमूढ़ता।
निद्रानाशश्च तस्मिश्च भविष्यति भवत्यथा ॥४॥

हृत्कम्प, हृदय का शून्य होना, स्वेद, ध्यानावस्था, मन में मोह, इन्द्रियों की अकर्मण्यता होना। यह वातादि दोषों से तथा सन्निपात से, चार प्रकार का कहा है।

वातिकं—कम्पते प्रदशेद्दन्तान् फेनोद्वामी श्वसत्यपि।
परुषारुणकृष्णानि पश्येद्रूपाणि चानिलात् ॥५॥

पैत्तिकं—पीतफेनांगवक्त्राक्षः पीतासृग्रूपदर्शनः।
सतृष्णोष्णानलव्याप्त लोकदर्शी च पैत्तिकः ॥६॥

श्लैष्मिकं—शुक्लफेनांगवक्त्राक्षः शीतो हृष्टांगजो गुरुः ।
पश्यञ्छुक्लानि रूपाणि श्लैष्मिको मुच्यते चिरात् ॥७॥
त्रिदोषजं—सर्वैरेतैः समस्तैस्तु लिंगैर्ज्ञेयस्त्रिदोषजः ।
अपस्मारः स चासाध्यो यः क्षीणस्यानवश्च यः ॥८॥

अर्थात् जो व्यक्ति अपस्मार के रोग से काम्पे, दान्तों से दंश करे (काटे), फेन को वमन करे, श्वास बढ़े, परुष, रक्त तथा कृष्ण रूपों को देखे तो वह वातज है। पीतवर्ण झाग हो, अंग, मुख या नेत्र पीत हो जायें, पोत तथा रक्तवर्ण ही सब दिखाई दे, तृष्णा, गरमी से व्याप्त और लोगों को भी अग्नि से व्याप्त देखे वह पित्तज है। मुख, अंग या नेत्र श्वेत हों, शीत हों, रोमाञ्च तथा भारी हों तथा श्वेत ही सब दिखाई दे, उसे कफज जानना। तीनों दोषों के मिलने से सभी उक्त लक्षण युक्त हों उसे त्रिदोषज जानना। क्षीण तथा प्राचीन रोगी असाध्य होता है।

पक्षादनन्तर १२ दिन के पश्चात् तथा एक मास में कुपित हुए मल तथा इसके मध्य में भी वेग कर देते हैं।

असाध्यमाह—प्रस्फुरन्तं सुबहुशः क्षीणं प्रचलितभ्रुवम् ।
नेत्राभ्यां च विकुर्वाणमपस्मारो विनाशयेत् ॥ ९॥

जिस रोगी के नासा, ओष्ठ अधिक स्फुरण करें तथा जो क्षीण हो, भ्रुव विचलित हों, नेत्रों से विरुद्ध चेष्टा करे तो उसे अपस्मार मार देता है।

विशेष—

जो व्यक्तिं सदा रजोगुण तथा तमोगुण से युक्त हो, मन भ्रान्त विषम हो तथा दोष अधिक हों, जो अपवित्र रहे, भूठा अन्न आदि खाये तथा पञ्चविधतन्त्र युक्ति से विषम आचरणशील हो, जिसकी देह की चेष्टा भी विषम हो, क्षीण देह वाले के दोष कुपित होकर हृदय में व्याप्त होकर तथा इन्द्रियों के स्थानों में ठहर कर जब हृदय में गमन करते हैं और हृदय कामादि से तथा हर्ष शोक आदि के उद्वेग से सहसा भर जाता है तब अपस्मार की प्रवृत्ति होती है। शेष लक्षण पूर्व वर्णित हैं।

चिकित्सामाह—

वातिक अपस्मार में प्राय: बस्ति का प्रयोग युक्त होता है। पित्त में विरेचन हित है। कफज में वमन करा देना चाहिये।

अञ्जन—

अपस्मार युक्त रोगी के लिये पुष्प नक्षत्र में कुत्ते का पित्त लेकर उसे पीस कर अंजन करना चाहिये। मनसिल, रसांजन, कपोत मल इन तीनों का अंजन करने से अपस्मार तथा उन्माद में हित होता है।

धूप—

उसी पित्ते में घृत मिला कर, धूप बना कर धूपित करने से अपस्मार रोग नष्ट हो जाता है।

नकुल, अलु, मार्जार, गीध, कीट, सर्प, काक इनके तुण्ड, पक्ष, पुरीष का धूप बना कर प्रयोग करने से भी लाभ हो जाता है।

जो व्यक्ति मधु के साथ वच का चूर्ण खाता है और दुग्ध का भोजन करता है वह रोगी भयंकर अपस्मार, यदि पुराना भी हो, उससे मुक्त हो जाता है। तैल के साथ रसौन तथा दुग्ध के साथ शतावरी तथा ब्राह्मी का रस मधु के साथ खाने से अपस्मार का नाश हो जाता है।

पञ्चगव्य घृत—

इसका प्रयोग करने से अपस्मार की शान्ति होती है अर्थात् गाय के गोबर, मूत्र, दधि, घृत, दुग्ध इन सबको सम भाग लेकर पकाने पर जो घृत शेष रह जाय उसके सेवन से लाभ होता है। अथवा "वृहत्पञ्चगव्यघृत" का प्रयोग करें यह विशेष लाभकारी होता है। इसका प्रयोग भैषज्य रत्नावलि में वर्णित है।

विचित्र प्राचीन प्रयोग—

१ सेर खर मूत्र में ५ तोला सांठी चावल भिगो दें फिर उसे ४० दिन भूमि में दबा रहने दें, बाद में निकाल कर २० तोला अर्क दुग्ध में खरल कर सम्पुट करके आग में भस्म बना कर बारीक पीस लें। रोगी को वेग के समय इसका नस्य देने से कृमि निकलेगा, इसी प्रकार दो-तीन बार नस्य देने से रोगी अच्छा हो जाता है, फिर वेग नहीं होता।

मलेरिया शत्रु सिर्फ एक मात्रा में ही मलेरिया नष्ट करने में ब्रह्मास्त्र है। आधा पौण्ड ६) रुपया।

सफेद कोढ़ की पेटेन्ट दवा ५) रुपया।
दोनों दवाओं पर वैद्य, डाक्टर, हकीम धन मान कमा रहे हैं।

विवरण-पत्र मुफ्त मंगाइये।

वैद्य वी० आर० बोरकर आयुर्वेद भवन, (आ) मु. पो. मंगरूलपीर
जिला अकोला (विदर्भ)

आयुर्वेदीय इतिहास —

प्राचीन भारत के रसायनवेत्ता

चरक, सुश्रुत और वाग्भट

लेखक – डा० रमाशंकरराय, एम० एस-सी०, डी० फिल०, रसायन विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

"निदाने माधवः श्रेष्ठ सूत्रस्थाने तु वाग्भटः ।
शरीरे सुश्रुतः प्रोक्तः चरकस्तु चिकित्सिते ।।"

अथर्ववेद तथा शतपथ ब्राह्मण की रचना के उपरान्त से लेकर गौतम-बुद्ध के आविर्भाव तक की वैज्ञानिक प्रवृत्तियों का लिपिबद्ध विवरण 'चरक संहिता' और 'सुश्रुत संहिता' में मिलता है । चरक संहिता संसार का प्राचीनतम आयुर्वेद ग्रन्थ है । इसमें औषधियों का विस्तार के साथ वर्णन किया गया है । सुश्रुत संहिता में शल्य-चिकित्सा के साथ-साथ औषधियों का भी उल्लेख मिलता है । उक्त पुस्तकों की अनेक टीकाएँ हुई हैं । चरक संहिता की टीकाओं की रचना गुप्तकाल से प्रारम्भ होती है, जब कि पांचवी शताब्दी में हरिश्चन्द्र भट्टार ने 'चरकन्यास' नाम से इसकी टीका की और छटी शताब्दी में वाग्भट के शिष्य जेज्जट ने 'निरन्तरपद' तथा ग्यारहवीं शताब्दी में चक्रपाणिदत्त ने 'आयुर्वेद दीपिका' या 'चरकन्यास' लिखा । इस प्रकार गुप्तकाल से लेकर मुस्लिम साम्राज्य की संस्थापना तक इसकी टीकाएँ बनती रहीं । मुसलमान इतिहासकार 'अलबरूनी' ने इसे आयुर्वेद की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक माना है। इसकी उपादेयता तथा लोकप्रियता का अनुमान इसकी टीकाओं से और इसकी महत्ता का अनुमान इसके अरबी भाषा में किये गये अनुवाद से लगाया जा सकता है । चरक संहिता की कुल मिला कर लगभग पचास टीकाएँ हो चुकी हैं।

चरक और सुश्रुत की तिथियों के विषय में बड़ा ही मतभेद है। 'सिलवन लेवी' ने चोनी त्रिपिटक के आधार पर चरक को कनिष्क के समकालीन बतलाया है । लेवी चरक को कनिष्क का राजवैद्य मानते हैं । चरक संहिता के अध्ययन से प्रतीत होता है कि उस समय तक पारे की औषधियों का प्रचलन नहीं हुआ था। इसके विपरीत 'नागार्जुन' ने, जो कनिष्क के समकालीन था, पारे के यौगिकों का वर्णन अपनी पुस्तक 'रसरत्नाकर' में किया है। पारे से बनी औषधियों के विषय में चरक की अनभिज्ञता यह सिद्ध करती है कि उनका आविर्भाव अवश्य ही नागार्जुन से पूर्व हो चुका था । इस प्रमाण के आधार पर सिलवन लेवी की धारणा उचित नहीं प्रतीत होती । आचार्य प्रफुल्लचन्द्रराय इन्हें बुद्धकालीन भारत से पूर्व का मानते हैं। ग्यारहवीं शताब्दी के

भारतीय वैज्ञानिक 'चक्रपाणिदत्त' ने चरक और पतञ्जलि को एक ही पुरुष माना है।

'पातञ्जलमहाभाष्यचरकप्रतिसंस्कृतैः।'

योगदर्शन के रचयिता तथा महाभाष्यकार पतञ्जलि मौर्यकाल के उपरान्त हुए थे। चरक को 'वाह्लीकाः पह्लवाश्चीनाः शूलीकाः यवनाः शकाः' के आहार-विहार तथा स्वभाव का पता था। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि इन लोगों के भारत में आने के उपरान्त ही चरक उत्पन्न हुए थे। इस प्रमाण के आधार पर चरक उत्तर-मौर्यकाल के प्रतीत होते हैं। वैदिक साहित्य में चरक का उल्लेख पाया जाता है :

चरक और सुश्रुत की संहिताओं पर सांख्यदर्शन और न्याय-वैशेषिक प्रणाली का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। चरक ने प्रयोगात्मक पद्धति की अपेक्षा सिद्धान्तों के विवेचन पर विशेष ध्यान दिया और इसके विपरीत सुश्रुत ने वैज्ञानिक विधि का आश्रय लिया। चरक संहिता में वैदिक मंत्रों और देवताओं का समावेश है। इसकी शैली भी 'ब्राह्मणों' से मिलती है। ये 'ब्राह्मण' वेदों के एक विशिष्ट अंग हैं। इन प्रमाणों के आधार पर चरक संहिता को सुश्रुत संहिता के पूर्व रख सकते हैं। चरक संहिता में 'अग्निवेश' के वैज्ञानिक कार्यों का भी समावेश है। इसके अतिरिक्त अनेक अध्याय औषधियों के विषय में आयोजित एक गोष्ठी के विचार-विमर्शों के आधार पर लिखे गये हैं। वास्तव में चरक संहिता एक ऐसा संग्रह है, जो कई सौ वर्षों की वैज्ञानिक प्रगति को लिपिबद्ध करके सम्पादित किया गया है। एक बौद्ध जातक के आधार पर अग्निवेश बुद्धकालीन-भारत में तक्षशिला में भेषज का प्राध्यापक था। चरक संहिता में वर्णित रासायनिक विधियां और धातु सम्बन्धी ज्ञान कौटिल्य कालीन भारत से निम्नतर है। अतः हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि कम से कम चरक चौथी शताब्दी ई० पू० के हैं।

चरक संहिता के समान सुश्रुत संहिता भी अति प्राचीन ग्रन्थ है। ए० बी० कीथ ने 'संस्कृत साहित्य के इतिहास' में लिखा है कि महाभारत के अनुसार सुश्रुत विश्वामित्र का पुत्र था। कॉरडियर ने अपनी पुस्तक 'Recent Discoveries' में लिखा है कि नागार्जुन ने पुनः सुश्रुत संहिता का सम्पादन किया था। जेज्जट ने पांचवीं शताब्दी में इसकी टीका लिखी थी और इसी के आधार पर चन्द्रट ने सुश्रुत के पाठ का संशोधन किया। ग्यारहवीं शताब्दी में चक्रपाणिदत्त ने 'भानुमती व्याख्या' नाम से इसकी टीका की। कीथ के मतानुसार सुश्रुत संहिता, चरक संहिता के उपरान्त लिखी गई। पर हॉर्न्ले ने अपनी पुस्तक में (Studies in Medicine of Ancient India, Vol. I) इसे चरक के समकालीन माना है। सुश्रुत की विधियां चरक से भिन्न नहीं हैं। चरक ने विस्तृत विवरणों द्वारा वैज्ञानिक विधियों का निरूपण किया है। इसके विपरीत सुश्रुत ने न केवल अनावश्यक विवरणों का ही परित्याग किया है, किन्तु संयत तथा नीरस शैली में वैज्ञानिक प्रयोगों के विवरण दिये हैं। चरक के कतिपय श्लोक सुश्रुत संहिता से अक्षरशः मिलते हैं। इससे यह पता चलता है कि सुश्रुत चरक के बाद के हैं। एक बुद्ध जातक में ऐसा उल्लेख मिलता है कि सुश्रुत काशी विश्वविद्यालय का

एक प्राध्यापक था और गौतम बुद्ध के समकालीन था। ए० बावेर नामक, एक बृटिश लेफ्टिनेण्ट को चीनी तुर्किस्तान के 'कत्चा' (Kutcha) स्थान पर १८९० में एक बौद्ध विहार से कुछ हस्तलिखित पुस्तकें मिली थीं। यह पुस्तकें गुप्तकालीन लिपि में लिखी गई हैं। इनके लेख के आधार पर इनका समय ३५० ईस्वी के लगभग निश्चित किया गया है। इनके बहुत से भाग तो अक्षरशः चरक और सुश्रुत संहिता से मिलते हैं, किन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि इनमें चरक का नाम नहीं है। इसके विपरीत सुश्रुत का उल्लेख मिलता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि चरक और सुश्रुत की ख्याति भारत भूमि की सीमा को लाँघ कर विदेशों में भी पहुंच चुकी थी। अपने कार्यों की गरिमा से वह केवल अपने देश में ही लोकप्रिय नहीं हुए थे किन्तु हिमालय के उस पार भी उनकी वैज्ञानिक प्रतिभा का आदर होता था। वास्तव में इन दोनों ग्रन्थों में समकालीन रासायनिक प्रयोगों का ही निर्देश नहीं है किन्तु उनमें उत्तर वैदिक कालीन भारत से लेकर पूर्व कौटिल्य-कालीन-भारत के वैज्ञानिक ज्ञान के विकास का वर्णन है। वह भी निर्विवाद सत्य है कि इन दोनों ग्रन्थों के समय में विशेष अन्तर नहीं है।

चरक और सुश्रुत के समान ही] वाग्भट भी आयुर्वेद के प्रकाण्ड विद्वान थे। इन्होंने 'अष्टांग संग्रह' नामक पुस्तक लिखी है। इनके पिता का नाम सिंहगुप्त था। यह बौद्धधर्म के अनुयायी थे और 'अवलोकित' नामक गुरु से इन्होंने दीक्षा ग्रहण की थी। चीनी पर्यटक इंत्सिंग (Itsing) ने इनका उल्लेख किया है। उसने लिखा है कि कुछ समय पूर्व आयुर्वेद के अष्टागों का संकलन एक विद्वान ने किया था। सिंहगुप्तात्मज वाग्भट के अतिरिक्त एक अन्य वाग्भट का भी उल्लेख मिलता है। प्राकृत साहित्य में यह 'वाहट' के नाम से विख्यात हैं। इनके गुरु का नाम 'सङ्घगुप्त' है। इन्होंने 'अष्टाङ्ग हृदय संहिता' की रचना की है। इस ग्रन्थ का तिब्बती भाषा में भी अनुवाद हुआ था। गरुड़ पुराण में 'अष्टाङ्ग-हृदय' तथा 'अष्टाङ्ग संहिता' के निदान के कतिपय श्लोक मिलते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रथम वाग्भट द्वितीय वाग्भट के पूर्वज थे और अपने विख्यात पूर्वज की परिपाटी का अनुकरण करके उन्होंने एक दूसरा ग्रन्थ 'अष्टाङ्ग हृदय संहिता' लिखा। अष्टाङ्ग हृदय में आठ खण्ड, एक सौ बीस अध्याय तथा ७४४४ श्लोक हैं। इन दोनों पुस्तकों में सभी पूर्वकालीन तंत्रों के उद्धरण मिलते हैं। इसके साथ-साथ नवीन प्रयोगों का भी समावेश है। वाग्भट ने अपनी पुस्तक के आरम्भ में बुद्ध की वन्दना की है। इससे उनके बौद्धमतावलम्बी होने में सन्देह नहीं है। कुछ विद्वानों ने वाग्भट का समय ईसा के उपरान्त सातवीं शताब्दी निर्धारित किया है। इसके विपरीत डी० सी० भट्टाचार्य ने भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट की पत्रिका के १९४७ के २८वें अंक में वाग्भट का समय ई० के पश्चात् ८०० से ८५० के बीच माना है।

चरक का वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्राचीन परम्परा से मिलता जुलता था। वह पंचभौतिक सिद्धान्तों में विश्वास करते थे। चरक संहिता में सोना, तांबा, सीसा, टिन तथा लोहे और

इनकी भस्मों का औषधियों के रूप में उपयोग किया गया था। उस समय पंच लवणों, सौवर्चल (Nitre) सैन्धव (Rock Salt) वित (Black Salt) औद्भिज (Vegetable Salt) समुद्र (Sea Salt) का ज्ञान हो चुका था। तूतिया, कसीस, मनःशिला (Realgar) ताल (Orpiment) तथा गन्धक का उपयोग चर्म रोगों में होता था। सीप की भस्म, मूंगा, राजवर्त, लौहभस्म, तांबा तथा सौवीर (Stibnite) को मिलाकर औषधियां बनाई जाती थीं। धातुओं के गुणों को नष्ट करके उनके यौगिक बनाये जाते थे, जिसे धातु-मारण कहते थे। इसके लिए मुक्ता, लौह, ताम्र तथा गन्धक के चूर्ण को गन्धक के साथ गरम किया जाता था। लोहा, सोना तथा चांदी के पतले-पतले टुकड़ों को लवणों तथा भस्मों के साथ गरम करके उनसे औषधियों का निर्माण होता था। औषधियों के बनाने में प्राकृतिक पार्थिव द्रव्यों (खनिज पदार्थों) का भी उपयोग किया गया था। अयस, अयस्कृति, अश्मकासीस, औद्भिज, कांचन, कांचनगैरिक, कासीस, कांक्षी, कांस्य, गंधक, गैरिक (Red Ochre) ताम्र, त्रपु, मनःशिला, मरकत, माक्षीक, रजत लोह, वज्राविड, स्वर्ण, स्वर्णमाक्षिक, सामुद्रक, सैन्धव, सौराष्ट्री, सौवर्च्चल, स्फटिक, हरिताल इत्यादि अनेक पार्थिव तथा खनिज पदार्थों की तालिका भी दी गई है। कुष्ट रोग में चिकित्सा में रस (पारा), गन्धक, सुवर्णमाक्षिक को मिलाकर औषधि बनाई जाती थी।

"गन्धक योगादथवा सुवर्णमाक्षिक योगाद्वा।
सर्व व्याधि निवर्हणमद्यात् कुष्ठी रसं च
निगृहीतम्॥"

इस प्रकार एक अन्य स्थान पर पारे के लिए रसोत्तम शब्द प्रयुक्त हुआ है।

"कालीयक न ताम्रास्थि हेमकाल रसोत्तमैः।
लेपः सगोमयरसैः सवर्णीकरणः परः॥"

गन्धक और पारे के अपर्याप्त विवरण से यह अनुमान लगाया जाता है कि चरककालीन भारत में इन वस्तुओं का उपयोग इतनी अधिकता से नहीं हुआ था, जितना कि आगे आने वाली पीढ़ियों में हुआ। चरक संहिता के आहारों की सूची में किन्व किए गए द्रव्यों और मद्यों का नाम भी पाया जाता है। अन्न, फल, मूल, काष्ठ, पुष्प, डंठल, पत्तियां, छाल और शर्करा आदि से चौरासी आसव बनाए जाते थे। इनमें से उल्लेखनीय हैं—मदिरा, अरिष्ट, शार्कर, गौड़सुरा, मध्वासव, सौवरिक, तुषोदक तथा अम्लकाञ्जिक।

क्षारों के विषय में चरक का ज्ञान प्रशंसनीय है। क्षारों का प्रयोग रक्तस्राव, चर्म तथा मांस को काटने और गलाने में किया जाता था। लेपों के बनाने में पलाशक्षार (K_2CO_3) गोमूत्र, क्षार, त्रपु, वंग, सीस, लोहचूर्ण तथा किन्व का प्रयोग होता था। क्षार सान्द्र, तनु तथा मध्यम-शक्ति के बनाए जाते थे।

"मांसी मरिचं लवणं रजनी तगरं सुधा
गृहादघूमः।
मूत्रं पित्तं क्षारः पालाशः कुष्टहा लेपः॥
त्रपु सीससमयश्चूर्णं मण्डलनुत् फल्गु चित्रकौ
वृहती।
गोधारसः सलवणो दारु च मूत्रं च मण्डलनुत॥"

चरक संहिता में लिखा है कि शरीर में लगने पर क्षार जलन पैदा करते थे। कुछ क्षारों का उपयोग शरीर के वाह्य अंगों पर और कतिपय क्षारों का प्रयोग पीने में होता था। वृक्षों की राख को पाँच छः बार पानी

घोलकर तथा इक्कीस बार कपड़े से छान-कर क्षार बनाया जाता था। यह क्षार पोटैशियम कार्बोनेट था। वाह्य प्रयोग में आने वाले क्षारों को प्रतिसारणीय-क्षार तथा खाए जाने वाले क्षारों को पानीय-क्षार कहते थे। पानीय-क्षार सोडियम बाई कार्बोनेट था।

पानीयस्तु गरगुल्मोदराग्निसंगा-जीर्णाग्निकानाह-शर्कराश्मर्याभ्यन्तर-विद्रधिकृमि विषार्शःसूपयुज्यते।

सुश्रुत ने वनस्पतियों का उपयोग विशेष रूप से किया है। तथापि टिन, सीसा, तांबा, चांदी, लोहा तया सोना और उनकी भस्मों की उपयोगिता से परिचित थे। तूतिया, कसीस, गैरिक (Red Ochre) मनःशिला (Realgar) से भी बनी औषधियों का भी विवरण मिलता है।

लोहे का भस्म बनाने के लिए लोहे के छोटे-छोटे टुकड़ों को नमक, सौवर्च्चल (KNO_3) तथा मैगनीशियम सल्फेट के साथ मिलाकर सोलह बार जलाया जाता था। अन्य धातुओं के भस्म भी इसी प्रकार बनते थे। धातुओं के भस्म तथा उनके लवणों के बनाने का प्रारम्भ सुश्रुत ने फेनास्मभस्म (श्वेत आर्सेनिक) तथा हरिताल (Orpiment) की गणना भस्मों में की। सुश्रुत संहिता में पारे का उल्लेख बहुत ही कम है। सुहागे को क्षारों की सूची में स्थान दिया गया है। सुश्रुत यवक्षार (पोटैशियम कार्बोनेट) तथा सर्ज्जिक क्षार (Trona) के बीच में अन्तर समझते थे।

चरक और सुश्रुत संहिता में क्षारों को तीन वर्गों में विभाजित किया गया है। उनको बनाने के लिए निम्नलिखित वृक्षों को काटकर उनके छोटे-छोटे टुकड़े किए जाते थे। इन छोटे-छोटे टुकड़ों के ऊपर चूने का पत्थर रखकर जलाया जाता था। "कुटजपलाशाश्वकर्ण परिभद्रकबिभीतकारग्वधतिल्वकार्कस्नुह्यपामार्ग पाटलानक्त मालवृषकदलीचित्रकपूतीकेन्द्रवृक्षास्फोताश्वमारकसप्तच्छ दाग्निमन्थ गुञ्जातसश्चकोशातकीः समूलपत्रशाखा दहेत।" अग्नि बुझ जाने पर लकड़ी तथा चूने की भस्मों को पृथक-पृथक संग्रह किया जाता था। भस्म को छः गुना पानी में घोल कर कपड़े से छाना जाता था। इक्कीस बार यह क्रिया करने के उपरान्त इस द्रव को कड़ाही में हिला-हिला कर पकाया जाता था। द्रव पदार्थ के निर्मल, तीक्ष्ण तथा पिच्छिल हो जाने पर इसे छाना जाता था। फिर इसे क्वाथ करके गाढ़ा किया जाता था। इसमें शंखग्रन्थि, चूना, कटशर्करा (खड़िया) को एक कड़ाह में लाल करके और जल डाल कर चूर्ण बना कर क्षारीय जल के साथ मिलाया जाता था। फिर द्रव को तब तक पकाया जाता था, जब तक कि न तो यह अधिक गाढ़ा हो जाय अथवा न अधिक तनु। फिर इसे लोहे के पात्र में संग्रह किया जाता था। इसे 'मध्यमक्षार' कहते थे। इस मध्यमक्षार में यदि प्रतिवाप्य द्रव्यों का प्रक्षेपन करके पका लिया जाय तो यह 'मृदुक्षार' बन जाता था। 'एष च वा प्रतीवायः पक्व संख्यहिमो मृदुः।' यदि संग्रह किये गये क्षार का बल क्षीण हो जाय तो उसे पूर्वोक्त विधि से क्षारोदक मिलाकर पुनः पकाना चाहिये। 'क्षीणबले तु क्षारोदकमावयेद्बलकरणार्थम्।' सुश्रुत के मतानुसार क्षार रंग में श्वेत तथा स्पर्श में साबुन की तरह चिकना होना चाहिये। सुश्रुत ने लिखा है कि काञ्जिकाम्ल के साथ मिलाने पर क्षार

की तीक्ष्णता नष्ट हो जाती है। इससे यह निश्चित है कि सुश्रुत क्षारों तथा अम्लों की शिथिलीकरण क्रिया से अवगत थे।

चरक तथा सुश्रुत की परम्परा का अनुगमन करते हुए वाग्भट ने भी काष्ठौषधियों के साथ-साथ खनिज पदार्थों तथा प्राकृतिक लवणों का उपयोग औषधियों के लिये किया। पारे के सूक्ष्म विवरण से ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें इनके यौगिकों का ज्ञान नहीं था। व्रण लेप बनाने के लिए उन्होंने तूतिया, गैरिक (Red Ochre) मन: शिला (Realgar) हरिताल (Orpiment) तथा कसीस (Ferrous Sulphate) का प्रयोग किया था। वाग्भट ने सोना, चांदी, तांबा, टिन तथा सीसे के यौगिकों के बनाने का विस्तार पूर्वक विवरण दिया है। अन्धमूषा में स्रोतांजन (Stibium) चौसठभाग तथा ताँबा, लोहा, चांदी तथा सोने में से प्रत्येक का एक भाग लेकर गरम करना चाहिये। वाग्भट ने सुश्रुत की विधियों का अनुकरण मृदुक्षार बनाने में किया था। पारा तथा सीसे का समान भाग लेकर और उनके भार के बराबर स्रोतांजन तथा कपूर मिलाकर कोलीरियम (Collyrium) बनाया जाता था।

('विज्ञान' जून १९५८ से साभार उद्धृत)

महर्षि चरक का अपूर्व योग
❀ ब्राह्म-रसायन ❀
मानसिक शक्ति, स्फूर्ति, उत्साह, बुद्धि, स्मृति, ओज
एवं दीर्घायुष्य प्राप्ति के लिए
अत्युत्तम कल्प है।
नवशक्ति आयुर्वेदालय (प्रा.) लि.
भुसावल - जबलपुर - नागपुर

रोगीवृत्त

लेखक—**श्री व्रजनन्दन मिश्र, आयुर्वेदाचार्य, पानापुर, पो० रसौली (सारन)**

रोगी नाम व पता:—श्री नेमधारी पांडेय आयु ४६ वर्ष, ग्राम महमदपुर, पो० रसौली, थाना मशरक, जि० सारन, बिहार।

रोग लक्षण:—छाती में तीव्र वेदना, ज्वर १००°, कास तथा कास के साथ रक्त वमन, अवस्था चिन्ताजनक, शरीर मांसविहीन कंकाल सा प्रतीत होता था।

पूर्व वृत्तः—रोगी रोगारम्भ से ग्राम के एक एलोपैथ डाक्टर की चिकित्साधीन रहा था, जिससे कोई लाभ नहीं हुआ बल्कि रोग दिन प्रतिदिन बढ़ता चला गया, अन्त में डाक्टर महोदय ने क्षय रोग बताकर उसे असाध्य घोषित कर दिया तथा सारे ग्रामवासियों से भी उससे अलग रहने को कह दिया। रोगी अधीर और निराश होकर हमारे पास आया था।

चिकित्सा : प्रातः सायं—

साधारण मकरध्वज	१ चावल भर
सितोपलादि चूर्ण	$\frac{1}{4}$ तोला
मृग शृंग भस्म	१ रत्ती
पृष्ठपर्णी मूल चूर्ण	$\frac{3}{4}$ तोला

मधु में मिलाकर रोगी को चटाकर ४$\frac{1}{2}$ छटांक बकरी के ईषदुष्ण दुग्ध के साथ।

सायाह्न एवं रात्रि को सोते समय—

सुवर्ण वसन्त मालती	२ चावल
शत पुटिताभ्रक	२ चावल
स्वर्णवंग	२ चावल

२ माशा छोटी पीपल के चूर्ण के साथ मधु में।

भोजन के बाद दोनों समय—

द्राक्षारिष्ट	१ तोला
दशमूलारिष्ट	२ तोला

गरम जल मिलाकर।

उपरोक्त चिकित्सा के अतिरिक्त महाचन्दनादि तैल का एक बार दिन में तथा एक बार सायंकाल रोगी के शरीर पर अभ्यंग कराया गया।

पथ्य रूप में बकरी का दूध, परवल, ज्वर उतरने पर गेहूं की रोटी, मूंग व चने की दाल देते थे।

एक सप्ताह के पश्चात् रोगी को अष्टमांश बल प्राप्त हो गया, कास, ज्वर एवं रक्तागमन आधा रुक गया, तीसरे दिन से ही छाती की वेदना समाप्त हो गई। इसी प्रकार ४० दिन की चिकित्सा के पश्चात् रोगी पूर्ण स्वस्थ एवं सबल हो गया। आयुर्वेद पर रोगी का पूर्ण विश्वास हो गया और अब वे ग्राम में आयुर्वेद का प्रचार किया करते हैं।

कुछ अनुभूत योग

वैद्य बन्धुओं तथा सर्वसाधारण के लाभार्थ में यहां अपने २६ वर्ष के चिकित्सा अनुभव

पर आधारित कुछ ऐसे योग भी दे रहा हूँ जिन्हें मैंने अपनी चिकित्सा में अव्यर्थ और आशुफलप्रद पाया है। वैद्यबन्धु इनका प्रयोग कर अवश्य लाभ उठावें।

१. मलेरिया (शीत ज्वर) पर देशी कुनैन

चिरायता ऽ=, सोंठ ऽ=, कूट असली ऽ= पटोल पत्र ऽ=, गुरुच ऽ=, कण्टकारी लघु पंचांग ऽ=, अडूसा (वासा) पंचांग ऽ=,—इन सब औषधियों को एक साथ कूटकर अधकूट कर लें। तत्पश्चात् इसमें से ४ तोला औषधि को १६ तोला जल में डाल कोरी मिट्टी की हांडी में उबालें, जब ४ तोला शेष रह जाये तो छान कर २ तोला प्रातः २ तोला सायं रोगी को पिलावें—तीसरे दिन ही मलेरिया अवश्य नष्ट हो जावेगा। यह मात्रा बड़ों के लिये है, बच्चों के लिये इससे आधी मात्रा लें। क्वाथ करते समय हांडी का मुख खुला रखें, भूलकर भी बन्द न करें।

२. रक्त प्रवाहिका या प्रवाहिका पर रामबाण योग

सौंफ, असली नागकेसर, सर्ज (सफेद चूना) इसबगोल की भूसी, सुखाये हुए कच्चे बिल्व का चूर्ण, सब सम भाग लेकर बराबर की ताल मिश्री मिलावें। मात्रा १ तोला ताजा जल के साथ, ६-६ घण्टे पर। पथ्य—ज्वररहित को गाय का मट्ठा, भात, केला व कच्चा उदुम्बर का साग। ज्वरान्वित को केवल बार्ली। रक्तार्श के लिए भी पूर्ण रामबाण है। बच्चों को आधी मात्रा दें।

३. रक्तपित्त पर

रक्तपित्त चाहे नया हो या पुराना, रक्त चाहे ऊर्ध्व मार्ग से बहता हो चाहे अधोमार्ग से जिस प्रकार एलोपैथी में एड्रीनैलिन क्लोराईड इंजैक्शन कार्य करता है, उसी प्रकार शीघ्रातिशीघ्र बिना इंजैक्शन के निम्नलिखित एक ही अमूल्य द्रव्य रक्त को बन्द कर देता है।

एक पृष्ठपर्णी मूल को २ तोला ताजा लेकर ५ दाना काली मिर्च के साथ बासी जल में पीस कर रोगी को प्रातः सायं आध पाव जल में मिलाकर पिलाना चाहिये। यदि रोगी बिलकुल दुर्बल हो या ज्वरान्वित हो तो बनाया हुआ शीतल जल में पिलावें। इसके साथ-साथ वासा के पंचांग को ताजा लाकर उसका रस निचोड़ें और ३।।० सेर रस में ऽ।।० सेर रस पेट्ठे (भतुआ) का मिलाकर १ सेर तालमिश्री मिलावें और इसे कलईदार ताम्रपात्र में देकर उबालें। जब गाढ़ा शर्बत हो जाये तो उतार कर शीतल कर बोतल में रखें। मात्रा ℘ ऽ।० जल में मिलाकर भोजनोपरान्त दोनों समय देवें। रक्तपित्त की अचूक औषध है। पुराने रोग को भी अधिक से अधिक २१ दिन में अवश्य लाभ करेगा।

४. विसूचिका नाशक एक अव्यर्थ योग

सत्व अजवायन, सत्व पीपरमिन्ट	१-१ तोला
विशुद्ध ढेला कपूर डमरु यन्त्र से फूल निकाला हुआ	२ तोला
सत्व लोहबान	१ तोला
तेल लौंग	१ तोला
तेल सौंफ	२ तोला
तेल इलायची	१ तोला

उक्त औषधियों को एक साथ मिलालें, पश्चात् आधा सेर ताजा हरे पुदीना का रस, ॥० सेर सौंफ का अर्क तथा ऽ१ तालमिश्री लेकर तीनों को कढाई में पका गाढा शर्बत तैयार करें और उपर्युक्त औषधियों के मिश्रण को शर्बत में मिलादें। औषधि तैयार है। बोतल में भरकर रखें। मात्रा ३ बूंद सौंफ के अर्क में १-१ घण्टे के अन्तर से दें। जैसे-जैसे रोग घटता जाये समय बढाते जायं। साथ-साथ रोगी के पेडू (बस्ति) पर कलमी शोरे को ताजा जल में मिलाकर उसमें पट्टी भिगोकर रखें ताकि मूत्राघात न हो। इस रोग में कैसी भी औषधि दें मूत्राघात हो ही जाता है अतः पहिले से ही इसका उपचार कर लेना चाहिये।

औषधियां
और
मशीनें

हर प्रकार की विधिपूर्वक विनिर्मित रस, रसायन, आसव, अरिष्ट भस्म, अवलेह आदि औषधियां और औषधि निर्माण संबंधी कुटाई, पिसाई, घुटाई व गोलियां आदि बनाने की बिजली तथा हाथ दोनों प्रकार से चलने वाली मशीनें आदि मिलने का एकमात्र विश्वसनीय स्थान—

दयालु फार्मास्युटिकल वर्क्स
बीकानेर।

नवरत्न रस
स्त्री, पुरुष और बालकों के लिये महौषधि

यह नवरत्न रस हीरा, पन्ना, मोती, माणिक तथा नौ रत्नों की भस्म और सुवर्ण आदि के संयोग से तैयार किया जाता है। शरीर में स्थित रस, रक्त आदि धातुओं की उत्तरोत्तर वृद्धि और पोषण तथा वीर्यधातु की शुद्धि और पुष्टि करना इसका विशिष्ट कार्य है। शुक्र स्थान को पुष्टि मिलने से वीर्य में स्थित निर्बलता दूर होकर नपुंसकता, क्लैव्य, ध्वजभंग, वीर्यपात, स्वप्नदोष आदि नष्ट होते हैं और शरीर नवयौवन प्राप्त करता है।

यह गर्भावस्था में पांडु, रक्त की कमी, हाथ और पैरों में शोथ तथा श्वास आदि रोगों की उत्पत्ति को रोकता है। अल्पसत्वयुक्त प्रजा होती हो या बालक जन्मते ही मर जाता हो तो नवरत्न रस प्रथम मास से प्रसव काल तक सेवन कराने से प्रसव सुखपूर्वक होता है। बालक भी तन्दुरुस्त जन्मता है। इसके सेवन से अकाल प्रसूति और रक्तस्राव नहीं होता।

इसके उपरांत किसी भी कारण से पांडु, क्षय, जीर्णज्वर, कास, श्वास, वातव्याधि, मधुमेह, रक्तस्राव, मगज की निर्बलता, वीर्यविकार आदि में बाल, वृद्ध, युवा, स्त्री, पुरुष सबको नवरत्न रस देने से शक्ति प्राप्त होती है। निरोगी शरीर के लिये यह रसायन है रोगी शरीर के लिये औषधि।

मूल्य २८ गोली का ५), १ तोला १०) रु०

ऊंझा फार्मेसी ऊंझा
(उ० गु०)

आयुर्वेदीय भोजन विधान

लेखक—त्रिपाठी नारायण शर्मा रामकृष्ण जी काव्यतीर्थ, रामकृष्ण संस्कृत विद्यालय,
कठेरा वाली चौकी, नाथद्वारा (राजस्थान)

सुश्रुत ने 'पंचमहाभूतशरीरिसमवायः पुरुषः इत्युच्यते । तस्मिन् क्रिया सोऽधिष्ठानम्' इत्यादि सूत्र से यह स्पष्ट कर दिया है कि संस्वेदज, जरायुज, अण्डज, उद्भिज्ज संज्ञक जो प्राणि समुदाय है उसमें पुरुष ही प्रधान है।

स्थावर, जंगम पदार्थ उस पुरुष के उपकरण हैं । अतः पुरुष ही चिकित्सा आदि का अधिष्ठान है । उस पुरुष के अन्दर रहने वाले बल, वर्ण, ओज इनका मूल है आहार । आहार की आवश्यकता रोगी एवं स्वस्थ सभी को रहती है । बिना आहार के अग्नि की प्रवृत्ति नहीं होती । बिना अग्नि के देह स्थिति नहीं । इतने जीवनोपयोगी आहार पर हमारा लक्ष्य ही नहीं । स्वादयुक्त वस्तु चाहे वह हमारे लिये अनुपयुक्त ही क्यों न हो केवल जीभ ने उसे अपने उदर में प्रवेश करने की अनुमति प्रदान कर दी तो वह वस्तु हमारे लिये ग्राह्य हो गई । इस प्रकार रसनेन्द्रिय के वशीभूत होकर अविचारित वस्तु अविचारित मात्रा में खा लेना शरीर के साथ अन्याय कहा जाता है।

इसी अविवेक के कारण जिसे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का साधन माना है वह शरीर हमसे छिन जाता है । महर्षि चरक लिखते हैं ।

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम् ।
रोगास्तस्यापहर्त्तारः श्रेयसो जीवितस्य च ॥

रोग शरीर को नष्ट करने वाले हैं । उन रोगों को उत्पन्न न होने देने की क्षमता "आयुर्वेदीय भोजन विधान" में है ।

यह विधान निम्नलिखित ग्यारह नियमों में समझाया गया है ।

१. भोजन कब किया जाय

मलमूत्रादि के त्यागानन्तर, हृदय के रस शेष जनित गौरवादि से रहित (हल्के) होने पर वातादि दोषों के स्वमार्गगामी बनने पर, यदि अन्न जीर्ण नहीं होता है तो उनकी गति अवरुद्ध हो जाती है जिससे वे स्वस्थानस्थ नहीं रहते । अन्न के जीर्ण हो जाने पर वे सब अपने २ स्थान में स्थित हो जाते हैं । डकार जब शुद्ध आने लगे, भूख लग जाय, वायु जब अनुलोम हो जाय, अग्नि जब भोजन पदार्थों को पचाने में समर्थ हो जाय, इद्रियों में एवं देह में हलकापन मालूम हो उस समय भोजन करें वह भोजन काल माना गया है ।

"प्रसृष्टे विण्मूत्रे हृदि सुविमले दोषे स्वपथगे विशुद्धे चोद्गारे क्षुदुपगमने वातेऽनुसरति तथाग्नावुद्रिक्ते विशदकरणे देहे च सुलघौ प्रयुञ्जीताहारं विधिनियमितः कालः स हि मतः, कुछ व्यक्ति बेसमझी से दुष्ट बुभुक्षा में ही भोजन कर लेते हैं, उन्हें यह ध्यान नहीं रहता कि हमारा पित्त बढ़ा हुआ है अतः हमारा भोजन दोषों से सम्बन्धित होकर लीन हो गया है इसलिये जब तक उसका सम्बन्ध अग्नि से न हो तब तक इस प्रकार लीन हुए अन्न को पक्व नहीं समझना चाहिये ।

दोषोपनद्धं यदि लीनमन्नं पित्तोद्धतस्यावृणुयान्न वह्निम् ।
जयेत दुष्टां तु ततो बुभुक्षां या मन्दबुद्धीन् विषवन्निहन्ति ।।

२. भोजन की मात्रा

भोजन की मात्रा दो तरह से निश्चित की जाती है । प्रथम तो,

'अन्नेन कुक्षेर्द्वावंशौ पानेनैकं प्रपूरयेत् ।
आश्रयं पवनादीनां चतुर्थमवशेषयेत् ।।

पेट के चार समान भाग करके दो भाग अन्न से एवं एक भाग जल से पूर्ण करे एक भाग वायु के आने-जाने के लिये अवशिष्ट रक्खे । इस प्रकार की अंश कल्पना पेट को अंगुलियों से नापकर नहीं की जाती किन्तु बुद्धि के द्वारा कल्पित की जाती है ।

दूसरा प्रकार—

मात्राशी सर्वकालं स्यान्मात्रा ह्यग्नेः प्रवर्तिका ।
मात्रां द्रव्याण्यपेक्षन्ते गुरूण्यपि लघून्यपि ।।
गुरूणामर्धसौहित्यं लघूनां नातितृप्तता ।
मात्रा प्रमाणं निर्दिष्टं सुखं यावद्विजीर्यति ।।

हर समय मात्रा के अनुसार भोजन करना चाहिये क्योंकि मात्रा ही अग्नि की प्रवर्तिका है । मात्रा का प्रमाण गुरू, लघु द्रव्यों के अनुसार किया जाता है ।

गुरू पदार्थ अर्द्धतृप्ति हो उतनी मात्रा में ग्रहण किये जाने चाहियें । लघु पदार्थ जितने से तृप्ति हो उतनी मात्रा में ग्रहण कियां जाना चाहिये । लघु पदार्थ भी अति तृप्ति हो उतने प्रमाण में अग्राह्य है । वास्तव में देखा जाय तो ये उपयु क्त दोनों मात्रा नियम उतने स्पष्ट नहीं है कि सभी व्यक्ति भोजन की मात्रा का निर्णय कर सकें अतः अन्त में यह बतलाया कि "मात्रा का प्रमाण वही ठीक है कि जो सुख से पच जाय" जिस प्रकार अधिक भोजन रोग का कारण बनता है, ठीक उसी प्रकार हीन मात्रा में किया हुआ भोजन बल, ओज का बढ़ाने वाला न होकर वात रोगों का कारण बनता जाता है ।

भोजनं हीनमात्रं तु न बलोपचयौजसे ।
सर्वेषां वातरोगाणां हेतूनां च प्रपद्यते ।।

३. भोजन की विधि

प्रथम विधि में बताये गये काल में स्नानादि कर्म से निवृत्त होकर, हितकर, स्निग्ध, उष्ण, लघु, सात्म्य अन्न को तन्मय होकर भक्षण करे। भोजन में छहों रस वाले पदार्थों का उपयोग करना चाहिये "षड्रसाभ्यासो बलवर्द्धनानाम्" षड्रसाभ्यास बलको बढ़ाने वाला है, किन्तु यह ध्यान रखना आवश्यक है कि अन्य रसों की अपेक्षा मधुर रस अधिक उपयोग में लाया जाय। भोजन बहुत धीरे तथा बहुत शीघ्र न करें। दूसरी विधि अष्टांग हृदय में इस प्रकार बताई है।

स्नातः क्षुद्वान् विविक्तस्थो धौतपादकराननः।
तर्पयित्वा पितृन् देवानतिथीन् बालकान् गुरून्॥
प्रत्यवेक्ष्य तिरश्चोऽपि प्रतिपन्नपरिग्रहान्।
समीक्ष्य सम्यगात्मानमनिन्दन्नब्रुवन् द्रवम्॥
इष्टमिष्टैः सहाश्नीयाच्छुचिभक्तजनाहृतम्।

स्नान करके जब क्षुधा लगे, तब हाथ पैर धोकर, एकान्त में बैठ देव पितृ एवं अतिथियों को तृप्त कर, पश्चात् बच्चों एवं बड़ों को भोजन कराकर, पक्षियों की देखभाल कर, अपने आश्रितों को भोजन करा कौन २ वस्तु अपनी सात्म्य (हितकर रुचिकर) है इनका पर्यालोचन कर अन्न की निन्दा न करते हुए मौन से पवित्र हृदय वाले स्वकीयों से लाये हुए इष्ट द्रव पदार्थ का अपने इष्ट बन्धुओं के साथ भोजन करे।

इस प्रकार की विधि निर्हेतुक नहीं है। खरनाद ने बताया है—

विलम्बितं तु भुञ्जानो न तृप्तिमधिगच्छति।
स्वादु बह्वपि शीतत्वाद्याति भक्तमहृद्यताम्॥
जल्पतो हसतश्चापि भुञ्जानस्यान्यचेतसः।
त एव दोषा मन्तव्या ये विलम्बितभोजने॥

शनैः शनैः २ भोजन करने वालों को तृप्ति का अनुभव नहीं होता क्योंकि अत्यन्त स्वादु अन्न भी शीतल हो जाने से अस्वादु बन जाता है। इसी तरह वार्तालाप करते हुए हंसते हुए अन्यमनस्क होकर भोजन करने से भी तृप्ति का अनुभव नहीं होता।

४. त्याज्य भोजन

जिस भोजन में तिनके, केश, मक्खी वगैरा पड़ी हों उसें न खाए। अधिक शाक, अधिक उरद, अत्यन्त उष्ण, अधिक लवण इनका भी उपयोग न करें। अनेक बन्धु अधिक शाक को लाभप्रद बतलाते हैं, किन्तु उन्हें "सर्वशाकमचाक्षुष्यम्" सभी शाक आंखों की ज्योति को हानि पहुंचाते हैं, इसको लक्ष्य में रखना चाहिये।

एक ऐसी किंवदन्ती भी प्रचलित है कि पक्षी रूपधारी भगवान् धन्वन्तरि ने वाग्भट के परीक्षार्थ यह प्रश्न किया था कि "कोऽरुक्" कोऽरुक् कोऽरुक्" अर्थात् नीरोग कौन है ? तब वाग्भट्ट ने इसका उत्तर इस प्रकार दिया "हितभुग् मितभुग् अशाकभुक् । हितभोजी, मितभोजी, शाकरहित अन्न भोजी नीरोग रहता है । क्षार, सिरका, कच्ची मूली, दही, सूखा शाक इन्हें भी अधिक मात्रा में प्रयुक्त न करे । दही स्रोतोपलेपी है तथा ज्वरकारी है । क्षार पुंस्त्व की हानि करता है । सिरका सूखे शाक नेत्रों की ज्योति को कम करते हैं ।

५. ग्राह्य भोजन

शालि, गेहूँ, यव, शाठी चावल, हरडे, आंवला, दाख, परवल, शक्कर, घृत, दुग्ध, मधु, मूंग, दाड़िम, सेंधा नमक इत्यादि वस्तुएं तथा अन्य भी शास्त्र के द्वारा निश्चित कर उपयोग में लाये । निशा के समय नेत्रों की ज्योति बढ़ाने के लिये त्रिफला मधु घृत में मिला कर लेना उत्तम है । भोजन के आदि में गुरु, स्निग्ध, स्वादु, मन्द, स्थिर पदार्थ उपयोग में लाये ।

अन्त में इनके विपरीत लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, कटु, सरप्राय पदार्थ काम में लें । मध्य में खट्टे, नमकीन पदार्थों का प्रयोग करें । इस विषय में खरनाद का मतभेद है ।

उनका कथन है कि पूर्व में चरपरे, नमकीन तथा खट्टे पदार्थों का उपयोग करें । बाद में मधुर, गुरु पदार्थों का

"कटुं लवणमम्लं वा पूर्वमाहारमाहरेत् ।
आहारो मधुरो ह्यग्रे गुरु विष्टभ्य जीर्यति ।।१।।"

इस प्रकार का मतभेद वास्तविक नहीं है । जिस देश में जैसा रसवाला पदार्थ जिस क्रम से सात्म्य हो उस क्रम से उसका उपयोग करे ।

६. भोजन का अनुपान

यव, गेहूं के भोजन के पश्चात् ठंडा जल पीना चाहिये । दही, मद्य, विष, शहद भोजन करने के पश्चात् भी शीत वारि पीना श्रेष्ठ है । पूवा वगैरा खाने के बाद निवाया जल पीना हितकर है ।

शाक, मूंग की दाल वगैरा के ऊपर दही का तोड़, छाछ, खट्टी कांजी पीना उचित है । इस प्रकार यह संक्षिप्त रूप से अनुपान बतलाया गया है, किन्तु सामान्य रूप से यह नियम याद रखना चाहिये कि जो अन्न के गुणों से विपरीत होते हुए विरोधी न हो वह भोजन का अनुपान होता है ।

जैसे—स्निग्ध पदार्थों का अनुपान रूक्ष, रूक्ष का स्निग्ध, ठंडे का उष्ण, उष्ण का शीत मधुर का अम्ल, अम्ल का मधुर । इसके अतिरिक्त यह भी ध्यान रखना चाहियें कि दुबले

लोगों की पुष्टि के लिये मद्य अनुपान श्रेष्ठ है, स्थूल शरीर वाले के लिये स्थूलता निवारणार्थ मधु में जल मिला अनुपालन उत्तम है।

क्षयरोगी के लिये मांस रस हितकर है, मांस भक्षण के पश्चात् एवं जिनकी पाचन शक्ति कमजोर हो उनके लिये मद्यपान हितकर है। जो रोग से, शोधनादि के द्वारा, मार्ग चलने से, अधिक बोलने से, अधिक स्त्री संग से, अधिक उपवास से क्षीण हो गये हों, उन्हें तथा वृद्ध, बच्चों के लिये दूध अनुपान अमृत के समान अत्यन्त ही हितकर है।

७. अनुपान की आवश्यकता

"अनुपानं करोत्यूर्जांतृप्ति व्याप्ति दृढांगताम्।
अन्नसंघातशैथिल्यविक्लित्तिजरणानि च ॥

अनुपान मन को हर्षित करता है, इन्द्रियों को तृप्त करता है। कठिन पदार्थ को द्रव करके व्याप्त कर देता है। अंगों को दृढ़ करता है, अन्न के संघात में शिथिलता लाता है। आहार में मृदुता लाकर पचाता है। अनुपान में इतने गुण हैं, किन्तु ऊर्ध्वजत्रुगत रोग वाले के लिये अनुपान लाभप्रद नहीं है।

ऊर्ध्वजत्रु रोगी को दिया हुआ अनुपान आमाशय को दूषित करके हृदय कण्ठ में स्थित आहारजन्य स्नेह में मिलकर अभिष्यन्द, अग्निमांद्य, वमन इत्यादि व्याधियों को उत्पन्न करता है।

जिन देहधारियों का शरीर आम तथा विसर्प रोग से विशेष क्लिन्न रहता है उनके लिये एवं मेह रोगी, नेत्र रोगी, कण्ठ रोगी, व्रणी (घाव वाला) द्रव रूप अन्नपान का परित्याग करे ऐसा लिखा है।

इसका आशय यह नहीं है कि अन्नपान के ऊपर जो अनुपान किया जाता है, वह भी न करे।

खरनाद लिखते हैं—

मेही प्लीही व्रणी कुष्ठी पाण्डुर्जठरपीनसी ।
शोषातिसारी मंदाग्निः पानीयं मन्दमाचरेत् ॥
नोर्ध्वाङ्गपवनाविष्टे वाग्व्यायामाहते न च ।
क्षतोरसि श्वासकासहिक्कावम्यर्दिते न च ॥
निरन्ने चोर्ध्वरोगे च न पेयं वारि शीतलम् ।

प्रमेही, प्लीहरोगी, व्रणी, कुष्ठी, पाण्डुरोगी, उदर रोगी, पीनस वाला, शोष रोगी, अतिसारी, मंदाग्नि वाला, कम जल पीए।

ऊर्ध्वाङ्गगत वात व्याधि में वाणी का व्यायाम—

अर्थात् अध्ययन, अध्यापन, गान जिन्होंने किया हो, जिन्हें उरक्षत हो, श्वास, कास, हिक्का, वमन हो रहा हो उन्हें तथा सूर्योदय के अनन्तर जिन्होंने कुछ भी न खाया हो, ऊर्ध्वजत्रुगत रोग जिनके हों इन्हें शीतल जल नहीं पीना चाहिये ।

८. भोजन के बाद वर्ज्य कार्य

खा पी लेने के बाद बोलना, मार्ग चलना, सोना, धूप में बैठना, अग्नि से तापना, रथादि से यात्रा करना, घोड़े आदि की सवारी करना, जल में तैरना, मैथुन आदि निषिद्ध कर्मों का परित्याग करना चाहिये ।

९. अति भोजन से हानि

अति मात्रा में किया हुआ भोजन वातादि तीनों दोषों को प्रकोपित कर देता है ।

अतिमात्रं पुनः सर्वानाशु दोषान्प्रकोपयेत् ।

अपक्वाहार से जब वातादि दोषों का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है तो वातादि पीड़ित होकर एक ही समय में कुपित हो उसी अपक्वाहार में प्रविष्ट हो जाते हैं । प्रविष्ट हुए—वातादि यदि उस दुष्ट अन्न को स्रोतों में रोक लेते हैं तो **अलसक नामा व्याधि हो जाती है ।** यदि अपक्वाहार में प्रविष्ट कुपित वातादि उस दुष्ट आहार को ऊपर मुख के द्वारा अधः मलमार्ग के द्वारा निकालते हैं तो उसे **विषूचि** नामा व्याधि कहते हैं ।

अलसक तथा विषूचिका उन्हीं लोगों को अचानक होती है जो भोजन की मात्रा का ज्ञान नहीं रखते ।

यदि कोई संयोग विरोधी आहार का सेवन करता है अथवा अध्यशन करता है या अजीर्ण में भोजन करता है, उसको अत्यन्त भयंकर विषसंज्ञक आमदोष हो जाता है, जिसकी चिकित्सा असंभव हो जाती है । कारण कि एक तो विष के सदृश होने से उसमें शीतोपचार होना चाहिये, वह शीतोपचार आम (अपक्वाहार) के विरुद्ध पड़ता है । यदि उष्णोपचार करें तो वह विष के विपरीत होता है । दूसरा विष रूप होने से आशुकारी होता है, अर्थात् तेजी से अपनी प्राणघातिनी क्रिया करता है ।

विरुद्धाध्यशनाजीर्णशीलिनो विषलक्षणम्
आमदोषं महाघोरं वर्जयेद्विषसंज्ञकम् ॥
विषरूपाशुकारित्वाद्विरुद्धोपक्रमत्वतः ।

१०. अजीर्ण एवं उसका उपचार

अजीर्ण तीन प्रकार के होते हैं, आमाजीर्ण, विष्टब्धाजीर्ण, विदग्धाजीर्ण। आमाजीर्ण कफ के द्वारा होता है। उसकी पहचान इस प्रकार है। अक्षिकूप एवं कपोल पर शोथ हो जाता है तथा डकार ऐसी आती है मानों अभी भोजन किया हो एवं ऐसा मन में लगे कि अभी वमन हो जायगा तथा शरीर भारी हो जाता है।

विष्टब्धाजीर्ण वायु से होता है। उसमें पेट फूल जाता है, शूल होने लगता है, कब्जी हो जाती है।

विदग्धाजीर्ण पित्त से होता है। इसमें प्यास अधिक लगती है, जलन सहित खट्टी डकारें आती हैं, मूर्छा भी हो जाया करती है। इनके लिये क्रमशः आमाजीर्ण में लंघन, विष्टब्धाजीर्ण में पेट पर तैल लगाकर थैली या बोतल में गरम जल भरकर तपाना चाहिये। ऊपर बताये हुए तीन प्रकार के उपचार तीनों में क्रमशः ही करें ऐसा भी कोई नियम नहीं है। जिस अजीर्ण में जैसा उपचार उपयुक्त हो करें।

अल्प दोष में लंघन, मध्य दोष में लंघन पाचन, अधिक दोष में शोधन इस प्रकार का उपचार भी लाभप्रद होता है। कुछ लोग अजीर्ण का कारण अधिक भोजन ही मान लेते हैं पर यह मान्यता ठीक नहीं, अजीर्ण के कारण अधिक भोजन के अतिरिक्त और भी हैं।

न चातिमात्रमेवान्नमामदोषाय केवलम्।
द्विष्टविष्टम्भिदग्धामगुरुरूक्षहिमाशुचि ॥
विदाहि शुष्कमत्यम्बुप्लुतं वान्नं न जीर्यति।

केवल अति मात्रा में खाया हुआ अन्न ही अजीर्ण का कारण नहीं है। अप्रिय भोजन पेट में गुड़गुड़ी पैदा करने वाला, जला हुआ, कच्चा, भारी, रूखा, ठण्डा, अपवित्र (जिसमें केश मक्खी पड़ गये हों अथवा जूठा हो) विदाही, सूखा, अतिजलप्लुत अन्न भी जीर्ण नहीं होता।

इन तीनों अजीर्णों के अतिरिक्त समशन, अध्यशन, विषमाशन भी मृत्यु के कारण बनते हैं या भयंकर व्याधि के कारण बनते हैं।

११. समशन विषमाशन अध्यशन

जो पथ्य अपथ्य को इकट्ठा करके खाया जाता है उसे समशन कहते हैं।

असमय में अधिक मात्रा या हीन मात्रा का भोजन विषमाशन कहलाता है।

भोजन के ऊपर जो पुनः भोजन किया जाता है वह अध्यशन कहलाता है। अध्यशन का तात्पर्य यह न समझें कि जो प्रातः भोजन किया उसके बाद सायं भोजन किया वह भी अध्यशन हो गया।

भगवान व्यास का आदेश है कि—

सायं प्रातर्मनुष्याणां भोजनं विधिनिर्मितम् ।

प्रातः एवं सायं भोजन मनुष्य के लिये विधि प्राप्त है। आयुर्वेद तन्त्र भी दिन में दो बार भोजन के लिये उपदेश करते हैं। अध्यशन का तात्पर्य यदि समझ में आ जाय तो पूर्वोक्त शंका कभी न होगी।

अध्यशन की परिभाषा सुश्रुत ने इस प्रकार की है—

प्राग्भुक्ते त्वति भक्तेन्नौ द्विरन्नं न समाचरेत् ।

पहले खाये हुए अन्न को अग्नि जब तक विभक्त न कर देती उसके पहले ही जो भोजन किया जाता है उसे द्विरन्न अथवा अध्यशन कहते हैं। द्विरन्न का आचरण कभी नहीं करें। अष्टाङ्ग संग्रह में इसको इस प्रकार स्पष्ट किया है—

अजीर्णे सायमाशे तु प्रातराशो हि दुष्यति ।
दिवा प्रबोध्यतेऽर्केण हृदयं पुण्डरीकवत् ।।
तस्मिन्विबुद्धे स्रोतांसि स्फुटत्वं यान्ति सर्वशः ।
व्यायामाच्च विचाराच्च विक्षिप्तत्वाच्च चेतसः ।।
न क्लेदमुपगच्छन्ति दिवा तेनास्य धातवः ।
अक्लिन्नेष्वन्नमासक्तमन्यत्तेषु न दुष्यति ।
अविदग्धेष्विव पयःस्वन्यसंमिश्रितं पयः ।

प्रातःकाल का भोजन यदि जीर्ण न हुआ हो तो भी सायंकाल का भोजन दोषकारक नहीं। सायंकाल का भोजन यदि जीर्ण न हुआ हो तो प्रातःकाल का भोजन दोषोत्पादक होता है। दिन में सूर्य से हृदय कमल की तरह विकसित हो जाता है। उसके विकसित होने से सब स्रोत विकसित हो जाते हैं। अतः दिन में व्यायाम से, विचार से, चित्तविक्षेप से, धातु क्लेद भाव को प्राप्त नहीं होते हैं। जब अन्न क्लिन्न नहीं होता तो उसके ऊपर किया हुआ भोजन दोषावह नहीं होता। इसे दृष्टान्त के द्वारा यों समझिये। जैसे—कढ़ाई में गरम किये जाने वाले दूध में ठण्डा दूध डाल दिया जाय तो कोई खराबी नहीं होती। रात्रि में ऐसा नहीं है।

रात्रौ तु हृदये म्लाने संवृतेष्वयनेषु च ।
परिक्लेदं यान्ति कोष्ठे संवृते देहधातवः ।।
क्लिन्नेष्वन्यदपक्वेषु तेष्वासिक्तं प्रदुष्यति ।
विदग्धेषु पयःस्वन्यत्पयस्तप्तेष्विवार्पितम् ।।
नैशे तस्मादजीर्णेऽन्ने नान्यद् भुंजीत भोजनम् ।

रात्रि में सूर्य के अभाव में हृदय कमल मुरझा जाता है, उससे सब स्रोत भी बन्द हो जाते हैं। स्रोतों के बन्द होने से देह धातु गीले हो जाते हैं।

धातु में गीलापन आ जाने से उनमें मिला हुआ अन्न दूषित हो जाता है। जैसे गरम

किये हुए विदग्ध दूध में मिलाया हुआ दूसरा दूध भी खराब हो जाता है। इसलिये रात्रि के अजीर्ण में कभी भी प्रातः भोजन न करें। नहीं तो नियम संख्या ९ में बताये हुए दोष उत्पन्न होंगे जिनसे भयंकर व्याधि होने की सम्भावना है।

इस प्रकार आयुर्वेद में बताये गये भोजन विधान का जो ठीक ठीक पालन करते रहेंगे उन्हें कभी भी व्याधि नहीं सतायेगी। उपर्युक्त नियम अत्यन्त ही संक्षिप्त है, आर्ष ग्रन्थों में ऋतु के अनुसार व्याधि के अनुसार भोजन का अच्छा विचार किया है।

आवश्यक सूचना

उक्त लेख में जहां २ माँस रस अथवा मदिरा का उपयोग बताया गया है, वह केवल शास्त्र के अनुवाद की दृष्टि से ही रक्खा गया है। मांस का अथवा मदिरा का उपयोग कभी भी नहीं करना चाहिये। हमारे धर्मशास्त्र इनके उपयोग का निषेध करते हैं।

भारतीय प्राचीन शास्त्र और कला

भारतीय शिल्पकला का नमूना प्राचीन शिल्प गुफाओं में मिलता है। भारतीय प्राचीन औषधि विद्या का उपकारक अनुभव धूतपापेश्वर औषधियों में प्रतीत होता है।

धूतपापेश्वर
"कर्पूर अर्क"
दंतशूल, उदरशूल, अतिसार इत्यादि पर गुणकारक।

धूतपापेश्वर इण्डस्ट्रीज लि०
भारत का आद्य आर्यौषधि कारखाना
[स्थापना सन् १८९२]
पनवेल—बम्बई

बोध चिन्ह

देहली—वेदप्रकाश, धूतपापेश्वर आयुर्वेदिक औषधालय, ३९-ई, कमलानगर, गोल चौक, देहली

द्रव्ये रसवर्णनम् ★

लेखक—कविराज श्री नेत्रपाल शास्त्री,
आयुर्वेदाचार्य

द्रव्यं हि रसद्वारेणैव स्वकार्यं जनयति । यथोक्तं शास्त्रे "पाको नास्ति विना वीर्याद्वीर्यं नास्ति विना रसाद्" इत्युक्तेः रसाधीनं वीर्यं, वीर्याधीनश्च विपाकः—इति ।

तत्र रस्यते रसनेन्द्रियेणाऽस्वाद्यते इति रसशब्दनिरुक्तिः । रसस्य सामान्यलक्षणन्तु चरकसंहितायां "रसनार्थो रसः" इति ।

अर्थात् रसनाग्राह्यो योऽर्थः स एव रसः इति । ननु येनेन्द्रियेण यद्वस्तु गृह्यते तेनैव तदभावस्तन्निष्ठा जातिश्च गृह्यते, इति नियमात् लक्षणमेतत् रसत्वे रसाभावे चातिव्याप्तम्,

अव्यक्तरसे चाऽव्याप्तम्, एवं तर्हि 'रसनेन्द्रियग्राह्यवृत्ति' गुणत्वावान्तरजातिमत्वं रसत्वम् इति जातिघटकलक्षणं विधेयम् ॥

स एव पृथिव्या गन्ध एव जलस्य विशेषगुणः सन्नपि उत्तरोत्तरभूतेषु पूर्वपूर्वभूतगुणानुप्रवेशात् पृथिव्यामप्युपतिष्ठते ।

तथा च पृथिवीजले सम्भूय रसस्याधारे भवतः, तेजोऽनिलाकाशानि तु त्रीणि तदभिव्यक्तौ तदवान्तरभेदरूपमधुरादिविशेषोत्पादे च सहकारिकारणानि भवन्ति । तथा च चरकः--
रसनार्थो रसस्तस्य द्रव्यमापः क्षितिस्तथा । निवृत्तौ च विशेषे च प्रत्ययाः खादयस्त्रयः ॥

अत्र चक्रपाणिः 'रसस्य यथा आप आधारकारणं तथा क्षितिरपि, निवृत्तौ अभिव्यक्तौ च अप्क्षितिप्रत्ययौ । अर्थात् रसोऽभिव्यज्यमानो जलक्षित्याधार एवाभिव्यज्यते, "विशेषे च प्रत्ययाः खादयस्त्रयः" इति मधुरादिविशेषनिवृत्तौ च खवायुअनला निमित्तकारणं न प्रधानकारणभूताः इति । सुश्रुतेऽपि "स खल्वाप्यो रसः शेषभूतसंसर्गाद्विदग्धः षड्विधो भवति इति ।

व्याख्यातवांश्च डल्हणः । स आप्यो रसो जलादन्यानि भूतानि शेषभूतानि तेषां संसर्गाद्विदग्धः परिणतः कालसहायभूमिविपदनलानिलसंसर्गेण परिणामान्तरं गतः षट्प्रकारो भवति ।

एतेन यदि आप्यो रसस्तर्हि कथं पार्थिवद्रव्येषूपलभ्यते, इति "यद्याप्य एव रसस्तर्हि अपामव्यक्तरसत्वेन मधुरादिविशेषोत्पादो नोपपद्यते" इति च आक्षेपौ निराकृतौ भवतः, पूर्वं पूर्वभूतानुप्रवेशेन इतरभूतसंसर्गेण च समाधानीयत्वात् ।

सोऽयं मधुराम्ललवणकटुतिक्तकषायभेदेन षड्विधः ।

यद्यपि रस शब्दोऽयं वैद्यके बहुत्र तत्तन्निर्वचनादबहुषु वस्तुषु दृश्यते प्रयुक्तः । यथा "रसति अहरहर्गच्छति" इति निर्वचनबलेन अशितखादितपीतलीढरूपाहारप्रथमपरिणामे, क्वचित्तु रक्ते क्वचित्पुनारक्तात्सूक्ष्म स्रोतोभिर्गल्यमाने लसिकादि द्रवे च "रसति सर्वान् धातून्" इति निर्वचन बलात्तु पारदे-यथा-परमात्मनीव सततं भवति लयो यत्र सर्वसत्वानाम् । एकोऽसौ रसराजः शरीरमजरामरं कुरुते ॥ इति रसति विकृतेषु शरीरभावेषु आशु प्रसरति इति निर्वचनबलात्तु स्वरसादि कल्पनाविशेषे यथा—

'दशमूलीरसः पेयः कणायुक्तः कफानिले' इत्यादि तथापि तत्र सर्वत्र यौगिकी वा गौणी वा संज्ञा बोध्या मधुरादिषु षट्सु तु मुख्या । इति ॥

तत्र भूजलयोर्बाहुल्यान्मधुरः "भूतेजसोरम्लः" जलतेजसोर्लवणः 'वायु आकाशयोस्तिक्तः' वायुतेजसोः कटुः भूवाय्वोश्च कषायः, इति ।

ननु यदि तोयाग्निगुणबाहुल्यादम्लो रस उत्पद्यते तर्हि उष्णोदके नोपलभ्यते इति चेन्नैष-दोषः नहि भूतसंसर्गमात्रादेव रसविशेषो निष्पद्यते किन्तु विशिष्टामेव परिणतिमपेक्षते । तस्या उष्णोदकेऽभावात् नाम्लतोपलब्धिरिति ।

न नु यथा भूमिजलाधिक्यान्मधुरस्तथा वायुजलाधिक्यात् भूम्याकाशाधिक्याद्वा किमपि रसांतरं कुतो न जायते इति न, पृथिव्यादि भूतस्वभावस्यापर्यनुयोज्यत्वात् । वस्तुस्वभावं परीक्षितुं प्रभवामो न भूतस्वभावं पर्यनुयोक्तुम् । यतो भूतानामयमेव स्वभावो यत्केनचित् भूताधिक्ये रसविशेषमुत्पादयन्ति, न पुनर्यत् किंचिद् भूताधिक्येन इति ।

न च अन्तरीक्ष जलेऽव्यक्तस्य रसान्तरस्याऽभ्युपगमात् रसानां षट्त्वं कथमुत्पद्यते इति वाच्यम्, अव्यक्तरसस्य मधुरादिभ्योऽभिन्नत्वात् इति । क्षारस्तु न रसान्तरं तस्य क्रियागुणयोगिनो द्रव्यत्वात् । तथा च चरकः—क्षरणात् क्षारो नासौ रसो द्रव्यं हि तत् इत्यादि ।

एषां स्वरूपं तु "रसं विद्यान्निपातेन" इति वाग्भट्टोक्ते रसनद्वारा सर्वजनप्रतीतिविषयत्वेन देशेत्वानूपे प्रायो मधुरः, जाङ्गले च कटु, आनूपे साधारणे च अम्लो लवणश्च भूम्ना जायते बलवांश्च । काले च शिशिरे तिक्तः, वसन्ते कषायः, ग्रीष्मे कटुः, वर्षास्वम्लः, शरदि लवणः, हेमन्ते च प्रायो मधुर उद्रिक्तो भवति । किंच मधुरतिक्तकषायाः शीताः, कट्वम्ललवणा उष्णाः, मधुराम्ललवणाः स्निग्धाः गुरवश्च, कटुतिक्तकषायास्तु रूक्षाः लघवश्च ।

इह रसादिगुणेषु गुर्वादिगुणान्तरयोग औपचारिकः, मुख्यस्तु तत्तद्रसवति द्रव्य एव । तदुक्तम्—

गुणा गुणाश्रया नोक्तास्तस्माद्रसगुणान् भिषक् ।
विद्याद् द्रव्यगुणान्…………………इति ॥

उपचारबीजं तु द्रव्यरसयोः साहचर्यमेव ।

तत्र मधुराम्ललवणाः वातहराः, कटुतिक्तकषायास्तु वातकराः, तिक्तस्वादुकषायाः पित्तहराः, कट्वम्ललवणास्तु श्लेष्मकराः । ते एते रसाः परस्परं संसृष्टा षट् एकद्वयादि भेदेन परस्परं मिश्रितास्तु सप्तपंचाशत् इति मिलित्वा त्रिषष्टिर्भवन्ति । उक्तं च वाग्भट्टे --

संयोगाः सप्तपंचाशत्कल्पना तु त्रिषष्टिधा ॥
रसानां यौगिकत्वेन यथा स्थूलं विभज्यते ॥

तत्रापि रसानुरसभेदप्रस्तारेण तरतमादिभेदेन च, असंख्येया भवन्ति ।

ते रसाऽनुरसतो रस भेदास्तारतम्यपरिकल्पनया च ।
सम्भवन्ति गणनां समतीता दोषभेषजवशादुपयोज्याः ॥

विशेषविस्तृतदर्शनार्थं वाग्भट्टे रसभेदीयदशमोऽध्यायः द्रष्टव्यः ।

रसोन (लहसुन)

लेखक—कविराज श्री मोहनलाल शास्त्री, भिषगाचार्य, आयुर्वेदिक रसायन फार्मेसी,
नाईवाला, ३०, करौलबाग, नई दिल्ली-५

यह एक कन्द है, इसका आयुर्वेद शास्त्रों में वर्णन आया है। श्री चरक, श्री सुश्रुत तथा श्री भावमिश्र आदि ने इसे रोग शमन करने के लिये उत्तम औषध माना है। वमिश्र जी ने इसकी उत्पत्ति के विषय में एक ऐसी विशेषता दिखाई है, जिसका अध्ययन र अध्यापन चिरकाल से चला आ रहा है। तथापि उस विशेषता पर गुरु वर्ग ने ध्यान नहीं या या समझने का प्रयत्न नहीं किया, अन्यथा दूसरे देशों के वैज्ञानिक यह कहते सुनाई देते कि "रसोन एक अनुपम वस्तु है, इससे अनेक रोगों का शमन ही नहीं होता किन्तु यह नव शरीरों के लिये जीवनीय शक्ति समुत्पादक भी है"। ऐसा उनसे पहले हम कहते, इसमें प आयुर्वेद शास्त्र का नहीं, हमारा है।

भारतीय शास्त्रों पर समय-समय पर आपत्तियां आती रही हैं जिनसे शास्त्र की वस्तु-तियां विकृत होती रही हैं। कभी ईर्ष्यावश भी शास्त्रों के भाष्य तथा रहस्य लुप्त प्राय हो ते हैं, उदाहरणार्थ, लंकेश रावण कृत भाष्यों का आज कहीं पर भी अस्तित्व नहीं मिलता, ल आयुर्वेद के नाड़ी-विज्ञान तथा अर्क-प्रकाश दो छोटी-छोटी पुस्तिकायें मिलती हैं जिन पर क अवस्था में होने का सन्देह है। इसी प्रकार प्राचीन भाष्यों के विषय में कहा जा ता है।

अथर्ववेद आयुर्वेद का मूल स्रोत है, अतः श्री चरकाचार्य ने प्रारम्भ में अथर्ववेद को युर्वेद माना है। अथर्व का कोई प्राचीन भाष्य उपलब्ध नहीं है, श्री सायण आदि कुछ ब्दियों के आचार्य हैं, वेदों का अति प्राचीन काल है, हमारी श्रद्धा इनके अनादित्व पर है कुछ वैज्ञानिकों का मत इनका अति प्राचीन होना है।

वेदों में बहुधा कथानकों के रूप में अति गम्भीर रहस्य आये हैं। उनका सम्बन्ध न से है, किन्तु सर्वसाधारण को समझाने के लिये उन्हें कथानकों का रूप दिया गया है से साधारण मनुष्य भी उस कथा के प्रभाव में आकर उस विषय को अपनाने लगे।

इसी प्रकार रसोन के सम्बन्ध में श्री भावमिश्र जी ने पौराणिक ढंग से विशेषता है। वह विशेषता यह है—

यदाऽमृतं वैनतेयो जहार सुरसत्तमात्,
तदा ततोऽपतद् बिन्दुः स रसोनोऽभवद् भुवि।
पञ्चभिश्च रसैर्युक्तो रसेनाम्लेन वर्जितः,
तस्माद् रसोन इत्युक्तो द्रव्याणां गुणवेदिभिः॥

गरुड़ ने इन्द्र से अमृत छीना तब उससे अमृत बिन्दु पृथ्वी पर गिर गया और रसोन पैदा हुआ। छै रसों में से अम्लरसरहित अर्थात् पांच रस युक्त द्रव्यों में गुणवेत्ताओं ने रसोन कहा है।

ऐसी कथा प्रचलित है, आयुर्वेद वेत्ताओं ने इस कथा को प्रचलित रक्खा पर रहस्य समझने का प्रयत्न नहीं किया गया। आजकल ऐसी कथाओं पर विश्वास करना कठिन है। इस द्रव्य का, अनुपम होने पर भी, तिरस्कार ही नहीं हुआ पर भोज्य पदार्थों में यह अछूत द्रव्य बन गया। इससे विज्ञान के लाभ की अपेक्षा हानि हुई, और आयुर्वेद के मान में भी बाधा पहुंची क्योंकि उसी विज्ञान का आदर होता है जिसकी बात कसौटी पर परीक्षा में ठीक उतर सके।

कथा को विज्ञान के अनुकूल विचार किये जाने पर ठीक ही उतरती है, विद्वान् कुछ परिश्रम अवश्य करें अन्यथा गल्प मात्र ही रहता है।

वेदों में ऐसी कथायें आई अवश्य हैं जिनका वास्तविक तत्व समझने और समझाने का महर्षियों ने अति प्रयत्न किया है। वे ऋषि हैं महर्षि यास्क आदि जिन्होंने इन्द्र शब्द का विवेचन किया, विज्ञ संसार के सामने इन्द्र शब्द का रहस्य लाये, अतः विज्ञान की भलाई हुई।

महर्षि यास्क ने दैवत प्रकरण में (निरुक्त अध्याय सप्तम) "अग्निः पृथिवीस्थानो वायुर्वेन्द्रो वान्तरिक्षस्थानः सूर्यो द्युस्थानः" तिस्र एव देवता इति नैरुक्ताः" इति

जिस प्रकार पृथ्वी पर अग्नियुक्त वायु शक्ति है उसी प्रकार पार्थिव, जलीय, कणों से युक्त अन्तरिक्ष में शक्ति है तथैव द्युस्थान में सूर्याग्नि युक्त वायु शक्ति है, वायु साहचर्य सर्वथा सर्वत्र है। यह महाशक्ति है, अतः आयुर्वेद शास्त्र ने वायु को स्वयम्भू धाता विधाता नाम से पुकारा है। पृथिवी, जल के कण युक्त वायु अन्तरिक्ष में 'आप' शब्द से कहा जाता हैं, जिसका वर्णन चरकाचार्य ने भली प्रकार किया है यथा "सौम्याः खल्वापोऽन्तरिक्षप्रभवाः प्रकृतिशीता लघ्व्यश्चाव्यक्तरसाश्च, ता स्त्वन्तरिक्षाद् भ्रश्यमानाः, भ्रष्टाश्च पञ्चमहाभूतविकारगुणसमन्विता जङ्गम स्थावराणां भूतानां मूर्तिरभिप्रीणयन्ति, तासु मूर्तिषु षडभिमूर्च्छन्ति रसाः" अन्तरिक्ष में इस अवस्था में वायु या इन्द्र नाम का है, और पृथिवी व जल के कण अन्तरिक्ष में आप है अतः "अन्तरिक्षभवा आपः" शास्त्र पाठ है। यह ही आप सब रसों का मूलतत्व है। अन्तरिक्ष से इसके पतन से समस्त संसार की वस्तुजात पनपती है और यह छओं रसों का समुत्पादक है। वैसे तो संसार की समस्त वस्तुजात पञ्चमहाभौतिक है, तथा न्यूनातिरेक विशेष से नाना वर्णाकृति और नाना गुणयुक्त हो जाती है।

निष्कर्ष यह निकला इन्द्र उस शक्ति का नाम हैं, जो अन्तरिक्ष में रहती है, पूर्वोक्त वायु विशेष है। अमृत अन्तरिक्ष में आप बनता है, पर वह आप सूर्य की बालरश्मियों के प्रभाव से अमृत बनता है। बालरश्मियों के बिना वह अमृत नहीं बनता क्योंकि "आपोज्योतीरसोऽमृतम्"

—शेष पृष्ठ ५१७ पर देखें

हरीतकी

ले०—आयुर्वेदाचार्य श्री वागीश्वर शुक्ल, सैंट्रल रिचर्स इंस्टीट्यूट, जामनगर

(गतांकादूर्ध्वम्)

(२८) त्रिमर्मीयचिकित्सिते—

(क) वचाभयाचित्रकयावशूकान् सपिप्पलीकातिविषान् सकुष्ठान् ।
उष्णाम्बुनानाहविमूढवातान् पीत्वा जयेदाशु रसौदनाशी ॥
च. चि. २६ अ. ।२१

(ख) हरीतकीनागरपुष्कराह्वैर्वय:कयस्थालवणैश्च कल्कैः ।
सहिङ्गुभिः साधितमग्र्यसर्पिर्गुल्मे सहृत्पार्श्वगदेऽनिलोत्थे ॥
च. चि. २६ अ. ।२२

वयः कयस्थेति वयःस्था कायस्थयोर्गुडूच्यामलकयोः स्वरसग्रहणम् । अग्र्यसर्पिरिति अत्राग्र्यपदस्य सर्पिषः प्राधान्यख्यापनार्थम् इति चक्रः ।

(ग) पथ्याशटीपौष्करपञ्चकोलात् समातुलुङ्गाद्यमकेन कल्कः ।
गुडप्रसन्नालवणैश्च भृष्टो हृत्पार्श्वपृष्ठोदरयोनिशूले ॥
च. चि. २६।८६

पथ्याशटीत्यादौ यमकेन भृष्टः कल्कः गुडप्रसन्नालवणैश्च पेय इति व्याख्येयम् ।

(घ) कफजहृद्रोगे—
स्विन्नस्य वान्तस्य विलंघितस्य···पानानि तीक्ष्णानि च शङ्कराणि ।
मूत्रे श्रृताः कट्फलश्रृङ्गवेरपीतद्रुपथ्यातिविषाः प्रदेयाः ॥
च. चि. २६ अ. ।९७

मुखरोगे—(ङ) पथ्यां तेजोवतीं पाठां समभागं विचूर्णयेत् ।
मुखरोगेषु सर्वेषु सक्षौद्रं तद् विधारयेत् ॥ ,, ,, ।१८९

(च) कफजअरोचके—
लोध्रं तेजोवती पथ्या त्र्यूषणं सयवाग्रजम् ।
सतैलमाक्षिकन्त्वेतत् कवलग्रहमुत्तमम् ॥ ,, ,, ।२१७

(छ) नेत्ररोगे—उत्पन्नमात्रे तरुणे नेत्ररोगे विडालकः ।
कार्यो दाहोपदेहाश्रु शोफरागनिवारणः ॥
निघृष्टं वातिके तद्वत् कार्यो हरीतक्याः घृतभृष्टो रुजापहः । ,, ,, ।२३३

विडालको नेत्रबहिर्लेपः शालाक्ये उच्यते । निघृष्टमित्यादौ तद्वदिति रसक्रियेत्यर्थः हरीतकी तद्वदिति हरीतकी घृतयुक्तो विडालकः । इति चक्रः ।

(ज) कफजे स्वरभेदे तु तीक्ष्णं मूर्धविरेचनम् ।
विरेको वमनं धूमो यावन्न कटुसेवनम् ।
चव्यभार्ग्यभयाव्योषक्षारमाक्षिकचित्रकान् ।
लिह्यात्········ ॥ च. चि. २६।२८७

(२९) ऊरुस्तम्भचिकित्सायाम्—

(क) क्षारारिष्टप्रयोगाश्च हरीतक्यास्तथैव च ।
मधूदकस्य पिप्पल्या ऊरुस्तम्भविनाशनाः ॥ च. चि. २७ अ.।२८

(ख) मुस्तं हरीतकी लोध्रं पद्मकं तिक्तरोहिणीम् ।
चव्यं चित्रकमूलानि देवदारुहरीतकीम् ।
सक्षौद्रावर्धश्लोकोक्तौ कल्कावूरुग्रहापहौ ॥ ,, ।३०-३२

(३०) श्लेष्मलायां योन्याम्—

पिप्पल्ययोरजःपथ्याप्रयोगा मधुना हिताः । च. चि. ३० अ.।८४

(३१) फलपिप्पलीनां द्वौद्वौभागौ कोविदारकषायेण त्रिःसप्तकृत्वास्त्रावयेत्, तेन रसेन तृतीयं भागं पिष्ट्वा हरीतकीभिर्विभीतकैरामलकैर्वा तुल्यां कर्तयेत् । तासामेकां द्वेवा पूर्वोक्तानां कषायाणामन्यतमस्याञ्जलिमात्रेण विमृद्य बलवच्छ्लेष्मप्रसेकग्रन्थिज्वरोदरारुचिषु पाययेदिति समानं पूर्वेण । च. क. १ अ. ।१६

फलपिप्पलीनां द्वौ भागावित्यादौ फलपिप्पलीनां भागत्रयं कर्तव्यम्, तत्र भागद्वयं षड्गुणेन कोविदारकषायेण क्षारपरिस्रावणविधिवदेकविंशतिवारान् परिस्रावणीयम् । कोविदारादीनां चाष्टानामष्टौ कषायाः पृथक् परिस्रावणे प्रयोक्तव्याः । येन च कषायेण फलपिप्पलीभागद्वयं परिस्राव्य हरीतक्यादिपरिमाणमात्रा तृतीयभागफलपिप्पलीकल्कस्य क्रियते तेनैव कषायेण मात्रायोगाः । एवं अष्टौ हरीतक्यादि मात्रया निर्दिष्टाः फलपिप्पलीयोगा भवन्ति ।

मात्राविकल्पश्च दोषबलादिविकल्पकृतो ज्ञेयः ।

समानं पूर्वेणेति पूर्वयोगवदिह स्नेहस्वेदाभिमन्त्रणविधानं कर्तव्यम ।

(३२) (क) पिप्पल्यादि द्रव्यभेदेन मूत्रेऽष्टादशयोगानाह—

……पथ्या…एकैकार्धांशसंयुक्तं पिबेद्गोमूत्रसंयुतम् । क. ७ अ. ।१६

हरीतकी त्रिवृत् समभागौ गोमूत्रेणालोड्य विरेचनार्थं पिबेत् ।

(ख) क्षीरमांसेक्षुकाश्मर्य द्राक्षापीलुरसैः पृथक् ।
सर्पिषा वा तयोश्चूर्णमभयार्धांशिकं पिबेत् ॥ क. ७ अ. ।२०

(ग) मातुलुङ्गाभयाधात्रीश्रीपर्णीकोलदाड़िमात् ।
सुभृष्टान् स्वरसांस्तैले साधयेत्तत्र चावयेत् ॥
सहकारात् कपित्थाच्च मध्यमम्लं च यत्फलम् ।
पूर्ववद्वहकी भूते त्रिवृच्चूर्णं समावयेत् ॥
त्वक्पत्रकेशरैलानां चूर्णं मधु च मात्रया ।
लेहोयं कफपूर्णानामीश्वराणां विरेचनम् ॥ क. ७ अ. ।३०-३२ ४६

(घ) व्योषादिमोदके (तन्त्रान्तरेऽभयाद्य इति ख्यातेति चक्रः । ,,

(ङ) पथ्याधात्रीरुबूकाणां प्रसृतौ द्वौ त्रिवृत्पलम् ।
दश तान् मोदकान् कुर्यादीश्वराणां विरेचनम् ॥ ,, १५०

(३३) मेषशृङ्ग्यभयाकृष्णाचित्रकैः सलिले शृते ।
मरुजान् सुनुयात्तच्च जातं सौवीरकं यदा ।
भवेदञ्जलिना तस्य लोध्रकल्कं पिबेत् सदा ॥ च. क. ९ अ. १७

तस्येति तिल्वकस्य मेषशृङ्ग्यादिनाविशिष्टसौवीरकेण योग एकः ।
मरुजा = भृष्टयवाः ।

(३४) (क) शंखिनीचूर्णभागौ द्वौ तिलचूर्णस्य चापरः ।
हरीतकीकषायेण तैलं तत्पीड़ितं पिबेत् ॥ च. क. ११ अ. १०

शंखिनीचूर्णं तिलचूर्णं च हरीतकीकषायेण सन्नीय पीड़ितं तत्तैलं पिबेदिति ।

(ख) अतलीसर्षपैरण्डकरञ्जेष्वेष संविधिः । च. क. ११ अ. ११

(३५) (क) हरीतकीरसे चैव लेहानेवं पचेद् भिषक् । ,, १२ अ. १६

(ख) पलं चित्रकदन्त्योश्च हरीतक्याश्च विंशतिः ।
त्रिवृत् पिप्पलि कर्षौ द्वौ गुडस्याष्टपलेन तत् ॥
विनीय मोदकान् कुर्याद्दशैकं भक्षयेत्ततः ।
उष्णाम्बु च पिबेच्चानु दशमेदशमेऽह्नि च ॥
एते निष्परिहाराः स्युः सर्वरोगनिबर्हणाः ।
ग्रहणीपाण्डुरोगार्शः कण्डूकोठानिलापहाः ॥ ,, २८-३०

अयं योगस्तन्त्रान्तरे अगस्त्यमोदक इति ख्यातः ।

(३६) (क) यष्ट्याह्व लोध्राभयचन्दनैश्च शृतं पयोग्र्यं कमलोत्पलैश्च ।
सशर्करं क्षौद्रयुतं सुशीतं पित्तामयान् हन्ति सजीवनीयम् ॥
च. सि. ३ अ. ४७

अत्र पयःसाधनं क्षीरपाकपरिभाषयैव । यष्ट्याह्व लोध्रेत्यादिना जीवनीयनित्यनेनैको योगः । जीवनीयानामत्र कल्कः । सुशीतत्वमिहौत्सर्गिकं, मृदुकोष्ठेष्वधिकं पित्तहितत्वात् ।

(ख) अनया च दिशाऽपरपित्तहरबस्तावपि सुशीतत्वम्—
पित्तहरबस्तिः (द्राक्षार्क···प्रशस्तः) च. सि. ३।५४

(ग) दद्यान्निरूहं कफरोगिणे ज्ञो मन्दाग्नये चाप्यशनद्विषे च ।
पटोलपथ्यामरदारुभिर्वा सपिप्पलीकैः क्वथितैर्जलेऽग्नौ ॥ च. सि. ३।५८

(३७) दारुत्रिकटुकं पथ्यां पलाशं चित्रकं शटीम् ।
पिष्ट्वा कुष्ठं च मूत्रेण पिबेत् क्षारांश्च दीपनान् ॥
कदा ? यदा—
आमशेषे निरूहेण मृदुनादोष ईरितः ।
मार्गं रुणद्धि वातस्य हन्त्यग्निं मूर्च्छयत्यपि ॥

क्लमं विदाहं हृच्छूलं मोहवेष्टनगौरवम् ।
कुर्यात् स्वेदैर्विरूक्षैस्तं पाचनैश्चाप्युपाचरेत् ॥ च. सि. ७ अ. ।१९

(क) तुम्बुरूप्यभया हिङ्गु पौष्करं लवणं भयम् ।
यवक्वाथाम्बुना पेयं हृद्ग्रहेचापतन्त्रके ॥ च. सि. ९ अ. १८
अत्र "हृत्पार्श्वार्त्यपतन्त्रकेऽपिपाठः वर्तते" स समीचीनः दृश्यते ।
यवक्वाथाम्बुनेति यवैः षडङ्गविधिना शृतेन पानीयेन। चक्रः

(ख) शोधना बस्तयस्यत्तीक्ष्णा न हितास्तस्य कृत्स्नशः ।
सौवर्चलाभयाव्योषैः सिद्धं तस्मै घृतं हितम् ॥ च. सि. ९ । २०

शोधना इत्यादौ 'कृत्स्नशः शोधना न हिताः । वचचेन शोधनार्थं स्तोक्निरूहदानं' भूरिशोधननिरूहदाने तु वातक्षोभः स्यादिति भावः ।

अनुपानभेदेन दोषाणां शमनत्वम्—

लवणेन कफं हन्ति, पित्तं हन्ति सशर्करा ।
घृतेन वातजान् रोगान्, सर्वरोगान् गुडान्विता ॥ भा. प्रा.

ऋतुरसायनम्—

सिन्धूत्थशर्कराशुण्ठीकणामधुगुडः क्रमात् ।
वर्षादिष्वभया प्राश्या रसायनगुणैषिणा ॥
ग्रीष्मे तुल्यगुडां, सुसैन्धवयुतं मेघावनद्धाम्बरे ;
सार्धं शर्करया शरद्यमलया शुण्ठ्या तुषारागमे ।
पिप्पल्यो शिशिरे वसन्तसमये क्षौद्रेण संयोजिता,
राजन् प्राप्य हरीतकीमिव रुजो नश्यन्तु ते शत्रवः ॥ भोज प्रबन्धे

वर्ज्याः—

अजीर्णिनोरूक्षभुजः स्त्रीमद्यविषकर्षिताः ।
सेवेरन्नाभयामेते क्षुत्तृष्णोष्णार्दिताश्च ये ॥ च. चि. १/१-३५

अजीर्णिनः इत्यादिना अभयासेवननिषेधः—तत्राजीर्णे पथ्यानिषेधो हरीतक्याः कोष्ठक्षोभकत्वेन व्यापद्भयात् ।

रूक्षभुजश्च—रूक्षावर्धकत्वात्, भवतीतिकषायरसप्रधानायां हरीतक्यां रौक्ष्याधिक्य ।
स्त्रीकर्शितानाम्—हरीतकीसेवननिषेधः, हरीतकी शुक्रशोषिणीत्युक्तत्वात् ।
तथा चाहुरभियुक्ताः—'प्रवर्तिनी स्त्रीशुक्रस्य शोषिणी च हरीतकी' इति ।
मद्यकर्शितानां विषजुष्टानाञ्च हरीतकीनिषेधः उष्णवीर्यत्वात् ।
क्षुधायुक्तानाम्—हरीतकीनिषेधः कोष्ठक्षोभकत्वात् ।
तृषापीडिनां हरीतकीनिषेधः शोषणस्वभावत्वादभयायाः ।
एवमेवोष्णार्दितानामपि उष्णस्वभावात् एवेत्यवधेयम् ।

२०१५

अध्वातिखिन्नो बलवर्जितश्च ।
रूक्षः कृशोलंघनकार्शितश्च ।
पित्ताधिको गर्भवती च नारी,
विमुक्तरक्तस्त्वभयां न खादेत् ॥ भा. प्र.

हरीतक्याः फलं त्वस्थिविमुक्तं दोषवर्जितम् ।
योज्यं त्रिवृद्विधानेन सर्वव्याधिनिबर्हणम् ॥
रसायनं परं मेध्यं दुष्टान्तर्व्रणशोधनम् ॥
"हरीतकी विडङ्गानि सैन्धवं नागरं त्रिवृत् ।
मरिचानि च तत्सर्वं गोमूत्रेण विरेचनम् ॥
हरीतकीभद्रदारुकुष्ठं पूगफलं तथा ।
सैन्धवं शृङ्गवेरं च गोमूत्रेण विरेचनम् ॥
नीलिनीफलचूर्णं तु नागराभययोस्तथा ।
लिह्यागुडेन सलिलं पश्चादुष्णं पिबेन्नरः ॥
पिप्पल्यादिकषायेण पिबेत्पिष्टां हरीतकीम् ।
सैन्धवोपहिता वाऽपि सातत्येनाग्निदीपनी ॥"
वातानुलोमिनी वृष्या चेन्द्रियाणां प्रसादनी ।
सन्तर्पणकृतान् रोगान् प्रायो हन्ति हरीतकी ॥ सु.सू. ४४ अ. ६३-६९

कषाया मधुरा पाके रूक्षा विलवणा लघुः ।
दीपनी पाचनी मेध्या वयसःस्थापनी परम् ॥
उष्णवीर्या सरायुष्या बुद्धीन्द्रियबलप्रदा ।
कुष्ठवैवर्ण्यवैस्वर्यं पुराणविषमज्वरान् ॥
शिरोक्षिपाण्डुहृद्रोगकामिलाग्रहणीगदान् ।
सशोषशोफातीसारमेहमोहवमिक्रिमीन् ॥
श्वासकासप्रसेकार्शः प्लीहानाहगरोदरम् ।
निबन्धं स्रोतसां गुल्ममूरुस्तम्भमरोचकम् ॥
हरीतकी जयेद्व्याधींस्तांस्तांश्च कफवातजान् । वा. सू. १२ अ.

स्वादुर्विकासिनी शीता त्रिदोषशमनी शिवा ।
कषायास्तम्भनी स्निग्धचक्षुष्या चक्षुषे हिता ॥
का. क. स्था. षट्कल्पे २७२ श्लो.

कुशवाहा जी के मंत्रार्थों में दोष

लेखक—वैद्य रामगोपाल शास्त्री, दिल्ली

सम्मेलन पत्रिका में श्री शिवपूजनसिंह जी कुशवाहा के लेख वेद सम्बन्धी प्रायः निकलते रहते हैं। उनको पढ़कर अनुभव होता है कि कुशवाहा जी अपनी इच्छानुसार मंत्रों का अर्थ खैंचतान करके कर देते हैं। ऐसे कई उदाहरण दिये जा सकते हैं।

यह लेख लिखने की मुझे इसलिए आवश्यकता पड़ी कि उन्होंने पत्रिका के जून १९५८ के अंक में वेदों में ज्वर चिकित्सा पर जो लेख लिखा है उसमें गंधारि, मूजवान, अंग, मगध इन पदों के अर्थ करते हुए मुझ पर आरोप किया है कि मैंने जो अर्थ "वेदों में आयुर्वेद" नामक पुस्तक में इन पदों के किये हैं वे ठीक नहीं। मैंने गंधारि से गंधार देशवासी, महावृषाः से महावृष देशवासी, मूजवन्तः से मूजवान पर्वतवासी, वह्लिक से वह्लिक देशवासी, अंग से अंग देशवासी और मगध से मगध देशवासी जनों का अर्थ किया है और मैंने सिद्ध किया है अंग, मगध, वह्लिक आदि देश विशेष हैं जहां पर ज्वर का अधिक प्रकोप होता है। मेरे इन अर्थों पर उन्होंने आपत्ति की है। उन्होंने गंधारि से गंधपलाशी, मूजवान से सोम, अंग से बोल नामक औषधि और मगध से पिप्पली अर्थ किया है।

कुशवाहा जी को विदित हो कि मेरे अर्थ जनपदवाचक यहां ठीक हैं उनके औषधि वाचक अर्थ यहां ठीक नहीं। उन्होंने वह्लिक, अंग, मगध, गंधारि आदि पद जो वेदों से यहां उद्धृत किए हैं वे सब बहुवचनान्त हैं। व्याकरण के नियमानुसार उस जनपद के रहने वाले अनेक व्यक्तियों के कारण जनपदों का नाम सदा बहुवचन में आता है। उसके लिए कुशवाहा जी को तस्य निवासः ४।२।६९ जनपदे लुप् ४।२।८१ तथा लुपियुक्तवद् व्यक्तिवचने १।२।५१ पाणिनि के ये सूत्र देखने चाहिए थे। १।२।५१ सूत्र पर अष्टाध्यायी की टीका में काशिका में स्पष्ट लिखा है कि पुंलिगाः बहुवचन विषयाः। व्याकरण के इन नियमों से सिद्ध है कि यहां जनपद देशवासी अर्थ ठीक हैं औषधियों के नाम यहां ठीक नहीं हैं।

यदि वेद में अंग, मगध आदि से औषध अर्थ अभिप्रेत होता तो बारम्बार इन मंत्रों में बहुवचनांत पद न देकर एकवचन के पद होते। वेद में अजशृङ्गी, अपामार्ग, कुष्ठ, असन्धति आदि औषधियें जहां आई हैं वहां सब वेद में इनके रूप एकवचन में आते हैं बहुवचन में नहीं। आयुर्वेद के वर्तमान निघंटुओं में भी जब औषधि का वर्णन आता है तो हरीतकी, आमलकी आदि सब पद एक वचन में ही आते हैं बहुवचन में नहीं। इससे स्पष्ट है कि कुशवाहा जी की कल्पना निराधार है।

विराज श्री पं० मोहनलाल जी शास्त्री संयुक्त मंत्री, अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का मत

महासम्मेलन पत्रिका जून १९५८ में श्री कुशवहा जी का लेख "वेदों में ज्वर ना" शीर्षक पढ़ा। इस लेख में एक स्थल पर गंधारी, मूजवान, अंग, मगध आदि अर्थ गंधपलाशी सोम, बोल, पिप्पली आदि औषधियां करते हुए, श्री कुशवाहा जी ं० रामगोपाल शास्त्री द्वारा 'वेदों में आयुर्वेद' नामक ग्रंथ में उक्त पदों का अर्थ ाचक करना एक 'भूल' बताया है। श्री पं० रामगोपाल शास्त्री ने इस विषय पर स्पष्टीकरण भेजा है जो यहाँ प्रकाशित किया गया है। श्री रामगोपाल जी शास्त्री के ार उक्त पद बहुवचनान्त होने के कारण पाणिनी के नियमानुसार औषधि वाचक नपदवाचक ही हैं। औषध अर्थ अभिप्रेत होता तो पद एक वचन के होते इत्यादि। इस सम्बन्ध में मेरा मत यह है कि केवल एक वचन, बहुवचन या पाणिनी के की बात कह देना मात्र ही पर्याप्त नहीं है। यहां इन मंत्रों में निघण्टु या कोष नहीं है— ी औषधि-वर्णन की जा रही है अतः बहुवचन में अनेक पिप्पली इस रोग के लिये कही ी हैं। वेद मन्त्रों का व्याकरण के नियमानुकूल होना आवश्यक नहीं है।

श्री कुशवाहा जी ने अपने शब्दार्थ के पक्ष में वैद्य शब्द सिन्धु (कोष) तथा निघण्टु र के प्रमाण दिये हैं, जिन्हें भी एकदम अप्रमाणित नहीं कहा जा सकता परन्तु इस ाण का भी परीक्षण करना होगा। श्री कुशवाहा जी का मत भी तब तक ग्राह्य ो सकता जब तक इस रोग में इन औषधियों का प्रयोग कर अनुभव न किया जा अतः वैद्य समाज को इनका प्रयोग कर अनुभव करना चाहिये जिससे कि ठीक अर्थ न हो सके।

आयुर्वेद महासम्मेलन
पत्रिका में विज्ञापन
देकर लाभ उठाइये

शुद्ध एवं शास्त्रोक्त आयुर्वेदीय औषधियां

शुद्ध एवं उत्तम शास्त्रोक्त विधि से बनी आयुर्वेदिक औषधियां रस, भस्में, वटी, अवलेह, पाक, चूर्ण, घृत, कूपीपक्व रस तथा खनिज द्रव्य, वज्राभ्रक, मुक्ता, शंख, सीप, स्वर्ण माक्षिक, प्रवाल, शुद्ध शिलाजीत, केशर, कस्तूरी, अम्बर व दुर्लभ वनस्पतिवर्ग जैसे अष्ट वर्ग, प्रियंगु, सर्पगन्धा, त्रायमाण आदि खरीदते समय निम्न पते पर पत्र व्यवहार अवश्य करें।

विशेष जानकारी के लिये वृहद सूचीपत्र मंगवायें।

हमारी औषधियों का व्यवहार कर आप सदैव के लिये हमारे स्थाई ग्राहक बन जायेंगे।

देशरक्षक औषधालय

कनखल (हरिद्वार)

यू० पी०

(पृष्ठ ५०८ से आगे)

शास्त्र का सिद्धान्त है। बाल रश्मि समूह अरुण कहलाता है जिसे सूर्य का सारथी कहते । अरुण का अन्य नाम वैनतेय है। पौराणिक कथा के अनुसार कश्यप स्त्री विनता के ण और गरुड़ नाम के दो पुत्र हुए—"विनतायाः अपत्यं ढक् गरुडे अरुणे च"। वैनतेय का र्थ गरुड़ और अरुण दोनों ही है किन्तु यहां भावमिश्र ने इसको अरुण के अर्थ में ही ग्रहण या है, अन्यथा इसका विज्ञान से सम्बद्ध कोई अर्थ नहीं निकलता। आयुर्वेद चिकित्सा शास्त्र । इसमें बिना अभिप्राय के किसी वस्तु का होना विज्ञान के लिये कलंक है। सूर्य सारथी रुण (बाल रश्मि समूह) अपनी ज्योति मिश्रित अन्तरिक्ष के 'आप' को पृथ्वी पर फेंकता है —वह अमृत है—जीवनीय शक्तिप्रद है। इसके अतिरिक्त कोई अमृत नहीं है। यह अमृत ही ातःकालीन वायु में होता है। खुले आकाश में इसका प्रभाव जीवों के शरीरों पर अत्यन्त ाभकारी होता है।

कश्यप, विनता और गरुड़ आदि का भी अर्थ रहस्यमय अवश्य होगा किन्तु इस लेख उनका सम्बन्ध नहीं अतः उनके विषय में यहां लिखना अनुचित होगा। केवल इतना ही हना पर्याप्त है कि गरुड़ का आज तक किसी को ज्ञान नहीं कि वह क्या जीव है। केवल ीलकण्ठ आदि के लिये कल्पना मात्र ही है।

इसी अमृत को ग्रहण करने के लिये प्रातः सूर्य के समक्ष प्राणायाम आदि करने का धान शास्त्रों में है। उस सूर्योपासना काल में जिन वेद मन्त्रों का पाठ होता है उनका अर्थ खने पर पूर्ण निश्चय हो जाता है कि सूर्य रश्मियों के प्रभाव से प्रभावित जीवनीय शक्तिप्रद आप' ही अमृत है। यथा—आपो हि ष्ठा मयोभुव, अन्तश्चरसि भूतेषु, आपोज्योती रसोमृतम्, ापो भवन्तु पीतये, इत्यादि।

'आप' और अमृत में इतना भेद है कि आप अन्तरिक्ष में सदैव रहता है और वह संसार जीवों का अन्तरिक्ष से गिरकर पालन करता है पर सूर्य की रश्मियों द्वारा जब अग्नि तत्व विशेष अंश में इस आप में मिलता है तब यही अमृत बन जाता है। यह केवल कल्पना हीं है, वरन् शास्त्रीय सिद्धान्त है। इसी प्रकार हवन के द्वारा भी यह बनाया जाता था, था "ओजो मे धेहि" कहा करते थे। ओज अमृत रूप है। यह पृथिवी, जल और अग्नि के तिरेक से बनता है। यह ही शरीर की जीवनीय शक्ति है। हवन में पृथिवी, जल और अग्नि न को मिश्रण करने के लिये घृत सर्वोत्तम पदार्थ है, क्योंकि स्नेह पृथिवी व जल के अतिरेक ाला पदार्थ है।

इस सबका भावार्थ यह है कि अरुण के द्वारा इंद्र (अन्तरिक्ष) से पूर्वोक्त अमृत लिया या, उसका कुछ भाग पृथिवी पर आया। वह पृथिवी पर आया हुआ भाग रसोन नाम के कन्द अधिक मात्रा में हैं। अरुण की किरणें इसके कुछ अंश को पृथिवी पर छोड़कर पुनः सूर्य साथ चली गई। इस कन्द में जो अंश आया उसमें अरुण (सूर्य किरणों) की कमी के

कारण अम्ल रस की न्यूनता हो गई या स्वभाव से ही वह अग्नि तत्व को विशेष नहीं ले सका, अतः अम्ल रस की कमी के कारण रसोन द्रव्य (एक रस की कमी वाला) हो गया।

द्रव्यों का स्वतन्त्र स्वभाव होता है किसी तत्व को ग्रहण करें या न करें। इसी कारण यह कन्द अधिक मात्रा में अग्नि तत्व न लेने के कारण रसोन रह गया। इस कन्द में अग्नि तत्व है तथापि सम्भव है उतनी मात्रा में न हो जिससे कि अम्ल रस बनता हो। इसीलिये भावमिश्र ने अम्ल रस (मधु) पथ्य बताया है जिससे कि इसकी कमी की पूर्ति हो जाय अथवा यह द्रव्य का स्वभाव भी हो सकता है। यह अवश्य है कि मद्य सर्वथा अम्ल है—"प्रकृत्या मद्यमम्लोष्ण-मम्लं चोक्तं विपाकतः" इति। इसीलिये भावमिश्र ने "मद्यं मांसं तथाम्लश्च हितं लहशुन-सेविनाम्"। मांस को इसलिये पथ्य बताया कि वह अत्यन्त तीक्ष्ण और पाचन है, अतः मांस का पाचन भली प्रकार हो सकेगा। शरीर के लिये बलदायक मांस सर्वोत्तम भक्ष्य है—"शरीर वृंहणे नान्यदाद्यं मांसाद् विशिष्यते" इति श्री चरकः।

श्री भावमिश्र जी ने इसको विशेषता दी है, इस विशेषता का कोई न कोई कारण अवश्य होगा। चरक व सुश्रुत चिकित्सा ग्रन्थों में यह बात देखने में नहीं आती। इस कन्द के गुणों के सम्बन्ध में लिखने में इन्होंने कमी नहीं की है। यथा चरकेः—

क्रिमिकुष्ठकिलासघ्नो वातघ्नो गुल्मनाशनः।
स्निग्धश्चोश्णश्च वृष्यश्च लशुनः कटुको गुरुः॥

श्री चरक के पाठ में दो पद क्रिमि तथा वातघ्न अवश्य विचारणीय है। क्रिमिनाशक औषध समस्त रोगों में लाभदायक होती है क्योंकि आयुर्वेद के सिद्धान्तानुसार त्रिदोष विकृति होने पर ही क्रिमियों का प्रभाव बढ़ता है। पाश्चात्यों के मत में क्रिमियों द्वारा ही रोग की उत्पत्ति होती है, परन्तु ऐसा है नहीं। शरीर की विकृति दोषों से होती है। विकृति बिना क्रमियों का प्रभाव नहीं होता अन्यथा एक ही गृह में रहने वाले व्यक्तियों में से एक के रुग्ण होने पर गृह के सभी व्यक्तियों को रोगग्रस्त होना चाहिए था। इससे यही सिद्ध होता है कि क्रिमियों का प्रभाव विकृति के पश्चात् होता है।

वातघ्न औषध भी त्रिदोष की विकृति नहीं होने देती क्योंकि कफपित्त वाताधीन हैं। वात चिकित्सा के लिये चिकित्सा शास्त्र ने इस परमौषध (रसोन) को भली प्रकार अपनाया है यह सभी वैद्य बन्धुओं को ज्ञात है।

सुश्रुत में इस कन्द का वर्णन चरक से अधिक है। यथा—

स्निग्धोष्णतीक्ष्णः कटुपिच्छलश्च।
गुरुः सरः स्वादुरसश्च वल्यः॥
वृष्यश्च मेधास्वरवर्णचक्षु
भग्नास्थिसन्धानकरो रसोनः,

हृद्रोगे नीर्णज्वरकुक्षिशूल-
विबन्धगुल्मारुचिकासशोथान् ।
दुर्नामकुष्ठानलसाद जन्तु
समीरणश्वासकफाश्च हन्ति ॥

वैसे तो श्री चरक ने पूर्वोक्त दो पदों में पहिले बहुत कुछ कह डाला है तथापि कुष्ठ किलासघ्न कहकर सुश्रुत ने जो दुर्नाम कुष्ठ आदि कहा है उससे यह गलित मांस से होने वाले क्षतादि की भी परमौषध है ।

सुश्रुत ने इस कन्द का राजयक्ष्मा में भल्लातक के साथ प्रयोग किया है । अन्य वात व्याधियों में भी प्रयोग किया है । इसी से अन्यदेशीय लोग रसोन को राजयक्ष्मा हर कह कर गुणों की प्रशंसा करते हैं । यह हमारे शास्त्र की बात है किन्तु वैद्य समाज ने इस पर ध्यान नहीं दिया ।

हमारे शास्त्रों में वर्णित इस प्रकार की बातों को भली प्रकार समझने का प्रयत्न होना चाहिये जिससे उनका उपहास न होकर विकास हो । विद्वानों से मेरा निवेदन है कि मेरे उपर्युक्त विचारों पर अपनी सम्मति दें जिससे कि उनमें कोई भूल हो तो उसका सुधार हो सके ।

रस भस्में आदि कम मूल्यों पर

अभ्रक वज्र भस्म ४५) रु० सेर, प्रवालपिष्टी व भस्म ३०) सेर, अकीकचन्द्र पिष्टी ५०) सेर, वंग भस्म श्वेत ३०) सेर, कौड़ी भस्म ७) सेर, मुक्ता शुक्ति भस्म १०) सेर, कांतलौहभस्म २५) सेर, मण्डूर भस्म १८) सेर, गोदन्ती भस्म ४) सेर, चन्द्रप्रभा वटी २८) सेर, योगराज गुग्गुलू १५) सेर, त्रिवंग भस्म ४५) सेर, शङ्ख भस्म ७) सेर कसीस भस्म १०) सेर, भृङ्गराज भस्म १२) सेर, नाग भस्म पीत २५) सेर, स्वर्ण वङ्ग नं० १, ९०) सेर, कुक्कुटांडत्वक् भस्म १८) सेर, च्यवन प्राशावलेह १२५) मन, सुपारी पाक १६०) मन, स्वर्ण माक्षिक भस्म २८) सेर ।
इन भावों पर रस भस्में २० तोला व पाक ५ सेर से कम नहीं भेजा जा सकेगा ।

चावला आयुर्वेदिक फार्मेसी
पता—किला भंगियां, कुब्बी बेरी, अमृतसर ।

आयुर्वेद लोक

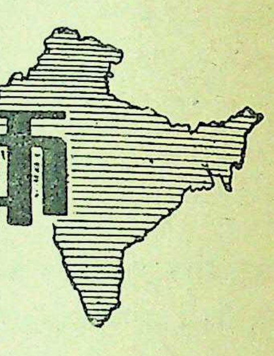

श्री शंकर दा जी शास्त्री पदे पुरस्कार

अन्तिम तिथि ३० सितम्बर १९५८

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन द्वारा स्थापित श्री शंकर दा जी शास्त्री पदे स्मारक समिति ने इस वर्ष सर्वोत्तम आयुर्वेदिक ग्रन्थ लेखक को पांच सौ रुपया पुरस्कार से पुरस्कृत करने का निश्चय किया है। सन् १९५७ से इधर जो आयुर्वेद के किसी भी विषय पर स्वतन्त्र या व्याख्या ग्रन्थ प्रकाशित हुआ हो, उसकी पांच प्रतियां ३० सितम्बर १९५८ तक समिति के कार्यालय, ३, सम्मेलन मार्ग, प्रयाग में आना आवश्यक हैं।

समिति के निर्णय पर आगामी आयुर्वेद महासम्मेलन के अधिवेशन, दिल्ली, के अवसर पर यह पुरस्कार प्रदान किया जायगा।

आयुर्वेद का विकास करें

उ० प्र० स्वास्थ्य मंत्री ठा० हुकुमसिंह का भाषण

"यद्यपि आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली बहुत दिनों तक उपेक्षित रही, अतः इसमें कमी आ गई है, परन्तु इसमें जो विशेषताएँ हैं उसी के कारण यह आज तक जीवित है। हम सबका कर्तव्य है कि हम इसको बल दें और आगे बढ़ायें।" उक्त शब्द उत्तर प्रदेश के स्वास्थ्य मन्त्री ठा० हुकुमसिंह जी ने विगत १६ जुलाई को लखनऊ में उत्तर प्रदेशीय आयुर्वेदिक एवं यूनानी चिकित्सा बोर्ड की एक बैठक में कहे। आपने इस अवसर पर यह भी कहा कि इसमें दो राय नहीं हो सकती कि जिस पद्धति से आयुर्वेद की शिक्षा का पठन-पाठन शुरू किया गया था उससे अच्छे परिणाम नहीं निकले। मैं मौजूदा ढंग की शिक्षा को आयुर्वेद के लिये उपयुक्त नहीं समझता।

इस बैठक में आयुर्वेदीय उच्चस्तरीय शिक्षा समिति की सिफारिशों पर विचार किया गया और पर्याप्त विचार विमर्श के अनन्तर प्रस्तावित पाठ्यक्रम को आवश्यक संशोधनों के साथ तथा प्रवेश योग्यता आदि को यथावत् स्वीकार कर लिया गया।

मध्यमा के साथ अंग्रेजी के काम चलाऊ ज्ञान का निर्णय कालेजों के प्रिन्सीपलों पर छोड़ दिया गया तथा प्रवेश के समय आयु का प्रतिबन्ध न रखने का निर्णय किया गया।

निश्चय हुआ कि इंटरमीजियेट बोर्ड से अनुरोध किया जावे कि वह एक ऐसी परीक्षा

एवं जिसमें इंटर साइंस व संस्कृत की योग्यता साथ २ हो। साथ ही संस्कृत विश्वविद्यालय से भी अनुरोध किया जावे कि मध्यमा के विषयों में साधारण विज्ञान को वैकल्पिक रूप से सम्मिलित कर लिया जावे।

विद्यापीठ मंत्री राजस्थान के स्वास्थ्य मंत्री से मिले

निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठ के मंत्री वैद्य श्री सीतारामजी मिश्र आयुर्वेदाचार्य तारीख २४-८-५८ को प्रातःकाल ९ बजे राजस्थान के स्वास्थ्य मंत्री श्री बद्रीप्रसाद जी गुप्ता से उनके बंगले पर मिले। आपने स्वास्थ्य मंत्री जी को बतलाया कि विद्यापीठ के स्नातकों के साथ नौकरी देते समय पक्षपात पूर्ण व्यवहार हो रहा है।

आगे आपने कहा कि जब भिषगाचार्यों के समान ही आयुर्वेदाचार्यों को 'ए' श्रेणी में रजिस्ट्रेशन किया जाता है तो नौकरी देते समय यह व्यवहार क्यों नहीं किया जाता? स्वास्थ्य मंत्री ने शान्ति पूर्ण ढंग से सब बातें सुनी और कहा कि विद्यापीठ की नियमावली और पाठ्यक्रम आप मेरे पास भेज दें, उसे देख कर मैं उचित व्यवस्था कर दूंगा। उसके बाद राजस्थान की आयुर्वेदिक प्रवृत्तियों के बारे में भी बातचीत हुई।

श्री नेहरू गुरुकुल कांगड़ी आयुर्वेद महाविद्यालय में

"प्राचीन संस्कृति का सिलसिला टूट जाये तो भारत, भारत न रहे। विदेशी राज्य में कुछ पढ़े-लिखे लोगों का यह विचार था कि हम हरेक बात में यूरोप की नकल करें तभी हमारी उन्नति होगी। यह अशुद्ध विचार था।" उक्त शब्द प्रधानमन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने गुरुकुल कांगड़ी में नवनिर्मित विज्ञान भवन का विगत १ अगस्त को उद्घाटन करते समय कहे। श्री नेहरू इस नवीन भवन का उद्घाटन करने के लिये दिल्ली से पधारे थे। आपने अपने संक्षिप्त एवं व्यस्त कार्यक्रम में गुरुकुल कांगड़ी के आयुर्वेद महाविद्यालय का भी निरीक्षण किया। संग्रहालय में अनेक प्रकार के चार्ट, माडल, जीवित रोगियों के शल्यकर्म द्वारा निकले हुए विकृत अंग, भारत

यूनानी, आयुर्वेदीय वनौषधि और खनिज द्रव्य सस्ते मूल्य पर शुद्ध व उत्तम

हमारी दुकान से दुर्लभ केसर, कस्तूरी,
विविध प्रकार की काष्ठौषधि, मुक्ता,
सीप, शंख, शुद्ध शिलाजीत, सुवर्ण-
माक्षिक, प्रवाल, पारद, गंधक
आदि सब प्रकार के खनिज
तथा वनौषधि द्रव्य थोक
व परचून भाव पर प्राप्य

वास्तविक और शुद्ध सामान हमारी विशेषता है।

विस्तृत विवरण के लिये पत्र-व्यवहार करें और बड़ा सूचीपत्र मंगवायें।

तार का पता : आयुर्वेद फोन : ३१७९६
पता : शा० ज़ादवजी लालूभाई एण्ड को०
२४५, कालबादेवी रोड, बम्बई।

में पाये जाने वाले सांप तथा अन्य जीव जन्तुओं को देखा और बड़ी दिलचस्पी दिखाई।

आयुर्वेद महाविद्यालय की आधुनिकतम उपकरणों से सुसज्जित प्रयोगशाला का भी आपने निरीक्षण किया।

आयुर्वेद जगत की दृष्टि से प्रधानमन्त्री की यह यात्रा बहुत महत्व की है। इस अवसर पर फार्मेसी का निरीक्षण करते समय प्रधानमन्त्री जी को आधुनिक यन्त्रों-उपकरणों द्वारा भारत के प्राचीन चिकित्सा शास्त्र में उल्लिखित दवाओं के निर्माण की पद्धति बताई गई।

गुरुकुल काँगड़ी आयुर्वेद महाविद्यालय की ओर से प्रधानमंत्री का स्वागत किया गया।

झुन्झनू जिला वैद्य सम्मेलन

झुन्झनू जिला वैद्य सम्मेलन की कार्यसमिति का तृतीयाधिवेशन बाबा जयरामदास जी की अध्यक्षता में बड़ागांव (शेखावटी) में सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर आचार्य नित्यानन्द जी ने जिले की जड़ी-बूटियों के सर्वेक्षण पर प्रकाश डाला। वैद्य विरंचीलाल जी आयुर्वेदाचार्य ने जिले के विकास खण्डों की स्वास्थ्य समस्याओं के हल के लिये आयुर्वेद को अपनाने का परामर्श दिया। श्रीमती सरला बहिन ने स्त्रियों में आयुर्वेद को लोकप्रिय बनाने के उपाय बतलाये।

झुन्झनू जिला वैद्य सम्मेलन के आगामी सप्तम वार्षिक अधिवेशन के लिये चूड़ी अजीतगढ़ का निमन्त्रण पत्र स्वीकार कर लिया गया। सभापतित्व के लिये निम्न पांच वैद्यों के नाम घोषित किये गये।

यह तथ्य है

औषधि तभी गुणकारी व प्रभावशाली हो सकती है जब उसमें पड़ने वाला कच्चा द्रव्य असली व उत्तम हो।

प्रामाणिक द्रव्यों के लिये

नेपाली ब्रदर्स

२१२, बड़गादी, बम्बई-३

- नेपाली कस्तूरी
- जंगबारी अम्बर
- बसरा मोती
- स्पेन केशर
- सूर्यतापी शिलाजीत
- विशुद्ध गोरोचन

के अतिरिक्त

प्रवाल शाख, प्रवाल मूल, गोदन्ती, बंसलोचन, भीमसेनी कपूर, जहरमोरा खताई, केहरुवा, जुन्द वेदस्तर, हरडें, अकीक, सीप, कौड़ी, शंख, सिंगरफ.

वर्की हड़ताल

तथा सब प्रकार की खड़ें (जवाहिरात) आदि

विशेष विवरण के लिये सूचीपत्र मंगाइये।

१—वैद्य श्री के० एम० शर्मा, नूंबा ।
२— ,, श्री गुलजारीलाल जी टमकोरा ।
३— ,, श्री मन्नालाल जी, बगड़ ।
४— ,, श्री ओंकारमल जी, नवलगढ़ ।
५— ,, श्री बसन्तलाल जी, कुहाडवास ।

ायुर्वेद साहित्य समिति का वार्षिकोत्सव

पिलानी (डाक से) स्थानीय आयुर्वेद य समिति का चतुर्थ वार्षिकोत्सव बिरला द संग्रहालय में श्री रामनिवास जी शाह ध्यक्षता में सम्पन्न हुआ ।

श्री अनन्तदेवजी त्रिपाठी प्रिंसिपल ने वार्षिकोत्सव का उद्घाटन करते हुए बताया कि आयुर्वेद का क्षेत्र धनलोलुप व्यक्तियों के लिये नहीं है । इस चिकित्सा-प्रणाली का उद्देश्य 'नात्मार्थं नापि कामार्थमथ भूतदयां प्रति' ही सदा रहा है । अतः प्रत्येक आयुर्वेद सेवी को निःस्वार्थ सेवा ही अपने जीवन का लक्ष्य बना लेना चाहिए । डा० श्री एच०एल० शर्मा पी० एच० डी० ने आयुर्वेदज्ञों को उद्बोधन करते हुए कहा कि आयुर्वेद में जो नव्य विज्ञान की बातें आयें, वे पाश्चात्य चिकित्सा का अन्धानुकरण मात्र न हों ।

शास्त्रीय आयुर्वेदिक क्वाथों एवं वनस्पतियों पर निर्मित

ायुर्वेदिक इञ्जैक्शंस तथा सुरासार (टिञ्चर्स)

भारतवर्ष में एकमात्र सबसे बड़ी वैज्ञानिक प्रयोगशाला (लेबोरेट्री) है जो बहुमूल्य क यन्त्रों और उपकरणों से सुसज्जित है । औषधियों के पूर्ण वैज्ञानिक, स्टैण्डर्ड और निर्माण के लिये वातानुकूलित (Air-conditioned एअर-कण्डीशन्ड) लेबोरेट्री ों के उच्चकोटि के वैज्ञानिक मापदण्ड पर निर्मित आयुर्वेदिक इञ्जेक्शन्स, शास्त्रीय दिक क्वाथों और वनस्पितियों पर निर्मित सुरासार (टिञ्चर्स) तथा शास्त्रोक्त रस, कुपीपक्व, रसायन, आसव, अरिष्ट आदि आयुर्वेदिक औषधियां अपनी स्वच्छता, ा और कार्यक्षमता के लिये समस्त भारतवर्ष में प्रसिद्ध हैं । बड़े २ चिकित्सकों, रों तथा सरकारी अधिकारियों ने प्रयोगशाला का निरीक्षण करके प्रशंसा की है । पूर्ण री के लिये आयुर्वेद अनुसन्धान पत्रिका (वृहत् सूचीपत्र) बिना मूल्य मंगाइये ।

र स्थान पर एजेण्टों की आवश्यकता है । नियम तथा साहित्य आदि निशुल्क मंगाइये ।

द्यों को इञ्जेक्शन आदि शल्य कर्म के क्रियात्मक अभ्यास और शिक्षण की उनके निवास स्थान के समीप ही ट्रेनिङ्ग देने की व्यवस्था की योजना है । ट्रेनिङ्ग के श्चात् आयुर्वेद महाविद्यालय द्वारा आयुर्बेद सूचीवेध विशारद (A. S. V.) का माणपत्र दिया जाता है । इच्छुक वैद्य विशेष जानकारी के लिये पत्र-व्यवहार करें ।

निर्माता:—**बाबूराम मिश्र रिसर्च इन्स्टीट्यूट,**
झण्डा आयुर्वेदिक फार्मेस्युटिकल वर्क्स, हापुड़ (उ० प्र०)

आयुर्वेद में अनेक प्रयोग रत्न पड़े हैं, यदि उनका परिष्कार कर उन्हें नवीन पद्धति से प्रचारित किया जाये तो आयुर्वेद की उन्नति निश्चित है।

अध्यक्ष पद से भाषण करते हुए श्री शाह ने कहा कि जड़ी बूटियों में अद्भुत शक्ति है। जडी बूटियों के अन्वेषण के लिये हमें सदा सचेष्ट रहना चाहिये। जडी बूटी के जानकारों की कमी नहीं है, किन्तु आवश्यकता इस बात की है कि इस प्रकार के विशेषज्ञों से इस ज्ञान को प्राप्त किया जाये और उन जडी बूटियों के गुणों की खोज वैज्ञानिक ढंग से की जाये ताकि वे गुण पाश्चात्य चिकित्सा की कसौटी पर भी खरे उतरें।

श्री अनन्त त्रिपाठी शर्मा रेडियो एडवाइजरी बोर्ड के सदस्य बने

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के अध्यक्ष आयुर्वेदाचार्य श्री पं० अनन्त त्रिपाठी शर्मा, एम० ए०, पी० ओ० एल०, को भारतीय सरकार द्वारा अ० भा० आकाशवाणी के कटक केन्द्र की परामर्शदात्री समिति का दो वर्ष के लिये सदस्य नियुक्त किया गया है।

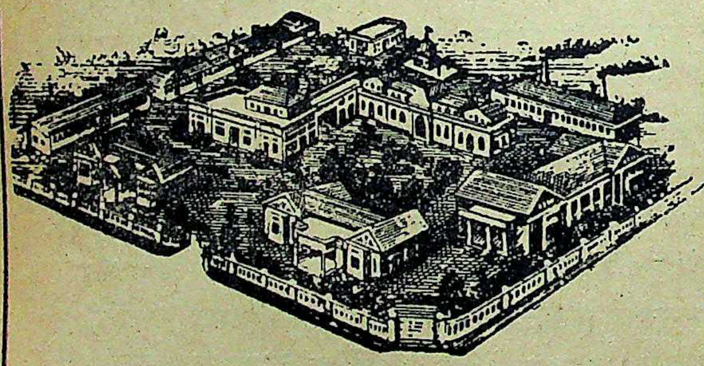

५० वर्षों से विश्व भरमें प्रतिष्ठा प्राप्त भारत की प्रमुख आयुर्वेदिक औषध निर्माणशाला

रसशाला औषधाश्रम (REGD.) गोंडल, सौराष्ट्र।

गोंडल रसशाला की इस फार्मेसी में विविध प्रकार की भस्में, रस रसायन, कूपिपक्व रसायन, पर्पटी, गुटिका, चूर्ण आदि सैकड़ों प्रकार की हाथ से बनी औषधियां तैयार रहती हैं। हिन्दुस्तान के प्रत्येक प्रदेश में और चीन, फीजी, अफ्रीका, अमेरिका, युरोप में भी जाती हैं। सब-भाषा के सूचीपत्र बिना मूल्य भेजे जाते हैं।

सिद्ध रसायन कल्प (बृहत् और लघु)

इस संस्था का एक और नया शोध। इसके सेवन से शरीर निरोगी रह कर आयुष्य बढ़ता है। हृदय, फुफ्फुस, मस्तिष्क, आंतें, लीवर, मूत्राशय आदि अवयव बलवान होते हैं। मात्रा ३ रत्ती अष्टवर्ग चूर्ण ४ माशा के साथ दूध से लिया जाता है। बृहत् २५) रु० का १ तोला। लघु १०) रु० का एक तोला।

बम्बई शाखाः—गोंडल रसशाला औषधाश्रम,
वसंत वाडी के सामने, ४१६ कालबा देवी रोड, मुम्बई २।

शक्तिशाली संगठन की आवश्यकता

आज हमारा देश स्वाधीन है, सभी प्रकार की विद्याओं एवं ज्ञान-विज्ञान का विकास रहा है किन्तु आयुर्वेद विज्ञान की प्रगति के मार्ग में अनेक बाधायें आ रही हैं और इसे ट्रीय चिकित्सा पद्धति के पद पर आसीन कराने के हमारे ध्येय की सिद्धि में अवांछनीय लम्ब हो रहा है। इस सबका प्रमुख कारण है—हमारे संगठन की अशक्तता। यह एक विदित तथ्य है कि आज के प्रचार और आन्दोलन के युग में कोई भी कार्य बिना शक्ति-ली संगठन के सम्पन्न नहीं हो सकता। अतः अपने समाज को सुसंगठित बनाना हमारी ज की सर्वप्रथम आवश्यकता है।

पका कर्तव्य—

आयुर्वेद चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन वैद्य ज का सबसे प्राचीन एवं एकमात्र प्रतिनिधि अखिल भारतीय संगठन है जिसे सर्वप्रकार दृढ़ बनाना वैद्य मात्र का पुनीत कर्त्तव्य है। यदि आप चाहते हैं कि 'आयुर्वेद' शीघ्र ट्रीय चिकित्सा पद्धति बने, उसका समुचित विकास और अभिवृद्धि हो और आपके त अधिकारों की सुरक्षा हो सके तो आप महासम्मेलन की सदस्य संख्यावृद्धि में सहयोगी यें। यदि आप पुराने सदस्य हैं और अभी तक आपने अपना वर्तमान वर्ष का सदस्यता क नहीं भेजा है तो उसे अविलम्ब भेजिये। इसके साथ ही प्रत्येक सदस्य का यह कर्तव्य क अपनी ओर से कम से कम ५ नवीन सदस्य अवश्य बनाकर अपने संगठन को सबल र सामर्थ्यशाली बनावें। महासम्मेलन की प्रान्तीय सम्बद्ध शाखाओं के अधिकारियों को अपने-अपने प्रान्त में महासम्मेलन के अधिक से अधिक सदस्य बनाने का प्रयत्न करना हिये।

ान लेखकों से—

भी निवेदन है कि आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका के द्वारा आयुर्वेद-विज्ञान को हन दें। अपने खोज और विद्वत्तापूर्ण मौलिक लेख इसमें प्रकाशनार्थ भेजकर इस के विकास के साथ-साथ वैद्यसमाज को भी लाभान्वित करें। लेख हिन्दी, संस्कृत अंग्रेजी किसी भाषा में भेज सकते हैं। लेख सुस्पष्ट और पत्र के एक ओर स्याही में होने चाहियें।

वामनराव दी. वैद्य
प्रधानमन्त्री
अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन

Editor-in-Chief—Swami Chetnanand,
० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के लिए कविराज स्वामी चेतनानन्द द्वारा प्रकाशित
मुद्रक—महारथी प्रेस, दिल्ली

खोज का आश्चर्यजनक
परिणाम

खोज का क्रम आज नया नहीं-किन्तु युग युगान्तर चला आ रहा है। खोजके उपर किसी कवि के ये शब्द स्व क्षरोंमें लिखे हुए हैं कि :-"जिन खोजा तिन पाइयां ग पानी पैठ" त्रेतायुग में जब रावण के लड़के मेघनाद शक्तिवाण से श्री लक्ष्मणजी मूर्च्छित पड़े हुए थे और रा चन्द्र जी की व्याकुलता का अन्त नहीं था, उस समय लक्ष्म णजीमें पुनः जीवन लानेके लिये हनुमान जी को सञ्जीव बूटी की खोज में जाना पड़ा था। हनुमान जी अपनी खोज में सफल हुए। परिणाम स्व लङ्का के युद्धमें श्रीराम लक्ष्मण की विजय हुई।

आज का यह वैज्ञानिक युग भी मानवता और रोगों के इ महायुद्ध में, रोग द्वारा त्रस्त मानव को मुक्त करने के लिये नयी नयी खोज में लगा हु है और अपनी खोज में सफल हो नये अन्वेषणों द्वारा मानवजाति की रक्षा में सफल होता जा रहा है।

डाबर कार्यालय भी गत ७२ वर्षों से सदौषध सेवारत हो लगातार खोजों द्वारा आयुर्वेदिक, पेटेण्ट दवाओं के निर्माण क्षेत्र में दूसरों का पथ प्रदर्शक बनता जा रहा है। डाबर कार्यालय की बनी हुई आयुर्वेदिक तथा पेटेण्ट दवाएं इत्यादि आज जिस प्रकार लोकप्रिय बनी हुई हैं उसका एक मात्र कारण है- डाबर कार्यालयका निरन्तर खोजका परिणाम! साथ ही स्वच्छता और सर्वाङ्ग पूर्णता से औषध निर्माण की क्रिया!! इसी खोज के परिणाम स्वरूप डाबर कार्यालय आज भारतीय जनता के सम औषध निर्माण करने वाला एक श्रेष्ठ कार्यालय बना हुआ है।

डाबर (डा·एस·के·बर्म्मन) लि० कलकत्ता-२९

अपूर्व गुणकारी आयुर्वेदिक तथा पेटेन्ट दवाओं के निर्माता

10/56/
20/

गुरुकुल पत्रिका

आयुर्वेद सेवा संघाचें पाक्षिक वृत्तपत्र

आयुर्वेद पत्रिका

महा ता. १ व १६ रोजीं प्रसिद्ध होतें.) (किंमत ६ आणे)

१० वें) नासिक, ता. १ आक्टोबर १९५६ (अंक ७ वा

ठवाड्यांतील १लें आयुर्वेद महाविद्यालय

आमदार वैद्य गोपाळराव देव यांची स्पृहणीय कामगिरी

येत्या नोव्हेंबरांत मुंबई-राज्यांत मध्यप्रदेशांतील ८ जिल्हे व मराठवाड्यां-५ जिल्हे सामिल होणार आहेत, त्याचप्रमाणें सौराष्ट्र प्रांतहि मुंबई-राज्यांत अंतर्भूत होणार आहे. हीं घटना आयुर्वेदाच्या प्रगतीच्या दृष्टीनें अत्यंत महत्त्वाची अशीच आहे. सौराष्ट्रांत जामनगर येथें आयुर्वेदाच्या संशोधनाचें अखिल भारतीय केंद्र आहे, व आयुर्वेदाच्या पदव्युत्तर शिक्षणाची व्यवस्थाहि तेथें केंद्र-सरकारनें केली आहे. मुंबई-राज्यांतील पुणें व गुजराथ या विद्यापीठांनीं आयुर्वेदाच्या शाखा सुरु करून त्या शास्त्राचा, विद्यापीठशिक्षणाचा दर्जा, मान्य केला आहे. आयुर्वेदाच्या शास्त्रीयतेवर घाला घालणारे वातावरण दिवसेंदिवस झपाट्यानें नष्ट होत असून, आयुर्वेदाच्या पदवीधरांना सन्मानानें वागविण्याचा काळ अगदीं नजीक येऊ लागला आहे.

श्री. गोपाळराव देव

मराठी मध्यप्रदेशांत अमरावती येथें विदर्भ आयुर्वेद महाविद्यालय ही संस्था न्याहि प्रकारचें सरकारी साहाय्य नसतांना, चालकांनीं धीमेपणानें व नेटानें विली आहे. आतां, अकोला व नागपूर येथेंहि खाजगी प्रयत्नांनीं आयुर्वेद विद्यालयें १।२ वर्षांत सुरू झालीं आहेत. नागपूर विद्यापीठांत आयुर्वेदाचें निर्माण करून सर्वप्रथम आयुर्वेद संशोधनाचें काम सुरूं केल्याबद्दल मध्य-सरकारचें सर्वत्र अभिनंदनच केलें जात आहे.

हैद्राबाद राज्यांत आयुर्वेदास सरकारी मान्यता

निजाम हैद्राबाद राज्यांत पूर्वीच्याकाळीं आयुर्वेदास मान्यता नव्हतीच. वैद्यमंडळींनाहि तेथें हकीम या संज्ञेनेंच संबोधिलें जात होतें. हैद्राबाद येथील संस्थानी राजवट जाऊन लोकराज्य सुरू झाल्यानंतर तेथें आयुर्वेद महाविद्यालय काँग्रेस सरकारतर्फे सुरू करण्यांत आलें. त्या संस्थेनें आतांपर्यंत चांगली प्रगति केली आहे. हैद्राबाद राज्यांतहि ठिकठिकाणीं आयुर्वेदाचे दवाखाने उघडले गेले आहेत.

हैद्राबाद राज्यांतील जे ५ जिल्हे मुंबई राज्यांत येत आहेत, त्यापैकीं नांदेड येथें सरकारच्या पूर्ण खर्चानें आयुर्वेद महाविद्यालय नुकतेंच सुरू झालें आहे, ही गोष्ट आम्हांस विशेष उल्लेखनीय वाटते. आयुर्वेदाची तळमळ असलेला कार्यकर्ता वैद्य विधिमण्डळांत असल्यानें तो किती महत्त्वाचें कार्य करूं शकतो याचें हें उत्तम उदाहरण आहे. सध्यां महाराष्ट्रांत बऱ्याच आयुर्वेदीय संस्था कार्य करीत आहेत, पण त्यांचा त्राता वैद्य विधिमण्डळांत नसल्यामुळें पदोपदीं अडचणी निर्माण होत आहेत. मुंबई विधिमण्डळांत डॉक्टरांची संस्था मोठी आहे, त्यांना आयुर्वेदाविषयीं योग्य आस्था नाहीं, त्यामुळें प्रगतीच्या मार्गांत अडथळे येत आहेत.

नांदेड येथील सुप्रसिद्ध कार्यकर्ते **आमदार गोपाळराव देव** यांनीं प्रांतांतील राजकारणाबरोबरच आयुर्वेदाच्या प्रगतीकडेहि वेळोवेळींच लक्ष पुरविलें व विधान सभेंतील सर्व साथीदारांना व विशेषतः मुख्य मंत्री **बी. रामकृष्णराव** यांना सरकारी खर्चानें आयुर्वेदाचें महाविद्यालय मराठवाड्यांत चालू करण्याची आवश्यकता पटविली, याबद्दल सर्व वैद्यवर्गानें व जनतेनें त्यांचें ऋणी असलें पाहिजे. एक नोव्हेंबरनंतर निर्माण होणाऱ्या मुंबई राज्याच्या संयुक्त विधानसभेंत आमदार वैद्य गोपाळराव देव हे आयुर्वेदाचे यशस्वी प्रतिनिधित्व करतील व आगामी निवडणुकींत महाराष्ट्रांतील कार्यकर्त्या वैद्यांना निवडणुकींत भाग घेण्याची स्फूर्ति देतील, असा आम्हांस विश्वास वाटतो.

महाराष्ट्र प्रांतीय वैद्य संमेलन, अहमदनगर

वैद्यराज वि. म. गोगटे बिनविरोध अध्यक्षपदीं निवडून येण्याची शक्यता

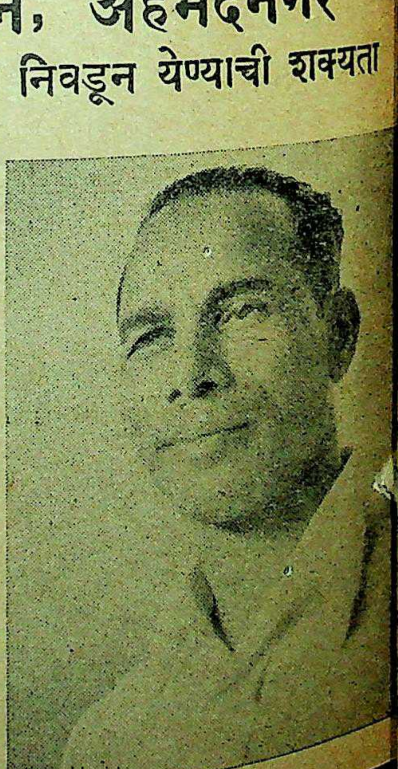

नाशिक ता. २८-९-५६—म. प्रां. वैद्य संमेलनाच्या अहमदनगर येथें भरावयाच्या ११ व्या अधिवेशनासाठीं मंडळाच्या स्थायी कार्यालयाकडे ५७६ सभासदाकडून अध्यक्षपदासाठीं ३ वैद्यांचीं नावें मागविण्यांत आलीं. ता. २२ सायंकाळीं ६ पर्यंत आलेल्या ३२८ कार्डांची तपासणी, पंच— श्री. य. श्री. गोखले, (सह्याद्रि विमा कंपनी) व श्री. ब. चिं. सहस्रबुद्धे (पेठे हायस्कूल) यांनीं केली. अध्यक्षपदासाठीं एकूण ७८ व्यक्तींचीं नांवें सुचविलीं गेलीं असल्याचें त्यांना आढळून आलें. पहिले ३ क्रमांक पुढील प्रमाणें:—

१	वैद्य वि. म. गोगटे, नाशिक	२५८ सूचना
२	वैद्य म. भा. वाटवे, बेळगांव	१९६ ,,
३	वैद्य श्रीमती लक्ष्मीबाई बोरवणकर, मुंबई २	१५७ ,,

या व्यक्तींना त्यांना मिळालेलीं मतें कळवून अध्यक्षपदासाठीं उमेदवार म्हणून त्यांच्याकडून समति मागविणारी पत्रं स्थायी

वेदांतील सृष्टिक्रम, सृष्टि-उत्क्रांति त्याचप्रमाणें पंचमहाभूतविज्ञान

(लेखक:–वैद्यश्री गोविंद हरि मराठे, आयुर्वेदतीर्थ, ग्वाल्हेर)

र्व कल्याणकारी सनातन वेद, जीवाला अक्षय सुख मिळावें म्हणूनच उत्पन्न झाले आहेत असें म्हटलें अतिशयोक्ति होणार नाहीं. ‘वेद’ हा शब्द उच्चारतांच अत्यंत प्राचीन वाङ्मय, ज्ञानभांडार, सामान्य माणसाची कल्पना होते, आणि त्यांत धर्मासंबंधीं बराच उहापोह असावा (ज्याचा आज ाा उपयोग नाहीं,) अशीच सामान्य नव्हे, तर चांगल्या सुशिक्षितांची कल्पना दिसून येते. कल्पना होण्याचें कारण आपलें अज्ञान तर आहेच, पण आपली आपल्या शास्त्रांबद्दलची अनास्था कारण होय.

ज्ञान अनंत आहे, आयुष्य अल्प आहे

ज्ञान, तें प्राचीन असलें तर, किंवा अर्वाचीन असलें तरी, तें पौर्वात्य असो वा पाश्चिमात्य, ज्ञान-करितां तर तें सर्वच पवित्र होय. ज्ञानाच्या अनंततेबद्दल उत्तरगीतेंत स्पष्टच म्हटलें आहे:—‘ अनंत- बहु वेदितव्यं स्वल्पश्च कालो बहवश्च विघ्नाः । यत् सारभूतं तदुपासितव्यं ’ ॥ (ब्रह्माण्डपुराण) ज्ञान अनंत आहे, त्यच्यांत जाणण्यासारखेंहि पुष्कळच आहे, पण माणसाचें आयुष्य थोडें आणि नाकरितां कणशः आणि क्षणशः जरी झटलें तरी मधूनमधून आधिभौतिक शारीरिक विघ्नें हीं ळा उत्पन्न करतातच; अशा परिस्थितींत जें काहीं सारभूत असेल तें घ्यावें आणि त्याचीच उपासना ी. येवढें मात्र निश्चित कीं, हें वाङ्मय प्राचीन असल्यामुळें आजच्या तुटपुंजा शिक्षणांत त्या ज्ञानाचा मिळत नाहीं, त्यामुळें तें क्लिष्ट, दुर्बोध असें वाटतें. शास्त्रांची परिभाषा अवगत झाल्याशिवाय त्यांचा ाद घेतां येत नाहीं. व्याकरण–महाभाष्यासारखे ग्रंथ जरी नाहीं, तरी साधारणपणें वाङ्मयास आव-असलेलें व्याकरण कळणें जरूर आहे. ‘ निघण्टुना विना वैद्यो विद्वान्व्याकरणं विना । अनभ्यासेन स्त्रयो हास्यस्य भाजनम् ॥ निघण्टुच्या ज्ञानाशिवाय जसा वैद्य, व्याकरणाशिवाय विद्वान्, आणि ाशिवाय धनुर्धारी हे तीनहि व्यवहारांत हास्यास कारणभूत होतात. असें हास्य-भाजनत्व पदरीं ये, म्हणून गुरुपंरपरेसारखें स्वल्प आणि सुलभ साधन नाहीं.

गूढ व सार्वभौम सिद्धांत कसे उकलावेत ?

वेद आणि उपनिषदें यांचे सिद्धांत इतके गूढ आणि सार्वभौम आहेत कीं, त्यांच्या ज्ञानाचा अनुभव ाहि देशांत कोणत्याहि धर्मांच्या अनुयायास तो सारखाच अनुभवतां येतो. गूढ असून कसा अनु- येतो ? त्याचें उत्तर गूढ उकलल्यानंतर, येवढेंच. गूढ कोण उकलतो ? गुरुपरंपरेनें ज्ञान घेऊन दुस- त्याच पद्धतीनें दान करणारा सम्प्रदायी. श्रीमत् शंकराचार्यांनीं स्पष्टच म्हटलें आहे ‘असम्प्रदायवित् स्त्रविदपि मूर्खवदुपेक्षणीयः । ’ सम्प्रदाय = विशिष्ट परंपरा, तिच्या शिस्तीला न अनुसरतां सर्व ांचा अभ्यास केलेल्या विद्वानास देखील मूर्खाप्रमाणें उपेक्षा करून सोडून द्यावें. कारण गुरुमुखांतून लेल्या विद्येचें आकलन, त्यांतील संपूर्ण ज्ञान, अनुभूति आल्याशिवाय होत नाहीं. श्रीमत् शंकराचार्य तः–‘ यैरिमे गुरुभिः पूर्वं पदवाक्यप्रमाणतः । व्याख्याताः सर्ववेदान्तास्तान्नित्यं प्रणतोऽस्म्यहम् ॥ ा काळीं ज्या गुरुजनांनीं पद, वाक्य, आणि प्रमाणांच्या विवेचनानें ह्या संपूर्ण वेदांताची व्याख्या

केली, त्यांना मी सदैव नमस्कार करतो. सारांश, केवळ क्लिष्टतेला किंवा अतिविस्तृततेला भिऊन चालत नाहीं. त्यांचे जे अधिकारी आहेत त्यांना शरण जाऊन त्यांचें गूढ उकलून घ्यावयाचें असतें. असो.

आजच्या ह्या विज्ञानानें कुंठित झालेल्या सामान्य जनांस, वेदांचें संशोधन हें असामयिक झालेलें ब्दावडंबर किंवा शब्दांची कसरतच वाटेल, पण त्याची तात्त्विक बैठक फार दृढ (पक्की) असल्यानें यड्रोजन–बांबच्या युगांत रहाणाऱ्यासमुद्धां ती मान्य करावी लागेल. मनुष्य भौतिक सुखाच्या आणि क्षसी महत्त्वाकांक्षेच्या भक्ष्यस्थानीं पडल्यामुळें, आज तो विज्ञानाच्या बळावर सर्व जगावर अधिराज्य थापण्याचा प्रयत्न करीत आहे. पण त्याची ही आसुरी लालसा त्याला सर्वनाशाकडे ओढून नेत आहे, रें अद्ययावत् परीक्षणावरून आणि निरीक्षणावरून सिद्ध होत आहे.

विज्ञान, कर्म, समुपासना व ब्रह्मसाक्षात्कार

हें आमचें वेद–विज्ञान मात्र मानवाच्या कल्याणाकरितांच निर्माण झालें आहे. सनातनस्यास्य हतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः ॥ बृ. उ. २।४।१०. इति श्रुति-स्मृति-राणेतिहासानां सनातन एव सिद्धान्तो निखिलैः शास्त्रदर्शिभिः स्वीकृतश्च । यथैतन्महद्भूतं सर्वत्र सर्वथा र्वदा पूरिपूर्णं तथैव तस्मादेवोत्पन्नोऽयं वेदराशिः सर्वत्र सर्वथा सर्वदा परिपूर्ण एव भवितुं योग्य इति सुतरां ङ्गतमेव, 'पूर्णात्पूर्णमुदच्यते' इति न्यायात् अथर्व. १०-८-२९. ही वेदराशि पूर्ण अशा महद्भूतापासून ालेली असल्यानें पूर्ण अशीच आहे. यांतील सिद्धांत त्रिकालाबाधित आहेत. या सिद्धांतामुळें आर्यांचा ौरव पृथ्वीवर अखंड पसरत आहे. आर्यांच्या तत्वज्ञानावर प्रकाश टाकणारे प्रथम संहिताकार श्रीभगवान् नूंचें स्पष्ट वचन आहे. 'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्।' मनुस्मृति २।६. अशा प्रकारच्या या वेदराशींत विज्ञान, र्म, समुपासना, ब्रह्मसाक्षात्कार या चतुर्विध प्रयोजनांची मनुष्यास प्राप्ति होते. मानवांत देश, काल, जाति-रत्वें भेद नाहीं, हें पुढील उदाहरणावरून आणखी स्पष्ट होईल. यःकश्चित्कस्यचिद्धर्मो मनुना परिकीर्तितः। सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः ॥ मनु. २।७. हें वाक्य श्रीभगवान् मनूनें सर्व जगांतील मानव-ातीस उद्देशून म्हटलेलें आहे.

अथर्ववेदाचें स्वरूप

पहिल्या तीन वेदांत विज्ञान, कर्म, आणि उपासना यांचा साकल्यानें विस्तार सांगितला हें तर ठीक ालें, पण हा चतुर्थ वेद ज्याला ब्रह्मवेद, भैषज्यवेद, अथर्ववेद, अङ्गिरोवेद, भृग्वांगिरसांवेद, इ. नांवानें ळखतात हा तर केवल यति, तापसी, ब्रह्मचारी, व्रतवैकल्यें इ. आचरणाऱ्यांकरितां असेल, त्याचा उपयोग ाजच्या जगांत कसा होणार ? अशी शंका उत्पन्न होणें अगदीं साहजिक आहे. पण, या अथर्ववेदापासूनच ह्माची प्राप्ति (ज्ञान) होणार आहे म्हणून या वेदासंबंधीं आणखी महत्त्वाची माहिती आपण पाहूं. (मागच्या ६ आक्टोबर १९५५ चा लेख पहा.) मागील लेखांत (३) सदरांत—

१] 'यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन्। सामानि यस्य लोमानि, अथर्वाङ्गिरसोमुखम्। मंतं ब्रूहि, कतमःस्विदेव सः ॥ (अथर्व १०-७-२०) या ऋचेंत या अथर्ववेदाला त्या वेदपुरुषाच्या खाची उपमा दिली आहे. पुढें

२] तमुत्वादध्यंगृषिः पुत्रईधे अथर्वणः। वृत्रहणं पुरंदरम् । (ऋ. ६. १६. १४) हे अग्ने, वृत्रहन्त्या शत्रूंची नगरें उध्वस्त करणाऱ्या त्या तुलाच अथर्वन् पुत्र दध्यङ्ऋषीनें प्रज्वलित केलें.

३] त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत । मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः (ऋ. ६-१६-१३) हे अग्ने ! अथर्वा तुला सर्व जगाला आधारभूत अशा पुष्करपर्णापासून उत्पन्न करतां झाला.

४] अग्निर्जातो अथर्वणा विदद्विश्वानि काव्या ।
भूवद्दूतो विवस्वतो वि वो मदे प्रियो यमस्य काम्यो विवक्षसे ॥ (१०-२१-५ ऋ.)

अर्थवन् ऋषीनें निर्मिलेला अग्नि सर्व स्तुतिकाव्यें जाणतो. तो यजमानाच्या देवाकडे जाणारा दूत नियमवान् यजमानाला तूं स्वतःच्या कल्याणाकरितां इष्ट आणि प्रार्थनीय असा आहेस. हे अग्ने, खरो- थोर आहेस.

५] इममु त्यमथर्ववदग्निं मन्थान्ति वेधसः । यमङ्कूयन्तमानयन्नमूरं श्यावाभ्यः ।

नागमोडी गतीनें धांवणाऱ्या ज्या चलाख अग्नीला रात्रीपासून आणलें आहे, त्या ह्या अग्नीला लोक अथर्वन् ऋषीप्रमाणें घर्षण करून उत्पन्न करतात.

६] यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते ततः सूर्योव्रतपावेन आजनि ।
आगा आज दुशनाकाव्यः स चा यमस्य जातममृतं यजामहे ॥ (ऋ. १.८-३.५)

प्रथम अथर्व्यानें यज्ञाच्या योगानें मार्ग तयार केला. त्यानंतर नियमाचा पालक सूर्य जन्मास . उशनाकाव्य [नांवाचा ऋषि] त्याला साहाय्यक झाला, आणि त्यांनीं गाई हाकून आणल्या. क अशा अमरपुत्राला, आम्ही भजतो.

इत्यादिषु मंत्रेषु यज्ञमार्गस्य प्रथमप्रवर्तकादेव च यज्ञे माननीयतमं ब्रह्मत्वमथर्ववेदविदेवार्हतीति यते । प्रशस्यते च तस्यैवमृत्विक्त्वमुरुतररुचिरफलोपवर्णनेन तद्भद्राः समगच्छन्तवशा देष्ट्र्यथोस्वधा । यत्र दीक्षितो बर्हिष्यास्ते हिरण्यये ॥ (अथर्व १०-१०-१७). [यत्र दीक्षितः अथर्वा] जेथें, ज्या अथर्ववेदी दीक्षित, [हिरण्यये बर्हिषि आस्ते] सुवर्णाच्या [श्रेष्ठतम] आसनावर बसतो, तेथें : समगच्छन्त] त्या ठिकाणीं विद्वान् कर्मयोगी पुरुष एकत्रित होतात आणि त्या ठिकाणीं [वशादेष्ट्री] स्वधा] यज्ञांत गाय दान दिली जाते ती जणुं प्रत्यक्ष अन्नाचें धनधान्याचें प्रतीक समजून तेथें सा असते.

शास्त्रज्ञांनी अग्नीचा शोध लावला

वरील सर्व मन्त्रांवरून अथर्वाऋषि, त्याचा पुत्र दध्यङ्गऋषि आणि भृगु इत्यादि ऋषिगण आङ्गिरस होते हें स्पष्ट झालें; त्याचप्रमाणें या अत्यंत प्रतिभाशाली, कर्मठ, धर्मपरायण शास्त्रज्ञांनीं अग्नीचा वून यज्ञमार्ग प्रशस्त केला आणि अथर्ववेदीयांचें उद्दिष्ट (ध्येय) ब्रह्मप्राप्ति होय, हें त्यांनीं सिद्ध केलें. वेदांतर्गत मुण्डकोपनिषदांत या ब्रह्मविद्येचा उत्पत्तिक्रम सांगितला आहे. तो पाहिला असतां ील सर्वज्ञेय वस्तूंचा व विश्वाचा व्यावहारिक उलगडा करतां येतो. शास्त्रीय असलेले नित्यसिद्धांत तांतदेखील सत्यच ठरतात. हें ज्ञानी पुरुषांसच सांगता येतें; पण अज्ञान्याला तें पटवून देण्याकरितां गूढ म्हणून वाटणारें हें सर्व तत्वज्ञान परंपरेच्या चाकोरींतून गेल्याशिवाय उलगडत नाहीं. अस्तु.

आजच्या या लेखांत ऋग्वेद आणि अथर्ववेद यांत दिलेला सृष्टिक्रम, सृष्टि-उत्क्रांति, त्याचप्रमाणें ीर किंवा पंचमहाभूतात्मक शरीरविज्ञानाची सार्वभौम व्याप्ति किती उत्कृष्ट आहे हें पहावयाचें आहे. ा देवानां प्रथमः संबभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता । स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठ-प्राह॥ सर्व श्रेष्ठ ब्रह्मा—हिरण्यगर्भ-हा इतर सर्व देवांच्या आधीं उत्पन्न झाला. हा सर्व विश्वाला उत्पन्न आणि उत्पन्न केलेल्या जगाचें पालन करणारा आहे. जगत्कर्तृत्व व तत्पालकत्व हीं विशेषणें ब्रह्म-उपयोजिलीं आहेत, तीं केवल ब्रह्मविद्येचें माहात्म्य कळावें म्हणून होत. अशा प्रकारचें ज्याचें महत्व आहे त्या ब्रह्मदेवानें परमात्म्याचें स्वरूप सांगणारी [illegible] जिच्या साहाय्यानें अविनाशी पुरुषोत्तमाचें

त्य स्वरूप कळतें, सांगता येतें ' ती ब्रह्मविद्या आपल्या ज्येष्ठपुत्राला म्हणजे अथर्व्याला सांगितला. ब्रह्म- वानें सृष्ट्युत्पत्ति केली तेव्हां सर्वांच्या अगोदर अथर्वाची उत्पत्ति केली; असें पूर्वेतिहासवेत्ते सांगतात. " अथर्वाणोऽथर्वणवन्तः। थर्वतिश्चरति कर्मा तत्प्रतिषेधः " इति निरुक्ते [११-२-१७]. अथर्वा हा एक ोठा कुलस्थापक होऊन गेला. मंथन करून अग्नि उत्पन्न करण्यांत त्याची फार ख्याति होती [६-२६-२३] त्याच्याप्रमाणें अग्नि प्रज्वलित करण्यांत पुष्कळांना अभिमान वाटे. [६-२६-२३] अथर्व्यांच्या वंशजां- ाहि अथर्वन् हें नांव होतें.

पराविद्या व अपराविद्या

ब्रह्मदेवानें जी विद्या अथर्वाला सांगितली ती अथर्वानें प्रथमतः अंगिरा नामक ऋषीला सांगितली. यानें भारद्वाज गोत्रांतील सत्यवहाला या ब्रह्मविद्येचें दान केलें. त्यानेंहि आपला शिष्य किंवा पुत्र जो अंगि- स त्याला, ही गुरूपासून शिष्यास, अशा परम्परनें प्राप्त झालेली किंवा सर्व, श्रेष्ठ व कनिष्ठ विद्या–विषयांस अंतर्भूत करणारी ब्रह्मविद्या सांगितली. पुढें शुनकाचा मुलगा व महागृहस्थाश्रमी जो शौनक तो भारद्वाज शिष्याकडे (अंगिरसाकडे) शास्त्रानें सांगितलेल्या मार्गानें गेला आणि मोठ्या विनयानें त्यांस पुढील प्रश्न विचारतां झाला. " कस्मिन्नु भगवन् विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति। " हे भगवन्! अशी कोणती बरें एक स्तु आहे कीं, जी समजली असतां या सर्व दिसणाऱ्या व भासणाऱ्या वस्तूंचें विशेष ज्ञान होऊन मनुष्यास र्वज्ञ होतां येते ? शौनकानें अंगिरसाला सांगितलें दोन विद्या समजून घेतल्या असतां सर्वज्ञत्व प्राप्त होतें. या विद्यांना ब्रह्मविद् परा आणि अपरा या नांवानें संबोधतात. [२-३·४]

तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति। थ परा यया तदक्षरमवगम्यते ॥५॥ ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, नेरुक्त, छंद व ज्योतिष मिळून अपराविद्या होते, आणि ज्या विद्येच्या द्वारें त्या अविनाशी परब्रह्माची प्राप्ति ोते तिला परा विद्या म्हणतात. यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णचक्षुःश्रोत्रं तदपाणिपादम्। नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद्भूतयोनिं परिपश्यान्ति धीराः ॥६॥ जें कांहीं अगोचर आहे, अग्राह्य आहे, ज्याला ोत्र नाहीं, वर्ण नाहीं, नेत्र–कर्ण नाहीं, ज्याला हस्तपाद नाहींत, जें नित्य, विभु, सर्वगामी, अत्यंत ूक्ष्म आणि अव्यय आहे, जें सर्व कारण आहे, तें परब्रह्म विद्वान् पुरुषांस मात्र साक्षात्कृत होतें. ज्या वेद्येनें हें अक्षर समजतें तिला पराविद्या असें म्हणतात, हें मागें आलेंच आहे.

कर्म व कर्मफल–सिद्धान्त

प्रथम सांगितलेल्या अपराविद्येंत कर्मकांडाचा अंतर्भाव होतो हें त्यांतील भिन्न भिन्न विषयांवरून स्पष्ट होतें. जेथें अमुक एक विधि करावा असें सांगितलें असतें, त्याठिकाणीं कर्ता, कर्म, कारण इ० आलेच. ज्ञान होतां क्षणींच अमुक कर्म करावें, कोणी करावें, केव्हां करावें इ० ज्ञान आपण करून घेतो, आणि नंतर तो विधि यथासांग पार पाडून एक असें अपूर्व निर्माण करितो कीं, ज्याचें फल कालांतरानें मिळावयाचें असतें. विधि वाक्याचें अर्थज्ञान होतां क्षणींच आपल्या इष्टकर्मांचा व फलाचा अधिगम होत नाहीं. पण रांविद्येची गोष्ट अगदीं निराळी आहे. वाक्याच्या अर्थाचें ज्ञान बरोबर झालें कीं, तत्क्षणीं आपला पुरुषार्थ सिद्ध होतो. वाक्यार्थज्ञान आणि पुरुषार्थप्राप्ति यामध्यें कालावकाश बिलकूल असत नाहीं. विद्येची गोष्ट तशी नाहीं. वाक्यार्थज्ञान झाल्यावर कांहीं वेळानें कर्त्याचें कर्म अनेक साधनांच्याद्वारें इष्ट वस्तु उत्पन्न करतें, असा पराविद्या आणि अपराविद्या यांत फरक आहे. सामान्य माणसास अपरा विद्येचीच प्रथम कास धरावी लागते. एकदम पराविद्येची इच्छा करणें हें पहिल्या पायरीवरून एकदम शेवटल्या पायरीवर जाण्याचा प्रयत्न

सारखें निष्फल ठरतें. आतां आपण अपराविद्येंतील किंवा पराविद्येंतील जें ब्रह्म (ज्ञेय वस्तु) ज्याची सृष्टि क्त स्वरूप आहे, त्या व्यक्तस्वरूपाची उत्क्रांति कशी होत गेली तें पाहूं. केवळ पराविद्येच्या ब्रह्मज्ञाना- जर विचार करूं लागलो तर सामान्य माणसाची बुद्धि कुंठितच होईल, असो.

व्यक्ततेचा प्रारंभ कसा झाला ?

या ब्रह्मापासून विस्तार पावलेलें हें जग प्रथम कसें होतें असा विचार जेव्हां मनांत येतो तेव्हां त्या तेचा प्रारंभ कसा झाला असा प्रश्न उत्पन्न होतो. त्याचें उत्तर वेद आणि उपनिषदें अशा प्रकारें —यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च यथा पृथिव्यामोषधयः संभवन्ति । यथा सतः पुरुषात्केशलोमानि क्षरात्संभवतीह विश्वम् ॥ ७ ॥ ज्याप्रमाणें जाळें विणून आंत किडे धरणारा कोळी त्या जाळ्याची त्ति आणि नाश स्वेच्छेनें करीत असतो, ज्याप्रमाणें या पृथ्वींतून अनेक वृक्ष आणि औषधि उत्पन्न त, ज्याप्रमाणें जिवंत माणसांपासून केश, लोम (लव) उत्पन्न होतात, त्याचप्रमाणें हें विश्व अक्षर जो त्मा त्यापासून उत्पन्न होतें.

पृथ्वीचें जें दुसरें उदाहरण आहे त्यांत पृथ्वीलाहि व्रीहि आदि वृक्ष पाषाणापर्यंतचे सर्व स्थावर जंगम र्थ स्वयमेव उत्पन्न करतां येतात. त्यांचें स्वरूप लोकप्रसिद्ध असून हे पदार्थ पृथ्वीपासून मात्र उत्पन्न त आणि तेथेंच लयाला जातात, असेंच पुरुषापासून केश, लोम, नखें इत्यादि निर्जीव पदार्थ उत्पन्न त. या तीनहि दृष्टांतावरून असें स्पष्ट दिसतें कीं, दुसऱ्या कोणत्याहि कारणाची अपेक्षा न ठेवतां हून विलक्षण स्वरूप असणारे जड व त्याच्या सारखेंच स्वरूप असणारे जीव मिळून हें समस्त विश्व न होतें.

अव्याकृत सृष्टीचे मूळ घटकावयव

तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते । अन्नात्प्राणो मनः सत्यं लोकाः कर्मसु चामृतम् ॥ ८ ॥ म्हणजे ज्ञानानें किंवा उत्पत्तीचे नियमांच्या ज्ञानानें अविनाशी व सृष्टीचें कारण असणारे ब्रह्म पुष्ट ज्याप्रमाणें अंकुर उत्पन्न होण्याच्या वेळीं बीज पुष्ट होतें, त्याप्रमाणें हें जगत् उत्पन्न करण्याची इच्छा झाली असतां तें क्रमानें विस्तार पावतें. सर्वज्ञतेनें म्हणजे विश्वाची उत्पत्ति, स्थिति आणि करण्याचें सामर्थ्य व सामर्थ्यज्ञान असणाऱ्या विज्ञानानें पुष्ट झालेल्या ब्रह्मापासून अन्न उत्पन्न होतें. हें म्हणजे अव्याकृत सृष्टीचे मूळ घटकावयव [Rudimentary elements] होत. सृष्टीचीं मूळद्रव्यें ब्रह्माची माया, उपाधि. आणखीन् स्पष्ट म्हणावयाचें झाल्यास [Paraphernalia or ssories] होत. ही माया पृथ्वीआपतेजादि पंचमहाभूतांच्या व मनःसृष्टीच्या अव्याकृत स्वरूपाची . ही माया प्रथम अव्याकृत रूपानें उपलब्ध होऊन नंतर व्याकृत म्हणजे विशिष्ट स्वरूपांची झालेली सर्वांस उपलब्ध होते. आतां जीवसृष्टीच्या दृष्टीनें या अव्याकृत मूलघटकांच्या उत्क्रांतीचा र करूं.

ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत । ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥१॥ [ऋ. प्रे. ८-११०] भाष्यः—ऋतमिति सत्यनाम । ऋतं मानसं यथार्थसंकल्पनं सत्य वाचिकं यथार्थभाषणम् । यामन्यदपि शास्त्रीयं धर्मजातं समुच्चीयते । तत् सर्वमभीद्धादभितप्ता ब्रह्मणो पुरा सृष्ट्यर्थं कृता- ऽपि । अध्युपर्यर्थे । उपर्यजायत उदपद्यत ‘ तपस्तदप्त्वेदं सर्वमसृजत [तै. आ. ८.६] इति श्रुतेः नमयं तपः ’ [मु. उ. १.१.९]

इति श्रुत्यन्तरात् ॥ यद्वा । अभीद्धादभितः प्रकाशमानात् परमात्मनो मायाधिष्ठानरूपादानभूताद्दतं सत्यं चाजायत ॥ ततस्तस्मादेवेश्वराद्रात्री । उपलक्षणमेतदह्नोऽपि । अहश्च रात्रिश्चाजायत ॥ ततस्तस्मादेवेश्वरादर्णवोऽर्णसोदकेन युक्तं समुद्रश्चाजायत. अर्थः– सर्वत्र प्रकाशमान असणाऱ्या परमेश्वरापासून त्रिकालाबाधित सृष्टिनियम, व्यावहारिक नियम, सर्व जग, नंतर रात्रि, दिवस, तदनन्तर जलमय समुद्र उत्पन्न झाला.

समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत अहोरात्राणि विदधाद्विश्वस्य मिषतो वशी ।

भाष्यः– अर्णवात्समुद्रात्सृष्टादध्यूर्ध्वं संवत्सरः संवत्सरोपलक्षितः सर्वःकालोऽजायत । श्रूयते हि 'सर्वे निमेषा- जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधिकलामुहूर्ताकाष्ठाश्च (तै. आ. १०-१-२) इति स चेश्वरोऽहोत्राण्येतदुपलक्षितानि सर्वाणि भूतजातानि विदधत् कुर्वन् सृजन् ॥ मिषतो निमिषादि युक्तस्य विश्वस्य सर्वस्य प्राणिजातस्य वशी स्वामी भूत्वा वर्तते। भाषांतर – जलमय समुद्र उत्पन्न झाल्यानंतर सर्व प्राणिमात्रास नियमित वागावयास लावणारा आणि अहोरात्र निर्माण करणारा संवत्सरात्मक काल उत्पन्न झाला.

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् । दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ॥३॥

भाष्यः— सूर्याचन्द्रमसौ कालस्य ध्वजभूतौ दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षं च इत्थं त्रिभुवनं स्वः। स्वः शब्दः सुखवाची। दिवो विशेषणम्। सुखरूपां दिवम्। तदेतत्सर्वं धाता विधाता यथापूर्वं पूर्वस्मिन् कल्पे अकल्पयत् सृष्टवान् तथैवागामिन्यपि कल्पे कल्पयिष्यतीत्यर्थः ।

भाषांतरः— पूर्व कल्पांत धात्यानें सूर्य, चंद्र, स्वर्ग, पृथ्वी, आकाश हे वरचे आणि खालचे सात लोक उत्पन्न केले.

जीवसृष्टीचा प्रारंभ

याप्रमाणें सृष्टीचें विधान क्रमशः घटित झालें, त्यानंतर जीवसृष्टीचा प्रारंभ सांगतात—

तमिद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे ।
अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन्विश्वानि भुवनानि तस्थुः ॥ ६ ॥ ऋ.मं. १०-८२-६)

भाष्यः—तमित् तमेव विश्वकर्माणं गर्भस्थानीयं प्रथमम् . इतर सृष्टेः पूर्वम् आपः दध्रे धृतवत्यः ! यत्र गर्भे विश्वे सर्वे देवाः इन्द्रादयः समगच्छन्त संगता भवन्ति । तस्य अजस्य नाभावधि नाभौ । अधीति सप्तम्यर्थानुवादी एकमार्पितम् इत्यण्डाभिप्रायेणोक्तम् । अण्डं हि प्राक्सर्गान्नाभिस्थाने तिष्ठति । यस्मिन् अण्डे विश्वानि भुवनानि सर्वाणि भूतजातानि तस्थुः तिष्ठान्ति । अथवा अजस्य जन्मरहितस्य ब्रह्मणः स्वसृष्टे जले शयानस्य नाभौ सर्वजगद्बन्धक उदक एकं ब्रह्माण्डमार्पितम् स्थापितम् । अथास्मिन्नर्थे स्मृतिः 'अप एव ससर्जादौ तासु वीर्यमवाकिरत् ।' इ.

भाषांतरः—त्या विश्वकर्म्याच्या गर्भाला प्रथम पाण्यानें धारण केलें. ज्या गर्भांत सर्व देव एकत्र झाले होते, ज्यांत सर्व भुवनें राहातात त्या मूळ कारणापासून झालेल्या उदकांत त्यानें एक ब्रह्मांड निर्माण केलें.

अपि च—
आपो ह यद्बृहतीर्विश्वमायनगर्भं दधाना जनयन्तीरग्नीम् ॥
ततो देवानां समवर्ततासुरेकः क मै देवाय हविषा विधेम ॥

भाष्यः—बृहतीः बृहत्योः महत्यः । 'बृहन्महतोरुपसंख्यानम्' । अग्निम् । उपलक्षणमेतत् । अग्न्युपलक्षितं सर्वं वियदादि भूतजातं जनयन्तीः जनयन्त्यः तदर्थं गर्भं हिरण्मयाण्डस्य गर्भभूतं प्रजापतिं दधानाः धारयन्त्यः आपो ह आपएव विश्वमायन् सर्वं जगत् व्याप्नुवन् यत् यस्मात् ततः तस्माद्धेतोः देवानां देवादीनां सर्वेषाम् प्राणिनाम् असुः प्राणभूतः एकः प्रजापतिः समवर्तत समजायत । यद्वा यत् यं गर्भं दधाना आपो विश्वात्मनमवस्थिताः ततो गर्भभूतात्प्रजापतिर्देवादीनां प्राणात्मको वायुरजायत । अथवा । यत् । लिङ्ग

र्योर्व्यत्ययः । उक्त लक्षणा या आपो विश्वमावृत्य स्थिताः ततस्तेभ्योऽद्भ्यः सकाशादेकोऽद्वितीयो प्राणात्मकः प्रजापतिः समवर्तत निश्चक्राम तस्मै कस्मै । इ.

भाषांतरः—ज्या महान् अग्न्यादि सर्व जगाला उत्पन्न करणारें आणि गर्भ धारण करणारें उदक जग व्यापतें, ज्यापासून देवांचाहि प्राणभूत एक प्रजापति निर्माण झाला, किंवा जें उदक गर्भधारण त्याचप्रमाणें साऱ्या जगास स्वतःच्या योगानें स्थिर करतें, त्या गर्भाला कारणीभूत होणाऱ्या प्रजापती-इंद्रियांचा प्राणभूत वायु निर्माण झाला, त्या सुखस्वरूप परमेश्वराची आम्ही सर्व प्रकारें उपासना करतो.

वरील दोन्ही ऋचांतून जीवसृष्टीच्या उत्क्रांतीची प्रथमावस्था सांगितली आहे. आप हें महाभूत त्या भोंवताली चहूंकडे असून देखील त्याचें सार्वभौमत्व आपण लक्षांत घेत नाहीं. जीवसृष्टीची ति सांगतांना आप या महाभूताचें विश्वव्यापी स्वरूप त्याचप्रमाणें एका अत्यंत सूक्ष्मांत सूक्ष्म पण जीवांत असलेल्या या महद्भूताचें वर्णन केलें आहे.

त्याचप्रमाणेः— तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः । अत्र तस्माद्वा एतस्मात् नाम ' हिरण्य-' उक्तं च [ऋ. मं. १०-१२१-१मं] हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् । सदाधार द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम '] आकाशः संभूतः । आकाशाद्वायुः । वायोरग्निः अग्नेरापः । प्रथिवी पृथिव्या ओषधयः । औषधीभ्योऽन्नम् । अन्नात् पुरुषः । 'तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते । णः' इत्यादि सांगितलेल्या क्रमापासून प्राणोत्पत्ति सांगितल्यानंतर जो पुरुष सांगितला तो जीव-उत्क्रांतींतील आदिपुरुष होय. त्याचें वर्णन ' सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् । स भूमिं वृत्वा त्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥ ' असें केलें आहे. पंचमहाभूतात्मक शरीर धारण केलेल्या आत्म्याचेंच होय, हें पुढील सायन–भाष्यावरून स्पष्ट होईल.

सायण भाष्यः—सर्वप्राणिसमष्टिरूपो ब्रम्हाण्डदेहो विराडाख्यो यः पुरुषः सोऽयं सहस्रशीर्षा । शब्दस्योपलक्षणत्वादनन्तैः शिरोभिर्युक्त इत्यर्थः । यानि सर्वप्राणिनां शिरांसि तानि सर्वाणि तद्देहान्तः तत्तदीयान्येवेति सहस्रशीर्षत्वम् । एवं सहस्राक्षित्वं सहस्रपादत्वम् च । सः पुरुषः । भूमिं ब्रह्माण्ड-रूपां विश्वतः सर्वतः वृत्वा परिवेष्ट्य दशाङ्गुलं दशाङ्गुलपरिमितं देशम् अत्यातिष्ठत् अतिक्रम्य व्यव-दशाङ्गुलमित्युपलक्षणम् । ब्रह्माण्डाद्बहिरपि सर्वतो व्याप्यावस्थित इत्यर्थः । एवंगुणविशिष्ट पुरुष सानें जसा आहे तसा मानवदेहधारी पंचमहाभूतशरीरिसमवायात्मक पुरुष होय. (अपूण)

विचार —

सुगंध हे औषधी आहेत

आयुर्वेद पत्रिकेच्या ता. १६ ऑगस्टच्या 'धनुर्वातावरील धूपाचा प्रभाव' दिला आहे. तानें जंगलांतून कांहीं वनस्पति आणली व वर टाकून रोग्यास हुंगण्याला सांगितलें व निजवून सर्वांगास धुरी दिली. " मला वाटतें वनस्पति निर्गुडी होय. ही अत्यंत वातहारक आहे.

सुगंधानें रोगहरण करावें

धूमानें जसे रोग बरे होतात त्याप्रमाणें सुगंधानें रोग बरे होऊं शकतील. मेंदाच्या वासानें मस्तकांतील कफ कमी होतो व फेंपरें रहातें, डोकें-दुखी थांबते व मूर्च्छाहि नाहींशी होते. कापूराच्या वासानें डोकेदुखी थांबते. त्याप्रमाणें फुलांचे वास घेऊन अनेक रोग जाऊं शकतील. सोनचांफा, कवठी-चांफा, पारिजातक, मदनबाण, अशीं सुगंधीफुलें वापरून अनेक रोग जाऊं शकतील. मेंदीचें [अत्तर हीना] अत्तराचा वास घेतला असतां पित्तविकार थांबतात. अशीं अनेक निर्भेळ अत्तरें वापरून रोग बरें करितां येतील. ह्यांची जास्त माहिती कोणास असल्यास त्यानें प्रसिद्ध केल्यास आर्यवैद्यकावर उपकार होतील.

वै. सु. भा. वैद्य, मुंबई २

पत्रिका शास्त्रीय आहे

सविनय विदित व्हावें कीं “ पात्रिकेचें आजचें वरूप ” या शीर्षकाखालीं जो मुद्दा उपस्थित करण्यांत ााला आहे, त्या बाबतींत पात्रिकेचा एक वाचक हणून माझें असें मत आहे कीं हल्लीं पत्रिकेच्या ख़ाचें जें स्वरूप आहें तें अलबत् शास्त्रीय आहे, भाणि सामान्य वाचक समजू शकतील असें आहे.

पत्रिकेचें ध्येय आयुर्वेदाचा शुद्ध शास्त्रीय वरूपांत विकास करणें हे आहे. म्हणून हल्लीचें वरूप ज्याप्रकारें आहे तें योग्य आहे, प्रशस्त आहे.

आयुर्वेदशास्त्राचे मूलभूत–सिद्धांत–विषय, जसें चिमहाभूतांचा क्रम, त्रिदोष (वात–पित्त कफ) ड्रस, सप्तधातु वगैरे विषयांवर ज्या प्रकारें वेळोवेळीं या लेखमाला चालतात त्या वैद्यांना, सामान्य वाचकांना, त्याचप्रमाणें इतरांनाहि आयुर्वेदाच्या अष्टांग वरूपाचें ज्ञान होण्यास खूपच मदतगार होतात.

उदाहरणार्थ, दोषांचें साम्य-वैषम्य, द्रव्यांचे-रस वीर्य, विपाक व प्रभाव या आधारें लेख, रसांचे क्रमानें रूपांतर, धातूमधील अग्नीचें स्वरूप, प्रत्येक धातूचे मल, त्याप्रमाणेंच लंघन, स्नेहन, स्वेद, वमन, विरेचन वगैरे बाबतींत उपयुक्त माहितीवाले लेख पत्रिकेमध्यें येतच असतात. त्यामुळें पत्रिका खूपच सरस व चांगलें वाङ्मय पुरवितें व याचप्रकारें ती चालू रहावी असें माझें मत आहे. (मूळ पत्र गुजराथी)

वैद्य अमृतलाल त्रि. पंड्यांचा
जय आयुर्वेद

विदर्भ आयुर्वेद महाविद्यालय, अमरावती

ऑगस्टमध्यें झालेल्या महाविद्यालयीन निवडणुकींत श्री. सु. तु. झापडें (तृतीय वर्ष) हे विद्यार्थी विविध कार्यनिधि युनियनचे सरचिटणीस म्हणून व श्री. रमाकान्त चौधरी (तृतीय वर्ष) हे स्नेहसंमेलन सरचिटणीस या जागेकरितां बहुमतानें निवडून आले.

.... नूतन वैद्यकीय ग्रंथ ....

भारतीय चिकित्सा रहस्य (मराठी)	पं. व्यासनारायण शुक्ल	६।। रु.
भारतीय--मर्दनशास्त्र (मराठी)	श्री. पळणीटकर गुरुजी	३ „
औषधी–संग्रह (मराठी)	वै. का. सं. करंदीकर	१० „
अष्टांगहृदय मूल (संस्कृत)	चौखंबा प्रकाशन	४ „
सुश्रुत संहिता, संस्कृत टीका-सहित	निर्णयसागर प्रकाशन	४० „
„ संस्कृत मूल	„	८ „
चरक संहिता, संस्कृत टीका-सहित	„	१८ „
„ संस्कृत मूल	„	६ „
किरातार्जुनीयम् संस्कृत हिंदी	चौखंबा प्रकाशन	४ „
रसरत्नसमुच्चय, संस्कृत मूल	„	३।। „

वैद्यक ग्रंथ भांडार, नासिक

आयुर्वेदीय संशोधकांपुढील
.... कांहीं जटिल समस्या ....

लेखक-दंतवैद्या इंदुमति नेने, मंत्री, अ. भा. आयुर्वेदिक डेंटल मिशन, मुंबई ४)

आयुर्वेद-संशोधनाचे क्षेत्रांत जे कांहीं थोडे- प्रयत्न आपल्या देशांत केले जातात त्यांत प्रायः कित्सा आणि तत्संबंधीं औषधी-प्रयोग याच ंना प्राधान्य दिलें जात आहे. परन्तु कोणत्याहि एखादी औषधी-योजना संपूर्ण गुणदायी कर- ंच त्या शास्त्राची संपूर्ण वैज्ञानिकता सिद्ध न दाखविणें असंभवनीय असतें. कारण कीं, धी-प्रयोगाच्या सुफलतेचें उत्तरदायित्व त्याच्या क वर्षांच्या अनुभवावरच अवलंबून असतें व त्या गुणदायित्वाचें तेंच कारण दाखविलें जातें. अशा परिस्थितींत असे आयुर्वेदीय औषधी- हे आयुर्वेदोन्नतिकारक होण्याऐवजीं ते ॲलो- शास्त्रालाच पोषक होण्याचा संभव निर्माण होतो.

अशा प्रकारें आधुनिक वैद्यक शास्त्राशीं सम- करण्यांत प्राचीन वैद्यकशास्त्राचें कितपत हिता- साधेल ही गोष्ट भविष्यकालच ठरवूं शकेल. आयुर्वेदाच्या वैज्ञानिकतेला बाधक होणाऱ्या ोहि कांहीं बाबी आहेत व त्यांपैकीं कांहींचें ण करणें अत्यावश्यक आहे, आणि म्हणून विवरण येथें करीत आहे.

१ विपाकासंबंधीं समस्या

खाद्यान्नाचा पाक प्रायः दोन प्रकारानें होतो.] अवस्थापाक व [२] निष्ठापाक. यापैकीं निष्ठा- च्या अंतिम रूपांतराला विपाक असें म्हटलें जातें. र्वेदामध्यें विपाकाच्या मौलिक सिद्धातांचें महत्त्व मोठें आहे. हे विपाक तीन प्रकारचे आहेत मानलें जातें.

तिक्तकषायाणां विपाकः प्रायशः कटुः ।
ऽम्लं पच्यते स्वादुर्मधुरं लवणस्तथा ॥
[च. सू. २६]

वरील श्लोकांतील शेवटच्या ‘ तथा ’ शब्दाचा अर्थ ‘ आणि ’ असा घेतला तर मधुर आणि लवण रसाचा विपाक मधुर होतो असें मानावें लागतें. परंतु जर ‘ तथा ’ शब्दाचा अर्थ ‘ त्याचप्रमाणें ’ असा घेतला तर वाक्य--रचनेच्या परंपरेचा विचार करत ‘ लवणः लवणं पच्यते ’ म्हणजेच लवणाचा लवण-विपाक होतो असा मतितार्थ होऊं शकतो. अशा प्रकारें षड्रसयुक्त आहाराचें मधुर-अम्ल-लवण-कटु या चार रसांत अंतिम रूपांतर होतें असें गृहीत धरल्यासच

मधुरो लवणाम्लौ च स्निग्धभावात् त्रयो रसाः ।
वातमूत्रपुरीषाणां प्रायो मोक्षे सुखा मताः ॥

या श्लोकाची यथार्थता सिद्ध होऊं शकते. अन्यथा वात-मूत्र-पुरीषांचें सुखपूर्वक विमोचन करणाऱ्या लवणरसाच्या पुनरुत्पत्तीचा प्रश्न निर्माण होतो. इतकेंच नव्हें तर मूत्रामधील लवणरसाच्या स्थितीचें जें वर्णन आयुर्वेदानें दिलें आहे तें वर्णन लवणरसाचें रूपांतर मधुररसांत गृहीत धरल्यास होऊंच शकत नाहीं. परंतु ज्यापेक्षां मूत्र, पुरीष, स्वेद इत्यादिमध्यें लवणरसाची जी लवणस्थिति असलेली आपणांस दिसते ती लवणरसाचा लवणविपाकच होतो हें दर्शवितें. जर करितां लवणरसाची परिणति प्रथम मधुररसांत होते व नंतर लवणरसांत होतें असें मानलें तर त्यास शास्त्रप्रामाण्य मिळत नाहीं. पुढें दिलेल्या आयुर्वेदोक्त श्लोकावरून लवणरसाच्या उपस्थितीची स्पष्टता उत्तम प्रकारें होत आहे. त्याचप्रमाणें आधुनिक प्रत्यक्षवादी संशोधनांतहि सदर वर्णनास पाठिंबा मिळत आहे. आणि म्हणून जर प्राचीन टीकाकारांनी प्रसंगवशात् कांहीं चूकभूल केली असेल तर त्याची दुरुस्ती आजच्या विज्ञानकालांत करणें अत्यंत जरूरी आहे. तो श्लोक असा—

नरमूत्रं गरं हान्ति सेवितं तद्रसायनम् ।
रक्तपामाहरं तीक्ष्णं सक्षारलवणं स्मृतम् ॥ (भा. प्र.)

(२) सैद्धांतिक मतभिन्नत्व

विपाकासंबंधीं प्राचीन आचार्यांनीं जी वरीलप्रमाणें मान्यता दिली आहे, ती स्वस्थ शरीरांतील रूपांतरासंबंधीं आहे. ही गोष्ट ध्यानीं घेऊन अर्वाचीन शास्त्राच्या ह्या बाबतच्या मान्यतेविषयीं जरा सखोल विचार केला तर आपणापुढें एक अनिवार्य जटिल समस्या उभी राहाते, ती अशी कीं, आधुनिक पाश्चात्य शास्त्राप्रमाणें साखर, स्टार्च, मांस, मासळी इत्यादि पदार्थ अम्लविपाकी आहेत, तर आयुर्वेदीय मताप्रमाणें ते मधुरविपाकी मानले आहेत, तसेंच लिंबू, दही, चिंच, ताक, टमाटे इत्यादि पदार्थ आधुनिक शास्त्राप्रमाणें लवण-विपाकी मानले आहेत, तर आयुर्वेदीय मताप्रमाणें हे पदार्थ अम्ल-विपाकी मानले गेले आहेत. अशाप्रकारें पौर्वात्य व पाश्चिमात्य दृष्टिकोनांत सैद्धांतिक भिन्नत्व आहे. कारण आयुर्वेदशास्त्रांत 'अम्ललवणौ रसतः [विरुद्धौ]' (सुश्रुत सू.अ. २०) असें वचन आहे. पाश्चात्य मताप्रमाणें वरील लिंबू, दही, ताक, चिंच, टमाटे इत्यादि लवण-विपाकी पदार्थांच्या अतिसेवनानें भारतांत कृमिदंत रोगाची उत्पत्ति झाली, तर साखर स्टार्च इत्यादि अम्लविपाकी पदार्थांच्या अतिसेवनानें पाश्चात्य देशांत कृमिदंत रोगाची उत्पत्ति झाली, असें पाश्चात्य संशोधनाप्रमाणें आढळून आलें आहे.

दांत पोकळ केव्हां होतात ?

कृमिदंतरोगांसंबंधीं पाश्चात्य संशोधकांना असें आढळून आले आहे कीं, साखरेच्या अतिसेवनानें मनुष्याच्या लाळेंत (Saliva) अम्लतत्व (acidity) उत्पन्न होतें व त्यानंतर सुमारें ६ महिन्यांत दांत पोकळ व्हावयास लागतात. ह्या अम्लतत्वाच्या उत्पत्तीस प्रतिबंध केला तर वरील रोग होत नाहीं.

अशाप्रकारें साखर, स्टार्च, मांस आदि पदार्थ आयुर्वेदीय मताप्रमाणें मधुरविपाकी तर आधुनिक पाश्चात्य मताप्रमाणें अम्लविपाकी, तसेंच लिंबू, दही, ताक, चिंच इत्यादि पदार्थ आयुर्वेदीय मताप्रमाणें अम्लविपाकी तर आधुनिक पाश्चात्य मताप्रमाणें लवणविपाकी हें कसें संभवतें ? असें हें सैद्धांतिक भिन्नत्व आहे. स्वस्थ शरीरांत होणारें हें रूपांतर आयुर्वेदीयांना कितपत संमत आहे !

आधुनिक शास्त्रांतील ह्या विपाक-सिद्धांताचें यथायोग्य व समाधानकारक निराकरण जर आमचा वैद्यसमाज प्राचीन आयुर्वेदशास्त्रीय दृष्टिकोनांतून करूं शकला नाहीं तर खालील दोन जटिल समस्या त्यांच्यापुढें दत्त म्हणून उभ्या राहातील व त्या आयुर्वेदाच्या शास्त्रीयतेला व वैज्ञानिकतेला जबरदस्त धक्का देतील. आणि म्हणून ह्या विपाकसिद्धांताचा निराकरणात्मक प्रतिवाद शास्त्रीय जगतापुढें मांडणें कितीं आवश्यक आहे ही गोष्ट सहज ध्यानीं येईल.

पाहिली समस्या अशी कीं, आयुर्वेदाचा विपाक सिद्धांत हा त्रिदोषसिद्धांताप्रमाणेंच भ्रामक व काल्पनिक ठरूं शकेल; कारण कीं, त्याच्या प्रत्यक्षीकरणाचें काहींहि साधन आमच्यापाशीं उपलब्ध नाहीं.

सांडू ब्रदर्सचीं
शास्त्रोक्त तयार औषधें, काढे, आसवें, अरिष्टें, भस्में, मात्रा, रसायनें इ. वैद्यवर्गास चिकित्सेंत फार उपयोगी पडतात.
वैद्यांना तीं घाऊक दरानें विशेष सवलतीनें दिलीं जातात.
पत्रव्यवहाराचा पत्ता:—
दत्तात्रेय कृष्ण सांडू ब्रदर्स
चेंबूर प्रायव्हेट लि.
(फॅक्टरी व हेड ऑफिस—चेंबूर, मुंबई)

दंतसंरक्षणात्मक आहारोपाय

दुसरी समस्या अशी कीं, कृमिदंतरोगापासून ल्य शास्त्रद्वारां निरोधात्मक व संरक्षणात्मक ला गेलेला आहारजन्य उपाय जर आमच्या त रोगोत्पादक म्हणून सिद्ध होत आहे, तर त्या ासून संरक्षण होण्याचें अन्य साधन वा उपाय ता ? हें सप्रयोग सिद्ध झाल्यावाचून आम्ही ाचें म्हणणें प्रामाण्य मानूं शकत नाहीं !

(३) लाळेसंबंधीं समस्या

आणखी एक लाळेसंबंधीं समस्या उपरोक्त ाक-सिद्धांतांतून निर्माण होते. ही समस्या सोड- यास चार प्रकारचे विपाक मानणें आवश्यक होते. क्ष-प्रामाण्यावरून आमच्या आयुर्वेदाची विसं- े दिसून येते व त्याचें भ्रममूलकत्व सिद्ध होतें. समस्येचें विवेचन खालीलप्रमाणें आहे.

लाळ केव्हां वाढते

मुंबईच्या के. ई. एम्. हॉस्पिटलमध्यें दिवस- तें मनुष्याच्या लाळेचें (Saliva) तीन चार निराळ्या वेळीं निरीक्षण केलें असतां असें आढळून े आहे कीं, भोजनोत्तर मनुष्याच्या लाळेचें प्रमाण क होतें. आयुर्वेदाच्या दृष्टीनें असें होणें प्राकृ- आहे; कारण भोजनानंतरचा काल हा कफ- पाचा आहे, व लाळ (Saliva) ही कफाच्या प्रकारांपैकीं एक प्रकार आहे. जसें "स (श्लेष्मा) शीतकाले च वसन्ते च विशेषतः। पूर्वाण्हे च च भुक्तमात्रे प्रकुप्यति ॥ जिव्हामूलकण्ठस्थो ेंद्रियस्य सौम्यत्वात् सम्यग्रसज्ञाने वर्तते।"

(सु. सू. २१)

लाळ कां वाढते ?

परंतु पाश्चात्य मताप्रमाणें लाळेमध्यें असलेल्या तत्वाच्या उपस्थितीमुळें भोजनोत्तर लाळेचें प्रमाण िक होतें असें अनुभवानें ठरविण्यांत आलें आहे. ं आयुर्वेदशास्त्रदृष्टीनें हें असें कां होतें ? व तेंहि ेची प्राकृत रचना मधुर असतांना ? फक्त कफाच्या ावस्थेंतच लाळेंत लवणतत्व उत्पन्न होतें असें वर्णन आयुर्वेदशास्त्रामध्यें मिळूं शकतें; जसें—

'श्लेष्मा श्वेतो गुरुः स्निग्धः पिच्छिलः शीत एव च। मधुरस्त्वविदग्धः स्याद्विदग्धो लवणः स्मृतः॥ (सु. सू. २१)

मंदाग्नि हें विदग्धतेचें कारण आहे. स्वस्थ पुरुषाच्या समाग्नि लक्षणाहून भिन्नलक्षण असतां त्यापासून प्रथम एखादा रोग व नंतर अनेक रोग उत्पन्न होतात, जसें:—

'मंदवन्हिर्विदग्धस्तु कट्वर्वाम्लो भवेद्रसः।
स कुर्याद्बहुलान् रोगान् विषकृत्य करोत्यपि ॥

(भावप्रकाश)

नम्र विनंति

अशा प्रकारच्या ह्या वरील समस्या आयुर्वेद अन्वेषकांपुढें निराकरणार्थ मांडल्या आहेत. कांहीं आयुर्वेदशास्त्रज्ञ दोन्ही शास्त्रांच्या मूळ सिद्धांताच्य बैठकीचा अभ्यास करून सामंजस्यपूर्वक त्यांचा मेळ आणि समन्वय घालण्याचा प्रयत्न करतात. परंतु जे विद्वान् वैद्य आयुर्वेदाचे अनन्यभक्त आहेत त्यांनींच विशेषेंकरून वरील समस्यांचें शास्त्रीय निराकरण करावें अशी नम्र विनंति आहे. आयुर्वेदोन्नतीच्य कार्यांत बाध आणणारी कोणतीहि समस्या सर्वोच्य प्रयत्नांनीं सोडविणें परमावश्यक आहे. अन्यथा, शुद्ध अगर मिश्र पक्षवादी विद्वानांना अशल्या प्रकारच्य समस्या निर्णायक स्वरूपांत न सोडवितां आपल्य पक्षाचें समर्थन प्रभावशाली करणें ही गोष्ट अशक्य प्राय होऊन बसतें. कारण कीं, आयुर्वेदाची वैज्ञानिक ताच जर नष्ट होणार असेल तर वरील दोन्हीं पक्षांचें अस्तित्व असूननसून सारखेंच होईल. आणि म्हणून ह्याच हेतुस्तव वरील समस्या सुज्ञ वैद्य- समाजाच्या विचारार्थ येथें उपस्थित केल्या आहेत

उपयुक्त ॲलोपॅथिक औषधें
लेखकः-डॉ. प्र. शं. गुप्ते, एम्. बी. बी. एस्.
किंमत १॥ रु.
वैद्यक ग्रंथ भांडार, नासिक

रोगोत्पादक साहसाचा सत्कार

नागपूर येथें श्री. आनंदराव हल्याळकर यांनीं १३० तास(५ दिवसरात्रीं व अधिक १० तास)सतत सायकल चालविण्याचे साहस पार पाडलें, याबद्दल तेथील समाजकल्याणखात्याचे मंत्री श्री.दीनदयाळ गुप्ता यांनीं हल्याळकरांचे गळयांत हार घालून अभिनंदन केलें, मानाचा नारळ अर्पण केला व स्वतःचे २५१ रुपये बक्षीस दिले.

गरीब शाळामास्तराचें साहस

श्री. हल्याळकरांचा जन्म कारवार जिल्ह्यांत हल्याळ गांवीं १९३३ सालीं गरीब शेतकरी कुटुंबांत झाला. प्राथमिक शिक्षण पूर्ण होतांच ते शाळामास्तर झाले. १९५२ सालीं ऑलिंपिक क्रीडांगणावर एका पोलिश महिलेनें १२५ तास सायकल चालविल्याचें वृत्त वाचून ते हे साहस करण्यास प्रवृत्त झाले.

हें क्षयरोगाचें कारण

आयुर्वेदानें साहस हें क्षयरोगाला अनुकूल भूमि निर्माण करणारें कारण स्पष्ट दिलें आहे. व्यायाम-जागराध्व स्त्री-हास्य-भाष्यादि-साहसम् । गजं सिंह इवाकर्षन् भजन् अति विनश्यति । या आयुर्वेद वचनाचा विचार करून वैद्यमंडळीनीं अशा घटनेकडे पहावें व आपल्या परिचयांत असलेल्या लोकांना योग्य वैचारिक मार्गदर्शन करावें. श्री. हल्याळकर यांचें प्रकृतिमानहि पुढील उतार वयांत कसें राहील याकडेहि त्यांनीं लक्ष पुरवावें.

संगीतकला विद्यापीठ

मध्यप्रदेश विधिमंडळांत संगीतकला विद्यापीठ बिल चर्चेसाठीं आले असतां आमदार अवारी म्हणाले – तुम्ही संगीत व कला यांचीं महाविद्यालयें काढून या विद्यापीठाला जोडणार आहांत. मासे पकडणें, कपडे शिवणें, हजामत करणें याहि कलाच आहेत. यांचीं कॉलेजें काढून या विद्यापीठाला कां जोडंत नाहीं ? केवळ मनोरंजनासाठीं विद्यापीठें स्थापन करून तुम्ही लता निर्माण करणार आहांत कीं लक्ष्मीबाई ? सरकारचा पैसा केवळ नाच-गाण्यावर खर्च करणें युक्त आहे काय ?

मधुरवाणी

चिकित्सा, प्रखर बुद्धिमत्ता, स्वार्थत्याग, ध्येयनिष्ठा, चिकाटी इ. अनेक गुण महाराष्ट्राच्या अंगीं मूळापासून आहेत.

पण महाराष्ट्रास मधुर वाणी वापरणें जमत नाहीं. त्याच्या वाणींत कडवटपणा जरूर नसतांना येतो. त्यामुळें महाराष्ट्र व्यापारांत मागें राहिला आहे. गिऱ्हाईक नेहमीं बरोबर असतें [कस्टमर ईज आल्वेज राईट] हें धोरण अंगिकारलें, तरच व्यापारांत सिद्धि प्राप्त होईल.

महाराष्ट्रीयांत तडजोडवृत्तीचा अभाव दिसून येतो. त्यास प्रत्येक प्रश्न ध्येयवादाचा वाटत असतो. प्रत्येक प्रश्नांत दोन भाग असतात. एक ध्येयवादाचा व दुसरा तपशीलाचा. ध्येयवाद जरूर पाहिजे, पण तपशीलाच्या भागांत फेरफार करून तडजोड घडवून आणण्यास महाराष्ट्रानें शिकावें. —मनुभाई देसाई

पवित्र
नेपाळ कस्तुरी रु. ६० तोला
हिमालय कस्तुरी रु. ५८ तो.
तिब्बत कस्तुरी रु.५५तोला.
शुद्ध शिलाजित १ रु., २॥ व ५ रु. तोळा
लिहाः—नेपाळ हिमालय कस्तुरी भंडार
जि. नं. ३।२०००।२००१ ललितपूर—नेपाळ

‘ आयुर्वेदाच्या सेवेसाठीं तयार ’

शास्त्रोक्त पद्धतीनें तयार झालेलीं सर्व-प्रकारचीं सिद्धौषधें [गुटीका, मात्रा, रसायनें, आसवें वगैरे] व हिंवतापांवर अत्युत्तम ठरलेलें हिंवतापांतक, मिळण्याचें एकच ठिकाण.

सविस्तर माहितीकरितां लिहाः—

आयुर्वेदीय औषधी भांडार
२८ शुक्रवार, तुळशीबागेची पिछाडी, पुणें २

२०० वर्षांचीं जुनीं आयुर्वेदिक रुग्णचिकित्सा-पत्रकें

वाई येथील वैद्य घराण्यांतील जुन्या कागदपत्रांचीं बाडें

(लेखकः—वै. प्रतापकुमार वैद्य, मुंबई २)

छत्रपति शिवाजीराजापासून तों छत्रपति शाहूराजापर्यंत सातारा हें शहर राजकीय महत्त्वाचें केंद्र होतें. सुमारें २५० वर्षांपूर्वी 'वैद्य' आडनांवाचें एक घराणें सातान्यास येऊन स्थायिक झालें. त्यांच्या उपलब्ध वंशवृक्षांतील मूळ पुरुषाचें नांव रामभट्ट असून तें घराणें रत्नागिरी जिल्ह्यांतील त्यांचें सइतवाडे गांव सोडून सातान्यास येऊन राहिले.

वैद्यांचें पूर्वीचें आडनांव

या घराण्याचें मूळचें आडनांव 'गाडगीळ' असें आहे; परंतु यांच्या पूर्वजांनीं आयुर्वेदशास्त्राचें अध्ययन करून वैद्यक व्यवसायाला जेव्हांपासून सुरुवात केली, तेव्हांपासून लोक त्यांना 'वैद्य' म्हणून संबोधूं लागले व त्यांनींहि आपलें आडनांव 'वैद्य' असेंच कायम केलें. हें वैद्य घराणें सधन होतें. यांची जी शाखा सातान्यास येऊन स्थायिक होऊन वैद्यकी करूं लागली, त्यांतील कांहीं पुरुषांना विद्वत्तेमुळें छत्रपतीच्या दरबारीं 'राज-वैद्य' होण्याचा मान मिळाला, व तेव्हांपासून ते महाराष्ट्रीय राजकारणांत चमकूं लागले. त्यांचा पतपेढीचा व सावकारीचाहि धंदा होता. छत्रपति शाहूच्या निधनानंतर वैद्य-घराण्याच्या वैभवास ओहोटी लागली, तथापि त्यांच्या घराण्याचा उल्लेख पुण्याच्या पेशवे दप्तरीं अधूनमधून त्याचें तदनंतरहि आढळतें.

मूळ हस्तलिखित कागदपत्र

ह्या वैद्य घराण्याचे मूळ हस्तलिखित कागदपत्र जमा करून, त्यांचे घराण्यांतील नुकतेच दिवंगत झालेले श्री. शंकरराव लक्ष्मण वैद्य, (वास्तव्य पुणें), यांनीं इ. स. १९४४ सालीं पहिलें प्रकाशन छापून प्रसिद्ध केलें. त्यानंतर बाळबोध लिपींत असलेल्या कागदपत्रांचीं दोन प्रकाशनें त्यांनीं प्रसिद्ध केलीं.

मोडीलिपींतील कागदपत्र

ह्या कागदपत्रांचा बराचसा भाग मोडी लिपी आहे. उपरोक्त स्वर्गीय श्री. शंकरराव वैद्य यां प्रसिद्ध केलेल्या माहितीप्रमाणें ह्या कागदपत्रांत ९० टक्के कागदपत्र पतपेढीचे व सावकारी व्यवहा संबंधींचे आहेत, परंतु अवशिष्ट कागदपत्रांत त्यांच घराण्यांतील वैद्यकी करीत असलेल्या निरनिराळ पूर्वजांनीं लिहिलेलीं आयुर्वेदिक रुग्णचिकित्सा-पत्र आहेत. हीं गेल्या २०० वर्षांच्या कालावधींत असून त्यांचीं ५० चें एक अशीं ५५ बंडलें आहे आपल्या वैद्यक व्यवसायींच्या दृष्टीनें त्या कागदपत्रां विशेष महत्त्व आहे. हत्ती, उंट यांच्या सामान्य रोग चिकित्सा केल्याचींहि चिकित्सापत्रकें त्यांत आहे कै. श्री. शंकरराव वैद्य यांनीं १९४४ सालीं दिलेल माहितीप्रमाणें हीं जनावरांचीं चिकित्सापत्रकें त्यां त्यांचे एक नातलग श्री. भाऊराव वैद्य रा. इस्लाम यांचे स्वाधीन केल्याचें समजतें, व त्यांचें एक स्वत पुस्तक छापून प्रसिद्ध होईल असेंहि त्यांनीं सांगित होतें. श्री. शंकरराव वैद्य यांच्या १९५४ मधी सांगण्याप्रमाणें त्या वेळपर्यंत तें पुस्तक छापून प्रसि झालें नव्हतें व माझ्या माहितीप्रमाणें अद्यापहि पुस्तक छापून प्रसिद्ध झालेलें नाहीं.

२७०० चिकित्सापत्रकें

स्वर्गस्थ श्री. वैद्य यांच्या सांगण्याप्रम २७०० चिकित्सापत्रकें उपलब्ध आहेत व ह्या चिकित्सापत्रकांचें निरीक्षण होणें अगत्याचें आहे, गोष्ट लक्षांत ठेवण्यासारखी आहे. हे सर्व कागद श्री. वैद्य यांच्या पुणें येथें राहात असलेल्या त्यांच वारसाकडेच असतील.

वैद्यकीय महत्त्वाची माहिती

माझी अशी समजूत आहे कीं, ह्या चिकित

तकांत व कागदांत चिकित्सेखेरीज इतरहि वैद्यकीय इत्त्वाची माहिती मिळणें शक्य आहे. तसेंच गेल्या ०० वर्षांत महाराष्ट्रांत प्रचलित असलेल्या वैद्यक त्राकित्सेसंबंधीं उपयुक्त व मननीय अशी माहितीहि ापणांस मिळूं शकेल. त्या काळांतील अनुभविक ोषधी योग, रसायनें, भस्में, आसवें, अरिष्टें इतर औषधें ह्यासंबंधीं चिकित्सेच्या दृष्टीनें तुल- ात्मक अशी माहितीहि आपणांस कळूं शकेल. तील औषधी योग हे केवळ ग्रंथोक्त आहेत अगर ग्र घराण्यानीं त्यांत आपल्या स्वानुभवानें कांहीं बदल केले आहेत हीहि माहिती समजेल. गेल्या ०० वर्षांतील हा कागदपत्रांचा संग्रह असल्यामुळें ांचें प्रसिद्धीकरण हें जनतेच्या दृष्टीनें तसेंच वैद्यक वसायाचे दृष्टीनें निःसंशय उपयुक्त व मार्गदर्श- त्मक ठरेल.

पुराणवस्तु-संशोधन खातें

हे सर्व कागदपत्र कै. श्री. वैद्य यांच्या पुण्यास हात असलेल्या वारसांपासून मिळूं शकतील असें श वाटतें; परन्तु हे कागदपत्र एखाद्या अयोग्य व जबाबदार व्यक्तीच्या ताब्यांत न जातां ते एखाद्या बाबदार संस्थेच्या ताब्यांत येतील याची दक्षता ापण घेतली पाहिजे. अशा परिस्थितींत मला असें टतें कीं, मुंबई सरकारच्या पुराण-वस्तु-संशोधन संरक्षण-खात्यानें ह्या गोष्टींत लक्ष घालून व हें र्य हातीं घेऊन सदर कागदपत्र आपल्या ताब्यांत ले व ते आयुर्वेद विद्वानांच्या मदतीनें नीट संक- त करून प्रसिद्ध करण्याची व्यवस्था केली तर शेष चांगलें होईल. परन्तु जर ह्या खात्याला ही व हातीं घेणें शक्य नसेल तर ती आयुर्वेद संशोधन र्डानें [अध्यक्षः- श्री. नानासाहेब पुराणिक यांनीं] तीं घ्यावी. बोर्डाजवळ संशोधन-कार्य करणारा ग्रसंच आहेच, व तो हें कार्य उत्तम रीतीनें हाताळूं केल. त्यांच्यांत मोडी व मराठी ह्या दोन्हीहि लिप्या ाणणारे लोक आहेतच. हें आयुर्वेदिक संशोधन रूपाचें कार्य असल्यामुळें बोर्ड हें जरूर करूं शकेल.

म. प्रां. वैद्यमंडळास सूचना

पण जरकरितां वरील दोन्हीहि संस्था हें कार्य कोणत्याहि कारणामुळें हातीं घेऊं शकत नसल्या तर तें कार्य महाराष्ट्र प्रांतीय वैद्य मंडळानें हातीं घ्यावें. ह्या कार्याकरितां वैद्य मंडळानें एक स्वतंत्र उपसमिति नेमावी व तिच्यामार्फत हें कार्य करावें. सरकारकडे योग्य मार्गांनीं मागणी केल्यास ह्या कार्यास साधारणतः २५०० रुपयापर्यंत आर्थिक मदतहि मिळूं शकेल. अशी मदत मिळाल्यास ही उपसमिति कांहीं लेखक नेमून सर्व कागदपत्रांच्या नकला करून घेऊं शकेल व त्या विद्वान् व अनुभवी वैद्यांकडे पाठवून त्यांतील प्रसिद्धीकरणयोग्य असे कागदपत्र निवडून घेऊं शकेल.

कागद कसे हातीं आले ?

कै. श्री. शंकरराव वैद्य हे वाईस राहात असतां एकदां असें घडलें कीं, ह्या कागदपत्रांपैकीं एक पुडकें त्यांच्या घरांतील एका बाईनें शेजारीण बाईस शेगडी पेटविण्याकरितां दिलें; परंतु ही गोष्ट श्री. शंकररावाच्यां लागलीच नजरेस आल्यानें त्यांनीं ते कागद पाहिले, व ते जुन्या दप्तरांतील असल्याचें आढळल्यामुळें ठेवून दिले. त्यांनीं त्यांच्या वृद्धावस्थेंतहि ह्या कागदपत्रांचें वाचन करून त्यांचें संकलनकार्य स्वयंप्रेरणेनें चालू केलें होतें, परंतु त्यांचें हें कार्य पुरें होण्यापूर्वींच मृत्यूनें त्यांच्यावर घाला घातला, व हें कार्य तसेंच स्थगित राहिलें. आणि म्हणून मला असें वाटतें कीं, ह्या कागदपत्रांचा उपेक्षेनें वा दैववशात् नाश होण्या- पूर्वींच सरकारनें ते आपल्या ताब्यात घ्यावेत व सरकार तसें घेत नसल्यास एखाद्या जबाबदार संस्थेनें ते आपल्या ताब्यांत घ्यावेत. कांहींहि असलें तरी ते सर्व कागदपत्र सुरक्षित ठेवणें जरूर आहे.

अन्य वैद्य-कुटुंबांना विनंति

महाराष्ट्रांतहि अशा प्रकारचे जुने कागदपत्र निरनिराळ्या कुटुंबांतून असणें शक्य आहे. तेव्हां जुन्या घराण्यांनीं आपल्या जवळील रेकॉर्ड पाहून अशा प्रकारचे कांहीं वैद्यकीय माहितीचे कागदपत्र असल्यास त्यांच्या फायदा नवीन आयुर्वेदीय पिढीस

करून द्यावा. असे रेकॉर्ड सांपडल्यास तें त्यांनीं ा जबाबदार संस्थेच्या ताब्यांत द्यावें व त्या नें त्या कागदपत्रांचें व्यवस्थित संकलन करून महत्वाच्या कागदपत्रांना जाहीर प्रसिद्धी . वस्तुतः मला तर असें वाटतें कीं, येत्या दनगर येथील म. प्रां. वैद्य संमेलनानें ह्या करितां एक स्वतंत्र कायमची उपसमिति नेमावी नें अशा प्रकारचे जुने कागदपत्र जमविणें, त्यांचें संकलन करणें व त्यांतील महत्त्वाच्या कागद-ना प्रसिद्धी देणें हें कार्य सतत चालूं ठेवावें.

निरोगीपणासाठीं औषधें

आयुर्वेदाच्या प्रचाराच्या दृष्टीनें प्राप्तसंधीचा ोग करून घ्यावा म्हणून नशिराबादचे वैद्य त्रयशास्त्री जळूकर यांनीं पूर्वखानदेशांत यावल सिम्कॉक्स हायस्कूलच्या गणेशोत्सवानिमित्त तीचें आरोग्य' या विषयावर विद्यार्थी, शिक्षक नागरिक यांच्या सभेंत व्याख्यान दिलें. 'आतां ात औषधालयें वा रुग्णालयें यांची संख्या वाढवि-ेक्षां 'आरोग्यालयें' अथवा आरोग्यशाळा यांची ा वाढविण्याकडे सरकारनें लक्ष द्यावयास हवें. वैद्यांनींहि आपणाकडे येणाऱ्या रोग्यांचे रोग रें करावेतच, पण पुनः ती व्यक्ती कोणत्याहि स बळी पडूं नये या दृष्टीनें तिला आहार-विहां-ची जाणीव करून घ्यावी. निरोगीपणा कायम ासाठींसुद्धां औषधें घ्यावयाचीं असतात, हें ेऊन तसा प्रयत्न करावा' असें सांगितलें.

स्वास्थ्यरक्षणासाठीं उपयुक्त उपचार

गणेशपूजेंतील अर्घ्य, पाद्य, पंचामृतस्नान, नैवेद्य आणि देवाला वाहावयाची शमी, दूर्वा, ीपत्र व फुलें हीं आमच्या स्वास्थ्यरक्षणास उप-आहेत. धर्मशास्त्रकारांनीं आरोग्यशास्त्रानुकूलच र्व गोष्टी आणि उपोषणादि व्रतें व त्यांची ा करतांना शरीर-मनाच्या आरोग्याशीं सुसंगत र व दानहोमादि कृत्यें सांगितलीं आहेत, असें ादन केलें. 'शतायुर्वै पुरुषः' हा शास्त्रीय आदेश सिद्धीस नेण्यासाठींच आयुर्वेदाचा जन्म असून त्याबाबतींत आयुर्वेदाइतका सूक्ष्म व सखोल विचार कोणत्याहि पाश्चात्यशास्त्रानें केलेला नाहीं. आयुर्वेदाचा पूर्वकाळ आणि प्रगत पाश्चात्य वैद्यकाचा काळ यांची तुलना करून भारतीयांची घटती आयु-मर्यादा आणि वाढती रोगसंख्या हीच सुधारलेल्या पाश्चात्य वैद्यकाची दीडशें वर्षांतील फलश्रुति होय, असें सांगितलें.

आयुर्वेदीय अभ्यासपद्धति

अकोला येथील राधाकृष्ण तोष्णीवाल आयुर्वेद महाविद्यालयांत वै. जळूकरशास्त्री यांची गणेशोत्सवानिमित्त विद्यार्थ्यांपुढें 'आयुर्वेदीय अभ्यास-पद्धति' या विषयावर आणि विद्यार्थी, अध्यापक व नागरिकांचे सभेंत 'गणपतीचें आरोग्य' या विषयावर अशीं दोन व्याख्यानें झालीं.

कोणत्याहि सुशिक्षित स्त्री-पुरुषांस
डॉक्टर होतां येते
सुशिक्षित स्त्री-पुरुषांनीं शिकण्याजोगा
मानाचा धंदा

होमिओपॅथिक, बायोकेमिक, क्रोमोपॅथिक, इंजेक्शन ट्रेनिंग व फॅमिली प्लॅनिंग शिक्षणाचें वर्ग व इतर चिकित्सा-पद्धतींमधील वैशिष्ट्यें अल्प-वेळांत व अल्पखर्चांत शिकवून कोठेहि डॉ. चा धंदा मानानें करतां येईल, असें शिक्षण दिलें जातें कंपौन्डर, नर्सेस, शिक्षक, शिक्षिका व इतर सुशिक्षित व निरुद्योगी लोकांना हा कोर्स उत्तम आहे. डिप्लोमाशिवाय प्रॅक्टीस करणारांना प्रायव्हेट परीक्षेस बसण्याची सोय आहे. कोर्स पूर्ण झाल्यावर सरकारमान्य होमिओपॅथिक कॉलेजचा डिप्लोमा मिळेल. आजपर्यंत शेकडों लोकांनीं हा कोर्स पूर्ण करून आपलें जीवन स्वावलंबी बनविलें आहे. २ आण्यांची तिकिटें पाठवून माहितीपत्रक मागवा.

म. प्र. होमिओपॅथिक ट्रेनिंग इन्स्टिटयूट
C/o. डॉ. नाळमवार, ३६२ सुदाम-रोड.
नवीन दत्तमंदिरासमोर, इतवारी, नागपूर (म.प्र.)

गणेशोत्सवांत वैद्यकीय व्याख्यानें

अकोला [वऱ्हाड] येथील राधाकिसन तोष्णीवाल आयुर्वेद महाविद्यालय गणेशोत्सवांतील कार्यक्रमांत नागपुरंचे वै. वेणीमाधवशास्त्री जोशी व वैद्यराज अष्टीकरशास्त्री, नाशिकचे वै. वि. म. गोगटे व वैद्य दत्तात्रेयशास्त्री जळूकर यांचीं व्याख्यानें झालीं. प्रत्येक व्यक्तींचीं दोन दोन व्याख्यानें झालीं. एक विद्यार्थ्यांसाठीं व दुसरें जनतेसाठीं.

वैद्यराज वेणीमाधवशास्त्री यांनीं विद्यार्थ्यांना ‘ हिरड्याचा अभ्यास कसा करावा ’ हें सांगितलें व जनतेसाठीं ‘ हेमंत ऋतूंतील सोपे रसायनप्रयोग ’ समजावून दिलें. विद्यार्थ्यांसाठीं ‘ आयुर्वेदीय रसायनांचें समालोचन ’ व जनतेसाठीं ‘ शारीरिक शिक्षणाचा दृष्टिकोन ’ याप्रमाणें वै. गोगटे यांच्या व्याख्यानाचे विषय होते.

आंवळा + आंबा

म्हैसूर येथील मध्यवर्ति अन्नविषयक तंत्रविद्यासंस्थेंत चाललेल्या संशोधनांतून अेक नवा खाद्य पदार्थ उपलब्ध झाला आहे. आवळा व आंबा यांचा रस व लगदा अेकजीव करून हा नवा संरक्षक खाद्य पदार्थ तयार होतो. या पदार्थांत कॅरोटीन आणि सी जीवनसत्व भरपूर प्रमाणांत असून रंग, रूप व स्वाद या दृष्टीनें तो उत्तम आहे. साठवणींत त्यांतील पोषक द्रव्यें कमी होतात. पण तीं टिकवून राहण्याच्या दृष्टीनें प्रयोग चालू आहेत.

हत्तीपायरोग नियंत्रण

भारत सरकारनें हत्तीपायरोगावर नियंत्रण कार्यासाठीं १३ राज्यांत मिळून आतांपर्यंत सामुग्री इत्यादि द्वारें २४.५७ लक्ष रुपये मंजूर केले आहेत.

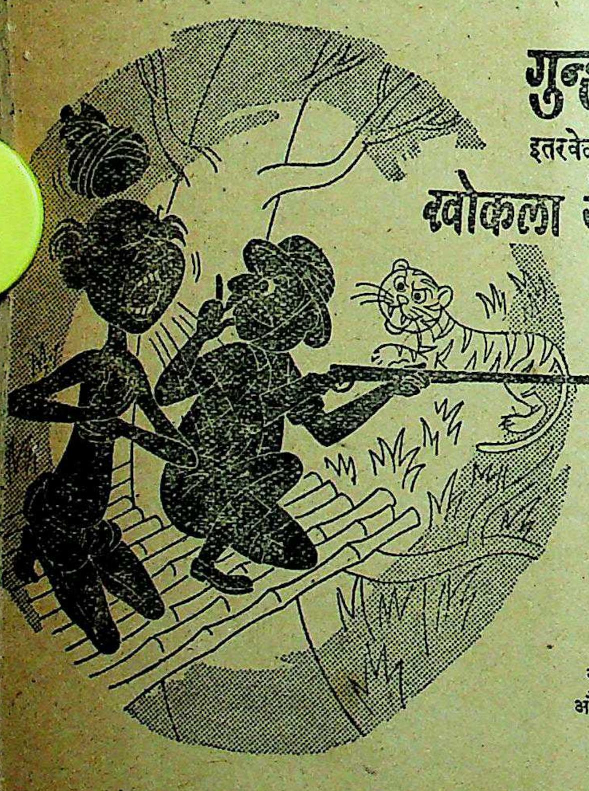

KASPHO
COUGH TABLETS

गुन्हा!
इतरवेळीं नसला तरी अशा वेळीं
खोकला येणें म्हणजे गुन्हाच होय.

त्रासदायक खोकला थांबविण्यासाठीं कास्फो घेणें योग्य ठरेल. खोकला, सर्दी, तसेंच घसा व छाती यांच्या विकारामुळें होणारा त्रास यापासून मुक्त होण्यासाठीं कास्फोची एक बाटली सदैव जवळ ठेवा.

कास्फो
खोकल्यावरील
औषधी गोळ्या

तयार करणार : आयुर्वेदाश्रम फार्मसी, लिमिटेड, अहमदनगर.

आयुर्वेद अध्यापक चर्चा परिषद, नासिक

आयुर्वेदाचार्य वेणीमाधवशास्त्री
यांचीं व्याख्यानें
(ता. २७।४।१९५६)

— विषय —

रोगनिदान-चिकित्सा

धातुसाम्यक्रिया चोक्ता तंत्रस्यास्य प्रयोजनम्। चिकित्सा हेंच आयुर्वेदाचें ध्येय आहे. ही चिकित्सा प्रकारची आहे. १) रोगनाशिनी २) प्रकृतिस्थापनी ३) रसायनी व ४) नैष्ठिकी. पारदसंस्कारांचे जसे धन व गुणस्थापन असे २ विभाग पडतात, त्याप्रमाणें रोगनाशिनी व प्रकृतिस्थापनी हे रुग्णचिकित्सेचे विभाग होत. व सात्त्वनिर्मितीसाठीं रसायनी आणि मोक्षप्राप्तीसाठीं नैष्ठिकी चिकित्सा असे विभाग तात. सत्व-सात्त्व निर्माण करून 'सतां उपासनं' (च.शा.१।१४३) ह्या स्थितीला येऊन मनाचें समाधान वयाचें हा जीवनाचा मार्ग आयुर्वेदानें सांगितला आहे. ह्याचा ज़ास्त विस्तार येथें करीत नाहीं.

आरोग्य व विकार यांचें संवेदनात्मक रूप

इंद्रियें हीं बाह्यगामी असतात, त्यांची विषयाकडे प्रवृत्ति असते. हीं इंद्रियें रोग निर्माण झाल्यावर आंत (शरीरांत) खेचलीं जातात. उदाहरणार्थ, एखादें गळूं झाल्यास त्या व्यक्तीचें बाह्य विषयांकडे लागत नाहीं. झालेल्या व्याधीकडेच त्याचें मन खेचलें जातें. दुःखदायक अशा संवेदना त्याला होत तात. पण विकृति नसतांना जर इंद्रियें आंत घेतलीं व चिंत्य, विचार्य, इ. मनाचे विषयाकडे तीं झालीं, मन व आत्मा यांचा संयोग झाला तर मनाचा सत्वगुण वाढतो. मन शरीरांत स्थिर झालें तें जितकें ज्यास्त प्रमाणांत स्थिर होईल तितकें प्रमाणांत सुखसंवेदनाच निर्माण होतात. व त्या ोग्य निर्माण करतात.

निदान–चिन्हांनीं चिकित्सेचा बोध घ्यावा

रोगांचें निदान करतांना नेहमीं चिन्हांचा अर्थ लावला पाहिजे. व त्या अर्थावरून कोणती चिकित्सा हें पाहिलें पाहिजे. आपल्या शास्त्रांत जीं चिन्हें सांगितलीं जातात त्यांतच उपाय सुचविलेले असतात. च्या अर्थावरूनच चिकित्सा सूचित केली जाते. उदा. वांतीमध्यें जर कफ पडत असेल, अन्न पडत तर त्याचा अर्थ शरिराला कांहीं बाहेर टाकावयाचें आहे. आंत दोषसंचय आहे, अशावेळीं शरिराला टाकायला आपण मदतच केली पाहिजे. पण त्याच वांत्या कोरड्या येत असतील तर त्याचा अर्थ शरीरांत फेकून द्यायला कांहीं नाहीं. केवळ तेथें क्षोभ आहे. तेथें वातशमन चिकित्साच करावयाला पाहिजे. चिन्हें कोणत्या रोगाचीं आहेत यावरहि चिकित्सा अवलंबून असते. ओकारींत स्थानसंश्रय कोठें उदरांत पण कोणत्या बाजूला? कोणत्या जातीचा रोग आहे? आमाशय हेंच जर वांतीचें स्थान असेल रील उपाय लागूं पडतील. ज्या स्थानीं वातप्रकोप असेल तेथील वातशमन केलें पाहिजे. उदरामध्यें ल्यास मधुर रेचन द्यावें लागेल. विकारांचा अर्थ काय? त्या खोडी आहेत? किंवा तोच विकार आहे गोष्टी पाहून रोगाची चिकित्सा करावी.

स्नेहन स्वेदन केव्हां हवें ?

चिकित्सा करतांना दोषांची स्थिति पहावी लागते. कफभूयिष्ठ छर्दीला शोधन–चिकित्साच पाहिजे. त्सेच्या वेळीं शोधनाचा विचार अवश्य डोळ्यापुढें हवा. त्याकरितां दोष सुटे करावयाला पाहिजेत. दोष सुटे केव्हां करावयाचे हेंहि कळावयाला पाहिजे. उदा. [illegible] जर वांती होत असेल तर तेव्ह

ोष चलच असतात, त्यावेळीं स्नेहन--स्वेदनाची आवश्यकता नसते. पण जेव्हां आमाशयांत खूप दोष ाहेत पण चल मात्र नाहींत अशावेळीं स्नेहन–स्वेदनाची आवश्यकता असते. हल्लीं आपण केव्हांहि रेचक ्तो. स्नेहन, स्वेदन करीत नाहीं. पण तसें करूं नये. सद्यः स्नेह द्यावा, घृत प्यावयाला द्यावें. विचारणा-नेह, भाताबरोबर खूप तूप+सैंधव घालून द्यावें. अभ्यंग करून घाम काढावा व नंतर रेचक द्यावें. कर्मांत-मी इतकें तरी करावें म्हणजे शरीरावर कोठचाहि अनिष्ट परिणाम होणार नाहीं.

चिकित्साद्रव्याचे सतर्पणकारी व अपतर्पणकारी, असें वर्गीकरण

चिकित्सेचें वेळीं नेहमीं वर्गीकरण लक्षांत ठेवावें. जसें शमन, शोधन. तसेंच हा रोग संतर्पणजन्य आहे केंवा अपतर्पणजन्य आहे ? ह्याकरितां कारणें लक्षांत घ्यावींत . व नेमकी त्याउलट चिकित्सा करावी. जसें, बृंहणोत्थ व्याधी अपतर्पणानें जाईल. न बृंहयेत् लंघनीयान् बृंह्यास्तु मृदु लंघयेत्। हें सूत्र डोळ्यापुढें ठेवावें. औषधी-गुणकर्मांचा अभ्यास करतांना हीच दृष्टि ठेवावी. हरीतकी ही बृंहणजन्य ोग्याला द्यावी. अशाला रसायनहि हरीतकी हेंच ठरेल. हरीतकी हें कृशाचें रसायन नाहीं. अश्विनीप्राश, यवनप्राश हीं कृशाचीं रसायनें आहेत. अर्थातच तीं स्थूलांना उपयोगी नाहींत. त्यामध्यें घृत, तैल ाहे. धातुमध्यें सुवर्ण, रौप्य, हीरक हीं कृशाचीं आहेत. व ताम्र, कासीस, जसद हीं स्थूलांचीं द्रव्यें ाहेत. स्थूलांचीं औषधें रूक्षानुपानाबरोबर द्यावीत.

द्रव्यगुणकर्मांचा सूक्ष्म अभ्यास आवश्यक

औषधाचे कार्याचे दृष्टीनें निश्चिती हवी. जसें—द्राक्षा पित्तदोषावर साक्षात् उत्कृष्ट कार्य करील, ण वातावर परंपरेनें धातुपुष्टि करून कार्य करील. लसूण भृशतीक्ष्णोष्ण आहे. तें कफाचें औषध आहे. ण त्यामधील स्नेहानें वातशमनाचेंहि कार्य होईल. एकदोष, द्विदोष, त्रिदोष—नाशक ह्यामध्यें औषधांचें र्गीकरण करावें, व मग त्यांत १] रसांच्या दृष्टीनें २] दीपन-पाचनादिकांच्या दृष्टीनें ३] विरोधी गुण-र्मांच्या दृष्टीनें असें वर्गीकरण करावें. उष्ण व तीक्ष्ण गुणाचीं अशीं दीपन–पाचन औषधें बरींच सांप-डतात. पण शीत असून दीपक-पाचक असलेल्या औषधांची आपण अवश्य नोंद ठेवली पाहिजे. व्यवहारांत लवंग उष्ण, वेलची शीत, समजतात. पण आपण खरें काय तें लक्षांत घेतलें पाहिजे. ज्यावेळीं रच्या भागांत कफनाशाचें कार्य हवें आहे, मात्र खालच्या भागांत पित्तवर्धन नको, अशावेळीं मधुर-विपाकी आलें उपयोगी पडेल. समुद्रफेस शीत असून ज्वरपाचक आहे. पित्त--प्रकृतीच्या नवज्वरावर मुद्रफेस, हिंगूळ उत्कृष्ट कार्य करतो. त्यालाच ज्वरधूमकेतु असें नांव आहे. तें हलक्या दर्जाचें द्रव्य नव्हे व स्वस्तहि आहे. प्रवाळ मिळेना तेव्हां त्याऐवजीं हें औषध वापरलें.

रडण्यावर रसधातुवर्धक प्रवाळभस्म

प्रवाळावरून आठवलें; प्रवाळ हें रसक्षीणतेवर उत्तम उपयोगी पडतें. त्याचीं उदाहरणें मुद्दाम पहाण्या-सारखीं आहेत. १] 'मला फक्त रडावेंसें वाटतें' म्हणून सांगणारे ४–५ रुग्ण मी पाहिले. त्यांचें निदान तरी कसें करणार ? त्या रुग्णांपैकीं एक २ मुलें असलेली वृद्धा होती. मुलें पाळ्या करून तिला फिरायला नेत. सूनहि सेवा करी. थोडक्यांत म्हणजे तिला दुःख होईल असें कोठचेंच कारण नव्हतें. मुद्दाम हकीकत काढावी लागते ती अशीः—- या स्त्रीचा नवरा चांगला व्यवसाय चालूं असतां अचानक वारला होता, त्यामुळें अतिशय शोकानें तिचा रसधातु क्षीण झाला होता. रसक्षीणतेनें दैन्य येतें, त्यामुळें नेहमीं रडावेंसें वाटे. ही एक उणीवच आहे. मुष्टिमैथुनजन्य शुक्रक्षीणतेमुळें सर्व धातूंचा क्षय होतो व आत्महत्येची प्रवृत्ति निर्माण होते. जगांत कांहीं आनंदच शिल्लक नाहीं, असें वाटू लागतें. [illegible] त्या दैन्यावरहि प्रवाळ उत्तम उपयोगी पडतें.

२] दुसरी एक मुलगी होती. लाडकी, सद्गुणी होती. ती एम्. ए. झाली. लग्नहि उत्तम ठिकाणीं झालें. नूनतेला कोठचाचि जागा नव्हती, पण एवढ्या आनंदांत देखील तिला रडावें अशी भावना होई. तिला क्षीणता नव्हती पण रसक्षीणता होती. प्रवाळानें तिची चिकित्सा यशस्वी झाली. रस असार व्यक्तीवर यमची चिकित्सा करावी लागते. असार धातूमध्यें क्षीण होण्याची प्रवृत्ति असतेच. अशा वेळीं प्रथम क्षीणता भरून आणावी लागते, व नंतर धातुसारत्व निर्माण करावें लागतें.

शंका– १] प्रवाळ रसक्षीणतेवर कसें दिलें ?

उत्तर– सामान्यतः असा नियम आहे कीं, जलांतील वनस्पती, प्राणी यांचें जीवन जलस्वरूपीच नून जातें. शरीरांतील रसधातु हा जलस्वरूपी आहे. प्रवाळ हें जलीय प्राण्यांचे अस्थि असल्यामुळें जल रूपी रसरक्तावर त्याचा परिणाम होतो. येथें वापरावयाचें तें चंद्र-किरण-भावित प्रवाळ.

शंका– २] प्रवाळ हा एक क्षार आहे ना ? मग रसक्षीणतेवर कसा ? उत्तर—रक्तपित्तांत कमल- नालज क्षार, अडुळश्याचा क्षार जसा वापरतात, तसेंच हें शीत स्वभावी क्षार स्वरूपी सौम्य द्रव्य वापरावें.

शंका– ३] प्रवाळ कफज मूत्रकृच्छ्रांत कसें सांगितलें ? पिजत्त मूत्रकृच्छ्रांत हवें.

उत्तर—कषायरसाचें प्रवाळ कफपित्तनाशक आहे.

शंका ४] मुलें रडकी असतात तेव्हां प्रवाळ द्यावें काय ? उत्तर—प्रथम मुलें कां रडतात हें पहावें ाचीं कारणें पहावीत. मूल चिडकें, शब्दासहिष्णु, प्रकाशासहिष्णु असल्यास प्रवाळ द्यावें.

५] चिकित्सा व उपशय यांतील फरक काय ?

उत्तर— उपशय व अनुपशय ह्या व्याधींच्या दृष्टीनें संज्ञा आहेत. व्याधीला सुखावह द्रव्यें आहार हार कोठचा होतो तें पहावें. उपशय हा चिकित्सेला मार्गदर्शक असा होतो. पहिली चिकित्सा ह्याकरतां ावी. चिकित्सा करतांना अवस्था बदलत असतात. घसरलेलें शरीर चढाला लागलें आहे हें दाखवू ारा तो उपशय. रुग्णाच्या आहार--विहारांत त्याला त्यांतल्या त्यांत कशानें बरें वाटतें हें विचारावें. रु धारणतः आहारांतून ते निवडतों कीं, ज्यामुळें रोगावर अनुकूल किंवा प्रतिकूल परिणाम होईल व त्या ींची आपण नोंद करावी. आपण उपशयाचा निदानांत उल्लेख करतो. कशानें बरें वाटतें ? कशानें त्र तो ? प्रकृति निकोप केव्हां होती ? त्यावेळीं लक्षणें कोणतीं होतीं ? हे प्रश्न विचारून कालदृष्ट्या विच रून आपल्याला चय--प्रकोप निश्चित करतां येतात. उपशय हा निदानांतील भाग आहे. निदान ठर ण्यासाठीं उपयुक्त आहे. उपशय व इतर गोष्टी चिकित्सेच्या दृष्टीनें मार्गदर्शक होतात. उपशय चिकित्सा असूनसुद्धां आम्हीं त्याला चिकित्सा न म्हणतां उपशय म्हणतो.

५) सात्म्य म्हणजे संवयीचें कीं मानवणारें ?

उत्तरः— शरीराला मानवणारें हा अर्थ योग्य. या बाबतींत मला एका तरुणाचें उदाहरण स्मर ४२–४३ सालीं एक तरुण मजकडे आला. वर्णानें लालबुंद होता. पित्तप्रकृति व रक्तसार असा हो खट खूप खाई. ती त्याला संवयच होती. संवयीला ओक--सात्म्य म्हणतात. ओक=अभ्यास. वास्तविक त्तप्रकृती व्यक्तीला तिखट सहन होऊ नये. त्या शरीराला तो रस सहज मानविणारा नाहीं. पण हळू न करून ती त्याला संवय झाली होती.

६) अभ्यासानें गोष्टी सात्म्य होतातच कां ?

उत्तरः—नेहमींच होत नाहींत. पित्तप्रकृतीला आल्यासारखीं द्रव्यें सात्म्य होतील, पण लसूणासार ति तीक्ष्णोष्ण असणारीं सात्म्य होणार नाहींत. जें कधीं संवयीनें सुद्धां सोसत नाहीं तें असात्म्य.

७) द्राक्षें परंपरेनें वातशामक कशी ?

उत्तरः—कारण स्निग्ध+उष्ण द्रव्यें हीं साक्षात् वातशामक असतात, स्निग्ध+शीत परंपरेनें वातमन करतात. (धातूंना बल देऊन वातशमन करतात) प्रत्येक द्रव्याचा दर्जा आपल्या डोळ्यासमोर हवा. त्तप्रकोप शांत करणारीं द्रव्यें कफप्रकोप करणारीं असूं नयेत. स्त्री, शेळी, गाय, म्हैस, हत्तीण इ. जे दुधाचे कार आहेत, ते त्यांच्या त्यांच्या अपत्यालाच समदोषावस्थेंत ठेवणारे असतात. इतरांच्यावर त्यांचे परिणाम येच होतील असें नाहीं. त्यांतहि पुनः दोषदृष्टि पहावीच लागते. दूध तपासून वापरावें.

८) उपशय सर्वत्र वापरावा कां ?

उत्तरः—उपशय सर्व रोगांत वापरू नये. रोग कळल्यावर त्याला उपशय कां म्हणावा ? लॅबोरॅटरीचा योग उठल्यासुटल्या करावयाचा नसतो. गूढलिंग व्याधी नसेल तर उपशय, अनुपशय पहाण्याचें कारण हीं. तो नैसर्गिक प्रवृत्तीनेंच कळतो. गूढलिंग असेल, निदान ठरलेलें नाहीं तोपर्यंत उपशयानुपशयाचा योग. निदानाकरितां तो उपयोजितो म्हणून त्याला उपशय म्हणावें. ती चिकित्सा नव्हे.

९) रुग्ण–परीक्षेचा क्रम कसा असावा ?

उत्तरः—थोडक्यांत म्हणजे दर्शन-स्पर्शन-प्रश्नैः परीक्षेताथ रोगिणम् । रोग्याला प्रथम प्रश्न न चारतां आपल्या दृष्टीनें सर्व परीक्षण करावें. त्याच्या म्हणण्यानें आपली बुद्धि दूषित होऊ देऊ नये. दर्शन; र्शनावरून जें कळेल त्याचा मेळ घालण्यासाठीं प्रश्न विचारावे.

कित्येकवेळां एकच चिन्ह दोन विरुद्ध परिस्थितींनें निर्माण होतें. उदा. झोंप. दैनंदिन व्यापारानें रीराचे घटक झिजले म्हणजे निसर्गतः झोप येते. यदा तु मनसि क्लान्ते कर्मात्मानः क्लमान्विताः । विषयेभ्यो वर्तन्ते तदा स्वपिति मानवः । (च. सू. अ. २१)

स्वाभाविक निद्रा, वातवृद्धि, कफक्षीणता ह्यावेळीं येणारी निद्रा, ही एक प्रकारची स्वाभाविक चिकित्साच य. विश्रांतीची तेथें जरूर आहे. निद्रेची संप्राप्ति, शरीराचे घटक क्षीण झाले, अवयव क्षीण झाले, इंद्रियें ण झालीं, मन क्लान्त झालें तेव्हां इंद्रियें विषयापासून निवृत्त होतात. मन इंद्रियांपाशीं न रहातां हृदयांत ते व मनोव्यापार बंद होतात.

१०) वातवृद्धीनें झोंप कशी येते ?

स्वाभाविकपणें इंद्रियें व मन क्लमान्वित होत असतात. याला वातवृद्धि ने म्हणतां कफक्षीणत म्हणावें, रण जेव्हां जास्त श्रम होतात, अंग दुखतें तेव्हां वातप्रकोप होतो व खरोखर त्यावेळीं झोप येत नाहीं. गुण वाढल्यावर झोंप येते. झोंपेसाठीं थोडातरी कफ अपेक्षित आहे.

११) झोंप, भूक ह्या व्याधि आहेत कीं चिकित्सा ?

उत्तरः– चिकित्सा ही आपण मुद्दाम करावयाची असते. व्याधि स्वाभाविकपणें उत्पन्न होत असतात. चिकित्सा करतो तो व्याधीवर. भूक मुद्दाम उत्पन्न करणें हा आपण एक नैसर्गिक व्याधीच उत्पन्न करणें . रात्रीं झोंप पुरी झाल्यावर पुनः सकाळीं झोंप येण्याचें कारण नाहीं. पण कित्येक लोक सकाळीं देखील पताव. त्याचें कारण ती विकृतिच आहे. त्यावेळीं झोपेची गरज नाहीं तरी ती येते. त्यावेळीं शक्ति सूनहि इंद्रियें हीं कफदुष्ट झालेलीं असतात. ह्यावेळीं खरोखर व्यायामाची इच्छा निर्माण व्हावयाला हवी. द्रियें जेव्हां स्वस्थ असतात तेव्हां शरीराकडून योग्यायोग्यतेचा विवेक करून मागणी होते.

उण्डुक हा अवयव कोणता ?

लेखकः—
विद्यार्थी चि. **सदानंद कामत**, शीव

वै. श्री. ग. वि. पुरोहित यांनीं लिहिलेल्या युर्वेदीय शारीरम् ' या पुस्तकांत ' उण्डुक ' हा व क्षुद्रान्न ज्या ठिकाणीं बृहदंत्राला मिळतें, त्या णीं दाखविला आहे. (पान १०४ पहा)

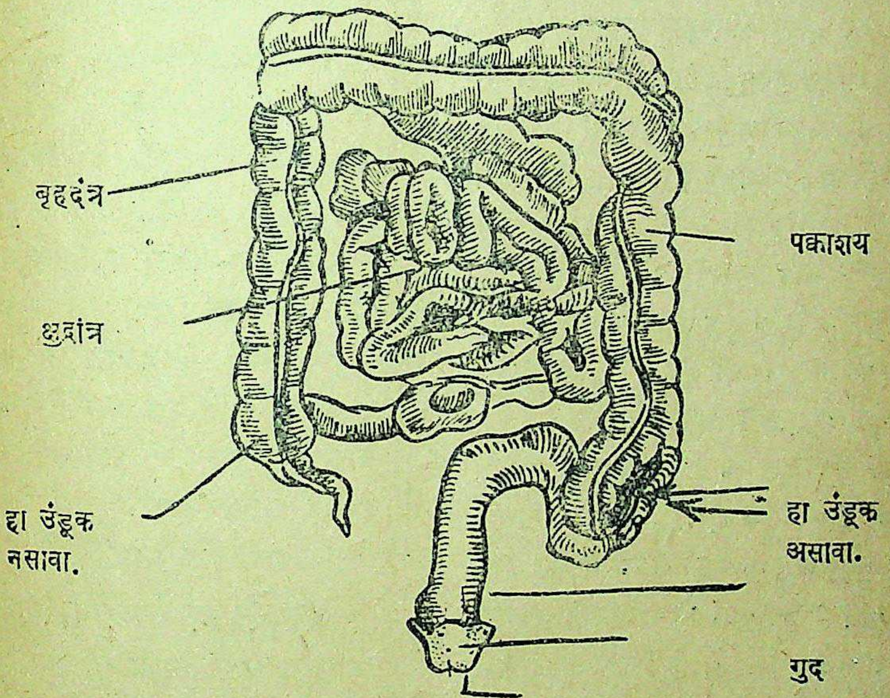

२ प्रकारचीं अनुमानें

या ठिकाणीं निर्दिष्ट केलेला हा अवयव 'उण्डुक' असें वाटतें. या अवयवाचा निर्देश सुश्रुत अ. ४-१६ या ठिकाणीं आलेला आहे. त्याच- याची उत्पत्ति सांगतांना ' शोणितकिट्टप्रभवः ' असेंहि सुश्रुताचार्यांनीं सांगितलें आहे. चार्यांनीं कोष्ठांगें सांगतांना या अवयवाचा केला आहे. (शारीर अ. २-१२)

ष्ठांगानि स्थितान्येषु हृदयं क्लोमफुफ्फुसम् ।
प्लीहोन्दुकं वृक्कौ नाभिडिम्भान्त्रबस्तयः ॥ '

सुश्रुताचार्यांनीं याचा उल्लेख पुरीषधरा कले- केलेला आहे.

" पञ्चमी पुरीषधरा नाम; याऽन्तःकोष्ठे मलम- भजते पक्वाशयस्था ॥१६॥ —सु. शा. ४

" यकृत्समंतात् कोष्ठं च तथान्त्राणि समाश्रिता ।
उण्डु (न्दु) कस्थं विभजते मलं मलधरा कला ॥ "

यावरून २ प्रकारचीं अनुमानें निघूं शकतात. [१] सुश्रुतकारांना पक्वाशय व उन्दुक हे अवयव निदान याप्रसंगीं तरी वेगळे आहेत असें दर्शवावयाचें आहे. मलधरा कलेचें अवस्थान प्रामुख्यानें पक्वाशयांत आहे व मलाचें अवस्थान प्रामुख्यानें उन्दुकांत आहे. व [२] मलविभजनाचें कार्य पक्वाशयांत होतें. उण्डुकांत नव्हे. उण्डुकांत असलेल्या मलाचें विभजन [पक्वाशयांत असलेली] मलधरा कला करते.

डल्हण टीकाकारांचें मत

वर निर्देशित केलेल्या सूत्रावर टीका करतांना डल्हण म्हणतातः— ' ... तेन कोष्ठस्थिताऽपि पुरीषस्य पक्वाशयस्थितत्वान् बाहुल्येन पक्वाशयस्था कथ्यते । एतदेव समस्तकोष्ठास्थितत्वं श्लोकेन स्पष्टीकुर्वन्नाह यकृदित्यादि । समन्तात् सर्वतो यकृतादिकं समाश्रिता उन्डु (न्दु) कस्थं मलं विभजते ।... उण्डुकग्रहणेन [illegible] गुदो गृह्यते । ”

या टीकेवरून, त्याचप्रमाणें वृद्धवाग्भटांतील पञ्चमी पुरीषधरा, सा ह्यान्त्रामपक्वाशयाश्रया, कोष्ठांतरुण्डुकस्थं मलं विभजति ' या वचनावरून उण्डुक कोष्ठाचा शेवट ज्या ठिकाणीं होतो तेथील अवयव आहे, असें अनुमान निघतें.

विभाजक वस्तु मलधरा कला

मल ही विभजित वस्तु आहे. मलधरा कला ही विभाजक वस्तु आहे. विभाजन करणारी वस्तु ही असल्याशिवाय विभजित वस्तु संभवत नाहीं. तेव्हां क्वाशय हा अवयव अगोदर व उन्दुक हा अवयव ंतर हा क्रम योग्य आहे असें वाटतें.

' प्रत्यक्ष शारीर ' भा. १ मध्यें गणनाथ सेन ांनीं निर्दिष्ट केलेला अवयव व पुरोहित यांनीं निर्दिष्ट केलेला अवयव एकच आहे असें दिसून येतें.

" उण्डुक-परिचयश्च क्वापि स्पष्टं न वर्णितः, च शोणितकिट्टप्रभव उण्डुक " -- इत्युक्तेस्तत्--वरूपावबोधः । समुन्नेयन्तु तत्स्वरूपं कथंचित् मलधराख्यकलाख्यानप्रसङ्गे ' उण्डुकस्थं विभजते मलं मलधरा कला ' इत्याभिधानात् । उण्डुको हि नाम वृहदन्त्र--आद्यो भागश्चरके ' पुरीषोण्डुक ' इति प्रतिपादितः । "

प्रत्यक्ष शारीर, उपोद्घात पृ. ७२

ाचकांचा पत्रव्यवहार—

औषधांचीं माहितीपत्रकें

परदेशी औषधी कंपन्या दर १५ दिवसानीं अव्याहत रजिस्टर्ड मेडिकल प्रॅक्टिशनर्सना आपल्या फार्मसीमधून तयार होणाऱ्या नव्या-जुन्या औषधांचीं माहितीपत्रकें (घटक, गुणदोष, पॅकिंग आदि वर्णनांचीं) बुकपोस्टानें पाठवित असतात. क्वचित् प्रसंगीं सॅंपल्सहि येतात. त्याचा परिणाम असा होतो कीं साहजिकच अशीं औषधें वापरण्याचा मोह चिकित्सकांस होतो.

भारतांत मोठमोठ्या आयुर्वेदीय कंपन्या आहेत त्यांहि नवे नवे कल्प बनवीत आहेत. सुधारणेचें पाऊल पुढे टाकित आहेत, परंतु या औषधांचे [illegible] जे चिकित्सक त्यांना कांहीं या कंपन्या नियमितपणें असें साहित्य (निरनिराळ्या कल्पांचे घटक, गुणदोष, पॅकिंग आदि वर्णनांचीं पत्रकें) पुरवीत नाहींत. यामुळें उत्तमोत्तम आयुर्वेदीय कल्प (औषधें) जशी प्रचारांत यावयास पाहिजेत तशीं येत नाहींत.

दोष देण्याचा हेतु नाहीं

तरी अशा प्रकारें साध्या गुळवेलसत्त्व-सितोपलाचूर्णापासून तों वसंतकुसुमाकरासारख्या महत्वाच्या औषधासंबंधींचीं माहितीपत्रकें छापून तीं मधूनमधून वैद्यांना पाठवावींत. त्यामुळें आयुर्वेदीय औषधाचे प्रसाराला फार मदत होईल, व वैद्यांनाहि तीं वापरावींत असें वाटेल. आज वैद्य-डॉक्टरांचे दवाखान्यांत गेल्याव प्रथम त्यांचे टेबलावर परदेशी औषधांचीं गुणवर्णनपर माहितीपत्रकें रंगीबेरंगी शाईत छापलेलीं आढळून येतात. याबद्दल कोणालाहि दोष देण्याचा हेतु नाहीं. परंतु आयुर्वेदीय कंपन्यांनीं याबाबतींत पुढाकार घेऊन असें वाङ्मय वरचेवर वैद्यांचे नजरेसमोर राहील असें करावें अवढीच विनंति आहे.

आयुर्वेदीय संस्थांना सूचना

आयुर्वेद सेवा संघाचे चालक पत्रिकेद्वारा अशा नवीन नवीन कल्पांची माहिती चिकित्सकांस पुरवीत आहेत, व प्रत्यक्ष तयारहि करीत आहेत. परंतु याहिपेक्षां अधिक सुधारणा व्हावयास पाहिजे आहे. या बाबतींत धूतपापेश्वर, आयुर्वेदाश्रम फार्मसी यासारख्या कंपन्यांनीं आधिक पुढाकार घ्यावयास पाहिजे.

वैद्य ग. भा. करंबेळकर, डी. ए. एस. एफ., धोपेश्वर

शेगांव (मध्य-प्रदेश) येथें
आयुर्वेद सेवा संघ नाशिक या संस्थेची
अनेक ग्राहकांकडून प्रशंसिलेलीं सर्व
प्रकारचीं औषधें मिळण्याचें ठिकाणः—
खेतान मेडिकल स्टोअर्स
शेगांव (म. प्र.

ी उभा आहे :

लेखक:–
वैद्य–त्र्यंबक महादेव गोगटे, अमरावती

— जिल्हा वैद्य संमेलनाच्या अध्यक्षपदाची उमेदवारी —

(मागील अंकावरून समाप्त)

रामशास्त्रींचें स्मरण

आतां, निदान जिल्हा वैद्यक संमेलनाच्या क्षपदासाठीं माझी उमेदवारी कशी ठरते हें मी ागलो. तावडतोब मला पेशव्यांच्या प्रिव्ही ळचे सर न्यायाधीश नामदार रामशास्त्री प्रभुणे आठवण झाली. पोथीच्या पुस्तकाचें तोंड न पाहिलेल्यां पण आपण वेदपठण करणारे दक्षणेसाठीं हात पुढें करण्यास लायक आहोंत वाटणाऱ्या दक्षणा लुबाडणाऱ्या मुलांमध्येंच ापेक्षां कितीतरी पटीनें लायकी असणारे राम– ीहेहि होते. पण त्यांना मनांतूनच आपली दाक्षिणे- हात पुढें करण्याची लायकी नाहीं, असें प्रामा- वाटलें. रामशास्त्रींच्या बाळपणांतील हा माझ्या डोळ्यापुढें उभा राहिला. जिल्हा वैद्य नाच्या अध्यक्षपदासाठीं उमेदवार होऊं पाह- ाला प्रांतीय अध्यक्षापेक्षां खालच्या श्रेणीची हवी हें जरी खरें, तरीपण ती आयुर्वेदीय ील लायकी सध्यांच्या काळांत ज्यांच्या अंगीं अशा व्यक्ति क्वचितच आढळांत येतील, असा दिसतो.

शुद्ध आयुर्वेदीय पद्धतीनें उपचार

या पदासाठीं उमेदवार होण्याला शुद्ध आयु- पद्धतीनें उपचार करण्याची लायकी अवश्य एका श्लोकांत म्हटल्याप्रमाणें आम, पच्यमान पक्व या अवस्था त्याला ओळखूं येत नस- तर तो वैद्य नसून त्याची गणना समाजाला ्या चोरांतच (श्वपच) केली पाहिजे. या पाहतांना आयुर्वेदीय दृष्टीनेंच त्याचे व्यवहार सलेले पाहिजेत. तो वैद्यकांतील कठीण प्रक्रि- जबाबदारी अंगावर घेण्याच्या लायकीचा नसेल, तरी पण त्याला या अवस्थांचें स्थूल निदान तरी येत असलेंच पाहिजे.

अंतर्विद्रधीवर रक्तमोक्षण

ही लायकी एक उदाहरण घेऊन आपण आधिक स्पष्ट करूं. अंतर्विद्रधीची गोष्ट आपण विचारांत घेऊं. या विद्रधीसंबंधींच्या आम, पच्यमान आणि पक्व अवस्थांचें ज्ञान असणाऱ्या वैद्याला आमावस्थेंत अस्त्रविसृतिसारखे इलाज करून रुग्णचिकित्सेंत यश मिळवितां येईल. अचिरोत्थ विद्रधीवर रक्तमोक्षणा–सारखे उपचार आयुर्वेदांत आहेत, हें आयुर्वेदाचें वैशिष्ट्य आहे. ह्या उपचारानें पुढें संभवणारी शस्त्रकर्मांची आपत्ति पुष्कळ वेळां टाळतां येणें शक्य असतें. पण पुष्कळ आयुर्वेदीयांना असल्या अवस्थांच्या निदानाची दृष्टि नसते, व त्यावरील चिकित्सा सुद्धां ध्यानींमनीं येत नाहीं. अपेंडिसायटिसमध्यें अशास्त्रीय उपचार करून त्यामुळें शस्त्रकर्माची अवस्था अपरिहार्य ठरण्यास कारणीभूत होऊन तें शस्त्रकर्महि अधिक बिकट होईल अशी शारीर घटकांची स्थिति करून सोडणारे पुष्कळ वैद्यक व्यवसायी सांपडतात.

इतक्या ऊहापोहानें हें उदाहरण लिहिण्याचें कारण असें कीं जिल्हा सम्मेलनासाठीं उमेदवारी करूं पाहणाऱ्याला आयुर्वेदीय चिकित्सेला मार्गदर्शक असणाऱ्या ज्या भिन्नभिन्न औषध, अन्न आणि विहार यांच्या अवस्था, ह्या चांगल्या अवगत पाहिजेत. नैमित्तिक रोगामध्यें स्नेहस्वेदपूर्वक शोधन–चिकित्सा, शमन–चिकित्सा, संतर्पण–चिकित्सा त्याला करतां आली पाहिजे.

कौटुंबिक जीवनांत तो आयुर्वेदीय पाहिजे

वैयक्तिक जीवनामध्यें तसेंच कौटुंबिक जीवनामध्यें तो आयुर्वेदीयच पाहिजे. एकवेळ व्यवसाया-

मध्यें प्रतिकूल परिस्थिति असल्यास तो वाग्भट-प्रासादिक राहूं शकला नाहीं तरी त्याच्यापुरतें तरी तो आयुर्वेदीयच पाहिजे. आयुर्वेदीय ग्रंथांचें पठण, चिंतन आणि वर्तन ह्या गोष्टी त्यानें इतर आन्हिक, स्तोत्रपठण यापेक्षांहि जास्त महत्व आणि वेळ देऊन केल्या पाहिजेत.

शुध्द आयुर्वेदीय अन्नोदक

इतक्या स्पष्टीकरणावरून साधारणपणें जिल्हा सम्मेलनाच्या अध्यक्षपदासाठीं उमेदवारी करणाऱ्याला आपली लायकी अजमावतां येणें शक्य आहे. थोडे अधिक लिहून स्पष्ट करावयाचें म्हणजे या उमेदवाराला एका गोष्टीची पक्की जाणीव असली पाहिजे कीं, आपल्या एकूण प्राप्तीपैकीं आपल्या स्वतःच्या अन्नोदकाला लागणाऱ्या खर्चाइतका तरी आपल्या मिळकतीचा भाग, आपण शुद्ध आयुर्वेदीय तत्त्वानुसार उपचार करूनच मिळविलेला असला पाहिजे.

उष्णतामानाचा पारा

या उमेदवारीच्या माध्यमाचें थर्मामिटर जेव्हां मी माझ्या स्वतः पुरतें लावून पाहिलें तेव्हां अपेक्षित उष्णतामानाच्या आकड्यापर्यंत पाऱ्याचा स्तंभ जेमतेमच पोहोचलेला दिसला. मला या उमेदवारीसाठींहि माझी लायकी ठसठसीतपणें असावी तशी वाटली नाहीं. त्यामुळें मी आतां तोहि हव्यास तात्पुरता सोडून दिलेला आहे.

भोंगळ प्रयत्न नसावेत

एकंदरींत पाहतां अखिल भारतीय किंवा प्रांतीय अथवा जिल्हा वैद्य सम्मेलनाच्या उमेदवारीकरितां स्वतःची उमेदवारी वैयक्तिक योग्यतेच्या दृष्टीनें वरच्या दर्जाची ठरतें हें स्पष्ट झालें. एका दृष्टीनें हें आत्मनिरीक्षण झालें हें उत्तमच झालें. प्रगतीची इच्छा असणाऱ्याला आपल्यांतील दोष आणि कमतरता हीं मनापासून ओळखून घ्यावी लागतात. त्याशिवाय यथाशुद्ध प्रयत्न होऊं शकत नाहीं. प्रगति ही ठसठशीत आणि टिकावू व्हावयाची असेल तर आणि ओजस्वी विकासाचें स्थान गांठावयाचें असेल तर भोंगळ प्रयत्न उपयोगाचा नाहीं. हें सर्व समजून घेऊन जिल्हा, प्रांत आणि अखिल भारत या वरवरच्या टप्प्यांनीं मी माझी प्रगति करण्याचा संकल्प केला आहे. मला मनाशीं ही पक्की खूणगांठ बांधावयाची आहे कीं लोकांना, जनतेला, वैद्य-वृद्धांना, माझी लायकी जरी पटत असली तरी माझ्या मनोदेवतेला साक्षी ठेवूनच मी माझ्या उमेदवारीचें लेण पुढें नेणार. माझी लायकी वाढविल्यानंतरच मी जनताजनार्दनाच्या आशीर्वादाची अपेक्षा करणार!

संस्कृति-समन्वय कीं संगम

आपली लायकी वाढवित असतांना सद्यःकालानुसार एक गोष्ट मनांत पुन्हा पुन्हा डोकावते, त्याचाहि मी माझ्या मनाशीं पुढीलप्रमाणें खुलासा करून घेतला आहे. आपल्या भारतवर्षामध्यें भारतीय संस्कृतीशीं समन्वय करण्यासाठीं का संगम होण्यासाठीं कां भेसळ होण्यासाठीं, कां त्याच्या अगदीं उलट संस्कृति नष्ट करण्यासाठीं भारतावर जें परकी संस्कृतीचें आक्रमण झालेलें आहे, होत आहे, त्याचा परिणाम आयुर्वेदीय क्षेत्रामध्येंसुद्धां झालेला आहे. परकी वैद्यकपंथ आपल्या वैद्यकावर आक्रमण करून आपल्या वैद्यकाला नामशेष करणार असेल, कदाचित् पौर्वात्य, पाश्चात्य वैद्यकाची नुसती भेसळ होणार असेल. न जाणो नद्यांच्या संगमाच्या पाण्याप्रमाणें एकाच पात्रांतून निराळे प्रवाह वाहतात तसें दृश्य दिसणार असेल. कोणी सांगावें ? सर्व वैद्यकांचा समन्वय होणार नसेल म्हणून ? कांहींहि असो. आज आयुर्वेदाशिवाय इतर वैद्यकपंथ व्यवहारांत स्वतंत्रपणें प्रचलित झालेले आहेत. तसाच आयुर्वेदसुद्धां शुद्ध स्वरूपांत प्रथम मांडला गेला पाहिजे. मांडला जाणें हें फार अवश्य आहे.

लाचारी दिसून येते

त्यादृष्टीनें पाहतां शुद्ध आयुर्वेदीय म्हणविणाऱ्यामध्येंसुद्धां अत्यंत लाचारी दिसून येत असते. पारदकल्प किंवा रसायनें यांची कहाणी आपण थोडा तपासून पाहूं. आजचा रसवैद्य पारदकल्पांच्या औषधी-

रणाच्या विहित आणि आवश्यक अशा प्रक्रियांच्या स्वपदापासून किती खालीं घसरलेला आहे हें प्रामा- कपणें आणि निष्ठेनें रसतंत्राचीं पानें निरीक्षण कर- ऱ्याला सहज दिसून येईल. आजच्या पारदयुक्त औषधांची शास्त्रमित प्रक्रियेपासून किती फारकत झाली आहे हें लक्षांत येणें कठीण नाहीं. परंतु हें ठोर सत्य जाणूनबुजून दृष्टिआड करून आज वीन विद्यार्थ्यांच्या समोर मोत्याच्या ऐवजीं शिप- याच्या खरवडीला त्या जागेवर बसवून कांहीं दिवस वयींनें ती खरवडच ध्रुवपद मानण्याची संवय करून ळूहळू मौक्तिकभस्मांच्या ऐवजीं शिंपल्याचेंच स श्रेष्ठ आदर्श बनून जात आहे.

पंचकर्मांची आजची स्थिति

तीच कथा पंचकर्मांच्या बाबतींत झाली आहे. ा शास्त्रांत बस्ति आणि रक्तस्रुति या दोन्ही मिळून र्व संपूर्ण चिकित्सेची प्रतिज्ञा केलेली आहे त्या दोहोंचा तर सध्याच्या आयुर्वेदीय क्षेत्रांत ठावठि- काणाहि नाहीं. पण स्नेहस्वेदविधिपूर्वक विधियुक्त असेंच जें विरेचन त्याच्याऐवजीं रटारट हागविणारा, णूं सूड उगविण्यासाठीं दिलेला जुलाब आज त्या ेष्ठ विरेचनचिकित्सेचा प्रतिनिधि बनला आहे, हें पाहून स्वर्गलोकांतून आपलीं थोर चरक वाग्भटा- चार्यादिक मातापितरें आपल्याकडे पाहण्याचेंहि धारिष्ट्य करीत नसतील. अशा प्रकारचें सध्यांचें त्यांचें आयुर्वेदीय वारसदार त्यांना म्हणें ॲलोपॅथी, होमिओ औषधी यांचा फारफार विटाळ असतो. वैद्यसंमेलना- च्या अध्यक्षपदाकरितां उमेदवारी करणाऱ्याला इतर वैद्यकपंथांचा विटाळ करणें हें मुख्य लायकीचें लक्षण नसून शुद्ध आयुर्वेदाचें शास्त्र आणि त्याचा व्यव- हार याची चाड त्याला आहे कीं नाहीं हें माप त्या लायकीला लावून पाहावयाचें आहे. या संबंधींची णगांठ मी माझ्या मनाशीं पक्की ठरविली.

आयुर्वेदाचें साम्राज्य वाढवावें

सद्यःकालपरिस्थितीच्या लोंढ्यामध्यें आपलें अस्तित्व कायम ठेवण्यासाठीं कोणी इतर प्रणालीचा व्यवहार जरी अवलंबिलेला असला, तरी आयुर्वेद म्हणून आपलें सत्व कायम राखल्याचा दाख देणारी चिकित्सा तो कांहीं रुग्णांत तरी करीत अस पाहिजे. जशी लायकी वाढत जाईल आणि परिस्थि अनुकूल होत जाईल तसतसा तो गनिमी काव्या आपलें आयुर्वेदाचें साम्राज्य वाढवित जाईल.

हें भूषणावह आहे

अशा प्रकारचा आयुर्वेदीय चिकित्सक निर्म होण्याची अपेक्षा करणें आजवर मुळांतच चुकी होतें. विरुद्ध वातावरणाच्या झंजावातांत कांहीं आ वेंदीयांनीं भूमिगत राहून वेष पालटून बहुरूप्या जीवन सांभाळून बाह्य व्यवहारामध्यें व्यक्ति म्हण इज्जत कायम राखून ('आत्मानं सततं रक्षेत्' न्यायानें जीवन कंठून) कांहीं वेळा बाडगेपणा आरोप सहन करून, अंतर्यामी मात्र आयुर्वेदा पीळ अधिकाधिक पक्का करीत जाऊन, संधि सा त्याप्रमाणें आयुर्वेदाचें बीज जतन केलें हें त्यां फार भूषणावह आहे. आज त्यांना दिलासा वा अशीं कांहीं आयुर्वेदीय क्षेत्रें आयुर्वेदाच्या या पुण्यभू निर्माण झालेलीं आहेत. तेथून पुन्हा हा आयुर्वेद वृक्ष आपल्या अनेक शाखोपशाखांनीं व अंगोपांग फोफावेल आणि फुलफुलांनीं बहरेल आणि त्या फळें भारतीयांना अखंड स्वास्थ्यानुवृत्ति राखण्यास आणि आवश्यक तेव्हां रोगोच्छेदनासाठीं वाप येतील अशी शक्यता निर्माण झाली आहे.

धन्वन्तरीजवळ मागणें

अशा संस्थांतून मात्र विद्यार्थ्यांना आयु शिकविणाऱ्यांनीं आयुर्वेदाच्या व्यवहारांतील आ लायकी उत्तरोत्तर वाढवित गेलें पाहिजे. आयुर्वे प्रक्रिया विद्यार्थ्यांना घाऊक प्रमाणांत दाखवि पाहिजेत. श्रीधन्वन्तरि करोत आणि अशा संस्थे कार्यकर्ते संस्थेमध्यें सौजन्य, सहकार्य आणि वि या पायरीनें या नवजात बालकांचें जतन करून वाढवोत. वैद्यवर्गानें आणि जनतेनें त्यांना [illegible] अशी विनंति आहे.

माझा श्रेष्ठ दर्जाचा आनंद

अशा संस्थांतूनच अपेक्षित असे, आर्यवैद्यकाची शुद्ध परंपरा राखणारे सुपुत्र निर्माण होतील. माझ्या सबंध आयुष्यांत मला कोणत्याहि संमेलनासाठीं वर्षीहि उमेदवार म्हणून उभे राहणें शक्य झालें नाहीं तरी, अशा संस्थांतून खऱ्या योग्यतेच्या व्यक्ति निर्माण झालेल्या मीं पाहिल्यास माझ्या डोळ्यांचें पारणें फिटेल व स्वतः अध्यक्ष होण्याच्या आनंदापेक्षाहि श्रेष्ठ दर्जाचा आनंद मला लाभेल !

रक्तपिती रुग्णांना मोफत उपचार

मुंबई राज्यांतील सर्व सरकारी रुग्णालयें व दवाखाने यांतून बाह्य रक्तपिती रुग्णाकडून इतराप्रमाणें १ आणा औषध फी घेतली जाणार नाहीं. अशा रुग्णाचें व्रणपट्टबंधनहि (ड्रेसिंग) मोफत केलें जाईल. तसेंच त्यांच्या विकृति-परीक्षणाचें वृत्तहि पॅथॉलॉजिकल रिपोर्ट] त्यांना विनामूल्य दिलें जाईल.

डेन-टॉनिक

आपल्या मुलाचे दांत कांहींहि त्रास न होतां सुखानें बाहेर पडण्यासाठीं डेन-टॉनिक द्या. १] यानें कांहींहि त्रास न होतां दांत सुखानें बाहेर पडतात. [२] पहिले दांत चांगले आले म्हणजे दुसरेहि दांत चांगले येतील. [३] या औषधानें मुलास भूक चांगली लागते. [४] खाल्लेलें चांगलें पचतें. शौचास साफ होते व झोंप चांगली येते

१५० गोळ्या बाटली किं. १-८-०

प्रमाणः- रोज सकाळीं ३, दुपारीं ३ व रात्रीं ३ गोळ्या पाण्याबरोबर देणें. सर्वत्र मिळतें.

होमिओ लॅबोरेटरी

राममोहन हायस्कूल जवळ, गिरगांव, मुंबई ४
नाशिक एजन्ट- **पेंढारकर आणि कंपनी**
मेनरोड, नासिक सिटी

शास्त्रोक्त मालिश व अस्थिसंधान चिकित्सालय

अस्थिवैद्य व मालिशतज्ञ- श्री. नंदकुमार ग. काळोखे

(डॉ. काळोखे दवाखाना, १७ फणसवाडी, मुंबई नं. २)

या चिकित्सालयांत आंयुर्वेदीय पद्धतीनें संवाहन (मालिश) व अस्थिसंधान हीं कार्यें केलीं जातात. वातविकार, बालपक्षाघात (पोलियो), मुरगळ, सूज, संधिवात, पोटदुखी, पाठदुखी, पायदुखी, यासारख्या विकारावर व शारीरिक व्यंगावर अनुभविक तेलांच्या व लेपांच्या उपायानें उपचार केले जातात. गरिबांना मोफत, व मध्यमवर्गीयांना अल्पमूल्यानें उपचार करण्याची व्यवस्था आहे. भंगलेलीं हाडें जोडण्याचें व हाडाच्या रोगावरील अन्य उपाय येथें केले जातात.

परगांवच्या लोकांनीं आपल्या विकाराची हकीकत लिहून कळविल्यास व सोबत ४ आण्यांची तिकिटें पाठविल्यास योग्य तो सल्ला लिहून पाठविला जातो.

११वें महाराष्ट्र प्रांतिक वैद्य संमेलन

अहमदनगर.

प्रांतीय वैद्यबंधूना नम्र विनंति

स, न. वि. वि.

म. प्रां. वैद्य संमेलनाचें ११वें अधिवेशन नगर येथें दिनांक ६ ते ९ नोव्हेंबर १९५६ रोजीं भरणार आहे हें आपणांस विदित झालेंच आहे. आपणाकडे स्वतः प्रत्यक्ष येऊन आपणांस विनंति करावयास हवी; परंतु प्रवासांत खर्च करणें योग्य होणार नाहीं, म्हणून आपणांस विनंति करतों कीं, आपण प्रतिनिधी शुल्क रु. ५/- व यथाशक्ति देणगी, कृपया त्वरित पुढील पत्यावर पाठवावी. संमेलनापूर्वी आपण एक दिवस अगोदर येणें कामाच्या दृष्टीनें अत्यंत अगत्याचें आहे. संमेलनाची यशस्विता आपणा सर्वांच्या सहकार्यावरच अवलंबून असल्यानें आपण सर्व प्रकारचें सहाय्य द्यावें अशी विनंति आहे.

वि. दा. एकतारे
कार्याध्यक्ष

वा. शं. वैद्य }
रा. गो. जोग }
मंत्री

वै. वा. शं. वैद्य, मंत्री म. प्रां. वैद्य संमेलन
सिटी पोलीस लाईन समोर, अहमदनगर

संमेलनाचा चित्रपट

अहमदनगर येथें भरणाऱ्या म. प्रां. वैद्य संमेलनाचा चलच्चित्रपट घेण्यांत येणार आहे अशी एक बातमी आहे.

मुंबई सरकारच्या प्रसिद्धि खात्यातर्फे बातमीपट म्हणूनहि कांहीं भाग घेतला गेल्यास आयुर्वेदीय घटनांना उत्तेजन दिल्याबद्दल जनता मुंबई मंत्रिमंडळास धन्यवादच देईल.

प्रांतांतील बहुसंख्य वैद्यवर्गानें या संमेलनास उपस्थित राहून संमेलन यशस्वी करावें अशी विनंति आहे.

ठराव पाठवावेत

अहमदनगर येथें नोव्हेंबरच्या पहिल्या अ वड्यांत भरणाऱ्या महाराष्ट्र प्रांतीय वैद्य संमेल विचारांत घेण्याकरितां वैद्यांनीं ठराव पाठवा ठराव पाठवितांना त्याला सूचक व अनुमोदक जरूरी असते व या दोघांपैकीं एकजण तरी प्र ठराव मांडण्याकरितां उपस्थित असावा लागतो.

याला कारण असें कीं, त्या विषयाचा सांगो अभ्यास जो सूचना देणारा किंवा अनुमोदक अ त्यानें केलेला असतो, आणि आक्षेपकांना उत्तरें दे सहि असें असणें ठीक असतें. दोघांपैकीं एकजर राहिला तरी त्यानें त्यावेळीं इतर वैद्यांना अ विषय समजावून सांगून आपल्या ठरावाला अनुम मिळविणें आवश्यक असतें. तरच तो ठराव विच घेतला जातो.

वैद्येतरांनींहि आपल्या सूचना पाठविणेस ह नाहीं. आवश्यक वाटल्यास विषय नियामक स त्यांचा अवश्य विचार करील.

ठराव व सूचना पाठविण्याचा पत्ताः– महाराष्ट्र प्रांतीय वैद्य मंडळ, स्थायी कार्यालय, न

स्वागत मंडळाची सभा

म. प्रां.-वैद्य संमेलनाच्या स्वागत मंड सभा अहमदनगर येथें ७ आक्टोबर १९५६ होऊन स्वागताध्यक्ष व इतर कार्य समित निवडणुकी होणार आहेत असें समजतें.

आयुर्वेदीय मासिकांचें प्रदर्श

भारतांत प्रसिद्ध होणाऱ्या सर्व आयु नियतकालिकांचें एक प्रदर्शन या संमेलनांत ठे येणार आहे. तरी सर्व आयुर्वेदीय नियतकालि प्रकाशकांनीं आपले अंक व प्रसिद्धिपत्रकें मं प्रां. वैद्य संमेलन, अहमदनगर, यांच्याकडे पाठ अशी विनंति आहे.

महाबळेश्वर मधु-केंद्र

१९५२ सालीं महाबळेश्वर येथें स्थापन झालेल्या धुमक्षिकापालन केंद्राची गेल्या ४ वर्षांत या धंद्या-बंधींच्या संशोधनाच्या दृष्टीनें बरीच वाढ झाली सून आतां त्याला अखिल भारतीय मधुकेंद्र म्हणून द्र सरकारची मान्यता मिळाली आहे.

मधाची तपासणी करून त्यांत विषारी पदार्थ सल्याचे खात्री करून घेण्याची रीत या प्रयोगशाळेनें ोधून काढली आहे. मधमाशामुळें धान्यें व फळें हरतात हें सिद्ध झालें आहे.

वैद्य देवदत्तशर्मा, पठाणकोट

पाकिस्तान निर्माण झाल्यामुळें निर्वासित होऊन ठाणकोट येथें स्थायिक झालेले वैद्य देवदत्तशर्मा हे ठाणकोट नगरपालिकेंत सभासद निवडून आले हेत व त्यांनीं नगरपालिकेतर्फे ५ आयुर्वेदीय औष-ालयें सुरू करवून त्यावर ५ वैद्यांची नेमणूक केली ाहे. भिषग्विलास, आयुर्वेद पत्रिका आदि नियत-ालिकांचे ते वाचक असल्यामुळें मराठी भाषा ांगली समजू शकतात. त्यांच्याशीं पत्रव्यवहार करून चकांनीं आपला परिचय वाढवावा व तिकडील ाहिती मिळवावी.

महाराष्ट्र प्रा. वैद्यमंडळाचें सभासद व्हा व वैद्य संघटना बलवान् करा.

उज्वल कीर्ति

आयुर्वेदीय औषधांची उज्वल कीर्ति बनविलेल्या सिद्ध औषधांच्या गुणावर आहे. औषधें गुण देणारीं असतील तर कीर्ति नेहमीं उज्वल राहील. तरी अशीं गुण देणारीं औषधें, अस्सल ताजीं व स्वच्छ घटक औषधी द्रव्यें खरेदी करण्यावर अवलंबून आहे. औषधी द्रव्यासाठीं आपण

दि ऑल इंडिया करियाणा स्टोर्स
पायधुनी, मुंबई नं. ३
फोन नं. (३१८५८) यांचेकडे मागणी करा.
युनानी व आयुर्वेदीय काष्ठादि औषधांचें
मुख्य केंद्र

काष्ठादि औषधींचीं तयार चूर्णेंहि मिळतात.
अधिक माहितीसाठीं कॅटलाग मागवा

— या निशा सर्वभूतानां —

ज्यावेळीं इतर औषधें औषधी कारखान्यांत बंदिस्त ठेवलेलीं असतात, त्यावेळीं आयुर्वेद सेवा संघाचें प्रवाळ, मातीच्या गुलाबी परळांत, शुभ्र वस्त्राच्छादित होऊन गच्चीवरची थंड हवा, व सौम्य चंद्रकिरण यांचें आकंठपान करीत असतें.

शोष पडणें, शब्दासहिष्णुता, थकवा, ग्लानि आदि रसक्षयाचीं लक्षणें घालविण्यासाठीं आपण असें चंद्रज्योत्स्नाभावित प्रवाळच वापराल व आपल्या रसक्षीण रुग्णांचा दुवा घ्याल, हें काय सांगावयास पाहिजे !

आयुर्वेद औषधी भवन, नासिक

आयुर्वेद सेवा संघाचें
परिचारक व धात्री विद्यालय, नासिक

संक्षिप्त माहितीपत्रक *

अनुरक्तः शुचिः दक्षः बुध्दिमान् परिचारकः ॥

या शिक्षणक्रमाचा उद्देश (१) समाजांत आयुर्वेदाचा दृष्टिकोन असलेले परिचारक, परिचारिका, उप-, साविका (सौतिकज्ञ) व स्वास्थ्य--रक्षकदलें निर्माण करणें (२) आयुर्वेदाचें तत्वज्ञान समाजांतील थरांपर्यंत पोहोंचविणें (३) प्रत्येक घरांत आवश्यक असें आयुर्वेदीय स्वस्थवृत्ताचें व प्रथमोपचारांचें ज्ञान त करणें (४) स्वास्थ्यानुवृत्तिकर व रोगोच्छेदकर अशा दोन्ही आयुर्वेदीय अंगांची वाढ करून रुग्णालयें, ोग्यशाला, प्रसूतिगृहें (माता--बालक मंदिरें) यांतील आयुर्वेदीय चिकित्सकांना, आयुर्वेदीय मदतनीस डशगुण चिकित्सेचा चतुर्थपाद) तयार करून देणें हा आहे. (भिषक् द्रव्याणि उपस्थाता रोगी पाद-ष्टयम् चिकित्सितस्य निर्दिष्टम् ।)

प्रवेश-योग्यता

शिक्षणः- या शिक्षणक्रमासाठीं प्रवेशार्थ किमान शिक्षणमर्यादा पुढीलप्रमाणें राहील.

(१) मातृभाषेंतील (मराठी) प्राथमिक शिक्षणाची शेवटची ईयत्ता उत्तीर्ण अगर

[२] या विद्यालयातर्फे घेतली जाणारी तत्सम प्रवेशपरीक्षा. या परीक्षेस भाषा, गणित, शास्त्र व लेखन हे विषय असतील व त्यांचें ज्ञान वरील परीक्षेंतील विषयांचे मर्यादेइतकें राहील.

[३] एस्. एस्. सी. पास [अगर नापास] विद्यार्थ्यांना प्रथम पसंत केलें जाईल.

वयः- प्रवेशासाठीं किमान वयोमर्यादा १७ वर्षे पूर्ण ही असेल.

आरोग्यः- सुदृढ व अव्यंग स्त्री-पुरुषांचीच प्रवेशासाठीं निवड केली जाईल.

अभ्यासाचे विषय

[१] आयुर्वेद परिचय [२] शारीरविज्ञान [३० तास] [३] दोषधातुमलविज्ञान [२० तास] [४] मनो-ान [१० तास] [५] आहार—निद्रा—मैथुनविचार [६] शुचिता [सफाई] [७] व्रणोपासना-यांत मोपचार, बंधविज्ञान [ड्रेसिंग], पंचकर्मांची पूर्वतयारी व उत्तरकर्म इ. गोष्टींचा समावेश राहील.] सामान्य शस्त्रयंत्रांची माहिती, [९] बाल-उपचार [१०] सामान्य ग्रामीण रोगांची व रोग-कित्सेची शास्त्रीय माहिती व घरगुती उपचार [११] २५ घरगुती औषधें तयार करण्याची व ण्याची माहिती. [१२] शुश्रूषा [१२० व्याख्यानें, १३२ प्रात्यक्षिकें] यांत पुरुषासाठीं-५० सुगम तपासणें, २५ व्रणपट्ट बांधणें इत्यादि शुश्रूषा आवश्यक राहील. [१३] सौतिकशास्त्र-स्त्रियांसाठीं-५० णींची प्रसूतिपूर्व तपासणी, १० प्रसूतीचें परीक्षण, २५ प्रसूति स्वतः करणें, घरीं जाऊन ५ बाळंतपणें , २० रुग्णास्त्रियांची व बालकांची शुश्रूषा करणें. [१४] सामान्य उपयुक्त माहिती (दक्षता)-[स्टोअरची स्था, दैनिक नोंद ठेवणें, रुग्णालयांतील शिस्त, पाळी बदलणें [देणें घेणें], स्वतःचें आरोग्य इत्यादि.

---

* दोन वर्षांच्या अभ्यासक्रमाचे आठवडावार विस्तृत माहितीपत्रक लिहून तयार करण्यांत आलें . त्यापैकीं कांहीं भाग येथें प्रसिद्ध करण्यांत येत आहे.

वर्गांतील व्याख्यानें व प्रात्यक्षिकें याशिवाय अभ्यास करतांना वर्गांतील ज्ञानाची उजळणी करणें, विशेषतः बस्तिविधि व शस्त्रकर्मांची पूर्व तयारी, रुग्णपरीक्षेची पूर्वतयारी हे विषय अधिक तयार ठेवण्यांत येतील. रुग्णाच्या घरच्या अडचणी व त्या कशा नाहींशा कराव्या, निरनिराळया परिस्थितींत प्रत्युत्पन्न-मतित्वानें काय करावयाचें ह्यावर विद्यार्थ्यांस विचार करावयास लावला जाईल.

गर्भिणीच्या घरींच बाळंतपण करावयाचें असल्यास, काय काय तयारी करावयाची, बाळासाठीं कपडे कसे करावयाचे, बालकास स्नान कसें घालावयाचें; त्याला दूध, पाणी इ. व औषधें केव्हां व कशी द्यावयाची स्वच्छता कशी ठेवावयाची या सर्व विषयांचें शिक्षण मातांना कसें द्यावयाचें हें विद्यार्थ्यांस कळलें पाहिजे.

रोज २ तास तात्विक विषयांचे (व्याख्यानरूपानें) अध्ययन व प्रात्याक्षिकासाठीं प्रसूति-विभाग, बाह्यरुग्ण विभाग, औषधी भवन व आरोग्यशाला यामधून रोज ४ तास याप्रमाणें काम करावें लागेल. दिवसा अगर रात्रीं पाळीपाळीनें ही प्रात्याक्षिकाची वेळ ठरविली जाईल.

पाठ्यक्रमाचा काल एकूण दोन वर्षांचा असेल. त्यापैकीं ३ महिने प्राथमिकशिक्षण अथवा पूर्वतयारी, ६ महिने प्राथमिक शुश्रूषा, १२ महिने संस्थेंत सौतिकशास्त्राचा (व शुश्रूषाविज्ञानाचा) अभ्यास व तीन महिने लोकांच्या घरीं जाऊन प्रसूति अगर शुश्रूषा करणें असे विभाग असतील.

सामान्यतः पहिल्या तीन महिन्यांत विद्यार्थ्यांना पहिले १५ दिवस रोज ४ तास याप्रमाणें त्यांनी बाह्य रुग्ण-विभाग, आरोग्यशाला, व प्रसूतिगृह यामधून चाललेलें काम पहावयाचें आहे. तिसऱ्या महिन्याचे शेवटच्या आठवड्यांत या शिक्षणक्रमास विद्यार्थी योग्य आहे किंवा नाहीं, याकरितां एक चांचणी परीक्षा घेण्यांत येईल. व त्यांत उत्तीर्ण होणाऱ्यास पुढील शिक्षण चालूं ठेवतां येईल.

सुटी–प्रत्येक वर्षीं १ महिनाभर सुट्टी व १० दिवसांची आजारीपणाची रजा असेल. हा काल शिक्षणक्रमाच्या कालांत धरला जाईल. घेतलेली रजा अधिक असल्यास परीक्षेपूर्वी दिवस पूर्ण भरावे लागतील.

परीक्षा– पहिली परीक्षा १ वर्षानंतर व दुसरी परीक्षा दुसऱ्या वर्षाचे अखेरीस होईल.

गुण–परीक्षा उत्तीर्ण होण्यास लेखी व मौखिक परीक्षेंत प्रत्येकीं शेंकडा ५० टक्के गुण मिळावे लागतील शे. ७० गुण मिळविणारास 'प्रविण' समजलें जाईल.

प्रत्येक विद्यार्थ्यास शेंकडा ७५ टक्के व्याख्यानें व प्रात्यक्षिकें यांना हजर रहावेंच लागेल.

शुल्कः— दरमहा ५ रुपये प्रमाणें अध्ययन–शुल्क द्यावें लागेल. गरीब व लायक विद्यार्थ्यांच्या नादारीच्या अर्जांचा विचार केला जाईल. पुस्तकें:– आयुर्वेदीय ग्रंथाधारेंच बहुतेक शिक्षण दिलें जाईल इतर वाचन म्हणून या विषयावरील उपलब्ध वाङ्मय वाचनास मिळण्याची व्यवस्था करण्यांत येईल.

ही परीक्षा उत्तीर्ण होणारांना कोठेंहि नौकरी मिळवून देण्याची वा वैद्यकीय व्यवसाय स्वतंत्रप करण्याची आज हमी देण्यांत येणार नाहीं. शक्यता असेल त्याप्रमाणें ठिकठिकाणीं असलेल्या व नवी निघणाऱ्या आयुर्वेदीय रुग्णालयांतून व संस्थांतून त्यांना प्रवेश मिळवून देण्यासाठीं आयुर्वेद सेवा सं अवश्य शिफारस करील.

पाठ्यक्रम पुरा केल्यानंतर शिकविलेल्या विषयांची लेखी व प्रात्याक्षिक परीक्षा घेऊन आयुर्वे सेवा संघातर्फे प्रशस्तिपत्र देण्यांत येईल. या अभ्यासक्रमास सरकारमान्यता मिळतांच सरकारतर्फे प्रमाण पत्रें मिळूं लागतील. सेवा संघातर्फे पूर्वी मिळालेल्या प्रशस्तिपत्रांनाहि त्यावेळीं सरकार मान्यता देईल.

श्री. कृ. करमरकर

प्रधान अध्यापक

सुंदर धन्वन्तरी चित्र
वैद्यमंडळी धनत्रयोदशीचे दिवशीं धन्वन्तरी
ा करतात. दवाखान्यांत धन्वन्तरीची सुंदर
ीर लावणें शोभादायकहि आहे. त्यासाठीं
श्री त्र्यं. म. गोगटे, आयुर्वेदतीर्थ, अमरावती
ीं खास तयार केलेलें चित्र (फोटो) विकत
ण्याची व्यवस्था केली आहे.
त १।। रु. ट. ख. ।।।= रु. निराळा
आयुर्वेद सेवा संघ, नासिक

अनुक्रमणिका

मराठवाड्यांतील १ लें आयुर्वेद महाविद्यालय १९१
वेदांतील सृष्टिक्रम, सृष्टि-उत्क्रांति १९३
कांहीं जटिल समस्या २०१
रोगोत्पादक साहसाचा सत्कार २०४
२०० वर्षांचीं जुनीं आयु.रुग्णचिकित्सा-पत्रकें २०५
आयुर्वेद अध्यापक चर्चा परिषद, नासिक २०९
उण्डुक हा अवयव कोणता ? २१३
मी उभा आहे (उत्तरार्ध) २१५
म. प्रा. वैद्य संमेलनवार्ता २१९
परिचारक व धात्री विद्यालय, नासिक २२१

श्री. गं. वि. पुराणिक यांचा निर्णय (रूलिंग)

(पुढील मजकुराचें पत्र श्री. गं. वि. पुराणिक, पनवेल, यांचेकडून पत्रिकेकडे द्धीसाठीं आलें आहे. – संपादक)

तां. ७–९–५६ रोजीं मुंबई येथें भरलेल्या म. प्रां. वैद्य मंडळाच्या कार्यकारी ळाच्या सभेंत मी जो निर्णय (रुलिंग) दिला होता, त्या संबंधींचा जो मजकूर म. प्रां. मंडळाचे प्रधान-मंत्री वै. माधवशास्त्री जोशी, पुणें यांजकडे मी पाठविलेला आहे, तो ील प्रमाणें:––

"महाराष्ट्र प्रांतीय वैद्य संमेलनाच्या घटनेंतील प्रदेशाबाबतचें जें कलम आहे, त नागपूर–विदर्भ यांचा नामनिर्देश नाहीं, अर्थातच घटनेंत जोंपर्यंत – संमेलनाकडून त्या ानें दुरुस्ती झाली नाहीं, तोपर्यंत – एकादें वेळेस घटनेच्या दृष्टीनें यापूर्वी कांहीं निराळें लें असलें तरीहि तें प्रमाणभूत ठरणार नाहीं. नागपूर–विदर्भ या भागांत म. प्रां. वैद्य ळाचे सभासद करण्याचा प्रचार करतां येणार नाहीं, व त्या भागांत झालेले सभासद च्या घटनेप्रमाणें कायदेशीर समजले जाणार नाहींत."

ांग आयुर्वेद महाविद्यालय, पुणें

दरसालप्रमाणें या वर्षीहि विद्यार्थी संघानें विद्यालयांत श्रीगणेशोत्सव साजरा केला. त्यांत ील व्याख्यानें झालीं.

१] वै. पं. कृष्णशास्त्री कवडे
"आयुर्वेदाचीं मूलतत्वें"

२] वै. गणेशशास्त्री शेंड्ये (संस्कृत)
'पुरुषेण कथं वर्तितव्यम्'

३] वै. ग. श्री. मुळे
'आयुर्वेद कशाला हवा?'

४] पं. चिं. गं. काशीकर
"इतिहासाचे दृष्टिकोनांतून आयुर्वेद"

५] पं. गणेशशास्त्री लेंढे
संस्कृतमध्यें हरिकीर्तन

६] आयुर्विद्यापारंगत वै. अनंतराव आठवले
"आंयुर्वेदाचीं वैशिष्ठ्यें"

आपला राष्ट्रीय ठेवा, आयुर्वेद

" चालकांचे निमंत्रणावरून, राष्ट्रीय वृत्तीच्या ध्येयवादी मंडळींनीं चालविलेली; आयुर्वेद सेवा संघ ही अत्यंत उपयुक्त संस्था, पहाण्याचा योग आला. सर्वत्र स्वच्छता, टापटीप व आयुर्वेद पद्धतीचाच अवलंब केलेला दिसला. आयुर्वेदास मानवी जीवनांत फार मोठें स्थान असून तो आपला राष्ट्रीय ठेवाच आहे. तो शुद्ध स्वरूपांत टिकविणें, त्याची चिकित्सापूर्वक छाननी करून, नित्योपयोगीं औषधी तयार करणेसाठीं येथें सतत संशोधन चालू आहे. ....

... ... प्रखर ध्येयनिष्ठा व ज्ञानलालसा याशिवाय हें महान् कार्य होणें शक्य नाहीं. ××××× यांचे देखरेखीखालीं चालक स्वार्थत्यागपूर्वक हें लोकोपयोगी कार्य करीत आहेत. आणि म्हणूनच त्यांची आर्थिक बाजू बळकट करण्याची जबाबदारी जनता व सरकारवर आहे."

(सही) आर. बी. विसपुते (वकील)
चेअरमन स्टँडिंग कमेटी, नासिक नगरपालिका

मूळव्याधीवर उत्तम औषध कोणतें ?

सुरणांचा कंद भाजून तेल मीठ घालून भाजी करून खावा. १ मिरे, २ पिपळी, ३ सुंठ, ४ चित्रक, १६ सुरण यांत गूळ मिश्र करून सेवन केल्यानें वातज मूळव्याधींचा त्रास जातो. सुरण आणि वरधारा, सफेतमुसळी, सालमिश्री, त्रिफळा, त्रिकटु, पिपळमूळ, बिबे, तालीसपत्र, काळे तीळ आदि अग्निदीपक व पौष्टिक औषधें एकत्र करून तयार केलेला

बृहत्सूरण-कषाय

कि. ४० तोळे २॥ रु.

हें मूळव्याधीचें नामांकित व अनुभविक औषध आहे. या औषधाच्या नित्य सेवनानें गुद (रेक्टम्) भागांतील बहुतेक सर्व व्याधि व वेदना आटोक्यांत येतात. स्थानिक उपचारांची गरज रहात नाहीं. पोटात वात धरणें हा विकारहि उत्तम रीतीनें दुरुस्त होतो. शौचशुध्दि चांगली होते.

आयुर्वेद औषधी भवन, नासिक

मुद्रक व प्रकाशक — वैद्य बिंदुमाधव पंडित, जीवसदस्य, आयुर्वेद सेवा संघ, रविवारपेठ, नासिक

आयुर्वेद

महासम्मेलन पत्रिका

प्रधान सम्पादक—कविराज स्वामी चेतनानन्द चिदाकाशी
उप-सम्पादक—कविराज हरिकृष्ण सहगल
संस्कृत विभाग सम्पादक—कविराज वेदपाल शास्त्री आयुर्वेदाचार्य

विषयानुक्रमणिका

विषय	लेखक	पृष्ठ संख्या
१. सन् १९५९ वर्षीय विद्यापीठ परीक्षा सम्बन्धी सूचनायें		
२. सम्पादकीय		५२५
३. किं हृदय शब्दो मस्तिष्कस्यापि वाचकः	—पं० शंकरलाल शर्मा	५३३
४. त्रिषष्टि दोषाणां भेदवर्णनम्	—श्री नेत्रपाल शास्त्री	५३९
५. आयुर्वेद का आर्तनाद	—श्री मनु सुबेदार	५४१
६. आयुर्वेदिक पेनिसिलीन अश्वगन्धा	—श्री सुरेशचन्द्र चतुर्वेदी	५४६
७. पारद अनुसन्धान	—श्री पं० ठाकुरदत्त शर्मा	५४९
८. वेदों में आयुर्वेद और उसका वैज्ञानिक विवेचन	—श्री पं० मोहनलाल शास्त्री	५५१
९. कुमार्यासव	—श्री चन्द्रमणि शास्त्री	५६१
१०. आयुर्वेद-लोक		५६७

(पृष्ठ ५३१ का शेष)

बिना लगाये गये हैं और इससे २५ प्रतिशत लोगों को विष प्रभाव हो गया है और मरहम-पट्टियों की आवश्यकता पड़ी है। इसे कहते हैं गये थे नमाज़ बक्शवाने रोजे गले पड़े।

हैज़ा की फिल्म रील के अन्त पर पत्रों में छपा कि डाक्टरों ने हैजा पर काबू पा लिया है। क्या कोई बतलायेगा कि इन हैजे के दिनों में नीबू आठ आने सेर से दो रुपया सेर क्यों हो गये? प्याज़ के दाम क्यों बढ़ गये। लस्सी, दूध, मिठाइयों की बिक्री कम क्यों हो गई?

जीवन सब को प्यारा है। लोगों ने अन्ट-सन्ट खाना छोड़ दिया, घरों में नींबू प्याज का प्रयोग बढ़ गया और दिल्ली में हैजा का प्रकोप शान्त हो गया परन्तु सरकारी कर्मचारियों ने सेहरा डाक्टरों और हैज़ा के टीके के सिर बाँध दिया। इसको कहते हैं, समरथ को नहीं दोष गोसांई।

—हरिकृष्ण सहगल

१९५९ वर्षीय विद्यापीठपरीक्षासम्बन्धिन्यः सूचनाः

१—परीक्षाः १६ मार्च १९५९ तः आरब्धा भविष्यन्ति ।

२—(क) परीक्षाशुल्कं प्रतिखण्डम्—आयुर्वेदाचार्ये वैद्याचार्ये च विंशति २०) मुद्राः, आयुर्वेदविशारदे वैद्यविशारदे च पञ्चदश १५) रूप्यकाणि, आयुर्वेद भिषक् परीक्षायां च दश १०) रूप्यकाणि भवति । नियमानुसारमेकस्मिन् वर्षे एकस्यैव खण्डस्य परीक्षा दातुं शक्यते ।

(ख) परीक्षार्थिना प्रथमवारं रूप्यकद्वयं २) पञ्जीकरण शुल्कं परीक्षाशुल्कादतिरिक्तं प्रदेयं भविष्यति ।

(ग) विद्यापीठकार्यालये साधारणतया परीक्षाशुल्कप्राप्तेरन्तिमा तिथिः १५ दिसम्बर १९५८ वर्तते । अतः परं ३१ दिसम्बर १९५८ पर्यन्तं रूप्यकमेकं १) रु०, प्रथम जनवरी १९५९ तः १५ जनवरीं यावत् रूप्यकद्वयं २) रु०, १६ जनवरीतः १५ फर्वरी १९५९ यावत् पञ्च रूप्यकाणि ५) रु० विलम्बशुल्कसमेतमेव परीक्षाशुल्कं स्वीकृतं भविष्यति । चैक द्वारा पोस्टल आर्डर द्वारा वा शुल्कप्रेषणस्य नियमो नास्ति ।

३—परीक्षावेदनपत्रप्राप्तये परीक्षाशुल्कस्य कार्यालये अग्रिमं प्रेषणम् आवश्यकं वर्तते । शुल्कप्रेषणसमये शुल्कप्रेषकस्तत्सम्बन्धि पूर्णं विवरणं, पूर्णञ्च पत्रव्यवहारादि संकेतं मनीआर्डरस्याधो भागे सुस्पष्टं लिखेत्, येन तैनेवानुपातेन आवेदनपत्राणि प्रेषितानि स्युः । पृथक्पत्रे विवरणप्रेषणेन विलम्बः सम्भाव्यते । यस्मिन् मनीआर्डरपत्रेऽधः धनराशि सम्बन्धि पूर्णं विवरणं लिखतं नैव भविष्यति अथवा प्रेषकस्य लेखः अपाठ्यो भविष्यति, स न स्वीकृतो भविष्यति । चैकस् पोस्टल आर्डराणि चापि नैव स्वीकृतानि भविष्यन्ति । यदि तारमनीआर्डरेण शुल्कं प्रेष्यते तदा तत्रापि पूर्णं नाम पूर्णश्च पत्रप्रेषणादिसंकेतो विवरणञ्चेति सर्वमपि तारमनीआर्डर पत्र लेखनमावश्यकम् वर्तते ।

४—कार्यलये शुल्क प्राप्तेः रसीद संख्या प्राप्तितिथिश्च मनीआर्डरस्य परावर्तनीयरसीद पृष्ठ भागे ☐ आयताकारे कोष्ठकेऽङ्किता भवति । सैव रसीदसंख्या कार्यालयतः प्रेषिते आवेदनपत्रे उपरितने वाम भागे ☐ आयताकारे कोष्ठकेऽपि लिखिता भवति । उक्त रसीद संख्याया आवेदनपत्रे यथास्थानं लेखनं तस्याः सुरक्षिततया स्थापनं तथा समस्ते तत्सम्बन्धि पत्रव्यवहारे च तस्या उल्लेखनमावश्यकं भवति ।

५—परीक्षाशुल्कप्राप्त्यनन्तरं प्रायः सप्ताहाभ्यन्तरे परीक्षावेदनपत्राणि कार्यालयतो मनीआर्डर निर्दिष्टे पत्रसंकेत स्थाने साधारण बुक पोस्ट द्वारा प्रेष्यन्ते । यदि कश्चित् परीक्षार्थी सप्ताहद्वयपर्यन्तमपि आवेदनपत्राणि नैव प्राप्नोति तदा सः शुल्कप्राप्तेः रसीदसंकेतेन तत्कालमाशुतरं कार्यालयं प्रति पत्रं लिखेत्, येन यथासमयं द्वितीयं (डुप्लीकेट) आवेदनपत्रं पुनः प्रेषितं भवेत् । सूचनाया अभावे, विलम्बितायां वा सूचनायां तत्सम्भूतायाः सर्वविधाया हानेरुत्तरदायित्वं परीक्षार्थिनि तद्गुरौ महोदये वा निपतिष्यति । रजिस्टर्ड डाक द्वारा आवेदनपत्राणि प्राप्तुं परीक्षाशुल्केन सह पञ्चाशत् नवान् पणकान् अतिरिक्तं प्रेषयन्तु ।

६—साधारणतया सम्यक् पूरितस्य आवेदनपत्रस्य कार्यालयप्राप्तेरन्तिमा तिथिः ३१ दिसम्बर १९५८ वर्तते । तत्पश्चात् २५ जनवरी १९५९ पर्यन्तं रूप्यकैकदण्डशुल्कसमेतमेवावेदनपत्रं स्वीकृतं संभविष्यति ।

७—नियमविरुद्धं यत्किञ्चित्प्रकारया असावधानतया वा प्रेषितं शुल्कं प्रतिपरीक्षार्थि रूप्यकद्वयं दण्डशुल्कं उच्छिद्यैव प्रतिनिवर्तितं संभविष्यति । शुल्कं प्रतिनिर्वर्तयितुं प्रेषितेन प्रार्थनापत्रेण सह प्रेषितस्यावेदनपत्रस्य प्रतिनिर्वर्तनं परमावश्यकं वर्तते ।

८—केनापि कारणेन परीक्षायामनुपस्थितस्य परीक्षार्थिनः परीक्षाशुल्कं परावर्तितं कर्तुं नैव शक्यते । क्रमांकनिर्माणात् प्राग् यदि परीक्षार्थी स्वानुपस्थितेः सन्तोषजनकं कारणं सप्रमाणमुपस्थापयति तदा तस्य शुल्कं केवलमागामिवर्षीयपरीक्षाकृते सुरक्षितं कर्तुं शक्यते परन्तु क्रमांकनिर्माणानन्तरं तदपि नैव सम्भविष्यति ।

९—परीक्षाशुल्कप्रेषणात् प्रागेव परीक्षार्थिभिस्तेषामध्यापकैश्च महोदयैः विद्यापीठ-परीक्षानियमावलेरध्ययनं सम्यग् विधातव्यम्, तत्सम्बन्धि परिज्ञानञ्चापि सम्यगुपार्जनीयम् तदनुसारञ्च कार्यं निर्वोढव्यम् । नियमानभिज्ञतामिषस्तु कस्यामप्यवस्थायां मान्यो नैव भविष्यति ।

१०—सर्वैः परीक्षार्थिभिः तदध्यापकमहोदयैश्च सम्यगवधेयम्, यद् विद्यापीठस्य सर्वासामपि परीक्षाणां प्रश्नपत्राणि संस्कृत भाषायामेव मुद्रितानि भवन्ति । कस्यापि प्रश्नपत्रस्य कस्यामपि भाषायामनुवादो नैव सम्भविष्यति । आयुर्वेदविशारदे आयुर्वेदाचार्ये च प्रश्नानामुत्तरं केवलं संस्कृतभाषायामेव लिखितुं शक्यते । अन्यासु च परीक्षासु उत्तराणि हिन्दीभाषायामथवा विद्यापीठ द्वारा स्वीकृतास्वधोलिखितासु नवसु प्रादेशिक भाषासु यस्यां कस्यामपि लिखितुं शक्यन्ते ।

उड़िया, कन्नड़, गुजराती, तेमिल, तेलुगू, बंगला, मराठी मलयालम तथा सिन्धी (देवनागरी लिप्याम्) ।

११—विद्यापीठसम्बद्धसंस्थानां स्वीकृताध्यापकानाञ्च महानुभावानामिदं कर्तव्यमस्ति यत् ते (क)—सन् १९५९ वर्षीयं क्रमशः आत्मीयं सम्बद्धताशुल्कं पञ्चदश १५) रूप्यकाणि अथवा मान्यसदस्यताशुल्कञ्च पञ्च ५) रूप्यकाणि अथवा पत्रिका शुल्कं द्वे २) रूप्यके १५ दिसम्बर १९५८ पर्यन्तं नूनं प्रेषयन्तु । तथा (ख)—परीक्षार्थिनामावेदनपत्राणि प्रत्येकस्मिन्नंशे सम्यक् सावधानञ्च निरीक्ष्य तदनन्तरमेव तेषु स्वीयहस्ताक्षराणि कुर्युः । यतः आवेदनपत्रेषु वर्णितानां तथ्यानां सत्यताया एवं तत्पूरणे जाताया असावधानतायास्तत्सम्भवायाश्च हानेरुत्तर-दायित्वं सर्वथा तेष्वेव निपतिष्यति ।

१२—परीक्षाशुल्कप्रेषणसमये तथा समस्ते पत्रव्यवहारे च आचार्य, विशारदशब्दयोः प्रयोगमकृत्वा दीयमानपरीक्षायाः पूर्णं नाम—यथा—आयुर्वेदाचार्य, वैद्याचार्य, आयुर्वेदविशारद, वैद्यविशारद शब्दानां सुस्पष्टः संकेतो विधेयः ।

१३—यथासम्भवं मनीआर्डरेषु पत्रव्यवहारे च हिन्दी (देवनागरी) अथवा अंग्रेजी भाषायाः प्रयोगो विधेयः ।

१४—मनीआर्डर कूपने केवलं प्रेष्यमाणस्य शुल्कस्यैव विवरणं लिखितव्यम् । कस्यचिदन्यस्य विषयस्य सम्बन्धे पृथक् पत्रव्यवहारो विधेयः ।

नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ
महालक्ष्मी मार्केट, चांदनी चौक, दिल्ली । }

वैद्य सीताराम मिश्रः,
विद्यापीठ मंत्री

१९५९ वर्षीय विद्यापीठ-परीक्षा सम्बन्धी सूचनायें

—परीक्षायें १६ मार्च १९५९ से प्रारम्भ होंगी।

—(क) परीक्षा शुल्क निम्न प्रकार है:—आयुर्वेदाचार्य तथा वैद्याचार्य प्रतिखण्ड २० रुपये, आयुर्वेद विशारद तथा वैद्य विशारद प्रतिखण्ड १५ रुपये, तथा आयुर्वेद भिषक् प्रतिखण्ड १० रुपये। नियमानुसार एक वर्ष में एक ही खण्ड की परीक्षा दी जा सकती है। (ख) जिस परीक्षार्थी ने इससे पूर्व दो रुपये विद्यापीठीय रजिस्ट्रेशन शुल्क न दिया हो, उसे २) दो रुपया रजिस्ट्रेशन शुल्क स्वरूप परीक्षा शुल्क के अतिरिक्त देना होगा। (ग) विद्यापीठ कार्यालय में साधारणतया परीक्षा शुल्क प्राप्ति की अन्तिम तिथि १५ दिसम्बर १९५८ है। इसके पश्चात् ३१ दिसम्बर १९५८ तक १ रुपया, १५ जनवरी १९५९ तक २ रु० तथा तत्पश्चात् १६ जनवरी से १५ फरवरी १९५९ पर्यन्त ५ रु० विलम्ब शुल्क सहित ही परीक्षा शुल्क स्वीकार किया जा सकेगा। चैक तथा पोस्टल आर्डर द्वारा कोई शुल्क भेजने का नियम नहीं है।

—परीक्षा आवेदनपत्र प्राप्त करने के लिए परीक्षा शुल्क कार्यालय में अग्रिम भेजना आवश्यक है। शुल्क भेजते समय उसका पूरा विवरण तथा प्रेषक का पूरा पता मनीआर्डर फार्म के कूपन पर स्पष्टतया लिखा होना चाहिए ताकि उसी अनुपात से आवेदन पत्र भेजे जा सकें। पृथक् पत्र में विवरण भेजने से देरी हो जाने की संभावना है। जिस मनीआर्डर कूपन पर धनराशि संबन्धी पूरा विवरण नहीं होगा अथवा लेखक का लेख अपाठ्य होगा उसे अस्वीकार कर दिया जायगा। चैक अथवा पोस्टल आर्डर्स स्वीकार नहीं किये जायेंगे। यदि तार मनीआर्डर से शुल्क भेजा जावे तो भी प्रेषक का पूरा नाम एवं पता तथा विवरण तार मनीआर्डर में ही भेजा जाना आवश्यक है।

—कार्यालय में शुल्क-प्राप्ति की रसीद संख्या मनीआर्डर की वापिसी रसीद पर कोष्ठ में लिखी जाती है। यही संख्या कार्यालय से भेजे जाने वाले आवेदनपत्र के प्रारम्भ में बाईं ओर पृथक् कोष्ठ में लिखित होगी। उक्त रसीद संख्या का आवेदनपत्र में यथास्थान लिखा जाना, उसे सुरक्षित रखना, तथा समस्त पत्र-व्यवहार में उस का उल्लेख करना आवश्यक है।

—परीक्षा शुल्क की प्राप्ति के प्रायः एक सप्ताह के अन्दर अन्दर परीक्षा आवेदनपत्र कार्यालय से मनीआर्डर पर निर्दिष्ट पता पर साधारण बुकपोस्ट द्वारा भेज दिये जाते हैं। किन्तु यदि किसी परीक्षार्थी को दो सप्ताह तक भी आवेदनपत्र प्राप्त न हो तो शुल्क प्राप्ति की रसीद संख्या का संकेत करते हुए इस कार्यालय को तुरन्त पश्चात् पत्र लिख देना चाहिये ताकि यथासमय डुप्लीकेट आवेदनपत्र पुनः भेजा जा सके। किसी सूचना के अभाव में अथवा देरी से सूचना भेजने पर उससे होने वाली सब प्रकार की हानि का उत्तरदायित्व स्वयं परीक्षार्थी अथवा उसके गुरु महोदय पर रहेगा। रजिस्ट्री डाक से आवेदन पत्र मंगवाना हो तो शुल्क के साथ पचास नये पैसे और भेजे।

—साधारणतया आवेदनपत्र की पूर्ति होकर कार्यालय में उसकी प्राप्ति की अन्तिम तिथि

३१ दिसम्बर १९५८ है। तत्पश्चात् २५ जनवरी १९५९ तक १) रु० दण्ड शुल्क सहित ही आवेदन पत्र स्वीकार हो सकेगा।

७—नियम विरुद्ध अथवा किसी भी प्रकार की असावधानता से भेजा हुआ शुल्क प्रति परीक्षार्थी २) रु० दण्ड शुल्क काटकर ही वापिस किया जा सकेगा। शुल्क वापिसी के लिये प्रार्थना-पत्र के साथ आवेदन पत्र को वापिस करना परमावश्यक है।

८—किसी भी कारण से परीक्षा में अनुपस्थित परीक्षार्थी का शुल्क वापिस नहीं किया जा सकेगा। क्रमांक बनने के पूर्व यदि परीक्षार्थी अपनी अनुपस्थिति का सन्तोषजनक कारण प्रमाण सहित उपस्थित करदे तो उसका शुल्क केवल अग्रिम वर्ष की परीक्षा के लिये सुरक्षित किया जा सकेगा किन्तु क्रमांक बन जाने के अनन्तर यह भी नहीं हो सकेगा।

९—परीक्षा शुल्क भेजने के पूर्व ही परीक्षार्थियों एवं उनके अध्यापक महोदयों को विद्यापीठ परीक्षा नियमावली का सम्यक् प्रकार अध्ययन कर लेना चाहिये, एवं तत्सम्बन्धी सम्पूर्ण सूझ-बूझ प्राप्त कर लेनी चाहिए, और तदनुसार ही कार्यनिर्वाह करना चाहिये। नियमों की अनभिज्ञता का बहाना किसी भी अवस्था में मान्य न होगा।

१०—सभी परीक्षार्थियों एवं उनके अध्यापक महोदयों को भली प्रकार जान और समझ लेना चाहिए कि विद्यापीठ की सभी परीक्षाओं के प्रश्न-पत्र संस्कृत भाषा में ही छपते हैं। किसी भी प्रश्नपत्र का किसी भाषा में भी अनुवाद न हो सकेगा। आयुर्वेद विशारद तथा आयुर्वेदाचार्य परीक्षा में प्रश्नोत्तर केवल संस्कृत भाषा में ही लिखे जा सकेंगे। अन्य परीक्षाओं में उत्तर हिन्दी में अथवा विद्यापीठ द्वारा स्वीकृत निम्न लिखित ९ प्रादेशिक भाषाओं में से किसी एक भाषा में लिखे जा सकेंगे:—

उड़िया, कन्नड़, गुजराती, तैमिल, तैलगू, बंगला, मराठी, मलयालम तथा सिन्धी (देवनागरी लिपि में)।

११—विद्यापीठ सम्बद्ध संस्थाओं तथा स्वीकृत अध्यापक महानुभावों को चाहिए कि वे—

(क) सन् १९५९ वर्षीय क्रमशः अपना सम्बद्धता शुल्क १५) रु० अथवा मान्य सदस्यता शुल्क ५) रु० अथवा पत्रिका शुल्क २) रु० १५ दिसम्बर तक अवश्य भेज दें।

(ख) परीक्षार्थियों के आवेदनपत्र के प्रत्येक अंश को भली प्रकार देखभाल कर तत्पश्चात् ही उन पर हस्ताक्षर करें, क्योंकि आवेदनपत्रों में वर्णित तथ्यों की सत्यता एवं उनके भरने में की गई असावधानता और उससे होने वाली हानि के उत्तरदायी वे ही होंगे।

१२—परीक्षा शुल्क भेजते समय तथा समस्त पत्र-व्यवहार में "आचार्य" एवं "विशारद" शब्द का प्रयोग न करके उनके स्थान में क्रमशः "आयुर्वेदाचार्य" अथवा "वैद्याचार्य" और "आयुर्वेदविशारद" अथवा "वैद्यविशारद" शब्दों का संकेत स्पष्ट रूप से करें।

१३—यथासम्भव मनीआर्डरों एवं पत्र-व्यवहार में हिन्दी (देवनागरी लिपि) अथवा अंग्रेजी भाषा का प्रयोग करें।

१४—मनीआर्डर कूपन में केवल भेजे गये शुल्क का विवरण ही लिखें। किसी अन्य विषय के सम्बन्ध में पृथक् पत्र-व्यवहार करें।

नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ कार्यालय,
महालक्ष्मी मार्कट, चांदनी चौक, दिल्ली-६

वै. सीताराम मिश्र,
विद्यापीठ मन्त्री

॥ धन्वन्तरयेनमः ॥

यत्प्रभापटलोद्भासि भाषतेऽद्यापि भारतम् ।
आयुर्वेदात्मकं ज्योतिः शाश्वतं नः प्रकाशताम् ॥

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

(अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का मासिक मुख-पत्र)

प्रधान सम्पादक—**कविराज स्वामी चेतनानन्द चिदाकाशी ।**
उप-सम्पादक—कविराज हरिकृष्ण सहगल ।
सम्पादक संस्कृत विभाग—वैद्य श्री नेत्रपाल शर्मा शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य ।
पत्रिका कार्यालय—महालक्ष्मी मार्केट, चांदनी चौक, दिल्ली ।

का पता : **"आयुर्वेद" दिल्ली** टेलीफोन : २८६०२

: ४५
: १०
दिल्ली, आश्विन २०१५, अक्टूबर १९५८
वार्षिक ५)
एकप्रति ।।)

सम्पादकीय

ाष्ट्रीय आयोजन में आयुर्वेद का स्थान

भारतवर्ष को परतन्त्रता के पाश से मुक्त हुए ११ वर्ष से भी अधिक व्यतीत हो चुके हैं, ाने देश की विभिन्न क्षेत्रों में चतुर्मुखी उन्नति और विकास के ध्येय से तदर्थ नियुक्त जना आयोग द्वारा दो पंचवर्षीय योजनायें बनाई गईं जिनमें से प्रथम पंचवर्षीय योजना नुसार कार्य हो चुका है और अब द्वितीय पंचवर्षीय योजना अपनी अवधि के तीसरे वर्ष में र रही है । इन योजनाओं द्वारा गत आठ वर्षों में उद्योग, कृषि, रेल, शिक्षा, यातायात, त, डेम्ज और रीवर वेली प्रोजक्ट्स आदि बहुविध क्षेत्रों में कितना विकास हुआ और जनता की मूल आवश्यकताओं—भोजन, वस्त्र और गृह की किस सीमा तक पूर्ति हुई सामान्यजन के जीवन का स्तर कितना उन्नत हुआ है, इसका अनुभव देश की जनता को न पग-पग पर होता ही है अतः इस विषय में कोई टीका-टिप्पणी करना हमारे इस

लेख का विषय नहीं है । हम अपने विचार केवल 'जन-स्वास्थ्य' तक ही सीमित रखेंगे और यह देखेंगे कि किसी भी राष्ट्र की सफलता के मुख्य आधार-स्तम्भ राष्ट्रीय स्वास्थ्य की उक्त आयोजनाओं द्वारा कहां तक उन्नति हुई है और आयुर्वेद जिसकी कि स्वास्थ्य संयोजनाओं में अनौचित्यपूर्ण उपेक्षा की गई है, इसमें अपना क्या भाग अदा कर सकता है ।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में स्वास्थ्य विषयक अध्याय के प्रारम्भ में निम्न लेख प्राप्त होता है—

Health is fundamental to national progress in any sphere. In terms of resources for economic development, nothing can be considered of higher importance than the health of the people....... For the efficiency of industry and of agriculture, the health of the worker is an essential consideration.

Health is a positive state of well-being in which the harmonious development of physical and mental capacities of the individual lead to the enjoyment of a rich and a full life. It is not a negative state of mere absence of disease.'

उपर्युक्त उद्धरण में जो कुछ कहा गया है उसका भावार्थ यह है कि प्रत्येक क्षेत्र में राष्ट्रीय प्रगति का मूलाधार स्वास्थ्य है । आर्थिक विकास के साधनों में स्वास्थ्य का महत्व सर्वाधिक है । कार्यक्षम उद्योग तथा कृषि के लिये, कार्यकर्ताओं के स्वास्थ्य को ध्यान में रखना अत्यावश्यक है ।

स्वास्थ्य के ऐसे महत्वपूर्ण विषय पर, जिसका कि देश के भावी विकास पर इतना अधिक और दूरगामी प्रभाव पड़ता हो, स्पष्ट ही अधिक गम्भीर, विचारपूर्ण और सतर्क दृष्टिपात की आवश्यकता है । इस सम्बन्ध में किसी भी योजना का निर्माण करते समय देश में उपलब्ध सभी साधनों के विकास और उपयोग करने की व्यवस्था करना आयोजकों का प्रथम और अनिवार्य कर्त्तव्य था, किन्तु यह एक नितान्त खेद का विषय है कि दोनों ही योजनाओं में इस कर्त्तव्य की उपेक्षा की गई है, क्योंकि इनमें प्राचीन, प्रचलित पूर्णतया वैज्ञानिक, सुफलप्रद और ८९ प्रतिशत जनता को आरोग्य प्रदान करने वाली भारतीय चिकित्सा पद्धति आयुर्वेद एवं इसके लगभग १,५०००० अभ्यासियों के विस्तृत कल्याणमय उपयोग को दृष्टि से ओझल रखा गया है । प्रथम पंचवर्षीय योजना में १०३ करोड़ रुपये की स्वास्थ्य योजना में से केवल ३७.५ लाख रुपया ही सम्मिलित रूप में आयुर्वेद-यूनानी व होमियोपैथिक आदि चिकित्सा पद्धतियों के लिये रखा गया था । इस तुच्छ धनराशि में से भी लगभग ६० प्रतिशत का योजना काल में उपयोग नहीं किया गया । शेष ४० प्रतिशत (लगभग १५ लाख) को केन्द्रीय आयुर्वेद अनुसंधान संस्था (न कि आयुर्वेद) पर व्यय किया गया किन्तु उसका क्या सुपरिणाम निकला और आयुर्वेद के विकास तथा जन-स्वास्थ्य समस्या के समाधान में उससे क्या लाभ पहुँचा ? यह आज तक ज्ञात नहीं हो सका ।

दूसरी पंचवर्षीय योजना में २५५ करोड़ की स्वास्थ्य योजना में से आयुर्वेद को मिला ाभग ४ करोड़ रुपया, शेष द्रव्य पाश्चात्य चिकित्सा-पद्धति के विकास पर व्यय किया ाा। जिस चिकित्सा-पद्धति पर विदेशों में इससे कई गुणा अधिक रुपया व्यय कर वहां च्चकोटि के विद्वानों द्वारा शोध-कार्य किया जा रहा है, उस पर ही इस देश का धन ता, वह भी उन व्यक्तियों द्वारा जिनकी शोधबुद्धि और ज्ञान सन्देहास्पद है, दूरदर्शिता कही जा सकती। इसके विपरीत यदि उक्त धनराशि का चतुर्थांश भी आयुर्वेद ासार्थ प्रदान किया जाता तो अवशिष्ट धन का उपयोग देशहित के अन्य कार्यों में ा जा सकता और स्वास्थ्य समस्या का भी अल्प व्यय में अधिक उत्तम और न सुलभ हल निकल सकता था। इस सम्बन्ध में भारत के वर्तमान वाणिज्य श्री मोरार जी देसाई के निम्नलिखित शब्द जो उन्होंने ४०वें अ० भा० आयुर्वेद महा- लन, त्रिवेन्द्रम, का उद्घाटन करते हुए कहे थे, मननीय हैं—

"If only one fourth of the Expenditure that is made on lopathy by Government is made on Ayurveda & if only e-tenth of attention which is given to Allopathy is given Ayurveda by Government, I am sure that all controversies l cease and all will recognize the superiority of Ayurveda a very few years."

भारत की ३८ करोड़ जनता के लिये, जिसका लगभग ८५ प्रतिशत भाग गांवों में ा है, एलोपैथिक चिकित्सा के साधन द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्त तक भी इतने प्त होंगे कि उससे ५-६ लाख गांवों में बसने वाली भारतीय जनता को कुछ लाभ पहुंच सकता। इस समय देश में लगभग ७५००० शिक्षित डाक्टर हैं जो अधिकांश नगरों चिकित्सा कार्य करते हैं—दूसरी योजना के अंत तक यह संख्या लगभग ९०,००० हो गी। हस्पतालों व दवाखानों की संख्या लगभग १२६०० तथा शैयाओं की संख्या लगभग ००० तक पहुँचने की सम्भावना है। भारत की विशाल जनसंख्या के स्वास्थ्य की हम इतने परिमित साधनों से किस प्रकार कर सकते हैं? यह एक विचारणीय प्रश्न इसके अतिरिक्त योजना में प्रदत्त धनराशि का अधिकांश भाग नागरिक क्षेत्रों था बड़े २ नगरों पर व्यय किया जा रहा है और ग्रामीण क्षेत्रों की सर्वथा उपेक्षा की ही है। बड़े-बड़े कालेज, अनुसन्धान संस्थायें, हस्पताल आदि सब बड़े-बड़े नगरों में बनाये हे हैं जिनका लाभ नगरवासी ही उठाते हैं, निर्धन ग्रामीण जनता को उनसे कोई लाभ पहुंचता, साथ ही एलोपैथिक चिकित्सा इतनी मंहगी है कि सर्वसाधारण की पहुंच उस नहीं हो पाती। डाक्टर तो गांवों में जाकर बसना पसन्द ही नहीं करते। नगरों में भी स्वास्थ्य की अवस्था बहुत बुरी है, यह सभी जानते हैं।

ऐसी अवस्था में अनेक पंचवर्षीय योजनाओं के अन्त तक भी एलोपैथिक चिकित्सा- ायें सम्पूर्ण भारतीय जनता के लिये सुलभ नहीं होंगी यह एक निर्विवाद तथ्य है।

किन्तु यह चित्र का एक पहलू है—इसका दूसरा पहलू भी है जिस पर भी यहाँ दो शब्द लिखना अनुचित न होगा। यह पहलू एलोपैथिक चिकित्सा की भारतीयों के लिये उपयोगिता का है। जब से एलोपैथी ने भारत में प्रवेश पाया है तब से भारतीय जनता का स्वास्थ्य कई अंश नीचे गिर गया है। नित नये-नये रोगों की उत्पत्ति हो रही है और जनता रोगमुक्त होने के बजाय रोगग्रस्थ होती चली जा रही है। इसका कारण एक तो यह है कि एलोपैथिक चिकित्सा भारतीय जलवायु और जनता की प्रकृति के अनुकूल नहीं है, दूसरी यह कि एलोपैथिक तीव्र विषैली औषधियों की प्रतिक्रियास्वरूप अनेक नये रोग उत्पन्न हो जाते हैं जिनसे कई बार तो जीवनपर्यन्त छुटकारा नहीं मिलता और रोगी की मृत्यु तक हो जाती है। एलोपैथिक औषधियों के ऐसे मारक प्रभाव की कथायें प्राय: पढ़ने-सुनने में आती रहती हैं और सभी भारतवासी इससे परिचित हैं। अभी कुछ दिन पूर्व कानपुर में पेनिसिलीन के रोमांचकारी हानिकर प्रभाव का समाचार जो इस पत्रिका में अन्यत्र प्रकाशित है सब के सामने आ चुका है। पेनिसिलीन के टीके लगने के बाद कई व्यक्ति मृत्यु के द्वार तक जा पहुंचे और बड़े प्रयत्नों के बाद ही उन्हें पुन: इस लोक में वापिस लाया जा सका। एलोपैथिक औषधियों की विषैली प्रतिक्रिया का यह एकाकी उदाहरण नहीं है न इसे अपवाद ही कहा जा सकता है। ऐसी घटनायें प्रकट-अप्रकट रूप में प्रतिदिन ही घटती रहती हैं।

वस्तुत: बात यह है कि भारतीय डाक्टर इतना विचारशून्य हो चुका है कि वह रोगी की आयु, बल, शक्ति और प्रकृति को ध्यान में रखे बिना अन्धाधुन्ध इंजेक्शन पर इंजेक्शन लगाये जाता है क्योंकि यह आय का एक अच्छा साधन है—रोगी मरे या जिये इससे उसे कोई मतलब नहीं।

तो इस प्रकार एक ऐसी चिकित्सा पद्धति पर जो भारतीय जनता के स्वास्थ्य की रक्षा करने में न केवल असमर्थ ही रही है बल्कि उसे हानि भी पहुंचाती है, इतना धन व्यय करने में हमारे आयोजकों ने क्या बुद्धिमानी दिखाई है, यह वही जानें।

इसके विपरीत एक ऐसी चिकित्सा पद्धति को जो भारतीय जलवायु और भारतीयों की प्रकृति के अनुकूल है, जो हजारों वर्षों से देशवासियों के स्वास्थ्य की रक्षा करती आई है, जिसमें अधिक दृढ़ आधार पर स्वास्थ्य के निर्माण की शक्ति है, जो स्वस्थ के स्वास्थ्य की रक्षा व रोगी को रोग से मुक्त करने में सर्वथा समर्थ है, जो शरीर को ही आरोग्य न देकर, मन का भी आरोग्य प्रदान करती है, जो मनुष्य को भौतिकवाद के कुचक्रों में न डालकर अध्यात्मवाद व मोक्ष की ओर ले जाती है, जो जीवन को नियमित बनाती है, जो भोग के साथ संयम करना भी सिखाती है, जो प्राणिमात्र के जीवन को आनन्दमय मानसिक व आत्मिक शान्ति प्रदान करने वाली है, उसे आयोजना में गौण स्थान दिया गया है और उसकी उन्नति के लिये केवल ४ करोड़ रुपये की धनराशि देकर सन्तोष कर लिया गया है। ऐसा अपने ही देश में अपनी ही अद्भुत दैवी विभूति आयुर्वेद के तिरस्कार और उपेक्षा का ज्वलन्त उदाहरण, कहीं अन्यत्र उपलब्ध नहीं हो सकता।

आयुर्वेद की इस उपेक्षा से न केवल आयुर्वेद विज्ञान व जन-स्वास्थ्य को ही हानि पहुंची है बल्कि विकास के अन्य क्षेत्रों पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ा है। उदाहरणतया यदि आयुर्वेद को अपनाया गया होता तो प्रतिवर्ष जो करोड़ों रुपया औषधियों के आयात पर विदेशों को भेजा जाता है, वह बच रहता, बड़े परिमाण में आयुर्वेदिक जड़ी-बूटियों के संग्रह, औषध-निर्माण व वितरण में लाखों बेकार लोगों को कार्य मिलता और देश की बेकारी की समस्या कुछ सीमा तक हल हो जाती, आयुर्वेद के स्वस्थ और सद्वृत्त के प्रचार से जनता का जीवन नियमित व संयमित बनता, जनता में रोगों का प्रसार रुकता, स्वास्थ्य की उन्नति होती और शरीर, मन और आत्मा की प्रसन्नता से उनकी कार्यक्षमता बढ़ती और देश-निर्माण के कार्यों में वे अधिक शक्ति से जुट जाते। इस प्रकार आम के आम व गुठलियों के दाम, दोनों कार्य सिद्ध होते।

किन्तु दुःख है कि हमारी राष्ट्रीय सरकार पाश्चात्य शिक्षा के कुप्रभाव से पाश्चात्याभिमुख हो उठी है जिसके कारण वह आयुर्वेद जैसे उपयोगी शास्त्र की सतत् उपेक्षा करती जा रही है। वर्तमान शासन में आयुर्वेद की जो दुर्दशा हो रही है उससे भारतीय जनता दुःखी हो उठी है और न केवल वैद्य समाज ही बल्कि वैद्येतर व्यक्ति भी इसके विरुद्ध आवाज उठा रहे हैं। गुजरात के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री श्री मनु सुबेदार ने अपने लेख "आयुर्वेद का आर्तनाद" में इस विषम परिस्थिति की ओर जनता व सरकार का ध्यान आकृष्ट करने का सफल प्रयास किया है और सरकार से मांग की है कि वह आयुर्वेद के विकास के लिए तीसरी पंचवर्षीय योजना में कम से कम ५० से १०० करोड़ रुपये तक अवश्य प्रदान करे तभी देश की जनता के स्वास्थ्य की समस्या का सम्यक निराकरण सम्भव है। 'मुम्बई समाचार' ता० १८-८-१९५८ के अंक में एक अग्रलेख द्वारा श्री सुबेदार के विचारों का समर्थन किया गया है और आयुर्वेद को अपनाने पर बल दिया गया है। इसी प्रकार अन्य पत्रों में भी आवाज उठ रही है। यह आवाज दिगन्तव्यापी बन कर जब तक सरकार के कानों को नहीं फोड़ देती तब तक सरकारी नीति में परिवर्तन की आशा करना व्यर्थ है। अतः जनता को इस विषय में अधिक जागरूक होने की आवश्यकता है। वैसे तो हमारी सरकार बहुत चतुर है। आयुर्वेद की प्रशंसा में कर्ण-प्रिय शब्दों की उसके शब्द भण्डार में कमी नहीं किन्तु क्रियात्मक रूप में वह आगे नहीं बढ़ पाती। आयुर्वेद विकास के लिए कोई योजना बनाकर उसे क्रियान्वित करने का कष्ट वह उठाना नहीं चाहती। जो योजनायें उसे बनाकर भेजी जाती हैं उनकी ओर ध्यान नहीं देती। वैद्य समाज की एक साधारण सी मांग भी आज तक उसने पूरी नहीं की। अनेक वर्षों से वैद्य समाज यह मांग करता आया है कि केन्द्र में एक स्वतन्त्र सेंट्रल आयुर्वेदिक काउंसिल और आयुर्वेदिक डायरेक्टरेट जनरल की स्थापना करे। किन्तु सरकार के बहरे कानों में वैद्य समाज की यह आवाज नहीं पहुंच पाती या कभी पहुंचती भी है तो धनाभाव का रोना रोकर उसे टाल दिया जाता है। अखिल

भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन तथा उसकी अनेक प्रादेशिक शाखाओं ने सरकार का ध्यान पुनः इस अनिवार्य आवश्यकता की पूर्ति की ओर दिलाया है। देखें सरकार इस पर क्या ध्यान देती है। यह बात तो स्पष्ट है कि केन्द्रीय आयुर्वेदिक काऊंसिल व डायरेक्टरेट जनरल की स्थापना के बिना आयुर्वेद की उन्नति का मार्ग नहीं खुल सकता। अतः यदि सरकार की भावना देश के हित में आयुर्वेद का विकास करने की है तो वैद्य समाज की इस मांग की पूर्ति अविलम्ब की जानी चाहिये। —**स्वामी चेतनानन्द चिदाकाशी**

दिल्ली महामारियों में आयुर्वेद की उपेक्षा

अंग्रेज नहीं चाहता था कि आयुर्वेद जीवित रहे। उसने ऐसी नीति को अपनाया कि एलोपैथी तो भारतीयों में घर करती जाये, और आयुर्वेद का लोप हो जाये। अंग्रेज के जाने के बाद भी आयुर्वेद के प्रति स्वास्थ्य विभाग की नीति में कोई परिवर्तन नहीं आया। आयुर्वेदिक चिकित्सा शिड्यूल्ड कास्ट की जिस श्रेणी में पहले थी, ग्यारह वर्ष व्यतीत हो जाने पर आज भी उसी में है।

भारत की राजधानी दिल्ली में कुछ वर्ष पूर्व पीलिया फूट पड़ा था, राज्य अधिकारियों ने उसकी रोकथाम व चिकित्सा में किसी भी वैद्य व हकीम का परामर्श व सहयोग न लिया।

ऐलोपैथिक चिकित्सा द्वारा जब रोगियों को लाभ न हुआ तो उन्होंने देशी चिकित्सा का सहारा लिया। इस पर जब ऐलोपैथिक हस्पतालों और डिस्पैंसरियों में रोगियों की भीड़-भाड़ छंट गई तो ऐलान कर दिया गया कि डाक्टरों ने पीलिया पर काबू पा लिया है।

इसके बाद भारत में 'फ्लू' आया। दिल्ली की स्टेज पर फ्लू नाश का ड्रामा आरम्भ हुआ, किन्तु इसकी कास्ट में भी किसी कुर्ता धोती धारी वैद्य को व अचकनधारी हकीम को न लिया गया। और जब देशी चिकित्सा द्वारा फ्लू की रोकथाम हो गई तो एक दिन पत्रों में छप गया कि डाक्टरों ने फ्लू पर काबू पा लिआ है।

तिथि २६-८-५८ को दिल्ली कार्पोरेशन की एक स्पेशल मीटिंग हैजा पर विचार करने के लिये हुई, मेयर ने बताया कि हैजे का टीका लगाने के लिये डाक्टरों की ७० टीमें बना दी गई हैं।

डाक्टरों की इन ७० टीमों में सभी पैंट बुशर्टों वाले डाक्टर थे। धोती कुर्ता वाला वैद्य और अचकन पहनने वाला हकीम एक भी न था। कुछ दिन पूर्व अशोका होटल के मैनेजर ने अशोका होटल में एक एम० पी० को इसलिये न घुसने दिया था कि वह धोती कुर्ता पहने था। जब एक एम० पी० अशोका होटल में न घुस सका, तो इन डाक्टरों की ७० टीमों में कोई वैद्य व हकीम भी कैसे प्रवेश पा सकता था।

चीन में टीका लगाने को कोई बड़ा कार्य नहीं माना जाता, वहां पर ऐसी आवश्यकता होने पर, वहां के ३ लाख चीनी वैद्यों को वह काम सौंप दिया जाता है। और वास्तव

में टीका लगाना कोई बड़ा काम नहीं जब कि यह केवल इंट्रा मस्कुलर हो। डाक्टरों के कम्पौंडर, नर्सें, होम्योपैथिक डाक्टर, आयुर्वेदिक और यूनानी के चिकित्सक उतना ही अच्छी तरह टीका लगा लेते हैं जितना कि डिग्री प्राप्त ऐलोपैथिक डाक्टर।

परन्तु दिल्ली के हैल्थ विभाग के पदाधिकारियों को दिल्ली के १२०० से अधिक रजिस्टर्ड वैद्य हकीमों में से कोई भी इतना योग्य दिखाई न दिया कि वह उसका सहयोग प्राप्त करते।

इन्हीं हैजा के दिनों में टैक्निकल कमेटी की एक मीटिंग आई० डी० हस्पताल में हुई, जिसमें डा० एस० एस० चढ़ा, डिप्टी डायरैक्टर जनरल हैल्थ सर्विसिज, कर्नल भंडारी, असिस्टैन्ट डायरैक्टर मिलीटरी मैडिकल दिल्ली एरिया और एम.एस. बूपा राय हैल्थ आफीसर दिल्ली कार्पोरेशन व श्री पी० आर० नायक कमिश्नर कार्पोरेशन सम्मिलित हुए।

किन्तु इस मीटिंग में भी कोई वैद्य व हकीम इसी प्रकार प्रवेश न पा सका जैसे अफ्रीका में कोई काला किसी गोरों की बस में प्रवेश नहीं कर सकता, क्योंकि वहां बसों में बोर्ड लगे रहते हैं कि कालों को प्रवेश की आज्ञा नहीं।

यदि डाक्टरों की वैद्यों के प्रति घृणा न होती तो इस मीटिंग में तिब्बिया कालेज के जन्मदाता अजमल खां के वंश का कोई न कोई व्यक्ति अवश्य होता। हमदर्द दवाखाना, तिब्बिया कालेज, जाम्या मिलिया, तिब्बी अंजुमन दिल्ली, इन्द्र प्रस्थीय वैद्य सभा दिल्ली, इंचार्ज म्युनिसिपल डिस्पैंसरीज़, आयुर्वेदिक यूनानी बोर्ड दिल्ली के रजिस्ट्रार व चैयरमैन और कम से कम स्वास्थ्य मंत्री के आयुर्वेदिक परामर्शदाता में से कोई न कोई अवश्य इस टैक्नीकल कमेटी की मीटिंग में निमंत्रित होता। किन्तु यह भारत है। ऐलोपैथिक चिकित्सक, देशी चिकित्सकों को चिकित्सक मानने को ही तैयार नहीं।

इसके बाद एक और घटना भी हुई। आजाद मैडिकल कालेज के प्रिंसीपल श्री कर्नल तनेजा ने ६० छात्रों की सेवायें अर्पित कीं, यह कालेज अभी हाल ही में बना है। और लेडी हार्डिंग कालेज की छात्राओं ने भी इस सेवा कार्य में हाथ बटाने की इच्छा प्रकट की। यह सेवायें स्वीकार कर ली गईं और आजाद मैडिकल कालेज के मेम्बरों और लेडी हार्डिंग कालेज की कलियों को हाथों में सिरिंज देकर हैजा का शिकार करने के लिये भेज दिया गया और तिब्बिया कालेज के छात्र तथा दयानन्द महिला आयुर्वेदिक कालेज की छात्रायें मुँह बसोर कर रह गये। किसी ने पूछा ही नहीं कि तुम दिल्ली में रहते हो।

किन्तु इन युवक शिकारियों के निशाने चूक गये। १-६-५८ को दिल्ली की कार्पोरेशन की मैडिकल रिलीफ कमेटी की मीटिंग में श्री बलराज खन्ना, डा० रूपलाल बतरा व एक दर्जन अन्य सदस्यों ने स्वास्थ्य विभाग पर आरोप लगाया कि टीके सुइयों को शुद्ध किये

(शेष कवर के दूसरे पृष्ठ पर नीचे)

दिल्ली में आयुर्वेदीय वनस्पति वाटिका की योजना

वैद्यरत्न कविराज श्री प्रतापसिंह जी, भूतपूर्व आयुर्वेदीय परामर्शदाता स्वास्थ्य विभाग, भारत सरकार, ७।२४, पूर्वी पटेल नगर, से सूचना मिली है कि दिल्ली में श्री धूत-पापेश्वर तथा साँडू ब्रदर्स की सहायता से एक वनस्पति वाटिका लगाने का प्रवन्ध श्रीस्वामी जीतपुरी जी कर रहे हैं, जिसमें निम्न प्रकार से औषधियों के लगाने की योजना है। इस विषय में वैद्य महानुभाव अपनी सम्मति या परामर्श कविराज जी के पास भेज सकते हैं।

नं० १—**बाढ़** : जंत्र, जयन्ती, करंजलता, करौंदा, सेवती, गुलाब, श्रीवास, बज्री, नागफणी, नागदमन, पिया, बांसा, कनेर, सर्व प्रकार की चंपा, हरश्रृङ्गार, गुगल, मदन फल।

नं० २—**वृक्ष** : मौलश्री, अशोक, अर्जुन, शोभांजन, सरीष, तनिश, बद्री फल, तुणी, बेतसादा, पलाश, जीवंती, बहेड़ा, धात्री फल, पाढल, तेजबल, नागपुष्पक, कायफल, बेल, अर्णी, कपिथ, रासनादिवर्गीय, अंजीर, पीतशाल, गौदंत्या, निगुंडी, नीम, बकायण, पारिभद्र, कचनार, चन्दन, कर्पूर, साल, मोरवा, धातकी, मंजिष्ट, लोध्र, शियोनाक, काकड़ाशृंगी, पदम काष्ट, देवदारु, चीड़, बेदमुष्क, खदिरसार, इरीमेद, (खदर) वट, अश्वत्थ, उदुम्बर, पाकड़, चिंचा, क्षीरणी, महुवा, घमभारी, भारंगी, जूही, कडी, बबूल, जूही, सुपारी, सालपर्णा, सागोन, बरना, कुड़ा, कमीला, शालमली, भल्लातक, कदम, दंती, द्रवंती, रेठा, अखरोट, बादाम, मालकंगनी, ।

नं० ३—**लता कन्द** : गुंजा, शिवलिंगी, बिंबी, पटोल, मूर्वा, पाठा, बन्दाल, अजमोदा, तुलसी सर्व प्रकार, मुगदपर्णी, माषपर्णी, शालपर्णी, पृष्टपर्णी, श्रीपर्णी, कौंच, गिलो, सारिवा, अरलू, सतावारी, पाढर, विदारीकंद, घोशातकीकंद, वाराहीकंद, कुकड़याकंद, नाई-कंद, कुदालीकंद, सुराकंद, कीथे, घनौटा, भूईकीला, सिलयाली तथा अनेक दूसरे कंद।

नं० ४—**पुष्प** : मालती, सर्व प्रकार गुलाब, मोगरा, नरगिस, सीसन, शतवरमा, मोतिया, बेला, मरुआ, दोना, लाल, गुलखेरा, गुलाबासी, गुड़हल, हुलहुल, नागपुष्प, सूर्यमुखी।

नं० ५—**ऋतु-बन ओषधियां** : बनफशा, जल नीम, मीठा नीम, चक्रमर्द, सुदर्शन, बकुन, चित्रक, द्रवंती, काकमाची, काक जंघा, लिंगवर्धनी, विषखपरा, गौखरू, कुशा, कांस, उशीर, तृण ज्योति, रोषा, घास, दूर्वा, पंचबला, बहुफली, मरोड़ फली, वृहनी वृहज डन्डी, शंखपुष्पी, द्रौणपुष्पी, शतपुष्पी, बापूना, अश्वगन्धा, अजगन्धा, गोजिव्हा, तालमखाना, लजालू, परवानबेद, समुद्र सोख।

नं० ६—**जल्य वनस्पतियां** : नीलकमल, पद्म, कुमुदनी, नीली उतपल, जलनीम, जल पिंपली, जल धन्या, जल चिचड़ी, जल कुंभी, दूब नरसल।

किं हृदयशब्दो मस्तिष्कस्यापि वाचकः

लेखक—पं० शङ्करलाल शर्मा, भिषगाचार्य, फतेहपुरम्

आयुर्वेदीय शारीरशास्त्रे एतादृग्यो बह्व्यः संज्ञाः सन्ति यासु विदुषां भिषजाम् मतविभिन्नता वर्तते। यथा—सिराधमनीहृदयादयः। प्रकृते हृदयशब्दे काचिद् विचारणा विधीयते। केचनायुर्वेदशास्त्रमर्मज्ञाः सम्मान्याः भिषजो हृदयशब्देन मांसपेशीमयं रक्तविक्षेपयन्त्रं (यमाधुनिका डाक्तराः "हार्ट" इति कथयन्ति) गृङ्गन्ति। अपरे पुनः हृदयशब्देन मस्तिष्कस्यापि ग्रहणं कुर्वन्ति। इत्थं मतभेदमालोक्य ममापि चेतसि विचारोऽयं समुदभूत् यदस्मिन् विषये शास्त्रसिद्धान्तालोचनपुरःसरं किञ्चिल्लिखामि। तत्र हृदयवर्णने सर्वतः प्राक् सुश्रुतशारीरस्थानान्तर्गतचतुर्थाध्यायं लक्षीकृत्य विचारः प्रस्तूयते—"शोणितकफप्रसादजं हृदयं, यदाश्रया हि धमन्यः प्राणवहाः, तस्याधोवामतः प्लीहा, फुफ्फुसश्च, दक्षिणतो यकृत् क्लोम च, तद्विशेषेण चेतनास्थानम्, अतस्तस्मिंस्तमसावृते सर्वप्राणिनः स्वपन्ति। भवति चात्र—

> **पुण्डरीकेण सदृशं हृदयं स्यादधोमुखम्**
> **जागृतस्तद् विकसति स्वपतश्च निमीलति ॥ सु० शा० ४ अ**

उक्तसन्दर्भस्यायमाशयः—शोणितञ्च कफश्च तयोः प्रसादात् सारभागाज्जातमुत्पन्नमेवंभूतं हृदयमिदं मांसपेशीमयं, मांसञ्च रक्तप्रसादमेव। एवमेव कफस्य सारभागोऽपि हृदयाद्बहिस्तदावरणप्रच्छदद्वयमध्यवर्ती स्निग्धमसृणमयद्रवविशेषः। यस्य हृदयस्य आश्रयाः = आसमन्तात् श्रयन्तीति आश्रयाः प्राणबहाः = अत्र प्राण शब्देन "अग्निः सोमो वायुः सत्वं रजस्तमः पञ्चेन्द्रियाणि भूतात्मेति प्राणास्तान् वहन्तीति प्राणवहाः धमन्यः। अत्रेदं समालोचनीयम्—पोष्ये, पोषकरसे च सूक्ष्मरूपेणोक्ता अग्न्यादयः सर्वे भावा विद्यन्ते। यतो हि रसे रसाग्निरूपेण वह्नेः सत्ता, स्वयञ्च सोमगुणात्मक एव, वायुरपि तत्रास्त एव धातूनां गतिस्तदधानत्वात्। सत्वादयोऽपि तत्र सूक्ष्मरूपेणैव सन्ति। एवमेवायुर्वेदे "भौतिकानीन्द्रियाणि" इति महर्षिसम्वादादेव पाञ्चभौतिके रसे सूक्ष्मरूपेण पञ्चेन्द्रियाणामपि सत्ता विद्यते। भूतात्मनस्तु सत्ता जीवच्छरीरे सर्वत्रैव वर्तते।

हृदयस्याधस्तात् वामतः प्लीहा तथोभयोः पार्श्वयोः फुफ्फुसौ । दक्षिणतो यकृत् क्लोम च । तद्धि हृदयं विशेषेण चेतनास्थानम्—अयमभिप्रायः यद् हृदयं यावज् जीवम् रक्तविक्षेपग्रहणाभ्यां शरीरमुपकुरुते तदवश्यमेव चेतनाया अधिष्ठानमस्ति यतो रक्त विशेषतो जीवाधिष्ठानम् यथोक्तम्—

जीवो वसति सर्वस्मिन् देहे तत्र विशेषतः ।
वीर्ये रक्ते मले यस्मिन् क्षीणे याति क्षयं क्षणात् ।।

यदि हि निमेषमात्रमपि हृदयं स्वकार्यं मुञ्चेत्तदा जीवनव्यापारमेव नश्येत्, अत एव महर्षिभिर्हृदयमेव विशेषेण चेतनाधिष्ठानमिति लिखितम् । यदा च हृदयं तमसावृतं भवति तदा सर्वे प्राणिनः स्वपन्ति, तमस आवरकत्वात्—अस्यायमाशयः— प्राणिशरीरेषु स्वल्पाधिकमात्रया सत्वं, रजः, तम इति त्रयो गुणाः सर्वदैव तिष्ठन्ति, एवञ्च यदा सत्त्ववृद्धिर्भवति तदा ज्ञानोदयः, रजसि वृद्धि गते सति रागादयः, तमसि प्रवृद्धे च सति तस्यावरकत्वे प्रमादालस्यनिद्रादयो भावाः प्रादुर्भवन्ति । अतो हृदये यदा तमोगुणाधिक्यं भवेत्तदा प्राणिनः स्वपन्ति । इतः पूर्वं हृदयस्योत्पत्तिस्थानकार्याणि प्रतिपादितानि, सम्प्रति तदाकारः कीदृश इति प्रतिपादयति ग्रन्थकृत्—पुण्डरीकेणेति—मानवशरीरे हृदयाकृतिः अधोमुखकमलसदृशा वर्तते, तच्च जाग्रतो मनुष्यस्य विकसति—प्रसरणशीलम् भवति स्वप्नावस्थायाञ्च संकुचितं भवति । अत्रेदं तत्वम्—मनुष्यः प्राण्यन्तरो वा जाग्रदवस्थायाम् स्वतन्त्रा विभिन्नानि कार्याणि विदधाति तेन हृदयमपि अधिकं कार्यशीलं भवति, कार्याधिक्येन च तस्य प्रसरणमपि अधिकमेव भवति, सैषा हृदयावस्था 'विकसति' इति क्रियया ध्वनिता । स्वप्नावस्थायाञ्च न स्थूलशरीरेण मानवो वाऽन्यो वा प्राणी किमपि कार्यं करोति अतो हृदयमपि जाग्रदवस्थातुल्यं प्रसरणशीलन्न भवति अपितु संकुचितमेव, सैषा क्रिया "निमीलति" इति क्रियया ध्वनिता । "निमीलति" इति क्रियया नहि तस्य व्यापारावरोधार्थो भवितुं शक्यते यतो हि हृदयं पुण्डरीकेणोपमितम्—तच्च यथा सूर्योदये सति प्रस्फुटितं भवति अस्तङ्गते सति च संकुचितम् परं तस्मिन् या स्वाभाविकैका क्रिया वर्तते सा द्वयोरप्यावस्थाविशेषयोर्नैवावरुध्यते, रुध्येत चेत् शीघ्रमेव तस्य पूतित्वं स्यात् परन्नच तथा दृश्यते एवमेव हृदयमपि जाग्रदवस्थायाम् प्रसरणशीलं स्वप्नावस्थायाञ्च संकुचितं सदपि निमेषमात्रेणापि सैवावरुणद्धि ।

इत्थमुक्तसुश्रुतीयसन्दर्भसमालोचनेनेदं प्रतीयते यद् हृदयशब्दो रक्तविक्षेपयन्त्रस्य मांसपेशीनिर्मितस्यैवावबोधको नतु मस्तिष्कस्यापि ।

एवमेव चरकाचार्येणापि हृदयशब्दस्यार्थः उक्तरूपेणैवाङ्गीकृतस्तथा हि—

"षडङ्गमङ्गं विज्ञानमिन्द्रियाण्यर्थपञ्चकम् ।
आत्मा च सगुणश्चेतश्चिन्त्यञ्च हृदि संश्रितम् ।।च० सू० अ० ३०।४।।

अस्य व्याख्यायाम् श्री चक्रपाणिराह—षडङ्गानि बाहुद्वय जंघाद्वय शिरोन्तराधिरूपाणि

स्य .तत्षडङ्गसंगम् । अङ्गञ्च षडङ्गादतिरिक्तं समुदायरूपमवयविरूपं वा । अङ्गमिति वक्तव्ये षडङ्गविशेषणं षण्णामङ्गानामपि हृदयाश्रितत्वप्रतिपादनार्थम् । तथा विज्ञानम्, इन्द्रियाणि=चक्षुरादीनि, शब्दादयश्च, आत्मा ज्ञानाधिकरणस्वरूपः, मनस्तद्विषयाश्चिन्त्यादिकञ्च हृदये स्थितम् । यदि हि हृदयेन मस्तिष्कस्यापि बोधः स्यात्तदा षडङ्गमिति न ब्रूयात्, षडङ्गेषु शिरसोऽपि निर्देशात्, मस्तिष्कश्च शिरस्येव तिष्ठति । यतो "मस्तिष्कस्य अर्धाञ्जलिः" इत्यत्र मस्तिष्कः शिरोगत स्नेह इति चक्रपाणिः । तथोक्तपद्याग्रिमपद्य व्याख्यावसरे च "अथ कथममी षडङ्गादयो हृदयाश्रया यावता "हृदयं द्व्यंगुलञ्च" इति वक्ष्यति, अङ्गञ्च षडंगाश्रयं महत्, इन्द्रियाण्यपि स्वाश्रयचक्षुरादिस्थितानि, अर्थाश्च बाह्यद्रव्याश्रयिणः, आत्मा च अनाश्रितोऽपि व्यापक एव, तद्गुणश्च विज्ञानञ्चात्मन्येवाश्रितम्, मनोऽप्यनाश्रितमात्मगतम् चिन्त्यञ्च ध्येयादि न हृदीत्याशंक्याह—

प्रतिष्ठार्थं हि भावानामेषां हृदयमिष्यते
गोपानसीनामागारकर्णिकेवार्थचिन्तकैः ।
तस्योपघातान्मूर्च्छायं भेदान्मरणमृच्छति ॥

तेन षडंगादीनां हृदयाश्रितत्वं नाधाराधेयभावेन, किं तर्हि, तदन्वयव्यतिरेकानुविधायित्वेनेति दर्शितं भवति ।

यद्यपि चक्षुरादीनीन्द्रियाणि शिर आधारीकृत्य स्थितानि तथा च चरकः—

प्राणाः प्राणभृतां यत्र श्रिताः सर्वेन्द्रियाणि च ।
यदुत्तमाङ्गमङ्गानां शिरस्तदभिधीयते ॥

इति सत्यम् तथापि चक्षुरादीनि हृदि अन्वयव्यतिरेकभावेनैव स्थितानि । यतो हि हृदयमिदं निमेषमात्रमपि यदि स्वकार्यन्न कुर्यात्तदा सकलमपि शरीरं मृतकल्पं स्यात् । शरीरे यच्चेतनालक्षणम् तद् हृदयेनैव नतु मस्तिष्केन, शरीरस्य तदधीनत्वात् ।

आधुनिका ज्ञानकेन्द्रं मस्तिष्कं मन्यन्ते, आयुर्वेदे तु चेतनायाः प्रधानस्थानं हृदयम्, यतो हृदय एवात्मा मनश्च निवसतस्तथा तदर्था अपि । शिरस्थितानीन्द्रियाणि भौतिकानि, भूतानि चाचेतनानि, तानि आत्ममनोभ्यामन्तरा न स्वविषयग्रहणसमर्थानि भवन्ति । यदात्मसहितश्चेतो य यमिन्द्रियमधिश्रयते तदैव तत्तदर्थग्रहणसमर्थं भवति तत्तदिन्द्रियम् । आत्ममनसोश्च प्रधानं स्थानं हृदयमेव । यद्यपि भेलसंहितां प्रमाणीकृत्य केचिद्विद्वांसो भिषजो मस्तिष्कमपि मनः स्थानं मन्यन्ते, तथा हि—

शिरस्तात्वन्तरगतं सर्वेन्द्रियपरं मनः ।
तत्रस्थं तद्धि विषयान् इन्द्रियाणां रसादिकान् ॥

समीपस्थान् विजानाति त्रीन् भावांश्च नियच्छति ।
तन्मनःप्रभवञ्चापि सर्वेन्द्रियमयं बलम् ।।

परमुक्तभेलसंहितापद्यस्यार्थो यदीत्थं क्रियेत तदा नाग्निवेशाद् कश्चिद्भेदः—मनसो हृदयमेव स्थानं प्रधानेन परं यदा तत् स्वस्रोतोभिः शिरःस्थितानि चक्षुरादीनीन्द्रियाण्यधितिष्ठति तदा शिरोगतमपि भवत्येव, सर्वेन्द्रियेषु मनसः सूक्ष्मत्वमपि "अतीन्द्रियं पुनर्मनः सत्त्वसंज्ञकञ्चेत इत्याहुरेके, तदर्थात्मसंपदायत्तचेष्टं चेष्टाप्रत्ययभूतमिन्द्रियाणाम् ।।४।। च०सू०८ अ० ।४। गीतायामपि "इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः" अतः शिरः स्थित सदेव चक्षुरादीनाम् विषयान् गृह्णाति चेतः, सर्वेन्द्रियेषु यदर्थग्रहणसामर्थ्यमस्ति तच्च मनः प्रभवमेव तस्माद् द्वयोस्तन्त्रकारयोः मते न कश्चिद्विरोधः ।

उन्मादापस्मारातत्त्वाभिनिवेशरोगेषु यो हृदयशब्दप्रयोगः समायातः सोऽपि मांसपेशीमयस्य द्विअंगुलप्रमाणस्य रक्तविक्षेपयन्त्रस्यैव वाचकः । यत एतेषु व्याधिषु प्राधान्येन मनो दूषितं भवति । मनोदूषणहेतवस्तु रजस्तमोवर्धका आहारविहारादयः तैः दुष्टं मनः स्वस्थानं हृदयमपि दूषयत्येव, अत एव सम्प्राप्तौ—

"तैरल्पसत्वस्य मलाः प्रदुष्टाः बुद्धेर्निवासं हृदयं प्रदूष्य ।
स्रोतांस्यधिष्ठाय मनोवहानि प्रमोहयन्त्याशु नरस्य चेतः ।। च०चि० अ० ९

तथा—

धमनीभिः श्रिताः दोषाः हृदयं पीडयन्ति हि ।
सम्पीड्यमानो व्यथते मूढो भ्रान्तेन चेतसा ।।६।। च० चि० १० अ०

……………………………………

हृदयं समुपाश्रित्य मनो बुद्धिवहाः सिराः
हृदये व्याकुले दोषैरथ मूढोऽल्पचेतनः
विषमां कुरुते बुद्धिं नित्यानित्ये हिताहिते
अतत्वाभिनिवेशं तमाहुराप्ता महागदम् ।। च० चि० १० अ०

विषमद्यविकारेष्वपि पूर्वं मांसपेशीमयं रक्तविक्षेपयन्त्र हृदयमेव पीड्यते, अत एव सर्वतः प्राक् तद्रक्षार्थमुपायं निर्देशञ्च प्रतिपादयत्याचार्यः—"आदौ हृदयं रक्ष्यं तस्यावरणं पिबेद् यथालाभम्" च० चि० अ० २७ तथा मद्यविकृतावपि पूर्वं मद्यं उक्तरूपं हृदयं प्रविश्य चेतोविकारं जनयति । तथा हि—

"मद्यं हृदयमाविश्य स्वगुणैरोजसो गुणाम्
दशभिर्दश संक्षोभ्य चेतो नयति विक्रियाम् ।।

अत्र मद्यस्य हृदयप्रवेशस्तथा तद्गुणैरोजसो गुणानां ह्रासपूर्वकं मनोविकृतिः प्रति-

गदिता । अत्र हृदयशब्देन मांसपेशीमयं उरोऽन्तराल रक्तविक्षेपयन्त्रमेवाभिप्रेतमाचार्यस्येति अग्रिमपद्यात् सम्यगवबुध्यते, तथाहि—

रसवातादिमार्गाणां सत्वबुद्धीन्द्रियात्मनाम्
प्रधानस्यौजसश्चैव हृदयं स्थानमुच्यते ॥"

अत्राचार्येण रसशब्दस्य प्रयोग कृतः, रसस्य प्रधानं स्थानं हृदयमेव, यतः "रसस्तु हृदयं याति समानमरुतेरितः । सतु व्यानेन विक्षिप्तः सर्वान् धातून् प्रयूरयेत्" इत्युक्तम्

ननु बौद्धिककार्याधिक्येन चिन्तादिभिश्च मस्तिष्क एवातिशयेन पीड्यते, ततश्चायमेव चेतनायाः विशिष्टाधिष्ठानमितिचेन्न, शिरः इन्द्रियाणां प्राणवायोश्चाश्रयमिति पूर्वं प्रमाणपुरःसरं प्रतिपादितमेव, यदा मनुष्यो भाषणादिकञ्चिन्तादिकञ्चाधिक्येन करोति तदा तत्तदिन्द्रियाधिष्ठानस्य परिश्रान्त्यैव पीडनं भवति परमस्मादेव हेतोर्मस्तिष्कस्य चेतनत्वन्न स्वीक्रियते । एतत्प्रत्यक्षमवलोकितमनेकवारम्, यदोपवासादिभि र्हृदयनैर्बल्यं भवति तदा मस्तिष्कस्यापि नैर्बल्यञ्जायते, स्वस्थे हृदि च शरीरे कस्याप्यङ्गस्यासामर्थ्यन्न भवति कार्यकरणे । किञ्च, चरके त्रिमर्मीयायाम् सिद्धौ महर्षिणा पुनर्वसुनोक्तो वह्निवेशः—"सप्तोत्तरं मर्मशतमस्मिन् शरीरे स्कन्धशाखासमाश्रितमग्निवेश ? तेषामन्यतमपीडायाम् समधिका पीड़ा भवति, चेतनानिबन्धवैशेष्यात् । तत्र शाखाश्रितेभ्यो मर्मभ्यः स्कन्धाश्रितानि गरीयांसि, शाखानां तदाश्रितत्वात् । स्कन्धाश्रितेभ्योऽपि हृद्वस्तिशिरांसि, तन्मूलत्वात् शरीरस्य । च० सि० अ० ९।३। अनेन चरकीय सन्दर्भेणापीदमवबुध्यते यन्मर्मप्रदेशेषु विशेषेण चेतनत्वं वर्तते परं सकलमर्मापेक्षया हृद्वस्तिशिरोमर्मस्वेव विशेषेण चेतनत्वं प्रतिपादितमाचार्येण, तत्रापि पूर्वं हृन्निर्देशात् विशेषेण हृदि चेतनत्वं स्वीकृतम् । उक्तगद्यव्याख्यायाम् श्री चक्रपाणिराप्याह—हृद् वस्ति शिरांसि गरीयांसीति सम्बन्धः, एतद्गरीयस्त्वे हेतुमाह—तन्मूलत्वाच्छरीरस्येति = तदाश्रितत्वात्, तथा च हृदयाश्रितत्वं शरीरस्य "तत्र हृदये दश धमन्यः" इत्यादिना "नाभ्यामारा इव" इत्यन्तेन दर्शयिष्यति । यद्यपि मर्मान्तराण्यपि विशेषेण प्राणाश्रयाण्युक्तानि यथा—दशैवायतनान्याहुः प्राणाः येषु प्रतिष्ठिताः । शङ्खौ मर्मत्रयं कण्ठो रक्तं शुक्रौजसी गुदम् । (सु० अ० २६) इत्यनेन, तथापि शंखादीनि न शरीराश्रयभूतानि यथा हृदयादीनि, तेन प्राणायतने समानेऽपि उक्तशरीराश्रयविशेषादिह हृदयादीनामेव प्रधानमुच्यते, किञ्च प्राणाश्रयत्वमपि यथा हृदयादीनान्न तथा शङ्खादीनाम् "सप्तोरँ मर्मशतं यदुक्त् शरीरसंख्यामधिकृत्य तेषु । मर्माणि वस्ति हृदयं शिरश्च प्रधानभूतान्यृषयो वदन्ति" च० चि० २६ अ०

किञ्च, हृद्यभिहते यथा मृत्युकराणि लक्षणानि प्रादुर्भवन्ति न तथा शिरस्यभिहते । तथा हि—"हृद्यभिहते कासश्वासबलक्षयकण्ठशोषक्लोमापकर्षण जिह्वा विनिर्गम मुखतालुशोषापस्मारोन्मादप्रलापचित्तनाशादयः स्युः, शिरस्यभिहते च मन्यास्तम्भार्दितचक्षुविभ्रममोहोद्वेष्टनचेष्टानाशकासश्वासहनुग्रहमूकगद्गदत्वाक्षिनिमीलनगण्डस्पन्दनजृम्भणलालास्रावस्वरहानि-

वदनजिह्मत्वादीनि"। च० सि० अ० ६। उक्तलक्षणेषु हृद्यभिहतस्यैव बलवन्ति लक्षणानि सम्भवन्ति, यतश्चित्तनाशे सति मृत्युरेव भवति, शरीरे मन एव क्रियावत् नात्मा नेन्द्रियाण्यपि तथाहि—"अचेतनं क्रियावच्च मनश्चेतयिता परः। युक्तस्य मनसा तस्य निर्दिश्यन्ते विभोःक्रिया"। च० शा० १ अ०। अन्यान्यपि जिह्वानिर्गमप्रभृतीनि मृत्युसूचकान्येव। शिरस्यभिहते तु मन्यास्तम्भार्दितादयः कष्टप्रदा व्याधय एव समुद्भवन्ति ये सम्यक् चिकित्सया सद्यः कालान्तरे वा दूरीभवन्ति। अतएव—

"हृदये मूर्ध्नि वस्तौ वा नृणां प्राणाः प्रतिष्ठिताः।
तस्मात्तेषां सदा यत्नं कुर्वीत परिपालने॥ च०सि० ६ अ

इत्यत्रापि हृदयप्राधान्यख्यापनायैव पूर्वं हृदयनिवेशो विहितः। यद्याचार्याणाम् मस्तिष्कमपि हृदयमिष्टं स्यात्तदा तैः पृथक् कथन्नं निर्दिष्टम्। किञ्च यदि मस्तिष्कमपि हृदयमिष्टं भवेत्तदाऽन्तर्वत्न्यास्तृतीये मासि द्विहृदयत्वमेव किमित्युक्तम्। पूर्वत एव संविद् हृदयं रक्तविक्षेपहृदयाभिधञ्चेति द्विप्रकारं विद्यमानत्वात् तदा चतुर्हृदयमिति वाच्यं स्यात् परन्तथा नोक्तमत एव ज्ञायते मांसपेशीमयं रक्तविक्षेपयन्त्रमेव हृदयं हृदयशब्देन प्रसिद्धमायुर्वेदे यमाधुनिकालोपैथीशास्त्रे "हार्ट" इति व्यवह्रियते।

आचार्यो वाग्भटोऽपि सुश्रुताचार्यवत् हृदयस्य सीमानम् निर्दिशति तथाहि—

.......................द्वारमाशयस्य च।
सत्वादिधाम हृदयं स्तनोरःकोष्ठमध्यगम्॥१३॥ अष्टांग शा० अ० ४

तथा अष्टांगहृदयस्य सर्वांगसुन्दराव्याख्यायाम् केनचित् प्राचीनाचार्येणाप्युक्तम्—

हृदयं मनसः स्थानभोजसश्चिन्तितस्य च।
मांसपेशीमयं रक्तपद्माकारमधोमुखम्॥
योगिनो यत्र पश्यन्ति सम्यग्ज्योतिः समाहिताः।
रसो यः स्वच्छतां यातः स तत्रैवावतिष्ठते॥
ततो व्यानेन विक्षिप्तः कृत्स्नं देहं प्रपद्यते।

एवञ्च तिसृष्वपि संहितासु हृदयशब्देन प्रसिद्ध हृदयस्यैव ग्रह्यात्तथा सुश्रुतस्यायुर्वेददीपिकाव्याख्याकर्तारः श्री घाणेकर महाभागाः क्रियाशारीरस्य लेखका श्री रणजीतरायमहाभागाश्चापि हृदयशब्देन प्रसिद्धहृदयस्यैव ग्रहणं कुर्वन्ति नतु मस्तिष्कस्यापि अतो ज्ञायते हृदयशब्दो हृदयस्यैव वाचको नतु मस्तिष्कस्यापीति विस्तरेणालम्।

त्रिषष्टि दोषाणां भेदवर्णनम्

— कविराज वैद्य श्री नेत्रपाल शास्त्री, आयुर्वेदाचार्यः —

दोषा एव हि सर्वेषां रोगानामेककारणम्।

अतस्तानेव दोषान् वृद्धिक्षयभेदेनाह—

अतः परं दोषा वृद्धिक्षयविभेदतः पृथक् त्रीन् विद्धि ससर्गस्त्रिधा तत्र तु तान्नव ।

पृथग्व्यस्तान् स्वप्रमाणाधिकान् त्रीन् दोषान् रोगहेतून् विद्धि । वातो वृद्धः, पित्तं वृद्धं, श्लेष्मा वृद्धः एवं त्रयो दोषाः । संसर्गस्त्रिधा तत्र संसर्गे नव दोषभेदान्स्वप्रमाणाधिकान् विद्धीति कथं नव भेदाः इत्याह— त्रीनेव समया वृध्या षडेकस्याऽतिशायने ॥

एको वातपित्ताभ्यामधिकाभ्यां, द्वितीयो वातकफाभ्यामधिकाभ्यां, तृतीयः पित्तश्लेष्माभ्यामधिकाभ्याम् इति ।

वातो वृद्धः, पित्तं वृद्धतरम् । पित्तं वृद्धं वातो वृद्धतरः । कफोवृद्धः पित्तं वृद्धतरम् । पित्तं वृद्धं, कफो वृद्धतरः । कफो वृद्धो, वातो वृद्धतरः ; वातो वृद्धः, कफो वृद्धतरः । एवं षट् संसर्गभेदान् विद्धि ।

त्रयोदश सभस्तेषु षड् द्वयेकातिशयेन तु । एकं तुल्याधिके, षट् च तारतम्यविकल्पनात् । तरतमयोर्भावस्तारतम्यम् । कस्य तारतम्यम् ? प्रकृतत्वात् सन्निपातस्थदोषाणाम् । तारतम्यस्य विकल्पनं भेदस्तारतम्यविकल्पनं तस्मात्सन्निपातस्थदोषाणां वृद्धिरूपाणां षड् भेदान् विद्धि, यथा—वातो वृद्धः, पित्तं वृद्धतरं कफो वृद्धतमः । वातो वृद्धः, कफो वृद्धतरः, पित्तं वृद्धतमम् । पित्तं वृद्धं, कफो वृद्धतरः वातो वृद्धतमः । पित्तं वृद्धं, वातो वृद्धतरः, कफो वृद्धतमः । कफो वृद्धः वातो, वृद्धतरः, पित्तं वृद्धतमम् । कफो वृद्धः पित्तं वृद्धतरम्, वातो वृद्धतमः ।

एतासां च लक्षणं मुनिरध्यगीष्ट, तथा ग्रन्थः—

सन्निपातज्वरस्योर्ध्वं त्रयोदशविधस्य हि ।
प्राक्सूत्रितस्य वक्ष्यामि लक्षणं वै पृथक् पृथक् ॥
भ्रमः पिपासा दाहश्च गौरवं शिरसोऽतिरुक् ।
वातपित्तोल्वणे विद्यार्ल्लिगं मन्दकफज्वरे ।
शैत्यं कासोऽरुचिस्तन्द्रा पिपासा दाहरुग्व्यथा ।
वातोल्वणे विद्यार्ल्लिङ्गं पित्तज्वरे विदुः ।
छर्दिः शैत्यं मुहुर्दाहस्तृष्णा मोहोऽस्थिवेदना ।

मन्दवातेऽध्यवस्यन्ति लिंगं पित्तकफोल्वणे ।
सन्धि-अस्थि-शिरसः शूलं प्रलापो गौरवं भ्रमः ।
वातोल्वणे स्यादनुगे तृष्णा कण्ठास्यशुष्कता ।
रक्तविण्मूत्रता दाहस्वेदतृड् बलक्षयः ।
मूर्छा चेत् त्रिदोषे स्याल्लिङ्गं पित्ते गरीयसि ।
आलस्यारुचिहृल्लासदाहवमि - अरतिभ्रमैः ।
कफोल्वणं सन्निपातं तन्द्राकासेन चादिशेत् ।
समं दोषैस्त्रिभिर्वृद्धैः सन्निपातस्य लक्षणम् ।
मुहुर्दाहो मुहुः शीतं कर्णक्ष्वेडनपार्श्वरुक् ।
मोहश्छर्दि दिवा निद्रा रात्रौ जागरणं तथा ।
प्रतिश्याच्छर्दिरालस्यं तन्द्रारुच्यग्निमार्दवम् ।
हीनवाते पित्तमध्ये चिह्नं श्लेष्माधिके मतम् ।
हारिद्रमूत्रनेत्रत्वक्दाहस्तृष्णा भ्रमो ऽरुचिः ।
हीनवाते मध्यकफे लिङ्गं पित्ताधिके मतम् ।
शिरोरुग्वेपथुः श्वासः प्रलापश्छर्द्यरोचकौ ।
हीनपित्ते मध्यकफे लिङ्गं वाताधिके मतम् ।
शीतकं गौरवं तन्द्रा प्रलापोऽस्थिशिरो ऽतिरुक् ।
हीनपित्ते वातमध्ये लिङ्गं श्लेष्माधिके मतः ।
वर्चोभेदोऽग्निदौर्बल्यं तृष्णा दाहो ऽरुचि र्भ्रमः ।
कफहीने वातमध्ये लिङ्गं पित्ताधिकं मतम् ।
श्वासकासः प्रतिश्यायो मुखशोषोऽतिपार्श्वरुक् ।
कफहीने पित्तमध्ये लिङ्गं वाताधिके स्मृतम् ।

पंचविंशतिमित्येवं वृद्धः,

एवं पूर्वोक्तेन प्रकारेण पंचविंशतिसंख्यान् दोषभेदान् वृद्धैर्दोषैर्विद्धि ।

क्षीणैश्च तावतः ।

क्षयावस्थैर्दोषैस्तावतस्तत्परिमाणान् पंचविंशतिसंख्याकान् दोषभेदान् विद्धि ।

यथा—वृद्धैः पृथक् त्रीन् दोषभेदान् तथा क्षीणैः पृथक् त्रीनित्यादि ग्रन्थे वृद्धिशब्दस्थाने क्षीणशब्दो निपात्यः ।

पंचविंशतिदोषभेदान् क्षीणैर्दोषैर्विद्धि । एकैकवृद्धिसमताक्षयैः षट् ते—

(शेष पृष्ठ ५६५ पर देखिये)

आयुर्वेद का आर्तनाद

(लेखक—श्री मनु सुबेदार)

[भारत सरकार तथा राज्य सरकारों द्वारा 'आयुर्वेद' जैसे जनहितैषी चिकित्सा-विज्ञान की जो अन्यायपूर्ण उपेक्षा की जा रही है उससे भारतीय जन-समुदाय दुःखी हो उठा है। आज न केवल आयुर्वेदीय ही बल्कि आयुर्वेदेतर पत्र-पत्रिकायें भी इस अन्याय के प्रति अपनी जन-प्रतिनिधि-मूलक आवाज उठा रहे हैं। श्री मनु सुबेदार जैसे भारत के सुविख्यात अर्थशास्त्री की दृष्टि भी इस ओर गई है और 'आयुर्वेद के आर्तनाद' से उनका हृदय पीड़ित हो उठा है। अपने सुप्रसिद्ध गुजराती पत्र "अखण्ड आनन्द" के जुलाई ५८ के अंक में आपने अपने अमूल्य विचारों को व्यक्त करते हुए जो लेख प्रकाशित किया है उसका हिन्दी रुपान्तर हम यहाँ प्रकाशित करते हैं। इस आयुर्वेद प्रेमी विद्वान की हृदयोद्‌गमा आर्तवाणी पण्डित जवाहरलाल नेहरू तथा कांग्रेस के अन्य कर्णधार सुनेंगे ऐसी आशा है। श्री सुबेदार ने आयुर्वेद का पर्याप्त साहित्य प्रकाशित कर आयुर्वेद की अविस्मरणीय सेवा की है। लेखक का प्रस्तुत लेख वैद्यों की भावना का सही प्रतिनिधित्व करता है। —सम्पादक]

जिस पञ्चवर्षीय योजना को जनता में यह कह कर प्रचारित किया जाता है कि यह जनता की प्रगति के लिये है, उस ४८०० करोड़ की द्वितीय पञ्चवर्षीय योजना में ९५ प्रतिशत लोगों को रोगमुक्त करने के एकमेव साधन आयुर्वेद के लिये केवल ४ करोड़ रुपया ही स्वीकृत किया गया है। यह नगण्य व्यय केन्द्र सरकार तथा अन्य राज्य सरकारें मिल कर करेंगी जिसमें से अधिकांश व्यय कर्मचारियों के बेतन स्वरूप होगा।

तीस करोड़ से भी अधिक मनुष्यों के स्वास्थ्य हिताय अपने कल्याण राज्य की इतनी बड़ी भूल किस प्रकार हुई हैं यह विचार का विषय हैं।

कांग्रेसी नेताओं की आयुर्वेद के प्रति तथा आयुर्वेद को जनता के भविष्य के लिये बहुत सफल चिकित्सा कहने वाले सज्जनों के प्रति श्रद्धा नहीं है। पश्चिमी सभ्यता का ज्ञानाधिक्य होने के कारण पं० जवाहरलाल नेहरू की ऐसी मान्यता है कि पाश्चिमात्यानुसरण ही देश के लिये हितकर है। "आयुर्वेद अपने देश का भण्डार है और उससे करोड़ों मनुष्यों की सस्ती व स्थायी चिकित्सा की जा सकती है।" इस महान शब्द-समूह से वे अनभिज्ञ हैं तथा उनकी आज्ञा का पालन करने वाले लोग उनका ध्यान इस ओर आकृष्ट करने का साहस नहीं कर सकते।

श्री नेहरू को प्राचीन संस्कृति का उत्थान विषैव आभासित होता है तथा अविवेक के कारण अच्छा और बुरा दोनों का उनके द्वारा विरोध हो रहा है।

स्वराज्य मिलने के पश्चात् से अन्य विदेशी व्यवस्थाओं को समाप्त करने और अंग्रेजी भाषा को हटाने आदि के विषय में प्रस्तावादि होते हैं परन्तु विदेशी औषधों के चलन तथा डाक्टरों में परिवर्तन करने की महद् आवश्यकता की पूर्ति नहीं हो रही है। भारत के ६ लाख गावों में जहां निर्धन जनता बसती है, १ डाक्टर, नर्स तथा कम्पाउण्डर की नियुक्ति करने के लिये कम से कम हजार से १२ सौ करोड़ रुपया लगने की सम्भावना है और अभी हमारे पास इतनी धनराशि नहीं है। अतः द्वितीय पंचवर्षीय योजना में तो क्या, ऐसी बीस पंचवर्षीय योजनायें और भी हो जायें तो भी सफलता नहीं मिल सकती। यदि इस समस्या का समाधान करना है तो आयुर्वेद का सहारा लेना चाहिये और आगामी योजना में ५० से १०० करोड़ रुपया आयुर्वेद के लिये स्वीकृत करना चाहिये।

जिन कृषकों के हितार्थ बड़ी-बड़ी बातें बनाई जाती हैं उनकी वैद्यकीय राहत क्यों भूल में रखी जाती है? शहरों के बाहर बसने वाली तीस करोड़ जनता में यदि आयुर्वेद का व्यापक प्रचार किया जाय तो जंगल की इनी-गिनी वनस्पितियों से हजारों रोग मिटाये जा सकते हैं। बेकार कहलाने वाले सैकडों युवकों को आयुर्वेदाध्ययन करा कर गांवों में रखा जाय तो वे जन-सेवा के साथ अपना निर्वाह भी कर सकेंगे। भारत के नष्ट होते जा रहे वनों की रक्षा तथा वनस्पति-परिचय के लिये भीलों आदि को साथ लेकर खोज की जाय तो इन निठल्ले लोगों को काम भी मिलेगा और अन्वेषण भी होगा।

भारतीय शासनारूढ़ कांग्रेस पार्टी विगत दस वर्षों से उक्त कार्य सम्पादित करने में असफल रही है। यदि अब भी भारत की प्रजा के हिताय आवास, निवास व औषध व्यवस्थादि विषयों पर ध्यान न दिया गया तो भावी योजनाओं के प्रति देश की जनता निरुत्साहित हो जायेगी।

पाश्चिमात्यों के पास साधन हैं, वे हर समय अनुसंधान की इच्छा रखते हैं। वे लोग भारत से औषध-निर्माण में प्रयुक्त होने वाला करोड़ों रुपयों का माल ले जाते हैं, परिणाम स्वरूप यहां से चार आने में क्रीत माल कभी चौदह रुपये पर इसी देश में बिकता पाया गया है। उदाहरणतया सर्पगन्धा जो दो हजार वर्ष से आयुर्वेद में वर्णित हैं, को सर्पिना नाम रख कर नवीनौषध निर्माण का नाम दिया है। खाद, कीटाणु नाशक रंग आदि वस्तुयें विदेशों से मंहगे मूल्य पर आती हैं। इन्हीं वस्तुओं का निर्माण हमारे देश में भी हो सकता है पर बात एक ही है कि देश की केन्द्रीय तथा राज्य सरकारें अपने देश की उपयोगी वस्तुओं को काम में नहीं ला रही हैं। यदि आयुर्वेद को सीधी और मजबूत सहायता मिले तो भूमिज सेन्द्रिय द्रव्यों के लिये हमें विदेशों की ओर न देखना पड़े। यही नहीं, इसमें कार्यरत रहने के कारण भारत की काफी मात्रा में बेकारी दूर हो जाय जिसे दूर करने के लिये सरकार अन्य निष्फल प्रयास कर रही है। उससे यह कार्य कई गुना श्रेष्ठ होगा।

आयुर्वेद के विषय में कई प्रकार की बातें कही जा रही हैं जैसे आयुर्वेद का क्या करना। इसीलिये आयुर्वेद को इससे मूलतः अनभिज्ञ डाक्टरों के हाथों में सौंपा जाता है, आयुर्वेदाध्ययन आंगल भाषा में हो तथा उसके साथ आंगल भाषा के अमुक विषय सिखाये जायें, ऐसी बातें भी हुईं। वैद्यों का रजिस्ट्रेशन भी हुआ। आयुर्वेद का गला घोंटने में ऐसी व्यवस्थायें एवं विधान राज्यों की ओर से तैयार किये गए हैं। मुंह बोले मीठे भाषणों के अलावा आयुर्वेद को मनसा-वाचा-कर्मणा सहायता दी जावे ऐसे प्रस्ताव बहुत कम पाये गये हैं। आयुर्वेद की ओर सौतेले भाव का प्रदर्शन तो द्वितीय योजना के ४८०० करोड़ में से केवल ४ करोड़ देकर कर दिया गया है।

विदेशी लोग भारत द्वारा अपनी प्राचीन वस्तुओं का निरादर करने की नीति की प्रशंसा करते हैं, यह भूल भरी धारणा है!

मजदूरों और वेतनधारी कर्मचारियों का नित्य नये कानूनों द्वारा बहुत हित रक्षित किया गया है, परन्तु कृषक बोलते नहीं, अपनी आवाज बुलन्द नहीं करते अतः उन्हें वैद्यकीय सहायता (आयुर्वेदिक तौर पर) देना अनावश्यक समझा जाता है। पर ये ग्रामवासी एक दिन अवश्य समझेंगे कि हमें धोखे में रक्खा गया है, हमारे साथ अन्याय किया गया है।

प्रजा के जीवन के साथ संलग्न आयुर्वेद रूपी कीमती हीरा प्लानिंग कमीशन की नजरों से क्योंकर छुपा रहा यह समझ के बाहर है। या यों मानें कि "आयुर्वेद" पण्डित नेहरू की मान्य पद्धति नहीं, यह मानकर नेहरू को प्रसन्न रखने मात्र के लिये तीस करोड़ जनता के जीवन सूत्र आयुर्वेद को टके का बारहवां भाग स्वीकृत किया है।

पांचसाला योजनायें रशियन प्रयोग हैं और वहां की हू ब-हू नकल यहां की गई है। वहां आयुर्वेद नहीं था अतः यहां भी आयुर्वेद नहीं, अपना पराया समझने की आवश्यकता है। 'परधर्मो भयावह' के अनुसार कहीं यह न हो कि अपना छूट जाय।

हमारे प्रधानमन्त्री पण्डित नेहरू के विषय में अपने एक वक्तव्य में पण्डित शिवशर्मा ने कहा है कि हम पण्डित नेहरू के जीवन को ३ भागों में बांट सकते हैं :—

१—इंगलैंड में विद्याध्ययन।
२—ब्रिटिश जेलों में कैद।
३—क्षुब्ध भारत की संभाल।

उन्हें अपने जीवन में आयुर्वेद के विषय में सोचने का समय ही नहीं मिला और न उनका आयुर्वेद से परिचय है। बिना विचार किये डाक्टर समिति की स्वीकृति हमें दुविधा में डाल देती है।"

संस्कारी हिन्दु कुटुम्ब की जिसने झलक तक नहीं देखी वह क्या जाने कि मेरी दादी परदादी की किसी वैद्य ने चिकित्सा की थी। थोड़ी सी बात पर डाक्टरों के पास जाकर इंजेक्शन लेने दौड़ते हैं, यह हितकर नहीं है।

बम्बई के एक अच्छे कुटुम्ब का किस्सा है। एक पार्टी हो रही थी। अचानक एक बालिका को मूर्छा हो गई। सब इधर-उधर डाक्टर की तलाश में दौड़े। इतने में एक डोकरी आई और देख-दिखाकर प्याज फोड़कर लड़की को सुंघाया, लड़की की मूर्छा ठीक हो गई।

आयुर्वेद में जिसकी मूल है वह औषध-समूह अब नष्ट होता जा रहा है। आज की स्त्रियां ये औषधें और प्रयोग नहीं जानतीं। लेकिन यदि आयुर्वेद को हार्दिक सहायता मिले तो यह सब पुनः ठीक हो सकता है।

मध्यम वर्ग की तो यह स्थिति है कि यदि बीमारी में वह इंजेक्शन और डाक्टरों के चक्कर में आ जायं तो रक्त मूत्रादि परीक्षण और क्ष-किरण के चक्कर में आकर कभी-कभी तो बहू की चूड़ियां तक उतार लेनी पड़ती हैं और रिश्तेदारों से कर्ज लेकर चलाना पड़ता है। मध्यम वर्ग के लिये आयुर्वेद ही एकमेव आशा-स्थल है।

कांग्रेसी बन्धु तथा शासकवर्ग यदि ध्यान से देखें तो उन्हें मालूम पड़ेगा कि आयुर्वेद की कई पत्र-पत्रिकायें निकलती हैं, गुजराती भाषा के प्रायः सभी पत्र हर सप्ताह आयुर्वेद के स्तम्भ प्रकाशित कर जनता को नई प्रेरणा देते हैं। भोजन के गुण-दोष, ऋतुचर्या और व्याविगत उपचारों को गुजराती मासिक प्रकाशित करते हैं। जनता को क्या चाहिये यह पत्रकारों से छिपा नहीं। पत्रकार जनप्रतिनिधि हैं। लेकिन राज्याश्रितों की आँख अभी खुली नहीं। न केवल गाँवों के ही बल्कि शहरों के लोग भी आयुर्वेद की विशेषतया मांग करने लग गये हैं और इस मांग की अवहेलना में निहित रहस्य को कांग्रेसी अब भी समझ जायं तो अच्छा है।

जब से जनता ने मांगना सीखा तब से अनवरत एलोपैथी के लिये मांग होती रही है, ऐसा कहा जाता है आज जनता को आयुर्वेद के लिये एक स्वर में आवाज उठाना आवश्यक है। जिन नेताओं को हमने अपना बहुमूल्य मत दिया है उन्हें लिखकर देना चाहिये कि हम आयुर्वेद के विकास के लिए तुमसे मांग करते हैं। आज तक सरकार ने आयुर्वेद के लिए क्या किया, क्या नहीं किया, क्यों नहीं किया आदि सवाल असेम्बलियों में पूछा जाना चाहिये जिससे मन्त्रियों का यह भ्रम मिट जाय कि प्रजाजन ऐलोपैथी की मांग कर रहे हैं। यह हैं डा० जीवराज मेहता के शब्द—

"पण्डित शिवशर्मा ने कहा है कि आयुर्वेद के लिये सरकारी साहाय्य का प्रश्न एक विशेष समस्या बन गयी है। सरकार का कहना है कि एलोपैथी और आयुर्वेद दोनों पर द्विगुण खर्च नहीं हो सकता। मैं केवल यही कहूंगा कि भारत में एलोपैथी पर जो खर्च किया जाता है निरर्थक और व्यर्थ है क्योंकि वही काम अमेरिका, ब्रिटेन और रशिया में यहां से ऊँचे स्तर पर हो रहा है।"

अद्यावधि भारत में एलोपैथिक चिकित्सा विशेषज्ञों द्वारा न किसी प्रकार की कीटाणु-निवारक औषधियों की खोज हुई है, न कोई नया शल्य और भविष्य में भी यह सम्भव होगा यह भी सन्देहास्पद है। भारत में जो करोड़ों रुपया एलोपैथी के पीछे खर्च होता है वह विदेशों की तुलना में ऊँट के मुंह में जीरा के समान है। लेकिन यही जीरा यदि आयुर्वेद को मिलता तो आयुर्वेद उसमें से हीरा ढूंढकर सामने रखता और अब भी ढूंढने में समर्थ है। यह धनराशि इस प्रकार व्यय होगी कि पाश्चात्य संशोधन को एक अवकाश मिलेगा और दुगुना खर्च भी नहीं होगा।

डा० प्राणजीवन मेहता के शब्दों में आयुर्वेदीय परीक्षायें एवं प्रायोगिक क्षेत्र मानव जीवन को नियमित बना लेता है। स्वस्थ वृत्त द्वारा पवित्रता और दार्शनिकता का प्रतिनिधि उसका सद्वृत्त मनुष्य जीवन को इन्द्रियनिग्रही और नीतिमय बना देता है। यह विधान न केवल एक मनुष्य के लिये अपितु समग्र समाज के लिए हितकर है।

इस प्रकार आयुर्वेद आचार-विचार के द्वारा समग्र सृष्टि अन्तर्भूत बना देता है और जीवन में शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक बन्धनों को समाविष्ट कर लेता है। जिसमें दर्शन, काम, नीति और चिकित्सा शास्त्रों का समन्वय है ऐसे आयुर्वेद का उपदेश जीवन के लिये सर्व श्रेयस्कर मार्ग है।

इस विषय में श्री विनोबा भावे का कथन है कि आयुर्वेद अपने सद्-स्वस्थवृत्त द्वारा लोगों में एक ऐसी क्रिया उत्पन्न करता है जिससे कोई रोगी न हो, जबकि विदेशी औषधें केवल रोग की उपस्थिति में उसका शमन ही कर सकती हैं। इस प्रकार आयुर्वेद जीवन शास्त्र है और जनहिताय विदेशी पद्धति से कई गुणा श्रेष्ठ है, उन्हीं के शब्दों में "आयुर्वेद केवल उत्तम औषधियों का भण्डार या रोग ठीक करने का साधन है, इस प्रकार की लोगों की मिथ्या धारणा को दूर करना नितान्त आवश्यक है और उसे दूर करने का वैद्य समुदाय को सक्रिय प्रयत्न करना चाहिये क्योंकि बीमारी के समय रोग-निवारण एक आवश्यक वस्तु है परन्तु स्वस्थवृत्त की मानव-जीवन को विशेष आवश्यकता है। अतएव जो औषध शास्त्र स्वास्थ्य रक्षा पर भार देते हुये आपद-धर्म के रूप में ही औषधोपयोग के लिये लिखता है वही लोकोपयोगी चिकित्सा शास्त्र सिद्ध हो सकता है। उसकी औषधें श्रेष्ठ एवं शाश्वत लाभकारी होती हैं। विशेषकर हिन्दुस्तान की सी निर्धन जनता के लिये आयुर्वेदीय औषधें सुघड़ और सस्ती हैं।" यह बात प्रजाजन समझ गये हैं फिर भी सरकार की कर्णेन्द्रिय पर जूं तक नहीं रेंगती ? आश्चर्य है।

पेनिसिलीन

आयुर्वैदिक ★ अश्वगन्धा

(लेखक—श्री सुरेशचन्द्र चतुर्वेदी)

भारत के इस असीम औषधि-भण्डार में किसका गुणगान करें, किसका न करें। फिर भी, बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय, आज जिसका यहां वर्णन करना चाहता हूं, वह है असगंध या अश्वगंधा।

इस औषधि के सम्बन्ध में बम्बई मंत्रि-मण्डल के एक सदस्य ने आज की प्रचलित पेनिसिलीन के स्थान पर तत्सम उपयोगी कहा है। बात बहुत बड़ी है, लेकिन छोटी बात का भी स्वरूप-ज्ञान के बिना जब आज कोई विश्वास नहीं करता, तो बड़ी का तो कैसे करेगा ? अतएव अश्वगंधा के उपयोगों पर पाठकों का ध्यान आकर्षित करना आवश्यक हो गया है। इस औषधि की पत्तियां, बीज एवं जड़ का उपयोग साधारण रूप से होता है। प्रचलित सभी रोगों में जड़ का ही प्रयोग करते हैं। इसका स्वाद कड़वा एवं कसैला होता है।

इस औषधि का प्रयोग चूर्ण के रूप में, काढ़े के रूप में, क्षार के रूप में और लेप के रूप में भी होता है।

अश्वगन्धा का चूर्ण यदि ३-३ माशा दिन में दो-तीन बार दूध से सेवन किया जाय तो यह वीर्यवर्द्धक सिद्ध होता है एवं वीर्य की तरलावस्था में उसको बांधने का काम भी करता है। यह परम 'वाजीकर' भी माना गया है। वाजी का अर्थ है घोड़ा और घोड़े के समान शुक्र की पुष्टि एवं दृढ़ता तथा काम वासना को प्रदीप्त करने में सहायक होता है। इसीलिये इसे 'वाजीकर' कहते हैं। 'वाजीकर' होने के कारण ही इसका नाम अश्वगन्धा संस्कृत में निर्दिष्ट है। अश्वगन्धा का अपभ्रंश असगन्ध बोला जाता है। पाठक समझ गये होंगे कि जो औषधि वीर्यवर्द्धक होगी, उसका बलवर्द्धक होना भी स्वाभाविक है क्योंकि धातु की वृद्धि एवं दृढ़ता से ही बल की वृद्धि एवं शारीरिक दृढ़ता भी बढ़ती है। जहां तक नाड़ी संस्थान का सम्बन्ध हैं, इसका बहुत हो चामत्कारिक लाभ होता है। मांसपेशियों को भी सुदृढ़ बना कर शरीर के वजन की भी वृद्धि में सहायक होता है। यह शरीर को तेजस्वी एवं प्रभावशाली बनाता है। जो लोग युवावस्था में ही बुढ़ापा अनुभव करते हैं एवं

जिनका शरीर पतला-दुबला होता है और गाल गड्ढे में धंसे हुए होते हैं, उनके लिये यह 'टानिक' का कार्य करता है ।

जब हम देखते हैं कि असगन्ध धातु की पुष्टि में परम हितकारी प्रभाव दिखाता है तो यह सत्य सिद्ध है कि इसका सेवन करने वाला व्यक्ति चिरकाल वृद्धावस्था से जकड़ा नहीं जा सकेगा और अन्य नाना प्रकार की बीमारियां भी उसे नहीं सतायेंगी ।

असगन्ध के गुण

असगन्ध का चूर्ण ४-६ माशे और घी १ तोला मिला कर दूध से या समान भाग मिश्री मिला कर दूध से या शहद मिला कर दूध से सेवन करने से वीर्य बढ़ता है । स्त्रियों के दूध की कमी की अवस्था में दूध को बढ़ाता है तथा श्वेतप्रदरग्रस्त महिलाओं के कष्ट निवारण में पूर्ण हितकर सिद्ध होता है । इसी प्रकार पुरुषों की प्रमेह की अवस्था में और विशेष कर शुक्रमेह, अर्थात् पेशाब में वीर्य का जाना, पेशाब के पहिले या बाद में या केवल वीर्य का ही मूत्र-द्वार से बूंद-बूंद करके निकलते रहना एवम् स्वप्नदोष की अवस्था में भी यह परम लाभकारी है । स्त्रियों में श्वेत प्रदर, पुरुषों में प्रमेह की बीमारी बड़ी भयानक एवम् कष्टकर तथा अनेक रोगों का मूल कारण होती है । अतः इन रोगों में पैरों में, कमर में, सिर में अर्थात् समस्त शरीर में ही दुर्बलता आ जाने के कारण पीड़ा रहती है, काम करने को मन नहीं करता, शिथिलता, हड्डियों में दर्द, चक्कर, आंखों में अंधेरापन एवम् शरीर फीका पड़ जाना आदि उपद्रव इन दोनों ही बीमारियों में हो जाते हैं । ऐसी अवस्था में भी असगन्ध के ये उपर्युक्त प्रयोग अति लाभकारी सिद्ध हो जाते हैं ।

असगन्ध को घी में भून कर, फिर दूध में उबाल कर, मिश्री मिला कर मासिक धर्म आने के बाद ७ दिनों तक प्रयोग करने से स्त्रियों की वंध्यत्व अवस्था (बांझपन) दूर करने में सहायता मिलती है और पुरुषों की शुक्राणु सम्बन्धी दुर्बलता को भी उसी प्रकार नियमित रूप से सेवन से दूर करने में गुणकारी सिद्ध होता है । पुरुषों को इसका प्रयोग कई महीने तक लगातार करना चाहिये ।

शरीर में मांस एवम् मेद की कमी की अवस्था में, मांसपेशियों की दुर्बलता की अवस्था में, हड्डियों की दुर्बलता की अवस्था में, शरीर में दर्द, विशेषकर कमर और पिंडलियों में दर्द, नसों का तनाव, हाथ-पैरों का सुन्न हो जाना या कांपना, जोड़ों का दर्द, लकवा आदि वायु की बीमारियां असगन्ध के चूर्ण के उपयोग से दूर हो जाती हैं । असगन्ध का चूर्ण ३ माशा, सम भाग घी में मिला कर दिन में दो बार दूध के साथ सेवन करने से ये रोग समूल नष्ट हो जाते हैं ।

उपर्युक्त प्रयोग नींद न आने की अवस्था में, सिर दर्द, बड़बड़ाना, पागलपन, मिर्गी, दिमाग की कमजोरी, चक्कर आना, आँखों के सामने अंधेरापन, स्मरणशक्ति का क्षीण होना, बुद्धिनाश आदि अनेक मस्तिष्क सम्बंधी बीमारियों को नष्ट करके दिमाग की नसों को ताकत पहुंचाने में बड़ा ही हितकर सिद्ध हुआ है । असगन्ध का चूर्ण वातवाहिनी नाड़ियों की विषमक्रिया की अवस्था में उसका

शमन करके कभी-कभी अवसादक प्रभाव भी दिखाता है।

यह शरीर में श्वेतसार अर्थात् स्टार्च का भाग भी बढ़ाता है।

बलवर्द्धक

असगन्ध का चूर्ण आधा से एक माशे तक दूध में उबाल कर तथा घी और मिश्री मिला कर बालकों को सेवन कराने से हमेशा कमजोर रहने वाले बच्चों को तथा जो बालक किसी बड़ी बीमारी के कारण दुर्बल हो चुके हैं, उनको शीघ्र बल प्रदान करता एवम् तेज की वृद्धि करता है।

चूर्ण का दूध से प्रयोग गर्भिणी स्त्री एवं गर्भस्थ बालक के लिये पोषक होता है और प्रसव के बाद देने से भी आई हुई क्षति की पूर्ति करके शरीर को सुदृढ़ बना कर, वायु के रोगों की उत्पत्ति नहीं होने देता।

असगन्ध काढ़ा

यदि असगन्ध का काढ़ा बनाकर पिया जाय तो पेशाब की रुकावट दूर करके पेशाब अधिक लाता है। असगन्ध के क्षार का उपयोग ४ रत्ती की मात्रा से शहद में दिन में तीन बार कराने से कफनाशक एवं श्वास रोग का शामक होता है। असगन्ध के बीजों का चूर्ण यदि अधिक मात्रा में प्रयोग किया जाय तो विष के प्रभाव को नष्ट करता है।

असगन्ध की पत्ती

असगन्ध के पत्तों में जन्तुघ्न तत्व उग्र मात्रा में विद्यमान रहने के कारण इनका अनेक रोगों में प्रयोग होता है। चर्म रोगों में इन पत्तों का मर्दन एवम् लेप करना हितकर होता है। शोथ के भाग में भी इसका लेप प्रभावकारी सिद्ध होता है।

इन्हीं पत्तों की यदि पुल्टिश बनाकर घाव पर लगाई जाय तो वह व्रण और क्षत को नष्ट करती है।

आधुनिक दृष्टि से कीटाणु प्रधान रोगों में, जैसे क्षय की अवस्था में, जन्तुओं को नष्ट करने के लिये इसके पत्तों में से सार भाग निकाल कर उसका मुख द्वारा आभ्यान्तरिक प्रयोग किया जा सकता है। इसी दृष्टि से इसे आधुनिक पेनिसिलीन के तुल्य प्रभावकारी कहा जाता है। इसमें कफनाशक गुण होने के कारण निमोनिया आदि शीत, कफ, जन्मावस्था में आधुनिक दृष्टि से उनके जन्तुओं पर भी इसका फलप्रद प्रभाव सिद्ध होने लगा है।

प्लेग की गांठों में इन पत्तियों का प्रयोग लेप के रूप में किया जाता है।

अन्त में इतना लिखना ही पर्याप्त होगा कि आधुनिक युग में भी असगन्ध बेजोड़ प्रभावकारी औषधि है। वह उपरोक्त नाना प्रकार की बीमारियों से ग्रस्त विश्व की जनता के लिये पूर्ण लाभकारी सिद्ध हो सकती है।

—नवभारत टाइम्स से साभार

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।
रोगास्तस्यापहर्त्तारः श्रेयसो जीवितस्य च॥

× × ×

नगरी नगरस्येव रथस्येव रथी यथा
स्वशरीरस्य मेधावी कृत्येष्ववहितो भवेत्
—चरक

★ ★ ★ पारद अनुसन्धान ★ ★ ★

वैद्यराज श्री महादेव नारायन भिडे बंगलोर के पास क्या देखा

लेखक—वैद्यभूषण पं० ठाकुरदत्त शर्मा, अमृतधारा, देहरादून ।

श्री भिडे जी ३ वर्ष हुये देहरादून में मेरे पास पधारे थे, उन्होंने बतलाया था कि वह पारद के अनुसन्धान में लगे हैं और अब पुराने वैद्यों से परामर्श करने के लिये उत्तर भारत में आये हैं । उनसे निवेदन किया था कि जहां तक आप कर पावें मुझको पता देते रहना । अब उन्होंने एक बद्ध पारद का नमूना भेजा जो कि अग्नि स्थाई और बुभूक्षित था । उस पर मैंने बंगलौर जाने का विचार किया ताकि उनके पास जा कर जो कुछ कर पाये, मैं उसको देखूं । मैं २६ अगस्त को वहां, बंगलौर पहुंच गया, परन्तु वह अब बंगलौर में नहीं बल्कि बंगलौर से १५ मील दूर एक स्थान वाइट फील्ड में रहते हैं । उनका कहना है कि २५ साल और ५ लाख रुपये खर्च करने के पश्चात् वह जारन क्रिया तक पहुंचे हैं और उनको अब विश्वास हो गया है कि शास्त्र में जो कुछ लिखा है वह पूर्ण सत्य है और अब वह खेचरी गुटका बनाने का यत्न कर रहे हैं और वेध संस्कार भी करेंगे । शास्त्र में जो १८ संस्कार लिखे हैं उनमें से १५ संस्कार तक तो पारा औषध व रसायन क्रिया दोनों के वास्ते, अगले संस्कार रसायन के वास्ते हैं । वह कर सकेंगे या नहीं मालिक जाने । कोई रहस्य तो अपना उन्होंने बतलाया नहीं । कौन मेहनत से कमाया हुआ सरमाया दूसरे के सामने डाल सकता है । अभी वह कहते तो बहुत कुछ हैं और देखना चाहिये कि वह कहां तक पूरा उतरता है । जो उन्होंने करके दिखलाया वह वैद्य समाज के लाभार्थ लिखना चाहता हूं । उन्होंने कहा कि मैं अपनी एक लिमिटेड कम्पनी बनाना चाहता हूं जो यह चीजें तैयार करके वैद्यों को पहुंचा सके । सो इसमें काफी धन की आवश्यकता है । जो उसके डायरैक्टर होंगे, उनको जो कुछ मैं कर सकता हूं वह सब उनको बतला दूंगा । मैं कुछ रहस्य अपने पास रखना नहीं चाहता । मैंने उनको कहा कि जो कुछ आप कर सकते हैं वह महासम्मेलन में वैद्यों को दिखलावें तो शायद आप की कम्पनी बन सके । विश्वास होना चाहिये कि क्या हो सकेगा और उससे जनता को क्या लाभ होगा । अस्तु—जो कुछ मैंने देखा वह लिखता हूं ।

साधारण पारद (जर्मन का जो साफ अच्छा होता है) एक शीशे की प्याली में रखा । उस पर पानी डाल दिया और एक चीज थोड़ी थोड़ी एक चिमटी से उठा कर उसमें मिलाई । उससे चिन्गारी भी निकलती थी । २-४ बार डालने से पारा जम गया । ५ मिनट भी न लगे । उन्होंने बतलाया कि अब यह पारा अग्निस्थायी ही है । और बुभूक्षित भी है । जो चीज डाली उसको वह

एसिड शोरा कहते थे। जो वह कहते थे, बड़ी मुश्किल से तैयार होता है। शोला क्यों उठता था उसको मैं नहीं समझ सकता। शायद किसी आजकल की साइंस की भी मदद हो। कुठाली में रख कर आग देकर देखा तो वह अग्निस्थायी था। यद्यपि तेज अग्नि में कुछ कम भी हुआ और हर बार अग्नि देने से थोड़ा कम होना ही बतलाते थे। इसका वजन १४ रत्ती था। अब उसमें ताम्र चूर्ण ३ रत्ती डाल कर आग दी तो १३ रत्ती हुआ। अर्थात् ताम्र सब जारन हो गया और पारा १ रत्ती और कम हुआ। दूसरी बार ४ रत्ती ताम्र-चूर्ण डाला, वह भी जारन हो गया। यह तो सिद्ध हो गया कि स्वर्ण, ताम्र आदि जारन करने के पश्चात् वजन नहीं रहता है। वह कहां जाता है। यह पारद उसको खा जाता है, किसी के समझ में आने वाली बात नहीं है। परन्तु उन्होंने बतलाया कि बुभूक्षित पारा को उन्होंने १२ गुणा अभ्रकसत्व, ६ गुणा स्वर्ण, ६ गुणा ताम्र खिलाया है और कई धातु, रत्न, विष भी जारन किये हैं। उन्होंने कहा कि बिना अग्नि के भी जारन होता है। ट्यूब में पारा डालकर उसमें ताम्र भी डाल दिया, साथ ही शोरे का तेजाब डाल दिया और आग दी। परन्तु उसमें मुझे यह संशय रहा कि ताम्र तेजाब ने न खा लिया हो। बचे हुये भाग में ताम्र है या नहीं, इसको देखना होगा। मैं इसको ले आया हूँ, देखूंगा। वह कहते थे कि तेजाब में घुले हुए ताम्र को पारा खींच लेता है। मैंने पूछा कि पारद अपने रूप में अग्निस्थायी और बुभूक्षित आपने किया है या नहीं, तो उन्होंने उसका भी नमूना दिखलाया और ऐसे पारद पर निम्नलिखित जारन किये हुए नमूने भी दिखलाये। परन्तु उनको बनते मैंने नहीं देखा। सोना, ताम्र, अभ्रक सत्व, वैक्रान्तमणि, लोहा, खपरिया। नमूने देखने से यह निश्चय तो हो नहीं सकता कि इस पर क्या जारन हुआ है। सब पारद ही दिखाई देते हैं। क्योंकि जारन की हुई चीज को निकाला तो जा नहीं सकता। एक बात आश्चर्य की कही कि जो तरल पारद मुझको अग्निस्थायी दिखा है वह ताम्र को पारद बनाया गया है। हीरा जारन किया हुआ पारद भी उन्होंने दिखलाया, उन्होंने बतलाया कि पारद के योग से ही वह हीरे को बिल्कुल मैदे जैसा पाउडर बनाते हैं और फिर उसको बुभूक्षित पारद में जारन करते हैं। यह पारद कितना शक्तिशाली होगा, अनुभव करने से ही पता लग सकता है। कैन्सर भी उससे दूर होना चाहिये। जारन किये हुए सब पारद औषधियों में बरते जाकर उनका गुण देखना भारी काम है। यह भी मान लें कि अभी यह सब कार्य पूर्ण नहीं हुये हैं, कुछ और उन्नति करने की आवश्यकता है तो भी यह तो सिद्ध ही होता है कि पारद एक अनुपम शक्ति है और इससे बहुत बड़े-बड़े अचिन्तनीय काम लिये जा सकते हैं। पारद की सिद्धियों से राजाओं का कार्य होता था। वह ही इतना व्यय कर सकते हैं और वह फिर जनता को देते थे। हमारी सरकार इन बातों पर विश्वास नहीं कर सकती तो वह कैसे इस अनुसन्धान में किसी को लगावे। उनका अनुसन्धान तो यह है कि आयुर्वेदिक औषधियों का विश्लेषण करके डाक्टरी औषधियों में शामिल कर लिया जावे। जब गवर्नमेंट का इस ओर ध्यान नहीं

(शेष पृष्ठ ५५२ पर)

वेदों में आयुर्वेद और उसका वैज्ञानिक विवेचन

ले०--वैद्यराज श्री पं० मोहनलाल शास्त्री, संयुक्त मंत्री अ. भा. आयुर्वेद महासम्मेलन, दिल्ली।

[अस्य लेखस्योपक्रमं संस्कृतभाषायां कर्तुकामोऽपि हिन्दीभाषायां प्रारब्धवान्, यतः सर्वे वैद्यबन्धवः सुकरं मदीय लेखाभिप्रायं ज्ञातुं समर्थाः भवेयुरिति विचार्य प्रचलित-भाषायामयं लेखः ।]

वेदों के सम्बन्ध में समय-समय पर वैद्य बन्धुओं का विचार चलता रहता है कि वेदों में चिकित्सायें हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वेदों में चिकित्सा है और आयुर्वेदिक चिकित्सा है ही वेदों की विभूति, यदि वेदों में न होती तो श्री चरक तथा सुश्रुतादि आचार्य इसे वेदों का अंग या उपांग न बताते।

श्री चरकाचार्य ने आयुर्वेद की "आथर्वणो हि वेदः" कहकर अपने शास्त्र को वेद ही माना है, स्थान-स्थान पर वेदों के अनुकूल चिकित्सायें लिखकर अपने कथन को परिपुष्ट किया है। वस्तुतः वेदों की प्रतिपादित चिकित्सायें आयुर्वेद है पर समय-समय पर भारतीय शास्त्रों पर विप्लव वश आपत्तियाँ आती रही हैं जिसके कारण प्राचीन समय की शृंखला अस्त-व्यस्त होती रही है। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि उस समय इन मन्त्रों का भावार्थ आधुनिक भाष्यों से मिलता था या नहीं।

श्री सायण आदि आचार्य कुछ शताब्दियों के हैं। प्राचीन भाष्यों का कुछ भी पता नहीं चलता पर कुछ ब्राह्मण ग्रन्थ तथा उपनिषद् पुराण आदि मिलते हैं। ये प्राचीन भाष्य कहे जा सकते हैं पर इनमें भी पुराने ढंग से अर्थात् कथानकों के रूप में चिकित्सा सम्बन्धी विषयों का प्रतिपादन किया गया है जिसको इस युग में अधिक महत्व नहीं दिया जा सकता।

आर्य जगत् के लिये वेद तथा इनकी विभूति बपौती है। इस बपौती को बनाये रखना प्रत्येक भारतीय का कर्तव्य है पर बपौती के नाम पर मिथ्या ज्ञान को बनाये रखना भी भूल है। इसका कारण हमारा सूक्ष्म दृष्टि से विचार न करना ही प्रतीत होता है अन्यथा इतने समय तक वेदों पर श्रद्धा बनी रहनी कठिन थी।

सारे संसार की श्रद्धा वेदों के प्रति है। अन्य देशीय भी यह कहते अवश्य सुनाई देते हैं कि सबसे प्रथम वेदों द्वारा ही ज्ञान का आविर्भाव हुआ है और सब ज्ञानों का मूल स्रोत वेद हैं।

आयुर्वेद विज्ञान का मूल स्रोत अथर्ववेद है। इसमें तीन प्रकार से चिकित्सायें कहीं

हैं—दैवोधीन, द्रव्याधीन, संयमाधीन, ये तीनों प्रकार की चिकित्सायें हैं—रोग निवृत्ति के लिये एक प्रकार की चिकित्सा कही जा सकती है क्योंकि जिस प्रकार भी रोग की शांति हो वह एक प्रकार की चिकित्सा है। वस्तुतः रोग का निदान निराकरण होना ही चिकित्सा है। चाहे आत्मबल से, चाहे द्रव्य बल या अपथ्य परित्याग बल से, किसी प्रकार भी शरीर दोषों की साम्यावस्था होना निदान का निराकरण है। इसी सिद्धान्त पर श्री चरक ने "दैवव्यपाश्रयं, युक्ति व्यपाश्रयं, सत्वावजयश्चेति" त्रिविध औषध मानी है।

वेदों का सिद्धान्त है कि यह जगत् अग्नीषोमीय है, यह ही आयुर्वेद शास्त्र का है। श्री चरक सुश्रुतादि आचार्यों तथा अर्वाचीन शारंगधर आदि ग्रन्थकर्ताओं ने भी इसी सिद्धान्त को अपनाते हुये अग्नीषोमीय जगत् कहा है, पर वायु तथा आकाश को जगत् के सृष्टिक्रम में न कहना अनुचित सा प्रतीत होता है। अग्नीषोमीय में जल और पृथिवी का नाम नहीं है। इसका कारण है कि पृथिवी और जल का ज्ञान सोमीय कहने मात्र से हो जाता है। सोम पृथिवी और जल के अतिरेक से बनता है, वायु व आकाश का नाम इसलिये नहीं है कि ये दोनों महाभूत सूक्ष्म या अमूर्त के समान है। सृष्टि मूर्त है इसका संगठन मूर्तों के द्वारा ही होता है पर संगठनकर्ता वायु, संगठन का आधार आकाश है, ये दोनों सूक्ष्म हैं। ये मूर्तों से मिलकर सृष्टिनिर्माण में महाशक्तियां हैं। इन भूतों का कार्य अन्य भूतों की गुण विशेषता उत्पन्न करना तथा उनकी विकृति समुत्पादकत्व है अतः अग्नीषोमीय जगत् कहलाता है। एक विभाग अग्नि, द्वितीय विभाग पृथिवी जल कणों के अतिरेक से सोम विभाग वायु और आकाश दोनों विभागों के लिये आवश्यक है। ये दोनों विभाग पंचमहाभौतिक सृष्टि होने के कारण अन्योन्याश्रित हैं। इनका अन्योन्याश्रित होना इसलिये परमावश्यक है कि अग्नि को ठीक अवस्था में रखने के लिये सोम, सोम को ठीक अवस्था में रखने के लिये अग्नि की आवश्यकता है और जन्मसिद्ध स्वभाव के अनुकूल इनका होना प्राणी का आरोग्य, प्रतिकूल होना रोग है। वायु का प्रकोप दोनों अवस्थाओं में होता है, अग्नि के अतिरेक से सोमाभाव में राजयक्ष्मादि, सोमातिरेक से अग्निमन्द्यादि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। सोम के लिये अग्नि का होना परमावश्यक है। अग्नि

(पृष्ठ ५५० का शेष)

तो वैद्यों को इस काम को अपने हाथ में ले लेना चाहिये। पहली बार अन्त तक सिद्धि प्राप्त करने पर बेशक बहुत खर्च होगा, परन्तु आगे सड़क साफ हो जावेगी। मैंने इससे यह शिक्षा ली है कि ठाकुरदत्त शर्मा धर्मार्थ ट्रस्ट में जो कार्य हो रहा है उसको ज्यादा जोर से किया जावे और जितना कार्य हमसे हो सके हम भी करें। ट्रस्ट में पारद के अतिरिक्त दूसरी धातुओं पर भी अनुसन्धान कर रहे हैं। पारद अनुसन्धान का कार्य कनखल में श्री नारायण स्वामी भी कर रहे हैं। अब वहां भी जाकर देखना है कि उन्होंने कहां तक सिद्धि प्राप्त की है। वह भी मुझको मिले थे और कहते थे कि छः मास और हैं कि मैं पारद को सिद्ध कर लूंगा। कार्य जारी हैं, कभी कुछ मेंसीर को दिखला ही सकेंगे।

के बिना सोम दूषित श्लेष्मा होता है और अग्नि के लिये सोम, इनकी विकृताविकृत अवस्था में वायु संचालन करता है।

इसी उपर्युक्त विषय का समर्थन इस वेद मन्त्र से होता है—

"सोमारुद्रा युवमेतान्यस्मे विश्वा तनूषु अव स्यतं मुञ्चतं यन्नो अस्ति तनूषु बद्धं कृतमेनोअस्मत्।"
ऋग्वेद के सं० ५—१—१८ भेषजानिधत्तम्

सोम अग्नि रुद्र हमारे शरीरों में औषधियों को धारण करें अर्थात् शरीर में आये हुये आहारादि को भेषज रूप दें। हमारी रक्षा करें तथा किये हुये पापों (मिथ्याहारादि) से छुड़ायें। तथाच—

अग्नीषोमाविम सु मे शृणुत वृषणा हवम्,
प्रति सूक्तानि हर्य्यतं भवतंदाक्षुषे यमयः।

इस मंत्र में अग्नि तथा सोम से प्रार्थना की है कि हमको सुख (आरोग्य) देवें, अनेक मन्त्रों से यह ही भाव निकलता है।

वेदों के आधार पर रोगों के निराकरण के लिये आयुर्वेद प्रवर्तक महर्षियों ने भी चिकित्सा के प्रकार त्रय कहे हैं। ये प्रकार भी देखने में भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हैं। वस्तुस्थिति में किसी प्रकार भी रोग को शमन करने के लिये भिन्नता नहीं है किन्तु दोषों को साम्यावस्था में लाने के लिये परमाणुओं का निःसारण या ग्रहण करने में भिन्नता है। इस सम्बन्ध में इतना ही कहना उचित होगा कि "दैव व्यपाश्रय" कह कर दैवाधीन चिकित्सा को विशेषता दी है, यह उचित भी है। अपनी भावना के द्वारा स्वाभाविक परमाणुओं को रोग के शमन के लिये ग्रहण करना हैं, इसको हम आकाशीय चिकित्सा भी कह सकते हैं। भावना के द्वारा परमाणु आकाश से ग्रहण किये जाते हैं। ये परमाणु आकाश में अधिक मात्रा में हवनादि द्वारा उत्पन्न किये जा सकते हैं।

वैसे तो रोगों का सम्बन्ध सोम से है तथापि विशेष सम्बन्ध राजयक्ष्मा से है जिसके सम्बन्ध में श्री चरक के निदान स्थान शोष प्रकरण में "यस्माद्वा पूर्वमासीद् भगवतः सोमस्योडुराजस्य तस्माद् राजयक्ष्मेति" कह कर प्रकट किया हैं।

इसका अर्थ टीकाकारों ने प्रायः "पहले भगवान नक्षत्रपति चन्द्रमा को था अतः भिषग्-वर्ग इसको राजयक्ष्मा कहते हैं" यह किया है। यह अर्थ सर्वथा उचित नहीं है। चन्द्रमा से राजयक्ष्मा रोग का कोई सम्बन्ध नहीं है। चन्द्रमा सूर्य की किरणों के द्वारा प्रकृति स्वभाव से घटता बढ़ता रहता है पर सोम का सम्बन्ध चन्द्रमा से है। चन्द्रमा भी सोमोत्पत्ति का प्रधान कारण है इसीलिये इसका नाम सोम है।

चन्द्र विम्ब, पृथिवी और जल कणों के अतिरेक से निर्मित लोक है, इसमें पर्वतीय जलीय भाग हैं, इस पर सूर्य की रोहिणी नाम वाली सुषुम्णा आदि किरणों का प्रभाव पड़ने से अन्तरिक्ष में सोम उत्पन्न होता है। वह ही औषधियों द्वारा ग्रहण किया जाता है एवं औषधिपति भी कहलाता है। यथा "रोहिणी देवत्या गावः।"

इसका उडुपति या उडुराज भी नाम है। इसका कारण भी पूर्वोक्त के समान है। उडु

शब्द नक्षत्र वाचक तथा जलवाचक है—"उडु नक्षत्रे जले च" "शब्दस्तोम निधिः।" जल का स्नेह-सार सोम है। इसका आधिक्य चंद्रविम्ब में है अतः इसे भी सोम कहा जा सकता है तथापि रोग का सम्बन्ध चन्द्रविम्ब से किसी प्रकार भी नहीं है न ही यह विज्ञानमत हो सकता है। यह सोम या उडुपति शरीर के उसी पदार्थ के लिये है जिसके होने पर राजयक्ष्मा नहीं होता, जल का स्नेहसार होने के कारण उडुपति है।

इस रोग का प्रादुर्भाव हो तो पहले ही जाता है किन्तु प्रत्यक्ष नहीं होता "अव्यक्तं हि लक्षणं तस्य" निदानाचार्यों का मत है और श्री चरक ने भी "पूर्वमासीद् भगवतः सोमस्येति" कहकर इसका समर्थन किया है। प्रथम शरीर के उस अनुपम पदार्थ का क्षय करता है जिसके क्षय होने पर इस दुष्ट रोग का आविर्भाव होता है। "पूर्बमासीत्" यह सत्य विज्ञान की कसौटी पर उतरता है और यह अवस्था अव्यक्त है। चंद्रमा के संबंध में विचार पूर्ण दृष्टि से न देखना हमारी गलती कही जा सकती है। विज्ञान को अनुचित कल्पनाओं से सदैव बनाये रखना अनुचित ही नहीं कर्तव्य हीनता है। विचार करने पर कठिन समस्यायें सुलझ जाती हैं और चिकित्सा करने में भी लाभ पहुंचता है।

सोम पदार्थ का विवेचन पूर्वोक्त रीति से हो चुका है, यह शरीर के लिये कहां से और किस प्रकार मिलता है इस पर विचार करना अत्यन्त आवश्यक है। और आयुर्वेद शास्त्र इसके सम्बन्ध में क्या मानता है।

सोम की उत्पत्ति का स्थान अन्तरिक्ष है, भूतल तथा चन्द्रविम्ब से सूर्य की किरणों द्वारा अन्तरिक्ष में एकत्रित होता है। एकत्रित होनें पर पुनः बाल-रश्मियों के प्रभाव से भूतल की वनस्पतियों तथा मनुष्यों को मिलता है।

भगवान वेद का सिद्धान्त यह ही है—"आपोज्योतीरसोमृतमिति"। इसके कम होने के कारण ये हैं, अभिघात, क्षय, कोप, शोक, ध्यान और क्षुधा। यथा श्रीसुश्रुत "अभिघातात् क्षयात् कोपाच्छोकाद् ध्यानाच्छ्रमात् क्षुधः, ओजः सक्षीयते।" यहां पर क्षय की न्यूनता कही जा सकती है न कि सर्वथा क्षय। सर्वथा क्षय में प्राण नहीं रहते। यही इस रोग का विप्रकृष्ट निदान है इसी से इसका प्रारम्भ है। "पूर्वमासीद् भगवतः सोमस्येति" श्री चरकाचार्य का वाक्य सर्वथा उपयुक्त है।

इसकी अल्पता में यदि अयथावलमारम्भादि मनुष्य करने लगे तो वायु प्रकुपित होकर पित्तश्लेष्मा को विकृत कर देता है और इसके त्रिदोषज रूप को व्यक्त कर देता है। ये साहस, सन्धारण, क्षय विषमाशन सन्निकृष्ट निदान है। स्नेह के बिना वायु प्रकोप से स्रोतों का निरोध होता है [illegible] निरोध से रक्तादि का क्षय होता है यथा—"स्रोतसां सन्निरोधाच्च रक्तदीनां च संचयात्, धातूष्मणां चापचयाद् राजयक्ष्मा प्रवर्तते।" इति

इसका प्रधान स्थान हृदय है यथा श्री चरक—"हृदितिष्ठति यच्छुद्धं रक्तमीषत्सपीतकम्। ओजः शरीरे संख्यातं तन्नाशान्ना विनश्यति" पुनः यह ही ओजः "ओजोवहा शरीरेस्मिन् विधम्यन्ते समन्ततः येनौजसा वर्त्तयन्ति प्रीणिताः सर्वजन्तवः य हृते सर्वभूतानां जीवितं नावतिष्ठते।" तात्पर्य यह हुआ कि हृदय में

ष्ट विन्दु परिमित सदैव रहना चाहिये। हां हृदय से अर्द्धांजलि परिमित ओजः वह धमनियों द्वारा समस्त धातुओं के परिपोषणार्थ शरीर में व्यापक रहता है। पूर्वोक्त अष्ट-विन्दुओं में न्यूनता न होनें के लिये प्रतिक्षण सोमाणुओं को द्रव्य द्वारा अथवा अन्तरिक्ष अथवा अन्य विधि द्वारा ग्रहण करना चाहिये। अन्यथा शरीर रक्षा होना कठिन है।

तात्पर्य यह निकला कि इस पदार्थ की शरीर में अल्पता न होने दे। अल्पता होने पर इस रोग का आविर्भाव होता है तदर्थ द्रव्यों से इस ओजः का संचय करे, परं द्रव्यों से संचय करने में समय लगता है और द्रव्यों में भी घृत, दुग्ध वनस्पति अश्वगन्धादि का चुनना परमावश्यक है क्योंकि सोम सर्वत्र ही होता है पर उसकी विशेषता तथा अल्पता द्रव्यों में होती है। इसके अनुसार शरीर में सोमोत्पन्न होता है अतः शास्त्र ने द्रव्यों में मास को विशेषता दी है। श्री चरक तथा सुश्रुत के राजयक्ष्मा चिकित्सा प्रकरण में चिकित्सा का प्रारम्भ मांसों से किया है अन्य द्रव्यों की अपेक्षा इसमें अधिक मात्रा में तथा अल्प समय में उत्पन्न होता है। यथा:—"रसान् स्नेहोपसंहितान् स्निग्ध आजं रसं पिबेत्।" इति।

द्रव्यों में वनस्पतियों की अपेक्षा दुग्ध, घृत और मासों में है तथापि इसका अधिक मात्रा में ग्रहण करने के लिये वेदों में इस रोग की तथा इस रोग से बचने के लिये विशेष चिकित्सा कही है। यह बात नहीं है कि वेदों में द्रव्य चिकित्सा नहीं है, द्रव्यों से भी चिकित्सा है जिसका वर्णन श्री चरकाचार्य ने धों की चिकित्सा के अनन्तर किया है। इसकी विशेषता इसलिये कही जाती है—"आरोग्यार्थी प्रयोजयेत्" यह श्री चरक का गौरवपूर्ण वाक्य हैं।

यथा प्रयुक्तया चेष्ट्या राजयक्ष्मा पराजितः।
तां वेदविहितामिष्टिमारोग्यार्थी प्रयोजयेत्॥

आकाशीय सोम प्रातःकाल सूर्योदय से पहले ग्रहण किया जा सकता है पर इसे भी अधिक मात्रा में नहीं लिया जा सकता अतएव अधिक मात्रा में सोम—ओजः—ग्रहण करने की विधि वेदों के आधार पर उपर्युक्त कही है। इसका विवेचन इस प्रकार है।

ओजः तीन महाभूतों पृथिवी, जल और अग्नि (पार्थिव अथवा सौर) के अतिरेक का समन्वय है। यज्ञ तथा अग्निहोत्रादि से पूर्वोक्त यह समन्वय (कम्पौंड) बनकर स्थानाकाश में बिखर जाता है। तत्रस्थ मनुष्यों में इसके परमाणु श्वास तथा अन्य प्रकार से रोम कूपों द्वारा शरीर में पहुंचते हैं। यह ओजोरूप स्नेह तेजोमय सुलभ हो जाता है। इसकी पूर्ति होती रहती है।

इसकी कमी प्रतिक्षण होना सम्भव हैं कि मनुष्यों की शरीर की पेशियां सदा से संघर्षमय होती है, संघर्ष में इसके लिये जितनी उष्णता की आवश्यकता है उस परिमाण से बढ़ जाती है। परिमाण से बढ़ने पर उत्पतनशील होने के कारण इसकी कमी होना स्वाभाविक है।

इस सोम (ओजः) का अन्तरिक्ष में एकत्रित होने का वर्णन किया जा चुका है। इसके एकत्रित होने में कारण द्वय हैं—एक सूर्य की किरणें तथा दूसरा यज्ञादि। अन्य अग्नियों की गर्मी से भी वाष्प के रूप में

अन्तरिक्ष में पृथिवी कण जलकण एकत्रित हो जाते हैं पर घृत से इनके कण जाने पर अधिक उत्तम अति स्निग्ध सोम निर्मित होता है।

वैदिक कर्मकाण्ड का स्वास्थ्य से सम्बन्ध है अन्यथा प्रपंचमात्र बन जाता है। वेदों के विषय में प्रपंच कहना किसी प्रकार भी उचित नहीं है, हमें प्रपंच सा प्रतीत होता है। इसका कारण हमारी विचारहीनता रही है।

आपः और सोम पृथक् पृथक् पदार्थ हैं। आप: केवल जलकणातिरेक हैं। सोम पृथिवी कण जलकण और सूर्यरश्मि के अग्निकणों के अतिरेक वाला संयुक्त पदार्थ है। श्री चरक "अन्तरिक्षभवा आपः" उपर्युक्त कणों के इससे मिश्रित होने पर "सौम्या खल्वापोऽन्तरिक्ष प्रभवा:" सोम युक्त आपः कहलाता है। यह श्री चरक के मत से सोम पदार्थ है और जीवनप्रद अमृत है।

यह पदार्थ अन्तरिक्ष से गिर कर जंगम तथा स्थावर पदार्थों को पनपाता है। यह श्री चरक ने स्पष्ट शब्दों में कहा हैं—"यथा अन्तरिक्षाद् भ्रश्यमाना: भृष्टाश्च पंचमहाभूतविकारगुणसमन्विता जंगमस्थावराणां भूतानां मूर्तिरभिप्रीणयन्ति।" इति

इसके पतन का समय विशेष रूप से उषःकाल है। उषाकाल में अन्तरिक्ष में अधिक मात्रा में एकत्रित रहता हैं अत: वेदों में उषा के प्रति प्रकरण भरे पड़े हैं। अरुणोदय के समय संसार को श्वास द्वारा शरीर की रक्षा अर्थात् ऐसे भयंकर रोगों सें बचने के लिये मिलता है। वेद में सोम, उदक, घृत के नाम से इसी पदार्थ को कहा है। यह इस अथर्ववेद के मन्त्र से स्पष्ट है—

"अश्वाबतीर्गोमिती न उषासो वीरवती:
सदमुच्छन्तुभद्राः।
घृतं दुहाना विश्वत: प्रपीता यूयं पात
स्वस्तिभिः सदा नः॥
अथर्वकाण्ड ३-४, १७-६६

इस मन्त्र में घृत नाम से सोम को कहा है। इसी प्रकार—

"आपो मद्रा घृतमिदायं ओसन्नग्नीषोमौ-
विभ्रत्याय इत् ताः।
तीव्रोरसो मधु पृचा मरंगम आपा प्राणेन
सह वर्चसागमेत्॥
अथर्वकाण्ड ३,३,१३,६४

इस मन्त्र से पूर्वोक्त भाव सर्वथा स्पष्ट हैं और अन्यत्र वेदों में अनेकधा वर्णन है और सूर्य की रश्मियों द्वारा इसी पदार्थ से रोगों का नाश होता है यथा वेद—"उद्यन्नादित्य:क्रिमीन् हन्तु" इति अथर्वकाण्ड २-६-३२-६७। श्री चरक ने भी इसको घृत की उपमा दी है। यथा "सर्पिवर्ण मधुरसं" इति।

यह उषः पान तथा अरुणोदय के समय सूर्योपासना प्राणायाम आदि इस रोग से बचने का सर्वोत्तम उपाय हैं पर रोग होने पर सोम को अधिक मात्रा में ग्रहण करने के लिये हवन विधि को श्री चरकाचार्य ने द्रव्यों के उपायों के अनन्तर विशेषता दी है।

इस विधि के विवेचन से पूर्व सोम शरीर के लिये किस प्रकार उपयोगी तथा शरीर में क्या पदार्थं है। प्रत्यक्ष में पंचमहाभौतिक सप्तधातु समुदाय शरीर है। पुनः सोम पदार्थ

क्या हो सकता है, इसका रोग से क्या संबंध है इन बातों का अन्वेषण करना परमावश्यक है।

सोम ही ओज है जिसके कारण शरीर स्वस्थ और बलयुक्त रहता है। यह शरीर में सप्तधातुओं को साम्यावस्था में रखता है। इसका निर्माण सूर्य की रश्मियों द्वारा तेज के रूप में होता है। शरीर के प्रत्येक कण में व्यापक है। इसके अभाव में शीर्ण होने लगता है। शीर्ण होना राजयक्ष्मा है। ज्वर का आविर्भाव हो जाता है। यथा सुश्रुत "तेजः समीरितम्।"

ओजः और सोम स्थान भेद के कारण पृथक् कहे जा सकते हैं। आकाश में उस स्थान के अनुकूल तत्रस्थ परमाणुयुक्त होने पर सोम, शरीर में शरीर के अन्य परमाणु युक्त होने पर ओज। यह एक प्रकार का स्निग्ध पदार्थ है और इसकी मात्रा अन्य धातुओं की अपेक्षा अष्टबिन्द्वात्मक अर्द्धाञ्जलि समस्त शरीर में है और धातुओं में व्यापक है। व्यापक होने के कारण प्रत्यक्ष होना कठिन है यथा दीपक की ज्योति: से समुत्पन्न स्नेह को तत्रस्थ आकाश में पृथक् करना कठिन ही नहीं असम्भव सा है। अथवा व्यापक वस्तु को भिन्न समझना अनुचित है जिसमें व्यापक है वह वस्तु ही समझना उचित है यथा सुगन्धित फूलों की पंखुड़ियां, सुगन्ध भी इसी के समकक्ष पदार्थ है अतः सुगन्ध को पुष्टिवर्धन माना है—"नित्यपुष्टां करोषिणी" मिति वेदपाठः। वस्तुतः यह तेजः पुञ्ज स्नेह होता है। इसी प्रकार ओजः का पृथक् करना असम्भव है। यह शरीर में ही नहीं अन्य द्रव्यों में भी है। घृत दुग्ध और वनस्पतियों में भी है। वहां पर भी यह पृथक् नहीं किया जा सकता। पृथक् न होने में कारण इसका व्यापक तथा सूक्ष्म मात्रा में होना है। इसी स्नेह को तेज युक्त लेने के लिये खुले आकाश में सूर्य के समक्ष "भर्गो देवस्य धीमहि" कहा जाता है। इसका सम्यक् विवेचन भगवान सुश्रुताचार्य ने किया है। यथा "तत्र रसादीनां शुक्रान्तानां धातूनां यत्परं तेजस्तत् खल्वोजः तदेव बलम्" अपिच "ओजः सोमात्मकं स्निग्धं शुक्लं शीतं स्थिरं सरं विविक्तं मृदु मृत्स्नं च प्राणायतनमुत्तमम्। देहः सावयवस्तेन व्याप्तो भवति देहिनाम्, तदभवाच्च शीर्यन्ते शरीराणि शरीरिणाम्। इसका अभिप्राय संक्षेप में पूर्वोक्त है तथापि—'प्राणायतन' पाठ विशेष ध्यान देने योग्य है। इसके रहते हुए प्राण रहते हैं। न होने पर प्राण चले जाते हैं। अतः वस्तुस्थिति में यह ही अमृत है।

आयुर्वेद के शास्त्र जो इस समय मिलते हैं उनका सिद्धांत वेदों के अनुकूल रहा है। आचार्यों ने अनेक स्थानों में स्वस्ति वाचनादि का वर्णन किया है। इससे निश्चय होता है कि आयुर्वेद वेदों की चिकित्सा है। वेदों में इस यक्ष्मा की निवृत्ति के लिये उपनयन संस्कार से लेकर सदैव हवनादि करने का विधान है—"ओजो मे देहि" कहकर प्रार्थना की गई है।

हवन करने की औषधियों का भी वर्णन है। इनके साथ २ द्रब्यों के तथा अवशिष्ट चरुओं का (अवशिष्ट सामग्री) भक्षण करने का भी विधान है। इन विषयों पर वैद्य समाज

को ध्यान देना चाहिये और उन वस्तुओं के समन्वय को भली प्रकार जांचना चाहिये अन्यथा भविष्य में आयुर्वेद का उद्धार होना कठिन हो जायगा ।

हवन कुण्ड के अर्थात् वेदी के समीप दो पात्र रखे जाते हैं जिनका नाम प्रोक्षणीपात्र और प्रणीता पात्र हैं । हवन करते समय प्रणीता पात्र में श्रुवास्थित अवशिष्ट घृत डाला जाता है । यह घृत अग्नि की ज्योतिः से समार्जित होता है । इसे यजमान को भक्षण के लिये दिया जाता है। "प्रणीततः पाकेन रूपरसान्यथाभावापन्ने पदार्थें क्षिप्ते निवेसिते निहिते च शब्दस्तोम निधिः" । इसमें ओज की मात्रा अधिक होती है । इससे यक्ष्मा की निवृत्ति होती है । इसे कई रोगियों पर मैंने अनुभव किया है । यह अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हुआ । श्री चरक के पूर्वोक्त कथन का अभिप्राय यह भी हो सकता है—घृतों द्वारा हवन से समुत्थित ओजः का ग्रहण करना आकाशीय चिकित्सा कही जा सकती है क्योंकि अन्तरिक्ष के सोम के सदृश इसका निर्माण हो जाता है । यह भी घृत चिकित्सा का ही भेद है ।

श्री चरकादि आचार्यों ने इस रोग की चिकित्सा के सम्बन्ध में मर्दन के लिये तैल, खाने के लिये घृत और मांसों का विशेष वर्णन किया है । इन तैल घृत और मांसों के साथ वानस्पतिक औषधियों का प्रयोग किया है । इस प्रकार के निर्माण में रहस्य है । उदाहरणार्थ तैल में दुग्ध का प्रयोग सोम समुत्पादक विधि है । यतः रोमकूपों द्वारा भी सोम शरीरों में पहुंचाना है । ये अनुसन्धान थे । इनके अनुसन्धानकर्ता महर्षि चरक सुश्रुतादि आचार्य थे । अनुसन्धान कहने मात्र से नहीं होता करने से होता है । दुःख का विषय तो यह है कि बहुत से ग्रन्थों के प्रयोग वैद्य समाज भूल सा गया है या समय के परिवर्तन के कारण घृणा कर बैठा है ।

श्री चरकाचार्य के अतिरिक्त श्री सुश्रुताचार्य ने घृतों का निर्माण पशुओं के मल से किया है । इसका आधार अथर्ववेद अवश्य होगा किन्तु अभी तक अन्वेषण नहीं किया जा सका है । पर इसका अनुभव अवश्य किया है । यथा सुश्रुताचार्य—"अजाशकृन्मूत्रपयोघृतासृङ्मांसालयानि प्रतिसेवमानः, शकृद रसा गोश्वगजाव्यजानां क्वाथा मिताश्चापि तथैव भागैः, गोश्वव्यजेमेणखरोष्ट्रजातै, शकृद्रसक्षीररसक्षतोत्थैरित्यादि ।" इसका कारण यही प्रतीत होता है जैसे खाद से वृक्षादि परिपुष्ट होकर चन्द्र किरणों द्वारा समुत्पन्न सोम अधिक ग्रहण करता है उसी प्रकार मनुष्य को भी खाद आवश्यक है । पुष्पों में गन्ध होना प्रमाण है । गन्ध ओजोयुक्त तथा उत्पतनशील है । वह भी इसी प्रकार का पदार्थ है अतः श्री चरक—"गन्धानामुपसेवनैः" कहा है ।

इन घृतों का मैंने प्रयोग किया है । उससे अनेक रोगी स्वस्थ हुए हैं । शोक के साथ कहना पड़ता है कि वैद्य समाज ने इस ओर ध्यान देना नहीं चाहा । चाहिये तो यह था कि हमारे शास्त्रों की प्रत्येक औषध का प्रयोग कर बी० सी० जी० जैसी अहितकर औषधियों का निराकरण कराते । जनता

इससे मुग्ध होकर आयुर्वेद के प्रति भक्त बनती, पर चित्र का पट धुंधला रहा।

भारतीय सभ्यता सदैव से यह रही है कि अपना स्वार्थ संसार की भलाई के पश्चात् रखा है। यज्ञादि से इस प्रकार के परमाणुओं का समुत्पादन केवल अपने लिये ही नहीं किन्तु संसार के लिये होता था। यह सिद्धांत समस्त राष्ट्र की भलाई के लिये था। इस कारणवश राष्ट्र को सुरक्षित अवस्था में रखने के लिये यज्ञ विधियों का विधान था जिसे आर्य जाति के लोग ५० वर्ष पहले नितान्त प्रमाद तथा परतन्त्र होने से भूल बैठे थे पर कुछ ऐसी प्रथायें चलती रहीं जिनसे इन सिद्धांतों में से कुछ अंशों का अस्तित्व बना रहा पर विचारहीनता आ गई, रूढ़ीवाद पनपता रहा। अतः हमारे सत्य निहित सिद्धान्त लुप्त प्रायः हो गये। यहां तक टीकाकारों ने भी रूढ़ी के भय से सत्य कहना उचित नहीं समझा। अब भी रूढ़ीवाद का प्रबल प्रकोप है। इसके भय से कहने व करने में हिचकिचाते हैं।

पहली शताब्दी के अन्तिम दिनों में एक महापुरुष पैदा हुए जिन्होंने स्वयं तथा अन्यों को स्वतन्त्र विचार करने का अभयदान दिया तथापि हम अब भी भयभीत हैं।

इस भय से जिन प्रयोगों का वैद्य समाज प्रयोग न करे अछूता, अपने शास्त्र का तथा अपने राष्ट्र का अहित कर रहा है, उससे विदेशी चिकित्साओं का प्रभाव बढ़ रहा है और आयुर्वेद का क्षय हो रहा है। वैद्य समाज के आगे आयुर्वेद का क्षय होना, यह अनुचित ही नहीं लज्जा की बात है। रूढ़ीवाद का समय समाप्त हो गया। आयुर्वेद का क्षय न हो अतः वैद्यों को कटिबद्ध होकर निर्भयता पूर्वक उन प्रयोगों पर विशेष ध्यान देना होगा। वे प्रयोग श्री चरक के ये हैं—

शुष्यते क्षीणमांसाय कल्पितानि विधान वित्।
दद्यान्मांसादमांसानि बृंहणानि विशेषतः॥
शोषिणे बर्हिणं दद्याद् बर्हिशब्देन चापरान्।
काकांस्तित्तिरिशब्देन वर्मि शब्देन चोरगान्॥

इन प्रयोगों का अनुभव करना चाहिये। इनका प्रयोग तो दूर रहा, श्री चरक की अन्य औषधियों का भी अनुसन्धान के रूप में प्रयोग नहीं के समान है।

श्री सुश्रुताचार्य के पूर्वोक्त पशुओं के मलों के साथ घृतों का परिपाक, रसोन तथा भल्लातक का प्रयोग चरक की चिकित्सा से अधिक है। श्री चरक ने अपने राजयक्ष्मा चिकित्सा के सम्बन्ध में न मलों का प्रयोग किया है न ही रसोन और भल्लातक का। श्रीसुश्रुत की चिकित्सा अधिक अनुसंधानात्मक है। यथा—"रसोनयोगं विधिवत् क्षयार्तः, भल्लातकं विल्वपुनर्नवं च" श्रीचरक ने भल्लातक को रसायन में रसोन को गुल्म तथा वात व्याधि में प्रयोग किया है, क्षय में नहीं। सम्भव है श्री चरक ग्रन्थ के विप्लव वश कुछ अंश लुप्त हो गये हों।

मांसाद् जीवों के सम्बन्ध में श्री चरक की भांति श्री सुश्रुत ने भी लिखा है। यथा—

काकानुलूकान् नकुलान् विडालान्
गण्डूपदान् व्यालविलेशयान्
गृद्धांश्च दद्यात् विविधैः प्रकारैः
ससैन्धवान् सर्षप तैल भृष्टान्।

अपि च, श्री चरक ने अजा पंचक घृत तथा अजा मध्य वास का वर्णन नहीं किया हैं पर श्री सुश्रुत ने किया है। यह राजयक्ष्मा में अत्यन्त उपयोगी है, यह अनुभव में आया है। अजा पंचक घृत पकाने के अनन्तर अवशिष्ट कल्क रह जाता है, उसमें २० तोला कल्कावशिष्ट में ढाई तोला गुग्गुलू डाल कर श्वास तथा फेफड़ों के दाह में प्रयोग किया गया। अत्यन्त लाभकारी अनुभव में आया। अजापंचक घृत श्री सुश्रुत का है।

अथर्ववेद में इसकी एक औषध 'अंजन' नाम से आई है। वस्तुतः यह प्रणीतपात्र में घृत ही है "आसमन्तात् अनक्ति शरीरं आञ्जन् अक्तुयोग्यं आज्यम्" इस व्युत्पत्ति के द्वारा अंजन घृत है, न कि सुरमा—इसको चिकित्सा में प्रयोग करने पर वैद्यों को अनुभव हो जायगा कि वस्तुतः यह सिद्ध औषध है।

अथर्ववेद में—"पूतिगन्धसहितं मत्स्यं आशयेत्" सायण भाष्य है। प्रकरण भी राजयक्ष्मा का है। मत्स्य के सम्बन्ध में भी श्री चरक श्री सुश्रुत दोनों आचार्यों ने लिखा हैं, इस पर विचार करना उचित होगा। सम्भव है पूतिगन्ध सहित मत्स्य इस रोग को लाभ पहुंचाती हो।

वैद्य समाज से निवेदन हैं कि आलस्य छोड़ कर अपने शास्त्रों के प्रत्येक वाक्य पर गवेषण बुद्धि से विचार करे। कुछ प्रचलित औषधियों के द्वारा रोग की चिकित्सा करना विज्ञान को संकुचित करना हैं। यह समय आयुर्वेद का संकट का समय है अतः पूर्वोक्त अविलम्ब शोधन है।

कुछ वैद्य बन्धु वेदों में आयुर्वेद चिकित्सा सम्बन्धी मन्त्रों का विवेचन करने में लग गये हैं। इससे भविष्य में इस समय से अधिक आयुर्वेद का अनुसन्धान होने की आशा है पर मेरे मित्रों को इसका ध्यान अवश्य रखना चाहिये कि वह विवेचन आयुर्वेद शास्त्र के सम्मत हो। हो सकता है पुराने आचार्यों ने भाष्य करते समय इसका ध्यान न रख कर अर्थ किया हो। दो हजार वर्ष से अधिक हुए कि हमारा देश आपत्तियों से ग्रस्त था। श्री सायणादि आचार्य भी भूलकर गये हों। इसके लिए गरुड़ पुराण, वायु पुराण तथा अग्नि पुराण और चरक सुश्रुतादि आचार्यों के ग्रन्थों का अध्ययन करना आवश्यक है।

यूनानी, आयुर्वेदीय वनौषधि, खनिज द्रव्य सस्ते मूल्य पर

हमारी दुकान से दुर्लभ केसर, कस्तूरी,
विविध प्रकार की काष्ठौषधि, मुक्ता,
सीप, शंख, शुद्ध शिलाजीत, सुवर्ण-
माक्षिक, प्रवाल, पारद, गंधक
आदि सब प्रकार के खनिज
तथा बनौषधि द्रव्य थोक
व परचून भाव पर प्राप्य।

वास्तविक शुद्ध और उत्तम सामान हमारी विशेषता है!

विस्तृत विवरण के लिये पत्र-व्यवहार करें और बड़ा सूचीपत्र मंगवायें।

तार का पता : आयुर्वेद फोन : ३१७९६
पता : शा० जादवजी लालूभाई एण्ड को०
२४५, कालबादेवी रोड, बम्बई।

★ कुमार्यासव ★

लेखक—आयुर्वेदाचार्य श्री पं० चन्द्रमणि शास्त्री सांख्यतीर्थ, एम० ए०

व्यवस्थापक—श्री विश्वहितैषी आयुर्वेद भवन, दनकौर (उ० प्र०)

सौभाग्यवश अलीगढ़ जनपद वैद्य सम्मेलन पत्रिका सम्वत् २०१५ के चतुर्थाङ्क में "कुमार्यासव" शीर्षक से श्री रामेशबेदी लेखक द्वारा प्रकाशित निबन्ध पढने को मिला। लेखक ने किसी निश्चित मार्ग का निदर्शन न करके अपना मन्तव्य भी व्यक्त नहीं किया है। अतः मुझे इस विषय पर कुछ लिखना आवश्यक हो गया है। कारण कि मेरे कुछ दिनों से कुमार्यासव पर अनुसन्धान भी चल रहे थे। आयुर्वेद पत्रों में इससे पूर्व भी इस विषय में अपने विचार व्यक्त कर चुका था। साथ ही कुछ विद्वान आयुर्वेद प्रेमियों के इस सम्बन्ध में प्रश्नात्मक निबन्ध भी मेरे पास आ रहे थे।

कुमार्यासव आयुर्वेद की एक प्रसिद्ध एवं अति गुणकारी औषध है जिसका निर्माण छोटे से वैद्य से लेकर बड़ी से बड़ी आयुर्वेदिक औषध निर्माणशालाओं तक में विपुल मात्रा में होता है। किन्तु खेद का विषय है कि सभी वैद्यों एवं प्रसिद्ध आयुर्वेदिक प्रतिष्ठानों द्वारा निर्मित कुमार्यासव रंग, स्वाद और गुणों में सर्वथा भिन्न ही होते हैं, जिसका प्रमुख कारण क्रिया तथा योग (Formula) की विभिन्नता है। वृद्धत्रयी के अनन्तर चौदहवीं शताब्दी में शार्ङ्गधर के रचयिता ने अपने ग्रन्थ में कुमार्यासव पर प्रकाश डाला है। प्रायः उसी क्रिया एवं उसी योग द्वारा आज भी विद्वान वैद्य कुमार्यासव निर्माण करते हैं। किन्तु आज विज्ञान युग के अनुभवी विद्वान श्रीकृष्ण प्रसाद त्रिवेदी बी० ए० द्वारा रचित वृहद् आसवारिष्ट संग्रह में कुमार्यासव के अनेक योग लिखे हैं, जिससे कुमार्यासव के रूप, गुण और स्वाद में भिन्नता हो जाना कुछ अस्वाभाविक भी नहीं हैं। यों तो कल्पना के आधार पर जितने भी रूप एक वस्तु के बनाये जा सकें थोड़े हैं, चरकोक्ति भी इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध है—"नहि विस्तरस्य प्रमाणमस्ति" सर्वः सर्वस्य कारणं स्यात्। ठीक इसी प्रकार एक औषध के अन्तर से और भी असंख्य कुमार्यासव बनाये जा सकते हैं। अतः कल्पना की मृगमरीचिका को छोड़कर शार्ङ्गधरोक्त योग पर ही साधारण के हितार्थ थोड़ा सा प्रकाश डालना आवश्यक हो गया है। सर्वप्रथम कुमार्यासव में लौह कितना डाला जावे यह प्रश्न सम्मुख है। अतः प्रथम तो सन्देहास्पद शार्ङ्गधरोक्त मूल पाठ को पाठकों के सम्मुख उद्धृत करते हैं। "माक्षिकं पक्वलौहं च तस्मिन्नर्धतुलं क्षिपेत" ॥ अर्थात् १ द्रोण (१६ से०) कुमारी स्वरस में २॥ सेर शहद तथा २॥ सेर पक्व लौह डालें। शहद को २॥ सेर डालना तो उपयुक्त है ही। किन्तु २॥ सेर लौह डालना कुछ समझ में नहीं आता है वृहद

आसवारिष्ट संग्रहकार ने भी २।। सेर ही जो लौह डालना लिखा है, वह सम्भवतः तनिक भी न घुलने वाले लौह चूर्ण से ही प्रयोजन होगा, जो कि आसव में लेशमात्र भी न घुलकर कालिमा मात्र ही दे सके। कदाचित वैद्य महोदय पक्व लौह का अर्थ घुलनशील लौह ही लेकर "अर्धतुलं" का अर्थ २।। सेर ही लौहभस्म आसव में डालने लग जावे, तो आसव का क्या होगा। पाठकगण क्रिया क्षेत्र में आकर देखें कि १ बोतल १० छटांक कुमार्यासव में १२।। तोला और एक दिन की दो मात्रा ५ तो० आसव में १५।। माशे लौह का अनुपात आता है जो कि सर्वथा असंगत है।

कदाचित दूसरी कल्पना के आधार पर चकार को समुच्चयार्थक मानकर १। सेर शहद और १। लौह डाल आसव निर्माण करने लगें, तो भी १ बोतल में ६। तोला और १ दिन की मात्रा ५ तोला पर भी ७।। माशे लौह का अनुपात आता है जो कि सर्वथा अवांछनीय है।

अतः विद्वान् पाठकों से निवेदन है कि इस गुत्थी को सुलझाने का कष्ट करें। हमने उक्त पाठ में "अर्धपलं" पाठ सुधार कर लिया है। इस विधि से १६ सेर कुमारी स्वरस में २ तोला घुलनशील लौह डालकर आसव निर्माण कराते हैं जिससे १ बोतल १० छटांक आसव में १।। माशे और दो मात्रा ५ तोला आसव में १।। रत्ती लौह का अनुपात आता है जो कि किसी प्रकार भी थोड़ा नहीं है।

अब कुमार्यासव में कैसा लौह डाला जावे यह दूसरा प्रश्न सम्मुख है। सर्वत्र ही रस ग्रन्थों में भस्म करने के लिये मुण्डलौह (डेगचून) जो कि अत्यधिक मल वाला है—सर्वथा वर्जित है। कान्त लौह (चुम्बक) सर्वथा दुष्प्राप्य है। अतः शेषतः तीक्ष्ण लौह ही भस्म के प्रयोग के लिये सर्वथा ग्राह्य है। जैसा कि निम्न पाठ से स्पष्ट है—

"समलं मुण्डलौहं तु मारणाय न योजयेत्।
तीक्ष्णलौहं कान्तलौहं यथालाभं प्रयोजयेत्॥

वह तीक्ष्ण लौह आप रेतवाने वाले कारखानों से अथवा विलायती बनी हुई मशीनों की कमानी, पिस्टन आदि को रितवाकर प्राप्त कर सकते हैं। इस तीक्ष्ण लौहचूर्ण को किस प्रकार घुलनशील बनाया जा सकता है। इसकी पूर्ण विधि "लौह कल्प और आयुर्वेद" शीर्षक से पत्रिका के आगामी अंकों में प्रकाशित की जावेगी। पाठक प्रतीक्षा करें।

घुलनशील लौह के अतिरिक्त कुमार्यासव में प्रत्येक रूप में डाली जाने वाली कुछ काष्ठौषधियां भी संदिग्ध एवं प्रायः सस्ते मूल्य पर निकली ही प्राप्त होती हैं। नागकेसर असली १०) सेर नकली १।) रु० सेर। पोंहकर मूल तथा अकरकरा के असली और नकली के मूल्य में बड़ा ही अंतर है। नकली सर्वथा गुणहीन हैं। अतः काष्ठौषधि विशेषज्ञों के बिना प्राप्त करना आज असली औषधियों का सर्वथा दुष्कर है। इस दशा में किसी भी आसव का निर्माण कितना कठिन कार्य बन गया है। साथ ही बाजारों में बिकने वाली

औषधियों के मूल्य में सस्तेपन की होड़ लगी है। ग्राहक के नेत्र चकाचौंध हो गये हैं। कितने ही बड़े-बड़े औषध-विक्रेता कुमारी स्वरस के अभाव में ५ सेर कुमारी रस में १-२ मन डालकर काम चलाते हैं कितने ही चतुर व्यापारी एलुआ पानी में घोलकर कुमारी स्वरस के अभाव की पूर्ति करते हैं। इस प्रकार की मनोवृत्ति वैद्यों और आयुर्वेद के प्रति कितनी घातक है। मेरा पूर्ण विश्वास ही नहीं अपितु कृमिजन्य रक्तपित्त के अतिरिक्त शार्ङ्गधर में गिनाये हुये सभी रोगों पर शतप्रतिशत सफलता का अनुभव है। साथ ही अन्य निम्नलिखित रोगों पर ९० प्रतिशत अनुभव है। स्त्रियों के कष्टार्तव, रजोरोध, निम्न रक्तचाप पर शीघ्र ही सफलतादायक है।

हाल की घटना है कि ग्राम चंचूला परगना दनकौर के श्री भिक्कीसिंह के सुपुत्र को यकृद विद्रधि हो गया था। बालक बड़ा बेचैन था। मैंने उसकी व्यग्रतावश देहली अस्पतालों में जाने का परामर्श दिया। किन्तु बाहिर जाने में उसने विवशता प्रकट करते हुये मेरी चिकित्सा का आश्रय लिया। मैंने प्रारम्भ से ही सजिक्षार के साथ दोनों समय २ा।-२ा। तो० कुमार्यासव का प्रयोग किया। व्यग्रता तो चौथे ही दिन शान्त हो गई और रोगी भी दो सप्ताह में सर्वथा स्वस्थ हो गया। लेख का कलेवर बढ़ जाने के भय से कुमार्यासव के भिन्न २ रोगों पर प्रयोग विधि तथा अनुपान पर प्रकाश नहीं डाला गया है। यदि सम्पादक महोदय की आज्ञा हुई तो अनुभव के आधार पर प्रत्येक शार्ङ्गधर (वर्णित) रोग पर अनुपान सहित विधि लिख भेजूंगा।

रस भस्में आदि कम मूल्यों पर

अभ्रक वज्र भस्म ४५) रु० सेर, प्रवालपिष्टी व भस्म ३०) सेर, अकीकचन्द्र पिष्टी ५०) सेर, वंग भस्म श्वेत ३०) सेर, कौड़ी भस्म ७) सेर, मुक्ता शुक्ति भस्म १०) सेर, कांतलौहभस्म २५) सेर, मण्डूर भस्म १८) सेर, गोदन्ती भस्म ४) सेर, चन्द्रप्रभा वटी २८) सेर, योगराज गुगुलू १५) सेर, त्रिवंग भस्म ४५) सेर, शङ्ख भस्म ७) सेर कसीस भस्म १०) सेर, भृङ्गराज भस्म १२) सेर, नाग भस्म पीत २५) सेर, स्वर्ण वङ्ग नं० १, ९०) सेर, कुक्कुटांडत्वक् भस्म १८) सेर, च्यवन प्राशावलेह १२५) मन, सुपारी पाक १६०) मन, स्वर्ण माक्षिक भस्म २८) सेर।

इन भावों पर रस भस्में २० तोला व पाक ५ सेर से कम नहीं भेजा जा सकेगा।

चावला आयुर्वेदिक फार्मेसी

पता—किला भंगियां, कुब्बी बेरी, अमृतसर।

शुद्ध एवं शास्त्रोक्त आयुर्वेदीय औषधियां

शुद्ध एवं उत्तम शास्त्रोक्त विधि से बनी आयुर्वेदिक औषधियां रस, भस्में, वटी, अवलेह, पाक, चूर्ण, घृत, कूपीपक्व रस तथा खनिज द्रव्य, वज्राभ्रक, मुक्ता, शंख, सीप, स्वर्ण माक्षिक, प्रबाल, शुद्ध शिलाजीत, केशर, कस्तूरी, अम्बर व दुर्लभ वनस्पतिवर्ग जैसे अष्ट वर्ग, प्रियंगु, सर्पगन्धा, त्रायमाण आदि खरीदते समय निम्न पते पर पत्र व्यवहार करें।

विशेष जानकारी के लिये वृहद सूचीपत्र मंगवायें।

हमारी औषधियों का व्यवहार कर आप सदैव के लिये स्थाई ग्राहक बन जायेंगे।

देशरक्षक औषधालय

कनखल (हरिद्वार)

यू० पी०

(पृष्ठ ५४० से आगे)

ते सन्निपातस्थदोषास्त्रयः षोढा भवन्ति । कथम् ? इत्याह—वृद्धिश्च समता च क्षयश्च वृद्धिसमताक्षयाः । एकैकस्य वाताद्यन्यतमस्य वृद्धिसमताक्षया एकैकवृद्धिसमताक्षयास्तैरेकैकवृद्धिसमताक्षयैः षट् ।

यथा—वातो वृद्धः, पित्तं समं, कफः क्षीणः । पित्तं वृद्धं, वातः, समः, कफः क्षीणः । कफो वृद्धः, पित्तं समं वातः क्षीणः । कफो वृद्धो, वातः समः पित्तं क्षीणम् । वातो वृद्धः कफः समः पित्तं क्षीणम् । पित्तं वृद्धं, कफः समो, वातः क्षीणः । एवमेकैकवृद्धिसमताक्षयैः षट् ।

पुनश्च षट् । एकक्षयद्वन्द्ववृद्ध्या सविपर्ययया अपि ते । भेदा द्विषष्टि निर्दिष्टाः ।

एकस्य क्षय एकक्षयः । द्वन्द्वस्य वृद्धिः द्वन्द्ववृद्धिः एकक्षयसहिता द्वन्द्ववृद्धिरेकक्षयद्वन्द्ववृद्धिस्तया । किंभूतया ? सविपर्ययया सह विषर्ययेण वैपरीत्येन वर्तते तया । एकक्षयद्वन्द्ववृद्ध्या पुनरेव षड् दोषभेदाः । यथा—वातः क्षीणः पित्तकफौ वृद्धौ । पित्तं क्षीणं, वातकफौ वृद्धौ । कफः क्षीणो, वातपित्ते वृद्धे । एकंएकक्षयद्वन्द्ववृद्ध्या त्रयो भेदाः । सविपर्ययया च वृद्ध्या त्रयो दोषभेदाः । सविपर्ययया च वृद्ध्या त्रयो दोषभेदाः । द्वन्द्वक्षयैकदोषवृद्ध्या द्वन्द्वक्षयसहितैकदोषवृद्धिस्तया । यथा—वातपित्तं क्षीणम्, श्लेष्मा वृद्धः । वातकफौ क्षीणौ पित्तं वृद्धम् पित्तकफौ क्षीणौ वातो वृद्धः । इति सविपर्ययया वृद्ध्या त्रयो दोषभेदाः ।

एव सन्निपातभेदाः । द्विरूपया वृद्ध्या षडेते । पंचभेदगणनया दोषाणां भेदा द्विषष्टिनिर्दिष्टाः ।

त्रिषष्टिः स्वास्थ्यकारणम् । त्रिषष्टीनां पूरणो यो दोषभेदः स स्वास्थ्यकारणमारोग्यहेतुर्धातुसाम्यात् । अत्र हि स्वप्रमाणस्था वातपित्तकफाः ये च दोषभेदा द्विषष्टिस्ते च रोगकारणमित्यर्थादुक्तं भवति अत्र च रोगहेतुत्वे दोषवैषम्यं कारणम् । त्रिषष्ट इति "तस्य पूरणे डडिति डट् ।

अधुना—रसादिभेदादानन्त्यं दोषभेदानां दर्शयन्नाह—संसर्गाद्रसरुधिरादिभिस्तैस्तेषां दोषांस्तु क्षयसमताविवृद्धिभेदैः । आनन्त्यं तरतमयोगतश्च यातान् जानीयादवहितमानसो यथास्वम् ॥

भावार्थः—न केवलं द्विषष्टिभेदभिन्नान् दोषान् जानीयात् आनन्त्यं च गतान्विधाद् । कथमान्त्यमित्याह—एषां दोषभेदानां यथास्वं रसादिभिः संयोगात् । तथैषामेव क्षयादिभेदैस्तर-

तमयोगाच्चानन्त्यं गतान्विद्यात् । तत्र रसे वातपित्तकफानां पृथक् त्रयो भेदा भवन्ति, पृथक् त्रीन् विद्धि इत्यनुसारेण संसर्गस्त्रिधा तत्र तु तान् रसमेवाधिकृत्य नव विद्धि । कथम् ? पूर्ववत् ।

त्रीनेव समया वृद्ध्या षडेकस्यातिशायने । एवं पूर्वोक्तेन न्यायेन रसमधिकृत्य संसर्ग योजयित्वा सन्निपाते योजनीयाः । यथा त्रयोदश समस्तेषु । कथम् ? "षड् द्वि एकातिशयेन तु एकं तुल्याधिकैः षट् च तारतम्यविकल्पनादिति ।। समानं पूर्वेण । रसार्ध्यं स्थानं केवलमधिकम् । पंचविंशतिमित्येवं वृद्धैःक्षीणैश्च । तावतो रसमधिकृत्य भेदान् विद्धि । इत्येवं रुधिरमांसादिभिर्योज्यम् । एकैकापह्रासेनेत्येवं द्विषष्टिभेदभिन्नानां दोषाणां रसादिभिः संयोगाच्चत्वारिंशदधिकानि स्युः । शकृतदादि संसर्गात् क्षीणतमादिभेदैश्च चिन्त्यमाना दोषा आनन्त्यं यान्ति ।

रस भेदे दोषभेदे चावगते वैद्यस्य हेतुलक्षणोपक्रमेषु मोहो न भवति । तथा च मुनिः—

यः स्याद्रसविकल्पज्ञः स्याच्च दोषविकल्पवित् । न स मुह्येद्विकाराणां हेतुलिङ्गोपपत्तिष्विति ।

भस्में, रस आश्चर्यजनक कम मूल्यों पर

वैद्यों, औषध विक्रेताओं और धर्मार्थ औषधालयों के लिए अपूर्व अवसर !

हमारे डायरेक्टरों ने अधिक स्टाक शीघ्र बिक्री करने का निश्चय किया है इस विचार से इसे निम्नांकित आश्चर्यजनक कम भावों पर जो हमारी लागत मात्र हैं, दे रहे हैं ।

नोट—(१) स्टाक कम होते ही इन भावों पर बिक्री बन्द कर दी जावेगी ।
(२) २० तोला से कम कोई भी भस्म इन भावों पर न भेजी जावेगी ।

शुद्ध शिलाजीत सूर्यतापी	३६) सेर
अभ्रक वज्र भस्म	
,, ३० पुटी	४६) ,,
,, ६० पुटी	९०) ,,
अकीक भस्म	५०) ,,
कपर्दिका भस्म	८) ,,
कुक्कुटांडत्वक भस्म	१८) ,,
कांत लोह भस्म	२८) ,,
कसीस भस्म	१०) ,,
गौदन्ती भस्म	४॥) सेर
चन्द्रप्रभावटी	२८) ,,
जहरमौहरा भस्म	१८) ,,
त्रिवङ्ग भस्म	४८) ,,
नाग भस्म पीत	२४) ,,
प्रवाल भस्म	३६) ,,
प्रवाल चन्द्र पुटी	३६) ,,
बङ्ग भस्म श्वेत	३६) ,,
मण्डूर भस्म	२०) ,,
मुक्ता शुक्ति भस्म	१४) ,,
यशद भस्म	२८) सेर
योगराजगुग्गुललघु	१५) ,,
रस सिन्दूर	१२५) ,,
लोह भस्म	२४) ,,
शङ्ख भस्म	७) ,,
भृङ्गराज भस्म	१४) ,,
स्वर्णमाक्षिकभस्म	२८) ,,
स्वर्णबङ्ग नं. १,	११०) ,,
स्वर्ण सिन्दूर (चन्द्रोदय)	४) तोला

च्यवनप्राश, (नया) पाव के पैकिंग में १५) दरजन, खुला ५ सेर का २१), १० सेर का ३८)
सुपारी पाक ,, ,, ,, ,, १८) ,, ,, ५ ,, २६), १० ,, ,, ४६)
द्राक्षासव, लोहासव, अशोकारिष्ट के १ पौंड पैकिंग १५) दर्जन ।

काश्मीर आयुर्वेदिक वर्क्स, जी० टी० रोड, अमृतसर ।

आयुर्वेद लोक

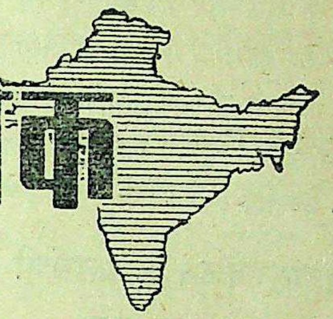

हासम्मेलन प्रधानमन्त्री का केन्द्रीय स्वास्थमंत्री को पत्र : केन्द्रीय आयुर्वेद परिषद की स्थापना का अनुरोध

केन्द्र में एक आयुर्वेद परिषद (संट्रल
उंसिल आफ आयुर्वेद) की स्थापना की
ांग अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन चिरकाल
करता आ रहा है किन्तु केन्द्रीय सरकार ने
ी तक इसकी उपेक्षा की है। अतः महा-
म्मेलन की कुछ प्रादेशिक शाखाओं ने इस
वश्यक मांग की पूर्त्यर्थ सरकार से पुनः
ुरोध करते हुए प्रस्ताव भेजें हैं। महा-
म्मेलन के प्रधानमंत्री श्रीवामनराव दीनानाथ
वैद्य ने भी अपनी प्रादेशिक शाखाओं का
र्थन करते हुए एक पत्र केन्द्रीय स्वास्थ्य
ी को भेजा है जिसमें उन्होंने लिखा है
मारी कुछ प्रादेशिक शाखाओं ने आयुर्वेद
ति के हितार्थ इंडियन मैडिकल कौंसल के
ान एक केन्द्रीय आयुर्वेद परिषद् की स्था-
ा की प्रार्थना की है, जिससे कि आयुर्वेदिक
क्षा, व्यवसाय, चिकित्सा सहायता, शोध
प्रशासन की समस्या का अधिक एक-
ता एवं योग्यता से अविलम्ब समाधान
ी जा सके।

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन यह अनुभव करता है कि इसकी प्रादेशिक शाखाओं द्वारा की गई इस प्रार्थना पर तुरन्त सहानुभूति पूर्वक विचार किया जाय, क्योंकि आपके मन्त्रालय एवं योजना मन्त्रालय द्वारा (गतवर्ष बम्बई में सम्पन्न देश भर के विशेषज्ञों की एक उच्च प्रतिनिधि सभा में) समर्थित इस प्रस्ताव की क्रियान्विती में विलम्ब आयुर्वेद प्रगति के कार्य को अत्यधिक हानि पहुंचा रहा है।"

महासम्मेलन प्रधानमन्त्री ने उक्त पत्र की प्रतिलिपि केन्द्रीय योजना मन्त्री को भी भेजी है।

आयुर्वेद-यूनानी की उपेक्षा करना बेहूदा : श्री नेहरू जी के विचार

"स्वतन्त्र भारत में आरोग्य" नामक केन्द्रीय आरोग्य विषयक प्रकाशन के प्राक्कथन में प्रधानमन्त्री श्री नेहरू ने आयुर्वेद-यूनानी पद्धतियों का प्रशंसात्मक शब्दों में उल्लेख किया है। आपने लिखा है कि मौलिक वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त कर लेने के पश्चात् एक व्यक्ति आयुर्वेदिक-यूनानी अथवा होमीओपैथी पद्धत्यानुसार चिकित्सा कर सकता है। इन दोनों प्राचीन पद्धतियों का गौरवपूर्ण इतिहास

हैं और ये बड़ी भारी प्रतिष्ठा रखती हैं। बहुत से लोग अभी भी कहते हैं कि ये दोनों चिकित्सा पद्धतियां सफल पद्धतियां हैं। भूत काल के ज्ञान और अनुभव के इस संचय की उपेक्षा करना हमारे लिये बुरा और बेहूदा होगा इत्यादि।

महासम्मेलन प्रधानमंत्री द्वारा धन्यवाद

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के प्रधानमन्त्री श्री वामनराव दीनानाथ जी वैद्य ने श्री पण्डित नेहरू जी को एक तार भेजकर उनके द्वारा व्यक्त उक्त विचारों को उत्साहजनक बताते हुए उनका धन्यवाद किया है और प्रार्थना की है कि आयुर्वेद के प्रति उनका दृष्टिकोण और अधिक विस्तृत और गम्भीर हो ताकि अन्य राष्ट्रीय समस्याओं के साथ-साथ आयुर्वेद भी उनके मस्तिष्क में स्थान पा सके।

राजस्थान प्रदेश वैद्य संमेलन के अध्यक्ष का चुनाव

उदयपुर—राजस्थान प्रदेश वैद्य सम्मेलन के अध्यक्ष पद का निर्वाचन शीघ्र ही हो रहा है। प्रदेश के अध्यक्ष का निर्वाचन कराने के लिये कार्य समिति ने वैद्य मिश्री प्रसाद शास्त्री उदयपुर, को निर्वाचनाधिकारी नियुक्त किया है साथ ही निर्वाचन में सहयोग देने के लिये एक निर्वाचन समिति का भी निर्माण किया गया है जिसके सदस्य हैं श्री सुखराम दास जयपुर, श्री कृष्ण गोपाल कोटा। चुनाव का कार्यालय गंगा आयुर्वेद भवन, उदयपुर रखा गया है।

प्रदेश वैद्य सम्मेलन के लिये कार्यसमिति ने निम्न पांच नाम स्वीकृत किये थे—

१—श्री कविराज माधव प्रसाद शास्त्री
२—श्री कविराज नित्यानन्द, बूंदी
३—श्री स्वामी रामप्रकाश जी
४—श्री नित्यानन्द जी, पिलानी
५—श्री ठाकुर प्रसाद जी, बीकानेर

इन पांचों नामों में से श्री कविराज माधव प्रसाद शास्त्री, जोधपुर, श्री नित्यानन्द बूंदी, व श्री ठाकुर प्रसाद जी ने अध्यक्ष पद से अपने नाम वापस ले लिये हैं। अब अध्यक्ष पद के लिये श्री स्वामी रामप्रकाश जी, रजिस्ट्रार भारतीय चिकित्सा पंजीयन बोर्ड जयपुर व श्री नित्यानन्द जी पिलानी, अध्यक्ष बिरला आयुर्वेद संग्रहालय, पिलानी, उम्मीदवार हैं जिन्हें प्रदेश वैद्य सम्मेलन के मतदाताओं को स्वतन्त्रता पूर्वक मत देना है।

निर्वाचन के लिये मतदाता सूची तैयार कर ली गई है। मतदाता सूची को कोई भी अधिकृत मतदाता जिन्हें कि नियमानुसार संवत् २०१४ का सदस्य होने का अधिकार है देख सकता है। यह मतदाता सूची अध्यक्ष पद के उम्मीदवारों के पास प्रदेश वैद्य सम्मेलन, प्रधान कार्यालय, जोधपुर व प्रदेश वैद्य सम्मेलन, निर्वाचन कार्यालय, उदयपुर में दिन के १० बजे से ४ बजे तक किसी भी समय आकर देखी जा सकती है। मतदाता सूची के बारे में राजस्थान की सभी जिला वैद्य सभाओं व सभी तहसील वैद्य सभाओं को यह सूचित करना आवश्यक है कि वे संवत् २०१४ के अपने सदस्यों को इस बात

की सूचना कर दें कि वे यदि चाहें तो अपना नाम मतदाता सूची में देख सकते हैं।

दिनांक २५ अक्टूबर, ५८ तक जो भी आपत्तियाँ मतदाता सूची के सम्बन्ध में प्राप्त होंगी उन पर विचार किया जा सकेगा और यदि उन का औचित्य सिद्ध हुआ तो उन पर विचार किया जा सकेगा।

सम्वत् २०१४ का बना हुआ कोई भी सदस्य इस सम्बन्ध में कि मतदाता सूची में उसका नाम है कि नहीं पत्र व्यवहार कर सकता है।

निर्वाचन के लिये यह आवश्यक है कि उम्मीदवारों की ओर से जितनी भी विज्ञप्तियां प्रकाशित हों या समाचार प्रकाशित हों, किसी भी प्रकार से किसी भी रूप में एक दूसरे उम्मीदवार के प्रति आक्षेप प्रत्याक्षेप नहीं होने चाहियें।

निर्वाचन की मत पत्र पहुंचने की तारीख व मत पत्र पुनः चुनाव कार्यालय में भेजने की तारीख शीघ्र ही घोषित की जा रही है।

प्रदेश वैद्य सम्मेलन का अग्रिम अधिवेशन रतनगढ़ में होगा।

पेनिसिलीन का उल्टा प्रभावः कानपुर के डाक्टर चिन्तित

कानपुर, २२ सितम्बर। कानपुर में पेनिसिलीन के इंजेक्शनों का रोगियों की अवस्था पर विपरीत प्रभाव पड़ा है। इससे कानपुर के चिकित्सक क्षेत्रों में बड़ी चिन्ता हो गई है।

१७ सितम्बर को एक कम्पाउन्डर ने अपनी पत्नी को एक इंजेक्शन दिया जिससे ५ मिनट में उसका शरीर लाल और नीला हो गया एवं बाद में काला पड़ गया। वह २४ घंटे बेहोश भी रही और बड़े इलाज के बाद होश में आई।

डी० ए० वी० कालेज के एक प्रोफेसर ने पेनिसिलीन की गोलियां खाईं तो उस पर भी ऐसा ही असर हुआ। तुरन्त डाक्टर बुलाने पर ही उसकी जान बचाई जा सकी।

एक अनुभवी डाक्टर ने ३० वर्षीय रोगी को इंजेक्शन दिया, जिससे उसकी हालत खराब हो गई और आक्सीजन देने पर सुधरी।

काशी मण्डल वैद्य सभा की कार्यकारिणी के प्रस्ताव

काशी मण्डल वैद्य सभा की प्रबंधकारिणी का अधिवेशन श्री पं० दुर्गादत्त शास्त्री एवं कविराज हरिरञ्जन मजूमदार के क्रमशः सभापतित्व में हुआ जिसमें निम्नलिखित प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुए।

१—काशी मंडल वैद्य सभा आयुर्वेद के उपाधि पाठ्यक्रम के संबंध में समस्त परिस्थितियों पर विचार करते हुए निर्णय करती है कि उपाधि स्तर तक की शिक्षा में अष्टांग आयुर्वेद की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए जिसमें आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनिवार्य विषयों को आत्मसात कर देना चाहिए। इस पाठ्यक्रम में प्रवेशार्थी छात्र की योग्यता संस्कृत में मध्यमा या एफ० ए० के स्तर से कम नहीं होना चाहिए।

२—काशी मंडल वैद्य सभा उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री माननीय डा० सम्पूर्णानन्द,

स्वास्थ्य मंत्री माननीय श्री हुकुमसिंह जी को आयुर्वेद की उन्नति के लिये उनके प्रयत्नों के लिए धन्यवाद देती हुई उनसे अनुरोध करती है कि वे आयुर्वेद के स्नातकों के अधिकार और वेतन मेडिकल ग्रेजुएटों के समकक्ष करने की कृपा करें।

३—काशी मंडल वैद्य सभा वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, राज्य एवं केन्द्रीय सरकार तथा अन्य संस्थाओं से अनुरोध करती है कि अपने यहां नियुक्ति करते समय आयुर्वेद स्नातकों में भेदभाव की नीति का प्रयोग न कर राज्य मान सभी स्नातकों को अवसर देने की कृपा करें।

सभा में पद्म विभूषण श्री सत्य नारायण जी शास्त्री को संरक्षक बनाने के लिए साधारण सभा ने संस्तुति किया।

अन्त में भारत रत्न डा० भगवानदास जी के निधन पर भी शोक प्रस्ताव स्वीकृत किया गया।

उप स्वास्थ्यमंत्री के सम्मान में सभा

सरदार शहर—राजस्थान के उपमन्त्री श्रीभीखाभाई का चूरु जिला वैद्य सभा द्वारा नथमल जी सेठिया दातव्य औषधालय के ऊपरी भाग में सम्मान किया गया जिसमें संचालक आयुर्वेद विभाग पं० प्रेमशंकर जी भिषगाचार्य, चूरु जिलाधीश, श्री विकासखण्ड अधिकारी तथा बाबू श्री भंवरलाल जी दूगड़, श्री पं० मणिराम प्रिन्सीपल आयुर्वेद विश्व भारती, एवं प्रोफेसर तथा अध्यापक गण और स्थानीय वैद्य सभा के सदस्य सम्मिलित हुये।

वैद्य श्री सोहनलाल आयुर्वेदाचार्य ने उपमन्त्री महोदय को वैद्य बन्धुओं का परिचय कराने के बाद निवेदन किया कि चूरु जिले में औषधालय अधिक खोले जाने चाहियें। इस दृष्टि से बीकानेर डिवीजन पिछड़ा हुआ है। श्री लक्ष्मीनारायण ने कहा कि चूरु जिले में औषधालयों की संख्या बढ़ाई जाये और आयुर्वेदीय संस्थाओं और योग्य वैद्यों को अधिक सहायता मिलनी चाहिये। आयुर्वेद विश्व भारती में क्षय या कुष्ठ निवारणार्थ क्रम चालू किए जाएं तथा रतनगढ़ में पं० मणिराम जी के सत्प्रयत्न से श्री धन्वन्तरी मन्दिर का भव्य भवन बनकर तय्यार हो गया है वहां पर पंच कर्म तथा श्वास के लिए प्रवृत्ति चालू की जानी चाहिये।

औषध निर्माण के लिए असली उत्तम औषधियाँ मिलें ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये।

उपमन्त्री महोदय ने सब सुझावों का सन्तोषजनक उत्तर दिया।

उदयपुर आयुर्वेदिक कालेज में अनुसन्धान कार्य

जयपुर, राजस्थान सरकार के आयुर्वेदिक विभाग द्वारा इस वर्ष उदयपुर आयुर्वेदिक कालेज के अन्तर्गत अनुसन्धान केन्द्र आरम्भ किया गया है। केन्द्र में २० रोगी शैयायें स्वीकृत हैं जिन पर स्नायुक (नाहरू) तथा बाल पक्षाघात रोगियों की चिकित्सा के संबंध में अनुसन्धान कार्य आरम्भ कर दिया गया

है। अनुसन्धान में आयुर्वेद सम्मत पञ्च महाभूत व त्रिदोषवाद की वैज्ञानिक भित्ति पर आधुनिक यंत्र एवम् प्रयोगशाला आदि साधनों का उपयोग भी किया जा रहा है। इस संबंध में जो अनुसन्धान की पद्धति राजस्थान आयुर्वेद विभाग ने स्वीकृत की है उसकी मुद्रित प्रति इस कार्यालय से उपलब्ध की जा सकती है। भारत के समस्त आयुर्वेदिक मनीषियों से स्नायुक व बाल पक्षाघात के रोगियों की चिकित्सा के सम्बन्ध में उनके सफल प्रयोगों की सूचना अनुसन्धान केन्द्र उदयपुर को भिजवाने का अनुरोध किया गया है।

वैदिक आयुर्वेद पर अनुसन्धान आवश्यक

पिलानी, वैदिक आयुर्वेदिक प्रचार समिति की ओर से बिरला आयुर्वेद संग्रहालय में आयुर्वेद के वैदिक कालीन ऋषियों को श्रद्धांजलि भेंट करते हुए ऋषि पञ्चमी का पर्व मनाया गया। अध्यक्ष पद से भाषण देते हुए आचार्य नित्यानन्दजी ने बताया कि विश्व के उपलब्ध साहित्य में वेद निर्विवाद रूप से प्राचीनतम हैं। वेदों में निर्दिष्ट एतद् विषयक ज्ञान ही संसार की परम प्राचीन चिकित्सा पद्धति है। चिकित्सा और स्वास्थ्य विषयक ज्ञान चारों वेदों में पाया जाता है और एतद् विषयक ऋचाओं के द्रष्टाओं को विश्व के प्राचीन वैद्यों में गिना जाना चाहिये। इस प्रकार के लगभग ७५ स्वास्थ्य शास्त्री ऋषियों के प्रति आभार प्रकट करना हमारा कर्तव्य है।

अपने भाषण को जारी रखते हुए श्री आचार्य जी ने बताया कि वेदों में बिखरे हुए आयुर्वेद वाङ्मय को संगृहीत करने तथा संदिग्ध प्रकरणों पर विचार करने एवं वैदिक काल के बाद और संहिता काल के पूर्व की एक लुप्त कड़ी को जोड़ने के लिये वैदिक आयुर्वेद में अनुसन्धान जरूरी है। आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली के कुछ अंगों में अनुसन्धान कार्य चालू है, किन्तु वैदिक आयुर्वेद की अभी तक उपेक्षा की जा रही है।

अन्त में ऋषि ऋण से मुक्ति के उपायों का वर्णन करते हुए आचार्य जी ने कहा कि केन्द्रीय सरकार को चाहिये कि वह अपनी देख रेख में वैदिक आयुर्वेद पर अन्वेषण कार्य कराये। और यदि अभी सम्भव न हो तो किसी आयुर्वेद हितैषी राज्य को पुष्कल अनुदान देकर वैदिक आयुर्वेद ऋषि अर्चन की स्थापना करे।

रायपुर आयुर्वेदिक महाविद्यालय के छात्रों का डा० कैलाशनाथ काटजू को स्मृति पत्र

शासकीय आयुर्वेद महाविद्यालय रायपुर म० प्र० के छात्रों ने प्रदेश के मुख्यमंत्री डा० कैलाशनाथ काटजू को एक स्मृति पत्र भेजकर विद्यालय की अव्यवस्था की ओर ध्यान दिलाया है। छात्रों ने वर्तमान शिक्षण व्यवस्था का उल्लेख करते हुए अपने स्मृति पत्र में लिखा है कि प्रीमेडीकल कोर्स की परीक्षा अभाव सूचक है क्योंकि संस्कृत पढ़ाने का अब तक कोई प्रबन्ध नहीं हुआ, बायलाजी सेक्सन, तथा केमिस्ट्री फिजिक्श के लिए केवल एक अध्यापक सर्वथा अपर्याप्त है। दोषधातु मल, शरीर क्रिया विज्ञान, सामान्य रोग विज्ञान को पढ़ाने के लिए कोई व्यवस्था नहीं है।

छात्रों ने इस विषय पर अपना असंतोष प्रकट करते हुए मांग की है कि आयुर्वेदिक तथा आधुनिक विषयों के लिए अध्यापक डिमान्सट्रेटर एवं रीडर की नियुक्ति की जाय। शवच्छेदन तथा पैथेलोजी के प्रत्यक्ष ज्ञान में सहायता के लिये विशेषज्ञ होना चाहिए। इसके साथ ही छात्रों की मांग है कि हमारे भविष्य को देखते हुए उचित व्यवस्था की जानी चाहिए।

आयुर्वेद महाविद्यालय के छात्रों ने मुख्यमन्त्री को यह भी स्मरण कराया है कि इस विद्यालय के उद्घाटन के अवसर पर स्व० रविशंकर शुक्ल ने कई आशायें दिलाईं थीं किन्तु वे आज तक भी पूरी नहीं की गईं।

अन्त में छात्रों ने मांगों की पूर्ति न होने की अवस्था में निकट भविष्य में हड़ताल कर देने की धमकी दी है।

रायपुर वैद्य सभा का निर्वाचन

स्थानीय वैद्य सभा का निर्वाचन श्री सोमदेव शर्मा सारस्वत, रीडर आयुर्वेदिक कालेज के सभापतित्व में सम्पन्न हुआ। सर्व सम्मति से निम्नलिखित पदाधिकारी चुने गये—

अध्यक्ष—वैद्यराज श्री पं० बाबूराम शर्मा
उपाध्यक्ष—श्री डा० दिनकर भास्कर
,, श्री पुन्हूराम जी
प्रधानमन्त्री—श्री अर्जुनसिंह जी वैद्य
संयुक्त मन्त्री—श्री शारदानन्द जी सरस्वती शास्त्री
उपमन्त्री—श्री रामगोपाल जी भारतीय
कोषाध्यक्ष—श्री ठाकुर शिवराजसिंह जी वैद्य
आय-व्यय निरीक्षक—श्री नारायणदास टी० भोजवानी।

इसके अतिरिक्त सर्वश्री शंकरलाल जी पंजवानी, हनुमन्त राव जी, गुरुमुखदास जी लालवानी, उमाशंकर जी मिश्र, बाबूलाल जी बरोड़े, किशोरीलाल जी शर्मा, वृन्दावन जी चक्रधारी, कार्यसमिति के सदस्य चुने गये।

औषधालय का उद्घाटन

गत २८ जुलाई सन् ५८ को नवाशहर में वैद्य भूषण पं० ठाकुरदत्त शर्मा (अमृतधारा) ने वैद्य पुरुषोत्तमदत्त शास्त्री के वैद्य मण्डल दवाखाना का उद्घाटन किया। ईस अवसर पर एक भव्य पार्टी दी गई जिसमें प्रमुख नागरिकों के अतिरिक्त नवाशहर के एस. डी. ओ., सबजज तथा तहसीलदार भी सम्मिलित हुए। पं० ठाकुरदत्तजी को एक मान-पत्र भेंट किया गया।

पं० पृथ्वीराज शोक ग्रस्त

राजकीय औषधालय कोठागुरु भटिण्डा के इन्चार्ज वैद्य श्री पं० पृथ्वीराज के पूज्य पिता का देहावसान हो गया है। आपके पिता पं. गोकुलचन्द की आयु ५४ वर्ष की थी और वे अपने पीछे दो पुत्र और दो पुत्रियों को छोड़ कर स्वर्गगत हुए हैं। आपके पिताजी के इस असामयिक निधन पर श्री वैद्य जी के साथ हमारी हार्दिक सहानुभूति है तथा हम दिवंगत आत्मा की शान्ति की कामना करते हैं।

नवरत्न रस

स्त्री, पुरुष और बालकों के लिये महौषधि

यह नवरत्न रस हीरा, पन्ना, मोती, माणिक तथा नौ रत्नों की भस्म और सुवर्ण आदि के संयोग से तैयार किया जाता है। शरीर में स्थित रस, रक्त आदि धातुओं की उत्तरोत्तर वृद्धि और पोषण तथा वीर्यधातु की शुद्धि और पुष्टि करना इसका विशिष्ट कार्य है। शुक्र स्थान को पुष्टि मिलने से वीर्य में स्थित निर्बलता दूर होकर नपुंसकता, क्लैव्य, ध्वजभंग, वीर्यपात, स्वप्नदोष आदि नष्ट होते हैं और शरीर नवयौवन प्राप्त करता है।

यह गर्भावस्था में पांडु, रक्त की कमी, हाथ और पैरों में शोथ तथा श्वास आदि रोगों की उत्पत्ति को रोकता है। अल्पसत्वयुक्त प्रजा होती हो या बालक जन्मते ही मर जाता हो तो नवरत्न रस प्रथम मास से प्रसव काल तक सेवन कराने से प्रसव सुखपूर्वक होता है। बालक भी तन्दुरुस्त जन्मता है। इसके सेवन से अकाल प्रसूति और रक्तस्राव नहीं होता।

इसके उपरांत किसी भी कारण से पांडु, क्षय, जीर्णज्वर, कास, श्वास, वातव्याधि, मधुमेह, रक्तस्राव, मगज की निर्बलता, वीर्यविकार आदि में बाल, वृद्ध, युवा, स्त्री, पुरुष सबको नवरत्न रस देने से शक्ति प्राप्त होती है। निरोगी शरीर के लिये यह रसायन है रोगी शरीर के लिये औषधि।

मूल्य २८ गोली का ५), १ तोला १०) रु०

ऊंझा फार्मेसी ऊंझा

(उ० गु०)

शुभ-सन्देश

शीघ्र आगामी शीतकाल के लिये अभी हाल ही में नया, ताजा और उत्तम कच्चा द्रव्य आया है। अतः कृपया आवश्यकता संकेत करें।

नेपाली ब्रदर्स

२१२, बड़गादी, बम्बई-३

- नेपाली कस्तूरी
- जंगबारी अम्बर
- बसरा मोती
- स्पेन केशर
- सूर्यतापी शिलाजीत
- विशुद्ध गोरोचन

के अतिरिक्त

प्रवाल शाख, प्रवाल मूल, गोदन्ती, बंसलोचन, भीमसेनी कपूर, जहरमोरा खताई, केहरुवा, जुन्द वेदस्तर, हरडें, अकीक, सीप, कौड़ी, शंख, सिंगरफ.

वर्की हड़ताल

तथा सब प्रकार की खड़ें (जवाहिरात) आदि

विशेष विवरण के लिये सूचीपत्र मंगाइये।

प्रताप आयुर्वेदिक फार्मेसी प्रा० लि० के

आशुफलप्रद

आयुर्वेदीय इन्जैक्शन

हिमालय के अंचल देहरादून में सरकार द्वारा लायसैन्स प्राप्त लेबोरेटरी में आयुर्वेदीय औषधों के मूलतत्वों का पूर्ण अनुसन्धान करने के उपरान्त प्राचीन और आधुनिक विज्ञानवेत्ता, सिद्धहस्त वैज्ञानिकों की देख-रेख में इन्जैक्शन तैयार किये जाते हैं जो पूर्णतया निरापद विशुद्ध प्रामाणिक सिद्ध हो चुके हैं। प्रत्येक वैद्य का कर्त्तव्य है कि इन आशुफलप्रद पूर्णतया विशुद्ध एवं चमत्कारिक गुणकारी इन्जैक्शनों को प्रयोग में लाकर लाभ उठावें।

प्रताप आयुर्वेदिक फार्मेसी लि०

इन्जैक्शन ब्रांच

१६७-राजपुर रोड, देहरादून (उ. प्र.)

औषधियां
और
मशीनें

हर प्रकार की विधिपूर्वक विनिर्मित रस, रसायन, आसव, अरिष्ट भस्म, अवलेह आदि औषधियां और औषधि निर्माण संबंधी कुटाई, पिसाई, घुटाई व गोलियां आदि बनाने की बिजली तथा हाथ दोनों प्रकार से चलने वाली मशीनें आदि मिलने का एकमात्र विश्वसनीय स्थान—

दयालु फार्मास्युटिकल वर्क्स

बीकानेर।

नेत्रों की अनेक व्याधियों और नेत्रों को सुरक्षित रखने के लिये

श्री हरि
जीवदया
नेत्रप्रभा
[illegible]

अत्यन्त लाभदायक है।

नेत्रप्रभा—नेत्रकण्डु, कुकरे, धुन्ध, जाला, फूली, नेत्रस्राव, लाली रतौंधी, नेत्रों का दुखना, कम दिखाई देना आदि के लिये अनुपम है।

जीवदया नेत्रप्रभा—अधिक परिश्रम, वेल्डिंग, गाड़ी चलाना, धुआँ, सिनेमा, लिखना-पढ़ना, धूप, टाइफाइड, सूर्यावर्त, और जागरण के कारण होने वाले सिरदर्द और आँखों के दर्द में लाभदायक है। सोते समय अंजन करने से बढ़िया नींद आती है, दिमाग स्फूर्ति पाता है।

नेत्रप्रभा—की बड़े-बड़े वैद्य, डाक्टर, विख्यात संस्थाओं, संत महात्माओं तथा समाचार पत्रों ने प्रशंसा की है। जैसे:-श्री बंबई आयुर्वेदचिकित्सक मण्डल, सूरत वैद्य सभा, श्रीराजकुमार सिह आयुर्वेदकालेज इन्दौर। राजकोट के ग्रामों में आयुर्वेदिक बक्स में इसे स्थान प्राप्त हुआ है।

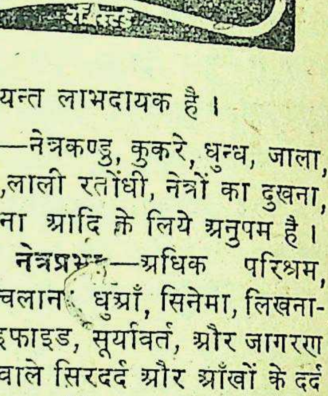

नेत्रप्रभा—नित्य व्यवहार से कोई हानि नहीं होगी—बालक तथा वयस्क दोनों ही दिन में एक से तीन बार दर्द के अनुसार इसे लगा सकते हैं। अधिक विवरण के लिये लिखिये—

जीवदया नेत्रप्रभा कार्यालय

(निर्माता—आर० एम० शाह०)
जूनी विक्टोरिया मिल्स कम्पाउण्ड,
गांमदेवी रोड, बंबई ७

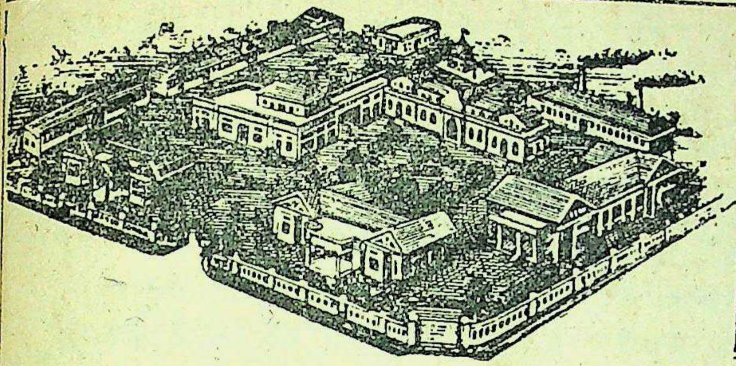

५० वर्षों से विश्व
भरमें प्रतिष्ठा प्राप्त
भारत की प्रमुख
आयुर्वेदिक औषध
निर्माणशाला

रसशाला औषधाश्रम (REGD.) **गोंडल, सौराष्ट्र ।**

गोंडल रसशाला की इस फार्मेसी में विविध प्रकार की हाथ से बनी औषधियां भस्में, रस रसायन, कूपिपक्व रसायन, पर्पटी, गुटिका, चूर्ण आदि तैयार रहती हैं । समस्त भारत और चीन, फीजी, अफ्रीका, अमेरिका, युरोप में भी जाती हैं । सब भाषा के सूचीपत्र निशुल्क ।

सिद्ध रसायन कल्प (बृहत् और लघु) इसके सेवन से शरीर निरोगी रह कर आयुष्य बढता है । हृदय, फुफ्फुस, मस्तिष्क, आंतें, लीवर, मूत्राशय आदि अवयव बलवान होते हैं । मात्रा ३ रत्ती अष्टवर्ग चूर्ण ४ माशा के साथ दूध से लिया जाता है । बृहत् २५) रु० का १ तोला । लघु १०) रु० का एक तोला ।

बम्बई शाखा:—गोंडल रसशाला औषधाश्रम,
वसंत वाडी के सामने, ४१६ कालबा देवी रोड, मुम्बई २ ।

शास्त्रीय आयुर्वेदिक क्वाथों एवं वनस्पतियों पर निर्मित

आयुर्वेदिक इञ्जैक्शंस तथा सुरासार (टिञ्चर्स)

भारतवर्ष में एकमात्र सबसे बड़ी, बहुमूल्य आधुनिक यन्त्रों और उपकरणों से सुसज्जित, औषधियों के पूर्ण वैज्ञानिक, स्टैण्डर्ड और स्वच्छ निर्माण के लिये वातानुकूलित वैज्ञानिक बोरेटी है । यहां के उच्च वैज्ञानिक मापदण्ड पर निर्मित आयुर्वेदिक इञ्जेक्शन्स, शास्त्रीय आयुर्वेदिक क्वाथों और वनस्पितियों पर निर्मित सुरासार (टिञ्चर्स) तथा शास्त्रोक्त रस, स्म, कूपीपक्व रसायन, आसव, अरिष्ट आदि आयुर्वेदिक औषधियां अपनी स्वच्छता, शुद्धता और कार्यक्षमता के लिये समस्त भारतवर्ष में प्रसिद्ध हैं । पूर्ण जानकारी के लिये आयुर्वेद अनुसन्धान पत्रिका (बृहत् सूचीपत्र) बिना मूल्य मंगाइये ।

हर स्थान पर एजेण्टों की आवश्यकता है । नियम तथा साहित्य आदि निशुल्क मंगाइये ।

नोट—वैद्यों को इञ्जेक्शन आदि शल्य कर्म के क्रियात्मक अभ्यास और शिक्षण की उनके निवास स्थान के समीप ही ट्रेनिङ्ग देने की व्यवस्था की योजना है । ट्रेनिङ्ग के पश्चात् आयुर्वेद महाविद्यालय द्वारा आयुर्वेद सूचीवेध विशारद (A. S. V.) का प्रमाणपत्र दिया जाता है । इच्छुक वैद्य विशेष जानकारी के लिये पत्र-व्यवहार करें ।

निर्माता:—**बाबूराम मिश्र रिसर्च इन्स्टीट्यूट,**
झण्डा आयुर्वेदिक फार्मेस्युटिकल वर्क्स, हापुड़ (उ० प्र०)

हर प्रकार के शरीर-रचना ज्ञान सम्बन्धी आयुर्वेदिक साधन प्रतिमा (Model) चित्र (Chart) कंकाल (Skeleton) आदि और औषधि निर्माण (फार्मेसी) सम्बन्धी यंत्र, मशीन से चलने वाले खरल, टिकियां बनाने की मशीनें, लोहे व पत्थर के खरल, सर्जीकल इन्स्ट्रूमेंट, सिद्धौषधियां, वनौषधियां खनिज द्रव्य आदि के मिलने का पता—

दयाल आयुर्वेदिक प्रोडक्ट्स कं०

दयालबाग (आगरा)

सूचना

असली केसर, कस्तूरी, शिलाजीत, सच्चे मोती, गोरोचन, अम्बर व अष्टवर्ग, अशोक छाल, सर्पगन्धा आदि जड़ी-बूटियां शुद्ध और सस्ती खरीदने के लिए

कालिया ब्रदर्स रजिस्टर्ड,

जालन्धर शहर (पंजाब)

से पत्र व्यवहार करें।

मलेरिया शत्रु सिर्फ एक मात्रा में ही मलेरिया नष्ट करने में ब्रह्मास्त्र है। आधा पौण्ड ६) रुपया।

सफेद कोढ़ की पेटेन्ट दवा ५) रुपया। दोनों दवाओं पर वैद्य, डाक्टर, हकीम धन मान कमा रहे हैं।

विवरण-पत्र मुफ्त मंगाइये।

वैद्य बी० आर० बोरकर आयुर्वेद भवन, (आं) मु. पो. मंगरूलपीर

जिला अकोला (विदर्भ)

महर्षि चरक का अपूर्व योग

❀ ब्राह्म-रसायन ❀

मानसिक शक्ति, स्फूर्ति, उत्साह, बुद्धि, स्मृति, ओज एवं दीर्घायुष्य प्राप्ति के लिए

अत्युत्तम कल्प है।

नवशक्ति आयुर्वेदालय (प्रा०) लि०

भुसावल - जबलपुर - नागपुर

आवश्यकता है

आयुर्वेद विद्यापीठ महाविद्यालय, दिल्ली, के लिये–

प्रिन्सिपल—योग्यता संस्कृत का आचार्य अथवा शास्त्री एवं तत्सम परीक्षोत्तीर्ण, आयुर्वेदाचार्य, हिन्दी-अंग्रेजी का अच्छा ज्ञान हो तथा कुशल चिकित्सक होना चाहिये। किसी आयुर्वेद महाविद्यालय में अध्यापन तथा संचालन का न्यूनतम ५ वर्ष का अनुभव होना आवश्यक है। आयु ३० वर्ष तथा ४० वर्ष के बीच। वेतन ३००) प्रतिमास।

अध्यापक—योग्यता संस्कृत में शास्त्री अथवा तत्सम परीक्षोत्तीर्ण, आयुर्वेदाचार्य तथा कम से कम ३ वर्ष का अध्यापन अनुभव होना आवश्यक है। वेतन १५०) रुपया प्रतिमास। आवेदनपत्र प्रमाणपत्रों की प्रमाणित प्रतिलिपियों सहित दिनांक ३१ अक्टूबर १९५८ तक इस पते पर भेजें— **वैद्य सीताराम मिश्र,**

मन्त्री-नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ,
महालक्ष्मी मार्केट, चांदनी चौक, दिल्ली-६

आयुर्वेद विद्यापीठ महाविद्यालय दिल्ली में छात्रों के प्रवेशार्थ सूचना

वैद्य समाज को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि नि. भा. आयुर्वेद विद्यापीठ के चिर-क्षित आयुर्वेद महाविद्यालय को भारत की राजधानी दिल्ली में शीघ्र ही प्रारम्भ किया रहा है। इस विद्यालय में विद्यापीठ द्वारा संचालित विशारद तथा आचार्य के पाठ्यक्रमार हिन्दी तथा संस्कृत भाषाओं में प्रायोगिक ज्ञान सहित शिक्षा दी जायेगी। कोई भी ार्थी जो गवर्नमेंट संस्कृत कालेज वाराणसी की मध्यमा या तत्सम परीक्षोत्तीर्ण हो या मैट्रिक या पंजाब यूनिवर्सिटी की प्रभाकर अथवा समकक्ष परीक्षा उत्तीर्ण हो या नि. भा. र्वेद विद्यापीठ की आयुर्वेद भिषक् या समकक्ष परीक्षोत्तीर्ण हो, विशारद में प्रवेश पा सकता ाचार्य में प्रवेश के लिये नि. भा. आयुर्वेद विद्यापीठ की विशारद अथवा तत्सम परीक्षोर्ण होना आवश्यक है। प्रवेशार्थ इच्छुक विद्यार्थी निम्न पते पर अपने प्रमाणपत्रों की णित प्रतिलिपियों सहित शीघ्र आवेदन करें। प्रवेश शुल्क ५) रुपया है। विशारद शिक्षा क ५) प्रतिमास तथा आचार्य शिक्षा शुल्क ८) रुपया प्रतिमास है। आवेदनपत्र निम्न पते भेजें—

वैद्य सीताराम मिश्र,
मंत्री-नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ,
महालक्ष्मी मार्केट, चांदनी चौक, दिल्ली-६

Editor-in-Chief—Swami Chetnanand,
अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के लिए कविराज स्वामी चेतमानन्द द्वारा प्रकाशित
मुद्रक—महारथी प्रेस, दिल्ली

खोज का आश्चर्यजनक

परिणाम

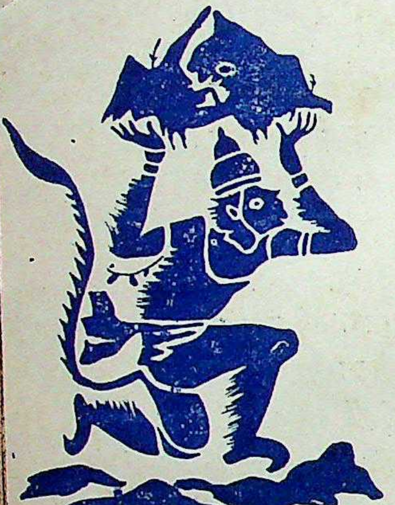

खोज का क्रम आज नया नहीं-किन्तु युग युगान्तर चला आ रहा है। खोजके ऊपर किसी कवि के ये शब्द स्वण क्षरोंमें लिखे हुए हैं कि :-“जिन खोजा तिन पाइयां गह पानी पैठ” त्रेतायुग में जब रावण के लड़के मेघनाद शक्तिबाण से श्री लक्ष्मणजी मूर्च्छित पड़े हुए थे और राम चन्द्र जी की व्याकुलता का अन्त नहीं था, उस समय लक्ष णजीमें पुनः जीवन लानेके लिये हनुमान जी को सञ्जीवन बूटी की खोज में जाना पड़ा था। हनुमान जी अपनी खोज में सफल हुए। परिणाम स्वरू लङ्का के युद्धमें श्रीराम लक्ष्मण की विजय हुई।

आज का यह वैज्ञानिक युग भी मानवता और रोगों के इस महायुद्ध में, रोग द्वारा त्रस्त मानव को मुक्त करने के लिये नयी नयी खोज में लग हुआ है और अपनी खोज में सफल हो नये अन्वेषणों द्वारा मानवजाति की रक्षा में सफल होता जा रहा है।

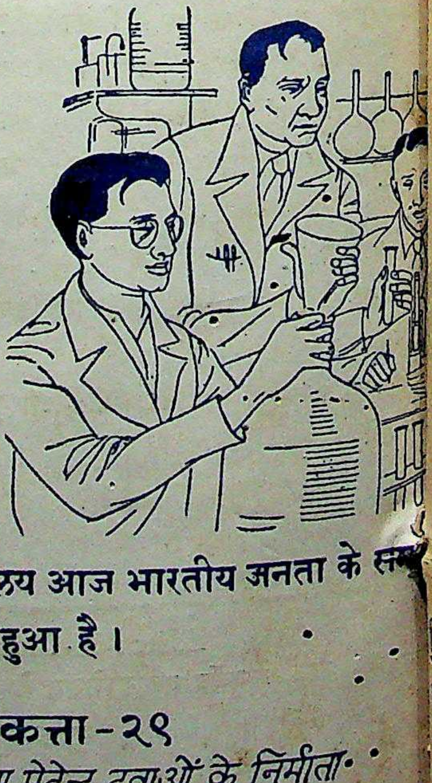

डाबर कार्यालय भी गत ७२ वर्षों से सऔषध सेवारत हो लगातार खोजों द्वारा आयुर्वेदिक, पेटेण्ट दवाओं के निर्माण क्षेत्र में दूसरों का पथ प्रदर्शक बनता जा रहा है। डाबर कार्यालय की बनी हुई आयुर्वेदिक तथा पेटेण्ट दवाएं इत्यादि आज जिस प्रकार लोकप्रिय बनी हुई हैं उसका एक मात्र कारण है— डाबर कार्यालयका निरन्तर खोजका परिणाम! साथ ही स्वच्छता और सर्वाङ्ग पूर्णता से औषध निर्माण की क्रिया!! इसी खोज के परिणाम स्वरूप डाबर कार्यालय आज भारतीय जनता के स औषध निर्माण करने वाला एक श्रेष्ठ कार्यालय बना हुआ है।

डाबर (डा॰ एस॰ के॰ बर्म्मन) लि॰ कलकत्ता-२९

अपूर्व गुणकारी आयुर्वेदिक तथा पेटेन्ट दवाओं के निर्माता

11-56

आयुर्वेद सेवा संघाचें पाक्षिक वृत्तपत्र

आयुर्वेद पत्रिका

गुरुकुल पत्रिका

(हरमहा ता. १ व १६ रोजीं प्रसिद्ध होतें.) (किंमत ६ आणे)

वर्ष १० वें) नासिक, ता. १६ आक्टोबर १९५६ (अंक ८ वा

११ वें महाराष्ट्र प्रांतीय वैद्य संमेलन, नगर

स्वागताध्यक्ष गृहीतायुर्वेद वै. स. बा. पुणतांबेकरशास्त्री

पूर्वी जाहीर झाल्याप्रमाणें महाराष्ट्र प्रांतीय वैद्य संमेलनाचें ११ वें अधि-शन अहमदनगर येथें नोव्हेंबर महिन्याच्या ७–८ या तारखांस वैद्यश्री वि. म. गोगटे यांच्या अध्यक्षतेखालीं भरण्याचें निश्चित झालें आहे. या संमेलनाच्या स्वागत-मंडळाची सभा ७ आक्टोबर रोजीं अहमदनगर येथें वैद्यराज वि. दा. एकतारेशास्त्री यांच्या अध्यक्षतेखालीं भरली होती. सभेनें सर्वानुमतें अहमदनगर येथील वृद्ध-वैद्य व माजी आयुर्वेदाध्यापक श्री. सदाशिवशास्त्री पुणतांबेकर यांची स्वागताध्यक्षपदीं योजना केली आहे. वैद्यराज वि. दा. एकतारेशास्त्री आयुर्वेदतीर्थ हे कार्याध्यक्ष निवडले गेले असून वैद्य वाग्भट शंकर वैं डी. ए. एस्. एफ्. हे प्रधानमंत्री नियुक्त झाले आहेत.

कार्याध्यक्ष

आयुर्वेद महाविद्यालय माजी विद्यार्थी संमेलन.

याच संमेलनानंतर ता. ९ रोजीं नगर आयुर्वेद महाविद्यालयाच्या माजी विद्यार्थ्यांचें स्नेहसंमेलन होणार आहे. त्या संमेलनाचे अध्यक्ष गृहीतायुर्वेद पु. वि शामेणकर (पनवेल) यांनीं भूषित करावें, अशी त्यांना विनंति करण्यांत आली आहे. त्या संमेलनाचे स्वागताध्यक्ष प्रा. का. शं. करंदीकर आयुर्वेद-प्रवीण हे आहेत.

महाराष्ट्रांतील सर्व वैद्यबंधूंना स्वागतमंडळाची आग्रहाची विनंति

याशिवाय वैद्य रा. गो. जोग व श्री. गं. देशमुख, वैद्य भा. श्री. देसवंडीकर, वै. सो. का. इघाटे इत्यादि मंत्री नियुक्त झाले आहेत.

या दोनहि संमेलनाचें कार्य नगर येथें उत्साहपूर्वक चालू झालें असून निवास, कार्यालय, प्रसिद्धी भोजन, प्रदर्शन, समारंभ, आरोग्य (पाणी, दिवाबत्ती, स्वच्छता) भांडार, स्वागत इत्यादि खातेंवार समित्यांची योजना करण्यांत आली आहे.

सभास्थान, प्रदर्शनस्थान व निवासस्थान यांना अनुक्रमें कै. वै. पं. गंगाधरशास्त्री गुणे, कै. आयुर्वेदपंचानन शंकर चिंतामण वैद्य व कै. वै. वासुदेव बळवंत पुणतांबेकर यांचीं नांवें पुण्यस्मरणार्थ देण्यांत येणार आहेत.

स्वागत मंडळाच्या या सभेस म. प्रां. वैद्यमंडळाचे प्रधानमंत्री वै. माधवशास्त्री जोशी पुणें हे उपस्थित राहिले व त्यांनीं वेळोवेळीं मार्गदर्शन केलें. वैद्य श्री. त्र्यं. महाजनि यांनीं मुंबई, कुलाबा या भागांत व दक्षिण महाराष्ट्रांत प्रचार दौरा केला असून वैद्य एकतारेशास्त्री हे नागपूर, विदर्भ व खानदेश या भागांत वैद्यमंडळींना भेटून निमंत्रणें करून आले आहेत. सर्व भागांतून संमेलनास उत्तम पाठिंबा मिळाला आहे.

स्वागत मंडळाची महाराष्ट्रांतील सर्व वैद्यबंधूंना आग्रहाची विनंति आहे कीं सर्व मराठीभाषी बांधव एका राज्यांत येत असलेल्या या सप्ताहांत त्यांनीं उत्साहपूर्वक भाग घ्यावा. व संमेलन यशस्वी रीत्या पार पाडावें. जुन्या व नव्या पदवीधर वैद्यांच्या उत्कृष्ट सहकार्याचा नमुना म्हणून या संमेलनाकडे सर्वत्र बोट दर्शविलें जाईल अशी या संमेलनांच्या चालकांना खात्री वाटत आहे.

आयुर्वेद महाविद्यालय, अहमदनगरच्या

सर्व माजी विद्यार्थ्यांस नम्र विनंति

पहिलें पत्रक बहुतेक सर्वांस पाठवलें गेलें. त्यानंतर अनेकांकडून या स्नेहसंमेलनाच्या कल्पनेचें स्वागत झालें. अनेकांनीं स्वतः हजर राहून आपल्या इतर माजी विद्यार्थीबंधूंस हजर रहाण्याबद्दल. विनंति करीत असल्याचेंहि लिहिलें त्यावरून मोठ्या संख्येनें या संमेलनास माजी विद्यार्थी हजर राहतील असा भरंवसा वाटतो. आतांपर्यंत सुमारें ४०० पत्ते आम्हाजवळ आहेत. आणखी ५०—७५ पत्ते मिळविण्याचा प्रयत्न करीत आहोंत. सर्वांस सम्मेलनाच्या निमंत्रणपत्रिका रवाना होतीलच; तरीपण कांहीं पत्ते आम्हांस ज्ञात नसल्यानें जर एखाद्या माजी विद्यार्थ्यांस निमंत्रण-पत्रिका २५-१०-५६ पर्यंत पोचली नाहीं तर, त्यानें कृपया आपला पत्ता आम्हांस कळवावा. लगेच निमंत्रण--पत्रिका पाठवली जाईल. तशी ती पत्रिका पोहोंचली नाहीं तरी सर्वांनीं हेंच जाहीर निमंत्रण मान्य करून उपस्थित राहून म. प्रां वैद्य सम्मेलन व माजी विद्यार्थ्यांचें स्नेहसम्मेलन यशस्वी करावे अशी सर्व माजी विद्यार्थ्यांस नम्र विनंति आहे.

सम्मेलनांच्या तारखा [७।८ नोव्हेंबर १९५६ प्रांतिक सम्मेलन, व ९ नोव्हेंबर १९५६ माजी विद्यार्थी स्नेह सम्मेलन] अशा निश्चित झाल्या आहेत. कळावें लोभ असावा ही विनंति.

आपले नम्र

वैद्य का. शं. करंदीकर, स्वागताध्यक्ष, माजी विद्यार्थी संमेलनें

वै. वि. दा. एकतारे, कार्याध्यक्ष म. प्रां. वै. सम्मेलन. वै. श्री. गं. देशमुख, मंत्री, माजी विद्यार्थी सम्मेलन

वै. का. शं. वैद्य, प्रधान मंत्री म. प्रां. वै. सम्मेलन वै. रा. गो. जोग, ,, ,, ,,

॥ श्री धन्वन्तरये नमः ॥

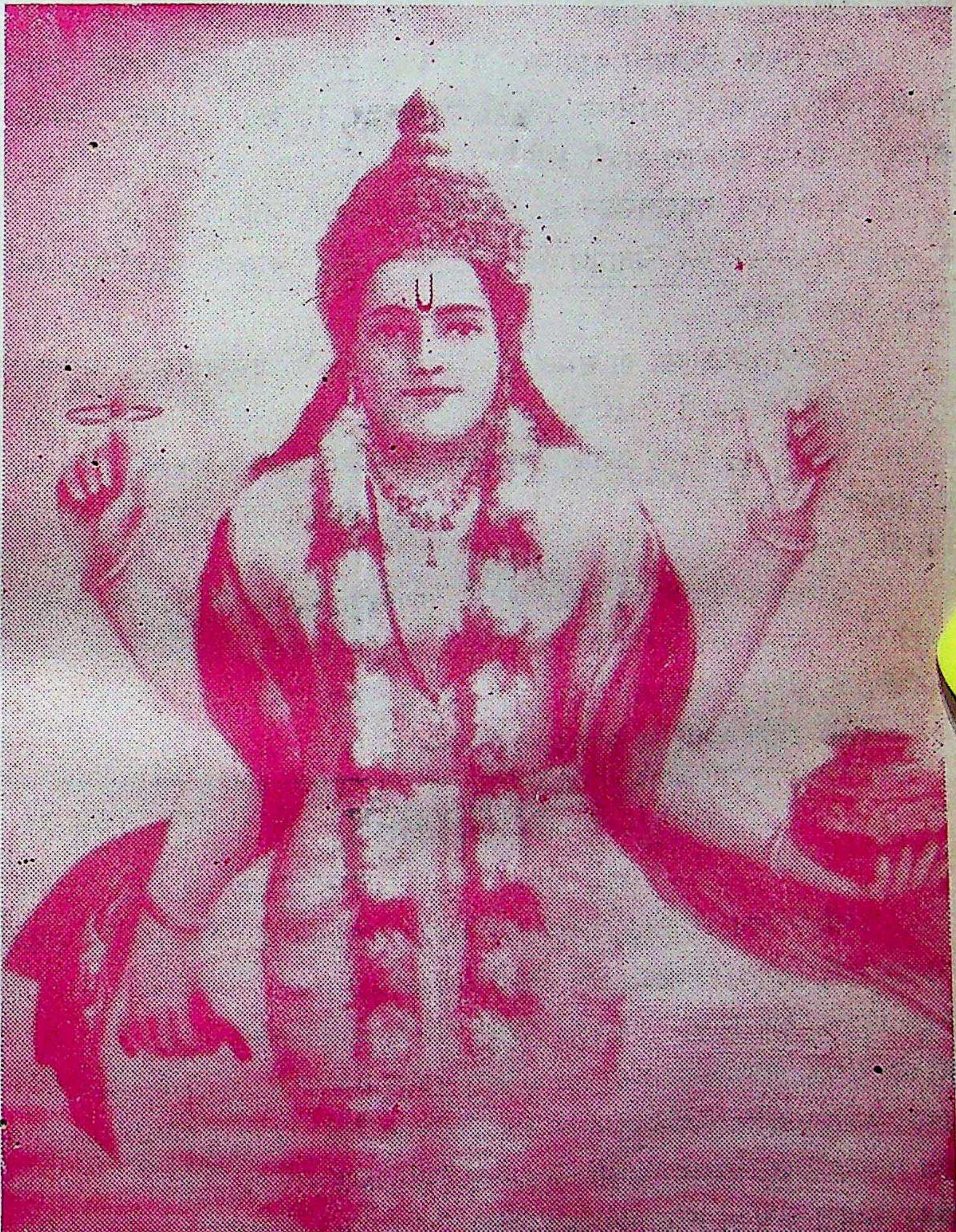

[चित्रकार, वैद्य त्र्यं. म. गोगटे, अमरावती]

शंखं चक्रं जलौकां दधतमृतघटं चारुदोर्भिःचतुर्भिः ।
सूक्ष्मस्वच्छातिहृद्यांशुकपरिविलसन्मौलिमंभोजनेत्रम् ॥
कालांभोदोज्ज्वलांगं कटितटविलसच्चारुपीतांबराढ्यम् ।
वंदे धन्वन्तरिं तं निखिलगदवनप्रौढ दावाग्निलीलम् ॥१॥

११ वें म. प्रां. वैद्य संमेलन, अहमदनगर

३ दिवसांचा (संभाव्य) कार्यक्रम

–मंगळवार दि. ६।११।१९५६–

रात्रीं ९ वा.– म. प्रां. वैद्य मंडळाच्या स्थायी समितीची बैठक.

रात्रीं १०ते११– विषय-नियामक समितीची सभा.

–बुधवार दि. ७।११।१९५६–

प्रातः [सूर्योदयी]– ध्वजवंदन.

म. प्रां. वैद्य संमेलनास प्रारंभ

प्रातः ८ ते ११ ईशस्तवन व स्वागतपर पद्य.
स्वागताध्यक्षांचें भाषण.
अध्यक्षीय सूचना व अनुमोदन.
संमेलन उद्घाटनाचें भाषण.
प्रदर्शन उद्घाटनाचें भाषण.
संदेश वाचन.
अध्यक्षीय भाषण.

माध्यान्ह २ते३॥ – व्याख्यान [निबंध Paper]

५ ते ७-३० – अहवाल वाचन. पुस्तक-प्रकाशन,
निबंध बक्षीस समारंभ.
खुलें अधिवेशन.

रात्रौ ९-३० ते १०-३० – वैद्यकीय चित्रपट.

–गुरुवार दि. ८।११।१९५६–

प्रातः ८ ते ९ – व्याख्यान [निबंध Paper].
,, ९-३०ते११ – खुलें अधिवेशन.

माध्यान २ ते ३– व्याख्यान [निबंध Paper].
३ ते ५– आयुर्वेदाश्रम फार्मसी लि. भेट.
५ ते ७ फोटो, समारोप व आभारप्रदर्शन.

रात्रौ ९-३० ते ११-३० – करमणूक.

[टीप–फोटो कदाचित् वेळेप्रमाणें सकाळीं ७-३०वा.]

–शुक्रवार दि. ९।११।१९५६–

आ. म. वि. माजी विद्यार्थी संमेलन.

प्रातः ८ ते ११– १] स्वागताध्यक्षांचें भाषण.
२] अध्यक्षीय भाषण.
३] संदेश वाचन.
४] सत्कार व परिचय.

माध्यान्ह २ ते ३ – व्याख्यान.
४ ते ७–परिचय, ठराव, फोटो, समारोप.
८ ते १०–करमणूक वा वैद्यकीय चित्रपट.

विषय नियामक समिति

अहमदनगर येथें ता ७।८ नोव्हेंबर रोजीं होणाऱ्या महाराष्ट्र प्रांतीय वैद्य मंडळाच्या अधिवेशनांत विचारांकरितां घ्यावयाचे विषय व ठराव मागविण्यांत आले आहेत. वैद्यानीं ते मंत्री म. प्रां. वैद्य संम्मेलन नगर यथें पाठवावेत.

आलेल्या विषयांची वर्गवारी करून ते खुल्या अधिवेशनांत मांडण्यापूर्वी त्यावर चर्चा वगैरे दृष्टीनें होणारा विचार हा विषयनियामक समितींत होत असतो.

कार्यक्रमाप्रमाणें ही विषय नियामक समिति मंगळवार ता. ६-११-५६ रोजीं रात्रीं भरणार आहे. त्यावेळीं वऱ्हाड-नागपूर वगैरे भागांतील वैद्यांनी प्रतिनिधी म्हणून उपस्थित राहून आपले विचार मांडणें आवश्यक आहे.

नवीन प्रविष्ट होणाऱ्या प्रांतातील अडचणी वगैरेंची समग्र कल्पना सर्व प्रतिनिधींना देण्याला हीच सुसंधि आहे असें मला वाटतें.

१३-१०-५६ —वि. म. गोगटे

नागपूर येथें -
आयुर्वेद सेवा संघाचीं सर्व नवीं गुणकारी
औषधें मिळण्याचें एकमात्र केंद्र
श्री परांडे बंधु, औषधांचे व्यापारी
महालरोड, नागपूर.

आयुर्वेद सेवा संघातर्फे अध्यक्षांचा सत्कार

आयुर्वेद सेवा संघाचे सदस्य व शुद्ध आयुर्वेद महाविद्यालयांतील अध्यापक वैद्यराज वि. म. गोगटे हे म.प्रां. वैद्य मंडळाचे अध्यक्ष निवडून आल्याबद्दल त्यांचा सत्कार आयुर्वेद सेवा संघातर्फे शुद्ध आयुर्वेद महाविद्यालयांत वैद्यराज करमरकर यांच्या अध्यक्षतेखालीं नासिक येथें २९ रोजीं सायंकाळीं ४ वाजतां करण्यांत आला. त्याप्रसंगीं सेवा संघाचे मंत्री वै. श्या. धों. कुलकर्णी, वै. विंदुमाधव पंडित, वैद्य बा. स. मराठे यांचीं भाषणें झालीं. आयुर्वेद सेवा संघातर्फे त्यांना एक 'फुलांनीं भरलेली परडी' अर्पण करण्यांत आली. उत्तरादाखल केलेल्या भाषणांत वैद्य वि.म. गोगटे म्हणाले, "मी अध्यक्ष झालो याच्या पाठीमागें सेवा संघाचें वैद्यसमाजांतील कार्य हें आहे. माझीहि तपश्चर्या त्यांत आहेच."

म. प्रां. वैद्य संमेलनाच्या अध्यक्षावर अभिनंदनाचा वर्षाव

"महाराष्ट्र प्रांतीय वैद्य मंडळाची सेवा करणाऱ्या व्यक्तीला योग्य तें स्थान मिळाल्यावांचून रहात नाहीं. आपल्या सारखी श्रम व सेवेची मानवी मूर्ति आतां धुरा धारण करीत आहे... आपलें मी व्यक्तिशः व सेवा संघाचा अध्यक्ष म्हणून हार्दिक अभिनंदन करतो —वै. वेणीमाधवशास्त्री, नागपूर

Heartiest congratulations on the well deserved honour. ......

- वैद्यरत्न पं. शिवशर्मा, मुंबई

... अत्यंतात्यंत आनंद झाला. ईश्वर आपल्या कडून आयुर्वेदाची उत्तमोत्तम सेवा घडवून आणो अशी प्रार्थना आहे.—वै. शि. वि. डबेकर, जबलपूर

"आनंद... असंप्रदायवित् सर्वशास्त्रविदीप मूर्खवदुपेक्षणीयः । संप्रदायविरुद्धमतें जीं मांडली जात त्याबद्दल बोलावें."

— वै. भू. ग [illegible] जोशी, पुणें

समाधान झालें— महारोगाला आळा घालण्याचें काम वैद्यबंधूंनीं हातीं घेतल्यास त्यांची प्रतिष्ठा वाढेल.

—डॉ. **शिवाजीराव पटवर्धन**, अमरावती

अभिनंदन. आपलें हातून उत्तम मार्गदर्शन होवो. — **डॉ. कृ. श्री. म्हसकर**, मुंबई

अभिनंदन. संमेलनाचें नेतृत्व तरुणरक्तांत आलें आहे. —**वै. भा. द. गोडबोले**, पनवेल

यावेळीं महाराष्ट्राचे 'पं. शिवशर्मा' अध्यक्ष झाले याबद्दल आनंद व अभिनंदन.

— वै. **श्रीमती लक्ष्मीबाई बोरवणकर**

'अतिशयच आनंद झाला. नगरमध्यें व नंतरहि सतत जी सेवा करीत आहात त्या तपश्चर्येचें हें फळ आहे.' — **वै. स. सी. उदास**, नगर

'यापुढें जर आपण ध्येयानें, निष्ठेनें कार्य कराल तर बराच उपयोग होणेची आशा आहे.'

— **वै. ल. रा. मळेकर**

"आपणास पूर्ण यश मिळो असा स. आशीर्वाद पाठवीत आहे. आपणाबद्दल माझा फार उत्तम ग्रह गेलीं २०वर्षें आहे. —**डॉ. रा. त्र्यं. मोने**, अमळनेर

"आपली आयुर्वेद तपश्चर्या सर्व भारतांत आयुर्वेदाची प्रगति करो व "वैद्य श्री. अण्णासाहेब गोगटे" म्हणून आपला सर्वत्र लौकिक गाजो."

—**वै. य. घों. नाटोळीकर**, कागल.

अध्यक्षपदावर आपली निवड झाली ही महाराष्ट्रीय वैद्यांना भूषणाची, आपणासाठीं अभिनंदनीय आणि आम्हासाठीं अभिमानाची घटना घडली.

—**वै. त्र्यं.गो. शुक्ल**, वै. **साळजोशी**, पैठण.

"आजवर आपण आयुर्वेदाची निरलसपणें सेवा केली, त्याचाच हा पुढचा टप्पा गांठला आहे"

— वैद्य **पार्थ चौधरी**, फैजपूर.

"आपल्या कुशल नेतृत्वाखालीं आयुर्वेदाची सर्वांगिण उन्नति होईल" —**वै.पां वि. जायदे**, हुबळी.

ज्या ठिकाणीं आपण विद्यार्जन केलें त्या ठिकाणीं महाराष्ट्रीय [illegible] सम्मेलनाचें अध्यक्षपद

मिळणें ही गोष्ट अत्यंत भाग्याची आहे... . आज तीं. भाऊ हयात असते तर त्यांनाहि फार आनंद झाला असता, कारण त्यांचा तुमचेवर एकप्रकारें फार विश्वास होता." —**वै. शं गो. गुणे**, चाळिसगांव.

आपल्या लोकप्रियतेचें हें यश आहे. भाषणांत कुष्टरोगासंबंधीं लिहालच.

—**वै. का. शं. करंदीकर**, नगर.

आपल्या कार्याचें चीज होत आहे हें पाहून समाधान होत आहे. —**दादा गोगटे**, डंबरगांव

उत्साही व प्रामाणिकपणें कर्तव्य करीत राहाणाऱ्याला जगांत सर्वोत्कृष्टपद प्राप्त होतें.

—डॉ. **अप्पासाहेब ळेले** नगर.

आयुर्वेदाचे वरून खालीं घसरत जाण्याचें दिवस निश्चित संपले. —**वै. का. सी. भावे** फैजपूर

आपके कुशल नेतृत्वमें मंडळ अपने उद्देशोंमें अग्रसर होगा. —**वै. श्रीराम शर्मा** मुंबई.

आपल्या कारकीर्दींत मंडळाच्या कार्यास विशेष महत्व प्राप्त होईल असा कार्यक्रम आंखावा.

—**वै. कृ. के. कानिटकर** मुंबई २.

उत्साही, कर्तृत्त्ववान् व कुशल अध्यक्ष लाभला.

— **वै. गो. आ. फडके**, सातारा

'आयुर्वेद नित्याचे व नैमित्तिक प्रश्न सोडविण्याचें काम आपण कुशलतेनें पावलें टाकून यशस्वी कराल.' —**वै. नि. कृ. भावे**, वरसई

अगदीं योग्य नेतृत्व लाभलें. नवनवीन जबाबदाऱ्या लीलेनें अंगावर घेऊन त्या सहजतेने पार पाडणें हा आपला स्वभावच आहे.

—**वै. भा. पु. नानल**, पुणें

शुद्ध आयुर्वेदाकरितां आपण करित आलेल्या प्रयत्नांत आपणाला भरपूर यश म. प्रां. वैद्य मंडळाच्या सभासदांकडून मिळेल.

—**वै. वसंत रानडे** नाशिक.

आपली कुशाग्रबुद्धि, विद्वत्ता, चतुरस्रता कार्यकुशलता, संघटननैपुण्य, वक्तृत्वशैली ह्या सर्व गुणांनी शुद्ध आयुर्वेदाचे कार्य यशस्वी होण्यास भरीव मदत होईल व आपली सहधर्मचारिणी आपले मंत्रीपद स्वीकारून व या कार्यास मदत करील.

— **वै. द. वा. शेंड्ये**, पुणें

हार्दिक अभिनंदन— **वै. शि. गो. जोशी**.
आयुर्वेद महाविद्यालय, पुणें.

द्विभाषिकांत नवीन सामिल झालेल्या प्रदेशांतील वैद्याची सहानुभूति व सहकार्य मिळवाल व आयुर्वेद महाविद्यालयाकडे लक्ष पुरवाल.

—**वै. गं. ह. पराडकर**, अकोला

राखावीं बहुतांचीं अंतरें। भाग्य येतें तदनंतरें या प्रसिद्ध उक्तीस अनुसरून वर्तणूक, अधिकाधिक ज्ञानलालसा, सततोद्योग व धडाडी या गुणांचें फलित.

— **भिषगाचार्य यंबकशास्त्री**. पुणें.

मंडळाचें कार्य अतिशय जोमानें वाढेल

वै. रा. वि. बाघ, रायपुर.

वैद्यक शास्त्राची सेवा आपण जीवाभावानें करीत आलांत त्याचे सार्वजनिकरित्या चीज झालें.

—**डॉ. जोगळेकर**, सायन मुंबई २२

आपली सार्वजनिक कार्याची हौस व अनुभव यांचा म. प्रां. वैद्य संमेलनाला विशेष प्रकारें लाभ मिळणार आहे. —**वै. गं. वि. पुराणिक**, पनवेल

विशाल महाराष्ट्रांतील वैद्यांच्या संघटनेची नांदी. —**वै. म. वि. पुराणिक**, पनवेल.

लक्ष्मी ही नको म्हणणाऱ्यांच्या मागें लागते असें म्हणतात. —**वै. नृ. न. बागेवाडीकर**, सोलापूर

आपण शुद्ध आयुर्वेदाचा पूर्ण पुरस्कार व प्रचार करून आयुर्वेदाला व वैद्यांना उन्नति शिखरावर न्याल अशी पूर्ण आशा बाळगतो.

—**वै. वामनराव दीनानाथ मुंबई** २

अभिनंदनः—शुद्ध-मिश्र मतभेद नष्ट करावेत ही विनंति. —**वै. इं. भू. भिगारे**, नागपूर.

पुढील व्यक्ति व संस्था यांनीं पत्रें पाठवून अध्यक्ष वि. म. गोगटे यांचें मनःपूर्वक अभिनंदन केलें आहे.

[illegible] ललित बडोदे, फु. शि. दोशी मार्ढे, वै. ब.द. व सौ. शैलजा खाडीलकर हातनूर, [दाक्षिण सातारा, के.जे. जोशी कागवाड, वा.शं. देशपांडे [नित्रुड], र.गो. कुलकर्णी फणसवाडी, मुं २. गो.द. देशपांडे मेहेकर, दि.के. कुलकर्णी उत्तण, भ. त्र्यं. वैद्य धुळे, र. ह. आफळे मिरी, भा. श्री. देसवंडीकर अश्वी, वै. न. पु. जोशी रोहे, वै. क्षीरसागर कोल्हार, वै. म.द. करमरकर मिरज, वैद्य शरद् परचुरे नासिक, वै. वा. वि. वझे वरोरा, श्रीधर कुलकर्णी हैद्राबाद. धन्वन्तरी सेवा मंडळ, मुं. ७ पेठे हायस्कूल नासिक, एन्. ई. आय्. गर्ल्स् हायस्कूल, नासिक, आयुर्वेदाश्रम फार्मसी अहमदनगर, म. सामाजिक परिषद नासिक. लोकहितवादी मंडळ नासिक. राधाकिसन तोष्णीवाल आयुर्वेद महाविद्यालय अकोला. विद्यार्थी मंडळ विदर्भ आयुर्वेद महाविद्यालय अमरावती.

महाराष्ट्र प्रां. वैद्य संमेलनाच्या

१२ व्या अधिवेशनासाठीं मिरजेचें निमंत्रण

स. न. वि. वि.

महाराष्ट्र प्रांतिक वैद्य संमेलनाचें बारावें अधिवेशन मिरज येथें पुढीलवर्षी भरवावें अशी इच्छा बऱ्याच कार्यकर्त्यांनीं व्यक्त केली. त्याप्रमाणें आपला दक्षिण सातारा जिल्हा व आसपासचा भाग यांतील अनेक वैद्यमहाशयांबरोबर चर्चा व पत्रव्यवहार केला. सर्वांनीं संमेलनाचें पुढील अधिवेशन भरविलें तर आम्ही जास्तींतजास्त सहकार्य करूं असें आश्वासन दिलें आहे.

अधिकृत आमंत्रणासाठीं सभा

यंदाचें ११ वें अधिवेशन नोव्हेंबर दि. ७ते९, १९५६ रोजीं अहमदनगर येथें भरणार आहे. त्या अधिवेशनांत पुढील अधिवेशनाचें निमंत्रण अधिकृतरीत्या द्यावें लागतें. तेव्हां या निमंत्रणाबाबत विचारविनिमय करण्यासाठीं व पुढील बाराव्या अधिवेशनाची योजना ठरविण्यासाठीं आपण दि. २१-१०-५६ रोजीं दुपारीं ३ वाजतां मिरज येथें शांकरतत्त्वज्ञानमंदिरांत (मराठी शाळा नं. १ चे जवळ) आपल्या वैद्य मित्रांसह अगत्य उपस्थित राहावें. आम्हांस आपल्या मार्गदर्शनाची अत्यंत अवश्यकता आहे. कळावें

पत्रव्यवहार— वैद्य म. द. करमरकर, मालगांव वेश, मिरज.

आपले नम्र

वै. भा. मों. आडिवरेकर,
,, सौ. निर्मला कोकटनूर,
,, रा. के. करमरकर
,, गणपतराव दत्तोजीराव जाधव
,, माधव गणेश गोखले,
,, गो. द. कुलकर्णी,
,, व्ही. आर. कोकटनूर,
,, रा. शं. देवांगस्वामी,
,, दत्तोजी रागोजी जाधव
,, महादेव गोविंद आमटे

वै. वा. वा. जोशी अध्यक्ष आयु.से.मं.सांगली,
,, केशवशास्त्री मराठे,
,, वि. भा. आडिवरेकर,
,, जाहिरोद्दीन बाबासाहेब डबीर,
,, बाबूराव आण्णाप्पा आमटे,
,, स. भा. जोशी,
,, भाऊसाहेब करमरकर,
हकीम जी. बी. मणीयार,
वै. लक्ष्मण बाबुराव आमटे,
,, [illegible],

वै. टी. एम. वंटमुरे,
,, वा. श्री. शिराळकर
हकीम ए. के. पटेल,
,, एम्. रझाक,
वै. शंकर भास्कर स्वामी,
,, धुं. चिं. पटवर्धन,
,, एस. व्ही. कापसे,
,, गोविंद आप्पण्णा आमटे,
,, गणपत नारायण मोरे,
,, म. द. करमरकर.

गुळाचें संशोधन :

लेखकः—वैद्य पृ. वि. धा[illegible]कर
पनवेल

आयुर्वेदीय औषधांबाबत प्रामाण्य साधलें जावें, असें औषधी निर्माते–विक्रेते-योजक–ग्राहक आणि शासक या सर्वांना वाटतें. फक्त प्रश्न आहे तो म्हणजे हें साधायचें कसें ? हें काम अंगावर घ्यायचें कोणी ! कारण हा आहे नवा उपक्रम. त्याच्या क्रमाचें तंत्र नव्यानें ठरवायला हवें. सामान्य संशोधक इकडे मुळींच वळत नाहींत. पण कोणीतरी या कार्याला प्रारंभ केल्याशिवाय तें प्रगत होणार कसें, आणि गुळाचें प्रामाण्य साधणार कसें !

संशोधनासाठीं १ लाख रुपये

पुणें विद्यापीठाकडे, बारामतीचे सुप्रसिद्ध गुळाचे निर्माते कै. रा. रा. रावबहादुर ग. गो. तथा दादासाहेब शेंबेकर यांनीं गुळाचे संशोधनाकरितांच १ लाख रुपये दिले असल्याचें समजतें. या रकमेंतून हें कार्य सुरूं झाल्यास दात्याची इच्छा आणि इतरांच्या अपेक्षा सफल होऊन गुळाचें प्रामाण्य साधण्याची शक्यता निर्माण होण्याचा संभव आहे, असा मला भरंवसा वाटतो.

१९३२ सालानंतरचा बदल

ऊंसाच्या देशी अथवा जुन्या जाती लावण्याचा व नैसर्गिक खतें वापरण्याचा प्रघात होता तोंवर, आयुर्वेदीय औषधी तयार करण्यास प्रशस्त असा गूळ लाभत असे. पण सामान्यतः १९३२सालापासून हा जमाना बदलला व साखरेची पैदास जास्त करून देणाऱ्या ऊंसांच्या परदेशी जाती व त्यांना पोषक अशीं परदेशी खतें यांचा प्रचार झपाट्यानें झाला, आणि आयुर्वेदीयांना पूर्वीसारखा चांगला गूळ मिळेनासा झाला. आसवारिष्टांत तर गूळच प्राधान्यानें असल्यानें त्यांच्या प्रक्रियेंत बिघाड व गुणांत न्यूनता निर्माण होणार कीं काय असें वाटूं लागलें.

प्रश्न सोडविला पाहिजे

कांहीं कारखानदारांनीं आपापल्या गरजेपुरता ऊंस लावून गूळ तयार करण्याचा प्रयत्न केला, पण हा उपक्रम अल्पजीवी ठरला. असें जरी घडलें असलें, तरी हा प्रश्न असाच सोडून देऊन भागायचें नाहीं. संशोधनाची कास धरून हा प्रश्न नेटानें सोडविला पाहिजे. ह्याकरितां ह्या कार्याबाबतचे माझे विचार सादर करीत आहे.

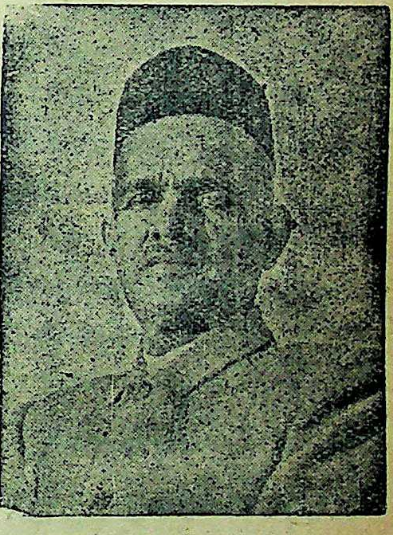

पदार्थ निर्माण होत असतांना त्याच्या निर्मितीला जें जें कांहीं कारणीभूत झालें असेल त्या त्य प्रत्येक द्रव्याचा विचार स्वतंत्रपणें व आमूलाग्र करावा लागतो, तेव्हां त्या विषयाचा विचार यथा स्थित झाला, असें म्हणतां येतें.

विचार करण्याचे ६ मुद्दे

गुळाचेंच उदाहरण घेतलें तर [१] जमीन [२ खत [३] पाणी [४] हवामान [५] ऊंसाची जात [६ मळी काढणारीं द्रव्यें [illegible] विचार करावा लागतो जसें [१] तांबडीलाल व पाण्याचा निचरा करणारी जमीन ऊंसाचे लागवडीस प्रशस्त, पण आतां का कोठल्याहि जमिनींत ऊंस लावला जात आहे. [२ दुसरा पदार्थ खत, ह्याचीहि [illegible] अशीच आहे [illegible] सोनखत, पेंड इ. जुनीं खतें जाऊन अथव

मागें पडून त्यांची जागा अनेक परदेशी खतांनीं घेतली आहे. [३] पाणी–पूर्वी विहीर अगर नदीचें नित्य नवें, ताजें, जीवंत पाणी उंसास देत. तर आतां निःसत्त्व आणि निर्जीव असें पाणी उंसास लाभतें. ह्या पाण्यांत नदी विहीरींतलें क्षारहि नसतात. ते बहुधा तळ्यांतच पाण्याच्या बुडाशींच राहतात. [४] हवामान–गंगाकांठ, उंसाचे लागवडीकरितां प्रसिद्ध होता. आतां स्निग्धोष्णाऐवजीं रूक्षोष्ण अशा हवेंत सुद्धां उंसाचें पीक काढतात. [५] १९३२ पूर्वी उंसाच्या देशी जाती लावीत असत; त्यांतलि पौंड्र [पुंड्या] नामक उंसाचा गूळ अतिउत्तम असे. पण साखरेचे कारखाने भारतांत निघूं लागल्यापासून साखरेची पैदास अधिक करून देणाऱ्या उंसाच्या परदेशी जाती भारतांत आल्या, त्यांचा प्रचार-प्रसार झपाट्यानें झाला व जुना जमाना मागें पडला. [६] मळी काढण्याबाबतहि हाच प्रकार झाला; पूर्वी चुन्याची निवळी वापरीत असत, तेथें अनेक निरनिराळे देशी विदेशी पदार्थ वापरूं लागले, व गुळाचें स्वरूप मोहक करूं लागले. पण तें टिकाऊं असत नाहीं, असें अनुभवाअंतीं ठरलें आहे.

सांडू ब्रदर्सचीं

शास्त्रोक्त तयार औषधें, काढे, आसवें, अरिष्टें, भस्में, मात्रा, रसायनें इ. वैद्यवर्गास चिकित्सेंत फार उपयोगी पडतात.

वैद्यांना तीं घाऊक दरानें विशेष सवलतीनें दिलीं जातात.

पत्रव्यवहाराचा पत्ता:—

दत्तात्रेय कृष्ण सांडू ब्रदर्स
चेंबूर प्रायव्हेट लि.
(फॅक्टरी व हेड ऑफिस—चेंबूर, मुंबई)

कृत्रिमता वाढली

एवंच उंसाची लागवड व गुळाची निर्मिति ह्याबाबत सुधारणा म्हणून ज्या कांहीं झाल्या त्यांत जीवनीय व नैसर्गिक अशा गोष्टींचा लोप व कृत्रिमतेची भरपूरता निर्माण झाली. हा फरक क्रांतिकारक असला तरी तो गूळ खाणाऱ्या प्राण्यांच्या जीवनास पोषक अथवा उपकारक झाला नाहीं, हें पुढील तपशीलावरून ध्यानीं येईल.

विवेक केला पाहिजे

जमीन, खत–खताची जात, त्याचें प्रमाण, पाणी, त्याची प्रत व त्याचें प्रमाण, हवामान, उंसाची जात ह्यांत जसा बारकावा साधावा लागतो तसा उंसाच्या रसांतील मळी दूर करणारा पदार्थ निवडण्यांतहि विवेक करावा लागतो. मळी काढण्याकरितां [१] चुन्याची निवळी [२] वॉशिंग सोडा [३] सज्जीखार [४] हायड्रस अथवा ब्लँकिट [५] भेंडीग्यूसिलेज [६] सुपर फॉस्फेट [७] डबल सुपर फॉस्फेट इ. पदार्थ प्रयोगाकरिता घेतले गेले होते, पैकीं भेंडीग्यूसिलेज स्वतंत्र, व ब्लँकिट बरोबर उपयोजला तरी गुळाची प्रत सुधारली नाहीं. पण ब्लँकिट ऐवजीं भेंडीग्यूला सुपर-फॉस्फेटसूची जोड दिली ती मात्र अत्यंत यशस्वी ठरली. हायड्रसनें प्रथम रंग लौकर व सुंदर येतो पण तो पुढें फार दिवस टिकत नाहीं. हा गुळ उत्तरोत्तर हिरवट, काळसर रंगावर जातो. ॲक्टिव्ह कार्बन+सँड मधून रस परिस्रुत केला तर गुळाची प्रत सुधारते. सौवर्ण रंगाचा गूळ तयार होतो. हा रंग टिकतोहि. पण प्रक्रिया खार्चिक, त्यामुळें हिचा अवलंब कोणी करीत नाहीं. सज्जीखार, वॉशिंग-सोडा वापरल्यानें गूळ सुरवातीला ठीक होतो, पण पुढें तो काळा पडतो आणि कडू व खारट लागूं लागतो. म्हणून हे दोन पदार्थ त्याज्य ठरले. चुन्याच्या निवळीनें गूळ तांबूस व टणक होतो. हा गूळ औषधी उपयुक्त ठरतो. फॅक्टरीजमधून डबल सुपर-

फॉस्फेट वापरतात. त्यानें गूळ चांगला होतो. धार्मिक दृष्ट्या सुद्धां सोयीचा पडतो. कारण तो हाडांपासून तयार करीत नाहींत, तर रासायनिक पद्धतीनें प्रयोगशाळेंत बनविलेला पदार्थ आहे. ह्यानें सौवर्ण-पीत रंग येतो, व गूळ टणकहि होतो. शिवाय हे दोन्ही गुण टिकाऊ असतात.

गुळाचे दहा प्रकार

आयुर्वेदीय वाङ्मयांत गुळाचे दहा प्रकार आढळतात.—

१] क्षुद्र– उंसाचा रस एक चतुर्थांश आटवावयाचा. २] अधौत– मळी न काढलेला. ३] धौत– मळी काढलेला. ४] गरम– काहिलींतला. ५] ताजा– ढेप तयार होतांचा. ६] नवीन– एक वर्षपर्यंतचा. ७] पक्का– एक वर्षानंतरचा. ८] जुना– दोन वर्षानंतरचा. ९] औषधी– तीन वर्षांचा. १०] जीर्ण– तीन वर्षानंतरचा. चालू पद्धतीचा गूळ इतका टिकाऊ होईल कां असा प्रश्न आहे.

गुळाचें परीक्षण

हें परीक्षण तीन प्रकारचें असतें, १] भौतिक, २] रासायनिक, ३] रुग्ण-वैज्ञानिक. भौतिक परीक्षणांत गुळाचा रंग, स्पर्श, रुचि इ. पाहतात, तर रासायनिक परीक्षणांत त्याचे घटकावयव, विशेषतः साखर, मधुजन, सुधा, लोह, स्फुर इ. पहावयाचे असतात.

रंग— गुळाचे रंग दहा प्रकारचे संभवतात, ते असे:-(1) Unliya (2) Kesariya (3) Intia 4) Pyazi 5) Tambiya 6) Lotiva 7) Badami 8) Piliya 9) Sagoni (10) Kathia. पैकीं आयुर्वेदीय औषधीकरणांत केशरी, बदामी व पिवळा हे रंग शस्त मानतात.

स्पर्श— खाळ, अर्ध खाळ आणि चिकीचा असे तीन प्रकार गुळांत संभवतात. पैकीं खाळ उत्तम, अर्ध खाळ मध्यम आणि तिसरा प्रकार कनिष्ठ. कारण चिकीचा गूळ वापरल्यानें आसवें आंबट होतात, त्यांना तार येते, व तीं बिघडतातहि.

रुचि— सुमधुर, मधुर, सलवण, सतिक्त, अशा चार प्रकारच्या रसांचे गूळ बाजारांत मिळतात. पैकीं फक्त गोड रसाचा गूळच औषधी ठरतो.

रासायनिक घटकावयव

औषधीकरणक्षेत्रांत गुळाचें स्थान २ प्रकारचें आहे. (१) औषधी प्रक्रियेंत (२) औषधी योगांत.

औषधी प्रक्रियेंत गुळाचें कार्य

[१] संरक्षण [२] रंगदायक [३] घनत्त्वाव [४] रुचिदायक [५] परिवर्तक]६] कोहल-नियाम

पैकीं संरक्षण व परिवर्तन कार्यासंबंधानें येथें खुलासा देणें जरूर आहे. गुळांत साखर व मधुजन असतात. या दोहोंना कर्बोदक असें संबोधतात. आसवारिष्टांत असल्यानें आसवांतील कोहलाचे दुष्परिणाम मन व शरीरावर होत नाहींत. तें औष बहुतकाल टिकतें. गुळांत दुसरा महत्त्वाचा पदा म्हणजे फॉस्फेटस्. आसवांतलें कोहल–परिवर्तन य घटकांमुळें संभवतें, शीघ्रगति पावतें. आसवांत परिवर्तन फार मंद असल्यास फॉस्फेटस्‌ची जोड दिल्या तें जलद गति पावतें. म्हणून आसव–परिवर्तकां गुळाचा नंबर बराच वर लागतो.

औषधी योगांतील गुळाचें कार्य

अथ जीर्णगुडः प्रोक्तः पित्तघ्नश्च रसायनः ।
वातार्तिजिद्रुचिकरो हृद्यस्तैदोषवारणः ।
प्रमेहघ्नः स्वादुतरः स्निग्धः श्रमहरो नृपे । नि. र

मजधुनः—मधुजन उसांत स्वभावतः असता व साखर तयार करतांना प्रक्रियेंत कांहीं चूक घड ल्यास ते अधिक वाढतात. मुळांतील भ्रमपरिहार पोषक, मूत्रल धर्म ह्या मधुजनामुळेंच असता गुळांत ग्ल्यूकोज अधिक तर तो गूळ पौष्टिक अधिक असें म्हणतां येतें. गुळांत मधुजनाबरो साखरहि असते, पण दोघांचें मान व्यस्त असतें.

“The greater the percentage glucose in Gur, the less will Sucrose content.

असा सर्वसामान्य नियम आढळतो, असें तज्ज्ञ म्हणतात.

सुधा व स्फुरः- ह्यानें रक्त सकस व शुद्ध राहतें.

साखर-गूळ यांतील घटकावयव

एका औंसांतः—

गुळांतः-प्रथिन ०·१० ग्रॅम्स, मेद ०·०२ ग्रॅ., कर्बोदक २८ ग्रॅ., रक्षा ०·१८ ग्रॅ, खट २२·५ मि. ग्रॅ., स्फुर १०·४, मि. ग्रॅ., लोह ३·३ मि. ग्रॅ., उष्णैकम् ११४

साखरेंतः-कर्बोदक २८·३ ग्रॅ., रक्षा ०·१८ ग्रॅ., उष्णैकम् ११३

वरील विवेचन लक्षांत घेतां आयुर्वेदीयांना पाहिजे असलेल्या गुळाचें वर्णन पुढीलप्रमाणें संभवतें. सौवर्ण पिवळा रंग, खाळ, केवळ मधुर, साखर कमी, मधुजन अधिक, सुधा स्फुर लोहयुक्त असा गूळ आयुर्वेदीय औषधी करण्यास प्रशस्त मानला जावा. अशा गुळाची पैदास वाढविण्यासाठीं संशोधन व परिश्रमांची आवश्यकता आहे.

औषधी गूळ

स चैकहायनो रुच्यः पथ्यश्चाग्निप्रदीपकः । मूत्र-विष्ठा-शुद्धिकरो हृद्यः स्वादुश्च पौष्टिकः । रसायनो लघुः स्निग्धो वृष्यो मेहश्रमापहः । त्रिदोषपाण्डुसंतापपित्त-वातापहो मतः । संयोगेन ज्वरहररुच्यब्दजीर्णो लघुः स्मृतः । सर्वदोषहरः श्रेष्ठः पुराणेषु स उत्तमः ॥ अरिष्टादिषु योज्यः स्यादूर्ध्वं हीनगुणः स्मृतः ॥ —निघण्टरत्नाकर

आंधळ्याला बुबुळ

बेळगांवचे सुप्रसिद्ध नेत्रवैद्य पद्मश्री डॉ. मोदी यांनीं नुकतेंच होसपट येथें एका आंधळ्याच्या डोळ्यावर शस्त्रक्रिया करून कोंबडीच्या पिलाचें बुबुळ बसविलें. सदर आंधळ्याला पूर्ण दृष्टि आली.

—बेळगांव समाचार

आयुर्वेदिक कारखानदार व वैद्य यांस लागणारीं
आयुर्वेदिक व युनानी वनौषधि
तसेंच खनिज व प्राणिज द्रव्यें मिळण्याचें मुख्य ठिकाण !

अंबर, कस्तुरी, गोरोचन, केशर, मौक्तिक खाका, माणिक, अकीक, सुवर्ण-वर्ख, रौप्य-वर्ख, शिंपा, कवड्या, शंख, प्रवाळ, आवळसार गंधक, दगडीवेर, जहरमोहरा, सुवर्णमाक्षिक, कांतलोह, हिंगुळ, पारद, गुग्गुळ, वज्राभ्रक, पन्ना, खर्पर, वाकेरी, अनंतमूळ, अष्टवर्ग, सोम, सर्पगंधा, उलटकंबल, नागकेशर (अस्सली), ब्राह्मी, वंशलोचन इत्यादि सर्व प्रकारची वनौषधि, खनिज व प्राणिज औषधि द्रव्यें घाऊक भावानें मिळतील.

बाहेरगांवच्या ऑर्डरीवर विशेष लक्ष दिलें जाईल. अस्सल व खात्रीपूर्वक माल हेंच आमचें वैशिष्ट्य ! विशेष माहितीसाठीं आमचे साप्ताहिक दरांचें छापील भावपत्रक मागवा.

टे. फो. नं. ३१७९६

टेलिग्रॅम—आयुर्वेद

शा. जादवजी लल्लुभाई आणि कंपनी

२४५ काळबादेवी रोड, मुंबई.

वेदांतील पंचमहाभूतविज्ञान [मागील अंकावरून समाप्त]

जलमहाभूताचें व्यापक स्वरूप

(लेखकः—वैद्य गो. ह. मराठे, ग्वालेर)

मानवाच्या देहोत्पत्तीचें व देहधारणेचें प्रमुख तत्व

पुरुषसूक्ताच्या ५ व्या सूक्तांत स्पष्टच म्हटलें आहे. तस्माद्विराळजायत विराजो अधि पुरूषः। स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥ ५ ॥

भाष्यः— विश्वङ्व्यक्रामदिति यदुक्तं तदेवात्र प्रपंच्यते। तस्मात् आदिपुरुषात्। विराट् ब्रह्माण्डदेहः अजायत उत्पन्नः। विविधानि राजन्ते वस्तून्यत्रेति विराट्। विराजोऽधि विराड्देहस्योपरि तमेव देहमाधिकरणं कृत्वा। पुरुषः तद्देहाभिमानी कश्चित् पुमान् अजायत। सोऽयं सर्ववेदान्तवेद्यः परमात्मा स्वयमेव स्वकीयया मायया विराड्देहं ब्रह्माण्डरूपं सृष्ट्वा तत्र जीवरूपेण प्रविश्य ब्रह्माण्डाभिमानी देवतात्मा जीवोऽभवत्। एतच्चाथर्वणिका उत्तरतापनीये विस्पष्टमामनन्ति–'स वा एष भूतानीन्द्रियाणि विराजं देवताः कोषांश्च सृष्ट्वा प्रविश्यामूढो मूढ इव व्यवहरन्नास्ते माययैव इति। स जातः विराट् पुरुषः, अत्यरिच्यत अतिरिक्तोऽभूत्। विराड् व्यतिरिक्तो देवतिर्यङ्मनुष्यादि रूपोऽभूत्। पश्चात् देवादिजीवभावादूर्ध्वं, भूमिं ससर्जेति शेषः। अथो भूमिसृष्टेरनन्तरं तेषां जीवानां,पुरः ससर्ज। पूर्यन्ते सप्तभिर्धातुभिरिति पुरः शरीराणि ॥

भाषांतरः— त्या परमेश्वरापासून हें विस्तृत जग निर्माण झालें आणि त्या ब्रह्मांडामध्यें जीव उत्पन्न झाला; नंतर त्या जीवांनीं वेगवेगळीं रूपें धारण केलीं. पृथ्वी निर्माण झाली, आणि वेगवेगळे शरीराचे आकार हि निर्माण झाले. त्या विराटदेहापासूनच अहंकारविशेष असा पुरुष निर्माण झाला. तोच वेदांतवेद्य परमात्मा होय. ज्यानें हें सर्व ब्रह्माण्ड उत्पन्न केलें आणि जीवरूपानें त्याच ब्रह्माण्डांत देव, मनुष्य इत्यादि तिर्यक् योनींत तो प्रगट झाला. याप्रमाणें पृथ्वी उत्पन्न झाल्यानंतर सप्तधातुयुक्त मनुष्यशरीर निर्माण झालें. सारांश, 'तमिद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो' इ. या मंत्रांत म्हटल्याप्रमाणें या सर्व विश्वाला पाण्यानें धारण केलें आणि नंतर सृष्टींत उत्क्रांति होत गेली हें यावरून स्पष्ट झालें. तेंच आपतत्व मानवाच्या देहोत्पत्तीला त्याचप्रमाणें धारणेला प्रामुख्यानें कारण होय. या रस-रक्तादींचें आप्यायन, देहोत्पत्तीपासून तो त्याचा अंत होईपर्यंत याच आपतत्वाकडून होत असतें. 'रसोऽहमप्सु' (श्रीमद्भगवद्गीता) प्राण्याच्या शरीरांत तेंच आप 'रस' रूपानें सर्व धातूंत संचार करितें आणि त्या अखंड आप्यरसस्रोतांत सनातनरूपानें 'सनातनमेनमाहुरुताद्यस्यपुनर्णवः। अहोरात्रे प्रजायेते अन्यो अन्यस्यरूपयोः शतं सहस्रमयुतं न्यऽर्बुदमसंख्येयंस्वमास्मिन्निविष्टम्। इत्यादि (अथर्व. कां. १२०-सूत्र ८) नानाप्रकारचे, शेकडो, हजारो, असंख्य जीव रात्रंदिवस उत्पन्न होतात, ते रूपानें एकदुसऱ्यासारखे असतात, आणि ते या मानवी शरीराला धारण करण्यास कारणीभूत होतात. अस्तु.

परमेश्वराला धारण करणारें तत्व

"जें आपतत्व परमेश्वर आणि साऱ्या विश्वाला धारण करतें, त्या तत्वाचें एकमेवाद्वितीय स्थान या उत्कर्षात कसें आहे तें पुढील कृष्णयजुर्वेद तैत्तिरीय आरण्यकाच्या नारायणोपनिषदांत वर्णिलें आहे. 'आपो वा इदं सर्वं विश्वा भूतान्यापः प्राणा वा आपः पशवः आपोऽन्नमापोऽमृतमापः सम्राडापो विराडापः स्वराडापश्छन्दाँस्यापो ज्योतीँष्यापो यजूँष्यापः सत्यमापः सर्वा देवता आपो भूर्भुवः सुवराप ओम् इति

भाष्यः- यादेदं जगदस्ति तत्सर्वमापो वै जलमेव। कथमिति प्रपंच्यते। विश्वाभूतानि सर्वाणि शरीराण्यापः। रेतोरूपेण तदुत्पादकत्वात्। प्राणा वै शरीरवर्ति वायवोऽप्यापः। उदकेन प्राणानामाप्यायनात् अतएव च्छान्दोगा आमनन्ति "आपोमयःप्राणो न पिबतो विच्छेत्स्यते" इति। पशवो गवादयोऽप्यापः। क्षीररूपेण तत्र परिणतत्वात्। अन्नं व्रीहियवादिकमापः। जलस्यान्नहेतुत्वम् प्रसिद्धम्। अमृतमापः। सम्यग्राजत इति सूत्रात्मा हिरण्यगर्भःसम्राट्। विस्पष्टं राजत इति ब्रह्माण्डदेहः पुरुषो विराट्। इन्द्रियादि नैरपेक्ष्येण स्वयमेव राजतइत्यव्याकृताभिमानीश्वरः स्वराट्। छंदासि गायत्र्यादीनि। ज्योतींष्यादित्यादीनि। यजूंष्यानियताक्षरा मन्त्राः। सत्यं यथार्थकथनम्। सर्वादेवता इन्द्रादयः। भूर्भुवः सुवस्त्रयो लोकाः सम्राडादि लोकत्रयान्तार्थ रूपेणाऽऽपः स्तूयन्ते। एताश्चाऽऽपो मूलकारणपरमात्मरूपेण प्रणवप्रतिपाद्या इति वक्तुमोंकारःपठितः ॥

अथर्ववेदांतील प्राणाची कल्पना

भाषांतरः— हे सर्व जग आणि त्यांत असणारे प्राणि या आप महाभूतामुळेंच दिसतात. त्यांचें आस्तित्व जलाच्या आधिक्यामुळेंच (इतर महाभूतांच्या मानानें) दिसून येतें. भूतानि, उत्पन्नमात्र प्राणि, ते जलचर असोत, स्थलचर असोत, वा नभचर असोत. ते सूक्ष्मांत सूक्ष्म जीव असोत किंवा (महाभारतांत वर्णन केल्याप्रमाणें सूक्ष्मयोनीनि भूतानि तर्कगम्यानि कानिचित्। पक्ष्मणोऽपि निपातेन येषां स्यात्स्कंधपर्ययः) इतके सूक्ष्म असोत, त्यांच्यांत जलाचें आधिक्य असणारच, त्याशिवाय त्यांचें अस्तित्व नाहीं, मग उत्पत्तीची गोष्ट तर लांब राहिली. त्यांच्या बीजांत-रेतांत देखील आपतत्त्वच विपुल आहे, म्हणून उत्पादन क्रिया शक्य होते. जलक्षय (Dehydration) झाला असतां उत्पत्तिक्रियाच थांबते. म्हणूनच त्या आपतत्वाला **प्राण** म्हटलें आहे. या आपांत वायवीय प्राण देखील तद्रूप होऊन राहातो. म्हणूनच त्याला 'अपां सखा' हें नांव दिलें आहे. आप या महाभूतांत सर्वसंकलनक्षम आणि देहसंचलनक्षम जी चित्शक्ति आहे, तोच प्राण होय.

अथर्ववेदांत (कांड ११, सूत्र ४) प्राणाची जी सम्यक् कल्पना दिली आहे ती लक्षांत घेतली असतां आजच्या विज्ञानावरहि चांगलाच प्रकाश पडतो. प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे। यो भूतः सर्वस्वेश्वरो यस्मिन्सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥१॥ नमस्ते प्राण क्रन्दाय नमस्ते स्तनयित्नवे। नमस्ते प्राण विद्युते नमस्ते प्राण वर्षते ॥ २ ॥ यत्प्राण स्तनयित्नुनाभिक्रन्दत्योषधीः। प्र वीयन्ते गर्भान्दधतेऽथो बह्वीर्विजायन्ते ॥३॥ यत्प्राण ऋतावागतेऽभिक्रन्दत्योषधीः। सर्वं तदा प्रमोदते यत्किं च भूम्यामधि ॥४॥ यदा प्राणो अभ्यवर्षीद्वर्षेण पृथिवीं महीम्। पशवस्तत्प्रमोदन्ते महो वै नो भविष्यति ॥५॥ अभिवृष्टा ओषधयः प्राणेन समवादिरन्। आयुर्वै नः प्रातीतरः सर्वा नः सुरभीरकः ॥६॥

भाषांतरः— (प्राणाय) समस्त प्राण्यांच्या प्राणस्वरूप परमेश्वराला (नमः) नमस्कार असो. (यस्य) ज्याच्या (वशे) सत्तेंत, अधिकारांत, (इदं सर्वम्) हा सर्व संसार आहे, (यः) जो (भूतः) सर्वश्रेष्ठ, सत्तावान्, स्वयंभू (सर्वस्य ईश्वरः) सर्वांचा ईश्वर आहे आणि (यस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितम्) ज्याच्यावर हा सर्व संसार अवलंबून आहे, आश्रित आहे ॥१॥ हे (प्राण) सर्व संसाराच्या प्राणस्वरूप परमेश्वरा! (क्रन्दायते नमः) गर्जना करून सर्वांना आनंद देणाऱ्या तुला माझा नमस्कार! (स्तनयित्नवे) मेघरूपानें सर्व जगावर सुख-अन्न, जल आणि जीवनाची वृष्टि करणाऱ्या पर्जन्यरूप प्रजापते तुला नमस्कार. हे प्राण (प्राण) (ते विद्युते नमः) विद्युल्लतेच्या प्रखर कांतीप्रभेनें तुझें कार्य चमकत असतें, डोळयांत भरत असतें, त्या तुला नमस्कार. (वर्षते ते नमः) आनंदाची वर्षा करणाऱ्या तुला नमस्कार असो. ॥२॥ हे (प्राण) सर्व संसाराच्या प्राणस्वरूपा प्राणा! (यत् जेव्हा) (स्तनयित्नुना) मेघांच्या द्वारें (औषधीः अभिक्रन्दते) औषधीकरितांच जणुं

गर्जना होते (तदा) तेव्हां त्या औषधी (प्रवीयन्ते) विशेषरूपानें प्रजननाचें–प्रजोत्पादनाचें कार्य करतात, अर्थात् पुरुष, स्त्री, वनस्पति इत्यादि परस्परांच्या कुसुम–परागांच्याद्वारें समागम करितात, म्हणून (गर्भान् दधते) गर्भधारणा करतात किंवा होते. (अथ) आणि यानंतर (बह्वीः) नाना प्रकारची, विविध प्रकारची (विजायन्ते) सृष्टि दिसते, उत्पन्न होते. मेघांची गर्जना, वर्षा, आणि त्याद्वारें औषधींची उत्पत्ति, गर्भधारणा आणि उत्पन्न होणें हे सर्व आप ह्या प्राणमय प्रजापति परमेश्वराच्याच अतर्क्य शक्तींचें रूप होय.

जलाचा सदुपयोग करा, उदकांत सर्व औषधें आहेत.

ऋग्वेद (मंडल १, सूक्त २३, मंडल १९,२०,२१) 'अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तये। देवा भवत वाजिनः ॥१९॥ अप्सुमेसोमोअब्रवीदन्तर्विश्वानिभेषजा। अग्निं च विश्वशंभुवमापश्च विश्वभेषजीः ॥२०॥ आपः पृणीतभेषजंवरूथंतन्वे मम। ज्योक्चसूर्यंदृशे ॥२१॥ उदकामध्यें अमृत आहे व उदकामध्यें औषध आहे, यास्तव, हे विप्रहो, ज्ञानी लोकहो, त्या प्रशंसेस योग्य अशा जलाचा तुम्ही सदुपयोग करा॥१९॥ उदकांत सर्व औषधें व जगताला सुख देणारा अग्नि असल्यानें व उदक सर्वौषधरूप असल्याचें मला सोमानें सांगितलें आहे ॥२०॥ हे उदका, माझ्या शरीराकरितां रोगनिवारक औषधांची भरती कर, आम्ही निरोगी होऊन चिरकाल सूर्य अवलोकन करण्यास समर्थ होऊं ॥२१॥ आणि हे (प्राण) सर्वांना जीवन देणाऱ्या परमेश्वरा प्रभो! (ऋतौ आगते) ऋतु–काल आला असतां (यत्) जेव्हां [औषधीः अभिक्रन्दति] औषधी आणि प्रजेकरितां जेव्हां तूं मेघरूपानें गर्जतोस [तदा सर्व] तेव्हां सर्व संसार (यत् किं च) जो कांहीं [अधि-भूम्याम्] या भूमींत आहे [प्रमोदते] आनंदित–उल्हासित होतो ॥४॥ (यदा) जेव्हां (प्राणः) प्राणस्वरूप, सर्वांना प्राण देणारा मेघरूपानें प्रजापति (वर्षेण) जलधारांच्या रूपानें (महीम्--पृथिवीम्) विशाल अशा पृथ्वीवर (अभि--अवर्षीत) वर्षा करितो, (तत्) तेव्हां (पशवः प्रमोदन्ते) पशु प्रसन्न होतात आणि म्हणतात (नः) आमच्याकरितां (महः वै भविष्यति) जीवनाधार. असें अन्न निर्माण होईल आणि तूं आम्हांस मोठे करण्यास कारणीभूत होशील. (अभिवृष्टाः ओषधयः) पावसाच्या जलधारांनीं सिंचित केलेल्या औषधि (प्राणेन समवादिरन्) प्राणरूप प्रजापतीच्याबरोबर संवाद करितात कीं, हे प्रजापते! (नः) आम्हांला तूं (वै) निश्चयानें (आयुःप्रातीतरः) आयुष्य प्रदान करतोस (नः सर्वाः) आम्हां सर्वांस तूं (सुरभीः अकः) सुरभि सुगंधित किंवा कामधेनूप्रमाणें फल, रस आदि उत्पन्न करण्यास समर्थ करतोस.

प्राणांना आपतत्त्वाचें पूरकत्व

नमस्ते अस्त्वायते। नमो अस्तु परायते। नमस्ते प्राण तिष्ठत आसीनायोतते नमः ॥७॥ हे प्राणा! [आयते] शरीरांत येत असणाऱ्या तुला (ते नमः अस्तु) तुला नमस्कार असो, (परायते) शरीरांतून बाहेर जाणाऱ्या तुला (नमः अस्तु) नमस्कार असो. हे प्राणा (तिष्ठते ते नमः) शरीरांत सतत राहणाऱ्या तुला नमस्कार असो, [आसीनाय उतते नमः] शरीरांत सातत्यानें बसून राहून म्हणजे तें सातत्य थोड्या वेळ पुरेसें नसून कायमचे टिकविणाऱ्या प्राणा! तुला नमस्कार असो ॥७॥ त्याचप्रमाणें 'प्राणा वै शरीरवर्ति वायवोऽप्यापः। दकेन प्राणानामाप्यायनात्। शरीराचें संचालन करणारा प्राणवायु आणि आप यांचें सहअस्तित्व एक– कांस इतकें आवश्यकच नव्हे तर पूरक [Complimentary] आहे कीं, एकाचें उचित आणि सम्यक् [illegible] जर कमी झालें तर देहक्रिया सुरळीत चालूं शकत नाहीं. रसानां रसरक्तादि धातूनाम् अयनं आप्यायन सप्त धातूंत सतत आप्यायन होत असतें. म्हणूनच छान्दोग्योपनिषदांत म्हटलें आहे:– 'आपोमयः

प्राणो न. पिबतो विच्छेत्स्यते ' असो. वायूचें आणि जलाचें साहचर्य इतकें निगडित आहे कीं, वायूस जलाचा सखा म्हटलें आहे. सखा–मित्र तोच म्हटला जातो जो दुसऱ्या जिवलगाकरितां आपलें सर्वस्व देतो.

अन्तरिक्षे पथिभिरीयमानो न निविशते कतमच्च नाहः । अपां सखा प्रथमजाऋतावा क्वस्विज्जातः कुत आबभूव ॥३॥ [ऋ. मं. १० अ. १२ सू. २६८-३]

भाषांतरः— अंतरिक्षांतील मार्गांनीं जाणारा हा वायु एकीहि दिवस स्वस्थ बसत नाहीं. हा जलांचा सखा, मित्र, सर्वांच्या पूर्वी जन्मलेला, व सत्याचा पालक कोठें व कोठून उत्पन्न झाला, असो. आतां पर्यंत झालेलें हें आपतत्वाचें वर्णन-महिमा–महत्व किती यथार्थ आहे हें पुढील त्याला दिलेल्या तीन पदव्यावरून आणखी स्पष्ट होईल. सूत्रात्मा जो हिरण्यगर्भ त्याला जीवसृष्टींत सम्यक् स्थितींत विराजमान होण्यास मदत करणारें आपतत्व सम्राट् या पदवीस योग्यच होय. या सर्व चराचरांत स्पष्ट रूपानें आपलें आधिक्य, वर्चस्व आणि अस्तित्व आप ठेवतें, म्हणून याच्या सार्वभौमत्वावरून याला विराट् म्हटलें आहे.

जलाचें बुद्धिप्रबोधन–कार्य

शरीरांतर्गत इंद्रियावयव–समूहास तत्तत् अपेक्षेप्रमाणें ' रसोऽहमप्सु ' रसरूपानें स्वसर्वस्व हें आप दान करते, पुरविते म्हणून याला स्वराट् ही पदवी योग्य होय, द्रवद्रव्य-विज्ञानांत आप–जीवनाचे गुण सांगतांना बुद्धिप्रबोधन असें त्यांस म्हटलें आहे तें युक्तच होय, कारण गायत्रीसारखे प्रभावशाली सर्व कल्याणकारी छंद त्या महाकवींच्या मस्तिष्कांतून जगदुद्धाराकरितां निर्माण झाले. श्रीभगवंतांनीं म्हटलेंच आहे ' गायत्री छंदसामहम् । ज्योतींष्यापो —या जलाचा महिमाच असा आहे कीं ' बुद्धिप्रबोधनानें ' ज्ञानाकडे तो माणसास नेतो, अर्थात् अज्ञानाचा नाश झाला असतां ज्योतिरूप झालेल्यास मिळावयाचें काय राहिलें ?' सर्वज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि ' (श्रीमद्भगवद्गीता) ज्ञानरूपी नौकेनें पापाच्या–असत्याचा सागर तरून जातां येतो. आप तत्वाच्या सम्यक् आप्यायनानें बुद्धीचें प्रबोधन होतें आणि ' ज्ञानम् आदित्यवत् (तत्परम्) प्रकाशयति ' (श्रीगीता). असो. ज्या परमेश्वरानें ही सृष्टि निर्माण केली त्याच्या यजनाकरितां हे आप आम्ही उपयोगांत आणतो. येवढाच 'यजूंष्यापो' या पदाचा अर्थ होय. आप या तत्वाचा महिमा वर वर्णिल्याप्रमाणें सर्वजगासमोर सत्य सिद्धांत म्हणून प्रत्यक्ष उभा आहे. प्रत्यक्ष परमेश्वराला धारण करणारें आप इन्द्रादि देवतांनाहि तितकेंच वंद्य आहे, त्याचप्रमाणें हें तीनहि लोकांना व्यापून आहे, म्हणून हेंच आप परमात्म्याच्या रूपानें जगदुत्पत्तीला कारण आहे आणि परमेश्वराची प्राप्ति प्रणवानें त्याच्या जपानें होतें म्हणून,

॥ ' ॐ आपो ज्योतिः रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम् ' ॥

आधुनिक शास्त्रांतील जलासंबंधीं वर्णन

पाणी (आप) हें शरीरांतील सर्वांत मोठें घटकांग आहे. सर्व शरीराच्या वजनाच्या सुमारें ६५ ते ७० टक्के इतकें वजन, शरीरांतील नुसत्या पाण्याचें आहे. ह्या मानानें ज्या मनुष्याचें वजन ७० किलोग्रॅम असेल त्याच्या शरीरांतील पाण्याचें परिमाण (मापी) सुमारें ५० लिटर इतकें असेल. बहुतेक सर्व शरीरघटकांत सुमारें ७० ते ८० टक्के इतकें पाण्याचें प्रमाण आहे, ह्यास मुख्य अपवाद फक्त अस्थिपंजराचा आहे, त्यांत सुमारें २० टक्के इतकेंच पाण्याचें प्रमाण असतें. हाडांत सुद्धां इतकें पाण्याचें प्रमाण असतें हें ऐकून जरा आश्चर्य वाटेल, परंतु ताज्या हाडाचें १/३ वजन सेंद्रिय-द्रव्य-विद्रावित पाण्याचें असतें व उरलेलें २/३ भाग वजन असेंद्रिय अशा क्षारीय पदार्थांचें असतें.

शरीरांत खालीं दर्शविल्याप्रमाणें पाणी असतें:—

[१] पेशींत असणारें पाणी (intra cellular water), [२] पेशींच्या बाहेरील भागांवर

असणारें पाणी (extra cellular water). पेशींच्या बाहेरील अंगावरील पाण्याचे दोन पोट-विभाग असतात. [अ] रस-धातूंतील पाणी व (ब) शरीर-घटक-द्रव्यांतील पेशींच्या पोकळयांतील पाणी. पेशींच्या बाहेरील पाण्याचें आणखी कांहीं पोट-प्रकार आहेत; जसें:- लसिकेंतील पाणी, सुषुम्नेंतील द्रव-भाग, डोळयाच्या गोलकांतील द्रव-भाग वगैरे. प्राणवायुप्रमाणेंच पाणी हें प्राण्याच्या जीवनस्थितीला अत्यावश्यक आहे.

शरीर स्वच्छ करण्याकरितां पाण्याचा बाह्योपयोग केला जातो, तसेंच शरीरांतील द्रव-धातूंतील पाण्याचें बाष्पीभवन, मलमूत्रविसर्जन, प्रस्वेदन व इतर नैसर्गिक शोधन इ. प्रक्रियांमुळें शरीरांतील कमी झालेल्या पाण्याचें प्रमाण सम स्थितींत ठेवण्यासाठीं पाण्याचा अंतरोपयोग केला जातो. साधारणपणें थंड ऋतूंत मोठ्या माणसास दररोज २५०० सी. सी. पाणी प्यावयास लागतें.

सर्व जीवंत पेशी कोलॉइडस् [Colloids] [रसधातुकण] व जलविद्राव्य भिन्न भिन्न क्षार यांच्या बनल्या असून त्यांच्यावर सच्छिद्र आवरण असतें; व पेशींच्या बाहेरील अंगावर रक्तरस-धातु [ज्याच्यांत द्राव्य पदार्थ व द्रावण प्रमाणबद्ध स्थितींत असतात] असतो. बहुतेक सर्व पेशी सच्छिद्र असतात व त्यांतून पाणी व विशिष्ट क्षार पाझरूं शकतात. पेशीचा आकार त्यांतील द्रवाच्या कमीअधिकपणामुळें लहान मोठा असूं शकतो. द्रव पदार्थांचें सेवन व मलमूत्रविसर्जन ह्या क्रिया जरी शरीराकडून सतत घडत असल्या व त्यामुळें रसधातु [Colloids] व जलविद्राव्य क्षार [Saline] ह्या घटकांचें प्रमाण जरी कमीजास्त होत असलें तरी ह्या घटकांना आवश्यक असलेली समस्थिति-असेंद्रिय धातूंच्या आवश्यक प्रमाणासह-कायमची अशी केव्हांच विकृत होत नाहीं. जीवनांतील हा एक महत्वाचा चमत्कार आहे. जीवनीय द्रव्याचें शोषण, मलमूत्रादींचा उत्सर्ग व पेशींची उत्पत्ति ह्या प्रक्रिया होण्यास शरीरास भरपूर पाण्याची आवश्यकता असते. उपासमार होणाऱ्या प्राण्याच्या शरीरांतील सर्व ग्लायकोजेन [यकृत्शर्करा] व चरबी आणि अर्धे प्रथिन द्रव्य जरी नष्ट झालें तरी तो जिवंत राहूं शकतो, परंतु २० टक्के पाणी जर कमी झालें तर तें प्राणघातक ठरतें.

पाण्यामुळें उत्पन्न होणारे दोष व गुण

शरीरावरील त्वचेस पाणी लावल्यास ती सच्छिद्र असल्यामुळें थोडें पाणी त्वचेंत शिरतें व शरीराचा एखादा भाग जास्त वेळ पाण्यांत ठेवल्यास त्या भागांत पाणी शोषलें जाऊन तो भाग जरा मृदु व फुगीर होतो. शरीरांतील श्लेष्मल त्वचेंत पाणी लवकर शोषलें जातें व तें जास्त शोषलें गेल्यास डोळयांतील व नाकांतील श्लेष्मल त्वचेंत प्रक्षोभ उत्पन्न करतें व द्रवधातु आणि क्षार यांचे समप्रमाणांत विकृति निर्माण करतें.

स्नानामुळें शरीराची केवळ बाह्य स्वच्छता होते असें नाहीं तर सर्व शरीरांत चैतन्य निर्माण होतें व त्यामुळें सात्म्य-प्रक्रिया वर्धित होतात. शरीरावर थंड पाणी जोरानें शिंपडल्यास मूर्च्छा, घेरी नाहींशी होतात व श्वसनक्रिया उत्तेजित होते.

पाणी हें निरुपद्रवी व अतिशय हितावह असें पेय आहे व प्राण्याला तहान लागणें म्हणजेच मलमूत्रप्रस्वेदनादि उत्सर्ग-मार्गांनीं कमी झालेल्या पाण्याच्या भरपाईची शारीरिक मागणी होय. पाणी उत्तम द्रावण असल्यामुळें अनेक द्राव्य पदार्थ त्यांत विरतात व ते शरीर-धातूंना त्याच्या प्रवाहित्वामुळें अन्नरसांत मिळूं शकतात; तसेंच शारीरिक सात्म्याक्रियेंतील शरीरमल पाण्यामुळें वाहून नेले जातात व ते उत्सर्जित केले जातात. जीवरासायनिक प्रतिक्रियेंतील या सतत होणाऱ्या घडामोडी आहेत व जीवनांतील ही एक महत्त्वाची चमत्कृति आहे.

पांण्याचें शोषण व कार्य कोठें होतें ?

आपण जें पाणी पितो तें स्थूलांत्राकडून व विशेषतः लघ्वंत्राकडून लवकर शोषलें जातें. आंतडीं असें पाणी शोषित असतां त्यांत निरनिराळ्या ग्रंथींकडून स्रवलेल्या पाचक रसांचेंहि भरपूर प्रमाण त्या पाण्यांत विद्रवित झालेलें असतें. अंत्राच्या वरच्या भागांत बराचसा जलांश शोषला जातो व उरलेला थोडासा जलांश मलमूत्राच्या स्वरूपांत शरीराबाहेर फेंकला जातो. पाण्यामुळें जीवपेशींच्या बाहेरील अंगावर असणाऱ्या रसधातूंत तसेंच रक्तरसांत पुष्कळशी वाढ होते. परन्तु रक्तरसांतील धातुकण विशिष्ट प्रमाणापेक्षां अधिक जलांश धारण करूं शकत नसल्यानें असें अधिक झालेलें पाणी घामाच्या व मूत्राच्या रूपानें बाहेर टाकलें जातें. निरोगी माणसाच्या रक्तांतील अशा प्रकारचा अधिक जलांश सत्वर बाहेर टाकला जातो व त्यामुळें त्यास तज्जन्य विकृति होत नाहीं. या अधिक झालेल्या जलांशांत शरीरांतील विषारी द्रव्येंहि विरतात व तीं उत्सर्गांवाटें बाहेर टाकलीं गेल्यानें सहजासहजीं शरीरांतून कमी होतात. वृक्काश्मरीचीं लक्षणें दिसूं लागतांच जर पाणी जास्त पीत राहिलें तर मूत्रप्रवृत्ति वाढते व अश्मरीकण (यूरेटस् किंवा ऑक्झलेट्स्) संचित न होतां तें मूत्राबरोबर बाहेर फेंकले जातात व वृक्काश्मरी होण्याचा धोका टळूं शकतो. घामाबरोबर थोडासा रसधातुहि बाहेर येतो, परन्तु त्यांतील बराचसा भाग स्नायुतंतूकडून व अंतस्त्वचातंतूकडून शोषला जातो; त्यामुळें ते उत्तेजित होऊन कार्यक्षम राहतात व अशाप्रकारें रसधातूंचे संरक्षक म्हणून त्यांचा उपयोग होतो. जास्त पाणी प्याल्यास मूत्रपिंड व हृदय यांचें काम थोडेंसें वाढतें; कारण कीं, पाण्यांतील प्राणवायु (ऑक्सिजन) संचित करणें व त्याचबरोबर शरीरांतील नायट्रोजन व सल्फर (नत्रद्रव्यें व गंधक) उत्सर्गांबरोबर कमी करणें हीं कामें त्यांना अधिकतर करावीं लागतात.

प्रातःकालीं एक मोठें फुलपात्रभर पाणी प्यालें असतां तें थोड्या वेळांत लघ्वंत्रांत जाऊन त्याला विस्तीर्ण करतें व त्यामुळें त्यांतील संचित मल आंतड्यांतल्या खालील भागांत लवकर सारला जाऊन पुष्कळांना सुख–शौच होतें. हा विधि मलाचा खडा होऊन बद्धकोठ होणाऱ्या लोकांना विशेष फायद्याचा होतो. परन्तु जेवणांत मात्र अतिशय पाणी पिणें अहितकारक आहे. कारण त्यामुळें वायु उत्पन्न होऊन तो अन्नरसांत मिश्रित होतो व त्यामुळें पचनाक्रियेंत बाध निर्माण होतो.

जास्त पाणी शोषलें गेल्यास काय होतें ?

उत्सर्गाच्या मानानें जास्त पाणी आंतड्यांत शोषलें गेल्यास तें शरीरांत संचित होऊं लागतें व त्यामुळें शरीरांत विषारी द्रव्यें निर्माण होण्याचा विशेष संभव असतो. जीवपेशींमध्यें अधिक धातुरस संचित झाला तर त्या फुगतात, तांबड्या रक्तपेशी त्यायोगें भग्न होतात व धातुपेशी शरीरांतील दाब वाढवितात. मनुष्य जास्त पाणी प्याल्यास त्यास मळमळ सुटते व वमन–प्रवृत्ति होते. परंतु कांहीं कांहीं वेळां मुद्दाम ओकारी करावयाची असल्यास जास्त पाणी पिण्यास देतात. ह्या वमन--क्रियेमुळें कोणतेहि दुष्परिणाम होत नाहींत.

हा लेख पुढील संदर्भ ग्रंथांच्या आधारें लिहिला आहेः- [१] फार्माकोलॉजी अँड थेरॅप्युटिक्स् ऑफ् वॉटर (सॅमसन--राइट कृत) [२] फिजिऑलॉजी अँड मेटेरिया मेडिका (मुजुमदार कृत) [३ ऋग्वेद– सायन भाष्य [वैदिक संशोधन मंडलम्, पुण्यपत्तनम्] [४] अथर्ववेद [पं. श्री. दा. सातवळेकर] [५] मुण्डकोपनिषद्- आचार्य भाष्य [६] तैत्तिरीय। आरण्यक–आनंदाश्रम संस्कृतग्रंथमाला, पुण्यपत्तनम् [७] वैदिक वाङ्मय– पं: द्विवेदी, वाराणशी.

– पाश्चात्य वैद्यकाची प्रगति –

(लेखक:–डॉ. र. कृ. गर्दे, एम्. बी. बी. एस्.)

१९३५ सालीं मी मेडिकल कॉलेजांतून बाहेर पडलो. हुशार, प्रथम श्रेणीच्या वर्गबांधवाबरोबर खेळीमेळीचे संबंध असल्यानें त्यांचेजवळील जाडजूड ग्रंथ नजेरखालून जातात. तशाच एका उत्कृष्ट ग्रंथाची १९५४ सालची अद्यावत् माहितीनें भरलेली नवीन प्रत सहज पहाण्यांत आली. रिकामपणाची कामगिरी म्हणून सहज चाळून पाहिली, तेव्हां गेल्या २०-२५ वर्षांची त्यांत पडलेली नवनवीन भर दिसून आली, त्यांत अद्यावत् अशा नवीन रोगांची यादी पाहून कोणीहि आश्चर्यचकित होईल.

अलोपथी चिकित्सापद्धतीचा अवगुण

सुरवातीला लेखकानें मोठ्या विनयपूर्वक नमूद केलें आहे कीं टायफॉइड, सिफिलिस सारखे रोग बरेच काबूत आले असले तरी त्यांची जागा नवीन रोगांनीं भरून काढल्याचें दिसतें. डॉक्टरवर्गात तिकडेदेखील [अमेरिकेंत] अँटीबायोटिक्स, सल्फाड्रग्ज इत्यादींचा भरमसाट उपयोग करण्याकडे वाढती प्रवृत्ति असल्याचें दिसतें. १९५१ सालीं, लेखक म्हणतो अमेरिकेंत दर डोई अर्धापौंड कृत्रिम रसायनें [सिन्थेटिक केमिकल्स] दिली गेली, म्हणजे दर माणसी (यांत आबाल-वृद्ध-स्त्री-पुरुष येतात) ३५०० ग्रेन्स औषध खाण्यांत आलें. सल्फाड्रग्जचें मात्राप्रमाण [डोसेज] फक्त ७॥ ग्रेन्सच असतें. यावरून वाचकांना याच्या अतिरेकी उपयोगाची कल्पना करतां येईल.

स्यंन्दचिकित्साहि [हार्मोन थेरपी] सकृत्दर्शनी भासते तितकी निरुपद्रवी नसल्याचे लेखकच सांगतात. ॲलोपाथी चिकित्सापद्धतीचा मुख्य अवगुण म्हणजे चालू कांहीं लक्षणें शमवून त्यांच्या जागीं नवीन लक्षणें उत्पन्न होणें हा येथेंहि आढळतो. असो. [illegible] आवृत्तींत नवीन माहिती म्हणजेच पर्यायानें नवीन रोगांची मोठी यादी दिलेली आहे. सुदैवानें या यादीतील अनेक प्रकार आपल्या देशांत अपवादात्मकच आढळतात. कारण आपण तितके सुधारलेले [!] नाहींत.

आजकाल शरीर व मन उपाशी

आजकाल असे एक विधान ऐकूं येते कीं, नवनवीन अद्यावत् शोधामुळें म्हणजे यंत्राच्या साह्यानें रोगनिदान अचूक व लवकर होतें व त्यामुळें वरील रोगांची यादी वाढल्याचें आढळते, म्हणजे प्रत्यक्षांत ते तितके वाढले नाहींत. माझ्या अल्पमतीला हें विधान अर्धसत्यच वाटतें. कारण आजकाल शरी व मन दोन्हींही उपाशी राहिल्यानें रोगराईचें प्रमाण वाढते आहे. रोगप्रतिकारार्थ व स्वास्थ्यरक्षणार्थ आयुर्वेदप्रणीत ऋतुकालोचित पथ्यापथ्यविचार आचरणें हाच राजमार्ग होय. हे कटुसत्य पटण्याची वेळ अजूनहि आली नाहीं काय ?

आपल्याकडेहि औषधें घेण्याची हौस व सो वाढतच आहे. वरील रोगांचे यादींत औषधीजन्य व्याधींचा झालेला समावेश सूज्ञांच्या लक्षांत येईलच. अँटीबायोटिक विशेषतः स्ट्रेप्टोमायसिन्मुळें कान बधिर होणें, चक्कर येणें, चालतांना तोल जाणें अशा लहा मोठ्या तक्रारी आपल्या पाहाण्यांत अनेकदां येतात. आपल्याकडील रोग्यांचें वजन १००–१२५ पौंडाच्या आसपासच असते. पण मात्राप्रमाण मात्र त्या मानानें कमी करण्याची खबरदारी क्वचितच घेण्यां येते. असो, शेवटीं पाश्चात्यांच्या ज्ञानसाधनेबद्द आदर ठेवूनहि वरील विवेचनांतील मथितार्थ घेत येणें शक्य आहे येवढेंच सुचवावेसें वाटतें.

अहमदनगर येथें आयुर्वेद सेवासंघाचीं औषधें

— मिळण्याचें स्थान —

डी. भालचंद्र आणि मंडळी, नगर

वाचकांचा पत्रव्यवहार

पंचखाद्य नैवेद्य

ता. १६ सप्टेंबर रविवारच्या गांवकरींतील आपला ‘श्रावण-भाद्रपद महिन्यांतील आरोग्य’ हा लेख वाचण्यांत आला. त्यांत ‘पंचखाद्य’ या प्रसादाची माहिती दिली आहे. त्यांत ‘ख’ आद्य अक्षर अशा पांच पदार्थांचा हा पंचखाद्य प्रसाद गणेशचतुर्थीच्या वेळीं करतात असें लिहिलें आहे.

या पांचापैकीं किसमिस या वस्तूचें आद्याक्षर ‘ख’ नसून ‘क’ आहे. हा प्रसाद खानदेशांत पाहण्यांत आला नाहीं. आमचे आजोबा नाशकाकडूनच खानदेशांत आले, त्यावेळेपासूनच हा प्रसाद आमचे घरीं दरसाल करणेचा प्रघात अद्याप चालू आहे. त्यांत पांचवी वस्तु खवा घालतात. खवा बहुधा दूध आटवून घरींच करतात. या पंचखाद्याची आरोग्यदृष्ट्या उपयुक्तता समजून आनंद झाला.

— ना. त्र्यं. जवारकर, धुळें

लिंबूदक

गोवर्धनपीठाचे शंकराचार्य (खरे) यांनीं आपला अनुभव भेटींत सांगितला. त्यांना बरेच दिवस पोटदुखीचा त्रास होत होता. पुष्कळ औषधें घेतलीं पण टिकाऊ गुण कांहीं येईना. पुणें येथील व्यायामपटु श्री. वझेबुवा यांनीं त्यांना एक घरगुती सोपा उपाय सुचविला तो असाः—

१।२ आंबट लिंबें आणावयाचीं व तीं सबंध (न चिरतां) पिण्याच्या पाण्यांत [तांब्यांत] टाकून ठेवावयाचीं. पितांना तें पाणी घ्यावयाचें.

हा प्रयोग केल्यानें त्यांची पोटदुखी गेली.

लिंबाची साल सौम्य कडू व सुगंधी असून कडुरस हा कफपित्तदोष हारक आहे. दूध, टमॅटो आदि गोड, आंबट पदार्थांच्या सेवनानें होणारे रोग अशा कडू रसाच्या सेवनानें जातात.

सौम्य कडुरस नित्य खाण्याच्या दृष्टीनें हा प्रयोग उपयुक्त आहे.

युनिव्हाइट कोलीन

ट्राय–कोलीन सायट्रेटचें औषधीमूल्य खालील परिमाणित औषधी द्रव्यसमूहाच्या मूल्याबरोबर आहे.

कोलीन एच्. सायट्रेट	४००० मिलिग्रॅम
ॲसेटिल मिथिओनिन	७५० ,,
आयनोसिटॉल	२५० ,,
जीवनसत्व ब-१२	३० एम्. सी. जी.
फॉलिक ॲसिड	७·५ मिलिग्रॅम
जीवनसत्व क	२५० ,,
,, ब-१	१२·५ ,,
,, ब-२	७·५ मिलिग्रॅम
निआसिन	७५ ,,
पँथेनॉल	५ ,,
जीवनसत्व ड	२५०० आय्. यू.

युनिकेम लॅबॉरेटरीज, मुंबई–२६

रुग्णालयांतील प्रार्थना

सुप्रसिद्ध रावबहादूर डॉ. रा. व्यं. मोने (रिटायर्ड सिव्हिल सर्जन) हे रामभक्त आहेत, हें फार थोड्यांना माहिती असेल. अंमळनेर येथील प्रताप धर्मार्थ रुग्णालयांत त्यांनीं रुग्णांच्या प्रत्येक खोलींत श्रीरामाचें चित्र लावण्याची व्यवस्था केली आहे. ते यशस्वी शल्यतंत्रज्ञ आहेत ही गोष्ट प्रसिद्ध आहे. तथापि ते शस्त्रकर्मास प्रारंभ करण्यापूर्वी ईश्वराची प्रार्थना करतात व त्यांची त्यावेळची भावना आपण निमित्त-मात्र आहोत, परमेश्वरच आपल्या हातून हें शल्यकर्म करवित आहे अशी असते. आपली प्रार्थना आजवर वाया गेली नाहीं, अशी त्यांचीं श्रद्धा आहे.

प्रताप चॅरिटेबल हॉस्पिटल, अंमळनेरमध्ये सकाळीं व रात्रीं कामाची पाळी बदलण्याच्या वेळीं मराठी-संस्कृत प्रार्थना केली जाते, ती अशी:—

दररोजची प्रार्थना

असंख्यात नांवें जया देत लोक।
परी नित्य जो सच्चिदानंद एक ॥
जयाच्या बळे चालतो हा पसारा।
नमस्कार त्या ब्रह्म तत्त्वा अपारा ॥ १ ॥
प्रभो पूर्ण आरोग्य आम्हां असावें ।
तसें नित्य मांगल्य नेत्रा दिसावें ॥
कधीं दैन्य दारिद्य आम्हासि नाहो ।
शतायुष्य ऐश्वर्य विज्ञान लाहो ॥ २ ॥
आहे ही मम प्रार्थना तुज हरे, गोविंद दामोदरा ।
तोडोनी भवपाश दुःखद झणीं द्यावा पदीं आसरा ॥
अज्ञानें मति मंद होउनि मला झाली तुझी विस्मृती ।
घेवोनी अपराध सर्व पदरीं द्यावी प्रभो सद्गती ॥३॥
अहो येतां जातां उठत बसतां कार्य करितां ।
सदा देतां घेतां वदनि वदतां ग्रास गिळितां ॥
घरीं दारीं शय्येवरि रतिसुखाचे अवसरी ।
समस्तांची लज्जा त्यजुनि भगवत्चिंतन करीं ॥ ४ ॥
नको रे नको दूर लोटूं दयाळा ।
तुझेवांचुनी दुःख सांगूं कुणाला ॥
पिता बंधु माता मला सर्व कांहीं ।
तुझेवीण रामा दुजें गोत नाहीं ॥ ५ ॥
नाहीं मला आश्रयो अन्य आतां ।
आलों तुझींया पदासी समर्था ॥
सोडोनि हे पाय जाऊं कुठें मी ।
तारीं मला रे रघुनाथ स्वामी ॥ ६ ॥
मनीं वीट वाटो सदा वीषयांचा ॥
सदा ध्यास लागो तुझ्या चिंतनाचा ।
उठो आवडी संतसंगा कराया ।
असें मागणें हें तुला रामराया ॥ ७ ॥
तुझें कीर्तनीं चित्त माझें रमावें ।
तुझें रूपची दृष्टिमाजीं भरावें ।
तुझें सर्वदा नांव यावें मुखा या ।
असें मागणें हें तुला रामराया ॥ ८ ॥
सदा सर्वदा योग तुझा घडावा ।
तुझें कारणीं देह माझा पडावा ।
उपेक्षूं नको गूणवंता अनंता ।
रघुनायका मागणें हेंचि आतां ॥ ९ ॥
आकाशात् पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम् ।
सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति ॥ १० ॥

॥ जय जय रघुवीर समर्थ ॥

॥ श्री गोपालकृष्ण महाराजकी जय ॥

आयुर्वेद सेवासंघांतील प्रार्थना

नासिक येथें आयुर्वेद सेवा संघाच्यां औषधी-भवनांत रोज सायंकाळीं ५॥ वाजतां होणारी प्रार्थना [५ श्लोक] आयुर्वेद पत्रिकेच्या १।८।५१ अंकांत प्रसिद्ध केली होतीच. तीच प्रार्थना रात्रीं ८ वाजतां आयुर्वेद सेवा संघाच्या आरोग्यशाळेंत केली जाते. त्यावेळीं तेथील सर्व कार्यकर्ते उपस्थित असतात व प्रार्थनेनंतर अल्प प्रवचन होतें. इतर अनेक आयुर्वेदीय संस्थांतून असा उपक्रम चालू असण्याची शक्यता आहे. त्याची माहिती पत्रिकेकडे पाठवावी अशी विनंति आहे.

श्रीधन्वन्तरि विद्यार्थी मंडळ

[विदर्भ आयुर्वेद महाविद्यालय, अमरावती]

" आयुर्वेदशास्त्र हें स्वयंपूर्ण व संपूर्णशास्त्र आहे. राजाश्रयाभावीं आज आयुर्वेद अत्यंत मागें पडत आहे. मनुष्याचें हृदय बाजूला काढून तें पुनश्च जोडण्याची शस्त्रक्रिया आमच्या आयुर्वेदांतदेखील अश्विनीकुमारांनीं केली होती. यावरून आयुर्वेदाचा प्राचीन काळीं अत्यंत विकास झाला होता असें सिद्ध होते " अशा आशयाचे उद्गार भुसावळचे वैद्यराज श्री. ब्रह्मदत्त शर्मा, सदस्य आयुर्वेद बोर्ड व आयुर्वेद फॅकल्टी, मुंबई, यांनीं अमरावती येथील विदर्भ आयुर्वेद महाविद्यालयांतील श्रीधन्वन्तरि विद्यार्थी मंडळातर्फे साजरा करण्यांत आलेल्या द्वितीय धन्वन्तरि उत्सवाचे प्रसंगीं अध्यक्षस्थानावरून भाषण करतांना काढले.

भारताचा मान वाढवावा

वै. गो. दा. पाठक यांनीं आपल्या भाषणांत सांगितलें कीं, सर्व जगतांत अंधकार असतांना भारतानें हातांत दिवा घेऊन जगताला मार्गदर्शन केलें. परन्तु त्याच या महान् राष्ट्राला निरनिराळ्या पाश्चात्य राष्ट्रांचें अनुकरण करावें लागत आहे, ही अत्यंत खेदाची गोष्ट असून तरुण पिढीनें भारतीय शास्त्रांचा विशेषतः आयुर्वेदाचा सखोल अभ्यास करून पूर्वीप्रमाणें भारताचा मान वाढवावा.

व्यापारानें लक्ष्मी-पूजन करा !

"महाराष्ट्रांत राहणारे जे, त्यांना आपण मराठे म्हणूं. त्यांच्या अंगीं एका गोष्टीशिवाय कोणतेंहि वैगुण्य नाहीं. ते शूर आहेत, विद्वान् आहेत, पण व्यापार करून सधनता प्राप्त करून घ्यावी अशी तीव्रता त्यांना वाटत नाहीं. आपण जे जिन्नस वापरतो त्यांचा व्यापार किंवा निर्मिति करण्यासाठीं मराठ्यांनीं कां झटूं नये ? आजच्या जगांतली महान् देवता जी " लक्ष्मीबाई " तिच्या संपादनाबद्दल यांना औदासिन्य कां ? "

— मि. रा. बेलणकर, सांगली

वाचकांचा पत्रव्यवहार—

पत्रिका मराठींतहि असावी

ता. १६।९।५६ च्या अंकांत रायपूरचे वैद्य रा. वि. वाघ यांनीं असें कळविलें आहे कीं पत्रिका हिंदींत काढावी. म्हणजे सर्व भारतभर वाचक होतील.

पण पत्रिका हिंदींत काढलीतर महाराष्ट्रांत हिंदी न समजणारे पुष्कळ आहेत. त्यांची गैरसोय होईल.

सबब मराठी वाचकांसाठीं मराठी, व हिंदी वाचकांसाठीं हिंदी पत्रिका काढावी अशी विनंति आहे. मी मराठी जाणणारा असून ५४ वर्षांचा आहे.

हलकर्णी — वैद्य ई. दुं. भोसकी

चुकीची दुरुस्ती

" लाळ कां वाढते " ह्या शीर्षकाऐवजीं " लवणतत्त्व कां वाढते " असें शीर्षकाखालीं पुढें ही दुरुस्ती पृष्ठ २०३ वर करणें जरूरी आहे.

" भोजनोत्तर लाळेच्या प्रमाणांत वाढ होणें हें आयुर्वेद दृष्ट्या स्वाभाविकच आहे. परन्तु पाश्चात्य मताप्रमाणें लाळेमध्यें असलेल्या लवण तत्त्वाच्या सरासरींत ही वाढ झालेली आहे " ही दुरुस्ती " तेव्हां " या शब्दापावेतो केली गेली पाहिजे.

त्याचप्रमाणें पुढेंही " त्यापासून प्रथम् एखादा रोग व नंतर " च्या ऐवजीं " त्या पासून प्रथम विदग्ध रस व नंतर त्या रसामुळें अनेक रोग उत्पन्न होतात, जसें इ.

— गुप्ताजी

थंडगार
नेत्रांजन
डोळ्यांचे विकारावर उत्कृष्ट
कृष्णशास्त्री बिवलकर
पेः आंजर्ले. (रत्नागिरी)

वाचकांचा पत्रव्यवहार—

कुमारी आसवांत झुरळ

“एका भारतीय ख्यातनाम आयुर्वेदीय औषधी कारखान्याच्या कुमारी आसवाच्या भरलेल्या बाटलींत झुरळ निघालें.” तरी ही परिस्थिति सुधारण्यासाठीं काय काय उपाय करावा तें कळवावें.

त्या कंपनीकडे पत्रव्यवहार केला. ‘ती बाटली परत द्या, आम्ही त्या ऐवजीं दुसरी बाटली देऊं व तपास करूं’ असें त्यांचें उत्तर आलें आहे. पण एवढ्यानें हा प्रश्न संपत नाहीं. ——एक वैद्य

[आयुर्वेद हा उपेक्षेच्या अवस्थेंतून पुढें चालला आहे. लवकरच १०।१५ वर्षांत तो अधिकाधिक लोकमान्य, राजमान्य, होईल. अशा वेळीं आयुर्वेदीय औषधी कारखान्यांनीं स्वतःचें एक ‘निरीक्षण-खातें’ निर्माण करून बाहेर पाठविली जाणारी प्रत्येक बाटली तपासून मगच रवाना होईल, अशी काळजी घेतली पाहिजे, तरच वरील सारखे प्रसंग टळतील. औषधावर निर्मितीची अगर बाटलींत भरल्याची तारिखहि अवश्य घालावी. —— संपादक]

सुवर्ण पिंपळ

आळंदीच्या अजान वृक्षाबद्दल आपणांस मागें लिहिलें होतें. आतां तेथील सुवर्ण पिंपळाबद्दल विचारणा करीत आहे. ज्ञानदेवाच्या द्वारीं असलेल्या सुवर्ण पिंपळाबद्दल आपण बरेंच ऐकलें असेल. परन्तु सुवर्ण पिंपळाचे गुणधर्म कोणीच सांगितलेले नाहींत. तरी त्याबद्दल औषधीय माहिती मिळत असल्यास कळविणें.

हा पिंपळ इतर पिंपळांच्या जातीचा नाहीं. याच्या पानांचा आकार कूर्मासारखा आहे. याच्या पानांच्या पाठीवरील शिरा वर आलेल्या नाहींत. वडाच्या पानाच्या वरच्या बाजूस जरा गडद हिरवा रंग व शिरा पातळीखालीं असतात तशा त्या दोन्ही बाजूस आहेत. इतर पिंपळांचीं पानें पाण्यांत बुडविली तरी न बुडतां तरतात. सुवर्ण पिंपळाचीं पानें पाण्यांत टाकतांच तळाशीं जाऊन बसतात. हें प्रत्यक्ष करून पाहून लिहित आहे. तरी या झाडाचे योग्याच्या दृष्टीनें फार महत्वाचे गुणधर्म असले पाहिजेत. चौकशी घेऊन कळविल्यास फार आभारी होईन.

— वा. सी. बेंद्रे
लेले बंगला, गोखले रोड, पुणें ४

विदर्भ आयुर्वेद महाविद्यालय

अमरावती येथील विदर्भ आयुर्वेद महाविद्यालयातर्फे ना. भाऊसाहेब हिरे, महसूलमंत्री, मुंबई यांच्या अध्यक्षतेखालीं ‘गांधी–जयंति’ साजरी करण्यांत आली. सुरवातीस श्री. नानासाहेब वामणगांवकर, संपादक ‘उदय’ यांच्या हस्तें ध्वजारोपण करण्यांत आलें.

ना. श्री. भाऊसाहेब हिरे म्हणालेः- गांधीजींच्या जीवनाची खरीखुरी सुरवात खेड्यांतूनच झालीं. परंतु वैद्यकीय व्यवसाय करणाऱ्यांची संख्या आजकाल शहरांत जास्त झाली आहे, ही अत्यंत खेदाची गोष्ट आहे. आयुर्वेद हें कमी त्रासाचें, कमी खर्चाचें व अत्यंत गुणकारी शास्त्र असल्याचें सांगून ते म्हणाले, कीं, गांधीजींची या भारतीय आयुर्वेदशास्त्रावर व निसर्गोपचारावर अत्यंत निष्ठा होती.

नवजीवन देणारे २ व्यवसाय

म. गांधीजींचा जीवन-दृष्टिकोन यशस्वी करावयाचा असेल तर खेड्यांत जाऊन वैद्यकीय व्यवसाय करण्याची ही संधि आपण व्यर्थ दवडू नये. आज आपल्या सरकारला चिकित्सकांची अत्यंत जरूर आहे. जगांत शिक्षकपेशा व वैद्यकीय व्यवसाय हे दोनच मोठे व्यवसाय असून याद्वारेंच आपल्याल देशाचें पुनरुज्जीवन करतां येऊन जनतेंत नवजीवन निर्माण करतां येईल.

शेवटीं ना. भाऊसाहेब हिरे यांनीं विद्यार्थ्यांन खेड्यांत जाऊन आयुर्वेदाद्वारें गरीब जनतेची सेव करण्याचा सल्ला देऊन म. गांधीजींचें राहिलेलें स्व साकार करण्याचा आदेश दिला.

या समारंभप्रसंगीं येथील विद्यार्थ्यांतर्फे जमविण्यांत आलेला १५१ रु.चा कच्छ–भूकंप सहाय्यनिधि अश्विनिकुमार मंडळाचे अध्यक्ष श्री. बेलोरकर यांचे हस्तें ना. भाऊसाहेब हिरे यांना अर्पण करण्यांत आला.

कांहीं प्राचीन विद्यांचे नमुने

मुंबईचे राज्यपाल डॉ. हरेकृष्ण मेहताब यांनीं ारडी [जि. सुरत] येथील स्वाध्याय मंडळास भेट दिली व तेथील कामकाजाचें आस्थापूर्वक निरीक्षण केलें. मंडळाचा प्रकाशन–विभाग, संस्कृत–प्रचार विभाग, वैदिक संशोधन इत्यादि कार्यांचा राज्यालांच्या मनावर मोठा प्रभाव पडला. या प्रसंगीं पंडित सातवळेकर यांनीं वेदादि ग्रंथांच्या संशोधनांतून ज्या प्राचीन विद्याचें ज्ञान उपलब्ध झालें, त्यांतील कांहीं विद्यांचें नमुन्यादाखल दिग्दर्शन केलें.

१ वेगवान् निरश्व रथ– घोड्यावांचून चालणारे रथ असत.

२ खगाकृति विमान– पक्ष्यांच्या आकाराचीं हीं विमानें तीन दिवसापर्यंत विसावा न घेतां आकाशभ्रमण करीत.

३ लोहचरण– पाय कापल्यास त्याच्या जागीं लोखंडी पाय बसवून मनुष्य संचालनक्षम होई.

४ पश्वांग–संधि– बकऱ्याचे वृषण बसवून पुरुषांचें कार्यक्षमत्व टिकवण्यांत येई.

५ अंध–दर्शन– अंधांना दृष्टि येई.

६ अखंडयौवन-वृद्धांना तरुण बनविणारी विद्या.

७ वंध्यत्वनाश– वंध्या गाई गर्भवती करणारी व दुधाळ बनविणारी विद्या.

८ राज्यशासनाचे १४ प्रकार निरनिराळ्या देशांत प्रचलित असून सध्यांच्या “ युनो ” प्रमाणें त्यांची एक संयुक्त राज्यव्यवस्थाहि होती.

९ गणबद्ध सुसज्ज सैन्य.

अ. भा. बोर्ड-फॅकल्टी परिषद

भारतांतील सर्व देशी वैद्यकबोर्डस्, कौन्सिल्स व फॅकल्टीज यांच्या परिषदेचें तृतीय अधिवेशन दिल्ली येथें तारीख २३ ते २६ सप्टेंबर १९५६ अखेर पर्यंत भरविण्यांत आलें होतें. मध्यभारताचे आयुर्वेद डायरेक्टर, देशी वैद्यक बोर्डाचे चेअरमन, आयुर्वेद-बृहस्पती, राजवैद्य पंडित रामेश्वरशास्त्री आयुर्वेदाचार्य यांना या अधिवेशनाचें अध्यक्षस्थान देण्यांत आलें होतें. आरोग्यमंत्री राजकुमारी अमृतकौर यांचें हस्तें या अधिवेशनाचें उद्घाटन झालें. सभास्थळ:– आयुर्वेद व युनानी टिब्बी कॉलेज, दिल्ली हें होतें.

परिषदेपुढील कामें

अखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद आणि युनानी महाविद्यालयांचा एकसूत्री अभ्यासक्रम आंखणें, देशव्यापी वैद्यक नीतीची संहिता (कोड ऑफ मेडिकल एथिक्स) तयार करणें, व रजिस्टर्ड देशी वैद्यक व्यवसायींचें अधिकृत हक्क निश्चित करणें हीं कार्यें परिषदेपुढें होतीं. परिषदेच्या शिफारसींची अंमलबजावणी होण्याकरितां त्या केंद्रीय स्वास्थ्यसचिवालयाकडे व नियोजन-समितीकडे पाठविण्यांत येतील.

.... उत्तम धर्म ....

जनतेची सेवा करणें हा मनुष्यमात्राचा धर्म आहे. त्यांतहि आजारी माणसाची सेवा करणें हा अति उत्तम धर्म होय. उत्तम गुणकारी औषध देऊन रोगाचें निवारण केल्यानें रोगी माणसाची सेवा उत्तम घडते.

अशी सेवा करण्यासाठीं उत्तम व अस्सल औषधेंच वापरलीं पाहिजेत. अशा खात्रीच्या औषधी खरेदी करण्याचें स्थान

दि ऑल इंडिया करियाणा स्टोर्स

पायधुनी मुंबई नं. ३

(टेलिफोन नं. ३१८५८) हेंच आहे.

युनानी व आयुर्वेदीय काष्ठादि औषधांचें

मुख्य केंद्र

आजचा आयुर्वेदीय विद्यार्थी

(वैद्य त्र्यं. म. गोगटे, आयुर्वेदतीर्थ यांचें व्याख्यान)

अमरावती येथील विदर्भ आयुर्वेद महाविद्यालयामध्यें विद्यार्थ्यांच्या नव्या वर्षाकरितां झालेल्या युनियनच्या निवडणुकीनंतर पहिलें व्याख्यान वैद्य त्र्यं. म. गोगटे यांचें "आजचा आयुर्वेदीय विद्यार्थी" या विषयावर ता. ११-९-५६ रोजीं झालें.

विद्यार्थ्यांना मार्गदर्शन

व्याख्यानाचा मूळ गाभा 'वैद्यकीय शिक्षणसंस्थेंतील विद्यार्थ्यांना वास्तव स्थितीचें सम्यक् दर्शन करून देऊन मार्गदर्शन' करावें या संबंधींचा होता. संस्थेमध्यें दाखल होणाऱ्या विद्यार्थ्यांची पूर्वपीठिका कशी असेल; "न मिळेल भीक तर वैद्यकी शीक" यापासून तो आयुष्यांत पुढें वैद्यकीय व्यवसायच करावयाचा, दुसरा कोणता नाहीं यासारखी महत्वाकांक्षा, येथपर्यंत निरनिराळया पूर्वपीठिका विद्यार्थ्यांच्या असूं शकतील. कोणी इतर प्रकारचें शिक्षण घेण्याची महत्त्वाकांक्षा सोडूनहि निरनिराळया कारणामुळें वैद्यकाकडे वळले असतील. अशा परिस्थितींत तें लोण शेवटपर्यंत पोचविण्याची जबाबदारी अंगावर पडते. या दृष्टीनें "आजचा आयुर्वेदीय विद्यार्थी" शिक्षण संपल्यानंतर तो प्रत्यक्ष व्यवसायामध्यें म्हणजे एक प्रकारच्या जीवनसंग्रामामध्यें दंड थोपटून उभा राहतो तेव्हां कोणकोणत्या तयारीनें असावा, यासंबंधीं तीन मुद्दे सांगून व्याख्यात्यांनीं विषयाचा उहापोह केला.

तत्त्व व शास्त्र हस्तगत करावें

पहिला मुद्दाः– विद्यार्थ्यांनें मोठ्या तपश्चर्येनें अष्टांगहृदयासारख्या ग्रंथाला साक्षी ठेवून त्यांतील तत्त्व आणि शास्त्र हें चांगल्या प्रकारें हस्तगत केलें पाहिजे, हें व्यवहारांतील अनेक उदाहरणें देऊन समजावून दिलें. आयुर्वेदीय चिकित्सेवरील मध्यन्तरींच्या कालांतील परवशतेमुळें वैद्यांचा आणि जनतेचा, शुद्ध आयुर्वेदावरील विश्वास पार उडाल्यामुळें शुद्ध आयुर्वेदाचें शिक्षण घेणें आणि त्यावरील विश्वास स्थिर करणें हें सध्यांच्या आयुर्वेदीय विद्यार्थ्यांच्या गांवीं सुद्धां राहिलेलें नाहीं. तरीपण खरोखरी भारतीय या नात्यानें व यशस्वी चिकित्सक या दृष्टीनें शुद्ध आयुर्वेदीय चिकित्सा–म्हणजेच "शोधन, शमन" वगैरे अवस्थाभेदानें वापरून--हस्तगत केली पाहिजे; म्हणजेच आयुर्वेदाचें पठण, अवबोधन, अनुष्ठान जर केलें तर स्वाभिमानानें व्यवसाय करतां येईल.

आपद्धर्म म्हणून महत्त्वाचा मुद्दा

दुसरा मुद्दाः– केवळ आपद्धर्म म्हणून महत्त्वाचा आहे असें प्रतिपादन केलें. सध्यांच्या आयुर्वेद म्हणून वैद्यकीय शिक्षण घेणाऱ्या विद्यार्थ्याला पहिल्या मुद्यांत अभिप्रेत असलेलें आयुर्वेदाचें शिक्षण अनेक कारणामुळें सध्यांच्या परिस्थितींत मिळत नसल्यामुळें व आयुर्वेदीय पद्धतीनें शरसंधान करण्यासाठीं योग्य बाणांचा भाता तयार नसल्यामुळें इतर पद्धतींचा अवलंब करावा लागतो. आयुर्वेदीय चिकित्सामंदिरांतून शुद्ध आयुर्वेदीय प्रक्रियांची परंपरा सुरू राहून त्या प्रक्रियांची जसजशी इज्जत वाढूं लागेल तसतशी इतर पद्धतीची कास धरण्याची लाचारी आयुर्वेदीय चिकित्सकाकडून आपोआपच कमी-कमी होत जाईल. तोपर्यंत इतर पद्धतींतील कास सद्यःकालांतील वैद्यकीय व्यवसाय करणाऱ्याला धरावी लागणार, असें जर आहे तर इतर पद्धतींचाहि शास्त्रशुद्ध अभ्यास करूनच त्या पद्धतींचा अवलंब करावा ही दुसरी जबाबदारी महत्त्वाची आहे.

उत्तम नागरिक होण्यासाठीं तिसैषणा

तिसरा मुद्दा सांगतांना उत्तम नागरिक होण्यासाठीं वैद्यानें कोणकोणत्या धोरणानें वागावें हें विस्तारानें समजावून दिलें. जीवनामध्यें, कोणाहि व्यवहारांत पडलेल्या व्यक्तीला यशस्वी जीवन जगण्यासाठीं

अंगीं पुरुषार्थ बाणावाच लागतो. पुरुषार्थाचें अधिष्ठान म्हणजे प्राणैषणा. प्राणैषणेला नीट स्वरूप देण्यासाठीं एक प्रकारचें तप चालू ठेवावें लागतें. हें तप आयुर्वेदांतील स्वास्थ्याचें लक्षण आदर्श ठेवून करावयाचें आहे. व्यक्तींचीं ऐहिक सुखें आणि हित ह्यांचा विचार ह्यांत करावयाचा असतो. प्राणैषणा पुरी करण्यासाठीं धनैषणेची आवश्यकता आहेच.

याच देहीं याच डोळा

तिसरी एषणा परलोकासंबंधींची. परलोक या शब्दाचा अर्थ शोधण्यासाठीं अंतराळांत फेरफटका करावयास न जातां “याची देहीं याची डोळां” चांगल्या मार्गानें अर्थपुरुषार्थ आणि कामपुरुषार्थ साधत असतांना जो धर्मपुरुषार्थ आपोआपच साधला जातो, यांतच या तिसऱ्या एषणेची मूळ पायाभरणी घडली जात असते. नवीन पद्धतीनें माणसाला तीन एषणा किंवा पुरुषार्थ किंवा Adjustments आवश्यक असतात. त्या दृष्टीनेंहि व्याख्यात्यांनीं आर्थिक (Economic), सांसारिक (Sexual) आणि तिसरी सामाजिक (Social) या तीन एषणा रसभरीतपणें वर्णन करून सांगितल्या.

दक्षता राखली पाहिजे

या तीन गोष्टींच्या आधारानें इज्जतदार नागरिकत्व मिळविणें शक्य आहे. व आवश्यकहि आहे. याला आयुर्वेदशास्त्राच्या आणि व्यवहाराच्या रवशावर इज्जतदार नागरिकत्व मिळवितां येईल. यासाठीं मात्र त्यानें विद्यार्थीदशेपासून दक्षता राखली पाहिजे.

शुद्ध आयुर्वेद विद्यालय-रुग्णालय, बडोदें

ता. २०-९-५६ रोजीं मुंबई प्रांताचे गव्हर्नर डॉ. हरेकृष्ण मेहताब यांनीं बडोदे येथील आजवा रोडवरील शुद्ध आयुर्वेद विद्यालय-रुग्णालय या संस्थेस भेट दिली. त्या प्रसंगीं संस्थेतर्फे त्यांचा सन्मान करण्यांत आला. विद्यालयाचे मंत्री वैद्य णीभाई नारायणभाई यांनीं संस्था सुरू झाल्यापासून गेल्या तीन महिन्यांतील संस्थेनें केलेलें कार्य व शुद्ध आयुर्वेद समिति (मुंबई) कडून मुंबई राज्यांत चाललेलें कार्य याची माहिती दिली, तसेंच संस्थेला पदोपदीं भासणाऱ्या आर्थिक अडचणींची पण जाणीव करून दिली.

शास्त्रनिष्ठेनें हें कार्य व्हावें

गव्हर्नरांनीं त्या प्रसंगीं त्यांनीं पुढील उद्गार काढले:— “तुमच्या कार्यास मी यश इच्छितो. आयुर्वेदाचें कार्य युनिव्हर्सिटीतर्फे सुरू होण्याची आवश्यकता आहे. पुणें युनिव्हर्सिटीनें हें कार्य सुरू केलें आहे. ······ अशा कार्यास आर्थिक मदत करण्याचें सरकारचें धोरण आहे. ······ आयुर्वेदाचें हें कार्य (अध्यापन व चिकित्सा) शास्त्रनिष्ठेनें व्हावयास पाहिजे.”

(हें विद्यालय बडोदा जिल्हा वैद्य मंडळ संचालित असून केवळ वैद्यांच्याच मदतीनें सुरू आहे.)

‘धर्मदूत’ मासिकाचा
रजत-जयंति अंक

येत्या नोव्हेंबरमध्यें सारनाथ येथील मूलगंध कुटी विहार या संस्थेचा रजत-जयंति महोत्सव साजरा करण्यांत येईल. तत्प्रसंगीं ‘धर्मदूत’ मासिकाचा एक सुंदर विशेषांक प्रकाशित केला जाईल. त्यांत बौद्धधर्म, संस्कृति, कला, इतिहास इ. विषयांवर विद्वान् लेखकांचे लेख, तसेंच उच्च काव्यं, गोष्टी, छोट्या नाटिका इ. विविध वाङ्मय प्रसिद्ध करण्यांत येईल. शिवाय आंतर्राष्ट्रीय बौद्ध समाचार व परिचय यासहित हा अंक ता. १७ नोव्हेंबर रोजीं प्रकाशित होईल. सदर अंकाची किं. १ रु. आहे, परन्तु [illegible] सद्गृहस्थ ‘धर्मदूत’ ची वार्षिक वर्गणी ४ रु. पाठवून वर्गणीदार होतील, त्यांना हा अंक विनामूल्य मिळेल. जाहिरातदारांनाहि ही सुवर्ण-संधि आहे तरी त्यांनीं सत्वर लिहावें.

व्यवस्थापक, ‘धर्मदूत’ सारनाथ, बनारस

मधुमालिनीवसंत (एक बलपुष्टिकारक कल्प)

(लेखक–वैद्य ग. भा. करंबेळकर डी. ए. एस्. एफ्. धोपेश्वर)

आजकाल प्रत्येक मनुष्याला आजारांतून उठल्यानंतर, किंवा इतर वेळीं रुग्णावस्थेमध्यें, फार काय निरोगीवस्थेमध्येंहि शक्तिवर्धक कल्पाची जरूरी भासते. अशावेळीं योग्य वैद्य-डॉक्टरांचें मार्गदर्शन नसेल तर, रोगी जाहीरातींवर विसंबून भलत्याच औषधांची निवड करितो, व मागाहून पस्तावण्याची पाळी येते. दोन बाटल्या घेतल्या पण उपयोग नाहीं किंवा अमुक औषध घेतलें पण त्यामुळें पित्त वाढतें, व अंगाला खाज उठते, शौचाला साफ होत नाहीं, असें रोगी सांगत येतो. करितां प्रथम सूचना द्यावयाची म्हणजे रोग्यानें स्वतःकरितां स्वतःच औषधीयोजना करूं नये. वैद्य-डॉक्टरांचा सल्ला घ्यावा.

आज मी येथें फक्त मधुमलिनीवसंत या कल्पाविषयीं सविस्तर माहिती देणार आहे. हा बाल-तरुण-वृद्ध व स्त्रिया या सर्वांना सारखाच उपयुक्त आहे.

घटक द्रव्यें

शुद्ध हिंगूळ, कोंबडीचीं अंडीं, गहुला, मिरीं, कचोरा, डाळींब–रस.

मधुमालिनीवसंताची प्रक्रिया

प्रथम शुद्ध हिंगूळ घेऊन त्यास डाळिंबाचे रसाच्या सात भावना द्याव्या व सावलींत सुकवावा. तो चिकट असा होईल, त्याचें वजन करून तोळयांचे संख्येइतकीं कोंबडीचीं अंडीं घ्यावीं व मंद विस्तवावर लोखंडी कढईत हिंगूळ टाकून अंड्याचा बलक आंत टाकावा ूक एक फोडून घालणें किंवा सर्व एकदम बलक ावा) व उलथण्यानें ढवळावा. मिश्रण करपूं देऊं नये. लालसर रस तयार होऊन तो सुकूं लागतो व फुगतो. नंतर उतरून त्याचें चूर्ण करून खलांत घ्यावा व मिश्रणाचे निम्म्यानें गहुला, कचोरा व मिरी या प्रत्येकाचीं चूर्णें टाकून मर्दन करून एकजीव करावा. नंतर डाळिंबाचे अगर लिंबाचे रसांत सात दिवस खल करून गोळ्या बनवाव्या. गहुला, मिरी व कचोरा हीं सुगंधी द्रव्यें आहेत, करितां कुजूं देऊं नयेत. हा कल्प विशेषतः हिवाळ्यांत करावा. उन्हाळ्यांत करूं नये.

सर्वसाधारण गुणधर्म

हा जीर्णज्वर-शीतज्वर, व वातविकार-नाशक आहे. बलपुष्टिकारक, गर्भपोषक व अग्निवर्धक इ० कार्य याचे उपयोगानें घडतें.

जीर्णज्वर

ज़ीर्णज्वरावर हा उपयुक्त आहे. प्रत्यक्ष ताप असतां त्रिभुवनकीर्ति घ्यावी. व इतरवेळीं मधुमालिनीवसंत द्यावा.

शीतज्वर चिकित्सेंत धातुवृध्दीसाठीं

थंडीताप हा विशेषतः धातूंचा क्षय झालेल्या इसमाला येतो, अशावेळीं मधुमालिनीवसंत द्यावा. त्यानें धात्वग्नि वाढून ज्वरनाश होईल. शुक्रक्षीण झाल्यामुळें ज्वर येत असेल तर मधुमालिनीवसंत देणें. हा कल्प वृष्य आहे.

वृष्यकल्प

मधुमालिनीवसंत, वृष्यवटी, वंगभस्म हे वृष्य कल्प आहेत; परन्तु शुक्रक्षय असेल तर मधुमालिनीवसंताचें वृष्यत्व दिसणार नाहीं; अशावेळीं शुक्रवृद्धिकर वृष्यवटी देऊन नंतर मधुमालिनीवसंत द्यावा. मधुमालिनीवसंत शुक्रधराकलेला पोषक असा आहे वंगभस्म होंहि शुक्रधातूला पोषक आहे; परन्तु साक्षात शुक्रक्षय असतां उपयुक्त नाहीं. शुक्रक्षयामुळें कंब दुखणें--मलावरोध हीं लक्षणें असतां उपयुक्त. अपानकालीं द्यावें.

गर्भपोषक

एकाद्या बाईला अकालीं प्रसूत होण्याची संव असल्यास (आम गर्भपतन) सुरवातीपासून मधु-

ालिनी वसंत द्यावा. गर्भाची योग्य वाढ होऊन पुऱ्या िवसांनीं प्रसूति होईल.

कोणत्याहि आजारांतून उठल्यानंतर अग्निवर्धक ा बलपुष्टिकारक म्हणून योजना करावी.

लहान मुलांना उपयुक्त

यकृताचें कार्य बिघडलें असतां मूल किरकिर ारते, अन्न खात नाहीं किंवा अधिक खातें असें ाटतें, परंतु खाल्ल्यावर पचत नाहीं. अशावेळीं याची ोजना करावी. अग्नि वाढून पचनशक्ति सुधारेल व ल—मांस-- विहीनत्व कमी होऊन मूल गोंडस होईल.

निसर्गाची प्रवृत्ति वाढविणारा कल्प

हा कल्प निसर्गाची स्वाभाविक प्रवृत्ति वाढ-ारा असा आहे. करितां लहान मुलांना वयाच्या १५ वर्षीं ावा. त्यामुळे योग्य प्रकारें शरीराची वाढ होऊन तिकारशक्ति वाढेल. असा हा अत्युत्तम बलपुष्टि-ारक कल्प आहे. चिकित्सकांनीं व रुग्णानीं त्याचा ुरेपुर फायदा घेऊन वैद्यानें कीर्ति मिळवावी व ग्णानीं आरोग्य मिळवावें.

मधुमालिनीनामायं वसंतो वैद्यपूजितः ।
अनुपानविशेषेण बलपुष्टिप्रदायकः ।
गर्भवृद्धिकरश्चासौ गर्भिणीनां सुखावहः ॥
रोगनाशात् परं दद्याद्बलमांसाग्निवर्धनः ॥

वृद्धवैद्याश्रम, नाशिक

नासिक येथें अध्यापक चर्चा परिषद भरली असतां ाहीं वृद्ध वैद्यमंडळींनीं आपला मनोदय प्रगट ला, तो असाः– आतां आपल्या वयास ६० वर्षे ूर्ण होत आलीं आहेत. व वैद्यकीय व्यवसाय द्रव्य-ाप्तीसाठीं करीत राहाण्याचा कंटाळा आला आहे. री वृद्धपणीं आयुर्वेदाच्या क्षेत्रांत कार्य करीत जीवन यतीत करावयास मिळालें, व आपला भार घरच्या ुटुंबीयावर न पडतां हें शक्य झालें, तर दुधांत ाखर पडल्यासारखें होईल.

प्रास्ताविक योजना

हा विचार वैद्य विंदुभूषन यांच्या श्रवणीं येतांच त्यांनीं नासिक येथें वृद्धवैद्याश्रम चालू करण्याची योजना त्यावेळीं जाहीर केली ती अशीः– आयुर्वेद सेवा संघ ही संस्था अनुभवी व आयुर्वेदव्यासंगी वृद्ध वैद्यांच्या रहाण्याची व भोजनाची व्यवस्था करील. या मंडळींना कामासाठीं मुद्दाम कोठें धांवपळ करावी लागणार नाहीं. बसल्या जागीं त्यांनीं लेखन, वाचन, सल्ला, शंकानिरसन आदि कामें करावीत. त्यांनीं हौस वाटल्यास आयुर्वेद विद्यालयांत अध्यापन करावें, औषधीभवनांत प्रायोगिक औषधिकरण करावें, अगर आरोग्यशाळेंत चिकित्सा इ. कामें करावीत. विद्यार्थी व अध्यापक हे त्यांच्या घरीं जाऊन त्यांच्याशीं गप्पागोष्टी करून आपल्या शंकांचें निरसन करून घेतील. प्रारंभीं क्रमानें ५।६ अशा वृद्ध वैद्यमंडळींचा समावेश या आश्रमांत करण्यांत येईल. नंतर अनुभवानुरोधानें पुढील योजना ठरविण्यांत येणार आहे. अनुभविक आयुर्वेदीय चिकित्सकांचें पंचक [मंडळ] म्हणून समाजाला या आश्रमाची उपयुक्तता पटेल.

यत्राश्रिताः कर्मगुणाः

गुरुपूर्णिमेच्या दिवशीं बडोदे येथील शुद्ध आयुर्वेद विद्यालयांत पुणें येथील वैद्यभूषण गणेशशास्त्री जोशी यांचें सर्वदा सर्व भावानां सामान्यं वृद्धिकारणम् ।' या सूत्रावर अतिस्पष्ट व सुंदर व्याख्यान झालें. तसेंच स्पष्टीकरण पुढील सूत्रावर व्हावयास पाहिजे आहे. यत्राश्रिता कर्मगुणाः कारणं समवायि यत् । तद्द्रव्यं समवायी तु निश्चेष्टः कारणं गुणः । संयोगे च विभागे च कारणं द्रव्यमाश्रितम् । कर्तव्यस्य क्रिया कर्म कर्म नान्यदपेक्षते ॥ चरक सूत्र अ. १

—प्र. दा. ललित बडोदे

उपयुक्त ॲलोपॅथिक औषधें
लेखकः- डॉ. प्र. शं. गुप्ते, एम्. बी. बी. एस्.
किंमत १॥ रु.
वैद्यक ग्रंथ भांडार, नासिक

भात करपला (खरपाक) :

लेखकः—
वैद्य बिंदुमाधव पंडित

कांहीं दिवसापूर्वीची गोष्ट, आजींनीं पातेल्यांत भात केला. तो गरम रहावा म्हणून शेकाला ठेवला. भात वाढण्याच्या वेळीं पहातात तों, भात खालीं व बाजूनें करपलेला !

त्यांना चुटपुट लागली. भाताचें भांडें रोजचें नव्हतें. हें पातेलें फार पातळ झालेलें होतें. त्यामुळें त्यांचा अंदाज चुकला. भात वाढतांना त्यांनीं मधला भात मला वाढला. आपणाला करपलेला भात आवडतो म्हणून चि. अनंतानें तो मागून घेतला. बाकीचा करपलेला भात आजींनीं स्वतः भरपूर खाल्ला. आजींना भाकरी पोळीपेक्षां भातच विशेष आवडतो.

नरम भातानें कफ होतो

आसट [नरम] भातानें कफ होतो म्हणून आजी स्वतःसाठीं फडफडीत भातच नेहमीं पसंत करतात. रोज रात्रीं झोपण्यापूर्वी शिंका, खोकला, पडसें हे नित्याचे-विशेषतः सर्व पावसाळाभर-चालूंच आहे. पण ज्या दिवशीं करपलेला भात खाल्ला त्या दिवशीं त्या शिंका, खोकला, पडसें, कफ हें सर्व पार पळालें, त्या रात्रीं त्यांना उत्तम झोप लागली. त्यांच्या स्वतःच्या ध्यानांत ही गोष्ट आलीच, पण इतरांनाहि त्या रात्रींचा फरक जाणवला.

खरपुड्या आवडणारीं माणसें

भाताच्या खरपुड्या आवडणारीं माणसें, मुलें बरींच आढळतात. या आवडीचा अर्थ काय ? 'कुर्वते हि रुचिं दोषाः ।' आयुर्वेदानें जुनें धान्य, भाजलेलें धान्य, कफ मेद-मूत्र विकारी लोकांसाठीं सांगितलें आहे. नेहमीं जुनें धान्य मिळणें शक्य नसतें व रोज सर्व धान्य भाजून वापरणें जमत नाहीं. सर्वांना भाजलेलें अन्न रुचें असतें असें नाहीं, आवडत नाहीं. तें निःसत्व होतें अशी समजूत आहे. पण आपल्या पुरता भात, भाकरी करपलेली वापरणें कोणालाहि शक्य आहे. व त्याचा इष्ट लाभहि घेतां येईल.

तीन प्रकारचा भात

नवीन स्वयंपाक करणाऱ्या माणसाच्या भातास पुढील ३ प्रकार होतात, असें नेहमीं म्हटलें जातें. खालीं जळगांव, मध्यें चिखलगांव, व वर तांदुळगांव. यांचा अर्थ असा कीं अग्नि व पाणी यांचा विषम प्रयोग झाल्यामुळें वर कच्चा [अर्धवट शिजलेला तांदूळ], मध्यें चिखलासारखा नरम, व अगदीं बुडाला जळलेला असा भात होतो. यापैकीं तळचा भात कफ, मेद-रोग्यांना चांगला. उन्हाळे लागणाऱ्या, व दाहपीडित रोग्यांना नरम शिजलेला भात मानवेल. मात्र ज्यांचा अग्नि तीव्र आहे, अशा लोकांना पौष्टिक म्हणून अर्धा कच्चा भातच उपयोगी ठरेल.

अन्न किती शिजवावें ?

माणसाचें अन्न किती शिजलेलें असावें ? याचें उत्तर अग्निसापेक्ष राहील. ज्याचा अग्नि तीव्र असेल त्यांना दळदार जाड भाकरी, पोळ्या आवडतील. न डाग पडलेल्या, नरम अगर अर्ध्या-कच्च्या भाकरीच त्यांना शक्तिवर्धक व रसरक्तादि धातुवर्धक होतील. याउलट अग्नि मंद असलेल्या लोकांना खरपूस भाजलेली लाल, काळी भाकरी पोळी आवडेल-मानवेल.

मधुमेही लोकांचा भात

आजकाल प्रमेही (उदकमेही, मधुमेही) तसेंच स्थूल लोक व कफविकारी लोक आपल्या आहारांतील भाताचें प्रमाण जबरदस्तीनें फार कमी करतात. त्यामुळें त्यांच्या ठिकाणीं भोजनाचें असमाधान राहतें. त्या ऐवजीं ते जरा करपलेला (खरपाक) भात वापरतील तर त्यांना त्यापासून त्रासदायक विकार संभवणार नाहीं. व आहाराचें समाधान लाभेल असें वाटतें.

भाजकें अन्न व संतति नियमन

धर्मशास्त्रानें विधवा स्त्रिया व विधुर पुरुष यांना एक वेळ भोजन व दुसऱ्या वेळीं भूक असेल तर भाजकें [illegible], विहित - सांगितला आहे.

भाजलेल्या धान्यामुळें त्याचे अंकुर जळतात व मग तें धान्य ज्याप्रमाणें बाहेर मोडावत नाहीं, त्याचप्रमाणें शरीरांतहि त्यापासून शुक्र--बीज--संभवत नाहीं, अशी कल्पना असावी. सबब, ज्यांना आहाराचे प्रयोग करून पहावयाचे असतील त्यांनीं आहारांतून दूध [चहा, कॉफी], दही अजिबात बंद करून व वापरावयाचें धान्य भाजून घेऊन संततिनियमन घडून येतें कां तें पहावें. ताक, तूप या गोष्टी चालतील. खरपूर भाजकें अन्न खाणारीं व संतति नसलेलीं अशीं कांहीं कुटुंबें माझ्या पाहण्यांत आहेत.

भाजकें अन्न व संतति

कफ मेद-मूत्र यांच्या विकृति प्रथमपासून जड-त्यामुळें ज्यांना संतति होत नसेल अशांनीं कांहीं वर्षें भाजकें अन्न खाऊन आपले दोष--धातु--मल स्वस्थ करून घ्यावेत व मग सम (सात्विक) आहार घेऊन संतति होतें कां तें पाहावें.

कफ होणाऱ्या लहान मुलांना जळका भात, जळकी भाकरी पोळी द्यावी. भाजकें अन्न जरूर द्यावें.

अग्निसंस्कार व जीवनसत्त्वें

सध्यांच्या जीवनसत्त्वांच्या युगांत अग्निसंस्कारानें जीवनीय द्रव्यें संपूर्ण नष्ट पावतात अशी समजूत सर्वत्र पसरलेली दिसते. त्यामुळें बहुतेक लोक जळके पदार्थ खाण्याचे टाळतात. भाजलेलें मक्याचें कणीस, खरपूस भाजलेले शेंगदाणे (व शेंगा), या अधिक चवदार लागतात हें प्रसिद्ध आहे. सबब, अन्न भाजलें म्हणजे तें सर्वांनाच अनुपयुक्त होतें हा गैरसमज दूर झाला पाहिजे—केला पाहिजे. लाकडें अर्धवट जाळून निर्माण झालेला कोळसाहि अग्निनिर्मितीस चांगला उपयुक्त होतो त्याचप्रमाणें हें समजावें.

पवित्र नेपाळ कस्तुरी रु. ६० तोळा
हिमालय कस्तुरी रु. ५८ तो.
तिब्बत कस्तुरी रु. ५५ तोळा.
शुद्ध शिलाजित १ रु., २॥ व ५ रु. तोळा
लिहा:—नेपाळ हिमालय कस्तुरी भंडार
[illegible] **ललितपूर—नेपाळ**

भिषग्विलासाचे जुने अंक

तांतडीची सूचना

"भिषग्विलास" मासिकाचे पुस्तकें २८ ते ४४ या १६ वर्षांतील बहुतेक सर्व जुने अंक आमच्या संग्रहांत आहेत. तरी ज्या कोणास यांतील अंक पाहिजे असतील त्यांना ते प्रत्येक अंकास १ आणा या किमतीनें तूर्त आमच्चेकडे मिळूं शकतील.

मागणी सोबत पोस्टेज अगर रेल्वे, एस. टी. वाहतूक खर्च पाठवून मागणी करावी. मागाहून अंक मिळू शकणार नाहींत. निरनिराळीं आयुर्वेद महाविद्यालयें, वाचनालयें यांनीं या सुसंधीचा लाभ घ्यावा.

शिक्षणसंस्थांना देणगी म्हणूनहि हे अंक मिळूं शकतील.

मंत्री, आयुर्वेद सेवा संघ, नासिक.

कोणत्याहि सुशिक्षित स्त्री—पुरुषांस
डॉक्टर होतां येते
सुशिक्षित स्त्री—पुरुषांनीं शिकण्याजोगा
मानाचा धंदा

हामिओपॅथिक, बायोकेमिक, क्रोमोपॅथिक, इंजेक्शन ट्रेनिंग व फॅमिली प्लॅनिंग शिक्षणाचें वर्ग व इतर चिकित्सा-पद्धतींमधील वैशिष्ट्यें अल्पवेळांत व अल्पखर्चांत शिकवून कोठेहि डॉ. चा धंदा मानानें करतां येईल, असें शिक्षण दिलें जातें. कंपौन्डर, नर्सेस, शिक्षक, शिक्षिका व इतर सुशिक्षित व निरुद्योगी लोकांना हा कोर्स उत्तम आहे. डिप्लोमाशिवाय प्रॅक्टीस करणारांना प्रायव्हेट परीक्षेस बसण्याची सोय आहे. कोर्स पूर्ण झाल्यावर सरकारमान्य होमिओपॅथिक कॉलेजचा डिप्लोमा मिळेल. आजपर्यंत शेकडों लोकांनीं हा कोर्स पूर्ण करून आपलें जीवन स्वावलंबी बनविलें आहे. २ आण्यांची तिकिटें पाठवून माहितीपत्रक मागवा.

म. प्र. होमिओपॅथिक ट्रेनिंग इन्स्टिट्यूट
C/o. डॉ. नाळमवार, ३६२ [illegible]दाम-रोड.
नवीन दत्तमंदिरासमोर, इतवारी, नागपूर (म.प्र.)

नर्सेस मिडवाईव्ज, हेल्थ व्हिजिटर्स कायद्यांत दुरुस्ती

१९५४ च्या मुंबई नर्सेस, मिडवाईव्ज आणि हेल्थ व्हिजिटर्स अॅक्ट अंमलांत येण्यापूर्वी नर्स, मिडवाईफ अथवा हेल्थ व्हिजिटर म्हणून व्यवसाय करीत असलेल्या ज्या व्यक्तींकडून आवश्यक त्या अटी पुऱ्या केल्या जात असतील त्यांना सदरहू कायद्याच्या कलम १७ (२) मध्यें उल्लेखिलेल्या यादींत नावें समाविष्ट करण्यासाठीं पुरेसा वेळ मिळावा म्हणून मुंबई सरकार सदरहू कायद्यांत योग्य ती दुरुस्ती करणार आहे.

ह्या कलमांत पुढीलप्रमाणें तरतूद आहे--सदरहू कायद्याखालीं नांव नोंदविण्यांस जो इसम पात्र नसेल अशा इसमानें सदरहू कायद्याचा तिसरा भाग अंमलांत आल्याच्या तारखेपासून दोन वर्षांच्या आंत आपण नर्स, मिडवाईफ किंवा हेल्थ व्हिजिटर म्हणून नियमितपणें व्यवसाय करीत असल्याबद्दल कौन्सिलचें समाधान केलें आणि कौन्सिलनें ठरविलेल्या इतर अटी पुऱ्या केल्या तर ठराविक फी भरून अशा इसमाला कलम १७ (१) खालील यादींत आपलें नांव समाविष्ट करून घेतां येईल. सदरहू कायद्याचा तिसरा भाग ता. २३ मार्च १९५४ पासून अंमलांत आला आणि उपर्युक्त कलमाखालील यादींत नांव समाविष्ट करण्याची अखेरची मुदत २२ मार्च १९५६ रोजीं संपली.

तथापि नांवें नोंदविण्याबाबतची पात्रता, रजिस्टर फॉर्म, यादीबाबदचा पोटनियम वगैरे बाबींवर सरकारचा सध्यां विचार चालू असल्यामुळें वर उल्लेखिल्याप्रमाणें या कायद्यांत दुरुस्ती करावी लागत आहे.

बहु गर्भधारणेसाठीं लस

गाभण घोडीच्या रक्ताची लस ही अन्य जनावरांना टोंचली असतां त्यांच्याठायीं बहु-गर्भ-धारणा होऊं शकते. ही पद्धत शास्त्रज्ञ झावादोवस्की यांनीं बसविलेली आहे. तिचे प्रयोग त्यांनीं मेंढ्यांवर केले असतां, त्या मेंढ्यांना नेहमींप्रमाणें एकच कोंकरूं व्हावयाच्या ऐवजीं दोन कोंकरें झालीं. या लशीच्या प्रभावानें कित्येकदां तर कांहीं मेंढ्यांना तीन, चार आणि त्याहूनहि अधिक कोंकरें झालेलीं आहेत.

अस्त्राखान जातीच्या मेंढ्यांच्या कातडीला त्याच्या वजनाच्या सोन्याइतकी किंमत येते.

ग्रामीण भागांत शुश्रुषेचें साहित्य

कांहीं निवडक सरकारी दवाखान्यांतून शुश्रुषेचें साहित्य ठेवण्यांत येणार असून तें लोकांना भाड्यानें देण्यांत येईल. सुरवातीला अशा तऱ्हेचें साहित्य राज्यांत ३० दवाखान्यांत प्रयोग म्हणून दोन वर्षें ठेवण्यांत येईल. या दवाखान्यांतील वैद्यकीय अधिकारी हे साहित्य देणगीरूपानें मिळविण्याचा प्रयत्न करतील, परंतु तसें तें न मिळाल्यास सरकारी खर्चानें तें विकत घेतलें जाईल.

हें साहित्य लोकांना भाड्यानें देतांना जी वस्तु द्यावयाची असेल तिच्या किंमतीइतकी, मात्र जास्तींत जास्त तीन रुपये इतकी, रक्कम अनामत म्हणून घेण्यांत येईल. सर्वसाधारणपणें प्रत्येक वस्तूला सुरवातीच्या दिवशीं १ आणा आणि त्यानंतरच्या प्रत्येक दिवशीं अर्धा आणा या दरानें भाडें आकारलें जाईल. तथापि गरीब इसमांना हें साहित्य मोफत देण्यांत येईल.

तारेचा पत्ता:-Newbottle

के. के. शहा अँड कंपनी

बाटल्यांचे व्यापारी

(१२३ चकला स्ट्रीट, मुंबई ३)

रिकाम्या बाटल्या, बुचें, कॅपसुल्स, व [हेअर ऑईल, सरबतें, गुलाबपाणी इत्यादींच्या बाटल्यांवर लावावयाचीं सुंदर व आकर्षक] लेबलें इत्यादि मालाचे

ठोक व किरकोळ

विक्री करणारे व्यापारी

देशी दवाओं का सबसे बडा विश्वासी कारखाना

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राईवेट लि.

द्वारा समस्त आयुर्वेदीय दवाइयाँ

जैसे

स्वर्णमुक्ताघटित कूपीपक्व रस, रसायन, धातु, उपधातु, रत्न आदि की भस्में, लौह, मंडूर, पर्पटी, गुग्गुल, वटी, चूर्ण शरबत, आसव, अरिष्ट, घृत, तैल, अवलेह, मोदक, पाक, सत्व, क्षार, लवण, मलहम, आदि समस्त आयुर्वेदीय औषधियां तथा सभी रोगों में निश्चित फायदा करनेवाली

अनेक मशहूर पेटेन्ट दवाएँ

अत्यंत सावधानी के साथ वैज्ञानिक प्रणाली से

प्रचुर परिणाम में

निर्माण की जाती हैं

जो

बैद्यनाथ के ४ चार निर्माण—केन्द्रों

२०० दो सौ बिक्री—केन्द्रों तथा

२०००० बीस हजार एजान्सियों के द्वारा

हिन्दुस्तान भर में एक साथ एक दर में सब जगह मिलती हैं।

बस्तिचिकित्सा—

लेखकः—वै. श्री. कृ. करम

चिकित्सा विभाग, आयुर्वेद सेवा संघ, नासिक

उपक्रमश्रेष्ठ व कर्माग्रणी अशा बस्तिचिकित्सेचा अवलंब आयुर्वेद सेवा संघाच्या आयुर्वेदीय आरोग्यशालेंत नित्य केला जातो. विशेषतः वर्षाकाल हा वातप्रधान त्रिदोषकोपाचा काल असल्यामुळें वाताचें परमौषध [शोधन] बस्ति याचा वापर विशेष होतो. एकंदर बस्ति, अवस्था व परिणाम त्यांच्याविषयीं यथाकाळ निवेदन प्रसिद्ध करणार आहोत. कालबस्ति, योगबस्ति व कर्मबस्ति अशा-- तऱ्हेचे बस्तिकर्महि केलें जातें, व त्यांचा अत्यंत सुंदर उपयोग होत आहे.

बस्ति हें नांव कां ?

आयुर्वेदीय आचार्यांनीं या विधीसाठीं मेंढीचा, शेळीचा किंवा म्हशीचा मूत्राशय [बस्ति] घ्यावयास सांगितला आहे. कल्पस्थानांत सांगितलेले माधुतैलिकादि बस्तिप्रकार द्यावयाचे म्हणजे वरील प्राणिज बस्ति किंवा जाड कापडाचा तयार केलेला बस्तिच उपयुक्त होय. हल्लीं वापण्यात येणारें एनिम्याचें भांडें व रबरी नळी, किंवा रबर एनिमा किंवा बल्ब एनिमा या कामीं निरुपयोगी आहे. रबर हें तेलानें लवकर खराब होतें. प्लॅस्टिकचा बल्ब या कामीं वापरावा अशी कल्पना आहे, पण तत्पूर्वी प्रत्यक्ष बस्ति (मूत्राशय) वापरून पहावा अशी कल्पना होती.

बोकडाचा बस्ति आणला

बोकडाचा बस्ति आणून पाहिला पण, तो अगदींच लहान वाटला. नंतर सायकलपंपानें आंत हवा तांच उत्तम ताणला गेला, व मोठ्या आंब्या एवढा किंवा नारळाच्या गोट्याएवढा झाला. व पुढें त्यांत द्रव भरतांच फुग्यासारखा झाला. त्याला एनिमासाठीं वापरण्यांत येत असलेली सेल्युलाइडची नळी अगर आचार्यांनीं सांगितल्याप्रमाणें विविध प्रकारची नळी [नेत्र] बसविली तर बल्ब एनिम्याप्रमाणें त्यांत द्रव भरून तें देतां येईल याची खात्री झाली, व बस्ति वा मूत्राशय हें प्रधान साधन या योजनेंत असल्यामुळें याला बस्ति हें अन्वर्थक नांव दिलें आहे असें निश्चित वाटलें.

हेमाद्री टीकाकारांनीं दर्शविलेली वाट

हेमाद्रींनीं उत्तरबस्तीच्या वेळीं बस्तौ, रोगेषु नारीणां योनिगर्भाशयेषु च । अ. हृ. अ. १९।७० या सूत्रांची टीका सांगताना स्पष्टपणें सांगितलें कीं बस्तौ, मूत्राशये नराणां, नारीणां तु बस्तौ, योनौ, गर्भाशये च । या वचनावरून उत्तरबस्ति हा प्रत्यक्ष मूत्राशयांत देण्यासाठीं सांगितला आहे, इतकेंच नव्हें तर गुद वा गर्भाशय हा गौण मार्ग असून बस्तिविधीचा प्रधान मार्ग, प्रधान अवस्थान, बस्ति आहे, मूत्राशय आहे, व बस्तीसाठीं वापरावयाचें द्रव्य मूत्राशयांतच देणें अधिक परिणामकारी आहे हें सांगण्यासाठींच बस्ति नांव दिलें असावें.

मूत्राशयांत उत्तरबस्तीचे द्रव्याचा वापर

वरील कल्पनेचा पडताळाहि आला. एक स्त्री रुग्णा वय ४० वर्षें, जिन्यावरून पडली व तिच्या कमरेस जोराचा मार बसून तिला लघ्वी होईनाशी झाली. व सरकारी रुग्णालयांतील उपायांनीं केवळ चालतां येऊं लागलें. पण मूत्रनिर्हरण नाडीयंत्राचें साहाय्यानें (कॅथेटरनें) रोज मूत्रनिर्हरणावरच जीवनयात्रा घालवा असा सल्ला तेथून शेवटीं मिळाल्यानें ती आयुर्वेदीय आरोग्यशालेंत उपचारार्थ आली. संपूर्ण शारीरिक व मानासिक परीक्षणांत कंबरेंत सूं वा दुखरा मणका, किंवा अस्थिभंग इ. चीं लक्ष नव्हतीं. रोगी चालूं शकत होता. परन्तु लघ्वी झाल्यानें मूत्राशय तुडुंब भरला म्हणजे प्राणांति वेदनेनें ओरडूं लागे. गरीब परिस्थितीमुळें व ती विशेष चांगल्या श्रीमंतीनंतर आलेली, यामुळें मनावरहि थोडा परिणाम दिसला. अत्यंत अल्पसत्त्व झाल्यानें सारखी रडत असे, माझें कसें होईल हा ध्यास चालू असे. रुग्णेतील मूत्रावरोधाचें कार

मा[illegible]क आघातजन्य वातप्रकोप हें असलें पाहिजे. या कल्पनेनें वातशामक-वातशोधन उपचार करण्याचें ठरविलें.

विकारास आमाचा अनुबंध

परंतु सदर बाईस भूक लागत नसे. अंगावर श्वेतकुष्ठ किंचित् अरुणवर्णयुक्त होतें. जिव्हा साम होती. परसाकडे होत नसे. श्वेतप्रदर होता. यामुळें हा विकार संतर्पणजन्य कीं अपतर्पणजन्य असा प्रश्न पडला होता. मूत्र तपासतांना तें अति दुर्गंधी व सांद्र होतें. लघवींत, अर्धापेला दाट पांढरा साका खालीं जमत असे. लघ्वी लाल होती. मूतखड्याची शंका येई ण आघातापासूनच मूत्ररोधादि लक्षणांचा इतिहास पाहतां निश्चिति करवेना; तथापि अग्निवर्धनार्थ ंघनासहित दीपन उपाय व उत्तरबस्तीसाठीं नारायण-लाचा मात्राबस्ति व उत्तरबस्ति प्रत्यक्ष मूत्राशयांतच रेणें इत्यादि उपचार करण्यांत आले. त्या दिवशीं तेला आपोआप लघ्वी झाली, पण नकळत. पुनः योग करण्यांत आला. लघ्वी लागून लघ्वी झाली. व तरच्या उपचारांनीं नियंत्रणपूर्वक लघ्वी तिला होऊं ागली.

बस्ति कोठें द्यावा ?

वरील रुग्णचिकित्सा देण्याचा हेतु येवढाच कीं ातशमन करण्यांत अग्रणी असलेला हा उपचार धानतेनें गुदमार्गांत करावयाचा कीं मूत्राशयांत ? र केवळ गुदमार्गानें पक्वाशयस्थ वात जिंकून उपचार रण्यापेक्षां गुदमार्गानें दिलेल्या बस्तीला, मूत्रमार्गानें ्लेल्या उत्तरबस्तीची जोड दिल्यास, लवकर व ाश्चर्यकारक रीतीनें वातशमन व शोधन झाल्याचें सून येतें.

कै. अ[illegible] येथील अनुभव

१९४२ सालीं वैद्यकीय पदवी-परीक्षा दिल्या-र व्यवसाय करण्यापूर्वी, मुंबईला गेलो असतां थील सुप्रसिद्ध चिकित्सक व वृद्धवैद्य यांच्याकडे का मला घेऊन गेले. मीहि गेल्यावर आदरानें मस्कार वगैरे केला. मोठमोठे साहेब ज्यांचेकडे औषधास येत, ते वैद्यराज उघडे, भस्म लावून टेबलाशीं बसलेले दिसले. मला फार आश्चर्य वाटलें, परंतु त्याच्याहि पुढचें आश्चर्य म्हणजे मी आर्यांग्ल वैद्यक-महाविद्यालय, सातारा, येथील पदवीधर असें ऐकल्यावर व्याख्यानाची सरबत्ति सहन करावी लागली. काकांनीं खूण केल्यामुळें मी गप्प बसलो. थोड्या वेळांत शास्त्रीबुवाहि शांत झाले. त्यांनीं मला सांगितलें "जा त्या खोलींत जा-व तिथें चाललेले उपचार तुमच्या त्या आर्यांग्ल वैद्यक शिकविणाऱ्यांच्या × × × × तरी पाहिलेत कां ? तें सांग" मी खोलींत गेलो त्या ठिकाणीं एका पुरुष रुग्णाच्या मूत्रमार्गावाटे एनिमा पॉटच्या सहाय्यानें कसलेंतरी द्रव्य बस्तींत घालणें चाललें होतें.—उत्तरबस्ति हा पुरुषांच्या मूत्राशयांत व स्त्रियांच्या मूत्राशय, योनि व गर्भाशय अशा ठिकाणीं दिला जातो हें टीकाकारांचें वाक्य वाचतांना त्या पाहिलेल्या प्रसंगाचेंहि स्मरण झालें !

बस्तिचिकित्सा रजोशुक्रदोषघ्नी

निरूह-बस्ति-चिकित्सेनें शुक्रग्रह व रजोनाशात्मक दोष जातात असें सांगितलें आहे. जीर्णज्वर-प्रतिश्यायशुक्रानिलमलग्रहान् । वर्ध्माश्मरीरजोनाशान् दारुणांश्चानिलामयान् ॥३॥ परंतु केवळ शुक्रग्रहाच्याच चिकित्सेपेक्षांहि व शुक्रदोषाचे सर्व प्रकार शुक्रमार्गामध्यें दिलेल्या उत्तरबस्तीनें साध्य होणें शक्य आहे, या कल्पनेनें प्रयोग करून पहाण्यासारखे आहेत. मात्र हे प्रयोग सावधानतेनें व विचारपूर्वक करावयास पाहिजेत.

वृष्यप्रयोग व वाजीकरण योगांचा उत्तरबस्ति

निरनिराळ्या वृष्यौषधींचा, व वाजीकरण औषधांचा उपयोग शुक्रमार्गांत केल्यानें शुक्रमार्गाची शु[illegible] व बलवत्ता प्राप्त होईल यांत संशय वाटत नाहीं.

उपरिनिर्दिष्ट रुग्णेची संपूर्ण चिकित्सा

वर उल्लेखिलेल्या स्त्रीरुग्णाची चिकित्सा शेवटपर्यंत पुढीलप्रमाणें केली गेली होती. प्रथम प्रयोग— क्षुत्लंघन+नारायण तेल उत्तरबस्ति=मूत्र झालें.

आहार+तिळतेल उत्तरबस्ति =लघ्वी नाहीं.
लंघन+ ,, ,, =लघ्वी झाली.

प्रथम चंदनाच्या काढ्यानें बस्ति धुवून घेऊन नारायण तैल भरलें. त्यामुळें लघवीची घाण व घनता कमी झाली. पण लघवी होईनाशी झाली, व चंदनाच्या शीतवीर्याचा अनुपशय वायूला आला असला पाहिजे. या विचारानें नुसत्या नारायणतैलाचाच उत्तरबस्ति दिला. पण लघवी होईना. म्हणून विषमुष्ट्यादिवटी ६ गुंजा पोटांत व उत्तरबस्ति दिला. व त्याचे जोडीस वीरतरादि गणाचा क्वाथ दिला. कारण वीरतरादिगण (वेल्लन्तरादिगण) मूत्रकृच्छ्राघातरुजाहर आहे.

वर्गो वीरतराद्योऽयं हन्ति वातकृतान् गदान्।
अश्मरीशर्करामूत्रकृच्छ्राघातरुजाहरः ॥ अ हृ. १५।२५

वातशमन करणारा व 'मूत्रकृच्छ्राघातरुजा' नाशक वेल्लन्तरादि गणामुळें त्या दिवसापासून रोग्यास लघवी भरपूर व समजून होऊं लागली, व मध्यंतरीं औषध बंद करतांच ७।८ दिवसांनीं पुनः अवरोध झाला. पुनः औषध सुरूं करतांच लघवी होऊं लागली.

मूत्रदोषहरणानें वातशमन होतें

वरील उदाहरणावरून व वेल्लन्तरादिगणोक्त फलावरून वायुशोधक व शामक उपचार करावयाचे तर मूत्रमलाचें स्थान जो बस्ति त्या ठिकाणींच बस्ति उपचार होणें अधिक सयुक्तिक होईल. यासाठीं बस्तिविधि विशेषतः मूत्रदोषहरणासाठीं उत्तरबस्ति स्त्रियांच्या मूत्राशयांतच द्यावा, व पुरुषांच्या मूत्रदोषासाठीं व शुक्रदोषासाठीं मूत्राशयांत द्यावा हेंच युक्त असें वाटतें.

---

५ पावता पुस्तकांचा शोध

भुसावळ संमेलनाचें वेळीं म. प्रां. वैद्य मंडळाची पुढील नंबरांची कोरी ५ पावती पुस्तकें हरवलीं आहेत. १९, २०, २१, २२, २३. तरी ती कोणास माहिती असल्यास म. प्रां. वैद्य मंडळाच्या स्थायी कार्यालयाकडे नासिक येथें कळवून पाठवून देण्याची कृपा करावी, असें मंत्री कळवितात.

११ वें म. प्रां. वैद्य संमेलन [illegible]मदनगर

स्वागत सभासदांची यादी

(पुढें चालू)

पुढील मंडळी १० रु. भरून स्वागत मंडळाची सभासद झाली आहेत.

पुणें:— (१) वै. गणेशशास्त्री जोशी, (२) वै. भगवानशास्त्री शर्मा, (३) वै. बा. शं. बीडकर

नासिकः— (१) वै. बिंदुमाधव पंडित, (२) वै. ना. गो. गुणे, (३) वै. वा. स. मराठे, (४) सौ. यमूताई गोगटे, (५) वै. वि. म. गोगटे

खानदेशः— [१] वै. व्ही. के. पाटील [चोपडा] [२] वै. म. चु. गुजराथी [चोपडा], [३] वै. शं. ग. गुणे [चाळीसगांव, [४] वै. ब्रह्मदत्त शर्मा [भुसावळ], [५] वै. ज. बा. मोकाशी [भुसावळ], [६] वै. भगवंत त्र्यंबक वैद्य [धुळे], [७] वै. जीवराम भाई दवे [चाळीसगांव]

पनवेल व चेंबूरः— [१] वै. म. वि. पुराणिक, [२] डॉ. के. ह. गोखले आ. वि., [३] वै. गो. कृ. सांडू (चेंबूर), [४] वै. शं. वा. सांडू (चेंबूर), [५] वै. श्री. वा. सांडू, [६] वै. रा. ह. सांडू (चेंबूर)

अहमदनगरः— १] डॉ. एस्. व्ही. निसळ एल्.सी.पी एस्. २] डॉ.जे.जी. गुणे एल.सी.पी.एस. ३] श्री. मो.कुं. फिरोदिया ४] डॉ. पी.सी. वाळिंबे एम.बी.बी.एस. ५] डॉ.अ.वि. केतकर, एम.बी.बी एस. ६] वै. र.ब. राक्षे (राहता) ७] वै. ने.खु. पहाडे (कोपरगांव) ८] वै. बी. आर. आहेर (कोपरगांव) ९] डॉ. व्ही. व्ही. कुलकर्णी एम. बी. बी. एस १०] डॉ. वाय. आर. आठवले, एल. सी. पी. एस. ११] वै. के. ज. क्षीरसागर १२] वै. श. भा. आगाशे, (श्रीरामपूर) १३] वैद्य [illegible] (बेलापूर-गांव) १४] वै. बा. ग. कल्याणकर, [श्रीरामपूर] १५) डॉ. ज़ी. व्ही. केतकर एम्. एस्. (१६) वै. दे. सि. मुळे (१७) सौ. विमलाबाई डाके

आकोला [मध्य प्रदेश]:— [१] वै. प्र. ल. समुद्र, (२) वै. ग. श. भोंडवे [२] वै. प्रतापसिंग

अमरा[illegible]ग, ([illegible]) [illegible]कीमसय्यद हकीम जयपुरी (५) आर. एस्. श्रीवास्तव (६) वै. के. जी. जानकीराम मुदलीयार, (७) वै. ल. ठा. शहा, (८) वै. गं. ह. पराडकर

अमरावतीः- (१) वै. पं. दा. मुळे, (२) वै. त्र्यं. म. गोगटे (३) वै. म. ज. अंबाडेकर

नागपूरः- (१) वै. वेणीमाधवशास्त्री जोशी

म. प्रां. वैद्य संमेलन, अहमदनगर व्यवस्थापक समित्या

म. प्रां. वैद्य संमेलनाच्या व्यवस्थेसाठीं पुढील समित्या स्थापन करण्यांत आल्या आहेत.

कोषाध्यक्षः- वै. गं. गो. सहस्रबुद्धे आ. वि. वि.
निवासस्थान— १] वै. श्री. गं. देशमुख आ. तीर्थ
२ वै. दा. प. आपटे आ. तीर्थ
कार्यालय— १ वै. रा. शं. देवचक्के D.A.S.F.
२ वै. ना. मा. देवचक्के D.A.S.F
प्रसिद्धी— १] वै. दा. प. आपटे आ. तीर्थ
२] श्री. वा. द. कस्तुरे
भोजन विभाग-१] वै. शं. त्र्यं. महाले D.A.S.F.
२] वै. देशमुख [छगन मास्तर]
३] वै अ. अ. रसाळ, आ. तीर्थ
दर्शन— १] वै. वा. का. जोशी आ. तीर्थ
२] वै. श्री. त्र्यं. महाजनी आ तीर्थ
समारंभ व्यवस्था १] वै का. शं करंदीकर आ. तीर्थ
२] वै. वे. म. जोशी आ. तीर्थ
३] वै. सो. का. इधाटे D.A.S.F.
आरोग्य विभाग पाणी- वै. ना. सी. रच्चा D.A.S.F.
दिवाबत्ती - वै. ना. श्री. आडकर आ. तीर्थ
स्वच्छता- वै. वि. रा. पाखले
भांडार— १] वै. रं. का. मुळे आ. तीर्थ
२] वै. ना. ग. करकमकर आ. तीर्थ
ागत विभाग-१] श्री. कृ. गं. गुणे बी. एस्सी [फर्म]
२] वै. ना. ग. भडकमकर आ. तीर्थ
३] [illegible] वा. ग. कल्याणकर D.A.S.F.
४] वै. बा. शं. देवचक्के आ. तीर्थ

माजी विद्यार्थी संमेलनमंत्री—
१] वै. श्री. गं. देशमुख आ. तीर्थ
२] वै. रा. गो. जोग D.A.S.F.

कार्यकारी मंडळ

कार्याध्यक्ष, मंत्री, खजिनदार, स्वागताध्यक्ष, वै. ना. शं महाजन, वै. र. बा. राक्षे, वै. भा. रा. गुणे, वै. भणगे, वै. ना. बा पंडित, वै. व. दे. मुळे वै. वि. रा. पाखले, वै. अ. अ. रसाळ, वै. बा. शं. देवचक्के, वै. बा. मा. महाजन, वै. दे. सी. वेलदे, वै. स. सी. उदासशास्त्री, वै. रा. रं. वैद्य, वै. के ज. क्षिरसागर, वै. रं. का. मुळे, वै. शं. त्र्यं. महाले, वै. र. र. सुराणा, वै. श. भा. आगाशे.

लोहभस्म (वारितर) २४ रु. शेर

शुद्ध शिलाजित	३२ रु. शेर
वंगभस्म	३६ ,, ,,
प्रवाळभस्म	३२ ,, ,,
अभ्रक (वज्र) भस्म	४६ ,, ,,
कांतलोहभस्म	२८ ,, ,,
स्वर्णमाक्षिक	८० ,, ,,
रससिंदूर	८० ,, ,,
स्वर्णराजवंगेश्वर	८८ ,, ,,
मंडूरभस्म	२० ,, ,,
शंखभस्म	६ ,, ,,
श्रृंगभस्म	१४ ,, ,,
कपर्दिकाभस्म	८ ,, ,,
मुक्ताशुक्तिभस्म	१२ ,, ,,
गोदन्तीभस्म	४ ,, ,,
चंद्रप्रभावटी	२८ ,, ,,
स्वर्णसिंदूर	३ ,, ,,

शिलाजीत पत्थर ८० मण. १ शेर = ८० तोळे. वरील भावाप्रमाणें २० तोळ्यापेक्षां कमी माल पाठविला जाणार नाहीं.

काश्मीर आयुर्वेदिक वर्क्स, अमृतसर

अधिक पाऊस कां ?

गुदस्ता पाऊस फार पडला. वृद्ध माणसांचें स्मरणांत अशा प्रकारचा पावसाळा नाहीं. यन्दा पाऊस कमी पडेल असें भविष्य जून महिना आरम्भीं केसरींत वाचलें. पण यंदाहि पाऊस अधिक पडत आहे. ग्रहमानाचे अन्दाजाप्रमाणें पाऊस पडत नाहीं हें जाणून श्री. तात्यासाहेब करंदीकर यांनीं पावसाचें भविष्य सांगण्याचें सोडून दिलें. पण पंच-महाभूतांचीं कार्यें ही आयुर्वेदशास्त्राची तात्विक बैठक आहे. आप, तेज, वायु या तत्त्वांचा विचार हा तर आयुर्वेदाचा प्राण आहे. तेव्हां पाऊस जास्त कां पडत आहे याचा विचार करणें आयुर्वेदाच्या कक्षेंत येते. ‘आयुर्वेद-पत्रिका,’ ‘आयुर्विद्या,’ ‘सुश्रुत’ इत्यादि नियत-कालिकांनीं या विषयाचा विचार करावा.

संमेलनांत विचार व्हावा

नगर येथील वैद्य संमेलनांत या संबंधीं विचार व्हावा असें मला वाटतें. ॲटम् बॉम्ब्चे स्फोट हे अकालीं पावसाला कारणीभूत आहेत असें कांहीं शास्त्रज्ञ म्हणतात. तसें असेल तर अशा एका स्फोटापासून किती काळपर्यंत पर्जन्यवृष्टी होईल व ती पृथ्वीच्या कोणत्या भागांत होईल इ॰गोष्टींचा विचार झाला पाहिजे. सरकारी हवामान खात्याच्या प्रमुखांस नगर येथें येण्याचें निमंत्रण देऊन त्यांच्या अनुभवाचा या कामीं उपयोग करून घ्यावा. तसेंच लोणावळे येथील डॉ. म. वि. आपटे यांचा सृष्टिशास्त्राचा अभ्यास व व्यासंग बहुमोलाचा आहे. त्यांना निमंत्रण दिल्यास नगर येथील विचार-विनिमयास त्यांचे मार्गदर्शनाचा उपयोग होईल. तरी कार्यकारी समितीनें याबाबतींत लक्ष देऊन योग्य ती तजवीज करावी.

—थत्ते वैद्य, चिपळूण

अनुक्रमणिका

११ वें महाराष्ट्र प्रांतीय वैद्य संमेलन, नगर २२५
संमेलनाचा (संभाव्य) कार्यक्रम २२७
अध्यक्षावर अभिनंदनाचा वर्षाव २२८
बाराव्या अधिवेशनाचें निमंत्रण २३०
गुळाचें संशोधन २३१
जलमहाभूतांचें व्यापक स्वरूप २३५
पाश्चात्य वैद्यकाची प्रगति ? २४१
आजचा आयुर्वेदीय विद्यार्थी २४७
मधुमालिनीवसंत २४९
भात करपला २५१
बस्तिचिकित्सा २५५

औषधी भवनाचीं औषधें मिळण्याचें ठिकाण
किरण मेडिकल सर्व्हिस
नगरकर तालीम चौक, लक्ष्मीरोड, पुणें २

परिचारक व धात्री विद्यालय
नासिक
१९ नोव्हेंबर १९५६ पासून
सुरू होत आहे.
अर्ज पाठवून प्रवेश मिळवा.
—: आयुर्वेद सेवा संघ, नासिक :—

नागपूर—विदर्भ व मराठवाडा भागांतील वैद्यवर्गास विनंति
महाराष्ट्र प्रांतीय वैद्य मंडळाचे सभासद
होऊन प्रांतीय संघटना बलवान् करा.
(वार्षिक वर्गणी २ रु.) —मंत्री म. प्रां. वैद्य मंडळ, स्थायी कार्यालय, नासिक

चांगलें आयुर्वेदीय वातावरण

"माझा नासिकचा मुक्काम आपल्या सर्वांच्या सहवासांत फार चांगला गेला. माझा तेथें येण्याचा उद्देश तेथील शिक्षण विद्यार्थी कसे घेतात त्यांना आयुर्वेदीय सिद्धांत कसे शिकविले जातात व त्यांचे अनुष्ठान तेथें कसें होतें हें पहावें हा होता.

शिक्षक श्रध्दावान् आहेत

मला कळविण्यास आनंद वाटतो कीं तेथें आयुर्वेदीय वातावरण फारच चांगलें आहे. याला कारण सर्व शिक्षक आयुर्वेद शिक्षणाबद्दल श्रध्दावान आहेत व विद्यार्थ्यांना ज्ञानदान करण्याबद्दल ते तत्पर आहेत."

—वैद्य मा. द. गोडबोले आयुर्वेदाचार्य, पनवेल
(अध्यापक, शुद्ध आयुर्वेद महाविद्यालय, शीव)

'प्रोत्साहन' हें काय आहे?

'प्रोत्साहन' हें एक दुग्ध-संस्कार चूर्ण आहे. चहा-कॉफीप्रमाणेंच पाणी-दूध-साखर घालून, यापासून उत्तम पेय तयार करतां येतें.

यांत शतावरी, आस्कंद, गोखरू, वावडिंग, दालचिनी, वेलदोडे, सुंठ, मंजिष्ठा, गुलाबकळी इत्यादि पौष्टिक व पाचक सुगंधी द्रव्यें आहेत.

व्यायाम करणारीं मुलें, शाळेंत जाणारे विद्यार्थी, दूध न आवडणारी मुलें व स्त्री-पुरुष, साधु-संत आणि कोणत्याहि कारणास्तव चहा-कॉफी [illegible]मंडळी, यांना हें अगदीं प्रशस्त व उपयुक्त पेय आहे.

आयुर्वेद औषधी भवन, नासिक

[illegible] प्रकाशक — वैद्य विंदुमाधव पंडित, जीवसदस्य, आयुर्वेद सेवा संघ, रविवारपेठ, ना
मुद्रक—श्री. चिं. ओक, [illegible]

078060

Compiled
1999-2000